सरस्वती

सचित्र

मासिक पत्रिका

भाग २१, खण्ड २

जूलाई—दिसम्बर

१९२०

सम्पादक

महावीरप्रसाद द्विवेदी

पदुमलाल पुन्नालाल बख़्शी, बी० ए०

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, कटरा, प्रयाग

वार्षिक मूल्य पाँच रुपये

लेख-सूची।

नम्बर	नाम	लेखक	पृष्ठ
१	अनुरोध (कविता)	श्रीयुत पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, बी० ए० ...	११३
२	अपमानित आत्मा (कविता)	श्रीयुत देवीप्रसाद गुप्त, बी० ए०, एल-एल० बी०	१४१
३	अलौकिक स्वामि-भक्ति (कविता) ...	विद्यारत्न विजयानन्द त्रिपाठी (श्रीकवि) ...	२९९
४	आकाङ्क्षा (कविता)	श्रीयुत ज्योतिषचन्द्र घोष	३०९
५	आदर्श	पण्डित गोपाल दामोदर तामसकर, एम० ए०, एल० टी०	२०७
६	आह्वान (कविता)	पण्डित मनोहरप्रसाद मिश्र	१५१
७	उर्दू-कविता पर एक दृष्टि	पण्डित देवीदत्त शुक्ल	२४१
८	कमीनियस	प्रोफ़ेसर चन्द्रमौलि सुकुल, एम० ए०, एल० टी०	३६
९	कविता का भविष्य	सम्पादक	११४
१०	कालिदास की कविता के नमूने	श्रीयुत पदुमलाल पुन्नालाल बख़्शी, बी० ए० ...	१७१
११	काशिनाथ रघुनाथ मित्र	सम्पादक	१३४
१२	कुररी के प्रति (कविता)	पण्डित मुकुटधर पाण्डेय	२७
१३	गन्ना और शक्कर (समालोचना)	सम्पादक	१८
१४	गुजरात-प्रान्त के हिन्दी-कवि	पण्डित भवानीशङ्कर याज्ञिक	६२
१५	गोशाले और गोवंश-वृद्धि	श्रीयुत कोचक	२९४
१६	चित्र-परिचय	सम्पादक—५६, ११२, १६८, २२४, २८० और	३३५
१७	जयपुर के दर्शनीय स्थान	श्रीयुत पुरुषोत्तम आचारी	३००
१८	जातीयता (कविता)	श्रीयुत मणिराम गुप्त	१८९
१९	जानकीगीतम्	प्रोफ़ेसर चन्द्रमौलि सुकुल, एम० ए०, एल० टी०	१४४
२०	जीवन और जीवनी शक्ति	श्रीयुत रघुवरदयाल गुप्त	१९९
२१	जै जै प्यारे भारत देश (कविता) ...	श्रीयुत द्विरेफ	१६९
२२	ताई (आख्यायिका)	पण्डित विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक ...	३१
२३	तुम भी आगे बढ़ते जाओ (कविता) ...	श्रीयुत पारसनाथसिंह, बी० ए०, एल-एल० बी०	२५१
२४	तुलसीदास और वर्ड्सवर्थ ...	पण्डित लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी, बी० ए० ...	१५१
२५	दीप-निर्वाण (कविता) ...	श्रीयुत पदुमलाल पुन्नालाल बख़्शी, बी० ए०	८०
२६	द्रविड़ देश की रामायण ...	सम्पादक	२४४
२७	नराधम (कविता)	पण्डित रामचरित उपाध्याय	९२
२८	नायक प्रतापधवल देव	पण्डित रामदहिन मिश्र, काव्यतीर्थ ...	२८

नम्बर	नाम	लेखक	पृष्ठ
२९	नास्तिकों की विचार-परम्परा	श्रीयुत शम्भूशर्म्मा	३०६
३०	पचमढ़ी	बाबू गोविन्ददास	३१
३१	पत्र-सम्पादन-कला	पण्डित बदरीनाथ भट्ट, बी० ए० ...	१४
३२	परमाणु की शक्ति	सम्पादक	८८
३३	पादरी नोल्स की रोमन लिपि	श्रीयुत पारसनाथसिंह, बी० ए०, एल-एल० बी०	१७९
३४	पुरानी पुस्तकों की खोज	सम्पादक	२३९
३५	पुस्तक-परिचय	,, ,, ५३, १०७, १६२, २२०, २७९ और	३३३
३६	पेरिस	,, ,, ...	२५१
३७	पृथ्वी की दैनिक गति-सम्बन्धी चमत्कार ...	श्रीयुत गोपाल दामोदर तामसकर, एम० ए०, एल० टी०	२८४
३८	प्रणाम (कविता)	बाबू मैथिलीशरण गुप्त	५७
३९	प्रभु की प्राप्ति (कविता)	बाबू मैथिलीशरण गुप्त	११३
४०	प्रार्थना (कविता)	पण्डित मनोहरप्रसाद मिश्र	३१५
४१	प्रोफ़ेसर त्रिभुवनदास गज्जर	श्रीयुत विनायक नं० महेता, आई० सी० एस० ...	२३२
४२	बन्दरों की भाषा	सम्पादक	१४८
४३	बिजली की ट्राम और रेलगाड़ी	श्रीयुत जगन्नाथ खन्ना, बी० एस-सी, इ० इ० ...	१९०
४४	बुद्ध-जन्म (कविता)	श्रीयुत पारसनाथसिंह, बी० ए०, एल-एल० बी०	१९८
४५	बुद्धदेव के प्रति (कविता)	श्रीयुत पदुमलाल पुन्नालाल बख़्शी, बी० ए० ...	१
४६	बेटियाँ (कविता)	पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय	१२२
४७	बेवायें (कविता)	,, ,, ...	१७८
४८	भङ्ग	श्रीयुत कृष्णाराम झा	२६१
४९	भविष्य की ओर बढ़ो	श्रीयुत केशवदेव सहारिया	१८१
५०	भारत में शिक्षा-प्रचार	सम्पादक	६१
५१	भारतवर्ष में पहला मुसलमान यात्री ...	श्रीयुत महेशप्रसाद, मौलवी फ़ाज़िल ...	२६४
५२	भारतीय पुरातत्त्व में नई खोज	पण्डित जनार्दन भट्ट, एम० ए० ...	१
५३	भावना	ब्रह्मचारी ईश्वरचन्द्र शर्म्मा	२५८
५४	भाषा का स्वराज्य	पण्डित दिवाकर शर्मा	१२३
५५	मकड़ी	पण्डित वनमालीप्रसाद शुक्ल	२६६
५६	मन-मोर (कविता)	श्रीयुत 'नयन'	३२४
५७	मानव-चरित्र (आख्यायिका)	पण्डित ज्वालादत्त शर्म्मा	१३६
५८	मुक्ति (कविता)	पण्डित गोकुलचन्द्र शर्म्मा	१४३
५९	मुग़लों का सामाजिक जीवन	पण्डित व्रजविहारी शुक्ल	३१५
६०	मुद्राराक्षस के रचयिता का लक्ष्य ...	पण्डित देवीदत्त शुक्ल	४
६१	मेघ (कविता)	विद्यारत्न पण्डित विजयानन्द त्रिपाठी (श्रीकवि) ...	१२६
६२	मेघदूत में कालिदास का आत्मचरित ...	श्रीयुत पदुमलाल पुन्नालाल बख़्शी, बी० ए० ...	२८९
६३	मेघदूत में विज्ञान	पण्डित रामदहिन मिश्र, काव्यतीर्थ ...	९३
६४	मेरे प्यारे हिन्दुस्तान (कविता)	श्रीयुत पञ्चानन	२२५

नम्बर	नाम	लेखक	पृष्ठ
६५	मौलिक ग्रन्थ और अनुवाद	पण्डित लल्लीप्रसाद पाण्डेय	३१३
६६	म्यूनीसिपल्टी	श्रीयुत जगन्नाथ खन्ना, बी० एस-सी०, ई० ई० ...	२३५
६७	योरप के कुछ संस्कृतज्ञ विद्वान् और उनकी साहित्य-सेवा	सम्पादक	१६४
६८	रामदास की अद्भुत क्षमा (कविता) ...	पण्डित गोकुलचन्द्र शर्मा	१३
६९	राबर्ट ब्रौनिंग	प्रोफ़ेसर ब्रजराज, एम० ए०, बी० एस-सी० एल-एल० बी०	४२
७०	राष्ट्रीय गान (कविता)	पण्डित गिरिधर शर्म्मा	२८१
७१	लार्ड एस० पी० सिंह	सम्पादक	१४१
७२	लुई पास्टुर	,, ...	३०९
७३	लोकमान्य बाल गङ्गाधर तिलक ...	,, ...	५८
७४	वङ्ग-भाषा का उच्चारण	पण्डित सूर्यकान्त त्रिपाठी	२०४
७५	वज्रपात (कविता)	श्रीयुत सनेही	९६
७६	वज्राघात	श्रीयुत ललन...	२६६
७७	विक्टर ह्यूगो	सम्पादक	२२५
७८	विद्यालय (कविता)	पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय	२३४
७९	विपद्बन्धु	पण्डित लल्लीप्रसाद पाण्डेय	८०
८०	विमानों का भविष्य	प्रोफ़ेसर बालकृष्ण, एम० ए०	१२९
८१	विविध विषय	सम्पादक ... ४६,९७,१५४,२१०,२७० और	३२५
८२	विश्वेशवन्दना (कविता)	बाबू कुशहरीदयालु निगम	२६१
८३	विषधर सर्प	सम्पादक	२५५
८४	व्रजभाषा का काव्य और शृङ्गार-रस ...	प्रोफ़ेसर रामप्रसाद त्रिपाठी, एम० ए०, सिनेट-लेकचरर, एम० आर० ए० एस० ...	६
८५	शनैश्चर (कविता)	पण्डित रामचरित उपाध्याय	४२
८६	शरद (कविता)	बाबू गोविन्ददास	२६९
८७	शिवाजी का राज्याभिषेक	बाबू नाथूराम सिंगई	२२८
८८	शिक्षा-संशोधक संघ	पण्डित खड्गजीत मिश्र, एम० ए०, एल-एल० बी०, एडवोकेट, हाईकोर्ट ...	१६९
८९	श्रीरामचन्द्रजी के प्रति (कविता) ...	पण्डित मनोहरप्रसाद मिश्र	२०६
९०	सेठ खेमराज श्रीकृष्णदास	सम्पादक	१४२
९१	सौन्दर्य (कविता)	पण्डित गोकुलचन्द्र शर्म्मा	२४३
९२	संस्कृत-भाषा में रेखा-गणित	पण्डित केदारनाथ	७७
९३	हमारा पूर्व-परिचय (कविता)... ...	कर्ण	२९२
९४	हिन्दी-साहित्य में इतिहास	अध्यापक	२७
९५	हिन्दुओं की सचाई	लाला कन्नोमल, एम० ए०	११७
९६	हे चन्द्र (कविता)	बाबू मैथिलीशरण गुप्त	२८४
९७	हेनरी फेवर	पण्डित वनमालीप्रसाद शुक्ल	२४६

चित्र-सूची।

रङ्गीन चित्र।

नंबर	नाम	महीना	पृष्ठ
१	अघोरपन्थी साधु ...	जुलाई	आदि पृष्ठ
२	आकस्मिक विपत्ति ...	आक्टोबर	आदि पृष्ठ
३	तीर्थ-यात्रा	अगस्त	आदि पृष्ठ
४	वंशी-ध्वनि	नवम्बर	आदि पृष्ठ
५	वासन्ती	सितम्बर	आदि पृष्ठ
६	सङ्गीत	दिसम्बर	आदि पृष्ठ

सादे चित्र।

नंबर	नाम	पृष्ठ
१	काशिनाथ रघुनाथ मित्र	१३५
२-६	जयपुर-सम्बन्धी ५ चित्र ...	३०१–३०२–३०३–३०४–३०५
७	ट्रावनकोर के नये दीवान, राय बहादुर टी० राघवैया, बी० ए० ...	१०१
८	डाक्टर कीलहार्न	१६६
९	न्यूयार्क में जल-विहार के साधन का दृश्य	२३७
१०	न्यूयार्क में रात का दृश्य	१६१
११-१६	पचमढ़ी-सम्बन्धी ६ चित्र	२१-२६
१७-१९	परमाणु की शक्ति-नामक लेख से सम्बन्ध रखनेवाले ३ चित्र ...	८८-९०
२०	पिट्सवर्ग में अन्धे बच्चों के लिए खेल-कूद का प्रबन्ध	२३८
२१-२३	पेरिस-सम्बन्धी ३ चित्र	२५२–२५३–२५४
२४	पोलैंड की स्त्री-सेना	२१८
२५	प्रातःकाल की उपासना	३३६
२६	प्रोफ़ेसर मैक्समूलर	१६४
२७	प्रोफ़ेसर हरमन जी० जैकोबी, एम० ए०, पी–एच० डी० ...	१६७
२८	बहू का भाग्य	३३६
२९-३१	बन्दरों की भाषा से सम्बन्ध रखनेवाले ३ चित्र	१४९-१५१
३२	बिजली की रेल का दृश्य	१६७
३३	भारत के नये प्रधान सेनापति	३३१
३४	माननीय चीफ़ जस्टिस शादीलाल (लाहौर)	५२
३५	यंग्सटौन का एक फूल-बाग़	२३६
३६	लार्ड एस० पी० सिंह	१४१
३७	लोकमान्य बाल गङ्गाधर तिलक...	५९
३८-३९	'विमानों का भविष्य' नामक लेख से सम्बन्ध रखनेवाले २ चित्र ...	१३०-१३२

नंबर	नाम	पृष्ठ
४०-४१	विषधर सर्प-सम्बन्धी २ चित्र	२५६-२५७
४२	सर शापुरजी बरूचा	१०३
४३	संयुक्त-राज्य (अमेरिका) के प्रेसिडेंट, सिनेटर डब्ल्यू० जी० हार्डिंग ...	३३२
४४	श्रीयुत रामकृष्ण कुलकर्णी, एम० ए०	१७०

रङ्गीन चित्र	६
सादे चित्र	४४
कुल	५०

अघोर-पन्थी साधु ।

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग ।
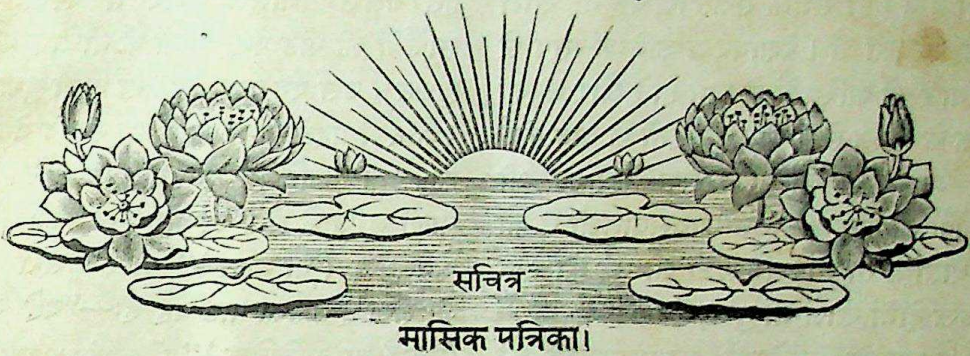
भाग २१, खण्ड २] जुलाई १९२०—श्रावण १९७७ [संख्या १, पूर्ण संख्या २४७

बुद्धदेव के प्रति।

भगवन्, यह कैसी है रीति।
तुम हो यतिवर, ऐसी हमको होती नहीं प्रतीति।
कपिलवस्तु था क्षुद्र, हो गया वह तो तुमको त्याज्य।
किया प्रतिष्ठित अखिल विश्व में आज अचल साम्राज्य।
प्रणयी जन थे अल्प, छोड़ दी तुमने उनकी प्रीति।
जोड़ लिया सम्बन्ध जगत से, यह क्या नहीं अनीति?
थी विरक्ति तो हुआ तुम्हारा जग से क्यों अनुराग?
जग-सेवा कर सेव्य हो गये, यह कैसा है त्याग!
छूट गये तुम भव-बन्धन से, यह केवल उपहास।
मानव-हृदय हुआ बन्दी-गृह, वहीं तुम्हारा वास।

पदुमलाल पुन्नालाल बख़्शी

भारतीय पुरातत्त्व में नई खोज।

भारतीय पुरातत्त्व के बहुत से विद्वानों का अब तक यही विश्वास था कि मौर्यकाल के पहले की कोई भी मूर्त्ति अब तक नहीं प्राप्त हुई है। इसलिए उन लोगों का मत है कि पत्थर की मूर्तिकारी या कारीगरी अशोक या मौर्यकाल के पहले न होती थी। उनके मत में अशोक के समय से ही पत्थर की मूर्तिकारी का प्रारम्भ हुआ है। बहुत से योरोपीय पुरातत्त्व-पण्डितों का तो यहाँ तक विश्वास है कि प्राचीन हिन्दू स्वयं अपनी बुद्धि से मूर्तिकारी की किसी शैली का निर्माण करने के सर्वथा अयोग्य थे। इसलिए इन विद्वानों के मत में भारतवर्ष की

मूर्तिकारी पूर्ण रूप से स्वदेशी नहीं है किन्तु उस पर प्राचीन फ़ारस तथा प्राचीन ग्रीस की कला-कारीगरी का बहुत कुछ प्रभाव पड़ा है। पर हाल में श्रीयुत काशीप्रसाद जायसवाल, एम० ए०, बार-एट-ला ने जो नई खोज की है उससे इस मत को बड़ा धक्का पहुँचेगा। जिन लोगों को भारतीय पुरा-तत्त्व या भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास में कुछ भी रुचि नहीं है वे नहीं समझ सकते कि यह नई खोज कितने महत्त्व की है। पेशावर में कनिष्क-स्तूप से बुद्ध भगवान् की अस्थियों के प्राप्त होने और मस्की में अशोक के शिला-लेख की खोज होने के बाद कोई भी इतने मार्के की खोज अब तक नहीं हुई थी जितने मार्के की हाल में श्रीयुत जायसवालजी ने की है। कई बातों में तो जायसवालजी की नई खोज के सामने उक्त दोनों खोजें भी तुच्छ हैं।

अब मैं आपको, संक्षेप में, जायसवालजी की खोज का हाल सुनाता हूँ जिसका वर्णन उन्होंने स्वयं "विहार ऐंड ओरीसा रिसर्च सुसाइटी" के पत्र में, मार्च १९१९ तथा दिसम्बर १९१९ वाले अङ्कों में, छपवाया है।

जिस खोज का हाल श्रीयुत जायसवालजी ने "जर्नल आफ़ दि विहार ऐंड ओरीसा रिसर्च सुसा-इटी" के मार्च १९१९ वाले अङ्क में छपवाया है वह उन दो बड़ी बड़ी मूर्तियों के सम्बन्ध में है जो कलकत्ते के "इंडियन म्यूज़ियम" नामक अजायब-घर में रक्खी हुई हैं। अब तक लोगों का यह विश्वास था कि उक्त दोनों मूर्तियाँ यक्ष की हैं। पर श्रीयुत जायसवालजी ने अपने लेख में यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि ये दोनों मूर्तियाँ यक्ष की नहीं किन्तु शैशुनाग-वंश के दो महाराजाओं अर्थात् उदयिन् और नन्दिवर्द्धन की हैं, जिनका नाम-मात्र इतिहास में मिलता है। ऐसा माना जाता है कि शैशुनाग-वंश के प्रथम राजा अर्थात् शिशुनाग ने राजगिर में (वर्तमान गया के आस पास) ईसा के पूर्व ६०० वर्ष के लगभग इस राज-वंश की नींव डाली थी।

उक्त दोनों मूर्तियाँ पटने के आस पास सन् १८१२ में मिली थीं और बाद को सन् १८२० में वे "बङ्गाल की एशियाटिक सुसाइटी" को भेंट कर दी गई थीं। सन् १८७९ में वे वहाँ से हटा कर कलकत्ते के अजायब-घर में लाई गईं जहाँ वे आज-कल "भर-हत गैलरी" नामक कमरे में रक्खी हैं। दोनों मूर्त्तियों की पीठ पर, कन्धों के नीचे, दुपट्टे की जो चुन्नट है उस पर एक एक लेख खुदा हुआ है। सन् १८७९ में पहले पहल कनिंघम साहब ने इन लेखों को पढ़ा। कनिंघम साहब के अनुसार बे-सिर-वाली मूर्त्ति के लेख का पाठ इस प्रकार है:—"यखे सनतनन्द (या भरत)" और दूसरी मूर्त्ति पर जो लेख है उसका पाठ यह है:—"यहे अचु सति-गिक (या सनिगिक)" (Archæological Survey of India, Vol. XV, pp.2—3) कनिंघम साहब के मत में ये दोनों मूर्त्तियाँ यक्षों की हैं और लिपि के आधार पर उन्होंने इन दोनों मूर्त्तियों को अशोक के बाद का ठहराया है। पर श्रीयुत जायस-वालजी ने इस मत का खण्डन बड़ी विद्वत्ता से किया है। उनके अनुसार पहले लेख का पाठ इस प्रकार होना चाहिए :—"भगे अचो छोनिधिसे" (पृथ्वी के अधीश्वर महाराज अज) और दूसरे का होना चाहिएः—"सप्तखते वत नन्दि" (सम्राट्‌ वर्ति नन्दि)। पुराणों में शैशुनाग-वंश के राजाओं की जो सूची है उसमें "नन्दिवर्धन" का नाम आता है। जायसवाल जी का मत है कि "नन्दि" राजा का नाम है और "वर्धन" उसकी केवल राज-कीय पदवी है। वायु, ब्रह्माण्ड और मत्स्य-पुराणों में नन्दि राजा उदयिन् के पुत्र लिखे गये हैं और भाग-वत में नन्दिवर्धन को अजेय (अज का पुत्र) लिखा है। भागवत के जिस श्लोक में नन्दिवर्धन को "अजेय" लिखा है उसके पहलेवाले श्लोक में

"उदयिन्" के स्थान पर "अज" का नाम आता है। वायु-पुराण में "नन्दिवर्धन" के स्थान पर "वर्ति-वर्धन" लिखा है जो जायसवालजी के अनुसार नन्दि-वर्धन का दूसरा नाम है। "अच" "अज" का अप-भ्रंश और "वत" "वर्ति" का अपभ्रंश है। दोनों मूर्त्तियों में ऐसे चिह्न पाये जाते हैं जिनसे मालूम पड़ता है कि वे दोनों पहले खूब चिकनी और चमक-दार थीं। इन दोनों में उसी तरह की चिकनाहट है जैसी प्रायः मौर्यकालवाले पत्थर के स्मारक चिह्नों में पाई जाती है। जायसवालजी ने लिखा हैः—"मौर्य-काल के बाद पत्थर के बने हुए जितने स्मारक चिह्न मिलते हैं उनमें चिकनाहट और चमक कभी देखने में नहीं आती, पर मौर्यकाल के स्मारक चिह्नों में ये गुण प्रायः अवश्य मिलते हैं। अतएव ये दोनों मूर्त्तियाँ और उन पर खुदे हुए लेख मौर्यकाल के बाद के नहीं हो सकते।" श्रीयुत जायसवालजी ने यह मान लिया है कि "लेख भी उसी समय के हैं जिस समय की मूर्त्तियाँ हैं; वास्तव में मूर्त्तियों पर नाम उसी समय खोद दिये गये थे जब वे पूरी तरह से तैयार भी नहीं हुई थीं।" उनका कहना यह है कि "मौर्यकाल की लिपि किस प्रकार की होती है, यह तो हम लोगों को मालूम ही है, इसलिए इन मूर्त्तियों के लेखों की लिपि अशोक के पहले की अवश्य होगी।" बस इन दो मूर्त्तियों के विषय में जायसवालजी का मत संक्षेप में यही है।

अब मैं आपको जायसवालजी की एक तीसरी खोज का हाल सुनाता हूँ जिसके विषय में उन्होंने "जर्नल आफ़ दि बिहार ऐंड ओरीसा रिसर्च सुसाइटी" के दिसम्बर १९१९ वाले अङ्क में लिखा है। जायसवाल महाशय की यह खोज एक मूर्ति के सम्बन्ध में है जो मथुरा के अजायबघर में रक्खी हुई है। यह मूर्ति कनिंघम साहब को मथुरा से १४ मील पर, परखम नामक गाँव में, प्राप्त हुई थी। गाँववाले उस मूर्त्ति को देवता के नाम से पूजते थे। कनिंघम साहब का अनुमान है कि यह मूर्त्ति किसी यक्ष की है। वोगल साहब का मत है कि यह मूर्त्ति धनराज कुबेर की है। इस मूर्त्ति के चारों ओर, फलक पर, तीन लाइन का एक लेख खुदा हुआ है। पहली लाइन मूर्त्ति के दाहिनी ओर, दूसरी लाइन मूर्त्ति के पैरों के बीच में और तीसरी लाइन मूर्त्ति के बाईं ओर है। वोगल साहब ने इस लेख को इस प्रकार पढ़ा हैः—"[नि] भदपुग रिना [क]...[ग] अठ......पि......कुनि [क] तेवासिना [गोमितकेन] कता" अर्थात् "कुनिक के शिष्य भद-पुगरिन गोमितक ने बनाया।" जायसवालजी ने इस मूर्त्ति की जाँच खूब अच्छी तरह करके निश्चय किया है कि यह मूर्त्ति यक्ष की नहीं, किन्तु शैशुनाग-वंश के एक प्रतापशाली सम्राट् विम्बिसार के पुत्र महाराज अजातशत्रु की है। जायसवाल जी ने इस मूर्त्ति के लेख को इस प्रकार पढ़ा हैः—

(दाहिनी ओर) निभदप्र—सेनि अज सतु राजो सिरि

(सामने की ओर) ४, २० (थ) १० (द) ८ (ह्नि अथवा ह्नि)

(बाईं ओर) कुनिक सेवसि—नागो मगधानं राजा।

अर्थात्ः—परलोकगत, मगधराज, शैशुनाग-वंशज, श्रेनि-आत्मज, अजातशत्रु श्रीकुनिक।

श्रेनि या श्रेनिक राजा विम्बिसार का दूसरा नाम है। अजातशत्रु का एक और नाम कुनिक भी है। सेवसिनाग शिशुनाग का प्राकृत रूप है। किसी किसी पुराण में लिखा है कि अजातशत्रु ने ३५ वर्ष तक राज्य किया था। जायसवालजी का मत है कि इस मूर्त्ति का निर्माण-काल ईसवी सन् के पूर्व ५६५ के लगभग माना जाना चाहिए, क्योंकि अजा-तशत्रु का अन्तकाल ईसवी सन् के पूर्व ५१८ में हुआ था।

जायसवालजी की इन तीनों खोजों के विषय

में अन्य विद्वानों का क्या मत है, यह किसी दूसरे लेख में लिखा जायगा। यहाँ पर हम सिर्फ़ यह लिख देना चाहते हैं कि प्रसिद्ध इतिहासज्ञ परलोकगत डाकृर विन्सेन्ट स्मिथ साहब जायसवालजी से पूर्णतया सहमत थे और इन मूर्तियों को मौर्य-काल के पूर्व का मानते थे।

जनार्दन भट्ट

मुद्राराक्षस के रचयिता का लक्ष्य।

मुद्राराक्षस पढ़ने से उसके प्रणेता विशाखदत्त की प्रतिभा का जो चित्र पाठकों की आँखों के सामने खिंच जाता है उसकी छटा का वर्णन करना सहज नहीं। नाटक के क्षेत्र में विशाखदत्त को हम एक ऐसे मार्ग पर चलते हुए पाते हैं जिस पर सम्भवतः हमारे संस्कृत-साहित्य के किसी अन्य नाटककार ने अपना पैर नहीं रक्खा। न तो वे 'शाकुन्तल' की ओर दृष्टिपात करते हैं और न 'उत्तररामचरित' से ही उनकी कुछ सहानुभूति है। उनकी रचना का आदर्श बिलकुल नया और सबसे निराला है।

विशाखदत्त बारहवीं सदी के अन्तिम भाग के कवि हैं। उस समय का भारत अनेक छोटे छोटे राज्यों में बँट गया था। प्रत्येक राज्य का राजा स्वतन्त्र था और अपने पड़ोसी राजा से प्रायः युद्ध ठाने रहता था। देश में एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक कलह की आग धाँय धाँय जल रही थी। उधर देश के पश्चिम ओर मुसलमान आक्रमणकारी धीरे धीरे अग्रसर हो रहे थे और देश के पारस्परिक अनैक्य से लाभ उठाने की घात में थे। ऐसी विपन्नावस्था में फँसे हुए देश के लिए एक ऐसी महती शक्ति की आवश्यकता थी जो अपनी प्रतिपत्ति से राष्ट्र की बिखरी हुई शक्ति को एक धारा में बहा कर उसे डूबने से बचावे। अतएव यह काम विशाखदत्त जैसे प्रतिभावान् कवि का ही था जो राष्ट्र के सामने कोई ऐसा आदर्श उपस्थित करे कि जिससे उसकी रक्षा हो।

मुद्राराक्षस पढ़ने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि कवि का क्या लक्ष्य था। उसने अपनी पैनी दृष्टि से देश की दुरवस्था देख कर कवित्व के भावोद्रेक में राष्ट्र के सामने मौर्यराज चन्द्रगुप्त के समय के भारत के भव्य चित्र का उद्घाटन किया। यही नहीं, किन्तु इसके साथ ही उसने तत्कालीन राजनैतिक पटुता के दिव्य रूप का दर्शन भी अपने समय के राजनीतिज्ञों को करा दिया। परन्तु देश के दुर्भाग्य से विशाखदत्त की क़द्र न हुई। देश के तत्कालीन नेताओं को उसकी सूझ न सूझी। कवि ने मुद्राराक्षस में जिस भव्य आदर्श को चित्रित करके राष्ट्र के आगे रक्खा था वह कूड़ा-करकट समझा गया। कवि के मनोराज्य की कल्पना का फूल वहीं पड़ा पड़ा कुम्हलाता रहा जहाँ कि वह विकसित हुआ था।

देश का भविष्य अन्धकारमय देख कर, उसे उस दशा से बचाने के लिए, विशाखदत्त ने न तो राम के गीत गाये हैं और न कृष्ण ही के। चूँकि देश के ऊपर उस समय सङ्कट के भयङ्कर बादल घोर गर्जन कर रहे थे; अतएव उन्हें अपने भूतकालीन इतिहास से एक ऐसे आदर्श को खोज निकालने की आवश्यकता प्रतीत हुई जिसको देश का कोई मनस्वी अपना लक्ष्य बना कर आये हुए सङ्कट से उसकी रक्षा करे। अपने नाटक में विशाखदत्त ने जिस सच्ची ऐतिहासिक घटना को स्थान दिया है देश में उसकी पुनरावृत्ति होने की परमावश्यकता थी। वह सच्ची घटना वह षडयन्त्र था जिसे मौर्य्यराज चन्द्रगुप्त का साम्राज्य संस्थापन करने के लिए, राजनीति-विशारद विष्णुशर्मा चाणक्य ने मन्त्रि-प्रवर राक्षस को अपने वशवर्ती करने के लिए रचा था।

यही मुद्राराक्षस का प्रधान नाट्य विषय है। विशाखदत्त ने अपने नाटक में पूर्वोक्त षड्यन्त्र को अङ्कित करके यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि मौर्यवंश के एक-मात्र शत्रु अमात्य राक्षस को अपनी ओर करने के लिए चन्द्रगुप्त और चाणक्य ने किस प्रकार के षड्यन्त्र की रचना की थी और ऐसा करके उसने देश को एक घोर घरेलू सङ्ग्राम में परिणत होने से किस प्रकार बाल बाल बचा लिया था। इस एक साधारण सी बात पर सरसरी निगाह डालने से हम मुद्राराक्षस के लिखे जाने के वास्तविक उद्देश को तब तक नहीं समझ सकेंगे जब तक हम देश की तत्कालीन ऐतिहासिक स्थिति को एक बार अपने ध्यान में न लावेंगे।

जिस समय इस षड्यन्त्र की रचना का सूत्र-पात हुआ था उस समय पाटलिपुत्र पर चन्द्रगुप्त का पूर्ण अधिकार हो चुका था। उसके सारे प्रति-द्वन्द्वी या तो मारे जा चुके थे या मगध परित्याग करके भाग खड़े हुए थे। एक-मात्र स्वामि-भक्त मन्त्रि-प्रवर राक्षस ऐसा था जो चन्द्रगुप्त का सिंहासन पर आसीन होना न्याय-सङ्गत न मानता था। अत-एव उसका विरोध करने को अग्रसर दिखाई देता था। वह इस प्रयत्न में संलग्न था कि चन्द्रगुप्त मगध के सिंहासन से उतार दिया जाय। अपने इस उद्देश की सिद्धि के लिए वह मगध-राज्य के सीमावर्ती तथा दूसरे राजाओं को अपनी राजनीति-पटुता से पाटलिपुत्र पर चढ़ा लाया था और एक प्रकार से उसे घेर भी लिया था। विलम्ब था तो केवल धावा बोलने भर का। ऐसी दशा में, विपक्ष की ओर से किसी भाँति की सामरिक गति का परि-लक्षित न होना साधारण रहस्य की बात नहीं समझी जा सकती। शत्रु तो एक ओर राजधानी को घेरे पड़ा हो और दूसरी ओर अवरुद्ध दल ज़रा भी चींचपड़ न करे! राजनैतिक धैर्य्य की परा-काष्ठा हो गई।

जिस चन्द्रगुप्त ने बलपूर्वक पाटलिपुत्र पर अपना अधिकार जमाया था और राक्षस देखता ही रह गया था वह, युद्ध के लिए ललकारे जाने पर भी, उससे विरत क्यों हुआ था? इसका कारण यह था कि उस समय, भारत की सीमा पर, यूनानी आक्रमणकारी लोग अपनी सामरिक गति-विधि पुनः प्रकट कर रहे थे। उसकी प्रतिक्रिया के कारण इधर देश में अलग ही गड़बड़ मची हुई थी। यदि वह घरेलू युद्ध में फँसता है तो एक ओर देश का संहार होता है और दूसरी ओर देश में विदेशियों की जड़ जम जाने की स्पष्ट सम्भावना है। अस्तु, ऐसी दशा में, चन्द्रगुप्त और चाणक्य जैसे कुटिल राजनीतिज्ञ घरेलू युद्ध में क्यों कर फँस सकते थे। उस समय इस बात की आवश्यकता थी कि सारे राष्ट्र की शक्ति विदेशी आक्रमणकारियों को देश से बाहर खदेड़ भगाने के कार्य्य में लगाई जाय। अतएव आत्मरक्षा का पूरा पूरा प्रबन्ध करके चाणक्य ने राक्षस के सहायकों में भेद-नीति का प्रयोग किया और इस तरह उसने एक तीर से दो निशाने मार गिराये। षड्यन्त्र का प्रयोजन भी यही था। राक्षस के सहायकों में फूट पैदा होगई। वे सबके सब या तो राक्षस का साथ छोड़ कर अपने अपने देशों को वापस चले गये या चाणक्य के कौशल से चन्द्रगुप्त के बन्दी हुए। इस तरह अपने पक्ष को निर्बल होते देख और अपने परिवार की रक्षा के लिए प्रिय मित्र चन्दनदास के शूली पर चढ़ाये जाने का समाचार पाकर राक्षस का भी उत्साह भङ्ग हो गया। मित्र की रक्षा का निश्चय करके वह शूली-स्थान पर जा पहुँचा और राज-कर्म्मचारियों को आत्मसमर्पण कर दिया।

इस तरह कौशल से, बिना युद्ध किये, चाणक्य ने घरेलू युद्ध की बला ही नहीं टाल दी, किन्तु एक ऐसे नर-रत्न को अपने हाथ में कर लिया जिसके मन्त्रित्व-काल में मगध का राज्य इतना गौरव-पूर्ण

हो चुका था जिसका नाम सुन कर सिकन्दर जैसे दिग्विजयी की हिम्मत उस ओर आँख उठा कर ताकने तक की नहीं हुई। सब प्रकार का वैर-भाव दूर करके चाणक्य ने राक्षस से चन्द्रगुप्त का मेल करा दिया, जिसका परिणाम यह हुआ कि यूनानी आक्रमणकारी युद्ध में हराये जाकर देश से खदेड़ बाहर ही नहीं किये गये, किन्तु उनके राज्य का बहुत सा अंश भी छीन लिया गया और भारत में मौर्यों का सर्वश्रेष्ठ साम्राज्य संस्थापित हो सका।

मुद्राराक्षस की रचना करके विशाखदत्त ने अपने समय के राजपुरुषों को यह उपदेश दिया है कि उनमें से कोई साहसी व्यक्ति, पारस्परिक भेद-भावों को भूल कर और मौर्यराज चन्द्रगुप्त का अनुकरण करके, देश में एक विशाल साम्राज्य का सङ्गठन करे और मुसल्मान आक्रमणकारियों को भी देश की सीमा से मार भगावे।

इस प्रकार के आदर्श को, और ऐसे उपयुक्त समय में, अपने नाटक में अङ्कित करके विशाखदत्त ने अपनी प्रतिभा की अनोखी छटा दिखाई है। जब हमारा ध्यान कवि के नाटक रचने के उद्देश की ओर जाता है तब यही कहना पड़ता है कि विशाखदत्त अपनी कोटि के पहले कवि हैं और सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। अफ़सोस, कवि के सङ्केत की ओर उस समय और बाद को भी, किसी ने ध्यान नहीं दिया। देश चौपट होगया, पर फूट न हटी।

देवीदत्त शुक्ल

व्रजभाषा का काव्य और शृङ्गार-रस।

हिन्दी-काव्य का दर्शन सबसे पहले उस समय हुआ जब संस्कृत-काव्य का ह्रास और भारत की राजनैतिक तथा सामाजिक अवस्था में विप्लवात्मक परिवर्तन हो रहा था। हिन्दी के कवि प्रायः भाट या चारण होते थे। इनका मुख्य काम था अपने आश्रयदाता राजा के वंश का गुण-गान करना और अपनी ओजस्विनी कविता से योधाओं को उत्तेजित और रणाभिलाषी बनाना। तत्कालीन विद्वानों में हिन्दी का विशेष आदर हो ही कैसे सकता था। उसके भविष्य का ज्ञान भी किसी को न था। हिन्दी-कविता यद्यपि ओजस्विनी और सबल हो चली थी, परन्तु उसमें विशेष रूप से ध्यान देने योग्य कोई बात न थी। हिन्दू-राज्य की सत्ता ज्यों ज्यों शिथिल होती गई त्यों त्यों कविता भी निर्बल अथ च निस्सार होती गई; यद्यपि ऐसा बिरला ही दरबार था जहाँ भाट या चारण न हों। परन्तु उनमें कोई विशेष रूप से उल्लेख्य नहीं।

विक्रम की नवीं शताब्दी से लेकर भारत में जो परिवर्तन हुआ उस पर सूक्ष्म रूप से विचार करना आवश्यक है। क्योंकि हिन्दी-साहित्य के साथ उसका घना सम्बन्ध है और उसके जाने बिना हिन्दी-साहित्य की उन्नति का तथा उसके रूप का ठीक ठीक ज्ञान होना कठिन है। प्रत्येक देश या जाति के इतिहास का सम्बन्ध उस देश या जाति के साहित्य से होता है, और कोई कारण नहीं कि यह नियम भारतवर्ष के लिए चरितार्थ न हुआ हो। इस लेख में हम पाठकों का ध्यान दो-चार ऐसी मुख्य मुख्य बातों की ओर आकृष्ट करना चाहते हैं जिनका घना सम्बन्ध हिन्दी-साहित्य से है।

भारत में, मुसलमानों के आगमन से कुछ पूर्व, धार्मिक क्षेत्र में पौराणिक हिन्दू-धर्म बल पकड़ने लगा था। उसमें व्यापकता के लक्षण भी स्पष्ट रूप से प्रकट हो गये थे। वैदिक धर्म के कर्मकाण्ड की जड़ को बौद्ध लोग पहले ही हिला चुके थे। उस जड़ को मज़बूत करने के लिए किये गये गुप्तवंशी राजाओं के सारे प्रयत्न निष्फल हुए। किन्तु समय के फेर से बौद्धधर्म भी लोगों को रुचिकर न रहा। उस पर वेदान्त ने विजय तो प्राप्त कर ली, पर उसमें जो संन्यास और वैराग्य के आदर्श थे वे जनता को कठिन और दुर्गम जँचे। अतएव, थोड़े ही समय में, पुराण-प्रतिपादित भागवत धर्म की उन्नति होने लगी। उत्तरोत्तर उसकी इतनी वृद्धि हुई कि चौदहवीं शताब्दी से लगभग अठारहवीं शताब्दी तक भारत में इस विषय का आन्दोलन ज़ोरों पर रहा। भागवत धर्म और भक्तिमार्ग से वैष्णव

मत का यद्यपि बहुत घना सम्बन्ध है तथापि इसका प्रभाव तत्कालीन अन्य मतों पर भी पड़ा।

नवीं से ग्यारहवीं शताब्दी तक भारत की राजनैतिक अवस्था अत्यन्त शोचनीय रही। इस समय उत्तरी और दक्षिणी साम्राज्यों का अन्त हो चुका था। भारत के वङ्ग, गुर्जर और कान्यकुब्ज-राजाओं के साम्राज्य-विधायक उद्योग निष्फल होचुके थे। इस समय भारत में कई छोटे छोटे राज्य थे। इन्हें आपसी झगड़ों से ही फ़ुरसत न थी। तुर्कों ने भी इसी समय धीरे धीरे, पैर फैलाना आरम्भ कर दिया। बारहवीं शताब्दी का अन्त होते होते उन्होंने सिन्धु-नदी से लेकर गोमती तक, सारा प्रदेश अपने अधिकार में कर लिया। अगली दो शताब्दियों में तुर्कों ने धीरे धीरे समग्र उत्तरी भारत और दो तिहाई के लगभग दक्षिण-देश को भी अधिकार-भुक्त कर लिया। इससे, हिन्दुओं की राजनैतिक स्वतन्त्रता तो चौपट हो ही गई, उनकी सामाजिक और धार्मिक स्वाधीनता पर भी गहरा धक्का लगा। साहित्य पर इसका बुरा प्रभाव पड़ा। निराशा-मरुभूमि में साहित्य-सरस्वती के विलुप्त होने की भी कुछ दिनों तक आशङ्का रही। इस समय गुण-ग्राहकता का बाज़ार इतना ठण्डा पड़ गया था कि उसमें आने का साहस सहृदयों को भी न होता था। इस सम्बन्ध में हमें फ़ारसी का एक शेर याद आता है—

चुनी क़हतसाली शुद अन्दर दमिश्क़।
कि यारां फ़रामोश कर्दन्द इश्क़॥

बाहरवालों के समागम से हमारी सामाजिक अवस्था भी डावांडोल थी। पवित्रता-प्रिय आर्यजाति बाहरी जाति के साथ एकाएक कोई सामाजिक सम्बन्ध कैसे स्थापित कर सकती थी। धन्य है उस समय के समाज-धुरन्धरों को जिन्होंने इस विकट समस्या को भी हल करने का प्रयत्न किया। पर तुर्कवंशी मुसलमानों के आक्रमण से यह काम अधूरा ही रह गया। इस समय हमारे सामाजिक जीवन का अन्त तो नहीं हुआ, हां शरीर सूख कर कांटा अवश्य हो गया।

बङ्गाल की अवस्था और प्रान्तों से कुछ भिन्न थी। स्वतन्त्र मुसलमानी राज्य वहां आरम्भ ही से स्थापित होगया था। दिल्ली के कई बादशाहों ने, समय समय पर, उसे अपने अधिकार में लाने की चेष्टा की तो, पर उन्हें स्थायी सफलता न हुई। इसका कारण यह था कि बङ्गाल के सुल्तानों ने हिन्दू-प्रजा से सहानुभूति प्राप्त कर ली थी। मुसलमानों की नीति, और प्रान्तों की अपेक्षा, बङ्गाल में कुछ नरम थी। अतएव हिन्दू-साहित्य की सेवा राजस्थान, दक्षिण और बङ्गाल में ही थोड़ी बहुत होती रही। क्योंकि दक्षिण और राज-स्थान में ही हिन्दू-नरेशों की वास्तविक सत्ता थी।

यहां पर हम हिन्दी-साहित्य के सम्बन्ध में कुछ विचार प्रकट करेंगे। अतएव उससे सम्बद्ध कुछ ऐतिहासिक विचारों को हृदयङ्गम कर लेना आवश्यक है। क्योंकि आगे, ऐतिहासिक विचारों के अनुसार, निष्कर्ष निकालना होगा।

जिन्होंने रामायण, महाभारत तथा पुराण आदि पढ़े या सुने हैं वे जानते हैं कि भगवान् के अवतार लेने का कारण "धर्म की ग्लानि" और "दुष्कृतों की प्रबलता" होना बतलाया गया है। असुरों के अत्याचार से पीड़ित पृथ्वी, गाय का रूप धारण कर, विधाता को दुखड़ा सुनाने गई। पृथ्वी की, और देवताओं की भी, यह हालत देख कर विधाता को दया आई। उन्होंने अपनी ओर से तथा देवताओं की ओर से भी प्रार्थना की। प्रार्थना स्वीकृत हुई और नये युग का आरम्भ हुआ। सातवीं शताब्दी से लेकर चौदहवीं शताब्दी तक हिन्दुओं पर अगणित आपत्तियाँ पड़ीं। पहले की तरह उन्हें असुर-निकन्दन की शरण लेनी पड़ी। रघुवंश (१०—३४, ३८), कुमार-सम्भव (३—२१) और माघ (१—७२,७३) आदि साहित्य-ग्रन्थों में ये भाव भरे पड़े हैं। पृथ्वीराज-विजय-काव्य के निर्माता जोनराज कवि ने तो ख़ासा उपालम्भ दिया है—

त्वयाऽपि नूनं कलिकाल-रात्रौ निद्राविधेयत्वमुपागतेन।
केशान् घनान् गर्जित-घूर्णनेन हित्वा स्थितं शान्तितया जिनत्वे॥

मनुष्यों के हृदय में इसी प्रकार के भाव स्थान पा रहे थे। अतएव उन्हें मर्यादा-पुरुषोत्तम रामचन्द्र और योगेश्वर श्रीकृष्णचन्द्र के चरित्र अधिक रुचिकर और आशाजनक ज्ञात हुए। इसीसे मनुष्यों की प्रवृत्ति भागवत धर्म की ओर सहज ही होगई।

आत्मिक कष्ट के समय उत्तरी भारत को दक्षिण से

श्रीशङ्कराचार्य द्वारा सहायता मिल चुकी थी। वहीं के श्रीरामानुजाचार्य, कृष्णोपासना के प्रचार के लिए, अग्रणी बने। यहाँ, उत्तरी भारत में, कई परिवर्तन भी होगये। पठान-साम्राज्य का अन्त हो गया। राजस्थान में मेवाड़ ने अच्छी उन्नति की। समयानुकूल सिद्धान्त ग्रहण करने के लिए जनता भी प्रस्तुत हो गई थी। इसी समय महात्मा रामानन्द दक्षिण से, बङ्गाल होते हुए, मध्यदेश में धर्म्म-प्रचार करने पधारे। धर्म को सबके ग्रहण करने योग्य बनाने के लिए बाबा गोरखनाथ आदि ने हिन्दी-भाषा में उपदेश देना आरम्भ किया था। अतएव रामानन्द जी ने भी हिन्दी-भाषा का ही सहारा लिया। आपके शिष्य कबीरदास जी ने ऐसा ज्ञानामृत बरसाया कि मरुभूमि में भी ज्ञान का सोता बह निकला। आपके ज्ञानसागर से सन्तुष्ट होकर गोस्वामी तुलसीदासजी ने रामचरितमानस की सृष्टि की।

सोलहवीं शताब्दी के आरम्भ में तैलङ्ग देश से महाप्रभु वल्लभाचार्य जी मथुरा के समीप ठहरे। आप बड़े भारी विद्वान् थे। शीघ्र ही आपकी प्रतिष्ठा होने लगी। आपके आगमन से व्रज में फिर प्रेम की यमुना बहने लगी। आज भी व्रज के मुख्य मुख्य स्थानों को देख कर हृदय पुलकित होजाता है। तब, वल्लभाचार्य जी का और उनके पुत्र भक्तशिरोमणि विट्ठलनाथजी का हृदय भावमय होगया तो इसमें आश्चर्य ही क्या। कविवर विहारीलाल ने ठीक ही कहा है—

सघन कुन्ज छाया सुखद, सीतल मन्द समीर।
मन ह्वै जात अजौं वहै, वा जमुना के तीर॥

कृष्ण-भक्त्यात्मक धर्म ग्रहण करने के लिए व्रजवासी तैयार थे ही। वल्लभाचार्य के उपदेश सुन कर उनके हृदय गद्‌गद हो गये। उनके भाव, काव्य के रूप में, प्रकट हो गये। व्रजमण्डल और व्रजवासी प्रेम में किसी से पीछे कैसे रहते? व्रजवासियों और व्रजबालाओं की भाव-लतिका, भाषा और जीवनचर्या रसमयी तथा लालित्य-पूर्ण थी। अतएव कविता के लिए व्रज से बढ़ कर उत्तम क्षेत्र और कौन हो सकता था। मुरली-मनोहर ने यहीं तो मधुर मुरली बजाई थी। आपके रस-रास का क्रीड़ा-स्थल भी यही स्थान था।

सच पूछिए तो हिन्दी-साहित्य की उन्नति और काव्य की सरसता व्रजवासियों की भावुकता का ही फल है। इसके पहले इने गिने दो-चार कवियों और काव्य-पुस्तकों को छोड़ कर हिन्दी में और था ही क्या। गोरख, कबीर और अन्य सन्त-महन्तों की रचना ज्ञान से पूर्ण है सही और काव्य में वह रत्न-सदृश तथा आदरणीय भी है, पर उसमें विशेष रस नहीं। इनकी रचना के कारण कविता-सरिता के आगे बह निकलने में सहायता भी खूब मिली, परन्तु वह रचना उच्च श्रेणी में नहीं रक्खी जा सकती। हिन्दी-काव्य तो कृष्ण के उपासक व्रजवासियों की सहृदयता और मधुर व्रजभाषा का ही प्रसाद है।

हिन्दी-कविता की वृद्धि का कारण राजस्थान के मेवाड़-वंश की उन्नति भी है। इससे हिन्दुओं के हृदय आशान्वित होकर भाव-पूर्ण कविता लिखने की ओर झुके। राना संग्रामसिंह की हार से कविता की उन्नति में ठेस लग जाती, यदि व्रज के समीप आगरे में सहृदय सम्राट् अकबर राजधानी को न उठा लाते। राजधानी और राजदरबार का व्रजमण्डल के निकट आजाना व्रजभाषा की उन्नति के लिए दृढ़ कारण होगया। अकबर के दरबार और दरबारियों में साहित्य की अच्छी चर्चा तथा कवियों और काव्य की ख़ासी चहल-पहल रही। साहित्य-सेवा की इच्छा से, फ़ारस और अन्यान्य देशों से आ आकर, सहृदय कवि राजधानी में बस गये। फ़ारसी आचार-विचार, भाव और काव्यशैली की उन्नति व्रजभाषा और कविता के लिए सहायक हुई। व्रजवासी सहृदय, प्रेमी, सौन्दर्य के उपासक, शृङ्गार के रसिक और माधुर्य के मधुकर थे। फ़ारसी के प्रेमी भी ऐसे ही थे। इनके बीच एक प्रकार की मित्रता भी होगई। सम्राट् और कुछ मुख्य सचिव, सेनानायक एवं राजकवि व्रजभाषा के प्रेमी होगये। इनकी देखा-देखी औरों में भी व्रजभाषा का आदर बढ़ा। छोटे छोटे राजाओं और नवाबों के दरबारों में भी व्रजभाषा और हिन्दी-काव्य की पहुँच होगई। क्योंकि बड़े दरबारों की नक़लें ही तो छोटी बैठकें हैं। भाषा-कवियों के भाग्य खुल गये। वे राजसी ठाट-बाट से रहने लगे। इनका आदर देख और लोग भी हिन्दी-कविता और व्रजभाषा का अध्ययन, ध्यान लगा कर, करने लगे। क्योंकि इससे मनोविनोद तो होता ही था, साथ ही आर्थिक

लाभ की भी आशा थी। भक्ति और शृङ्गार-विषयक कविता कुछ हिन्दू ही न करते थे, मुसलमानों ने भी इस ओर ध्यान दिया है। कवि होलराय ने एक प्रकार से ठीक ही कहा है—

दिल्ली ते न तख़्त ह्वै है बख़्त ना मुग़ल कैसो
ह्वै है ना नगर बढ़ि आगरा नगर ते।
गङ्ग ते न गुनी तानसेन से न तानबाज
मानते न राजा औ न दाता बीरबर ते॥
ख़ान ख़ानख़ाना ते न नर नरहरि ते न
ह्वै है ना दिवान कोऊ बेडर टडर ते।
नवो खण्ड सात दीप सात हू समुद्र पार
ह्वै है ना जलालदीन शाह अकबर ते॥

ब्रजभाषा के काव्य और उसकी उत्पत्ति पर विचार हो चुका। अब देखना है कि वह काव्य कैसा है। ब्रजभाषा में कृष्णभक्त्यात्मक और ख़ास कर शृङ्गार-रस की कविता है। डाक्टर ग्रियर्सन आदि कुछ विद्वानों की और तदनुकूल विचार रखनेवाले कुछ भारतीय विद्वानों की भी समझ में शृङ्गार-रस का प्राधान्य तत्कालीन भोग-विलासिता का द्योतक है; और इसका प्रभाव हमारे विचारों पर तथा भारतीय आचरण पर बुरी तरह पड़ा है। अतएव इस ओर भी सावधानी से विचार कर लेना आवश्यक है।

साहित्यशास्त्रियों ने काव्य की परिभाषा कई प्रकार की बनाई है। परन्तु उनके मुख्य आशय में विशेष अन्तर नहीं। भावलहरी, पदलालित्य और सुन्दर शब्दावली की गूढ़ और मृदु मैत्री से काव्य की उत्पत्ति हो जाती है। भाव और रस के मुख्य भेदों को कवियों ने गिनाया है। परन्तु वास्तव में इनकी संख्या करना आकाश की तारावली गिनना है। सहृदय और तरङ्गित हृदयों में, पात्र के अनुकूल, ये उत्पन्न होते हैं; परन्तु इनको वाक्य-तन्तुओं से बाँध लेना कवियों ही का काम है। किन्तु जातीय काव्य का उद्भव तभी होता है जब एक ही काल में बहुत से व्यक्तियों के हृदयान्तर्गत समान भावों की जागृति होती है। यह अवस्था समय-विशेष की सामाजिक, आत्मिक, राजनैतिक तथा अन्यान्य सर्वव्यापक कारणों के योग से उपस्थित हो जाती है। अतएव जातीय साहित्य और काव्य, कालक्रम के अनुसार, स्थिर किया जाता है। संसार की सभी जातियों, उनका कार्यक्रम और ऐतिहासिक संसरण एक-सा नहीं होता। सबमें किसी न किसी प्रकार की विशेषता अथवा भिन्नता अवश्य रहती है। सब फूलों और लताओं के रङ्ग-रूप एक-से नहीं होते। उनके गुणों और सौरभ में भी समता या सादृश्य नहीं होता। इसी कारण, प्रत्येक जाति का साहित्य भी भिन्न भिन्न होता है। यदि किसी देश का साहित्य बुरा है तो उससे यह फल निकलता है कि उस देश की साधारण अवस्था अवश्य बुरी होगी। साहित्य की हीनता पर शोक प्रकट करने के पहले तत्कालीन इतिहास और सभ्यता पर दो आँसू डालना न्याय-सङ्गत और स्वाभाविक है। इसी प्रकार साहित्य की श्रेष्ठता और परिपूर्णता से जातीय श्रेष्ठता और परिपूर्णता का भी अनुमान किया जा सकता है।

हम पहले लिख चुके हैं कि पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दियों में भागवत धर्म की उन्नति हो रही थी; परन्तु भक्तिमार्ग के वैष्णव-सम्प्रदाय की प्रबलता थी। यही भाव मनुष्यों के हृदयों को आन्दोलित कर रहे थे। इन्हीं भावों का विकास कवियों की अमृतमयी भाषा में हुआ। ब्रजभूमि में पहुँच कर वैष्णव धर्म ने और भी बल प्राप्त किया और इस पर एक विशेष रङ्ग चढ़ गया। ब्रजनायक श्रीकृष्णचन्द्र के जीवन-चरित्र का प्रथमाङ्क यहीं पर खेला गया था और वही रहस्य यहाँ के निवासियों के हृदयों में प्रतिध्वनित हो रहा था। अतएव, उनकी रुचि और भक्ति उस भाव और उस कला की ओर विशेष रूप से झुक गई। जो सज्जन इस रस के काव्य को, शृङ्गार-रस से संयुक्त होने के कारण, भोगविलासिता का प्रतिबिम्ब समझते हैं वे भगवद्भक्तों की शृङ्गारमय उपासना तथा उनके भाव की पवित्रता की ओर सम्यक् ध्यान नहीं देते। देखिए, भारतवर्ष में व्यासजी के सदृश कोई सम्यक् दृष्टिवान् और महाकवि नहीं हुआ; और यह बात भी प्रसिद्ध है कि उनके काव्य में भागवत का स्थान सबसे ऊँचा है। श्रीमद्भागवत में "रासपञ्चाध्यायी" दूध में मक्खन के तुल्य है। भक्त लोगों का हृदय उसे पढ़ अथवा सुन कर आज भी गद्गद हो जाता है। ऐसे महर्षि के भक्तमनोहारी और रोमाञ्चकारी काव्य को व्यभिचार और भोगविलासिता का प्रतिपादक और प्रचारक समझना केवल दृष्टि-दोष और ज्ञान-दोष ही है। इन्हीं महात्मा के काव्य

का स्तब्ध स्रोत, अनुकूल समय पाने पर, व्रजभूमि में पुनः प्रवाहित होगया। इस काव्य को नवीन काव्य और इस भाव को नवीन भाव कहना भूल है। यह तो उसी वंशी का प्रतिनाद है जिसको व्यासजी शब्दों और वाक्यों में भर कर, भारतीयों के शोक और सन्ताप के नाश के लिए, छोड़ गये थे। व्रजभूमि तो पूर्णकला-प्रवीण मुरली-मनोहर की रङ्गस्थली ही थी; उसका कहना ही क्या। वङ्ग और विहार में जयदेव, विद्यापति ठाकुर और चण्डीदास भी इस भाव से उन्मत्त होकर तन्मय हो गये थे। उनके गीतों और पदों को श्रीचैतन्य महाप्रभु, नेत्रों में आँसू भर भर कर, गाते थे। भारत-वासियों को जब तक अपने आत्मीयत्व का स्मरण रहेगा वे इन कवियों और इनके काव्यों का मान और अभिमान करते रहेंगे। किसी को यह काव्य बुरा और दुराचार-युक्त भले ही देख पड़े, पर भक्तों को तो यह प्राणों से भी प्यारा है। कविवर विहारीलाल भी इसकी गवाही देते हैं—

व्रजवासिन को उचित धन, सो धन रुचित न कोय।
सुचित न आयो सुचितई, कहो कहाँ ते होय॥

इस पर यदि कतिपय न्यायपञ्चानन हमारे कथन को भक्तों के धार्मिक काव्य के लिए ही उपयुक्त समझें, औरों के लिए नहीं, तो हम इस शङ्का पर भी सूक्ष्म रूप से विचार कर लेना आवश्यक समझते हैं।

हिन्दी-काव्य की सृष्टि पन्द्रहवीं से सत्रहवीं शताब्दी तक हुई है। कतिपय सज्जन इसे धार्मिक और मानुषिक दो मुख्य भागों में विभक्त करते हैं। धार्मिक काव्य मुख्यतः वह है जिसका प्रादुर्भाव भक्तों के द्वारा हुआ। इस श्रेणी में तुलसी, सूर, नन्ददास, कबीर इत्यादि की गणना है। दूसरा अर्थात् मानुषिक काव्य वह है जिसे राजकवियों तथा भक्तेतर मनुष्यों ने लिखा है। इस श्रेणी में गङ्ग, मतिराम, बिहारी और देव आदि कवि माने जाते हैं। इन दो मुख्य श्रेणियों के अन्तर्गत और भी अनेक भेद बतलाये गये हैं, जिनमें दो-चार जानने लायक हैं। धर्म-काव्य में एक तो सन्तों का ज्ञानात्मक, दूसरे भक्तों का भक्ति और राम-कृष्ण-लीलात्मक भेद है। इसी प्रकार मानुषिक काव्य में शृङ्गार-रसात्मक, सदाचार-शिक्षक, और वीर काव्य ये तीन भेद विशेष हैं। हमारी सम्मति में काव्य का यह विभाग उत्तम नहीं। यहाँ हम इसके मुख्य दोषों का सङ्केत कर देना अनुचित नहीं समझते। प्रथम दोष तो यह है कि इसमें एक श्रेणी के गुण दूसरी श्रेणी में विद्यमान हैं। दृष्टान्त के लिए नन्ददास-कृत रासपञ्चाध्यायी, विद्यापति ठाकुर-कृत पदावली आदि ग्रन्थ लीजिए। इनमें शृङ्गार-रस का इतना आधिक्य है कि इन्हें हम धर्म-काव्य से निकाल कर शृङ्गार के अन्तर्गत कर दे सकते हैं। अन्तर यह हो जायगा कि ये कवि देव, मतिराम और बिहारी की श्रेणी में आ जायँगे। दूसरा दोष यह है कि यह विभाग बहुत कुछ अर्गलाबद्ध-सा है। दृष्टान्त के लिए तुलसीदासजी का काव्य, जो एक प्रकार से किसी भी श्रेणी में नहीं आता। यह धर्म-ग्रन्थ उसी प्रकार का है जैसा कि महर्षि वाल्मीकि का आदिकाव्य। परन्तु क्या वाल्मीकि की रामायण को धर्मग्रन्थों में रखना संस्कृतज्ञ उचित समझते हैं? क्या वे इसे इतिहास की श्रेणी में नहीं रखते? फिर तुलसीदास की रामायण और विनय-पत्रिका, काव्य की दृष्टि से, एक ही श्रेणी के अन्तर्गत नहीं। तीसरा दोष यह है कि इसमें नायिका-भेद आदि विषयक ग्रन्थ भी मिला लिये गये हैं। दृष्टान्त के लिए मतिराम-कृत रसराज, पद्माकर-कृत जगद्विनोद। यह ठीक है कि ये कवि काव्य करने बैठे थे, परन्तु इनका मुख्य आशय नायक-नायिका-भेद, हाव-भाव-वर्णन आदि भी था; अतएव इनकी सरस्वती स्वतन्त्र और अप्रतिबद्ध न सही, किन्तु कतिपय भाव-विशेषों को उद्भासित करने में व्यग्र हो पड़ी। इससे इनको निर्धारित स्रोत में बलात् बहना ही पड़ा। अस्तु।

हिन्दी-काव्य के विभाजन की किसी नई शैली पर हम विचार नहीं करना चाहते। हम तो यह आशा करते हैं कि साहित्य-मर्मज्ञ यूरोपियनों की बताई हुई शैली का अवलम्ब छोड़ कर इस पर स्वतन्त्र रूप से विचार किया जाय। क्योंकि यूरोपियनों की शैली सन्तोषजनक नहीं है। हिन्दी के माध्यमिक काव्य तथा व्रजभाषा के काव्य पर विचार करते समय इस पर भी दृष्टि रखनी चाहिए कि इस स्रोत का मूल वैष्णव भगवद्भक्ति में है, राजसभाओं में नहीं। यह काव्य न तो

भाट और चारणों की सृष्टि है और न "भोगविलासिता" की उपज। वास्तव में व्रजभाषा का काव्य व्रजकिशोर, राधारमण, नटवर, श्रीकृष्णचन्द्रजी की लीलाओं से प्रस्फुरित हुआ है। इनकी लीलाओं में जो वैचित्र्य है वह व्रजभाषा के काव्य में थोड़ा बहुत प्रतिबिम्बित है। अतः जिस प्रकार कृष्णलीलाओं पर विचार किया जाता है उसी प्रकार इन कवियों के भावों पर भी विचार होना चाहिए। दूसरी बात यह है कि व्रजभाषा के काव्य पर श्रीमद्भागवत तथा वेदव्यास का बहुत प्रभाव पड़ा है। अतएव इस ग्रन्थ के प्रकाश में उस पर विचार करना ऐतिहासिक दृष्टि से न्याय-सङ्गत होगा। भागवत के दशम स्कन्ध में लौकिकता और अलौकिकता दोनों विद्यमान हैं। वही बात भाषा-काव्य में भी है। इसलिए इसको केवल एक दृष्टि या एक ही भाव से देखना अपर्य्याप्त और अपूर्ण होगा। यह भी न भूलना चाहिए कि इस काल की भाषा में गद्य का अभाव था। प्रत्येक मनुष्य, चाहे वह वास्तविक कवि हो या न हो, अपने भले-बुरे विचारों को छन्दोबद्ध करने को बाध्य था। कवित्व एक ईश्वर-दत्त शक्ति है जो हर एक व्यक्ति में नहीं पाई जाती, और काव्य में भावोद्घाटन करना सर्वसाधारण के सामर्थ्य से बाहर है। अतएव, काव्य पर समालोचना करते समय, रँगे और गढ़े कवियों को उसके अन्तर्गत कर लेना कूड़ा-करकट को काव्य समझना होगा। काव्य का स्थान ऊँचा है। उसको दूषित करने से ऊटपटांग समालोचना होने की सर्वदा आशङ्का है। उस पर विचार करते समय देख लेना चाहिए कि किस वास्तविक कवि की कहाँ तक पहुँच है और काव्य की उत्ताल-तरल-तरङ्ग-माला किस शिखर तक कब पहुँची। इस पर भी जो सज्जन शृङ्गार का नाम लेते ही नाक-भौं सिकोड़ते हैं और उससे दूर भागते हैं उनसे हम प्रार्थना करते हैं कि वे परमात्मा से सविनय सहृदयता का दान मांगें और ज़रा भक्त की दृष्टि से उस पर विचार करने की कृपा करें।

इन विचारों पर दृष्टि रखते हुए यदि हिन्दी-काव्य की आलोचना की जाय तो स्पष्ट ज्ञात हो जायगा कि उसमें न तो शृङ्गार-काव्य की इतनी अकथनीय अधिकता है और न शृङ्गार-रस ही इतना बुरा है कि उससे भय उत्पन्न होने की शङ्का हो। यदि प्रेम और शृङ्गार-रस को आप निकाल दें तो क्या काव्य की सरसता उतनी रह सकती है और क्या ऐसा करना हिन्दी के माध्यमिक साहित्य को निर्जीव करने के सदृश नहीं? मनुष्य के हृदय में प्रेम के सदृश कोई भाव नहीं और साधारण मनुष्य के लिए सौन्दर्य्य से बढ़ कर कोई उपासना नहीं। यह प्रेम, स्वार्थ और कुत्सित विचारों से दूषित होकर, कुपात्र द्वारा भयानक और राक्षसी भाव ग्रहण कर लेता है। परन्तु ऐसी अवस्था में उसे 'प्रेम' न कह कर 'विषय-वासना' कहना ठीक होगा। इस भेद को हिन्दी-भाषा के कवि भली भाँति समझते थे और यद्यपि उसमें परकीया तथा अन्य नायिकाओं के अथवा उनके प्रति भावों का भी वर्णन किया गया है, परन्तु वह विषय के वैज्ञानिक अथवा यों कहिए कि अन्य अङ्गों की पूर्ति के लिए है, अनुकरण के लिए नहीं। देखिए न, वात्स्यायन ने काम-सूत्र की रचना करते हुए स्पष्ट कह दिया है—

धर्मं अर्थञ्च कामञ्च प्रत्ययं लोकमेव च।
पश्यत्येतस्य तत्त्वज्ञो न च रागात्प्रवर्तते॥
तदेतद्ब्रह्मचर्य्येण परेण च समाधिना।
विहितं लोकयात्रार्थं न रागार्थोऽस्य संविधिः॥
असङ्गृहीतभार्य्या च ब्रह्मस्त्रीं यश्च गच्छति।
सूतकं सततं तस्य ब्रह्महत्या दिने दिने॥

देव कवि ने सुजानविनोद में इसे और भी स्पष्ट कर दिया है—

विषयी जनं व्याकुल विषय रेखैं विष न पियूष।
सीठी मीठी सी उन्हें जूठी यदपि मयूष॥
× × ×
यह विचारि प्रेमीन को विषयी जन को नाहिं।
विषय बिकाने जनन की प्रेमी छियत न छाँहिं॥
जप तप व्रत ऋतु नेम सों प्रेमी जन नर ख्यात।
पूरन प्रेम प्रसन्न मन ब्रह्मानन्द समात॥

यह तो हुई केवल साधारण और सांसारिक दृष्टि, पर यदि आप इसे कृष्ण-भक्त की दृष्टि से देखें तो परकीया आदि नायिकायें गोपों की प्रेममदमाती गोपिकायें हैं। श्रीकृष्णजी ने इनके साथ रासक्रीड़ा की। अतः कवियों ने भी अपनी कीर्तन-शैली के अन्तर्गत इस विषय को कर

लिया। इस पर राजा परीचित ने शङ्का की। तब श्रीशुकदेव ने कहा—

> यत्पादपङ्कजपरागनिषेवतृप्ता
> योगप्रभावविधुताखिलकर्मबन्धाः।
> स्वैरं चरन्ति मुनयोऽपि न नह्यमाना-
> स्तस्येच्छयाऽऽत्तवपुषः कुत एव बन्धः?

यह विषय अलौकिक है। इसको अछूता रखना साहित्य-सेवियों का परम धर्म है। हिन्दी के कवियों ने अपने काव्य के नायक और नायिका को प्रायः स्पष्ट बतला दिया है और इस पर भी यदि कोई अपने दृष्टिदोष से अन्यथा समझे तो इसमें उनका क्या दोष है। देखिए न—

> सत्य रसायन कविन को श्री राधाहरि सेव।
> × × × ×
> माया देवी नायका नायक पूरुष आपु।
> सबै दम्पतिन में प्रकट देव करै तेहि जापु॥
> वरणि नायका-नायकनि रच्यो ग्रन्थ मतिराम।
> लीला राधारमण की सुन्दर यश अभिराम॥
> × × × ×
> या अनुरागी चित्त की गति जानत नहिँ कोय।
> ज्यों ज्यों बूड़ै स्याम रँग त्यों त्यों उज्ज्वल होय॥
> तजि तीरथ हरि राधिका, तनु दुति कर अनुराग।
> जेहि ब्रज केलि निकुञ्ज मग पग पग होत प्रयाग॥
>
> बिहारी

इस प्रकार के अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं, परन्तु हमारे कथन के लिए यही पर्य्याप्त हैं। तो भी इस अलौकिक प्रेम की टिप्पणी में परकीया ऐसी नायिका का प्रेम-विषयक सवैया सुन कर फिर आगे चलिए—

> क्यों इन आँखिन सो निरसङ्क ह्वै
> मोहन को तन पानिय कीजै।
> नेकु निहारे कलङ्क लगै इहि
> गाँव बसे कहु कैसक जीजै?
> होत रहे मन यों मतिराम
> कहूँ बन जाय बड़ो तप कीजै।
> ह्वै बनमाल हिये लगिए अरु
> ह्वै मुरली अधरारस पीजै॥

अब दूसरा प्रश्न यह है कि इस काव्य का प्रभाव सर्वसाधारण के हृदय पर कैसा पड़ा? इससे क्या हानि हुई? हम सुनते सुनते थक गये कि इस काव्य का प्रभाव युवकों पर बुरा पड़ा। परन्तु हमें इसकी पुष्टि के लिए अभी तक कोई प्रमाण नहीं मिला। इस काव्य से हमारे सामाजिक जीवन में कौन सी बुराई उत्पन्न होगई? हमारी समझ में इससे कोई हानि-विशेष नहीं हुई। हाँ, इससे व्रजभाषा के काव्य में मधुरता और सरसता अधिक बढ़ गई, जिससे उसका और कृष्ण-भक्ति का प्रचार खूब हुआ। शृङ्गार-रस हिन्दी-साहित्य का कलङ्क नहीं, वह तो उसका शिरोभूषण है।

कतिपय सज्जन कह बैठते हैं कि हिन्दी-साहित्य शृङ्गार-रस से इतना भरा पड़ा है कि उससे जी ऊब जाता है और उसमें विषय-वैचित्र्य का शोचनीय अभाव है। उनकी यह धारणा हिन्दी-साहित्य का समुचित प्रकाश न होने के कारण है। इसमें न्यूनाधिक रूप में, नवों रसों का समावेश है। योरोपियन साहित्य के पढ़नेवालों को यह शङ्का विशेषतया इस कारण होती है कि उसमें मनुष्य और प्रकृति को एक दूसरे से भिन्न माना है। अतः दोनों एक दूसरे से बिलकुल पृथक् प्रतीत होते हैं। परन्तु, हमारे देश में, मनुष्य और प्रकृति विभिन्न नहीं। दोनों का पारस्परिक योग ही ठीक माना गया है। मनुष्य की श्रेष्ठता पर हमारे धर्म और शास्त्रों ने इतना ज़ोर दिया है कि उसके सामने प्रकृति दब सी जाती है। अतः हमारे कविगण जब कभी नैसर्गिक और प्राकृतिक विषयों का वर्णन करते हैं तब उनका तात्पर्य नायक अथवा नायिका, या यों कहिए कि पुरुष और स्त्री के गुणों को और भी उत्कर्षित करना और प्रकृतिवत् मानसिक भावों का तारतम्य दिखाना होता है, उसे मनुष्य की दूसरी प्रेयसी अथवा नायिका की सौत बनाना नहीं। इस भाव के लिए न व्रजभाषा का दोष है और न कवियों का। क्योंकि यह हमारे मानसिक, धार्मिक और सामाजिक जीवन का स्वाभाविक फल है। शोक करने की इसमें कोई बात नहीं और न कोई अपूर्णता है। प्रत्युत यदि आप सूक्ष्म दृष्टि से विचार करेंगे तो इसमें पूर्णता ही देख पड़ेगी।

इस लेख को और अधिक बढ़ाना अनावश्यक है।

इतने पर भी यदि प्रेम और श्रृङ्गार के रस और मर्म में किसी को सन्देह रह गया हो तो हम उसकी सेवा में वही उत्तर देते हैं जो कि टाँय टाँय करनेवाले उद्धव को व्रज-वनिताओं ने दिया था—

मति अति आपकी अवल अबला सी लगै,
सागर-सनेह कहो कैसे पार पावेगी ?
खोलिये न जीह अरु लीजिये न नाम इत,
बलदेव व्रजराज जू की सुधि आवेगी।
सुनतहि प्रलय-पयोधि माँहि एक ऐसी
कहर करनहारी लहर सिधावेगी।
राधे-दग-सलिल-प्रवाह माँहि आज ऊधो,
रावरे समेत ज्ञान-गाथा बहि जावेगी॥

रामप्रसाद त्रिपाठी

रामदास की अद्भुत क्षमा।

(१)

महापुरुष के सूक्ष्म कार्य भी करते उसका प्रकट महत्त्व,
साधुचरित—जीवन-घटना में रहता निहित धर्म का तत्त्व।
पर-हित पर रहती है उनकी सेवक-सम स्वाभाविक दृष्टि,
करते वे कल्याण जगत् का रच आदर्श-कर्म की सृष्टि।

(२)

दिव्य शक्ति के दुरुपयोग से पहुँचाते न किसी को कष्ट,
प्रत्युत, दीन-सहायक बन कर करते उनके क्लेश विनष्ट।
करे नहीं कर्त्तव्य-कर्म में कभी व्यक्तिगत बात प्रवेश,
न्याय-नीति-समता-संयुत है रहता उनका शुभ उद्देश।

(३)

श्रीसमर्थ गुरु रामदास की पढ़ कर जीवन-घटना एक,
होगा कहो न किसके मन में मञ्जुल भावों का उद्रेक।
शिष्यवर्गयुत सज्जनगढ़ को जाते थे वे तपोनिधान,
बीत चुका मध्याह्नकाल था किन्तु न किया कहीं जलपान।

(४)

आस-पास ही खेत खड़े थे शस्यों से समूल सम्पन्न,
उधर बुभुक्षा-वारणार्थ था शिष्यों को भी वाञ्छित अन्न।
गुरु-निदेश पाकर जुआर के भुट्टे भून किये तैयार,
बैठ समर्थ सहित आसन पर था भोजन का किया विचार।

(५)

त्योंही क्षेत्रपाल ने आकर श्रीसमर्थ को समक्ष प्रधान,
आड़े हाथों लिया, पीठ पर फिर कोड़ों की तोड़ी तान।
टूट पड़ा शिष्यों का दल भी उस किसान पर करके क्रोध,
गुरु-अपमान देख कर उसको रह सकता था कैसे बोध ?

(६)

किन्तु क्षमानिधि गुरु ने रोका शिष्यवर्ग को ही तत्काल,
समझा कर, "पर-द्रव्य-हरण का होता है अपराध विशाल"।
क्षेत्रपाल सकुशल घर आया गये सतारे को गुरुवर्य,
करते रहे शिष्यगण मन में क्षमाशीलता पर आश्चर्य।

(७)

स्नान कराते समय शिवाजी स्वयं चिह्न उनके अवलोक,
सुचकित हुए, हेतु भी पूछा, छाया मन में भारी शोक।
कारण किन्तु न कुछ भी जाना, धारण कर समर्थ ने मौन,
दिया न पता कि होगा उनका दण्डनीय अपराधी कौन ?

(८)

पर सद्गुरु की दशा देख यों मिले शिवाजी को कब शान्ति ?
पहुँचे गुरु-विश्राम-भवन में मिटी न शिव के मन की भ्रान्ति।
करके प्रबल प्रयत्न लगाया पथ-घटना का पूरा शोध,
सोच मूर्खता क्षेत्रपाल की उमड़ा उर में अति ही क्रोध।

(९)

मुसकें बाँध त्वरित लाने का दिया सेवकों को आदेश,
देखा गया उसी क्षण उनका अति अपूर्व ही कोपावेश।
शयन-भवन में श्रीसमर्थ ने सुने कोपमय वचन प्रचण्ड,
कहा, "शान्ति से बुलवा लो, फिर मेरे मत से देना दण्ड"।

(१०)

शिवा छत्रपति निज गुरु के थे तन, मन, धन से पूरे भक्त,
गुरु-निदेश-प्रतिकूल कार्य को करते थे सदैव ही त्यक्त।
पूज्य-वचन से राज-कोप भी क्षण भर में था हुआ विलीन,
फिर दरबारीगण के सम्मुख हुआ उपस्थित दोषी दीन।

(११)

रामदास स्वामी का उसको ज्योंही ज्ञात हुआ वृत्तान्त,
भय से कँपने लगे अङ्ग सब होकर संज्ञाशून्य नितान्त।
साधारण वैरागी गिन कर जिसकी धुन डाली थी देह,
बैठे वही शिवाजी के थे पूज्यपाद गुरु प्रभुता-गेह।

(१२)

घोर दण्ड के ध्यान-मात्र से रक्तहीन था उसका गात्र,
करके भूल बना बेचारा क्रूर कोप का पूरा पात्र।
आर्त्तस्वर से त्राहि त्राहि कर किन्तु लिया जब चरण प्रसाद,
शुभाशीष दे श्रीसमर्थ ने किया अभय उसको साह्लाद।

(१३)

इतने ही से क्षमाशील गुरु हुए नहीं मन में सन्तुष्ट,
क्षमा दिला कर किया शिवाजी को भी फिर उससे अविरुष्ट।
पुरस्कार में दिलवाया वह खेत सदा को उसको दान,
देख देख यह दया-द्रवित था, नत था उपकृत दीन किसान।

(१४)

देख विचित्र दण्ड थे चित्रित सभासीन सारे सरदार,
सच है साधु किया करते हैं अपकारी का भी उपकार।
उपकारी के प्रति देखे हैं करते जन बहुधा उपकार,
किन्तु सन्त ही उपकृत करके सहते हैं सहर्ष अपकार।

गोकुलचन्द्र शर्मा

पत्र-सम्पादन-कला।

वैसे तो पत्र-सम्पादन-कला या अख़बार-नवीसी एक ऐसा काम है जो जन्म भर सीखा जाता है; परन्तु, फिर भी, जो लोग इसके मूल सिद्धान्तों को समझ लेते हैं वे हर तरह के पत्र का सम्पादन, कुछ न कुछ सफलता-पूर्वक, कर सकते हैं। इस विषय का जाननेवाला कम पढ़ा-लिखा होने पर भी बड़े बड़े पढ़े-लिखों के कान काट सकता है; लेकिन बड़े बड़े पढ़े-लिखे—किन्तु इस विषय से अनभिज्ञ—सज्जनों को अगर कोई पत्र दे दिया जाय तो उन्हें इस काम में उतनी सफलता नहीं होती; कम से कम कुछ वर्षों तक तो—जब तक काफ़ी अनुभव न हो जाय—कई तरह की त्रुटियाँ हमेशा हो जाया करती हैं। जो फ़र्क़ विज्ञान के सूक्ष्म सिद्धान्तों को समझने और उनको वास्तविकता में परिणत करने में है वही विद्वत्ता और पत्र-सम्पादन-कला में है। जो सिद्धान्त एक प्रोफ़ेसर के मस्तिष्क में धरे धरे सड़ा करते हैं—एक मैकेनिकल इञ्जीनियर उनको पूरी तौर से न जानता हुआ भी अनायास ही उनके अनुसार काम कर डालता है। प्रोफ़ेसर अपने दिमाग़ की बदौलत, और कारीगर अपने हाथ-पैरों की बदौलत नाम हासिल करता है। विद्वान् प्रोफ़ेसर वायुयान बनाने के सिद्धान्तों को पुस्तकों में पढ़ कर ख़ूब समझ चुका है; अल्पशिक्षित कारीगर को अपने काम से काम है, पुस्तक-विशेष का ज्ञान उसे हो चाहे न हो। इसी लिए यह कहा जा सकता है कि पत्र-सम्पादन में उतनी योग्यता अपेक्षित नहीं जितनी पुस्तक-सम्पादन या पुस्तक-प्रणयन में अपेक्षित है।

बड़े भारी विद्वान् और गम्भीर-हृदय सज्जन अकसर पत्र-सम्पादन-कला के आचार्य नहीं हो पाते, क्योंकि उनके लेख उनके विचारों की गम्भीरता से कुछ दबे से रहते हैं। सफल पत्र-सम्पादक होने के लिए कुशाग्रबुद्धि, चटपटापन, भाषा पर पूरा अधिकार, सर्वतोमुखी प्रतिभा और विशेष रूप से उन्नत विवेचना तथा विचारशक्ति की आवश्यकता है—चरित्र-बल भी जितना हो उतना ही अच्छा, क्योंकि इसके बिना दूसरे लोगों के मन पर काफ़ी प्रभाव पड़ना कठिन है। अब इन गुणों में से जिसमें जितने और जहाँ तक हों उसको उतनी ही सफलता मिलती है। सम्पादक जितना बहुज्ञ हो उतना ही अच्छा, यानी उसको इधर-उधर की—धर्मशास्त्र से लगा कर ढोला-मारू के क़िस्से तक की—बातें ख़ूब मालूम होनी चाहिए, चाहे वह उन बातों की तह तक भले ही न पहुँच सका हो। किसी विषय की तह तक पहुँचना विद्वानों का काम है जो परिश्रमपूर्वक अध्ययन और मनन करते हैं। हर एक विषय का कुछ न कुछ—काम चलाऊ—ज्ञान रखना सम्पादक के लिए अनिवार्य है।

विद्वान् और सफल ग्रन्थकार की कृति साहित्य-संसार में सदा अमर रहती हुई उस ग्रन्थ-

कार की कीर्ति-ध्वजा को फहराया करती है; सफल पत्र-सम्पादक का काम थोड़े ही दिनों की वाह-वाही के बाद भुला दिया जाता है। इस दृष्टि से देखा जाय तो ग्रन्थकार का काम अधिक महत्त्व का हुआ। पर, फिर भी, अकसर यह देखने में आता है कि जो लोग उच्च कोटि की ग्रन्थ-रचना करने की क्षमता रखते हैं वे, ग्रन्थ-रचना का काम छोड़ कर, दैनिक या साप्ताहिक पत्रों के सम्पादन करने, अथवा सम्पादन में सहायता करने, का भार अपने ऊपर ले लेते हैं, चाहे भले ही इस काम में वे उतनी सफलता-प्राप्ति न कर सकें जितना कि उनका नाम है, या जितनी कि उनसे आशा की जाती है। ग्रन्थ-रचना जैसे महत्त्व के काम को छोड़ कर क्यों ये लोग इधर झुक पड़ते हैं? जवाब साफ़ है, और वह यही कि 'विन टका टकटका-यते।' अख़बार-नवीसी के काम में इधर महीना हुआ उधर पहली तारीख़ को अपनी बँधी हुई तनख़्वाह मिल गई। ग्रन्थ-रचना के काम में 'तुर्त दान महाकल्यान' की कहावत चरितार्थ नहीं होती। कई महीने में एक अच्छी पुस्तक लिखी जाती है, और तब तक बनिये के दाम चढ़ते रहते हैं। चार महीने में ४०० सफ़े की उत्तम से उत्तम मौलिक पुस्तक लिख कर ठीक की; मुश्किल से किसी प्रकाशक-पुङ्गव ने स्वीकार करने की उदारता दिखलाई; जब तक उनके भेजे हुए ४००) आवें आवें तब तक बनिये ने ४५०) का हिसाब जोड़ कर रुक्क़ा भेज दिया! वाह, क्या अच्छा रुक्क़ा है! पुरानी चाल के पीले अधमरे स्वदेशी काग़ज़ पर बिलकुल स्वदेशी स्याही से पाई पाई का हिसाब दर्ज है। देखने में छोटा है, बेजान है, पर ग़रीब ग्रन्थकार की जान आधी करने के लिए काफ़ी है! यह सब उन्हीं के विषय में समझिए जो मिहनत और मशक़्क़त की कौड़ी भर परवा करके उत्तमोत्तम मौलिक पुस्तकें लिखते हैं; उन गणेश-प्रसादों की बात जाने दीजिए जो एक एक दिन में पचीस पचीस और तीस तीस सफ़े, इधर-उधर से उड़ा कर, लिख डालते हैं।

छोटे मोटे अख़बारों में विद्वानों के घुस पड़ने से एक बड़ी हानि होती है——इनकी प्रखर प्रतिभा का अमर प्रसाद एक-दम विस्मृति के गर्त में चला जाता है। ग्रन्थ-साहित्य के विस्तीर्ण क्षेत्र में जो भाव, रत्न की सी झलक दिखाते हुए, सदालोकोत्तरानन्ददायी हो सकते थे, वे आज किसी साप्ताहिक पत्र की पुरानी फ़ाइलों में पड़े सड़ रहे हैं। न कोई उन्हें देखता है और न भविष्य में ही कोई उन्हें देखेगा। गये सो गये!

इन सब बातों से यह नतीजा न निकालना चाहिए कि अख़बार-नवीसी निकृष्ट या कम महत्त्व का काम है। असल में जातीय जीवन के दीपक की ज्योति को क़ायम रखनेवाले, उसकी रक्षा करनेवाले तो अख़बार ही हैं। जैसे ग्रन्थ में सूचीपत्र का होना आवश्यक है उसी तरह साहित्य का परिचय देने और उसकी मर्यादा स्थिर रखने के लिए पत्रों का होना अनिवार्य है। विषयान्तर हुआ जाता है, इसलिए इस विषय को यहीं छोड़ कर अब हम अपने मतलब पर आते हैं—कि यह कुछ आवश्यक नहीं कि हर एक विद्वान् ग्रन्थकार पत्र-सम्पादन में पूरी पूरी सफलता पा सके। इसके कई कारण हैं। अख़बार-नवीस में दुनियादारी के अलावा कुछ दूकानदारी भी चाहिए—ग्रन्थकारों में इसका होना आवश्यक नहीं; बल्कि बढ़िया ग्रन्थकारों में तो अकसर इसका अभाव ही पाया जाता है। जो सचमुच प्रतिभा-सम्पन्न लेखक होते हैं वे अकसर अल्हड़पन्थी होते हैं—यानी ज़िम्मे-दारी का कोई भी काम वे लगातार नहीं कर सकते। और, बिना ऐसा किये अख़बार-नवीसी चल नहीं सकती। अख़बार-नवीसी मौजियों के लिए नहीं, और न वह साधु-सन्तों ही के लिए है; वह तो

असली कलियुगी चलते पुरज़े जीवों के लिए है जिनको रोज़ कोई न कोई नई बात सूझती हो। किसी क़िस्म की ज़रा सी भी अड़चन आपड़ने पर विद्वान् ग्रन्थकार अख़बार-नवीसी से घबरा और उकता सकते हैं; पर असली अख़बार-नवीस महा अड़ियल टट्टू होता है—वह अड़चनों और झञ्झटों को चुनौती दिया करता है—उन्हें छका छका कर मारता है। ग्रन्थकार अपने आदर्श को हमेशा सामने रखता है; अख़बार-नवीस आदर्श की डींग तो बहुत मारता है, पर दर असल अपने काम से ही काम रखता है। हाँ, एक-आध बात ऐसी भी है जो ग्रन्थ-निर्माण और अख़बार-नवीसी क्या, हर एक फ़न के उस्ताद में होना लाज़िमी है—मसलन अपने काम की सच्ची लगन। चरित्र की उज्ज्वलता से काम में तो उज्ज्वलता आही जाती है, दूसरों पर प्रभाव भी ख़ूब पड़ता है। बनावट और थोथी बातों की कलई बहुत जल्द खुल जाती है। समुचित रूप से विकसित विवेचनाशक्ति का होना भी बहुत ही ज़रूरी समझिए। चरित्र की उज्ज्वलता और सचाई का पक्ष रखते हुए भी कभी कभी अख़बार-नवीस को अपनी आत्मा के विरुद्ध कुछ न कुछ लिखना पड़ता है। अतएव, जो अपनी आत्मा से सचमुच ही डरता होगा वह, चाहे नामी ग्रन्थकार भले ही हो जाय, उतना अच्छा अख़बार-नवीस न बन सकेगा।

जब कोई विद्वान् ग्रन्थकार पत्र-सम्पादन का भार अपने ऊपर लेता है तब वह बात बात में अपना आदर्श ठूँसने की कोशिश करता है। वह सोचता है कि पाठकों को अमुक बात पसन्द करनी ही चाहिए। क्योंकि यह उनके लिए हितकर है। उनको अमुक विषय में दिलचस्पी होनी ही चाहिए; क्योंकि इस विषय का जानना उनके लिए ज़रूरी है हमको अमुक विषय के ऊपर इस तरह ज़ोर देकर लिखना ही चाहिए; क्योंकि उस पर हमारी राय ऐसी ही है—इत्यादि। लेकिन अख़बार-नवीस की विचार-शैली कैसी होती है, और वह अपने विषयों की तौल-नाप कैसे करता है, सो भी सुन लीजिए—

क्या हमारे पाठक अमुक विषय को पसन्द करेंगे? क्या वे उसमें वाक़ई दिलचस्पी लेंगे? एक तो वैसे ही वे अपने अपने कामों में फँसे रहते हैं, हर एक बात की तह तक पहुँचने के लिए बार बार सिर खपाना उन्हें कब पसन्द होगा? बहुत से ज़रूरी मामलों की भी वे कौड़ी भर परवा नहीं करते—उन्हें फ़ुरसत कहाँ? फिर क्या इस विषय को इस ढँग से पढ़ना उन्हें रुचिकर होगा? अगर यह विषय इतना गहन या नीरस है कि उन्हें पसन्द आना मुश्किल है तो, यह चाहे जितने महत्त्व का क्यों न हो, हम इसे दूर से ही प्रणाम करते हैं। अपने अख़बार को, जैसे भी और जहाँ तक भी हो सके, मनोरञ्जक बनाना ही हमारा काम है, क्योंकि हमारा अख़बार ही हमारा रोज़गार है, हमारा नाम है, हमारी जागीर और हमारी यादगार है।

ग्रन्थकार की लेखन-शैली या वर्णन-शैली में नीरसता किसी क़दर खप सकती है, पर पत्र-सम्पादक के काम में तो मानों उसका स्थान ही नहीं। यहाँ तो मनोरञ्जकता ही का अटल साम्राज्य होना चाहिए। हर एक बात को—गभीर विषयों तक को—एक ख़ास मनोरञ्जक या आकर्षक ढँग से लिख सकना पत्र-सम्पादन में सफलता-प्राप्ति की कुञ्जी है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है—दुनिया की सभी बातों में कुछ न कुछ दख़ल रखना, सदा प्रफुल्ल-चित्त रहना, वक्त आपड़ने पर बनावटी तौर पर रो भी सकना, और अपने काम में अपना तन, मन अर्पण करके जुट जाना अख़बार-नवीसी में सफलता प्राप्त करने के लिए ज़रूरी है। विद्वान् ग्रन्थकार भले ही आदर्शवादी हो, सम्पादक को तो संसार-वादी ही होना चाहिए।

हमारे देश के शिक्षा-क्रम में अख़बार-नवीसी

का कहीं स्थान नहीं। किसी पत्र के दफ़्तर में सहकारी-पद पर काम करने से जो कुछ आ जाता है वही काफ़ी समझा जाता है। हिन्दी में तो यह हाल है कि जिसे और कुछ भी काम नहीं मिलता वही इधर पदार्पण करने की कृपा दिखा कर मातृ-भाषा को चिर कृतज्ञ करता है। उच्च कक्षा अथवा उन्नत या आधुनिक शैली के सम्पादक यहाँ दो ही चार मिलें तो मिलें: हाँ, अक्खड़, चरित्र-हीन और छिछोरे व्यक्तियों की—जो काल की गति से, अथवा अपने भाग्य के ज़ोर से, या यों कहिए कि मातृभाषा के दुर्भाग्य की प्रबलता से मुख्य-सम्पादक की कुरसी तोड़ रहे हैं—कमी नहीं है। हास्य अथवा विनोद की जान शिष्टता है, मगर यहाँ हास्य के नाम पर बाज़ारू फ़ोश मज़ाक़ करके अपनी क़ाबलियत और सख़ुन-फ़हमी का इज़हार किया जाता है।

हमारी राय में, और कहीं नहीं तो कम से कम देशी संस्थाओं (हिन्दू यूनिवर्सिटी, गुरुकुल वग़ैरह) में अख़बार-नवीसी जैसे महत्त्व के विषय की शिक्षा का कुछ न कुछ प्रबन्ध ज़रूर होना चाहिए। अमेरिका में इस प्रकार की शिक्षा के लिए स्कूल खुले हुए हैं। इँगलिस्तान में इस विषय की शिक्षा अब तक प्राइवेट ढँग से दी जाती थी; अब वहाँ भी स्कूल खुलने लगे हैं। उदाहरणार्थ आज हम लन्दन के एक स्कूल का कुछ हाल सुनाते हैं। उसमें सम्पादन-कला के अलावा ग्रन्थ-लेखन की शिक्षा भी दी जाती है। कितने ही बड़े बड़े अख़बारों के मालिकों और नामी गरामी लेखकों की सहानुभूति इस स्कूल के साथ है—जैसे राइट आनरेबिल वाइकौन्ट बर्न्हम, रा० आ० लार्ड बीवर-ब्रुक, रा० आ० लार्ड रिडल, रा० आ० सर हेनरी डेलज़ील, सर आर्थर पियर्सन, सर जार्ज सटन, सर विलियम राबर्टसन निकल, एम० ए०, एल-एल० डी०, सर आर्थर क्विलरकच, एम० ए०, डी० लिट०, सर चार्ल्स स्टार्मर, मिस्टर सेसिल हार्म्स-वर्थ (मेम्बर पार्लिमेन्ट), मिस्टर एफ़० जे० मेन्स-फ़ील्ड (सभापति, जातीय सम्पादक-मण्डल)। इस स्कूल के डायरेक्टर हैं मिस्टर मैक्स पैम्बर्टन। आप नामी उपन्यास-लेखक तो हई, सम्पादन-कला, नाट्य-लेखन और कथा-लेखन के भी आप आचार्य समझे जाते हैं। आप केम्ब्रिज के बी० ए० हैं और केसल्स मैगज़ीन नाम की प्रसिद्ध पत्रिका का सम्पादन दस वर्ष कर चुके हैं। साहित्य-क्षेत्र में आपका अनुभव तीस वर्ष का है। आप बड़े प्रसिद्ध और लोक-प्रिय लेखक हैं। आपके अलावा और भी कितने ही विशेषज्ञ इस स्कूल में काम करते हैं। अख़बार-नवीसी का पाठ्य-क्रम (कोर्स) कोई ११ विशेषज्ञों ने तैयार किया है, और इसमें प्रूफ़ ठीक करने के काम से लगा कर सभी बातें सिखाई जाती हैं। इसकी फ़ीस २५ गिनी है। अगर एक गिनी का मूल्य १०) भी मान लिया जाय तो भी २५०) हुए! छोटी मोटी कथा-कहानी लिखने का कोर्स ७ विशेषज्ञों द्वारा तैयार कराया गया है। इसकी फ़ीस १५ गिनी है। शिक्षा घर बैठे दी जाती है। जो लोग भरती न होना चाहें वे भी अपने लेख ठीक करा सकते हैं। छोटे लेख पर राय देने की फ़ीस आधी गिनी, और ५००० शब्दों तक की कहानी पर राय देने की फ़ीस एक गिनी है।

खेद है, हिन्दी में अभी तक किसी ने इस ओर ध्यान नहीं दिया। यहाँ अख़बार के दफ़्तर में सह-कारी के पद पर काम करने का कष्ट भी बहुत कम गवारा किया जाता है। यही कारण है जो बड़े बड़े नामी पत्रों और पत्रिकाओं के प्रतिभाशाली और योग्य लेखक तथा सम्पादक अपने मनोगत भावों को उतने आकर्षक ढँग से व्यक्त नहीं कर सकते जितने से कि उन्हें करना चाहिए—हाँ, भाषा के विषय में तो कला-मण्डी खाही जाते हैं। इसका सुबूत यह है कि 'सभी', 'कभी'; 'तभी', 'अभी', 'हम

अपने ग्राहकों' आदि की जगह 'सबही', 'कबही', 'तबही', 'अबही', 'हम हमारे ग्राहकों' सरीखे दक़िआनूसी और ग़लत प्रयोग आज भी ख़ूब देखने में आते हैं। जानकारों की कमी इस क़दर है कि अगर उच्च श्रेणी के किसी पत्र या पत्रिका के लिए उपयुक्त सम्पादक खोजने निकलिए तो सुबह से शाम हो जाय, मगर सम्पादक जी के दर्शन न हों। जहाँ सहायक सम्पादकों ही का मिलना कठिन है वहाँ बढ़िया सम्पादक कहाँ से मिल सकते हैं? जिस गाँव में कोई बाराखड़ी तक न पढ़ा हो वहाँ भागवत का मर्म समझानेवाला कहाँ मिल सकता है?

इस विषय की और भी बहुत सी बातें, अगर हो सका तो, शीघ्र ही एक पुस्तक के द्वारा आपकी सेवा में उपस्थित की जायँगी। अन्त में निवेदन है कि इस लेख में 'पत्र-सम्पादन' और 'अख़बारनवीसी' बतौर समानार्थवाची प्रयुक्त किये गये हैं, और सो भी कुछ सङ्कुचित अर्थ में। यानी इसमें जो बातें कही गई हैं उनमें से कितनी ही साप्ताहिक या दैनिक पत्र के सम्पादन के विषय में समझी जानी चाहिए—मासिक पत्र के नहीं। मसलन विद्वत्ता, गम्भीरता आदि गुणों का होना मासिक पत्र के सम्पादकों में लाज़िमी है, जब कि साप्ताहिक अथवा दैनिक पत्र का काम सम्पादक में इन गुणों के न होने पर भी चल सकता है। मासिक पत्र भी सब एक ही तरह के नहीं होते। किसी में गभीरता की मात्रा अधिक रहती है, किसी में कम। अस्तु, अब लेख बहुत बढ़ गया है। इसलिए, तबीयत न होने पर भी, यहीं ख़तम किया जाता है।

बदरीनाथ भट्ट

गन्ना और शक्कर।
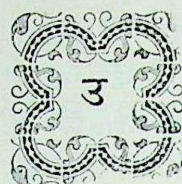
[समालोचना]

उस दिन इलाहाबाद के लीडर नामक अँगरेज़ी-दैनिक-पत्र में इस पुस्तक की समालोचना पढ़ी। समालोचना में बड़ी प्रशंसा की गई थी। जी में आया, इसे मँगा कर पढ़ें। पर उसके तीन ही चार रोज़ बाद इसकी एक कापी, इसके लेखक महाशय की कृपा से, हमें मिल गई। इस कारण इसे मँगाने से हम बाल बाल बच गये। यह मँझोले आकार की कोई १७५ सफ़े की पुस्तक है। बहुत ही मामूली काग़ज़ पर, बहुत साधारण टाइप में, छपी है। दाम है एक रुपया। इसके "सर्वाधिकार स्वाधीन" हैं। जैसे इसके विषय के अधिकारों को लेखक से छीनने के लिए कोई कमर ही कसे बैठा हो। यदि लेखक कापी-राइट एक्ट पढ़ेंगे तो आपको मालूम हो जायगा कि इस तरह का नोटिस देने से कोई लाभ नहीं और न देने से कोई हानि नहीं। अब कापी-राइट के सम्बन्ध का सारा हक़ क़ानूनन लेखक ही का समझा जाता है। इसके मुख-पृष्ठ के अनुसार इसके लेखक हैं—"एस० सी० बेनरजी, एफ० सी० एस० (लन्दन)। सहकारी रसायनज्ञ सरकारी कृषि-विभाग, संयुक्त प्रान्त। भूतपूर्व रसायनज्ञ शर्करालय इंडिया डेवलपमेंट लिमिटेड"।

पाठक, इस पुस्तक के लेखक महाशय का नाम आप सुन चुके और उनकी नई तथा पुरानी पदवियों से भी वाकिफ़ हो चुके। साथही आपकी भाषा की ज़रा सी बानगी भी आप देख चुके। "बेनरजी" के पहले यदि आप "एस० सी०" न लिख कर अपना सीधा सादा बङ्गाली नाम दे देते तो शायद भाषा का माधुर्य्य कम हो जाता और अँगरेज़ीपन की बू निकल कर स्वदेशी सुगन्धि से घ्राणेन्द्रिय को

घृणा उत्पन्न हो जाती। "शर्करालय" को देखिए और उसके सखा—"इंडिया डेवलपमेंट लिमिटेड" को भी देख लीजिए। तीतर-बटेर का साथ कैसा सुहावना मालूम होता है। अब पुस्तक के ही मुख-पृष्ठ के अनुसार प्रकाशक का भी नाम श्रवण कर लीजिए—

एस० सी० बेनरजी, एफ़० सी० एस० (लन्दन)-- यदि आप चाहते तो ऊपर ही "लेखक" के आगे "प्रकाशक" लिख कर—अर्थात् अपने को "लेखक और प्रकाशक" दोनों कह कर—फ़ुरसत पा जाते। पर, नहीं, अपने सुघर और सुहावने नाम की पुनरावृत्ति करने और लन्दन में परीक्षा पास करने की घोषणा दुबारा सुनाने का माहेन्द्र-योग जो हाथ से जाता रहता।

कृषि और विज्ञान से सम्बन्ध रखनेवाली पुस्तकें हिन्दी में बहुत ही कम हैं। और ऐसी पुस्तकों की है बहुत अधिक आवश्यकता। इस दृष्टि से इन विषयों की पुस्तकों का निकलना हिन्दी-साहित्य और उद्योग-वृद्धि के लिए अत्यन्त श्रेयस्कर है। फिर, लन्दन की परीक्षा पासशुदह लोग—सो भी बङ्गाली—जो हिन्दी को देश-व्यापक भाषा होने योग्य भी नहीं समझते, यदि हिन्दी में कृषि और व्यवसाय-विषयक पुस्तकें लिखें तो हिन्दी के सौभाग्य का कहना ही क्या है। पर इन विषयों की पुस्तकें होनी चाहिए ऐसी जिनसे बहुत अधिक लोगों को लाभ पहुँचे। इस पुस्तक का नाम तो है—गन्ना और शक्कर—पर इसमें रस, राब, गुड़, शीरा इत्यादि बनाने की भी बातें हैं। अच्छा, गन्ने की खेती करता कौन है और देहात में राब, गुड़, शीरा बनाता कौन है? न विलायत से लौटे बङ्गाली बाबू, न कानपुर के कृषि-कालेज के प्रोफ़ेसर, न उस कालेज से निकले हुए छात्र, और न अँगरेज़ीदाँ या अच्छे पढ़े-लिखे और ही लोग। इस दशा में, इन विषयों की पुस्तकें ऐसी सरल भाषा में, ऐसे ढँग से लिखी जानी चाहिए, जिससे उनका मज़मून अपढ़ अथवा स्वल्प-शिक्षित किसानों की समझ में आ जाय। बात जब समझ में आवेगी तब तो लोग बैनरजी बाबू के बताये हुए ढँग से गन्ना बोवें, सींचें, काटें, पेरें और उससे रस निकाल कर गुड़, राब और खाँड बनावेंगे। आपकी तरह सब किसान तो Assistant Agricultural Chemist, Department of Agriculture, U. P., Cawnpore नहीं। वे बेचारे आपके बताये हुए रासायनिक फ़ारमूला कैसे समझेंगे। वे दशमलव का लेखा क्या जानें। "ग्राम" की नाप, रासायनिक विश्लेषणों के फल, रसायनों के अँगरेज़ी नाम किसके लिए? घूरू काछी, लच्छू कुरमी, पहलाद पासी के लिए! भाई, वे तो आपके "आयल इंजिन", "शर्करालय", "कार्य्यालय", "इक्षु", "प्रमेद" आदि ही को सुनकर नहीं, आपकी "करंज की खली" को भी सुन कर कानों पर हाथ रख कर "शान्तं पापम्" कह कर चिल्ला उठते हैं और पूछते हैं, ये चीज़ें हैं क्या? आप दिन-रात एकड़ एकड़ कहा करते हैं। देहाती तो आपका यह एकड़ भी नहीं जानते, किस चिड़िया का नाम है। उसके बदले यदि आप बीघा लिख देते तो क्या आपकी कुछ हानि थी? बात यह जान पड़ती है कि अधिकांश जिस सामग्री के बल पर आपने इस पुस्तक के कुछ अंश लिखे हैं उसको एकत्र करनेवाले बीघे को व्याघ्र नहीं तो वृक ज़रूर समझते होंगे। उनका जन्म-सखा तो ठहरा एकड़। आपने उसीको उठा कर रख दिया। एकड़ के बीघे बना कर सारे अङ्कों में परिवर्तन करने का श्रम आप क्यों उठावें? देहाती कृषक पुस्तक न पढ़ेंगे; न पढ़ें। कृषि-कालेजों और स्कूलों के लड़के तो पढ़ेंहीगे। कोई न कोई साहब तारीफ़ करही देगा। अल्पांश ही में सही, कुछ श्रम तो सफल होही जायगा। बात यह।

एक देहाती किसान को हमने यह पुस्तक दी।

वे अपर प्राइमर दरजे तक हिन्दी पढ़े हैं। अच्छे किसान हैं। ईख बोते हैं। राव, गुड़ बनाते हैं। हमने कहा, इसे पढ़ो। तुम्हारे काम की है। एक रुपया खर्च करके इसकी एक कापी मँगालो। एक हफ़्ता रख कर उन्होंने पुस्तक लौटा दी। कहा—"बाबू काका, यहि कै तो बोलिही समुझ माँ नहीं आवति। ज्वातै, बवै, सींचै, पातै की बातै तो कुछ कुछ समुझि परती हैं; और नहीं। उहूँ। हमरे काम कै नहीं ना"। पाठक बतावें, हम इस किसान की समालोचना को ठीक समझें या लीडर के समालोचक की समालोचना को।

हमारा मतलब यह नहीं कि पुस्तक असार है। नहीं, पुस्तक काम की है। उसमें ईख की खेती से सम्बन्ध रखनेवाली अनेक बातें ऐसी हैं जिनका ज्ञान होने से ईख बोनेवालों और राव-गुड़-शक्कर बनानेवालों को बहुत लाभ हो सकता है। परन्तु वे बातें उनकी समझ में तो आवें। पुस्तक के न मालूम कितने पृष्ठ रासायनिक आश्लेषण और विश्लेषण के रहस्यों से रञ्जित हैं। 'शक्कर का रसायन' आप पढ़े-लिखे शकरसाज़ों को बताइए, शकर बनाने के कारखानेदारों को पढ़ाइए, अपने महकमे के स्कूलों के लड़कों को सुनाइए—वही रसायनों के रस का आस्वादन कर सकेंगे, अपढ़ या कम पढ़े काश्तकार नहीं। अतएव आपकी यह पुस्तक कुछ ही लोगों के काम की है। अधिक लोगों के काम की नहीं। पुस्तकारम्भ में आप ईख का "ऐतिहासिक वृत्तान्त" बताने चले तो तीन ही सफ़े में उसे समाप्त करके दूसरे देशों से आई हुई खाँड़ का हिसाब बताने लगे। क्या वेद-मन्त्र का एक टुकड़ा उठा कर रख देने से ही ऐतिहासिक वृत्तान्त हो गया। जिस गन्ने की आदिम जन्मभूमि आपने इस देश को बताया है उसकी कुछ तो पुरानी बातें लिख देते। आप यदि शब्द-कल्पद्रुम ही उठा कर देख लेते तो आपको प्यारी शर्करा के अनेक नामों और अनेक गुणों का पता मालूम हो जाता। पुराने से पुराने ज़माने में भी शर्करा का उपयोग यहाँ ओषधियों में होता था। और कुछ न लिखते तो यही लिख देते कि भारत के कौन कौन से प्रान्त या नगर शकर और मिश्री के लिए प्रसिद्ध थे। जिस पौंड़े का गुणकीर्तन आपने किया है वह "पौंडा" शब्द ही इस बात की गवाही दे रहा है कि उसकी जन्मभूमि भारत ही है। काशी के पास का प्रान्त, प्राचीन समय में, पुंड़ या पौंड़ कहाता था। वहाँ जो ईख पैदा होती थी वह पौंड्क नाम से विदित थी—"विपाण्डुरा पुण्ड्रकशर्करापि"—पौंडा उसीका अपभ्रंश है।

आपने अपने १७ वर्षों के अनुभव की बात कही, सो आप जानें। हम तो आपके दिये हुए द्रव्यों के विवरण, विश्लेषण और सारिणी आदि को देख देख कर हैरान हो रहे हैं। आपकी पुस्तक का आधे से अधिक अंश इस प्रान्त के किसानों के काम का नहीं और जो है भी वह जहाँ तहाँ क्लिष्टता से जकड़ा हुआ है। आपने अपने १७ वर्ष के अनुभव में किन किन ज़िलों के किसानों को इस योग्य पाया कि वे आपकी श्वेतता, पूर्णतया आक्रमण, भूगर्भ, आर्द्रता (?), शुष्क और मैगनीशिया वैगनीशिया का मतलब समझते हों। आपने पुस्तक को सरल बनाने की चेष्टा की है, तब तो यह हाल है। यदि कहीं आप ऐसी चेष्टा न करते तो भगवान् जानें इसकी भाषा की क्या गति होती। आपकी यह "सरल" भी हिन्दी अन्य अनेक भाषा-दोषों से लदी हुई है, पर इसके लिए आप क्षम्य हैं। क्योंकि हिन्दी आपकी मातृभाषा नहीं, मातृभाषा आपकी या तो अँगरेज़ी होगी या बँगला।

हमारी प्रार्थना है कि यदि कभी फिर आप हिन्दी में पुस्तक लिखने की कृपा करें या उदारता दिखावें तो पढ़नेवालों की विद्या-बुद्धि की नाप-तोल करके तब लिखें। फिर चाहे आप "ग्राम" से काम लें, चाहे एकड़ से; पर नाप-तोल कर ज़रूर

लें। आपने अपनी भूमिका में "भूल या त्रुटि" की सूचना दी जाने के लिए आज्ञा दी है। आपने, "धन्यवाद-सहित परामर्श स्वीकार" कर लेने का भी वचन दिया है। इसीसे हमें यह प्रार्थना करने का साहस हुआ है। आशा है, आप भी हमारी भूल चूक माफ़ करेंगे।

पचमढ़ी।
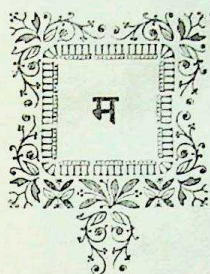
मध्यप्रदेश के हुशङ्गाबाद ज़िले में पचमढ़ी नामक एक स्थान है। गर्मी के दिनों में वहाँ मध्यप्रदेश की सरकार की राजधानी उठ कर चली जाती है। यह स्थान बड़ा स्वास्थ्यप्रद है।

यहाँ एक छोटे से टीले पर पत्थर की पांच गुफायें हैं। इसी कारण, इस स्थान का नाम पचमढ़ी है। कहते हैं, ये गुफायें पाण्डवों की हैं। राज्य से निर्वासित होने पर उन्होंने यहीं बारह वर्ष तक निवास किया था। परन्तु गुफाओं की बनावट से मालूम होता है कि वे बौद्ध-कालीन हैं।

"हाइलैन्ड्स आव् सेंट्रल इंडिया" (Highlands of Central India) नामक अँगरेज़ी ग्रन्थ के रचयिता कप्तान जे॰ फॉरसियथ साहब ने, सन् १८६२ ईसवी में, मध्यप्रदेश के चीफ़ कमिश्नर सर रिचर्ड टेंपिल साहब के समय, इस स्थान का पता लगाया था। उस समय इस स्थान पर "कारको" नामक ज़मींदार का अधिकार था। मध्यप्रदेश के लिए आरोग्यवर्धक स्थान के योग्य इसी स्थान को भारतीय सरकार ने पसन्द किया। तब, यहाँ ज़मीन की नाप-जोख आदि की गई। उसमें लगभग पचास हज़ार रुपया व्यय हुआ। ज़मींदार ने इसे चौरासी हज़ार रुपया में बेचना स्वीकार किया था, पर कह नहीं सकते इसके लिए उसे क्या दिया गया।

सन् १८६९ में पचमढ़ी ग्रीष्म ऋतु के लिए मध्यप्रदेश की राजधानी बनाई गई। इसके एक वर्ष के बाद सेना-विभाग के लिए भी यही स्थान निश्चित किया गया। सतपुड़ा-पर्वत-श्रेणी के महादेव नामक शिखरों के मध्य में, २३ मील समभूमि पर, यह जगह आबाद है।

पचमढ़ी की कचहरी।
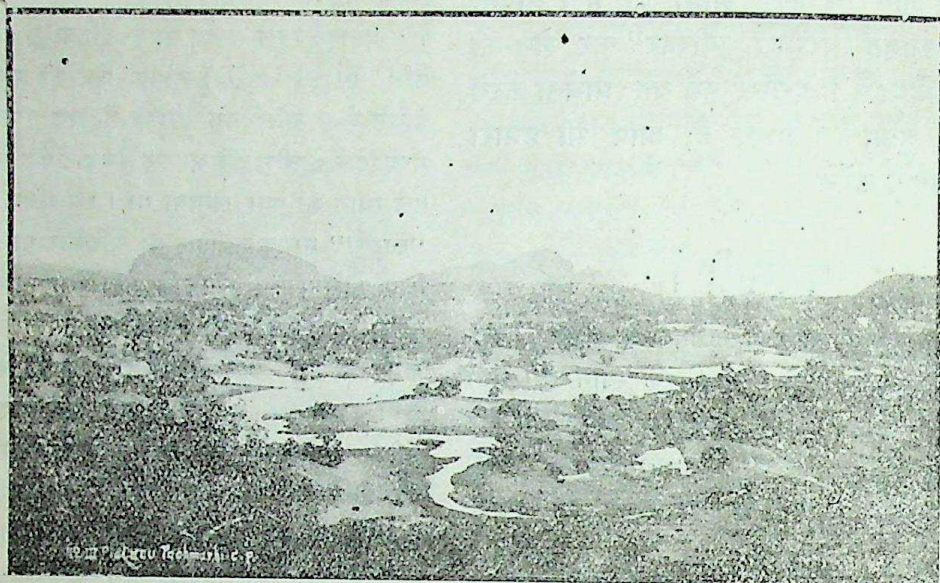
पचमढ़ी का दृश्य (पहाड़ी के ऊपर से) ।

पचमढ़ी के बड़े महादेव के मेले में श्रृङ्गार किये हुए जङ्गली आदमी ।

इस समभूमि की उँचाई समुद्र-तल से ३५०५ फ़ुट है। इसके चारों ओर जो पहाड़ियाँ हैं वे और भी अधिक ऊँची हैं। इनमें सबसे ऊँची पहाड़ी को "धूपगढ़" कहते हैं। उसकी उँचाई ४४५४ फ़ुट है। यही सतपुड़ा-श्रेणी का सबसे ऊँचा शिखर है।

पचमढ़ी की समभूमि दो विभागों में विभक्त है। ५ मील ज़मीन कन्टून्मेन्ट अर्थात् छावनी के अधिकार में है। और, शेष १६ मील पर म्युनिसिपैलटी का अधिकार है। सेना-

पचमढ़ी के छोटे महादेव।

विभाग की अधिकृत भूमि पर १४ बँगले, ६ बैरिकें, अर्थात् सैनिकों के रहने के स्थान, २ चिकित्सालय और १ मार्केट अर्थात् बाज़ार है। म्युनिसिपैलटी की ज़मीन पर ६० बँगले। इनमें ४० सरकारी हैं और २० सर्वसाधारण के। इन बँगलों में चीफ़ कमिश्नर साहब की कोठी, तहसील, कचहरी, मनुष्यों और पशुओं का चिकित्सालय, अँगरेज़ों और हिन्दुस्तानियों के क्लब, अर्थात् विनोदालय, तथा दो अँगरेज़ी होटल उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त एक क़सबा भी है जहाँ हिन्दुस्तानियों की बस्ती है।

सन् १९११ ईसवी की मर्दुमशुमारी के अनुसार पचमढ़ी की जन-संख्या ३२०० है। इनमें २७०० यहाँ के निवासी हैं और शेष ५०० मनुष्य ग्रीष्म ऋतु में वायु-परिवर्तनार्थ बाहर से आ जाते हैं।

पचमढ़ी में गरमी का औसत ९५° डिगरी तक रहता है। हुशङ्गाबाद से यहाँ गरमी सिर्फ़ १०° कम है। एक वर्ष तो यह उष्णता १०४° तक पहुँच गई थी, परन्तु यहाँ विशेषता यह है, कि लू नहीं चलती और दोपहर में ३, ४ घंटों को छोड़ शेष समय ठंडा रहता है। रात्रि में और ऊषः काल के समय सरदी कुछ अधिक रहती है। जाड़े में यहाँ गरमी का औसत ३७° तक रहता है। एक वर्ष ३० तक भी पहुँच गया था, परन्तु बर्फ़ यहाँ कभी नहीं गिरती।

वर्षा प्रायः जून के दूसरे सप्ताह में आरम्भ हो जाती है और सितम्बर तक रहती है। वर्षा का औसत यहाँ ७५ इञ्च है। किसी किसी वर्ष १०० इञ्च तक पानी बरस जाता है। वर्षा ऋतु में कभी कभी कई हफ़्तों तक सूर्य भगवान् के दर्शन नहीं होते।

पचमढ़ी में सफ़ाई ख़ूब है। यहाँ की सड़कें और बँगले बहुत स्वच्छ रहते हैं। मोटर आदि पर घूमने के लिए यहाँ दो चक्कर भी बने हैं—एक लांग अर्थात् लम्बा चक्कर और दूसरा शार्ट अर्थात् छोटा चक्कर। लम्बे चक्कर का घेरा ७ मील और छोटे का ४ मील है। इन चक्करों की सड़कें बड़ी अच्छी हैं और दृश्य भी मनोहर है। पोलो घुड़दौड़ के लिए भी यहाँ मैदान है। कचहरी के निकट ही सरकारी बाग़ीचा है, जिसमें तरह तरह के फल-फूल और तरकारियाँ होती हैं।

पुलिस, तार, डाक आदि का भी यहाँ अच्छा प्रबन्ध है। शिक्षा के लिए यहाँ चार पाठशालायें हैं। इनमें एक कन्याओं के लिए है। कन्या-पाठशाला में उर्दू की शिक्षा दी जाती है। लड़कों के लिए तीन पाठशालायें हैं। उनमें एक अँगरेज़ी मिडिल है। बाक़ी दो में हिन्दी और उर्दू की चौथी कक्षा तक शिक्षा दी जाती है।

पचमढ़ी का पहाड़ी पत्थर रेतीला है। जङ्गल में विशेष कर साज, साल, हर्रा, बहेड़ा, और आंवले के पेड़ हैं। जामुन, आम तथा चम्पे के पेड़ भी बहुत से पाये जाते हैं। जब पहाड़ों पर प्रातःकाल और सायङ्काल सूर्य की सुनहली किरणें पड़ती हैं तब रेतीले पत्थर के कारण उनकी शोभा-वृद्धि हो जाती है।

शिकार और चांदमारी के कारण आस पास जङ्गली पशु बहुत कम हैं। पक्षी यहां भी कई प्रकार के हैं। भृङ्गराज, चण्डूल आदि के मधुर शब्द प्रायः सभी पहाड़ियों पर सुनाई पड़ते हैं।

पचमढ़ी यद्यपि भारतवर्ष के अन्य पहाड़ी स्थानों के

पचमढ़ी की चँवँरा पहाड़ी पर लोहे के त्रिशूल।

सदृश ठंडा नहीं है तथापि यहां के दृश्य बहुत सुन्दर हैं। वहां नीचे लिखे स्थान दर्शनीय हैं—

(१) छोटे महादेव (२) बी फाल (३) फनसाखड़ (४) बेली-व्यू (५) रीचगढ़ (६) डेजीखड (७) सान्डर्सपूल (८) वुडबर्न क्रिप्स (९) डचेज़फाल (१०) कीटिङ्गपाइंट (११) फुलरखड या वाटर्समीट (१२) लेन्सडाउनपूल (१३) फ्लीट-वुड जङ्क्शन (१४) पनोरमाहिल (१५) महादेव केव (१६) माउन्टमारिस (१७) हंडीखोह (१८) फारिसीयपाइंट (१९) मेलकमपाइंट (२०) बिगफाल (२१) क्लेक्सनकेग (२२) क्लेमेटिस्पाइंट (२३) लिटिल फाल (२४) कांजीघाट (२५) जटाशङ्कर (२६) जम्बूद्वीप (२७) धोबीघाट।

इनमें भी निम्नलिखित स्थान अपने मनोहर दृश्यों के लिए बहुत प्रसिद्ध हैं।

(१) बड़े महादेव (२) छोटे महादेव (३) जटाशङ्कर (४) चौरागढ़ (५) धूपगढ़ (६) रीचगढ़ (७) फुलरखड (८) हंडीखोह (९) बिगफाल (१०) बीफाल (११) लिटिल-फाल।

इनमें पहले चार तीर्थस्थान हैं। अब हम इन स्थानों का कुछ वर्णन करते हैं।

बड़े महादेव—बड़े डाकखाने से यह स्थान लगभग ४½ मील दूर है। २¾ मील तक पक्की सड़क गई है। फिर पगडंडी है। उतार चढ़ाव अधिक है। तो भी मार्ग बीहड़ नहीं। जङ्गल बहुत घना है। एक गुफा में शिवलिङ्ग विराजमान है। यह गुफा लगभग १०० फुट लम्बी है। ग्रीष्म ऋतु में भी उसमें घुटने तक जल भरा रहता है। यह जल गुफा के कई स्थानों से टपक कर नीचे एकत्र होता है। यह जल बर्फ़ के समान ठंडा है। गुफा के द्वार पर एक लोहे का फाटक लगा है। गुफा के आस-पास पीले चंपे के वृक्ष खूब हैं; उनकी सुगन्धि से यह स्थान सदैव सुरभित रहता है। इसका दृश्य इतना मनोहर नहीं। परन्तु तीर्थस्थान होने के कारण पंचमढ़ी में यही स्थान सबसे अधिक

प्रसिद्ध है। प्रति वर्ष शिवरात्र और बसन्त-पञ्चमी को यहां मेला लगता है। शिवरात्र के मेले में लगभग ४००० और बसन्त-पञ्चमी के मेले में १५०० के क़रीब मनुष्य इकट्ठे होते हैं। मेले में जङ्गली जाति के लोग विचित्र श्रृङ्गार करके यहां आते हैं। यहीं के पहाड़ों से देनवा नामक नदी निकली है जो ४८ मील बह कर तवा नदी में मिली है।

छोटे महादेव— यह स्थान डाकघर से लगभग २½ मील दूर है। एक मील के लगभग पक्की सड़क है, शेष १½ मील पगडंडी है। यहां का मार्ग बीहड़ है और जङ्गल भी बड़े महादेव की अपेक्षा अधिक घना है। यहां पहाड़ी शिखरों के बीच से एक झरना बहता है। इसी के निकट शिवजी का लिङ्ग है। यहां का दृश्य मनोमुग्धकर है।

जटाशङ्कर—यह स्थान डाकघर से लगभग २½ मील पर है। एक मील तक पक्की सड़क है, शेष १½ मील मार्ग बहुत ही बीहड़ है। पक्की सड़क छोड़ने के बाद जटा-शङ्कर की गुफा तक प्रायः उतार ही मिलता है। यहां का जङ्गल भी बहुत सघन है और दृश्य भी परम सुन्दर है।

जहां जटाशङ्कर विराजमान हैं उस जगह दोनों ओर के पर्वत, ऊपर से झुक कर, गुम्बज़ के समान देख पड़ते हैं। उन्हीं में एक खण्ड घंटे के समान नीचे लटक गया है। जटाशङ्कर के ऊपर एक पत्थर का सर्प फण निकाल कर शिवजी पर छाया किये है। शिवलिङ्ग का पत्थर ऊपर इस प्रकार कट गया है कि वहां जटायें सी देख पड़ती हैं। इसीलिए इनको जटाशङ्कर कहते हैं। आस पास अनेक छोटे छोटे लिङ्ग हैं। जान पड़ता है, वे शिवजी के गण हैं। जब हम लोग वहां गये थे उस समय झिल्लियों के झङ्कार से वह स्थान व्याप्त था। बीच बीच में भृङ्गराज, चण्डूल आदि बोल उठते थे। ऐसा जान पड़ता था कि ये पक्षी भगवान् गिरिजापति का यशोगान कर रहे हैं। इसकी प्राकृतिक शोभा देख कर हम लोग मुग्ध हो गये।

चौरागढ़—यह स्थान बड़े महादेव से आगे लग-भग २½ मील है। चढ़ाव बहुत अधिक है और मार्ग भी विकट है। रास्ते में घना जङ्गल पड़ता है। पहाड़ के ऊपर कुछ भूमि का भाग सम हो गया है और उसमें लोहे के अनेक त्रिशूल गड़े हैं। कुछ त्रिशूल इकट्ठे गाड़े गये हैं। वे दूर से बांस के वृक्षों के समान देख पड़ते हैं। जङ्गली आदमी यहां आकर देवोपासना करते हैं और अपनी अभिलाषा पूर्ण होने पर लोहे के त्रिशूल गाड़े जाते हैं।

धूपगढ़—इसके लिए दो मार्ग हैं। एक मार्ग से यह ७ मील और दूसरे से ६½ मील है। २ मील तक सड़क पक्की है। तदनन्तर २ मील कच्चे मार्ग से भी तांगा जाता है और शेष २½, ३ मील पगडंडी है। ऊपर, कुछ दूर तक, समभूमि आगई है। यहां एक छोटा सा डाक-बँगला भी है। ऊपर चढ़ने से चारों ओर दूर दूर की पहाड़ियों का दृश्य बड़ा मनोहर दिखाई देता है। एक जगह सबसे ऊँची है। वहीं से दृश्य देखने में आनन्द आता है। वह स्थान खम्भे लगा कर तारों से घेर दिया गया है जिससे नीचे की ओर देखने से भय नहीं मालूम होता और न गिरने का ही डर रहता है।

रीचगढ़— यह स्थान डाकघर से लगभग २½ मील पर है। १½ मील तक पक्की सड़क है। एक मील पगडंडी ही से नीचे उतरना पड़ता है। मार्ग बहुत ही बीहड़ है, और जङ्गल भी बहुत घना है। नीचे पहाड़ी शिखरों में कुछ ऊपर से एक झरना गिरता है। आस पास आम के ऊँचे ऊँचे वृक्ष हैं। इस झरने के आस पास का जङ्गल इतना घना है कि सूर्य के दर्शन भी नहीं होते। यह पक्षियों के मधुर कलरव से सदैव पूर्ण रहता है। जब हम लोग वापस आ रहे थे तब हमने एक विलक्षण प्रकार के कीड़ों को देखा। ये कीड़े श्वेतवर्ण के थे। एक वृक्ष में इनका एक गुच्छा लगा हुआ था। दूर से यह गुच्छा कांस के फूलों के समान जान पड़ता था। ये कीड़े एक तरह की सफ़ेद गोंद तैयार करते हैं। गोंद, मोम के समान वृक्ष की डाल पर लगी रहती है। उसी पर ये बैठे रहते हैं। खाने में यह गोंद मीठी होती है। वापस आकर हमने इनकी तसवीर उतर-वाई। कुछ जङ्गली लोगों से पूछने पर मालूम हुआ कि पचमढ़ी में इन कीड़ों को "मिश्री बनानेवाले कीड़े" कहते हैं।

फुलर खड्ड—यह स्थान डाकख़ाने से लगभग ३ मील है। २ मील तक पक्की सड़क है। १ मील पगडंडी से उतरना पड़ता है। मार्ग बहुत ही बीहड़ है; घना जङ्गल है। दो तरफ़ से बड़े बड़े दो पहाड़ी निर्झर यहां

आ कर मिले हैं। इनके दोनों किनारे हंसराज ही के वृक्ष अधिक हैं। यहाँ का दृश्य पचमढ़ी में सबसे सुन्दर माना जाता है।

हंडीखोह—यह स्थान डाकख़ाने से १½ मील पक्की सड़क पर है। नीचे बहुत गहरा ख़न्दक है, जो वृक्षों से सदैव हरा भरा रहता है। यहाँ नीचे जाने का मार्ग नहीं। ऊपर से ही इसका दृश्य बड़ा सुहावना देख पड़ता है।
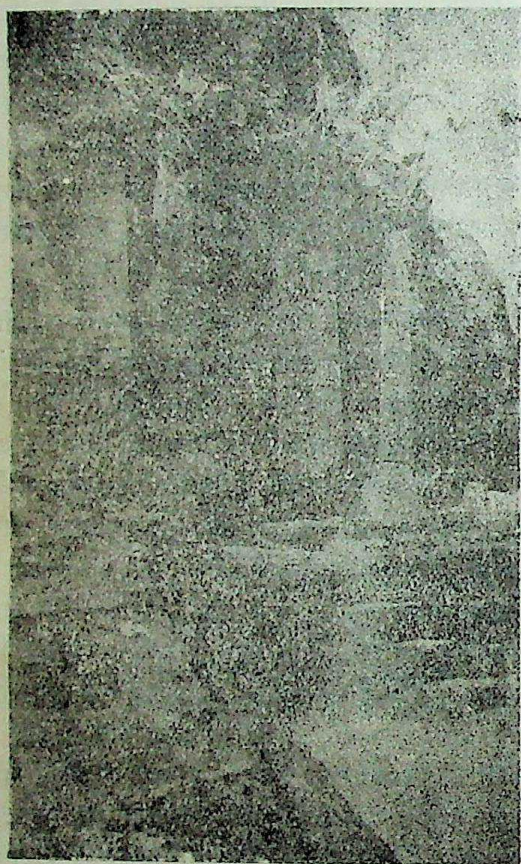
पचमढ़ी की गुफाओं का एक भाग।

यहाँ हर्रे के वृक्ष जङ्गली आम के वृक्षों के समान ६० से ८० फुट तक ऊँचे हैं। इस खोह में नीले रङ्ग के कबूतर बहुत हैं। ये कबूतर साधारण कबूतरों की अपेक्षा अधिक नीले होते हैं। इसी कारण यहाँ के लोग इन्हें नीले कबूतर कहते हैं।

बिग फाल—अर्थात् बड़ा निर्झर। यह डाकघर से लगभग १½ मील पर है। १ मील तक पक्की सड़क है और ½ मील पगडंडी है। मार्ग सुगम है। यहाँ एक निर्झर कोई १५० फुट ऊपर से हहराता हुआ नीचे गिरता है। नीचे एक छोटा सा कुण्ड है। नीचे उतरने के लिए यहाँ एक मार्ग है, परन्तु वह बहुत ही बीहड़ है।

बीफाल—अर्थात् "बी" नामक निर्झर—यह स्थान डाकघर से लगभग १½ मील दूर है। आध मील तक पक्की सड़क और तदुपरान्त पगडंडी है। मार्ग बीहड़ है और जङ्गल भी बहुत घना है। मार्ग के बीच में एक बाँध है। यहाँ धोबी कपड़े धोते हैं। यहीं, पहाड़ के ऊपर से, एक झरना तीन धाराओं में विभक्त हो कर नीचे गिरता है। यहाँ का दृश्य भी परम सुन्दर है।

लिटिल फाल—अर्थात् छोटा निर्झर। यह स्थान डाकख़ाने से कोई २ मील है। पर्वत की चोटी से एक निर्झर गिरता है। निपात के स्थान पर एक कुण्ड हो गया है। उस कुण्ड से निकल कर जल नीचे गिरता है। यह स्थान भी परम सुन्दर और दर्शनीय है।

पचमढ़ी जाने के लिए जी० आई० पी० रेलवे के पिपरिया नामक स्टेशन पर उतरना पड़ता है। स्टेशन से पचमढ़ी का बड़ा डाकख़ाना ३२ मील है। सड़क पक्की है और मोटर तथा बैलगाड़ियाँ मज़े में आती जाती हैं। पिपरिया से ७ मील आगे जङ्गल आरम्भ होता है। १५ मील तक समतल भूमि है। इसके बाद सिंघानामा नामक स्थान से पचमढ़ी तक बराबर चढ़ाव है, किन्तु सड़कें इस प्रकार घुमावदार बनाई गई हैं कि यह चढ़ाव सुगम हो गया है। चढ़ाव के कारण मोटर के आने में साधारणतः २ घंटे लगते हैं। पर लौटते समय डेढ़ घंटे से अधिक नहीं लगता। बैलगाड़ी २४ घंटे में आती है, क्योंकि बीच में एक दो जगह बैलों के विश्राम के लिए गाड़ी ठहरानी पड़ती है। पहले यहाँ ताँगे आते थे, परन्तु सन् १९१५ से मोटरें चलने लगी हैं। डाक मोटर से ही आती है। इस मोटर को मेल-मोटर कहते हैं। जब चीफ़ कमिश्नर साहब यहाँ रहते हैं तब यह मेल-मोटर दो बार आती है, नहीं तो एक ही बार। डाक के साथ इसमें ५ आदमी बैठ सकते हैं। प्रत्येक मनुष्य को ८) किराया देना पड़ता है। जो कम्पनी यह मोटर चलाती है, उसका नाम "पचमढ़ी मोटर सरविस कम्पनी" है। डाक ले जाने के लिए

सरकार इसे २२५०) मासिक किराया देती है। मेल-मोटर के सिवा इस कम्पनी के और भी कई मोटर चलते हैं।

इस वर्ष यहां एक दूसरी मोटर-कम्पनी स्थापित हुई है। इसका नाम है "सिविल एंड मिलिटरी मोटर सरविस कम्पनी।" पचमढ़ी के मार्ग का दृश्य भी रमणीय है।

गोविन्ददास

कुररी के प्रति*।

बता, मुझे, ऐ विहग विदेशी, अपने जी की बात।
पिछड़ा था तू कहां, आ रहा जो कर इतनी रात?
निद्रा में जा पड़े कभी के, ग्राम्य मनुज स्वच्छन्द।
अन्य विहग भी निज खोतों में सोते हैं सानन्द।
इस नीरव घटिका में उड़ता है तू चिन्तित-गात।
पिछड़ा था तू कहां, हुई क्यों तुझको इतनी रात?

(२)

देख किसी माया-प्रान्तर का चित्रित-चारु-दुकूल,
क्या तेरा मन मोह-जाल में गया कहीं था भूल?
क्या उसकी सौन्दर्य-सुरा से उठा हृदय तव ऊब?
या आशा की मरीचिका से छला गया तू खूब?
या हो कर दिग्भ्रान्त लिया था तूने पथ प्रतिकूल?
किसी प्रलोभन में पड़ अथवा गया कहीं था भूल?

(३)

अन्तरिक्ष में करता है तू क्यों अनवरत विलाप?
ऐसी दारुण व्यथा तुझे क्या, है किसका परिताप?
किसी गुप्त-दुष्कृति की स्मृति क्या उठी हृदय में जाग?
जला रहा है तुझको अथवा प्रिय-वियोग की आग?
शून्य-गगन में कौन सुनेगा तेरा विपुल विलाप?
बता कौन सी व्यथा तुझे है, है किसका परिताप?

(४)

यह ज्योत्स्ना-रजनी हर सकती क्या तेरा न विषाद?
या तुझको निज जन्म-भूमि की सता रही है याद?
विमल व्योम में टँगे मनोहर मणियों के ये दीप,
इन्द्रजाल तू उन्हें समझ कर जाता है न समीप।
यह कैसा भय-मय विभ्रम है, कैसा यह उन्माद?
नहीं ठहरता तू आई क्या तुझे गेह की याद?

(५)

कितनी दूर, कहां, किस दिशि में तेरा नित्य-निवास?
विहग-विदेशी, आने का क्यों किया यहां आयास?
वहां कौन तारागण करता है आलोक-प्रदान?
गाती है तटिनी उस भू की बता कौन सा गान?
कैसी स्निग्ध समीर चल रही कैसी वहां सुवास?
किया यहां आने का तूने कैसे यह आयास?

मुकुटधर

*दिन भर सुदूर खेतों में चुगने के पश्चात् बड़ी रात गये महानदी के गर्भ में विश्राम करने को लौटती हुई कुररियों को सम्बोधित कर यह पद्य लिखा गया है। 'कुररी' पक्षी विशेष हैं, जो जाड़े के दिनों में देखे जाते हैं। लेखक।

हिन्दी-साहित्य में इतिहास।

हिन्दी-साहित्य में धर्म-ग्रन्थों की बहुलता है, काव्यों की प्रचुरता है और उपन्यास भी आवश्यकता से अधिक हैं। परन्तु इतिहास, सम्पत्ति-शास्त्र, रसायन और शिल्पविषयक ग्रन्थों का, हिन्दी के साहित्य-क्षेत्र में, अभाव-सा है। कभी किसी उत्साही लेखक ने अर्थ-लाभ की चिन्ता छोड़ कर इन विषयों की दो एक प्रारम्भिक पुस्तकें लिख दीं। परन्तु अभी तक इनमें से किसी भी विषय पर कोई ऐसा ग्रन्थ नहीं लिखा गया जिसका आदर अन्य-भाषा-भाषियों में भी हो, जो हमारे साहित्य की गौरव-वृद्धि कर सके और जिससे संसार के ज्ञान में विशेष वृद्धि हो।

इतिहास ही को लीजिए, जिसका इस लेख से सम्बन्ध है। दूसरे देशों के इतिहास को जाने दीजिए। हमारे देश ही के इतिहास पर कितने ग्रन्थ हैं? जो दो-चार हैं भी उनमें कोई ऐसा नहीं जो किसी दूसरे साहित्य में आदर पा सके। हिन्दी में सबसे पहले राजा शिवप्रसाद ने हमारे देश का एक इतिहास लिखा। जनता उसे भूल गई है; और

अब उसकी याद दिलाने की ज़रूरत भी नहीं। क्योंकि अब उस प्रणाली का अनुसरण करके कोई भी लेखक भारतीय इतिहास लिखने का साहस नहीं कर सकता। उसके पढ़ने से कौतूहल होता है और कुछ आश्चर्य भी। लेखक की राय में हमारे पूर्वज अँगरेज़ों के संसर्ग से भीरु हो गये। मालूम नहीं, उस समय, जब कि राजा शिवप्रसादजी इतिहास लिख रहे थे, भारतवासियों में यह भीरुता-वृत्ति बाक़ी थी भी या नहीं। उसके बाद गुरुकुल के अध्यापक श्रीयुत रामदेव जी ने प्राचीन भारत का एक इतिहास लिखा। यह इतिहास मनुष्यों का नहीं, देवताओं का है। इसकी अधिक आलोचना की आवश्यकता नहीं। क्या यह इतिहास-रत्न किसी दूसरे साहित्य को भेंट करने योग्य है? साहित्य की भलाई इसी में है कि हम इनको भूल जायँ।

वास्तव में हमारे पूर्वज न तो भीरु थे और न देवता ही। वे हमारे आपके समान मनुष्य थे। समय के परिवर्तन से उनके गुण-दोषों में ह्रास-वृद्धि हुई होगी, परन्तु मानव-स्वभाव के विपरीत न वे कभी सत्ययुग में रहे और न अब कलियुग में ही हैं।

इस सिद्धान्त का अनुसरण करके इतिहास-विषयक कुछ छोटी छोटी प्रारम्भिक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। लेखकों का प्रयत्न प्रशंसनीय है। परन्तु इनसे ऐतिहासिक साहित्य का अभाव दूर नहीं होता। अँगरेज़ी-साहित्य में हमारे देश का जितना इतिहास है उसे देखते हुए हमारे साहित्य में कुछ भी नहीं है। इस अभाव का क्या कारण है? इसके कई उत्तर हो सकते हैं। कुछ लोगों का विचार है कि हमारी धार्मिक शिक्षा ही ऐसी है कि हममें ऐतिहासिक आलोचना की शक्ति नहीं आ सकती। यदि संसार मिथ्या है तो लौकिक विषयों की चिन्ता करना भी व्यर्थ है। भारतवासियों की दृष्टि में आत्मा ही ज्ञेय है। अतएव हिन्दू-शास्त्रों का उद्देश उसीका ज्ञान प्राप्त करना है उनका सम्बन्ध इहलोक से नहीं, परलोक से है। इसीलिए प्राचीन भारतीय सभ्यता ने आध्यात्मिक ज्ञान की वृद्धि की; उसने सांसारिक ज्ञान की परवा नहीं की।

परन्तु धर्म ही पर इतिहास-हीनता का दोषारोपण करना ठीक नहीं। मुसलमान तथा ईसाई धर्म में भी पारलौकिक विषयों की ओर विशेष ध्यान दिया गया है और सांसारिक विषयों की ओर कम। तो भी मुसलमानों ने सत्तरहवीं शताब्दी तक और ईसाइयों ने गत दो शताब्दियों से अपनी जाति के अच्छे अच्छे इतिहास-ग्रन्थ लिखे हैं। प्राचीन भारतीय आर्यों ने भी, अपनी पद्धति पर, अपने समय का हाल लिखा है। संस्कृत-साहित्य में ऐसे दो-चार ऐतिहासिक ग्रन्थ हैं भी।

वास्तव में अभाव का कारण धार्मिक नहीं, राजनैतिक है। वही जाति अपना इतिहास लिखती है जो संसार-सङ्ग्राम में विजय प्राप्त करती है। उसका इतिहास वीरों की गाथा है और वह जातीयता के रङ्ग में ही रँगा रहता है। रामायण और महाभारत आर्य-सभ्यता की विजय-पताका के ही सूचक हैं। होमर ने यूनान का विजय-गान और सिसरो ने रोम का यशोगान किया है। परन्तु किसी प्राचीन हिन्दू, यवन या रोम-निवासी ने अपने देश अथवा जाति के अधःपतन का वर्णन नहीं किया। अँगरेज़ी के इतिहास-साहित्य में पिछली दो शताब्दियों को जितना स्थान दिया गया है उतना और किसी काल को नहीं। क्योंकि इन्हीं दो सौ वर्षों के भीतर अँगरेज़ी-राज्य की समृद्धि हुई है। फ़रासीसी इतिहास-साहित्य में अर्धांश राज्यक्रान्ति और नेपोलियन का है, और आधे में है दो हज़ार वर्षों का इतिहास, क्योंकि इसी काल के भीतर फ़्रांस स्वतन्त्र हुआ और नेपोलियन ने अपने प्रतिभा-बल से उसकी पताका को मास्को से लिसबन तक

उड़ाया। हमारे देश में मुसलमानों ने भी तभी तक भारतवर्ष का इतिहास लिखा जब तक उनका झण्डा दिल्ली के किले पर फहराता रहा। आखिरी मुसलमान इतिहास-लेखक खफ़ीख़ाँ थे। उनका बादशाहनामा औरंगज़ेब के मरने के बाद प्रकाशित हुआ। किसी हिन्दू-लेखक ने मुसलमानों की राज्य-स्थापना का हाल नहीं लिखा और किसी भारतीय ने मुग़ल साम्राज्य के पतन और अँगरेज़ी राज्य के उत्थान का विस्तृत वर्णन नहीं किया।

परन्तु विजय का वर्णन करने में आनन्द चाहे जितना आता हो, ह्रास का विवरण अवगत करने से पराजित जाति को अधिक लाभ होता है। यदि वह जाति अपनी अवनति के कारणों पर विचार करे, उससे शिक्षा ग्रहण करे और समय निकल जाने के पहले उसका उपयोग करे, तो उसका अधःपतन बन्द हो जाय और शायद वह उन्नति की सीढ़ी पर भी चढ़ने लगे।

हिन्दी में, आधुनिक काल में, इतिहास-लेखकों की कमी होने का एक और कारण है। हिन्दी राज-भाषा नहीं। शिक्षालयों में उसकी कोई क़द्र नहीं। जनता के प्रायः अशिक्षित होने के कारण उससे भी सहारा नहीं मिलता। इसलिए हिन्दी के योग्य लेखक को पेट भर भोजन मिलना भी मुश्किल है। और यह स्पष्ट है कि खाने को हो तो हिन्दी की सेवा की जाय।

परन्तु इस दशा में भी हिन्दी में इतिहास की पूर्ति करना परम आवश्यक है। देश में एक छोर से दूसरे छोर तक जागृति के भाव दृष्टिगोचर होरहे हैं। अब भारतवासी अपनी जातीयता को समझने लगे हैं। उनमें अब यह कहने की शक्ति आगई है कि हमारे अधिकार और कर्तव्य संसार की किसी भी जाति से कम नहीं। इस जगी हुई जाति को उन्नति के मार्ग पर लेजाने के लिए इतिहास ही दीपक का काम दे सकता है।

यह कहा जा सकता है कि नये इतिहास क्यों लिखे जायँ। अँगरेज़ी-साहित्य में जो इतिहास-रत्न हैं उन्हीं के अनुवाद से क्या हम अपनी आवश्यकताओं को पूर्ण नहीं कर सकते?

इस पर निवेदन यह है कि हम अँगरेज़ी-साहित्य के बहुत ऋणी हैं। बार बार इस ऋण को स्वीकार कर चुके हैं। जिन अँगरेज़ों ने हमारे देश का इतिहास लिख कर हमें इतिहास के अध्ययन के लिए उत्साहित किया है वे धन्यवाद के पात्र हैं। परन्तु उनके इतिहास-ग्रन्थों से हमारी हानि भी हुई है। पर इसमें उनका कोई दोष नहीं। वे कितने ही पक्षपात-रहित होकर क्यों न लिखें, परन्तु हैं तो वे भी मनुष्य ही। वे हमारे देश में पैदा नहीं हुए; हमारा उनका धर्म एक नहीं; वे हमारे आन्तरिक जीवन से परिचित भी नहीं; और सबसे बड़ी बात यह है कि उन्हीं की जाति का प्रभुत्व भारत पर है। उनकी तीव्र आलोचना ने हमारे ह्रास के कारणों को अच्छी तरह प्रकट कर दिया है। इतना लाभ हमें अवश्य हुआ। रोगी के रोग का निदान चिकित्सा का पहला क्रम है। परन्तु चिकित्सा या तो वे करते ही नहीं, या हम उनकी चिकित्सा-पद्धति से सहमत नहीं। एक आगन्तुक डाक्टर पर हमारी अश्रद्धा होना स्वाभाविक है। उनकी राय से हमारे दिमाग़ को जो कुछ लाभ हुआ हो सो हुआ हो, परन्तु हमारी आत्मा को बड़ी हानि पहुँची है। हम अपने को हीन समझने लगे हैं। अपने जातीय रोग को असाध्य मान कर हम अपने शासकों के भिक्षुक हो गये हैं। हमें यही अन्तिम शिक्षा मिलती है कि यदि आज अँगरेज़ भारतवर्ष से चले जायँ तो देश में अराजकता फैल जाय, और शान्ति तथा समृद्धि से भी हम हाथ धो बैठें। हमारे कल्याण के लिए अँगरेज़ हम पर शासन कर रहे हैं; उनका हम पर यह बड़ा एहसान है।

अनुवादित इतिहास-ग्रन्थों पर एक और भी

एतराज़ हो सकता है। इतिहास की भाषा सरस होनी चाहिए। अनुवाद में सरसता लाना कठिन है। अतएव ऐसे अनुवादों से क्या लाभ जिनमें परिश्रम तो किया जाय, पर जनता उसे निष्फल कर दे।

चाहे जिस दृष्टि से देखिए, हिन्दी में भारत के एक बड़े, मौलिक, इतिहास-ग्रन्थ की आवश्यकता प्रकट होती है।

सौभाग्यवश हमारे मार्ग में अब उतनी कठिनाइयाँ नहीं हैं जितनी पचास वर्ष पहले थीं। सामग्री की भी अब कमी नहीं। भारत के इतिहास की यथेष्ट सामग्री अँगरेज़ी भाषा में है। प्राचीन इतिहास के अभाव को कलकत्ता-विश्वविद्यालय के इतिहासप्रेमी स्नातक दूर कर रहे हैं। अपने अपने विषयों के धुरन्धर विद्वान् लेखक भी हैं। आवश्यकता है उत्साह की, और एक ऐसे नेता की जो उसे कार्य-रूप में परिणत कर सके। प्रकाशक घाटे की सम्भावना हृदय से दूर करदें। कदाचित् लेखकों को यथेष्ट पुरस्कार न मिले, परन्तु लाभ अवश्य होगा। जनता हमारी सहायता करेगी। जब भारतीय सज्जन शिक्षा की बागडोर हाथ में लेंगे तब भी क्या हिन्दी अपने को अबला समझेगी ?

हम यह नहीं कहते कि इतिहास-लेखक स्वदेश का पक्षपात करें; हम यह भी नहीं चाहते कि वे हमारे दोषों को गुप्त रक्खें और हमारे गुणों को बढ़ा कर दिखावें। यदि वे ऐसा करेंगे तो इतिहास का महत्त्व जाता रहेगा और हमको उससे कोई लाभ न पहुँचेगा। परन्तु उनसे हम सहानुभूति की अवश्य आशा करते हैं। जब हमको विश्वास हो जाय कि आप हमारे भले ही के लिए हमारे गुण-दोष दिखा रहे हैं, तभी हम लाभ उठा सकते हैं। जनता स्वदेशीय लेखक पर ही विश्वास कर सकती है, आगन्तुक पर नहीं। यह स्वाभाविक है; इसमें बुरा मानने की कोई बात नहीं।

इतिहास-लेखक पक्षपात छोड़ कर अवश्य लिखें। पर उनके लेखों में सरसता अवश्य हो, नहीं तो उनके ग्रन्थों का जनता में प्रचार न हो सकेगा। परन्तु ग्रन्थ को रुचिकर बनाते समय इतिहास के तात्पर्य को भूल न जाना चाहिए। भूत-काल का वर्तमान से विच्छेद न होने देना चाहिए। प्राचीन काल की उन्हीं घटनाओं, विचार-धाराओं और कार्य-प्रणालियों पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए जिनका समाज पर चिरस्थायी प्रभाव पड़ा हो। भूत-काल ही के द्वारा हम वर्तमान को समझ सकते हैं। और इनसे ही भविष्य का निर्माण होता है। इसलिए इतिहास-लेखक भूत और भविष्य, दोनों पर, दृष्टि रक्खे। तभी उसके लिखे हुए इतिहास से समाज को विशेष लाभ पहुँच सकता है, तारीख़वार गाथा से नहीं।

हमारा तात्पर्य अभी तक भारत के इतिहास ही से था, क्योंकि पहले अपने ही देश का इतिहास जानने की आवश्यकता है। परन्तु हमको अपने पड़ोसी राष्ट्रों की, और विशेष कर इँगलैंड की, नीति पर बहुधा विचार करना पड़ता है। अतएव इन देशों के भी इतिहास लिखे जाने की आवश्यकता है। इँगलैंड, टर्की, फ़ारिस, अफ़ग़ानिस्तान, चीन और जापान से हमारा बहुत समय से सम्बन्ध है। इनके इतिहास से साधारण जन-समाज को परिचित करा देने से बहुत से टेढ़े प्रश्न हल हो सकेंगे—विशेष कर इस आगामी युग में, जब उनकी राय के बिना हमारे नेता आगे क़दम ही न रख सकेंगे। भारतवर्ष का इतिहास विस्तृत हो। इँगलैंड के इतिहास में उसके राजनैतिक विकास पर ख़ूब ध्यान देना चाहिए और उसमें भारत से इँगलैंड का सम्बन्ध भी स्पष्ट कर देना चाहिए। अन्य समीपवर्ती देशों के छोटे छोटे इतिहास हों; पर वे रोचक भाषा में लिखे हुए और सहानुभूति से पूर्ण हों, क्योंकि इतिहास लिख कर द्वेषाग्नि बढ़ाना किसी देश के लिए लाभदायक नहीं। आशा है, हिन्दी-साहित्य-प्रेमियों का ध्यान इधर आकृष्ट होगा।

अध्यापक

ताई।

"ताऊजी हमें लेलगाली (रेलगाड़ी) ला दोगे ?" यह कहता हुआ एक पञ्चवर्षीय बालक बाबू रामजीदास की ओर दौड़ा।

बाबू साहब ने दोनों बाँहें फैला कर कहा—"हाँ बेटा, ला देंगे"।

उनके इतना कहते कहते बालक उनके निकट आ गया। उन्होंने बालक को गोद में उठा लिया और उसका मुख चूम कर बोले—"क्या कलेगा लेलगाली ?" बालक बोला—"उसमें बैठ के बली दूल जायँगे। हम भी जायँगे, चुन्नी को भी ले जायँगे। बाबूजी को नहीं ले जायँगे। हमें लेलगाली नहीं ला देते। ताऊ जी, तुम ला दोगे तो तुम्हें ले जायँगे।"

बाबू—"और किसे ले जायगा ?"

बालक कुछ क्षण तक सोच कर बोला—"बस औल किसी को नहीं ले जायँगे।"

पास ही बाबू रामजीदास की अर्द्धाङ्गिनी बैठी थीं। बाबू साहब ने उनकी ओर इशारा करके कहा—"और अपनी ताई को नहीं ले जायगा" ?

बालक कुछ क्षण तक अपनी ताई की ओर देखता रहा। ताई जी उस समय कुछ चिढ़ी हुई सी बैठी थीं। बालक को उनके मुख का वह भाव अच्छा न लगा। अतएव वह बोला—"ताई को नहीं ले जायँगे।"

ताई जी सुपारी काटती हुई बोलीं—"अपने ताऊजी ही को ले जा, मेरे ऊपर दया रख"।

ताईजी ने यह बात बड़े रूखेपन से कही। बालक ताईजी के शुष्क व्यवहार को तुरन्त ताड़ गया। इस पर बाबू साहब ने पूछा—"ताई को क्यों नहीं ले जायगा" ?

बालक—"ताई हमें प्याल (प्यार) नहीं कलतीं।"

बाबू—"जो प्यार करें तो ले जायगा" ?

बालक को इसमें कुछ सन्देह था। ताईजी का भाव देख कर उसे यह आशा नहीं थी कि वे उसे प्यार करेंगी। इससे बालक मौन रहा।

बाबू साहब ने फिर पूछा—"क्यों रे, बोलता नहीं ? ताई प्यार करें तो लेल पर बिठा कर ले जायगा ?"

बालक ने ताऊजी को प्रसन्न करने के लिए केवल सर हिला कर स्वीकार कर लिया, परन्तु मुख से कुछ न कहा।

बाबू साहब उसे अपनी अर्द्धाङ्गिनी देवी के पास ले जाकर उनसे बोले—"लो इसे प्यार कर लो, तो यह तुम्हें भी ले जायगा"। परन्तु बच्चे की ताई श्रीमती रामेश्वरी देवी को पति की यह चुहलबाज़ी एक आँख न भाई। अतएव वे तुनक कर बोलीं—"तुम्हीं रेल पर बैठ कर जाओ, मुझे नहीं जाना है"।

बाबू साहब ने रामेश्वरी देवी की बात पर ध्यान न दिया और बच्चे को उनकी गोद में बिठाने की चेष्टा करते हुए बोले—"प्यार नहीं करोगी तो फिर रेल में नहीं बिठायेगा। क्यों रे मनोहर ?"

मनोहर ने ताऊजी की बात का उत्तर न दिया। उधर ताईजी ने मनोहर को अपनी गोद से ढकेल दिया। मनोहर नीचे गिर पड़ा। शरीर में तो चोट नहीं लगी; पर हृदय में चोट लगी। बालक रो पड़ा।

बाबू साहब ने बालक को गोद में उठा लिया और चुमकार पुचकार कर चुप किया। तत्पश्चात् उसे कुछ पैसे तथा रेलगाड़ी ला देने का वचन देकर छोड़ दिया। बालक मनोहर भयपूर्ण दृष्टि से अपनी ताई की ओर ताकता हुआ उस स्थान से चला गया।

मनोहर के चले जाने पर बाबू रामजीदास रामेश्वरी देवी से बोले—"तुम्हारा यह कैसा व्यवहार था ? बच्चे को ढकेल दिया। जो उसके चोट लग जाती तो ?"

रामेश्वरी देवी मुँह चढ़ा कर बोलीं—"लग जाती तो लग जाती। क्यों मेरी खोपड़ी पर लादे देते थे ? आपही तो उसे मेरे ऊपर डालते थे और आप ही अब ऐसी बातें करते हैं"।

बाबू साहब कुढ़ कर बोले—"इसी को खोपड़ी पर लादना कहते हैं ?"

रामेश्वरी—"और नहीं किसे कहते हैं ? तुम्हें तो अपने आगे और किसी का सुख-दुख सूझता ही नहीं। न जाने किस समय किसका जी कैसा है ? तुम्हें इन बातों की कोई परवा ही नहीं। अपनी चुहल से काम।"

बाबू—"बच्चों की प्यारी-प्यारी बातें सुन कर तो चाहे

जैसा जी हो प्रसन्न हो जाता है। परन्तु तुम्हारा जी न जाने किस धातु का बना हुआ है"!

रामेश्वरी--"तुम्हारा हो जाता होगा। और, होने को होता भी है, पर वैसा बचा भी तो हो। पराये धन से भी कहीं घर भरता है"।

बाबू साहब कुछ क्षण तक नीरव रह कर बोले—"यदि अपना सगा भतीजा भी पराया धन कहा जा सकता है तो फिर मैं नहीं समझता कि अपना धन किसे कहेंगे"।

रामेश्वरी देवी कुछ उत्तेजित होकर बोलीं—"बातें बनानी बहुत आती हैं। तुम्हारा भतीजा है। तुम चाहे जो समझो। पर मुझे ये बातें अच्छी नहीं लगतीं। हमारे भाग ही फूटे हैं। नहीं तो ये दिन काहे को देखने पड़ते। तुम्हारा चलन तो संसार से उलटा है। आदमी सन्तान के लिए न जाने क्या क्या करते हैं—पूजा-पाठ कराते हैं, व्रत रखते हैं; परन्तु तुम्हें इन बातों से क्या काम? रात-दिन भाई-भतीजों में लवलीन रहते हो"।

बाबू साहब के मुख पर घृणा का भाव उदय हो आया। उन्होंने कहा—"पूजा-पाठ, व्रत सब ढकोसला है। जो वस्तु भाग्य में नहीं वह पूजा-पाठ से प्राप्त नहीं हो सकती। मेरा तो इस पर अटल विश्वास है"।

श्रीमतीजी कुछ कुछ रुआसे स्वर में बोलीं—"इसी विश्वास ने तो सब चौपट कर रक्खा है। ऐसे ही विश्वास पर सब बैठ जायँ तो काम कैसे चले? सब विश्वास पर ही बैठे रहें। आदमी काहे को किसी बात के लिए चेष्टा करे"।

बाबू साहब ने सोचा—"मूर्ख स्त्री के मुँह लगना ठीक नहीं।" अतएव वे स्त्री की बात का कुछ उत्तर न देकर वहाँ से टल गये।

(२)

बाबू रामजीदास धनी आदमी हैं। कपड़े की आढ़त का काम करते हैं। लेन-देन भी है। इनके एक छोटे भाई हैं। उनका नाम है कृष्णदास। दोनों भाइयों का परिश्रम एक ही में है। बाबू रामजीदास की आयु ३५ वर्ष के लगभग है। छोटे भाई कृष्णदास की २१ के लगभग। रामजीदास निस्सन्तान हैं। कृष्णदास के दो सन्तान हैं। एक पुत्र—वही पुत्र जिससे पाठक परिचित हो चुके हैं—और एक कन्या है जिसकी आयु दो वर्ष के लगभग है।

रामजीदास अपने छोटे भाई और उनकी सन्तान से बड़ा स्नेह रखते हैं—ऐसा स्नेह कि उस स्नेह के प्रभाव से उन्हें अपनी सन्तान-हीनता कभी महसूस ही नहीं होती। छोटे भाई की सन्तान को वे अपनी ही सन्तान समझते हैं। दोनों बच्चे भी रामजीदास से इतने हिले हुए हैं कि वे उन्हें अपने पिता से भी अधिक समझते हैं।

परन्तु रामजीदास की पत्नी श्रीमती रामेश्वरी देवी को अपनी सन्तान-हीनता का बड़ा दुःख है। वे दिन-रात सन्तान ही के सोच में घुला करती हैं। छोटे भाई की सन्तान पर पति का प्रेम उनकी आँखों में काँटे की तरह खटकता है।

रात को भोजन इत्यादि से निवृत्त होकर रामजीदास शय्या पर लेटे शीतल और मन्द वायु का आनन्द ले रहे थे। पास ही दूसरी शय्या पर रामेश्वरी देवी हथेली पर सर रक्खे किसी चिन्ता में बैठी हुई थीं। दोनों बच्चे बाबू साहब के पास से अभी उठ कर अपनी माँ के पास गये थे।

बाबू साहब ने अपनी स्त्री की ओर करवट लेकर कहा—"आज तुमने मनोहर को इस बुरी तरह से ढकेला था कि मुझे अब तक उसका दुःख है। कभी कभी तो तुम्हारा व्यवहार बिलकुल ही अमानुषिक हो उठता है।"

रामेश्वरी देवी बोलीं—"तुम्हीं ने मुझे ऐसा बना रक्खा है। उस दिन उस पण्डित ने कहा था कि हम दोनों के जन्म-पत्र में सन्तान का जोग है और उपाय करने से सन्तान हो भी सकती है। उसने उपाय भी बताये थे; पर तुमने उनमें से एक भी उपाय करके न देखा। बस, तुम तो इन्हीं दोनों में मगन हो। तुम्हारी इस बात से रात-दिन मेरा कलेजा सुलगता रहता है। आदमी उपाय तो करके देखता है। फिर होना न होना तो भगवान् के अधीन है।"

बाबू साहब हँस कर बोले—"तुम्हारी जैसी सीधी स्त्री भी—क्या कहूँ। तुम इन ज्योतिषियों की बातों पर विश्वास करती हो? दुनिया भर के झूठे, धूर्त्त। ये झूठ बोलने ही की रोटियाँ खाते हैं।"

रामेश्वरी देवी तुनक कर बोलीं—"तुम्हें तो सारा संसार झूठा ही दिखाई पड़ता है। ये पोथी-पुराण भी सब झूठे हैं। वे कुछ अपनी तरफ़ से तो बना के कहते ही नहीं। शास्त्र में जो लिखा है वही वे भी कहते हैं।

शास्त्र झूठा है तो वे भी झूठे हैं। अँगरेज़ी क्या पढ़ी, अपने आगे किसी को गिनते ही नहीं। जो बातें बाप-दादे के समय से चली आई हैं उन्हें भी झूठा बताते हैं।"

बाबू साहब—"तुम बात तो समझती नहीं। अपनी ही ओटे जाती हो। मैं यह नहीं कहता कि ज्योतिष-शास्त्र झूठा है। सम्भव है, वह सच्चा हो। परन्तु ज्योतिषियों में अधिकांश झूठे होते हैं। उन्हें ज्योतिष का पूर्ण ज्ञान तो होता नहीं। दो-एक छोटी-मोटी पुस्तकें पढ़ कर ज्योतिषी बन बैठते हैं और लोगों को ठगते फिरते हैं। ऐसी दशा में उनकी बातों पर कैसे विश्वास किया जा सकता है?"

रामेश्वरी—"हूँ, सब झूठे ही हैं। तुम्हीं एक बड़े सच्चे हो। अच्छा एक बात पूछती हूँ। भला तुम्हारे जी में सन्तान की इच्छा क्या कभी नहीं होती?"

इस बार रामेश्वरी देवी ने बाबू साहब के हृदय का कोमल स्थान पकड़ा। वे कुछ क्षण तक चुप रहे। तत्पश्चात् एक लम्बी सांस लेकर बोले—"भला ऐसा कौन मनुष्य होगा जिसके हृदय में सन्तान का मुख देखने की इच्छा न हो। परन्तु किया क्या जाय? जब नहीं है और न होने की कोई आशा ही है तब उसके लिए व्यर्थ चिन्ता करने से क्या लाभ? इसके सिवा जो बात अपनी सन्तान से होती वही भाई की सन्तान से भी हो रही है। जितना स्नेह अपनी पर होता उतना ही इन पर भी है। जो आनन्द उनकी बाल-क्रीडा से आता वही इनकी क्रीडा से भी आ रहा है। फिर मैं नहीं समझता कि चिन्ता क्यों की जाय?"

रामेश्वरी देवी कुढ़ कर बोलीं—"तुम्हारी समझ को मैं क्या कहूँ। इसीसे तो मैं रात-दिन जला करती हूँ। भला यह तो बताओ—तुम्हारे पीछे क्या इन्हीं से तुम्हारा नाम चलेगा?"

बाबू साहब हँस कर बोले—"अरे तुम भी कहाँ की पोच बातें लाईं, नाम सन्तान से नहीं चलता। नाम अपनी सुकृति से चलता है। तुलसीदासजी को देश का बच्चा बच्चा जानता है। सूरदासजी को मरे कितने दिन हो चुके। इसी प्रकार जितने बड़े बड़े महात्मा हो गये हैं उन सबका नाम क्या उनकी सन्तान ही की बदौलत चल रहा है? सच पूछो तो सन्तान से जितना नाम चलने की आशा रहती है उतनी ही नाम डूब जाने की भी सम्भावना रहती है। परन्तु सुकृति एक ऐसी वस्तु है कि उससे नाम बढ़ने के सिवा घटने की कभी आशङ्का रहती ही नहीं। हमारे शहर में राय गिरधारीलाल कितने नामी आदमी हैं। उनके सन्तान कहाँ बैठी है। उनकी धर्मशाला और अनाथालय से उनका नाम अब तक चला जा रहा है; और अभी न जाने कितने दिनों तक चला जायगा।"

रामेश्वरी देवी—"शास्त्र में लिखा है कि जिसके पुत्र नहीं होता उसकी मुक्ति नहीं होती।"

बाबू—"मुक्ति पर मुझे विश्वास ही नहीं। मुक्ति है किस चिड़िया का नाम। यदि मुक्ति होना मान भी लिया जाय तो यह कैसे माना जा सकता है कि सब पुत्रवानों की मुक्ति ही हो जाती है। मुक्ति का भी क्या सहल उपाय है। ये जितने पुत्रवाले हैं सबकी तो मुक्ति ही हो जाती होगी!"

रामेश्वरी देवी निरुत्तर हो कर बोलीं—"अब तुम से कौन बकवास करे। तुम तो अपने सामने किसी की मानते ही नहीं।"

मनुष्य का हृदय बड़ा ममत्व-प्रेमी है। कैसी ही उपयोगी और कितनी ही सुन्दर वस्तु क्यों न हो, परन्तु जब तक मनुष्य उस वस्तु को पराई समझता है तब तक वह उससे प्रेम नहीं करता। भद्दी से भद्दी और बिलकुल काम में न आनेवाली वस्तु को भी यदि मनुष्य अपनी समझता है तो वह उससे प्रेम करता है। पराई वस्तु कितनी ही मूल्यवान् क्यों न हो, कितनी ही उपयोगी क्यों न हो, कितनी ही सुन्दर क्यों न हो; परन्तु उसके नष्ट होने पर मनुष्य कुछ भी दुःख महसूस नहीं करता। क्यों? इसलिए कि वह वस्तु उसकी नहीं है, पराई है। अपनी वस्तु कितनी ही भद्दी हो, काम में न आनेवाली हो, परन्तु उसके नष्ट होने पर मनुष्य को दुख होता है। ? क्यों? इसलिए कि वह अपनी चीज़ है। कभी कभी ऐसा भी होता है कि मनुष्य पराई चीज़ से प्रेम करने लगता है। ऐसी दशा में भी जब तक मनुष्य उस वस्तु को अपनी बना कर नहीं छोड़ता, अथवा अपने हृदय में यह विचार नहीं दृढ़ कर लेता कि यह वस्तु मेरी है तब तक उसे सन्तोष नहीं होता। ममत्व से प्रेम उत्पन्न होता है, और प्रेम से ममत्व उत्पन्न होता है। इन दोनों का साथ चोली दामन का सा है। ये कभी पृथक् नहीं किये जा सकते।

यद्यपि रामेश्वरी देवी को माता बनने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था, तथापि उसका हृदय एक माता का हृदय बनने की पूरी योग्यता रखता था। उसके हृदय में वे गुण विद्यमान थे, अन्तर्निहित थे, जो माता के हृदय में होते हैं। परन्तु उनका विकास नहीं हुआ था। उसका हृदय उस भूमि की तरह था जिसमें बीज तो पड़ा हुआ है; पर उसको सींच कर और इस प्रकार बीज को प्रस्फुटित करके भूमि के ऊपर लानेवाला कोई नहीं।

इसीलिए उसका हृदय उन बच्चों की ओर खिँचता तो था, परन्तु जब उसे ध्यान आता था कि ये बच्चे मेरे नहीं, दूसरे के हैं, तब उसके हृदय में उनके प्रति द्वेष उत्पन्न होता था, घृणा पैदा होती थी। विशेषतः उस समय उसके द्वेष की मात्रा और भी बढ़ जाती थी जब वह यह देखती थी कि उसके पतिदेव उन बच्चों पर प्राण देते हैं जो उसके (रामेश्वरी देवी के) नहीं हैं।

शाम का समय था। रामेश्वरी देवी खुली छत पर बैठी हवा खा रही थीं। पास ही उनकी देवरानी भी बैठी थी। दोनों बच्चे छत पर दौड़ दौड़ कर खेल रहे थे। रामेश्वरी देवी उनके खेल को देख रही थीं। इस समय रामेश्वरी देवी को उन बच्चों का खेलना कूदना बड़ा भला मालूम हो रहा था। हवा में उड़ते हुए उनके बाल, कमल की तरह खिले हुए उनके नन्हे नन्हे मुख, उनकी प्यारी प्यारी तोतली बातें, उनका चिल्लाना, भागना, लोट जाना इत्यादि क्रीड़ायें उसके हृदय को शीतल कर रही थीं। सहसा मनोहर अपनी बहन को मारने दौड़ा। वह खिलखिलाती हुई दौड़ कर रामेश्वरी देवी की गोद में जा गिरी। उसके पीछे पीछे मनोहर भी दौड़ता हुआ आया और वह भी उन्हीं की गोद में जा गिरा। रामेश्वरी देवी उस समय सारा द्वेष भूल गईं। उन्होंने दोनों बच्चों को उसी प्रकार हृदय से लगाया जिस प्रकार वह मनुष्य लगाता है जो कि बच्चों के लिए तरस रहा हो। उन्होंने बड़ी सतृष्णता से दोनों को प्यार किया। उस समय यदि कोई अपरिचित मनुष्य उन्हें देखता तो उसे यही विश्वास होता कि रामेश्वरी देवी ही उन बच्चों की माता हैं।

दोनों बच्चे बड़ी देर तक उनकी गोद में खेलते रहे। सहसा उसी समय किसी के आने की आहट पाकर बच्चों की माता वहाँ से उठ कर चली गई।

"मनोहर, ले रेलगाड़ी"—यह कहते हुए बाबू रामजीदास छत पर आये। उनका स्वर सुनते ही दोनों बच्चे रामेश्वरी देवी की गोद से तड़प कर निकल भागे। रामजीदास ने पहले दोनों को खूब प्यार किया। फिर बैठ कर रेलगाड़ी दिखाने लगे।

इधर रामेश्वरी देवी की नींद सी टूटी। पति को बच्चों में लवलीन होते देख उनकी भौंहें तन गईं। बच्चों के प्रति हृदय में फिर वही घृणा और द्वेष का भाव जागृत हो गया।

बच्चों को रेलगाड़ी देकर बाबू साहब रामेश्वरी देवी के पास आये और मुसकरा कर बोले—"आज तो तुम बच्चों को बड़ा प्यार कर रही थीं। इससे मालूम होता है कि तुम्हारे हृदय में भी इनके प्रति कुछ प्रेम अवश्य है।"

रामेश्वरी देवी को पति की यह बात बहुत बुरी लगी। उन्हें अपनी कमज़ोरी पर बड़ा दुख हुआ, केवल दुख ही नहीं, अपने ऊपर क्रोध भी आया। वह दुःख और क्रोध पति के पूर्वोक्त वाक्य से और भी बढ़ गया। उनकी कमज़ोरी पति पर प्रकट हो गई, यह बात उनके लिए असह्य हो उठी। रामजीदास बोले—"इसी लिए मैं कहता हूँ कि अपनी सन्तान के लिए सोच करना वृथा है। यदि तुम इनसे प्रेम करने लगो तो तुम्हें यही अपनी सन्तान प्रतीत होने लगेंगे। मुझे इस बात से प्रसन्नता है कि तुम इनसे स्नेह करना सीख रही हो।"

यह बात बाबू साहब ने नितान्त शुद्ध हृदय से कही थी। परन्तु रामेश्वरी देवी को इसमें व्यङ्ग्य की तीक्ष्ण गन्ध मालूम हुई। वे कुढ़ कर मन ही मन बोलीं—"इन्हें मौत भी नहीं आती; मर जायँ; पाप कटे। आठों पहर आँखों के सामने रहने से प्यार करने को जी ललचा ही उठता है। इनके मारे कलेजा और भी जला करता है।"

बाबू साहब ने पत्नी को मौन देख कर कहा—"अब झेंपने से क्या लाभ? अपने प्रेम को छिपाने की चेष्टा करना व्यर्थ है। छिपाने की आवश्यकता भी नहीं।"

रामेश्वरी देवी जल-भुन कर बोलीं—"मुझे क्या पड़ी है जो मैं प्रेम करूँगी। तुम्हीं को मुबारक रहे। निगोड़े

आप ही आ आ के घुसते हैं। एक घर में रहने से कभी कभी हँसना बोलना ही पड़ता है। अभी परसों ज़रा यों ही ढकेल दिया उस पर तुमने सैकड़ों बातें सुनाईं। सङ्कट में प्राण हैं, न यों चैन, न वों चैन।"

बाबू साहब को पत्नी के वाक्य सुन कर बड़ा क्रोध आया। उन्होंने कर्कश स्वर में कहा—"न जाने कैसे हृदय की स्त्री है। अभी अच्छी ख़ासी बैठी बच्चों को प्यार कर रही थी। मेरे आते ही गिरगिट की तरह रङ्ग बदलने लगी। अपनी इच्छा से चाहे जो करे, पर मेरे कहने से बल्लियों उछलती है। न जाने मेरी बातों में कौन सा विष घुला रहता है। यदि मेरा कहना ही बुरा मालूम होता है तो न कहा करूँगा। पर इतना याद रक्खो कि अब जो कभी इनके विषय में निगोड़े सिगोड़े इत्यादि अप-शब्द निकाले तो अच्छा न होगा। तुमसे मुझे ये बच्चे कहीं अधिक प्यारे हैं।"

रामेश्वरी देवी ने इसका कोई उत्तर न दिया। अपने क्षोभ तथा क्रोध को वे आँखों द्वारा निकालने लगीं।

जैसे ही जैसे बाबू रामजीदास का स्नेह दोनों बच्चों पर बढ़ता जाता वैसे ही वैसे रामेश्वरी देवी के द्वेष और घृणा की मात्रा भी बढ़ती जाती थी। प्रायः बच्चों के पीछे पति-पत्नी में कहा-सुनी हो जाती थी और रामेश्वरी देवी को पति के कटु वचन सुनने पड़ते थे। जब रामेश्वरी देवी ने यह देखा कि बच्चों के कारण ही वे पति की दृष्टि से गिरती जा रही हैं तब उनके हृदय में बड़ा तूफ़ान उठा। उन्होंने सोचा—पराये बच्चों के पीछे ये मुझसे प्रेम कम करते जाते हैं। मुझे हर समय बुरा-भला कहा करते हैं। इनके लिए ये बच्चे ही सब कुछ हैं, मैं कुछ भी नहीं! दुनिया मरती जाती है, पर इन दोनों को मौत नहीं। ये पैदा होते ही क्यों न मर गये। न ये होते न मुझे ये दिन देखने पड़ते। जिस दिन ये मरेंगे उस दिन घी के दिये जलाऊँगी। इन्होंने ही मेरा घर सत्यानाश कर रक्खा है। इसी प्रकार कुछ दिन व्यतीत हुए।

एक दिन नियमानुसार रामेश्वरी देवी छत पर अकेली बैठी हुई थीं। उनके हृदय में अनेक प्रकार के विचार आ रहे थे। विचार और कुछ नहीं, वही अपनी निज की सन्तान का अभाव, पति का भाई की सन्तान के प्रति अनुराग इत्यादि इत्यादि। कुछ देर बाद जब उनके विचार स्वयं उन्हीं को कष्टदायक प्रतीत होने लगे तब वे अपना ध्यान दूसरी ओर लगाने के लिए उठ कर टहलने लगीं।

वे टहल ही रही थीं कि मनोहर दौड़ता हुआ आया। मनोहर को देख कर उनकी भ्रकुटी चढ़ गई और वे छत की चहारदीवारी पर हाथ रख कर खड़ी हो गईं।

शाम का समय था। आकाश में रङ्ग-बिरङ्गे पतङ्ग उड़ रहे थे। मनोहर कुछ देर तक खड़ा पतङ्गों को देखता रहा और यह सोचता रहा कि कोई पतङ्ग कट कर उसकी छत पर गिरे तो क्या ही आनन्द आवे। देर तक पतङ्ग गिरने की आशा करने के पश्चात् वह दौड़ कर रामेश्वरी देवी के पास आया और उनकी टाँगों में लिपट कर बोला—"ताई हमें पतङ्ग मँगा दो।" रामेश्वरी देवी ने झिड़क कर कहा—"चल हट, अपने ताऊ से माँग जाके।"

मनोहर कुछ अप्रतिभ होकर फिर आकाश की ओर ताकने लगा। थोड़ी देर बाद उससे फिर न रहा गया। इस बार उसने बड़े लाड़ में आकर अत्यन्त करुणस्वर में कहा—"ताई पतङ्ग मँगादो; हम भी उड़ावेंगे।"

इस बार उसकी भोली प्रार्थना से रामेश्वरी देवी का कलेजा कुछ पसीज गया। वे कुछ क्षण तक उसकी ओर स्थिर दृष्टि से देखती रहीं। फिर उन्होंने एक दीर्घ-निश्वास लेकर मनही मन कहा—यदि यह मेरा पुत्र होता तो आज मुझसे बढ़ कर भाग्यवान् स्त्री संसार में दूसरी न होती। निगोड़-मारा कितना सुन्दर है और कैसी प्यारी प्यारी बातें करता है कि यही जी चाहता है कि उठा कर छाती से लगालें।

यह सोच कर वे उसके सर पर हाथ फेरने ही वाली थीं कि इतने में मनोहर उन्हें मौन देख कर बोला—"तुम हमें पतङ्ग नहीं मँगवा दोगी तो ताऊ जी से कह कर तुम्हें पिटवावेंगे।"

यद्यपि बच्चे की इस भोली बात में भी बड़ी मधुरता थी तथापि रामेश्वरी देवी का मुख क्रोध के मारे लाल हो गया। वे उसे झिड़क कर बोलीं—"जा, कहदे अपने ताऊ जी से, देखूँ वे मेरा क्या करलेंगे।"

मनोहर भयभीत होकर उनके पास से हट आया और फिर सतृष्ण नेत्रों से आकाश में उड़ते हुए पतङ्गों को देखने लगा।

इधर रामेश्वरी देवी ने सोचा—यह सब ताऊ जी के दुलार का फल है कि बालिश्त भर का लड़का भी मुझे धमकाता है। ईश्वर करे इस दुलार पर बिजली टूटे।

उसी समय आकाश से एक पतङ्ग कट कर उसी छत की ओर आया और रामेश्वरी देवी के ऊपर से होता हुआ छज्जे की ओर गया। छत के चारों ओर चहारदीवारी थी। जहाँ रामेश्वरी देवी खड़ी हुई थीं केवल वहाँ एक द्वार था जिससे कि छज्जे पर आ जा सकते थे। रामेश्वरी देवी उस द्वार से सटी हुई खड़ी थीं। मनोहर ने पतङ्ग को छज्जे पर जाते देखा। पतङ्ग पकड़ने के लिए वह दौड़ कर छज्जे की ओर चला। रामेश्वरी देवी खड़ी देखती रहीं। मनोहर उनके पास से होकर छज्जे पर चला गया और उनसे दो फीट की दूरी पर खड़ा होकर पतङ्ग को देखने लगा। पतङ्ग छज्जे पर से होता हुआ नीचे, घर के आँगन में, जा गिरा। मनोहर ने एक पैर छज्जे की मुँडेर पर रख कर नीचे आँगन में झाँका और पतङ्ग को आँगन में गिरते देख प्रसन्नता के मारे फूला न समाया। वह नीचे जाने के लिए शीघ्रता से घूमा, परन्तु घूमते समय मुँडेर पर से उसका पैर फिसल गया और वह नीचे की ओर चला। नीचे जाते जाते उसके दोनों हाथों में मुँडेर आ गई। वह उसे पकड़ कर लटक गया और रामेश्वरी की ओर देख कर चिल्लाया—"ताई"! रामेश्वरी देवी ने धड़कते हुए हृदय से इस घटना को देखा। पहले उनके मन में आया कि अच्छा है, मरने दो, सदा का पाप कट जायगा। यह सोच कर वे एक क्षण के लिए रुकीं। उधर मनोहर के हाथ मुँडेर पर से फिसलने लगे। वह अत्यन्त भय तथा करुणपूर्ण नेत्रों से रामेश्वरी देवी की ओर देख कर चिल्लाया—"अरी ताई।" रामेश्वरी देवी की आँखें मनोहर की आँखों से जा मिलीं। मनोहर की वह करुणपूर्ण दृष्टि देख कर रामेश्वरी देवी का कलेजा मुँह को आ गया। उन्होंने व्याकुल होकर मनोहर के हाथ पकड़ने के लिए अपना हाथ बढ़ाया। उनका हाथ मनोहर के हाथ तक पहुँचा ही था कि मनोहर के हाथ से मुँडेर छूट गई और वह नीचे आ गिरा। रामेश्वरी देवी चीख़ मार कर छज्जे पर गिर पड़ीं।

* * *

रामेश्वरी देवी एक सप्ताह तक अज्ञान-दशा में ज्वराक्रान्त पड़ी रहीं। कभी कभी वे ज़ोर से चिल्ला उठतीं और कहतीं—"देखो-देखो वह गिरा जा रहा है—उसे बचाओ—दौड़ो—मेरे मनोहर को बचालो"। कभी वे कहतीं—"बेटा मनोहर मैंने तुझे नहीं बचाया। हां, हां, मैं चाहती तो बचा सकती थी—मैंने देर करदी।" इसी प्रकार का प्रलाप वे किया करतीं।

मनोहर की एक टांग उखड़ गई थी। टांग बिठा दी गई और वह क्रमशः फिर अपनी असली हालत पर आने लगा।

एक सप्ताह बाद रामेश्वरी देवी का ज्वर कम हुआ। भले प्रकार होश आने पर उन्होंने पूछा—"मनोहर कैसा है"?

रामजीदास ने उत्तर दिया—"अच्छा है"।

रामेश्वरी—"उसे मेरे पास लाओ"।

मनोहर रामेश्वरी देवी के पास लाया गया। रामेश्वरी देवी ने उसे बड़े प्यार से हृदय से लगाया। आंखों से आंसुओं की झड़ी लग गई। हिचकियों से गला रुँध गया।

रामेश्वरी देवी कुछ दिनों बाद पूर्णतया स्वस्थ हो गईं। अब वे मनोहर की बहन चुन्नी से भी द्वेष और घृणा नहीं करतीं और मनोहर तो अब उनका प्राणाधार हो गया है। उसके बिना उन्हें एक क्षण भी कल नहीं पड़ती।

विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक

कमीनियस।

शिक्षा के सम्बन्ध में कमीनियस का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। जिस समय योरप में शिक्षा की दशा दीन-हीन हो रही थी, और भिन्न भिन्न देशों में युद्ध के कारण अशान्ति फैली हुई थी, उस समय इस विचारशील और परिश्रमी पुरुष ने बड़ा कष्ट उठा कर शिक्षा की दशा सँभाली। कमीनियस की पुस्तकों से उस समय की जो दशा मालूम होती है वह बहुत अंशों में हमारे देश की

आधुनिक दशा से मिलती-जुलती है। उसका जीवनचरित पढ़ने से योरप की तत्कालीन दशा का ज्ञान और उस दशा के सुधारने के लिए उसने जो कुछ काम किया उसका ज्ञान होता है; साथ ही साथ उसके सिद्धान्त भी मालूम होते हैं।

कमीनियस का जन्म सन् १५९२ ईसवी में जर्मनी देश के मोरेविया प्रान्त में हुआ। उसकी युवावस्था का बड़ा अंश उस समय बीता जब योरप में एक बड़ा भारी युद्ध हो रहा था: इस युद्ध का नाम 'तीस वर्ष का युद्ध था' और इसने मध्य-योरप के कई फले-फूले प्रान्तों को उजाड़-खण्ड बना दिया था। जब कमीनियस छोटा ही था तब उसके माता-पिता परलोकवासी हो गये और कमीनियस के पालन-पोषण का भार अन्य लोगों पर पड़ा। उस समय से पहले ही देश में सुधार करने के लिए एक भारी हलचल मच चुकी थी, जिसे 'रिफ़र्मेशन' (Reformation) कहते हैं। इस हलचल की बदौलत जगह जगह पर प्रारम्भिक स्कूल खोले गये थे, जिनमें लिखने-पढ़ने और हिसाब की शिक्षा दी जाती थी। ऐसे ही एक स्कूल में कमीनियस को प्रारम्भिक शिक्षा मिली। सोलह वर्ष की उम्र में कमीनियस एक ऐसे स्कूल में भरती हुआ जहाँ लैटिन भाषा पढ़ाई जाती थी। वहाँ से निकल कर अन्य कई स्कूलों में उसने लैटिन का अध्ययन किया। उस समय लैटिन शिक्षा की जो दूषित प्रणाली प्रचलित थी उससे कमीनियस को कष्ट पहुँचा, परन्तु धैर्य्य के साथ उस कष्ट को सहते हुए भी प्रचलित प्रणाली के दोष उसे मालूम हो गये। अपने समय के स्कूलों के विषय में वह कहता है "वे लड़कों के लिए भयोत्पादक स्थान हैं और मन के वध-स्थल हैं। वे ऐसे स्थान हैं जहाँ साहित्य और पुस्तकों से घृणा उत्पन्न होती है; जहाँ एक वर्ष का काम दस या अधिक वर्षों में किया जाता है। जो ज्ञान नरमी के साथ प्रवेश कराया जाना चाहिए वही वहाँ ठूँस ठूँस कर हठ के साथ भरा जाता है और घनों से कूट कूट कर बिठाला जाता है। जो सरल रूप में उपस्थित किया जाना चाहिए वह वहाँ पेचीदा रूप में रक्खा जाता है। वहाँ पर मानसिक शक्तियों को केवल शब्दों का भोजन दिया जाता है।"

अध्ययन के समय ही कमीनियस का ध्यान शिक्षा-प्रणाली पर आकर्षित हुआ और उस पर रैटिकस नामक विद्वान् के विचारों का बड़ा प्रभाव पड़ा। सन् १६१४ ईसवी में वह मोरेविया प्रान्त को लौटा और अपने ही समाज के एक स्कूल में अध्यापक नियत होगया। यहाँ पर उसने संशोधित शिक्षा-प्रणाली से काम लेने और मातृपोचित शासन चलाने का उद्योग किया।

दो ही वर्ष में कमीनियस को पादरी बना कर उसी के समाज का एक गिरजाघर उसके सिपुर्द कर दिया गया। परन्तु अधिक समय तक वह सुख के साथ न रह सका, क्योंकि सन् १६२१ ईसवी में स्पेनवालों ने उसके नगर को लूट लिया। इस लूट में कमीनियस का सर्वस्व जाता रहा और जो हस्त-लिखित पुस्तकें उसने बड़े परिश्रम से तैयार की थीं वे भी सब नष्ट हो गईं। सन् १६२४ में प्रोटे-स्टेंट-सम्प्रदाय के सब पादरियों को देश-निकाला कर दिया गया, तथा सन् १६२७ ईसवी में उसी सम्प्रदाय के सभी लोगों को देश-निकाले की आज्ञा दी गई। इसी आज्ञा के अनुसार कमीनियस को अपना देश सदा के लिए छोड़ना पड़ा। वह अपने समाज के अन्य साथियों के साथ पोलेंड देश के लेस्ना नगर में जा बसा। वहाँ भी उसे अपने ही समाज के एक पुराने स्कूल में वृत्ति मिली। शान्ति के स्थान में पहुँचने से उसे एक बार फिर नया उत्साह हुआ कि शिक्षा-सम्बन्धी बातों का सुधार करे। उसने एक सिरे से शिक्षा-प्रणाली में परि-वर्तन प्रारम्भ कर दिया और उसे युक्तियुक्त तथा

तर्कसम्मत बनाने का उद्योग किया। कमीनियस के सौ डेढ़ सौ वर्ष पहले ही से लोगों के दिलों में साधारण शिक्षा का प्रश्न उठ रहा था, और विशेषतः लैटिन पढ़ाने की प्रणाली पर बहुतेरे विद्वानों ने लेखनी उठाई थी।

जिसे आज-कल माध्यमिक शिक्षा (Secondary Instruction) कहते हैं उसका प्रधान विषय उन दिनों लैटिन भाषा थी। कभी कभी ग्रीक और हेब्रू भाषायें भी पढ़ाई जाती थीं; परन्तु इनका दर्जा गौण था, लैटिन भाषा सार्वजनिक शिक्षा की कुञ्जी थी, और शिक्षा का उद्देश यही माना जाता था कि इस कुञ्जी अर्थात् लैटिन भाषा का अच्छा ज्ञान छात्रों को हो जाय। लैटिन की इस प्रधानता के कारण विद्वानों का ध्यान इसी की शिक्षा-प्रणाली के सुधार पर अधिक जाता था, और कमीनियस का ध्यान भी स्वभावतः इसी पर गया। उसने पूर्व लेखकों के सम्पूर्ण ग्रन्थ और लेख पढ़े तथा उनसे बहुत कुछ सहायता प्राप्त की। परन्तु उसने लैटिन भाषा की शिक्षा पर स्वयं जो ग्रन्थ लिखे उनका प्रधान तत्व ख़ास उसी की ईजाद है। उसने शिक्षा-शास्त्र में एक नई बात चलाई अर्थात् ऐसी शिक्षा-प्रणाली निकालने का उद्योग किया जो केवल लैटिन भाषा ही के लिए नहीं, किन्तु अन्य विषयों की शिक्षा में भी काम दे सके।

सन् १६२७ से १६४० तक कमीनियस बड़े परिश्रम से शिक्षा में सुधार करता रहा और तद्विषयक ग्रन्थ लिखता रहा। सन् १६४१ ईसवी में इँगलैंड की पार्लमेंट ने उसे बुलाया और उसने ३ महीने लन्दन नगर में विताये। परन्तु पार्लमेंट और बादशाह के बीच उसी समय युद्ध छिड़ गया, जिससे कमीनियस को कुल काम बन्द कर देना पड़ा। इसी बीच एक डच सौदागर ने उसे स्वीडन देश को बुलाया और उसे मकान तथा काम करने का आवश्यक सामान दिया। यहीं पर उसकी मुलाक़ात स्वीडन देश के प्रधान मन्त्री से हुई। तब से वह प्रशिया देश के एलबिंग नगर में जा बसा। सन् १६५० ईसवी में ट्रांसीवेनिया के राजपुत्र ने अपने देश के स्कूलों की दशा सुधारने के लिए उसे बुलाया। सन् १६५४ ईसवी में वह अपने पुराने निवास-स्थान लेश्ना नगर को लौटा; परन्तु फिर भी सुख से न रहने पाया। युद्ध की आग समग्र पोलेंड देश में भड़क उठी और सन् १६५६ ईसवी में लेश्ना नगर उजाड़ दिया गया। कमीनियस का सर्वस्व जाता रहा, जिसमें उसका पुस्तकालय और हस्तलिखित पुस्तकें भी थीं। अब वह कुछ दिनों जर्मनी देश में इधर-उधर घूमता रहा। अन्त में आम्स्टरडम नगर में आया, जहाँ पर उसके पुराने संरक्षक (सौदागर) के पुत्र ने उसे शरण दी। वह ८० वर्ष की उम्र में सन् १६७१ ईसवी में परलोकवासी हुआ।

कमीनियस के लिखे हुए ग्रन्थ—कमीनियस ने लैटिन भाषा में, जर्मन भाषा में और ज़ेच भाषा में बहुत से ग्रन्थ लिखे; परन्तु इनमें से कुछ ही ऐसे हैं जिनका पूर्ण सम्बन्ध शिक्षा-शास्त्र से है—

(१) The Great Didactic अर्थात् **शिक्षा-शास्त्र**--ज़ेच भाषा में (सन् १६३० ईसवी) और लैटिन भाषा में (सन् १६४० ईसवी) इसमें शिक्षा के साधारण सिद्धान्त और मन्तव्य दिये गये हैं। इसी में कमीनियस ने स्कूलों की प्रणाली सुधारने के लिए अपनी सम्मति प्रकट की है।

(२) The Janua Linguarum Reserata अर्थात् **भाषा-द्वारोद्घाटन**—उस समय लैटिन भाषा का ज्ञान हर एक शिक्षित मनुष्य के लिए आवश्यक था। परन्तु लैटिन की शिक्षा पर कोई सन्तोषजनक पुस्तक न थी। कमीनियस किसी ऐसी पुस्तक की खोज में था जिसके द्वारा छात्रों

को उस भाषा का ज्ञान सरलता से हो जाय। उसे जब कोई अच्छी पुस्तक न मिली तब उसने यह ग्रन्थ लिखा और १६३१ ईसवी में प्रकाशित कर दिया। इसका प्रचार ख़ूब हुआ और योरप तथा एशिया की कई भाषाओं में अनुवाद हुआ।

इस पुस्तक का सङ्गठन बहुत सरल और स्वाभाविक था। लैटिन भाषा के चलतू शब्द लेकर पहले छोटे छोटे, फिर क्रमशः बड़े बड़े वाक्यों में उनका प्रयोग किया गया। हर एक लैटिन-वाक्य के सामने उसी का अनुवाद देश-भाषा में दिया गया। जिन वस्तुओं और क्रियाओं का ज्ञान बच्चों को हो सकता है उन्हीं के लिए यथासाध्य शब्द लिये गये। वाक्यों का सङ्गठन भी इस प्रकार किया गया कि विषय का सिलसिला क़ायम रहे। पुस्तक में एक सौ अध्याय रक्खे गये, जिनमें चलतू विषयों के अतिरिक्त ऐसे विषय भी थे जैसे संसार की उत्पत्ति, तत्त्व, पत्थर, धातु, वृक्ष, फल, मनुष्य, शरीर, मन, इच्छा, प्रेम, कारीगरी आदि। इस बात पर पूरा पूरा ध्यान रक्खा गया कि न कोई साधारण शब्द छूटने पावे और न कोई व्याकरण का प्रयोग छूटने पावे। इस प्रकार यह ग्रन्थ शब्दों और ज्ञान का एक प्रकार का विश्वकोष बन गया।

इस पुस्तक में कई दोष भी रह गये। हर एक शब्द का प्रयोग केवल एक ही बार किया गया और हर एक शब्द का एक ही अर्थ (मौलिक अर्थ) दिया गया; सभी शब्दों की समान प्रधानता दिखाई गई जिससे आवश्यक और अनावश्यक शब्दों में विवेक करना कठिन हो गया।

(३) Orbis Pictus अर्थात् **चित्रमयजगत्**—यह पुस्तक पूर्वोक्त पुस्तक नं० २ का ही रूपान्तर है। इसके हर एक अध्याय के प्रारम्भ में एक एक चित्र दिया गया है जिसका हवाला उस अध्याय के विषय में है। चित्र के भिन्न भिन्न अंशों पर १, २, ३ आदि नम्बर लगा दिये गये हैं जो मूल पङ्क्तियों की संख्या सूचित करते हैं। इसका प्रकाशन १६५७ ईसवी में हुआ। यद्यपि इस पुस्तक में भी वही दोष हैं जो पुस्तक नम्बर २ में कहे गये हैं तथापि इस पुस्तक का बड़ा मान और प्रचार हुआ और चित्रों द्वारा विषय स्पष्ट करने की प्रथा निकल पड़ी।

कमीनियस के सिद्धान्त।

१—शिक्षा का उद्देश—कमीनियस का मत है कि ईश्वर से अविच्छिन्न सुख प्राप्त करना मनुष्य का सर्वोच्च लक्ष्य है। इस लोक का जीवन शाश्वत जीवन के लिए तैयारी है; आध्यात्मिक जीवन ही यथार्थ जीवन है। प्रकृति ने हमारे अन्तःकरण में विद्या, धर्म्म और शुद्धि के बीज बो दिये हैं और इन गुणों को बढ़ाने के लिए हममें स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है ताकि हम धार्मिक और शुद्ध-हृदय हो जायँ। इस लक्ष्य की प्राप्ति शिक्षा ही के द्वारा होती है। स्कूल का कर्त्तव्य है कि इस लक्ष्य की प्राप्ति में मनुष्य की सहायता करे; क्योंकि लड़कपन में प्रकृति का झुकाव जिधर चाहो सरलता के साथ हो सकता है।

२—शिक्षा का प्रसार—मनुष्य-मात्र को शिक्षा की आवश्यकता है। बच्चों को ईश्वर ने इसीलिए अन्य काम करने के लिए असमर्थ किया है कि उन्हें विद्या-प्राप्ति के लिए अवकाश मिले। इसी लिए राष्ट्र की हर एक व्यक्ति की शिक्षा का प्रबन्ध करना राजा का धर्म्म है। स्मरण रखना चाहिए कि कमीनियस प्रथम मनुष्य है जो हर व्यक्ति के लिए, चाहे वह स्त्री-जाति हो या पुरुष-जाति, शिक्षा की आवश्यकता बतलाता है।

३—शिक्षा का सङ्गठन—कमीनियस के अनुसार पूर्ण-शिक्षा के लिए चार प्रकार के स्कूलों की आवश्यकता है—

(क) माता की गोद एक स्कूल है। जन्म से लेकर ६ वर्ष की उम्र तक इसमें हर बच्चे की शिक्षा होनी चाहिए।

(ख) देशी-भाषा का स्कूल हर गिरजाघर के साथ होना चाहिए। उसमें हर एक बच्चा ६ से १२ वर्ष की उम्र तक रहे।

(ग) लैटिन स्कूल में १२ से १८ तक की उम्र में माध्यमिक शिक्षा का प्रबन्ध रहे। ऐसा स्कूल हर शहर में होना चाहिए।

(घ) राष्ट्र में विश्वविद्यालय हो, और १८ से २४ वर्ष तक की उम्र के लिए हो। वहाँ की शिक्षा के साथ साथ विदेश-भ्रमण भी आवश्यक है।

कुल लड़कों और लड़कियों के लिए (क) और (ख) स्कूलों में शिक्षा पाना आवश्यक है। जिन लोगों को हाथ से मिहनत मज़दूरी करना न हो उनके लिए लैटिन स्कूल है। आगामी अध्यापकों और नेताओं के लिए विश्वविद्यालय की शिक्षा की आवश्यकता है।

पेस्टालोज़ी और फ्रौबेल की तरह कमीनियस की भी राय है कि बच्चों की शिक्षा जन्मकाल से ही होनी चाहिए। एक छोटी सी बहुत उत्तम पुस्तक (The School of Infancy) में कमीनियस ने बच्चों की शिक्षा के लिए उपदेश दिये हैं; उसके बतलाये हुए सङ्केत अत्यन्त रोचक हैं और किंडरगार्टन शिक्षा से मिलते-जुलते हैं। वह कहता है कि बच्चों की शिक्षा के लिए सयाने लोग तो उद्योग करते ही हैं; परन्तु एक ही उम्र और एकही स्वभाववाले बच्चे एक दूसरे की सहायता और भी अधिक करते हैं। जब वे साथ साथ खेलते हैं तब एक दूसरे की बुद्धि को प्रखर करते हैं; क्योंकि उनमें छुटाई बड़ाई का भाव बहुत प्रबल नहीं होता; प्रेम से प्रश्नोत्तर करते हैं। बच्चों के लिए हर समय किसी न किसी काम में लगा रहना आवश्यक है। सुस्त बैठने से खेलना अच्छा है, क्योंकि खेलते समय मन किसी वस्तु पर लगा रहता है, जिससे बालक की योग्यता बढ़ती है।

माता की गोद में बच्चे को विविध प्रकार का ज्ञानोपार्जन होता है। कुछ है, कुछ भी नहीं है, यह वस्तु नहीं है, कब है, कहाँ है, इसके समान है, उसके असमान है—इत्यादि भावनायें भावनाशक्ति के प्रारम्भिक ज्ञान की सूचना देती हैं। जल, पृथ्वी, वायु, अग्नि, वृष्टि आदि का ज्ञान वैज्ञानिक ज्ञान है। प्रकाश, अँधेरा, छाया, रङ्ग आदि का ज्ञान उस विज्ञान से सम्बन्ध रखता है जिसे Optics कहते हैं। आकाश, सूर्य्य, चन्द्रमा, तारे और उनकी चाल का ज्ञान ज्योतिष का ज्ञान है। गत दिन की घटनाओं का स्मरण ऐतिहासिक ज्ञान का मूल है।

४—शिक्षाप्रणाली के मूल सिद्धान्त।

(क) कमीनियस कहता है कि स्कूलों की असफलता का कारण यह है कि मातृ-भाषा को छोड़ कर केवल लैटिन की शिक्षा में समय नष्ट किया जाता है, और व्याकरण तथा कोष ही पर ध्यान देकर संसार की आवश्यक वस्तुओं के स्वभाव, सम्बन्ध और उद्देश पर ध्यान नहीं दिया जाता। यदि शिक्षा की प्रणाली प्रकृति (Nature) के अनुसार कर दी जाय तो बड़ा लाभ हो; परन्तु हम इसके प्रतिकूल चलते हैं। बच्चों की मानसिक शक्ति शिक्षा के ग्रहण करने के योग्य नहीं होने पाती कि शिक्षा ठूँस ठूँस कर भरी जाती है। वस्तु-ज्ञान से प्रथम ही नियम-ज्ञान कराया जाता है; शब्दों का ज्ञान तद्विषयक वस्तुओं के ज्ञान से पहले कराया जाता है। विदेशी भाषा सीखने में भाषा के नमूनों से पहले ही व्याकरण के नियम बतलाये जाते हैं।

(ख) प्रकृति अपना हर एक काम मुख्य तत्त्व से प्रारम्भ करती है; पहले हर चीज़ का मोटा रूप देना चाहिए, तब उसके अङ्गों का विवरण होना चाहिए; पहले किसी विषय को समझना चाहिए, तब उसे याद करना, दोहराना, नियम बनाना और उसके विषय में विशेष बातें बतलाना चाहिए।

(ग) प्रकृति के काम में विषमता नहीं होती; इसलिए प्रकृति के अनुसार सम्पूर्ण पाठ्य विषय

को इस तरह क्रमबद्ध करना चाहिए कि पहले किये ए काम से आगे के काम में सहायता मिले।

(घ) प्रकृति जो काम करती है उसकी रक्षा का भी उपाय रखती है; इसीलिए बच्चों को बुरे लोगों और अनिष्ट पुस्तकों के सम्पर्क से बचाना चाहिए।

(ङ) स्कूल चार घण्टे के लिए खुलना चाहिए, दो घण्टे पूर्वाह्ण में, जब कि समझने और स्मरण रखने के योग्य विषय पढ़ाने चाहिए, और दो घण्टे अपराह्ण में जब कि हाथ और वाणी से सम्बन्ध रखनेवाले विषय लेने चाहिए।

(च) शिक्षा का क्रम यह होना चाहिए—पहले इन्द्रियों को शिक्षित करो, तब स्मरण-शक्ति को, तब बुद्धि को और सबके अन्त में तर्क-शक्ति को। यही प्रकृति का क्रम है, क्योंकि बच्चे को पहले इन्द्रियों के द्वारा ज्ञान होता है; उसकी बुद्धि में जो कुछ है वह सब इन्द्रियों ही से उसे मिला है। स्मरणशक्ति से ज्ञान एकत्र रहता है और भावना-शक्ति से काम देता है। दो या कई चीज़ों का मिलान करने पर उन चीज़ों के साधारण धर्म का पता चलता है। इसी प्रकार निर्णय-शक्ति की भी उन्नति होती है।

अपनी उम्र और पूर्वोपार्जित ज्ञान के अनुसार बच्चे जिन नवीन विषयों को सीखने की उत्कण्ठा करें वे विषय सुख के साथ उन्हें सिखाये जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त कई अन्य साधन भी हैं जिन पर ध्यान रखना चाहिए, जैसे (१) माता-पिता को चाहिए कि विद्या और विद्वानों की प्रशंसा करें, बच्चों को सुन्दर पुस्तकें दिखलावें, अध्यापकों का आदर करें। (२) अध्यापक को पिता के समान कृपालु होना चाहिए, उसे बच्चों को सदा प्रसन्न रखना और उनके लिए कोई न कोई काम तैयार रखना चाहिए। (३) स्कूल में वायु, प्रकाश, सामान, चित्र, नक़शे, नमूने आदि हों। (४) पाठ्य-विषय कठिन न हो, वह जहाँ तक हो सके रोचक बनाया जाय। (५) शिक्षा-प्रणाली प्रकृति के अनुसार हो; अनावश्यक चीज़ें छोड़ दी जायँ। (६) परीक्षाओं का प्रबन्ध रहे और पारितोषिक भी दिया जाय।

५—मातृ-भाषा का महत्त्व—कमीनियस लैटिन भाषा का महत्त्व मानता है, परन्तु केवल इसीलिए कि लैटिन के द्वारा भिन्न भिन्न देशों के लोग अपने भाव परस्पर प्रकट कर सकते हैं। वह बड़े ज़ोर के साथ अपनी सम्मति देता है कि हर विषय मातृ-भाषा ही के द्वारा सिखाया जाय।

६—शारीरिक दण्ड—पढ़ने-लिखने में चूक हो जाने पर शारीरिक दण्ड देना अनुचित है, परन्तु सच्चरित्रता में चूक हो तो दण्ड का प्रयोग उचित है। स्कूल का शासन प्रयत्नपूर्वक ठीक रखना चाहिए और जब दण्ड देने की आवश्यकता हो तब उसमें सङ्कल्प-विकल्प न करना चाहिए।

उपसंहार—कोई तीन सौ वर्ष पहले शिक्षा-प्रणाली के जो दोष योरप में कमीनियस को मिले उनमें से बहुत से दोष इस समय हमारे देश में मिलते हैं। उस देश में लैटिन की प्रधानता थी तो इस देश में अँगरेज़ी की है।

कमीनियस के सभी सिद्धान्त निर्दोष नहीं हैं। ऐसा मालूम होता है कि कमीनियस जो बात कहने लगता था उसी का रूप हो जाता था, उसमें अत्युक्ति तक कर देता था। उसका विश्वास था कि हर मनुष्य को हर विषय अच्छी तरह जानना चाहिए; इसी विश्वास के अनुसार उसने अपनी पुस्तक Orbis Pictus (चित्रमय-जगत्) लिखी। बुढ़ापे में उसे अपनी ग़लती मालूम होगई। शिक्षा-प्रणाली के महत्त्व में भी उसने अत्युक्ति की। उसका विश्वास था कि यदि अच्छी शिक्षा-प्रणाली हो तो हर व्यक्ति को हर तरह का ज्ञान हो सकता है। उसे यह भी निश्चय होगया था कि जो सिद्धान्त और जो प्रणाली उसने अपने शिक्षा-शास्त्र में दी वही सर्वसम्मत और निर्भ्रान्त थी। शिक्षा-विषय को प्रकृति के अनुकूल सिद्ध करने में भी उसने कहीं

कहीं अत्युक्ति कर दी है और प्राकृतिक उपमाओं को उपपत्ति मान लिया है।

परन्तु इन छोटी छोटी बातों से कमीनियस के मूल सिद्धान्तों का महत्त्व कम नहीं होता। उन सिद्धान्तों पर जितना अधिक विचार किया जाता है उतना ही तत्त्व शिक्षा-शास्त्र के लिए उपयोगी निकलता है। यदि कमीनियस के सिद्धान्तों में भारतवर्ष की अवस्था के अनुकूल कुछ हेर-फेर करके शिक्षा-प्रणाली नियत की जाय तो उससे अवश्य ही बड़ा लाभ होने की सम्भावना है।

चन्द्रमौलि सुकुल

शनैश्चर।

(१)

खलग्रहों में हम कैरव हैं चलते धीमी चाल सदा
भरी हुई है चालों से वह, फैलाते हम जाल सदा।
यद्यपि घृणा दिखाते हैं सब "क्रूर क्रूर" कह कर हम से
तो भी पूजित होता ही है धन्य हमारा भाल सदा॥

(२)

कँड़जी क्रूर कपट-मञ्जूषा दृष्टि हमारी जहाँ पड़ी
ईति-भीति की पाप-ताप की बिजली मानों वहाँ पड़ी।
उड़ जाती सुख-नींद वहाँ से कलह-कुमुदिनी खिलती है
चौंसठ घड़ी कड़ी चिन्तायें रहतीं वहाँ सदैव खड़ी॥

(३)

जिनके जन्म-केन्द्र पर पहुँचे हम, तो फिर क्या कहना है ?
मिले सब्ज़ कदमों से उनका दुस्तर जग में रहना है।
पल में उनके सोने-रूपे कूड़े-करकट बन जाते
गूँगे बन कर उन्हें दैन्य-दुख पड़ता ज्यों त्यों सहना है॥

(४)

पूजा लें हम सरल जनों के गले दबा कर जहाँ जहाँ
शाप-सहित गाली भी उनसे पाते हैं हम वहाँ वहाँ।
अन्न-वस्त्र के कष्ट उन्हें फिर युक्ति-युक्त हम देते हैं
सिसक सिसक वे रोते हैं तब हँसते हैं हम "ह हा ह हा"॥

(५)

रोग, शोक दो हाथ हमारे साथ निरन्तर रहते हैं
होते हैं हम सुखी तभी जब सुजन विविध दुख सहते हैं।
हमें व्योमगामी को कैसे भीति कभी हो सकती है ?
लाज लगे क्यों ? कहें सभी ग्रह-राज हमें यदि कहते हैं॥

(६)

आत्मीयों की बलि दे कर भी जो जन हमें प्रसन्न करे
या कृतघ्न ही मान हमें जो मिल कर हमसे सदा डरे।
या अपने सर्वस्व निछावर करे हमारे हित कोई
पर अवसर आने पर वह भी कभी हमारे करों मरे॥

(७)

विधि-विपाक से जहाँ हमारी पड़ती निर्दय छाया है
आय घटे, व्यय बढ़े वहाँ पर अजब हमारी माया है।
फिर भी हम न्यायी बनते हैं, निलज बने, अपने मुख से
हमें किसी से काम नहीं है काम सदा अपने सुख से॥

(८)

स्वच्छ वेश है यदपि हमारा हृदय बड़ा ही काला है
पहचाने जाते हम तब जब पड़ता हमसे पाला है।
जग जिसको अन्याय समझता उसे न्याय हम कहते हैं
स्वार्थ हमारा विश्व-विदित है अद्भुत और निराला है

रामचरित उपाध्याय

राबर्ट ब्रौनिंग (Robert Browning)

अँगरेज़ों में जन्म-कुण्डली बनवाने की प्रथा नहीं है। नहीं तो ब्रौनिंग की कुण्डली देखते कि ग्रह कैसे थे जिससे ऐसा प्रभावशाली कवि इँगलेंड में, ७ मई सन् १८१२ ईसवी को, पैदा हुआ। अँगरेज़ी भाषा के कितने ही महान् कवि हो गये हैं, पर उनमें ब्रौनिंग ही एक ऐसा है जिसका विवाह भी उसके ज़माने की विख्यात कवयित्री एलिज़ाबेथ बैरेट बैरेट से हुआ। एलिज़ाबेथ बैरेट बैरेट इँगलेंड के स्त्री-कवियों में सबसे बढ़कर मानी जाती है। इधर अब ब्रौनिंग भी इँगलेंड के सबसे बड़े कवियों में गिना जाता है। कुछ समालोचकों की राय तो है कि अभी तक ब्रौनिंग की पूरी महत्ता का

पता इँगलेंड को लगा ही नहीं; शीघ्र ही ब्रौनिंग को टेनिसन से कहीं ऊँची पदवी अँगरेज़-कवियों की श्रेणी में मिलेगी। अतएव ब्रौनिंग के जन्म की घड़ी ज़रूर ही शुभ रही होगी।

ब्रौनिंग के पिता बैंक आव् इँगलेंड में मुहर्रिर (Clerk) थे। पर ऐसी सङ्कुचित शिक्षा और हृदय के मनुष्य न थे जैसे प्रायः क्कर्क (मुहर्रिर) लोग हुआ करते हैं। उनको पुस्तकों का बड़ा शौक़ था। उनका निज का एक पुस्तकालय था जिसमें भिन्न भिन्न विषयों की ६००० पुस्तकें थीं। हमारे देश में सार्वजनिक पुस्तकालयों तक में इतनी पुस्तकें नहीं रहतीं। अच्छे अच्छे कालेजों के पुस्तकालयों में ६००० पुस्तकों का सङ्ग्रह बुरा नहीं समझा जाता। अपने पिता के इसी पुस्तकालय में राबर्ट ब्रौनिंग ने अपनी महत्ता की नींव डाली। इनकी माँ भी बड़ी समझदार स्त्री थी। अपनी माँ की देख-रेख में ब्रौनिंग ने, अपने पिता के पुस्तकालय में, नियमित रूप से अध्ययन किया। वे किसी विश्वविद्यालय में पदवी-प्राप्ति के लिए नहीं गये। बचपन में ही शेक्सपियर आदि, एलिज़बेथ के ज़माने के, नाटक-कारों और कवियों के ग्रन्थों को बड़े आनन्द से पढ़ डाला था। अँगरेज़ी के विख्यात कवि बैरन (Byron) की कविता में ब्रौनिंग को विशेष आनन्द आया। वे कोई चौदह वर्ष के रहे होंगे जब उनकी माता लन्दन गईं और उनकी प्रार्थना पर वहाँ से शेली (Shelley) कवि की सम्पूर्ण कविताओं का सङ्ग्रह मोल लेती आईं। एक पुस्तक-विक्रेता के कहने से कीट्स (Keats) की कविता-पुस्तक भी उन्होंने मोल ले ली। शेली और कीट्स का नाम तब तक इँगलेंड के देहात में किसी को मालूम न था। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम चतुर्थांश में बैरन, शेली और कीट्स तीन बड़े प्रतिभाशाली कवि हो गये हैं। बैरन ने तो योरप के साहित्य-क्षेत्र में प्रचण्ड आँधी पैदा कर दी जिसके प्रभाव से योरप के कई साहित्यों में नई जान आ गई। जर्मनी के, उस ज़माने के, बड़े बड़े समालोचकों और साहित्यज्ञों की राय थी कि बैरन की बराबरी का कवि इँगलेंड में पहले कभी नहीं हुआ। शेली को लोग Poets' Poet (कवियों का कवि) कहते हैं। कीट्स के लिए कई समालोचकों की राय है कि उसमें ये गुण थे जो शेक्सपियर में थे और यदि वह बच जाता तो न जाने क्या कर डालता। परमेश्वर की इच्छा का रहस्य समझना मनुष्य के लिए असम्भव है। बैरन, शेली और विशेष कर कीट्स की कविता पढ़ते पढ़ते जब स्मरण आता है कि ये तीनों बहुत ही थोड़ी अवस्था में इस संसार से चल बसे, तब मौत की जल्दबाज़ी पर गुस्सा आ जाता है। जिस कवि ने Ode on a Grecian Urn, St. Agne's Eve इत्यादि आनन्द-दायक कवितायें लिखीं वह क्यों २५ बरस की उम्र में ही मर गया! अँगरेज़ी में कहावत है "Whom gods love die young" अर्थात् जिनको देवता प्यार करते हैं वे थोड़े दिन ही संसार में रहते हैं। कीट्स के मरने पर शेली ने Adonais (अडोनेस) नामक मर्सिया ऐसा सुन्दर लिखा है कि सारे संसार के साहित्य में उसके बराबर की चीज़ मुश्किल से मिलेगी।

ब्रौनिंग ने १७ बरस की अवस्था में ऐसे ऐसे महान् कवियों की रचना पढ़ डाली थी। फिर उसको कविता का चसका क्यों न पड़ता और उसकी कवित्व-शक्ति क्यों न उत्तेजित होती। सत्तरह अठारह बरस की अवस्था में ही ब्रौनिंग ने निश्चय कर लिया था कि कविता करने के सिवा और कोई पेशा में अपनी ज़िन्दगी में न करूँगा। बाइरन और शेली की कविता से प्रभावित होकर इस दृढ़ सङ्कल्प को ब्रौनिंग ने आजन्म निभाया। मरते दम तक उसने बराबर कविता लिखी। विचित्र बात यह है कि उसके पिता भी उसके इस सङ्कल्प से सहमत थे। इसी से ज्ञात होता है कि बुड्ढे ब्रौनिंग साधारण मुहर्रिर (क्कर्क) ही न थे, किन्तु रसिक और काव्य-प्रेमी भी थे।

बीस बरस की ही अवस्था में इस कवि ने पालीन (Pauline) नामक काव्य लिख डाला और सन् १८३३ ईसवी में उसे पुस्तकाकार प्रकाशित कर दिया। इस काव्य के छपते ही समझदार लोग जान गये कि एक प्रतिभाशाली कवि का जन्म हो गया है। इसमें शेली की कविता का प्रभाव झलकता था, पर निरी नक़ल कहीं भी न थी। अँगरेज़ी के विख्यात

अन्त्यानुप्रासहीन छन्द (ब्लैंक वर्स, Blank Verse) में यह काव्य लिखा गया। इसकी भाषा सरल और सुन्दर है। छन्द में कहीं कहीं खींचातानी ज़रूर है और काव्य का माधुर्य्य अनेक स्थलों पर जाता रहा है; पर इसमें सन्देह नहीं कि उच्च कोटि की कविता की झलक इस काव्य में दिखाई पड़ती है।

सन् १८३३ ईसवी का वर्ष अँगरेज़ी साहित्य के इतिहास में याद रखने योग्य है, क्योंकि उसी वर्ष आलफ़्रेड टेनिसन नामक कवि ने भी अपनी और अपने भाई की कविताओं का सङ्ग्रह "Poems by two Brothers" नाम से प्रकाशित किया। बाद को टेनिसन अपने समय के अँगरेज़-कवियों में सर्वश्रेष्ठ माना जाने लगा। भारतवर्ष के अँगरेज़ी-दाँ लोगों में से ऐसे लोग कम होंगे जिन्होंने उन्नीसवीं शताब्दी और महारानी विक्टोरिया के राजत्व-काल के विख्यात कवि और इँगलेंड के राजकवि (Poet Laureate) टेनिसन का नाम न सुना हो। इसके विपरीत भारत के शिक्षित समुदाय में बहुत कम ऐसे लोग होंगे जो ब्रौनिंग के काव्य से परिचित हों और जिनको यह ज्ञात हो कि ब्रौनिंग भी प्रतिभा में टेनिसन की जोड़ का कवि हो गया है। ज़माने का भी प्रभाव पड़ता है। उधर शेली, कीट्स और बाइरन तीनों थोड़ी थोड़ी अवस्था में परलोक-गामी हो गये थे। इधर टेनिसन और ब्रौनिंग दोनों बहुत दिन जिये। सन् १८१२ में पैदा हो कर ब्रौनिंग सन् १९८९ में अमर हो गया और टेनिसन १८०९ में जन्म ले कर १८९२ में अन्तिम गति को प्राप्त हुआ। दोनों ही आख़िरी दम तक कविता करते रहे, और इन्हीं दोनों की कवित्वशक्ति, बुढ़ापा आने से, क्षीण नहीं हुई। ब्रौनिंग का अन्तिम काव्य Asolando (असोलैंडो) उस महाकवि के पहले के किसी भी काव्य से प्रतिभा में हीन नहीं। Asolando (असोलैंडो) के Epilogue (उपसंहार) में भी इस महान् आत्मा का, धर्म की जीत में, अटल विश्वास झलकता है। इन पङ्क्तियों से इस कवि के समस्त जीवन के परमोच्च आदर्श का पता चलता है। यह असोलैंडो का ही उपसंहार नहीं है, ब्रौनिंग के समस्त जीवन का भी उपसंहार है। जैसा निडर, शक्तिशाली और परोपकार-रत जीवन इस कवि ने बिताया वैसी ही यह कविता भी है। देखिए, ये पङ्क्तियाँ हृदय को कैसी उत्तेजना देनेवाली हैं—

> One who never turned his back but marched breast forward,
> Never doubted clouds would break,
> Never dreamed, though right were worsted, wrong would triumph,
> Held we fall to rise, are baffled to fight better,
> Sleep to wake.

इस उपसंहार के बाद ब्रौनिंग ने और कुछ नहीं लिखा। मुरदा दिल को जोश देनेवाली इन पङ्क्तियों को पढ़ कर रोमाञ्च हो आता है। हम अँगरेज़ीदाँ भारतीयों को चाहिए कि ऊपर उद्धृत की हुई पङ्क्तियों को रट लें और जहाँ कहीं दिल में कमज़ोरी मालूम हो इन पङ्क्तियों को दुहरावें; असफलता से कभी भी हताश न हों।

टेनिसन की Crossing the Bar नामक अन्तिम कविता भी इसी प्रकार टेनिसन की कवित्व-शक्ति का परिचय देती है। अन्तिम समय तक टेनिसन की शक्ति में किसी प्रकार का ह्रास नहीं हुआ। ब्रौनिंग की तरह टेनिसन ने भी अपनी इस अन्तिम कविता में अपने जीवन के परमोच्च आदर्शों का निष्कर्ष रख दिया है। टेनिसन का सम्पूर्ण जीवन पवित्र और निर्भीक था। इसी लिए निम्नलिखित पङ्क्तियों में वह परमेश्वर के सन्दर्शन के लिए उत्सुक दिखाई पड़ता है—

> For tho' from out our bourne of Time and Place
> The flood may bear me far,
> I hope to see my Pilot face to face
> When I have crost the bar.

पालीन प्रकाशित करने के बाद, ब्रौनिंग ने दो साल तक, अपनी छोटी छोटी कवितायें 'मन्थली रिपाज़िटरी' नामक मासिक पत्र में छपाईं। फिर सन् १८३५ में पारासेलसूर (Paracelsur) नामक नाटक-नुमा काव्य लिखा। इसे नाटक नहीं कह सकते। इसमें सन्देह नहीं

कि इस कवि में वे सब गुण विद्यमान थे जो नाटक-कार में होने चाहिए और इसका सम्पूर्ण काव्य 'नाटक-मय' है। नाटक का प्रधान अङ्ग है चरित्र-चित्रण और व्यक्तित्व-प्रदर्शन। मनुष्य और मनुष्य-समाज के गूढ़ रहस्यों को समझ लेना और उनको शब्दों द्वारा स्पष्ट कर देना, व्यक्तियों की सृष्टि करके—उनको समूह-विशेष में स्थित करके—उनसे वाणी और कर्म द्वारा मनुष्य की स्वाभाविक अवस्था और मानव-चरित्र का उद्घाटन कराना तभी सम्भव है जब साहित्य-निर्माता मनुष्य और समाज के हृदय-पटल को स्पष्ट रीति से देख सके और भावों से इस प्रकार प्रभावित हो सके कि उनको भाषा द्वारा व्यक्त किये बिना उससे रहा ही न जाय। ब्रौनिंग में यह गुण था और अच्छे परिमाण में था। इतना ही नहीं 'Men and Women', 'Dramatis Personae' और 'Dramatic Romances and Lyrics' इत्यादि में ब्रौनिंग ने यह दिखा दिया है कि वह न केवल अपने समय के और इँगलेंड के विशेष मनुष्यों के हृदय, आदर्श और उद्देश को समझ और सुन्दर भावपूर्ण ओजस्विनी भाषा में व्यक्त कर सकता था, किन्तु वह प्रत्येक देश के और भिन्न भिन्न समयों के व्यक्तियों को इस पूर्णता से समझ लेता था और उनके आदर्शों और उपदेशों को इस योग्यता और सफलता से चित्रित कर देता था कि शायद वे व्यक्ति स्वयं भी इतनी अच्छी तरह न कर सकते। ब्रौनिंग के नाटकीय पात्रों की वक्तृतायें प्रसिद्ध हैं और बड़े ज़ोर की हैं। ब्रौनिंग को नाट्य-कवि कहते भी हैं। ब्रौनिंग स्वभाव से ही नाटक की ओर झुका और सन् १८३७ में अपने मित्र मैकरेडी के अनुरोध से उसने स्टैफोर्ड (Stafford) नामक नाटक लिखा। मैकरेडी स्वयं एक थियेटर का मैनेजर था और अपने ज़माने के बड़े मशहूर नाटक खेलनेवालों में था। मैकरेडी ने अपने मित्र के नाटक के लिए बड़ी तैयारी की और बड़ी मिहनत से खेला भी। पर पाँच रातों से अधिक इस Tragedy (दुःखान्त-नाटक) का खेल न चल सका। ब्रौनिंग ने और भी कई नाटक थियेटर के लिए लिखे, पर सफलता नहीं हुई। कुछ लोग कहते हैं कि ब्रौनिंग के नाटकों की असफलता किसी दोष या त्रुटि के कारण नहीं हुई। पर सच बात तो यह है कि इन नाटकों में दृश्य काव्य के वे गुण नहीं हैं जिनसे नाटक लोकप्रिय होते हैं। इसमें केवल ब्रौनिंग का ही दोष नहीं। असल में वह शताब्दी ही (१८०० से १६०० ईसवी तक) अँगरेज़ी साहित्य के लिए ऐसी बीती है जिसमें बड़े से बड़े कवियों ने नाटक लिखे, पर सफल न हुए। टेनिसन ने कई नाटक लिखे। उनमें कवित्व का अच्छा चमत्कार है, पर नाटक की दृष्टि से सबके सब हीन हैं। शेली ने कई नाटक लिखे, पर सेन्सी (Cenci) को छोड़ कर एक भी किसी काम का नहीं। उन्नीसवीं शताब्दी में सेन्सी को छोड़ कर एक भी ऐसा नाटक नहीं लिखा गया जिसकी गिनती साहित्य में की जाय या जिसमें इतनी भी जान हो जो आधी शताब्दी तक जीवित रह सके।

ब्रौनिंग यदि नाटक ही नाटक लिखते रहते तो सफलता अवश्य होती, पर समय अनुकूल न था। नाटक की ओर साहित्य का क़दम नहीं उठ रहा था, और न नाटकों के लिए काफ़ी पुरस्कार ही मिल सकता था। यह अच्छा ही हुआ। ब्रौनिंग ने अपनी प्रतिभा के प्रदर्शन के लिए एक नया ही रास्ता निकाला। Bells and Pomegranates शीर्षक में उसकी Men and Women, Dramatic Romances and Lyrics, Dramatis Personae इत्यादि अन्य कवितायें प्रकाशित हुईं। Dramatis Personae शीर्षक में ब्रौनिंग की Rabbi Ben Ezra और Abt Vogler नामक विख्यात कवितायें छपीं। Rabbi Ben Ezra में, कहते हैं कि, ब्रौनिंग ने मनुष्य-जीवन का आदर्श दरशाया है। समालोचक लोग ज़ोर देकर कहते हैं कि इस कविता में इस कवि की पूरी प्रतिभा प्रदर्शित हुई है और इसमें ब्रौनिंग ने मनुष्य के लिए परमोच्च आदर्श अङ्कित किया है। इन कविताओं के लिए अँगरेज़ी भाषा में एक नया नाम ही बनाया गया है। ये Dramatic Monologue के नाम से विख्यात हैं।

इतना काम सन् १८६४ तक हुआ। पर ब्रौनिंग का आदर सर्वसाधारण में नहीं हुआ। Sordello (सारडेलो) नामक काव्य सन् १८४० में ब्रौनिंग ने ऐसा विकट लिखा कि उस को समझनेवाले ही ढूँढ़े नहीं मिलते थे। महाकवि टेनिसन ने एक मौक़े पर कहा कि मैं इस काव्य की केवल पहली और आख़िरी पङ्क्ति समझ पाया हूँ। उन्नीसवीं शताब्दी का विख्यात गद्य-लेखक कार्लाइल कहा करता था कि मेरी पत्नी

इस काव्य को आद्योपान्त पढ़ गई, पर उनको पता न चला कि 'सारडेलो' क्या है, किसी पुस्तक या मनुष्य का नाम है अथवा किसी शहर का। सर्वसाधारण में ऐसा डर फैल गया कि ब्रौनिंग की कविता कोई छूता ही न था। इस डर को दूर होने में पूरे २५ बरस लगे। धीरे धीरे और समालोचकों के बार बार प्रशंसा करने पर ब्रौनिंग की ओर सर्वसाधारण का ध्यान फिर आकर्षित हुआ। और सन् १८६८ में Ring and the Book (रिंग एंड दी बुक) नामक महाकाव्य ऐसा विचित्र प्रकाशित हुआ कि सब लोग एक दम से ब्रौनिंग पर मोहित हो गये। समालोचकों ने कहा कि शेक्सपियर के बाद यही एक धार्मिक ख़ज़ाना इँगलेंड ने उत्पन्न किया; यह परमोत्कृष्ट काव्य की दृष्टि से अपने समय में सब से सर्वोच्च है। टेनिसन उस समय इँगलेंड के सर्वोपरि कवि गिने जाते थे। उनके In Memoriam (इन मेमोरियम) के उपस्थित होते हुए भी जब यह कहा गया कि Ring and the Book से बढ़ कर काव्य इस ज़माने में नहीं लिखा गया तब अँगरेज़ी भाषा जाननेवाले हर एक काव्य-रसिक को अवश्य Ring and the Book पढ़ना चाहिए।

इस लेख के लेखक की राय है कि इस काव्य को पढ़ने से अलौकिक आनन्द प्राप्त होता है। इसमें ब्रौनिंग ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा दी है। बारह भागों में यह काव्य विभक्त है। प्रत्येक में एक ही कथा का वर्णन है, पर भिन्न भिन्न लोगों के मुँह से यह कथा कहलवाई गई है। कुल २१००० पङ्क्तियों में यह काव्य समाप्त हुआ है और अँगरेज़ी के विख्यात अन्त्यानुप्रास-हीन छन्द (Blank Verse) में लिखा गया है। इस काव्य के प्रकाशित होने पर ब्रौनिंग को टेनिसन की बराबरी का स्थान अँगरेज़ी कवियों की श्रेणी में प्राप्त हो गया और सर्व-साधारण में भी इस महाकवि का प्रभाव फैल चला।

इसके बाद भी ब्रौनिंग बराबर उच्च कोटि का काव्य लिखता रहा, पर कोई नया उपदेश नहीं दिया और न किसी नई शक्ति का नमूना दिखलाया। अन्त समय तक यद्यपि इसकी शक्ति में किसी प्रकार का ह्रास नहीं हुआ तथापि कोई नया नैसर्गिक पुष्प इसने मनुष्य के आनन्द और लाभ के लिए उत्पन्न नहीं किया। Ring and the Book को किसी समालोचक ने शेक्सपियर के बाद का नैसर्गिक वस्तुओं से सम्बन्ध रखनेवाला सर्वोपरि 'ख़ज़ाना' बताया था। इससे बढ़ कर अथवा इससे विभिन्न गुणों का कोई और काव्य ब्रौनिंग ने फिर न लिखा। १२ दिसम्बर सन् १८७९ को यह महाकवि परलोक सिधारा। अन्त समय में इसे इस बात से बहुत सन्तोष हुआ कि मेरे अन्तिम काव्य Asolando (असोलैंडो) का सर्वसाधारण में बड़ा आदर है।

यह कवि ७७ बरस इस संसार में रहा, जिनमें से ५७ बरस इसने काव्य लिख कर मनुष्य-मात्र की सेवा की। इसका सम्पूर्ण जीवन शुद्धता और पवित्रता-पूर्वक व्यतीत हुआ।

ब्रजराज

——

विविध विषय।

१—मिडिल स्कूल के मास्टरों का वेतन।

इस प्रान्त के लेफ़्टिनेंट गवर्नर सर हरकर्ट बटलर, शिक्षा की उन्नति और शिक्षा के विस्तार के बड़े पक्षपाती मालूम होते हैं। जब से आपके हाथ में इस प्रान्त के शासन का सूत्र आया है तभी से आप कुछ न कुछ शिक्षा के सम्बन्ध में बराबर करते ही चले आ रहे हैं। आपका ध्यान प्रारम्भिक शिक्षा की ओर भी है और दूसरे प्रकार की शिक्षाओं की ओर भी। एक साल से अधिक हुआ, आपने डिस्ट्रिक्ट बोर्डों को बहुत सा रुपया दिया कि वे इस रुपये से अपने अपने ज़िले में हिन्दी-उर्दू के मिडिल और प्राइमरी मदरसों की उन्नति करें—अर्थात् इमारतें और बोर्डिंग हौस बनवाने, नये नये मदरसे खोलने और मुदर्रिसों की तनख्वाहें बढ़ाने के लिए यह रुपया ख़र्च किया जाय। यह मञ्जूरी देते समय आपने सब बोर्डों से यह भी पूछा था कि तुम क्या चाहते हो—किस तरह इस रुपये को ख़र्च करना चाहते हो। सबके जवाब आ जाने पर बटलर महोदय ने इस विषय पर विचार किया और उसका फल, अब ५ जून

के प्रान्तीय गैज़ट में, सबके जानने के लिए, प्रकाशित किया है। उसकी कुछ बातों का सारांश सुनिए—

१ जून १९२० से हिन्दी-उर्दू के मिडिल स्कूलों के हेड मास्टरों को नीचे लिखे अनुसार वेतन दिया जा सकेगा।

(क)	२० फ़ी सदी को	५५) मासिक
	३० ,,	४०) ,,
	५० ,,	३५) ,,

और सहकारी मास्टरों अर्थात् नायब मुदर्रिसों को इस प्रकार—

(ख)	२० फ़ी सदी को	२५) मासिक
	३० ,,	२२) ,,
	५० ,,	२०) ,,

महँगी के कारण ख़र्च बहुत बढ़ गया है। इसी से इन लोगों का वेतन बढ़ा कर इतना कर दिया गया है। ख़ूब हुआ। अब रहे देहाती मदरसों—प्राइमरी स्कूलों—के मुदर्रिसों के वेतन की बात। सो उन्हें भी लाट साहब नहीं भूले। उस विषय पर भी वे विचार कर रहे हैं। आशा है, आप उनकी भी वेतन-वृद्धि करके उनके और उनके बाल-बच्चों के धन्यवाद के पात्र बनेंगे।

इस समय देशी भाषाओं के जो मिडिल स्कूल हैं लाट साहब उनकी हर तरह की उन्नति करना चाहते हैं। आपने आज्ञा दी है कि १२७ स्कूलों की इमारतें नई बनें। साथ ही १८३ नये बोर्डिंग हाउस भी बनाये जायँ। ५७ स्कूलों और ११६ बोर्डिंग हाउसों की इमारतें बढ़ाई जाने की भी मञ्जूरी आपने दे दी है। इमारत के इन कामों में कोई २८ लाख रुपया ख़र्च होगा, जो सबका सब गवर्नमेंट देने को तैयार है। इन इमारतों के बन कर तैयार हो जाने तक ठहरने की ज़रूरत नहीं। नये स्कूल और नये बोर्डिंग हाउस खोलने का प्रबन्ध झट पट करना पड़ेगा। यदि सम्भव हो तो किराये पर मकान ले लेने की आज्ञा है। किराये पर न मिल सकें तो माँग कर ही काम निकाला जाय।

मिडिल स्कूलों में इस समय १९३० मुदर्रिस हैं। अब उनकी संख्या २४०० कर दी गई है। इससे स्पष्ट है कि लाट साहब इन स्कूलों की संख्या ही नहीं बढ़ाना चाहते, अध्यापकों की भी संख्या बढ़ाना चाहते हैं। यह बड़ी अच्छी बात है। इन्हीं स्कूलों के छात्र ट्रेनिंग स्कूलों और ट्रेनिंग क्लासों से निकल कर अध्यापन-कार्य्य करेंगे। जब उनकी संख्या काफ़ी हो जायगी तभी प्राइमरी स्कूलों की संख्या भी बढ़ा कर काफ़ी की जा सकेगी। और ऐसा होने ही पर सारे प्रान्त में प्रारम्भिक शिक्षा का विस्तार किया जा सकेगा।

२—चीन और जापान में हिन्दू न्याय-शास्त्र।

चीन में हिन्दू न्याय-शास्त्र का प्रचार हुएनसङ्ग ने किया। हुएनसङ्ग का जन्म सन् ६०० ईसवी में हुआ। युवा काल में उसने ख़ूब अध्ययन किया। २८ वर्ष की अवस्था में उसने भारत में आकर न्याय-शास्त्र का अध्ययन करना निश्चय किया। ६२८ में वह चीन से रवाना हुआ। काश्मीर में वह सांख्ययाशा (Sankhya Yasha) नामक एक विद्वान् से मिला। सांख्ययाशा की उम्र उस समय ७० वर्ष की थी। उसने कुछ समय तक हुएनसङ्ग को शिक्षा दी। फिर वह मध्य-भारत आया। वहाँ उसने नालन्दा में शीलभद्र का दर्शन किया। वहीं वह पाँच वर्ष तक रह कर अध्ययन करता रहा। फिर वह दो महीने तक प्रजिनभद्र के पास रहा। इसके बाद जयसेन के पास २ साल रह कर उसने शिक्षा समाप्त की। १६ वर्ष बाद वह चीन को लौटा। वह अपने साथ ६५७ सूत्र और शास्त्र-ग्रन्थ ले गया। उन्हें कोह-फुक-जी (Koh-fuk-ji) के मठ में रह कर उसने चीनी भाषा में अनुवादित किया। १९ वर्ष तक वह इसी काम में लगा रहा। हेतु-विद्या का भी उसने अनुवाद किया। ६६४ में ६४ वर्ष की अवस्था में उसका देहावसान हुआ।

उसके शिष्यों में न्याय-शास्त्र का सबसे बड़ा विद्वान् क्वेई-की (Kwei-ke) हुआ। दिङ्नाग के शास्त्र और हुएनसङ्ग की व्याख्याओं के आधार पर उसने शङ्कर के प्रवेश-शास्त्र पर एक भाष्य लिखा। चीन में भारतीय न्याय का सबसे प्रामाणिक ग्रन्थ वही है। उसे सब लोग महाभाष्य कहते हैं। उसके समय में वुङ्की, वुम्बी, से-माई, शिनताई, जोगन आदि कई विद्वान् हुए। उन्होंने भी ग्रन्थ-रचना की। पर महाभाष्य के कारण उनमें से किसी की भी कृति का प्रचार न हुआ।

क्वेई-की के शिष्य के-शोह ने न्याय के प्रचलित भाष्यों पर आलोचना लिखी। उसके शिष्य ची-शू ने महा-

भाष्य में प्रयुक्त न्याय के शब्दों का तात्पर्य समझाने के लिए दो ग्रन्थों की रचना की। इसके बाद दोयू, दोहकन, तेकन, लेकवा आदि न्याय के अनेक पण्डित हुए।

जापान में सम्राट् कोहतोक के शासन-काल में एक जापानी भिक्षु, दोहशोह, चीन में धर्म-शास्त्र पढ़ने के लिए ६५३ ईसवी में आया। वहाँ वह तीन वर्ष तक रहा। इसी समय हुएनसङ्ग अपनी भारत-यात्रा समाप्त कर चीन लौटा था। उसकी कीर्ति खूब फैली हुई थी। दोहशोह ने उसके ही पास जा कर अध्ययन किया। ६५६ में वह जापान लौटा। वहाँ नारा के जेनकोजी नामक मठ में उसने शास्त्र-चर्चा की। उसकी इन शास्त्र-व्याख्याओं को दक्षिण मन्दिर (South Hall) का सिद्धान्त कहते हैं। उसके पाँच साल बाद सम्राट् गेन-शेह के राजत्वकाल में, ६५८ ईसवी में, ची शुह और चिनातन नामक दो विद्वान् फिर चीन गये। वहाँ से वे भारतीय न्याय-शास्त्र ले आये।

७०३ में सम्राट् तेम्ब के समय में चीहोह, चिरन और चियूह के साथ चीन जाकर, महाभाष्य आदि कई ग्रन्थ लाया। चिहोह के अनेक शिष्य थे। सबसे प्रसिद्ध जियन था। जियन के भी सात शिष्य थे। उनमें से जेम्बोह भी ७१६ ईसवी में चिसई के पास जाकर अपने साथ महाभाष्य तथा अन्य कई ग्रन्थ लाया। उसकी शास्त्र-व्याख्याओं को उत्तर-मन्दिर (North Hall) की शिक्षा कहते हैं। दोनों ही सिद्धान्तों का खूब प्रचार हुआ।

फिर भिओसेन जेनशू, शिनकिओ जेनशिन, जोहशू, आदि न्याय के कई विद्वान् हुए।

३—भारतवर्ष में शेक्सपियर।

महाकवि शेक्सपियर इँगलेंड के सबसे बड़े कवि हैं। कुछ विद्वानों का तो यह मत है कि वे संसार के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। इसमें सन्देह नहीं कि जितने अच्छे अच्छे नाटकों की रचना शेक्सपियर ने की है उतने अन्य किसी कवि की लेखनी से विनिःसृत नहीं हुए। शेक्सपियर की प्रतिभा विलक्षण थी। उसके नाटकों का विषय है मनुष्य और मनुष्य का जीवन। विधाता की इस लीला-भूमि में जो रहस्यमय खेल खेला जा रहा है उसके तत्त्व हमें शेक्सपियर के नाटकों से ज्ञात होते हैं। शेक्सपियर के पात्र सिर्फ़ नाटकों की रङ्गभूमि पर ही नहीं देख पड़ते; उन्हें हम इस जीवित संसार में भी देख सकते हैं। कवि ने यह बात अपने एक पात्र से कहलाई भी है। वेनिस के व्यापारी एन्टोनिओ ने कहा है—"मैं इस संसार को रङ्गभूमि ही समझता हूँ, जहाँ प्रत्येक मनुष्य को अपना निर्दिष्ट खेल दिखाना पड़ता है।" ऐसे महाकवि के नाटकों का जितना आदर हो उतना कम ही है।

योरप में सबसे पहले स्पेन ने शेक्सपियर के नाटकों का आदर किया। सन् १६२३ में स्पेन के राजदूत ने उसके नाटकों की एक प्रति अपने देश को भेजी। वैलाडोलिड के विद्यालय को भी प्रथम संस्करण की एक कापी मिल गई। पर उस समय रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय के ईसाइयों की धार्मिक संस्था, जिसे इनक्वीज़िशन (Inquisition) कहते हैं, बड़ी प्रबल थी। शेक्सपियर के नाटक बिना उसकी स्वीकृति के पाठ्य विषय नहीं नियत किये जाते थे। पर स्वीकृति मिल गई और स्पेन में शेक्सपियर ने प्रवेश किया। तथापि उसके नाटकों का उतना प्रचार वहाँ न हुआ जितना फ़्रान्स में हुआ। फ़्रान्स में उसकी अधिक क़द्र हुई। १६८० में फ़्रान्स के सम्राट् लुई (चौदहवें) के पुस्तकालय में उसके अध्यक्ष ने शेक्सपियर के नाटकों की एक प्रति रख दी। उस पर उसने अपनी यह सम्मति लिखी—"लेखक में प्रतिभा तो है पर उसके नाटकों में अनौचित्य बहुत है। इसी से उसके नाटक गिर गये हैं।" फ़्रान्स के प्रसिद्ध कवि वाल्टेर ने अपने देश में शेक्सपियर के नाटकों का प्रचार किया। उसने उसके नाटकों के अनुवाद भी किये और उन पर आलोचनायें भी लिखीं। उसके अनुवादों और आलोचनाओं का लोगों पर खूब प्रभाव पड़ा। शेक्सपियर की बड़ी प्रसिद्धि हुई और उसकी यह प्रसिद्धि इतनी बढ़ी कि वाल्टेर को ही उसके विरुद्ध लिखना पड़ा। फ़्रान्स से शेक्सपियर के नाटकों का प्रचार रूस में हुआ। वहाँ भी सब लोगों ने उन्हें खूब पसन्द किया। जर्मनी में तो शेक्सपियर इतने लोकप्रिय हैं कि सभी उन्हें अपना कवि कहते हैं। वहीं शेक्सपियर के नाटकों की अच्छी समालोचना हुई। आज-कल इँगलेंड में शेक्सपियर के नाटकों की तो उतनी क़द्र नहीं है पर उनकी आलोचनायें खूब पढ़ी जाती हैं। यह बड़ी विलक्षण बात है। पर है सच। विद्वानों तक का यही हाल है। एक

लेखक का कहना है—Shakespeare's proud position to-day is possible only through the fact that he is not read......................... In all my life I never knew anybody, save one woman and a little girl, who read Shakespeare in the original. I know a deal of Shakespeare although I never read one of his plays.

अर्थात्—आज-कल शेक्सपियर का जो इतना ऊँचा स्थान है उसका कारण यह है कि कोई उसे पढ़ता नहीं। मैंने अभी तक किसी को शेक्सपियर के मूल नाटकों को पढ़ते नहीं देखा। मैं स्वयं शेक्सपियर के विषय में खूब जानता हूँ, पर मैंने उसका एक भी नाटक नहीं पढ़ा।

पर अब कुछ समय से लोगों का ढङ्ग बदल रहा है। सम्भव है, इँगलेंड में फिर शेक्सपियर के नाटकों का प्रचार होने लगे।

भारतवर्ष में अँगरेज़ी शिक्षा के साथ साथ शेक्सपियर का भी आगमन हुआ। यहाँ स्कूलों और कालेजों में शेक्सपियर के नाटक पढ़ाये जाते हैं। इसलिए शिक्षित लोगों में तो उसके नाटकों का प्रचार है, पर सर्वसाधारण में अभी तक उनका अच्छा प्रचार नहीं। नाटक सर्वसाधारण के लिए ही लिखे जाते हैं। यह खेद की बात है कि अभी भारतवर्ष के अधिकांश लोग शेक्सपियर के नाटकों का आस्वादन नहीं कर सकते। बङ्गाल में पहले पहल शेक्सपियर के नाटकों के आधार पर कहानियों और उपन्यासों की रचनायें हुईं। विद्यासागर का भ्रान्ति-विलास, कविवर हेमचन्द्र चट्टोपाध्याय का नलिनी-वसन्त, दीनबन्धु मित्र का जलधर ओ वकेश्वर, हेमलेट का छायानुवाद हरिराज आदि ग्रन्थ इसी कोटि के हैं। गिरिशचन्द्र ने ही सबसे पहले मैकबेथ का अनुवाद बँगला में किया। उनका यह अनुवाद हुआ भी अच्छा। हाल में ही उथेलो का एक अच्छा अनुवाद, बँगला में, श्रीयुक्त देवेन्द्रनाथ वसु ने किया है।

हिन्दी में अभी तक शेक्सपियर के नाटकों का अच्छा अनुवाद नहीं निकला। बम्बई और कलकत्ते की पारसी-नाटक-मण्डलियों ने शेक्सपियर के कुछ नाटकों के भ्रष्ट अनुवाद ज़रूर कराये हैं। उनमें शेक्सपियर के नाटकों का बड़ा ही विकृत रूप देखने में आता है। बाबू गदाधरसिंह ने उथेलो को उपन्यास के ढङ्ग पर लिखा है। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने मर्चेन्ट आव् वेनिस का अनुवाद किया है। उसीका एक अनुवाद बम्बई से भी प्रकाशित हुआ है। इस प्रान्त के एक लाला साहब ने भी दो नाटकों को हिन्दी में लिखा है। काशी से हेमलेट का एक अनुवाद निकला है। उथेलो का भी अनुवाद प्रकाशित हुआ है। पुरोहित गोपीनाथ, एम० ए०, ने भी दो एक नाटकों का अनुवाद किया है। सिरसा, ज़िला इलाहाबाद, के परलोकवासी बाबू काशीनाथ खत्री के लिखे हुए—कहानी के रूप में भी—कई नाटक विद्यमान हैं। इसके सिवा शेक्सपियर के नाटकों का कथाभाग उपन्यास के ढङ्ग पर और भी कई महाशयों ने लिखा है। पर शेक्सपियर की प्रतिभा देखने के लिए ये लेख पर्याप्त नहीं। शेक्सपियर के नाटकों का सफलता-पूर्वक अनुवाद कर लेना कठिन है। इसका सबसे बड़ा कारण है, उनके विदेशीय भाव। भारतवर्ष के समाज में और इँगलेंड के समाज में बड़ी विभिन्नता है। वहाँ जो अनुचित नहीं, वह यहां सर्वथा अयोग्य प्रतीत होता है। काशी के जिस हेमलेट के अनुवाद का हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं उसे पढ़ने से यह बात भली भाँति प्रकट हो जाती है। लेखक ने उसमें हेमलेट की माता को विधवा-विवाह के दोष से विमुक्त करना चाहा है। फल उसका यह हुआ है कि उसमें एक बहुत बड़ा सामाजिक दोष आगया है। उससे वह और भी पतित हो गई है। देखें, कब हमें हिन्दी में शेक्सपियर के नाटक अच्छे रूप में देखने को मिलते हैं।

४—अँगरेज़ी नाट्य-साहित्य पर महायुद्ध का प्रभाव।

इँगलेंड के साहित्य पर योरोपीय महासमर का बड़ा विलक्षण प्रभाव पड़ा है। उसी के विषय में डेमोक्रेट नामक पत्र में एक लेख निकला है। उसका मतलब नीचे दिया जाता है—

आज-कल इँगलेंड के नाट्य-साहित्य की जैसी गति है उसे भली भाँति समझने के लिए हमें महायुद्ध के कुछ समय पहले के साहित्य पर ध्यान देना चाहिए। युद्ध आरम्भ होने के ठीक पहले, चार पांच वर्ष तक, इँगलेंड का साहित्य

और कला-कौशल स्थगित हो गये थे। १९१४ में अँगरेज़ी नाट्यकारों में ऐसे भी साहित्यसेवी थे जिन्होंने साहित्य के सभी भागों को आयत्त कर लिया था। उनमें सबसे अधिक ख्याति बर्नार्ड शा (Bernard Shaw) की थी। इसका मतलब यह नहीं कि बर्नार्ड की व्यङ्ग्योक्ति में हम तत्कालीन अँगरेज़ों की रुचि देख सकते हैं। तो भी हम इतना अवश्य कहेंगे कि युद्ध के पहले यदि कभी कोई भी छः नाटककारों का उल्लेख किया जाता तो उनमें बर्नार्ड शा का नाम ज़रूर लिया जाता। इसमें सन्देह नहीं कि सर जेम्स बेरी, सर आर्थर पेनेरो, हेनरी आर्थर जोन्स, आल्फ़्रेड सट्रो और जेरोम आदि का भी अच्छा नाम था। पर यह भी सच है कि बर्नार्ड शा ने भावात्मक नाटकों की सृष्टि करके इन लोगों की कीर्ति-कौमुदी को निष्प्रभ कर दिया था। यह सभी स्वीकार करते हैं कि शा में 'पीटरमैन' के लेखक से अधिक निपुणता नहीं है। पर बात तो यह है कि नैपुण्य-प्रदर्शन न करने से ही बर्नार्ड शा इतने लोकप्रिय होगये। शा यथार्थ चित्रण (Realism) के पक्षपाती हैं। उनमें 'रोमान्स' अर्थात् भावावेश की प्रधानता नहीं। बर्नार्ड शा के आते ही इँगलेंड की रङ्गभूमि पर मनोविज्ञान की छाया पड़ने लगी। समालोचक तो ऐसे नाटक चाहते हैं जिनमें कठिन समस्यायें हों, जिनका अन्तर्गत भाव देखने के लिए उन्हें छिन्न-भिन्न करना पड़े। शा ने इन्हें वैसे ही नाटक दिये और उन समालोचकों ने उनकी कीर्ति खूब फैलाई। बर्नार्ड शा का नाम पहले-पहल उनके श्राव्य काव्यों से हुआ। पीछे उन्होंने दृश्य काव्यों की रचना में मन लगाया। युद्ध के पहले कुछ नाटककार यह समझने लगे थे कि अब नाटकों को अधिक आधुनिक रूप देने की आवश्यकता है। इसीलिए १९१४ में इँगलेंड में एक ऐसी नाट्यशाला स्थापित हुई जिसमें मानव-जीवन का सूक्ष्म विश्लेषण किया जाय। उसका अभी शैशव काल है। तो भी अन्य प्रचलित नाटकों की अपेक्षा उसमें अधिक सजीवता आगई है। युद्ध के पहले नाट्य-साहित्य का यही हाल था।

युद्ध का आरम्भ होते ही पहले तो कितनी ही नाट्यशालायें बन्द होगईं। पर जब लोगों ने देखा कि युद्ध का अन्त अभी होनेवाला नहीं तब फिर धड़ाधड़ नाटकगृह खुलने लगे। लन्दन में जर्मनी के हवाई-जहाज़ों का डर रहने पर भी चहल-पहल होने लगी। पर नाटकों का रूप बदल गया। युद्ध का पहला वर्ष भी ख़तम नहीं हुआ था कि प्रसिद्ध नाटककारों की कृतियों पर लोगों की श्रद्धा न रही। रङ्गमञ्च पर उनके नाटकों का खेल बन्द हो गया। तब ऐसे नाटकों की सृष्टि हुई जिनमें दूषित विनोद की मात्रा अत्यधिक और सदाचार और सुरुचि का प्रायः अभाव था। इन खेलों को देख कर कुछ लोगों को अवश्य क्षोभ हुआ, पर उस समय इँगलेंड की जनता में ख़ाकी की प्रधानता थी और ख़ाकी पोशाक पहननेवाले ये सैनिक ऐसे ही नाटक पसन्द करते थे। इसका कारण भी है। उस समय युद्ध का रूप अत्यन्त भयङ्कर हो गया था। सबके हृदय में आशङ्का थी। इसीसे अपनी चिन्ता दूर करने के लिए लोग नाटक देखने जाया करते थे। इसलिए रङ्गभूमि पर किसी प्रकार की गम्भीरता अथवा चिन्ता-शीलता उनके लिए असह्य थी। वे तो चाहते थे हँसी-मज़ाक, जिसमें लिप्त होकर घड़ी भर वे अपनी चिन्ता भूल जायँ।

अब युद्ध का अन्त होगया है। पर अब भी शृङ्गाररसात्मक नाटकों का प्रचार है। यदि यह सच है कि जनता की रुचि का प्रभाव नाट्यशालाओं पर पड़ता है तो अभी कुछ समय तक अँगरेज़ी में अच्छे नाटक निकलने की आशा नहीं। युद्ध की भीषणता का अनुभव करके जन-साधारण की रुचि ऐसी होगई है कि सभी लोग कौतुकावह नाटक देखना पसन्द करते हैं।

५—अमरीका और ग्रेटब्रिटन की साहित्य-वृद्धि।

समाज का ही प्रतिबिम्ब साहित्य है। समाज की जैसी दशा होती है वैसी ही साहित्य की भी दशा होती है। साहित्य की गति देख कर हम यह अनुमान कर सकते हैं कि समाज का रुख़ किधर है, उन्नति की ओर अथवा अवनति की ओर। १९१९ में अमरीका में ७,६२५ नई पुस्तकें निकलीं और ६६९ ग्रन्थों के नये संस्करण प्रकाशित हुए। ग्रेटब्रिटन में ७,३२७ नई पुस्तकें और १२९५ नये संस्करण निकले। सब मिला कर ८,६२२ पुस्तकें निकलीं। किस विषय की कितनी पुस्तकें निकलीं, इसका ब्योरा हम नीचे देते हैं—

विषय	अमरीका में	ग्रेटब्रिटन में
समाज-शास्त्र / अर्थ-शास्त्र	८६१	८२४
इतिहास	८१२	४२२
उपन्यास	६०४	१,२१७
धार्मिक	६६५	७६६
विज्ञान	५८६	४३४
काव्य, नाटक	५००	४६५
प्रयोगात्मक विज्ञान	५०७	६८६
बालकोपयोगी	४३३	५६४
कृषि	४०७	२२८
वैद्यक	४०१	३६७

उपन्यास-लेखन में ग्रेटब्रिटन और इतिहास तथा कृषि में अमरीका बढ़ा हुआ है। इससे सूचित है कि ग्रेटब्रिटन का साधारण जन-समुदाय क़िस्से-कहानी पढ़ना अधिक पसन्द करता है, जो समाज की सुरुचि का परिचायक नहीं।

६—भारतीय कृषि-समिति की स्थापना।

भारत-सरकार एक भारतीय कृषि-समिति स्थापित करने की योजना पर विचार कर रही है। इस समिति के वही उद्देश होंगे जो इँगलेंड की Royal Agricultural Society नामक संस्था के हैं। नये शासन-सुधार के अनुसार कृषि-विभाग की उन्नति का भार अधिकतर प्रान्तीय सरकार पर रहेगा, यद्यपि कृषि-विज्ञान के लिए गवेषणालय अलग खोले जायँगे। ऐसी अवस्था में एक ऐसी संस्था भारतीय सरकार के केन्द्रस्थान में स्थापित होनी चाहिए जिसकी शाखायें भिन्न भिन्न प्रान्तों में हों। ऐसा करने से प्रान्तीय कौंसिल कृषि की उन्नति में भारतीय सरकार से सहकारिता कर सकेगी। अभी जिस भारतीय कृषि-समिति की स्थापना का विचार किया जा रहा है उसका कोई सम्बन्ध इँगलेंड की कृषि-समिति से न रहेगा। फिर भी, समय समय पर, जैसी ज़रूरत होगी वैसी सहायता देने के लिए वह समिति तैयार है। यह कहा गया है कि प्रत्येक प्रान्त में एक कृषि-समिति रहे। उसका कोश अलग ही रहे। इसके सिवा एक भारतीय समिति रहे जिसमें कुछ सदस्य तो सरकार के द्वारा चुने जायँ और कुछ प्रान्तीय समितियों के चुने हुए हों। गवर्नर भी उसमें रहे। इस समिति का खर्च चलाने के लिए सब प्रान्तीय समितियाँ कुछ कुछ दें। इसमें एक वेतन-भोगी सेक्रेटरी (मन्त्री) नियुक्त किया जाय। इस समिति का यह काम होगा कि वह सब प्रान्तीय समितियों के कार्यों को नियम-बद्ध करके एक रूप दे। मदरास सरकार के अस्थायी मन्त्री दीवान बहादुर एल० डी० स्वामी कन्नू पिल्ले (Diwan Bahadur L. D. Swami Kannu Pillay) ने ऐसी समिति की स्थापना के विषय में लोगों की राय मांगी है। देखें, इसका क्या फल होता है।

७—हिन्दी-प्रेमियों से अपील।

सरस्वती के प्रायः सभी पाठक बनारस की नागरी-प्रचारिणी सभा से परिचित होंगे। इस सभा ने नागरी-लिपि और हिन्दी-प्रचार के लिए बहुत उद्योग किया है और बराबर करती जा रही है। इसने अन्यान्य कामों के सिवा कितने ही महत्त्व-पूर्ण ग्रन्थों का प्रकाशन भी किया है। वैज्ञानिक कोश, हिन्दी-शब्द-सागर, पृथ्वीराजरासो, मनोरञ्जन-पुस्तक-माला आदि उनमें मुख्य हैं। इस पिछली पुस्तक-माला में आज तक कितने ही अच्छे अच्छे ग्रन्थ निकल चुके हैं। उनमें से अधिकांश की समालोचना पाठक सरस्वती में पढ़ भी चुके होंगे। सभा हिन्दी की हस्त-लिखित पुस्तकों की खोज भी करती है। उसके लिए उसे इस प्रान्त की गवर्नमेंट एक हज़ार रुपया साल देती है। हिन्दी-शब्द-सागर के लिए सरकार से उसे १८,०००) रुपया मिला है। अनेक राजे महराजे भी उस की सहायता करने में तत्पर रहते हैं। अब उसका कार्य्य-क्षेत्र इतना बढ़ गया है कि उसके भवन की वर्तमान इमारत से काम नहीं चल सकता। यह कमी उसके बढ़े हुए कार्य्य-कलाप में बेढब बाधा डाल रही है। अतएव एक नया भवन बनाने के लिए सभा के कार्य-कर्त्ताओं ने १,२०,०००) के लिए अपील की है। आशा है कि हिन्दी-प्रेमी उसकी इस प्रार्थना को भी अवश्य सफल करेंगे। यदि उसके सभासद् ही उसके उद्धार के लिए उद्यत हो जायँ तो उसे बहुत कुछ सहायता मिल सकती है; क्योंकि—

जलबिन्दुनिपातेन क्रमशः पूर्यते घटः।

८—पञ्जाब-हाईकोर्ट के नये प्रधान विचारपति।

हाईकोर्टों में अभी तक कई भारतवासी विचारपति का आसन ग्रहण करके अपनी विज्ञता और न्याय-कुशलता का परिचय दे चुके हैं। उनमें से कुछ की अपूर्व स्थायीरूप से अभी तक किसी को भी यह पद नहीं मिला था। हर्ष की बात है कि अभी हाल में जस्टिस शादीलाल साहब पञ्जाब-हाईकोर्ट के चीफ़ जस्टिस नियुक्त हुए

माननीय चीफ़ जस्टिस (प्रधान विचारपति) शादीलाल (लाहोर)।

योग्यता देख कर यह कोई नहीं कह सकता कि वे हाईकोर्ट के प्रधान विचारपति का आसन ग्रहण करने के उपयुक्त नहीं थे। एक दो बार दो एक भारतवासी स्थानापन्न प्रधान विचारपति (चीफ़ जस्टिस) हो भी चुके हैं। पर हैं। आप अपने इस उच्च पद के सर्वथा योग्य हैं। इस समय आप सैर करने विलायत गये हुए हैं। ऊपर आपका चित्र प्रकाशित किया जाता है।

पुस्तक-परिचय।

१—साहित्यसम्मेलन-कार्य्यालय, प्रयाग, से प्राप्त पुस्तकें (१) हिन्दी-भाषा-सार, गद्य, पहला भाग। इसका आकार मँझोला, पृष्ठ-संख्या कोई २००, मूल्य १० आने और छपाई अच्छी है। इसमें मुन्शी सदासुख से लेकर राय देवीप्रसाद तक, १८ लेखकों, का संक्षिप्त चरित और उनके गद्य के नमूने हैं। इन लेखकों में मुन्शी इन्शाअल्लाह ख़ाँ, डाक्टर नज़ीर अहमद और रतननाथ सरशार के लेखों की भी बानगी है। चुनाव अच्छा हुआ है। भाषा के क्रम-विकास पर ध्यान रक्खा गया है। पर पुस्तक में "साहित्य-हत्या" नाम का लेख न रखा जाता तो अच्छा होता। (२) राष्ट्र-भाषा। इस पुस्तक के लेखक की आज्ञा है कि "इसकी छपाई, कागज़, आकार और पृष्ठ-संख्या इत्यादि लिख कर व्यर्थ ही समय नष्ट न" किया जाय। इसी से हम यह कुछ नहीं करते, यहां तक कि मूल्य भी नहीं लिखते। क्योंकि लेखक के "इत्यादि" में हम उसे भी शामिल समझे लेते हैं। इसमें राष्ट्र-भाषा और राष्ट्र-लिपि के विषय में अनेक ख्यातनामा पुरुषों की सम्मतियाँ और वक्तृतायें उद्धृत हैं। लेखक महाशय की निज की भी कुछ रचना है। हिन्दी-भाषा और नागरी-लिपि की महिमा जानने के लिए यह पुस्तक अद्वितीय है। अनुकूल और प्रतिकूल दोनों प्रकार की सम्मतियों का ज्ञान इससे हो सकता है। अनुकूल पक्षवाले ही अधिक हैं। प्रतिकूल पक्ष के तो यों ही कुछ भूले भटके लोग हैं। (३) प्रथमालङ्कार-निरूपण। इसमें थोड़े से मुख्य मुख्य अलङ्कारों के लक्षण और उदाहरण हैं। पहले अलङ्कार—अनुप्रास—का लक्षण लिखा है—

स्वर समेत अच्छर पदनि आवत सदृश प्रकाश
भिन्न अभिन्न पदन सों छेक लाट अनुप्रास

इसके तीसरे चरण में एक मात्रा की कमी है। साहित्य-सम्मेलन की प्रथमा परीक्षा के छात्रों के लिए इसकी रचना की गई है। उनके काम की है। आकार मध्यम, पृष्ठ-संख्या ४० और मूल्य दो आने है। (४) हिन्दी विद्या-पीठ। प्रयाग में जो हिन्दी-विद्यापीठ खुला है उसके खुलने के अवसर पर बाबू भगवानदास तथा और दो एक सज्जनों ने जो व्याख्यान दिये थे उन्हीं का संग्रह इसमें है। संग्रह में सन्निहित विचार दिव्य हैं। आकार पूर्ववत, पृष्ठ-संख्या ३२ और मूल्य १½ आने है। (५) हिन्दी-प्रचार का विवरण। साहित्य-सम्मेलन ने मदरास में हिन्दी-प्रचार के लिए जो उद्योग किया है और जो कर रहा है उसी का यह विवरण है। इसके पाठ से विदित होता है कि सम्मेलन इस सम्बन्ध में निश्चेष्ट नहीं; वह यथासामर्थ्य हिन्दी-प्रचार की चेष्टा ज़रूर कर रहा है। उसके पास धन की कमी है। और, बिना धन के काम अच्छी तरह चल नहीं सकता। अतएव हिन्दी के प्रेमी और देश-भक्त धनवानों को उसकी सहायता करनी चाहिए। आकार मध्यम, पृष्ठ-संख्या २७ और मूल्य एक आना है।

❋

२—रामचरित-चिन्तामणि—यह एक बहुत बड़ा काव्य है। २५ सर्गों में समाप्त हुआ है। पृष्ठ-संख्या कुछ कम चार सौ है। आकार मध्यम और छपाई सुन्दर है। इसके रचयिता, सरस्वती-पाठकों के परिचित, पण्डित रामचरित उपाध्याय हैं। इस काव्य के कुछ अंश सरस्वती में निकल भी चुके हैं। अतएव इसकी चाशनी चखाने की ज़रूरत नहीं। नामानुसार इसमें रामचन्द्र के चरित का कीर्तन है। अनेक प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया गया है। इसके कितने ही स्थल वीर, रौद्र और करुण-रसों के सिवा अन्य रसों से भी अभिषिक्त हैं। प्रकृति-वर्णन भी जगह जगह पर है। इसमें एक विशेषता यह है कि कवि ने जगह जगह पर देशभक्ति और देश-प्रेम की सुरीली वंशी बजाई है। इसके अनेक अंशों से सुशिक्षा भी मिलती है और सुनीति ही का नहीं, कूट-नीति का भी नाद कर्णगोचर होता है। भाषा इसकी बोल-चाल की है। कवि ने अपनी कविता को सालङ्कार और सानुप्रास बनाने की अच्छी चेष्टा की है। उदाहरण—

जनकजा-हृत-चित्त हुआ सही
तदपि तापस से कम हैं नहीं।
मधुर मोदक क्या पच जायगा—
कपि! सवा मन बामन-पेट में
(सर्ग १६, प० ४५)

लड़ नहीं सकता मुझसे कभी
तनिक भी नृप-पालक स्वप्न में।

कब कहाँ कह तो किसने लखा
कपि ! लवा-रण वारण से भला
(सर्ग १६, प० ४६)

कविता के प्रेमियों—विशेष करके रामचरित-चर्चा के लोलुपों को—इस चारु चिन्तामणि का आदर करना चाहिए। हिन्दी का सौभाग्य है जिसमें बोलचाल की भाषा में बड़े बड़े काव्य-ग्रन्थ निकलने लगे। इसमें एक विषय-सूची या सर्ग-सूची की कमी है। कवि को पुस्तकारम्भ में, भूमिका के रूप में, बहुत नहीं तो दो ही चार सतरों में अपना कुछ तो वक्तव्य व्यक्त करना था। पर नहीं किया। उनकी यह त्रुटि बहुत खटकती है। मूल्य इसका २) है। प्रकाशन इसका बाँकीपुर के ग्रन्थमाला-कार्य्यालय ने किया है। उसी से इसकी प्राप्ति हो सकती है।

❋

३—**सन्तानशास्त्र**—आकार छोटा, पृष्ठ-संख्या ८८, लेखक, पण्डित भीमसेन शर्मा, मैनेजर ब्रह्मप्रेस, इटावा से ।-) में प्राप्य। इस पुस्तिका में स्मृति, ज्योतिष और वैद्यक ग्रन्थों से प्रमाण देकर सिद्ध किया गया है कि किस अवस्था में और किस प्रकार गर्भाधान करने से और किन बातों से दूर रहने से अच्छी सन्तान हो सकती है। लेखक की राय है कि शास्त्रोक्त विधि से यदि सन्तान उत्पन्न की जाय तो पुराने युग के स्वास्थ्य-सम्पन्न पुरुषों की तरह नई सन्तान भी खूब ऊँची-पूरी, हृष्ट-पुष्ट और बुद्धि-वैभव-सम्पन्न हो। सो ठीक है, परन्तु इस सम्बन्ध में यह सोचने की बात है कि शास्त्रों में जो बातें लिखी हैं उन सबका परिपालन करना इस समय के सभी मनुष्यों के लिए कहाँ तक सम्भव है। क्योंकि देश, काल और मनुष्यों की वर्तमान स्थिति पुराने वचनों की परिपालना में किसी हद तक बाधक है। बिल्व, वट, तेंदू और भिलावे की लकड़ी से सूतिकागृह का पाटना उसी समय सम्भव और सुलभ रहा होगा जब गर्भाधान-सम्बन्धी शास्त्र-वचनों का निर्माण हुआ होगा।

४—**यूरोप में बुद्धि-स्वातन्त्र्य**—आकार मध्यम, पृष्ठ-संख्या १६४, काग़ज़ और छपाई साधारण, मूल्य सवा रुपया, प्रकाशक—बुद्धि-स्वातन्त्र्य-साहित्य-भाण्डार, देवरी, सागर, से प्राप्य। लेकी साहब इँगलिस्तान के नामी ग्रन्थ-कार हैं। उनकी एक पुस्तक है—Rationalism in Europe; उसी के पूर्वार्द्ध का यह हिन्दी-अनुवाद है। अनुवादक हैं—पण्डित शिवसहाय चतुर्वेदी। अनुवाद ठीक ठीक हुआ है या नहीं, यह बता सकने के साधन इस समय हमारे पास नहीं। पर हम इतना अवश्य कहेंगे कि लेकी साहब की इस पुस्तक का भाव हिन्दी में ठीक ठीक प्रकट कर देना मामूली सी अँगरेज़ी जाननेवालों के बस के बाहर की बात है। मूल-पुस्तक के अच्छी होने में सन्देह नहीं। ख़ुशी की बात है, उसका आस्वादन अब अकेली हिन्दी जाननेवालों के लिए भी सुलभ हो गया। इस पुस्तक में इतने विषयों का समावेश हुआ है—

(१) योरप में बुद्धि-स्वातन्त्र्य का उदय और उसके कार्य का इतिहास।
(२) जादू और डाकिनी वृत्ति
(३) धर्म-संस्थाओं का चमत्कार
(४) कला-शास्त्र का विकाश
(५) विज्ञान-शास्त्र का ,,
(६) नीति-शास्त्र का ,,

अनुवाद की भाषा कहीं कहीं बहुत खटकती है। पुस्तक में सैकड़ों विदेशी जनों, संस्थाओं, पन्थों आदि के नाम आये हैं। उनका विवरण थोड़े में ज़रूर देना था। बिना ऐसा किये एक-मात्र हिन्दी जाननेवाले बेचारे क्या जानें "सन्त हिलेरियन" कौन था। यह इसमें बहुत बड़ी त्रुटि है। ख़ैर, अँगरेज़ी की एक अच्छी पुस्तक का अनुवाद तो हिन्दी में हो गया। एतदर्थ अनुवादक महाशय को धन्यवाद।

❋

५—**नागरी-हितचिन्तक-कार्य्यालय की पुस्तकें**—सागर ज़िले में एक जगह देवरी है। वहाँ हिन्दी की पुस्तकें लिखने, प्रकाशित करने और बेचने के कई कार्य्यालय और भाण्डार खुल गये हैं। पर दो ही तीन कार्य्य-कुशल सज्जन उन सबके सूत्रधार मालूम होते हैं। इसी देवरी के पूर्व निर्दिष्ट "कार्य्यालय" ने तीन पुस्तकें भेजने की कृपा की है। पहली का नाम है—**भारतीय नीति-कथा**। इसकी पृष्ठ-संख्या १७०, छपाई और काग़ज़ साधारण, मूल्य

१२ आने है। आकार मध्यम है। इसमें महाभारत की मुख्य मुख्य कथाओं का संग्रह है। कथायें सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक कई प्रकार की हैं और शिक्षाप्रद हैं। दूसरी पुस्तक है—**आदर्श-चरितावली**। इस ६२ सफ़े की साधारण छपी हुई पुस्तक का मूल्य है ६ आने। इसमें ६ विदेशी, ७ स्वदेशी और तीन पौराणिक पुरुषों के संक्षिप्त चरित हैं। तीसरी पुस्तक है—**सदाचार-सोपान**। इसकी पृष्ठ-संख्या ४८ और मूल्य ४ आने है। यह एक बँगला-पुस्तक का अनुवाद है। इसमें सदाचार-सम्बन्धी छोटे छोटे १६ लेख हैं। पुस्तकें तीनों अच्छी हैं।

❋

६—विधवा-प्रार्थना—छोटे आकार की इस २४ सफ़े की पुस्तक का मूल्य २ आने हैं। कृष्णलाल वर्म्मा, ग्रन्थ-भाण्डार, लेडी हार्डिंज रोड, माटुंगा, बम्बई—को लिखने से मिलती है। उर्दू के प्रसिद्ध कवि मौलाना "हाली" ने "मनाजात बेवा" नाम की एक पद्य-पुस्तक में विधवाओं की बड़ी ही करुण कहानी कही है। यह वही है, अन्तर इतना ही है कि यह देवनागरी-लिपि में है। कुछ देर तक आँसू बहाने की सामग्री इसमें खूब है। छन्द उर्दू का है।

❋

७ सुमनोऽञ्जलि—तीन भाग। प्रत्येक भाग में २० पृष्ठ हैं। छोटी छोटी कविताओं का संग्रह है। लेखक और प्रकाशक श्रीयुत वृजजीवनदास बुलानाला, काशी, हैं। कवितायें प्रायः खड़ी बोली में हैं और अनेक विषयों की हैं। तृतीय भाग में व्रज-भाषा अधिक प्रयुक्त हुई है। वही भाग अधिक सरस है। मूल्य नहीं लिखा।

❋

८—सेवा-समिति, प्रयाग, की पुस्तकें—प्रायग में एक सेवा-समिति है। वह अच्छा काम कर रही है। उसने एक औषधालय खोला है। उसमें बिना मूल्य ओषधि-दी जाती है। जहाँ न तो अस्पताल है और न कोई वैद्य वहाँ मुफ़्त दवायें भेज कर यह समिति दरिद्र-ग्रामीणों की अच्छी सेवा कर रही है। इसी समिति से हमें आठ छोटी छोटी पुस्तकें प्राप्त हुई हैं। ये भी बिना मूल्य वितरण के लिए हैं। पुस्तकों के नाम हैं—(१) १२ अनुभवी औषधियों से अनेक रोगों की चिकित्सा का विवरण। ये ओषधियाँ उस गाँव में भेज दी जाती हैं जहाँ इस समिति की शाखा स्थापित होती है। (२) गर्भवती माता और बच्चे की आरोग्यता। (३) चेचक और टीका। (४) तपेदिक से बचो। (५) आरोग्यता के नियम। (६) प्लेग और उससे बचने के उपाय। (७) मलेरिया। (८) विशूचिका। समिति का कार्य स्तुत्य है।

❋

९—रोम का इतिहास—लेखक, प्रोफ़ेसर ज्वाला-प्रसाद, एम० ए०, पृष्ठ-संख्या १७१। काग़ज़ और छपाई अच्छी है। प्रकाशक, तरुण-भारत-ग्रन्थावली-कार्यालय, दारागंज, प्रयाग। मूल्य एक रुपया।

हिन्दी में इतिहास-विषयक पुस्तकों का अभाव सा है। रोम का इतिहास अत्यन्त शिक्षाप्रद है। इसलिए लेखक धन्यवाद के पात्र हैं। इसकी भाषा विशद नहीं है। इसी से इसमें रोचकता नहीं आ सकी है। मान-चित्रों की भी आवश्यकता थी। पुस्तक काम की है। विषय अच्छी तरह समझाया गया है।

❋

१०—मूर्ति-पूजा-मण्डन—यह पुस्तक पण्डित ब्रह्म-देव मिश्र, काव्यतीर्थ, (सम्पादक, ब्राह्मणसर्वस्व) की रचना है। आकार छोटा, पृष्ठ-संख्या २२०, मूल्य ॥।) है। यह इसकी तृतीयावृत्ति है। लेखक महाशय ने इसमें शास्त्रों के प्रमाण देकर मूर्तिपूजा का मण्डन और उसकी उपयोगिता सिद्ध की है। इसका सन्तोष-जनक खण्डन करनेवाले सज्जन को १०००) का पारितोषिक देने की प्रतिज्ञा भी आपने कर डाली है। पुस्तक साधारण काग़ज़ पर साधारण टाइप में छपी है। मूर्ति-पूजकों के आदर की और अपूजकों के विचार की चीज़ है।

❋

११—कविता-रत्नमाला—आकार छोटा, पृष्ठ-संख्या ९६, मैनेजर ब्रह्मप्रेस, इटावे, से।=) में प्राप्य। ब्राह्मण-सर्वस्व नामक मासिक पत्र में जो कवितायें समय समय पर निकलती रही हैं वही इसमें पुस्तकाकार छाप दी गई हैं। कुछ कवितायें अन्य मासिक पत्रों से भी ली गई हैं। इसके

लिए सङ्ग्रहकर्ता ने उन पत्रों के सम्पादकों और सञ्चालकों के प्रति भूमिका में कृतज्ञता व्यक्त कर दी है। सो यही बहुत है। इस सङ्ग्रह की अनेक कवितायें सरस, मनोरञ्जक और भावपूर्ण हैं।

※

१२—हरिकोश—संस्कृत-हिन्दी और हिन्दी-संस्कृत कोश। आकार मँझोला। पृष्ठ-संख्या ८६०। मूल्य साढ़े तीन रुपये। मांटगुमरी की राजकीय संस्कृत-पाठशाला के प्रथम संस्कृताध्यापक पण्डित कृपाराम शास्त्री ने इसका सङ्कलन किया है। इसमें सब मिला कर कोई १५,५०० शब्द होंगे। कोश बड़े काम का है। विशेष करके स्कूलों और कालेजों के छात्रों के लिए। इसके प्रकाशक हैं राय साहब गुलाबसिंह एंड सन्स, लाहोर। वही इसे बेचते हैं।

※

१३—कथामुखी—इस नाम की एक मासिक पत्रिका अयोध्या से निकलने लगी है। अब तक—जून १९२० तक—इसके दो अङ्क निकल चुके हैं। कोई "श्रीबिन्दु" नाम के ब्रह्मचारी इसका सम्पादन करते हैं। महात्मा बालकराम विनायक इसके प्रवर्तक हैं। आकार छोटा है। पर छपाई और काग़ज़ उत्तम है। हर अङ्क में कोई ४० पृष्ठ रहते हैं। यह पत्रिका विशेष करके कथा-कथन या आख्यायिका-प्रकाशन के लिए निकाली गई है। कथाओं की सामग्री प्रायः हिन्दुओं, जैनों और बौद्धों के प्राचीन ग्रन्थों से ली जाती है। उसमें आवश्यकता, समय और सुरुचि के अनुसार उचित परिवर्तन कर दिया जाता है। अब तक इसमें जितनी कहानियाँ निकली हैं सब अच्छी निकली हैं। उनसे मनोरञ्जन भी हो सकता है और शिक्षा-ग्रहण भी। भाषा आलङ्कारिक और सरस होती है। कहानियों के सिवा भक्ति, प्रेम, देश-काल आदि से सम्बन्ध रखनेवाले स्वल्प नोट्स् (लघु लेख) भी इसमें प्रकाशित होते हैं। प्राचीन उद्धृत तथा नवीन रचित कवितायें भी छोटी छोटी दो एक रहती हैं। कविताओं की भाषा पुरानी हिन्दी, पर सरस और भावमयी होती है। अपने ढङ्ग की यह बड़ी अच्छी पत्रिका है। वार्षिक मूल्य २॥) है।

※ ※ ※

नीचे नाम लिखी हुई पुस्तकें भी पहुँच गई हैं। भेजनेवाले महाशयों को धन्यवाद—

(१) दशम वैद्य सम्मेलन (देहली) का कार्य्य-विवरण—प्रकाशक पं० भगीरथ स्वामी, देहली।

(२) जन्माङ्कदीपक, भाषावार्तिक—लेखक, पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्र।

(३) मारवाड़ी ट्रेड्स् एसोसियेशन (कलकत्ता) का प्रथम वार्षिक विवरण।

चित्र-परिचय।

अघोरपन्थी साधु।

भारतवर्ष में साधुओं के अनेक पन्थ हैं। कुछ साधु अघोर-मतावलम्बी भी होते हैं। उनका ढँग सबसे विलक्षण रहता है। उनके लिए मदिरा-पान और अभक्ष्य-भक्षण निषिद्ध नहीं। मदिरा को वे दुधुवा कहते हैं। इस मत में कई साधु सिद्ध हो गये हैं। उनमें से कुछ की महत्ता और सिद्धि के दृष्टान्त लोगों ने अपनी आँखों देखे हैं। खेद की बात है कि अब इन लोगों का तपो-बल क्षीण होता जाता है। इस अङ्क में एक अघोरमतावलम्बी साधु का चित्र प्रकाशित किया जाता है। पास ही खड़ी हुई एक गृहस्थ-नारी से वह कुछ बात-चीत कर रहा है। वह साधु-महराज को देने के लिए शायद उनकी वही प्यारी चीज़ हाथ में लिये हुए है। साधु-वेश-धारी पुरुषों से स्त्रियां परदा नहीं करतीं, चाहे वे उस वेश में छिपे हुए कालनेमि ही क्यों न हों। जहां साधु-वेश की इतनी महिमा है, वहां प्रकृत साधुओं की महिमा का क्या ठिकाना। यह चित्र हमें बाबू रामेश्वरप्रसादजी की कृपा से प्राप्त हुआ है। इसके लिए उन्हें अनेक साधुवाद।

Printed and published by Apurva Krishna Bose, at The Indian Press, Ld., Allahabad.
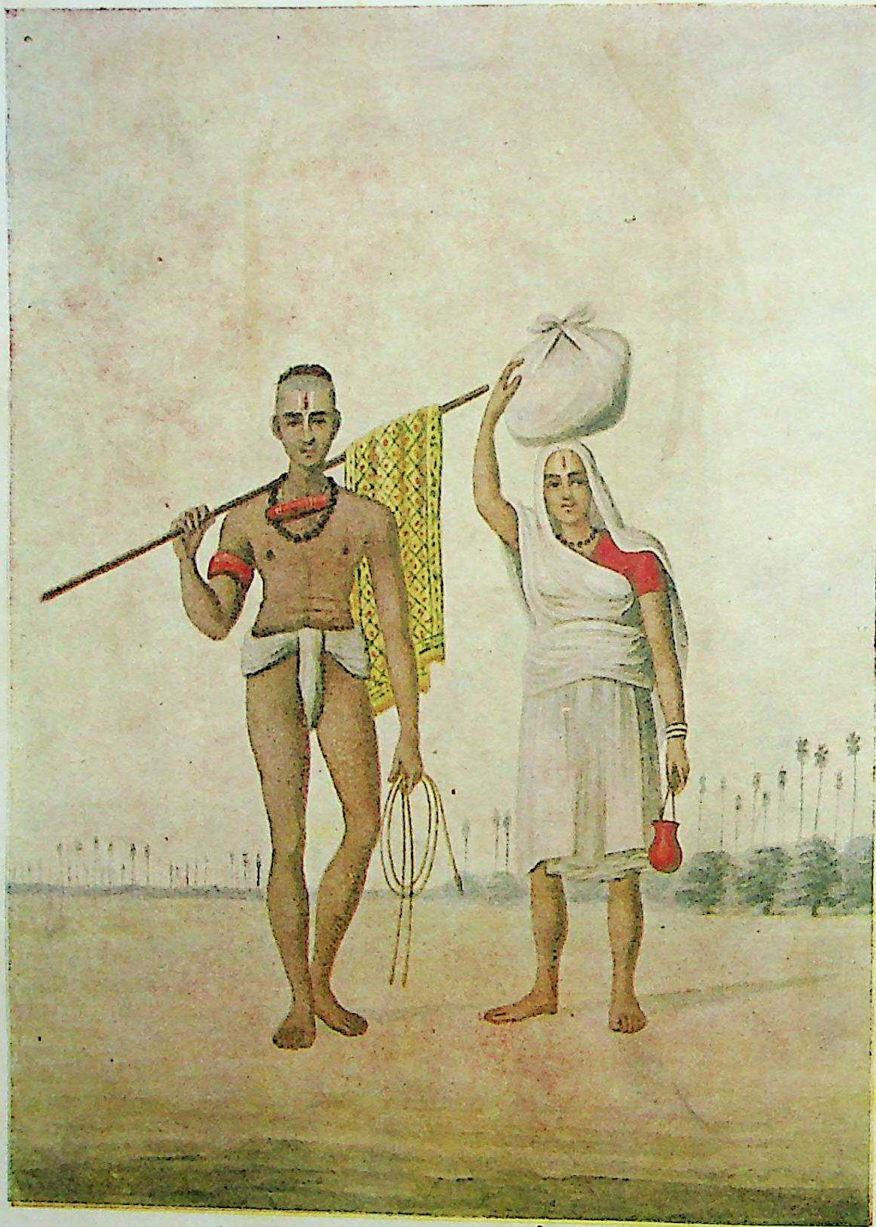
तीर्थ यात्री ।

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग ।
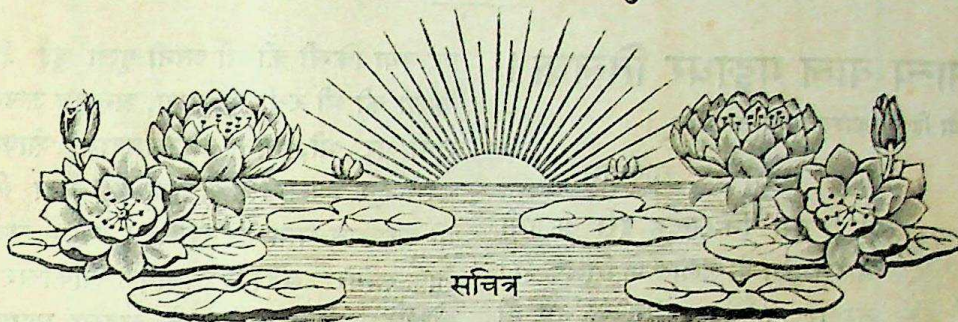
भाग २१, खण्ड २] अगस्त १९२०—अधिक श्रावण १९७७ [संख्या २, पूर्ण संख्या २४८

प्रणाम।

बहु कलकण्ठ खगों के आश्रय, पोषक या प्रतिपाल प्रणाम।
भव-भूतल को भेद गगन में उठनेवाले शाल, प्रणाम॥
हरे भरे, आँखों को शीतल करनेवाले, तुम्हें प्रणाम,
छाया देकर पथिकों का श्रम हरनेवाले, तुम्हें प्रणाम।
अटल अचल, न किसी बाधा से डरनेवाले, तुम्हें प्रणाम,
शुद्ध सुमन-सौरभ समीर में भरनेवाले, तुम्हें प्रणाम।

देनेवाले औरों को ही सारे स्वफल रसाल, प्रणाम,
भव-भूतल को भेद गगन में उठनेवाले शाल, प्रणाम॥
व्रत में रत, आतप, वर्षा, हिम सहनेवाले, तुम्हें प्रणाम,
स्वावलम्बयुत, उन्नत भी नत रहनेवाले, तुम्हें प्रणाम।
खींच रसातल से भी रस को गहनेवाले, तुम्हें प्रणाम,
सब कुछ करके भी न कभी कुछ कहनेवाले, तुम्हें प्रणाम।
जन्मभूमि के छत्र, पत्रमय, अहो समुन्नत भाल, प्रणाम,
भव-भूतल को भेद गगन में उठनेवाले शाल, प्रणाम॥

विस्तृत शत-भुज-शाखाओं से देनेवाले वीर, प्रणाम,
हिमकण से प्रभुदत्त वज्र तक लेनेवाले धीर, प्रणाम।
विविध-कालदर्शी, साक्षी-सम, बद्ध-मूल, गम्भीर, प्रणाम,
सभी दशाओं में सदैव ही परहित-हेतु-शरीर, प्रणाम।
क्रम क्रम से सर्वस्व त्याग कर स्थाणुमूर्ति चिरकाल प्रणाम,
भव-भूतल को भेद गगन में उठनेवाले शाल, प्रणाम॥

मैथिलीशरण गुप्त

लोकमान्य बाल गङ्गाधर तिलक।

भवो हि लोकाभ्युदयाय तादृशाम्।

कालिदास

तिलक! तुम निःसन्देह इस अभागी भारतभूमि के ललाट के तिलक थे। तुम्हारे पार्थिव शरीर के नष्ट हो जाने से उसका वह तिलक पुछ गया! तुम्हारा यह उपनाम सच-मुच ही अन्वर्थक था। तुम्हारी "लोकमान्य" उपाधि भी सार्थक थी। इस दैन्य-दग्ध देश में कितने ही विद्वानों, धनवानों, नीति-निपुणों और राजनीतिज्ञों ने आज तक जन्म लिया और शरीर छोड़ा। उन्होंने ख्याति भी पाई। पर इधर, बहुत काल से, उनमें से एक ने भी इतनी विस्तृत लोकमान्यता न पाई थी। तुम यथार्थ ही लोकमान्य थे, इसका यथेष्ट प्रमाण तुम्हारे लोकान्तरित होने पर मिल गया। जिसे रुग्ण सुन कर दूर दूर से देश के नेता सेवा-शुश्रूषा और दर्शनों के लिए बम्बई पहुँच गये, जिसकी दीर्घायुरारोग्य-प्राप्ति के लिए सहस्रशः लोगों ने पूजा-पाठ कराई, दान-दक्षिणा दी, जप-तप तक किया, और जिसका भस्मावशेष आता देख विपक्षियों तक ने सिर से अपनी अपनी टोपियाँ उठा कर आदर-प्रदान किया उसके लोकमान्य होने में क्या सन्देह? आज तक इस देश से अनेक प्रतिष्ठित पुरुष लोकान्तरित हो चुके हैं, पर क्या किसी की भी इतनी पूजा हुई है? क्या किसी की भी रथी के साथ, अखण्ड जलवृष्टि होती रहने पर भी, इतना नर-समुदाय, शोकाश्रुमोचन करते हुए, श्मशान तक गया है? क्या किसी का भी अवसान-समाचार सुन कर देश में सर्वत्र इतना शोक-सागर उमड़ा है? आपके लोकोत्तर गुणों पर कौन मुग्ध न था? आपके सहसा महाप्रस्थान ने किसे विकल नहीं किया? कौन ऐसा नगर और कौन ऐसा क़सबा है जिसने आपके निर्वाण पर आँसू नहीं बहाये? यह सब इसीलिए कि आप लोकमान्य थे, आपने अपने अलौकिक गुणों से लोगों के हृदयों में घर बना लिया था। धन्य है वह पुरुष जिसका कीर्त्ति-गान उसके विपक्षी भी करें, जिसकी भस्मीभूत अस्थियों के सामने वे भी सिर झुकावें, जिसकी दृढ़ता और चारित्र-बल की वे भी प्रशंसा करें।

आपका पाञ्चभौतिक शरीर तो नष्ट होगया, पर यशः शरीर बना हुआ है। वह अमर है। वह अक्षय्य है। किसका सामर्थ्य जो उसका अत्यन्ताभाव तो दूर, तिरोभाव तक कर सके! गीता-रहस्य के रहते उसका तिरोभाव! नितान्त ही असम्भवनीय कथा! यशः शरीर ही सब कुछ है; स्थूल शरीर कुछ भी नहीं—

एकान्तविध्वंसिषु तद्विधानां
पिण्डेष्वनास्था खलु भौतिकेषु

आपके स्थूल शरीर पर विशेष आस्था तो आपके भक्तों, आपके विनेयों और आपके अनुगा-

मियों की थी। सो भी लोककल्याण के लिए, किसी स्वार्थ-सिद्धि के लिए नहीं। वह नहीं रहाः न सही। काम चाहें तो—चेष्टा करें तो—शतधा, नहीं सहस्रधा विभक्त होकर कर सकेंगे।

लोकमान्य बाल गङ्गाधर तिलक।

लाचारी है। आपके अनुपमेय गुणों का अनुकरण करके आपके अनुयायी आपके उस स्थूल शरीर का

आरम्भ में उद्धृत की गई कालिदास की उक्ति के अनुसार आप किसी अद्भुत शक्तिशालिनी विभूति

के अवतार थे। क्योंकि जो कुछ आपने किया अधिकांश में लोकाभ्युदय ही के लिए किया। और, विभूतियों के अवतार लोक के अभ्युदय के लिए ही होते हैं। आप यदि ऐसे अवतार न होते तो देश के कोने कोने तक में आपका कीर्त्ति-कलाप कैसे फैलता और आपके लिए बच्चे, बूढ़े और स्त्रियाँ तक कैसे अश्रु-विमोचन करतीं?

देश में आपसे बढ़ कर भी वक्ता, आपसे बढ़ कर भी विषय-विशेष के विद्वान, आपसे बढ़ कर भी लेखक विद्यमान हैं। पर आप किसी एक ही गुण के अधिष्ठान न थे; आपमें एक नहीं अनेक अद्भुत गुण थे। इसी से आपकी तुलना किसी और से नहीं हो सकती। आप दर्शनशास्त्री थे, आप तार्किक-शिरोमणि थे, आप राजनीति-निपुण थे, आप गणितज्ञ थे, आप विधिज्ञ थे, आप वेदज्ञ थे, आप आदर्श लेखक थे और सबसे बढ़ कर थे आप देशभक्त। क्या ये सभी गुण किसी एक व्यक्ति में बहुत ढूँढ़ने से भी मिल सकते हैं? इसी से आप अपनी ही उपमा थे—"गगनं गगनाकारम्"। भय किसे कहते हैं, आपने कभी जाना ही नहीं। भीरुता आपके लिए अजन्मा रही। सचाई को आपने अपनी अधिष्ठात्री देवी समझा। आपका जैसा चारु चरित्र, आपका जैसा धैर्य्य और साहस, आपकी जैसी सादगी क्या और भी कहीं देखी गई है? विपत्ति आने पर मनुष्य की बुद्धि कुण्ठित हो जाती है, आपकी बुद्धि प्रखर हो जाती थी। तभी तो दूसरी दफ़े जेल जाने पर आपने आरकटिक होम इन दी वेदाज़ (Arctic Home in the Vedas) लिख डाला और तीसरी बार वहाँ पधारने पर गीता-रहस्य के सदृश ग्रन्थ-रत्न की अलौकिक आभा से जन-समुदाय को चमत्कृत कर दिया। ओरायन (Orion) नाम की पुस्तक लिख कर वेदों की परा प्राचीनता का समाचार आप पहले ही सुना चुके थे। "आरकटिक होम" की रचना करके तो वेदों के उत्पत्तिकाल को आपने न मालूम कहाँ से कहाँ तक पहुँचा दिया। गीता तो आपकी परम प्रिय वस्तु थी। उसका रहस्य समझाने में आपने जैसे पाण्डित्य, जैसी देशकालज्ञता, जैसी प्रकाण्ड प्रतिभा का परिचय दिया है वैसी कहीं अन्यत्र देखी ही नहीं गई! निष्काम कर्म का पाठ पढ़ा कर आपने भूले हुओं को राह पर लगा दिया। इस ग्रन्थ में आपने वह ज्ञान भर दिया है जो समझनेवालों के लिए सर्वथा अमूल्य है। गीता के ज्ञान को आप पराकाष्ठा का ज्ञान समझते भी थे। इसी से आप—

यदा यदा हि धर्म्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्म्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

गीता के इस श्लोक को देहावसान के कुछ मिनट पहले पढ़ते पढ़ते सदा के लिए चुप हो बैठे। इस श्लोक के स्मरण से आपने अपने हृद्गत भावों का अच्छा चित्र दिखाया।

जिस काम को आपने अच्छा समझा, हज़ार विघ्न-बाधाओं के आ पड़ने पर भी, उसकी सिद्धि के प्रयत्न से कभी पैर पीछे नहीं हटाया। संसार एक तरफ़, आप अकेले एक तरफ़। दृढ़ता हो तो ऐसी। दृढ़प्रतिज्ञ हो तो ऐसा। सत्यसङ्कल्प हो तो ऐसा। आपके किस किस गुण का स्मरण और अभिनन्दन किया जाय? कुछ लोगों की दृष्टि में आपमें दोष थे—बहुत से दोष थे। पर हमारी प्रार्थना है कि दोष होते किसमें नहीं? आपमें दोष हों। आपमें दोष रहे हों। रहने दो। उनकी गणना और उनके विवेचन के लिए यह समय उपयुक्त नहीं। जिसके भस्मावशेष की वन्दना करने और उसे त्रिवेणी में निमज्जनार्थ ले जाने के लिए हज़ारों मनुष्य नङ्गे पैर दौड़ें, और जिसकी निर्वाणपद-प्राप्ति के दसवें दिन करोड़ों भारतवासी तिलाञ्जलि दें उसमें यदि कोई दोष रहे भी होंगे तो वे इन लोगों की दृष्टि में दोष न होंगे। और, यदि हों भी

तो क्या अल्प दोष अपरिमेय गुणों की राशि से सहज ही ढूँढ़ निकाले जा सकते हैं? महात्माओं के चरित में दोष ढूँढ़ना किस का काम है, यह किस सादर से छिपा है?

छिपन्ति मन्दाश्चरितं महात्मनाम

आपका चरितगान आज तक कितनी ही पुस्तकों, वक्तृताओं और लेखों में अनेक विज्ञ जन पहले ही कर चुके हैं। १ अगस्त से आज तक भी सैकड़ों नहीं, हज़ारों लेख समाचार-पत्रों और सामयिक पुस्तकों में निकल चुके हैं। अतएव सरस्वती के पाठक ऊपर की उक्तियों को निवापाञ्जलि-मात्र समझें। चरित्र-लेखन की चेष्टा न कर के, नीचे, तिलक महाराज के जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली दो-चार मुख्य मुख्य बातें ही लिख कर हम, इस समय, लेखनी रख देने को बाध्य हैं।

देश के दुर्भाग्य से १ अगस्त को आपकी मृत्यु क्या हुई भारतवर्ष पर वज्रपात हो गया।

यदि लोकमान्य का जन्म भारतवर्ष में न हो कर किसी दूसरे देश में होता तो वह देश कुछ का कुछ हो जाता। परन्तु विधाता ने उन्हें भारतवर्ष में जन्म देकर ऐसे अशान्ति-चक्र में डाल दिया कि वे अनेक बार आपत्तिग्रस्त हुए। उन पर विपत्ति पर विपत्ति आई, पर न तो वे कभी धैर्य-च्युत हुए और न अपने पथ से विचलित ही हुए। जिसे उन्होंने सत्पथ समझा उसी पर वे अन्तकाल तक दृढ़ रहे।

लोकमान्य का जन्म २३ जुलाई १८५६ को, रत्नागिरि में, हुआ था। उन्होंने छात्रावस्था में ही यह निश्चय कर लिया था कि विद्योपार्जन कर लेने के बाद वे लोक-सेवा के लिए ही अपना जीवन विसर्जन करेंगे। सुधारक के प्रसिद्ध सम्पादक, आगरकर, उनके सहाध्यायी थे। १८७६ में उन्होंने डेकन कालेज से बी० ए० पास किया। फिर क़ानून का अध्ययन करके १८७९ में वे एल-एल० बी० हुए। प्रसिद्ध साहित्यसेवी विष्णु-कृष्ण शास्त्री चिपलूणकर की इच्छा एक हाई स्कूल स्थापित करने की थी। तिलक और आगरकर दोनों उनके कार्य में सम्मिलित हुए। २ जनवरी १८८० को, पूने में, न्यू इँगलिश स्कूल की प्रतिष्ठा हुई। चिपलूणकर ने आर्यभूषण नाम का एक प्रेस भी स्थापित किया। वहीं से मराठा और केसरी नामक दो पत्र निकाले गये। मराठा का सम्पादन-भार तिलक पर पड़ा। कुछ ही दिनों बाद अपनी निर्भय आलोचना के कारण तिलक को कोल्हापुर के एक मामले में फँसना पड़ा। जब यह मुक़द्दमा चल रहा था तभी चिपलूणकर शास्त्री की मृत्यु हो गई। तिलक और उनके मित्र आगरकर दोषी ठहराये गये और दोनों को चार चार महीने का कारागार-वास दण्ड मिला। यह तिलक का पहला कारागारवास था। कारागार से छूटने पर लोगों ने उनका बड़ा सम्मान किया।

तिलक तो देश-सेवा में दीक्षित हो ही चुके थे। जेल से छूटने पर उन्होंने खूब उत्साह से देश-सेवा का कार्य आरम्भ किया। १८८४ में पूने की डेकन ऐजुकेशन सोसाइटी स्थापित हुई और उसके संरक्षण में फर्गुसन कालेज खोला गया। १८९० तक तिलक उसमें प्रोफ़ेसर का काम करते रहे। इसके बाद मतभेद होने के कारण उन्होंने उससे अपना सम्बन्ध त्याग दिया। कुछ कालोपरान्त केसरी और मराठा का स्वामित्व इन्हीं को प्राप्त हो गया और यही उनका सम्पादकीय काम करने लगे। १८९२ में लन्दन में प्राच्यविद्याविशारद का एक सम्मेलन हुआ। उसमें उन्होंने अपनी वैदिक-काल-विषयक गवेषणाओं का सारांश लिख कर भेजा। वही पीछे ओरायन नाम से पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ। राजनैतिक विषयों से उन्हें आरम्भ से ही प्रेम था। इसलिए नेशनल कांग्रेस से उनका सम्बन्ध हुआ। वे कुछ वर्षों तक डेकन-स्टैंडिंग-कमिटी के सेक्रेटरी भी रहे। वे दो बार बम्बई की लेजिस्लेटिव कौंसिल के मेम्बर चुने गये।

परन्तु उनकी सेवा की परीक्षा १८७६ में हुई जब बम्बई में बड़ा भारी अकाल पड़ा। उस समय उन्होंने दीन दरिद्रों की बड़ी सेवा की। उससे वे अत्यन्त लोकप्रिय हो गये। जब पूने में पहले पहल प्लेग का प्रकोप हुआ तब कितने ही नामधारी देश-सेवक भाग निकले। पर तिलक ने वहीं रह कर लोगों की सेवा की। उन्होंने एक अस्पताल भी खोला और उन सब उपायों का प्रचार किया जिनसे प्लेग दूर हो।

तिलक वीर-पूजा का महत्त्व खूब समझते थे। पहले उन्होंने गणेशोत्सव मनाना आरम्भ किया। फिर उन्होंने देश की जागृति के लिए शिवाजी का जन्मोत्सव मनाने की नीव डाली। १८९७ में यह उत्सव बड़े समारोह के साथ हुआ। केसरी में 'शिवाजी के उद्गार' शीर्षक एक कविता प्रकाशित हुई। सरकार ने उसे आपत्ति-जनक समझ कर उन पर मुक़द्दमा चलाया और उन्हें १८ महीने का सपरिश्रम कारागारवास दण्ड मिला। इसके पहले ही ओरायन नामक पुस्तक लिख कर तिलक महाराज देश-देशान्तरों में प्रसिद्धि-लाभ कर चुके थे। उनके मित्र प्रोफ़ेसर मैक्समूलर और विलियम हंटर साहब ने सम्राज्ञी से प्रार्थना की। तब सम्राज्ञी के आदेश से तिलक जेल-बन्धन से, समय के पहले ही, मुक्त हुए।

इसके बाद उनका प्रसिद्ध ग्रन्थ Arctic Home in the Vedas निकला। यह ग्रन्थ तिलक की प्रचण्ड विद्वत्ता और विलक्षण प्रतिभा का सबसे अच्छा प्रमाण है। इसे पढ़ कर बड़े बड़े विद्वानों ने जी खोल कर उनकी प्रशंसा की। पायनियर तक ने उसकी प्रशंसा में अपना एक कालम ख़र्च किया। इसके बाद उन्हें ताई महाराज के मामले में फिर एक बार फँसना पड़ा। उन पर बड़े बड़े अपराध लगाये गये। पर अन्त में वे निर्दोषी प्रमाणित हुए। फिर भी विपत्ति ने उनका पीछा न छोड़ा। १९०८ में उन पर फिर एक मुक़द्दमा चलाया गया और उन्हें ६ साल के लिए देश निकाले की सज़ा मिली। उस समय उन्होंने जो शब्द कहे थे उनसे उनके हृदय की महत्ता और आत्म-शक्ति भली भाँति प्रकट होती है। उन्होंने कहा—"जूरी का चाहे जैसा फ़ैसला हो, मुझे विश्वास है कि मैं निर्दोष हूँ। परन्तु जगदीश्वर की कदाचित् यही इच्छा है कि देश की सेवा के लिए मुझे दण्ड मिले जिससे मेरे कष्ट सहने से उसकी उन्नति हो।" इसके बाद उनका प्रसिद्ध ग्रन्थ गीता-रहस्य प्रकाशित हुआ।

महात्माओं की सभी बातें अलौकिक होती हैं। साधारण लोग विपत्ति को दूर रखते हैं, वे विपत्ति का आलिङ्गन करते हैं। सङ्कट पड़ने पर अन्य लोग तो कर्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं, पर इनकी प्रतिभा उसी समय विकसित होती है। महात्मा तिलक की गणना ऐसे ही मनुष्यों में की जाती है। उनका देश-प्रेम अगाध था, विद्वत्ता प्रचण्ड थी, प्रतिभा विलक्षण थी और चरित्र उज्ज्वल था। उनकी मृत्यु से देश की जो हानि हुई है उसकी पूर्ति होने की अभी तो कोई आशा नहीं।

गुजरात-प्रान्त के हिन्दी-कवि।
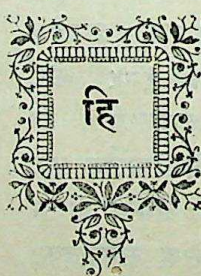
हिन्दी आज-कल भारत के अधिकांश विद्वानों में सर्वमान्य प्रमाणित हो चुकी है। तो भी अन्य प्रान्तों में उसका अधिक मान नहीं है। तथापि दो शताब्दी पूर्व उत्तर भारत के सभी प्रान्तों में आज-कल की अपेक्षा उसका कहीं अधिक आदर था। पञ्जाब, गुजरात, मध्यप्रदेश, बिहार आदि सभी देशों में हिन्दी का अधिक प्रचार था। पञ्जाब प्रान्त में चौहान-राज पृथ्वीराज के सुप्रसिद्ध चारण या राजकवि चन्द-बरदाई तथा सिक्ख-सम्प्रदाय के स्थापक गुरु नानक

और गुरु गोविन्दसिंह आदि हिन्दी के प्रतिभाशाली कवि हो गये हैं। वीरभूमि राजपूताना में महाराना कुम्भ तथा राठोडराज मारवाड़ाधिपति महाराज जसवन्तसिंह आदि अनेक कवियों ने हिन्दी की सेवा की है। मध्य-भारत में महाकवि केशवदास, रीवाँनरेश रघुराज-सिंहजी, छत्रप्रकाश के रचयिता कविवर लाल आदि अनेक कवि हुए हैं। बिहार प्रान्त में भी महामहोपाध्याय विद्यापति ठाकुर तथा अन्य कवियों ने हिन्दी में काव्य-रचना की है। गुजरात भी हिन्दी-साहित्य की वृद्धि में किसी प्रान्त से पीछे नहीं रहा। वहाँ भी अनेक कवि हो गये हैं जिन्होंने राष्ट्रभाषा हिन्दी के साहित्य को काव्य-रत्नों से श्रीसम्पन्न किया है।

गुजरात-प्रान्त ने आशातीत हिन्दी-कवि उत्पन्न किये हैं। इस प्रान्त की स्थिति दूरतम पश्चिम में है, जहाँ हिन्दी का प्रचार होना सुगम नहीं। दूसरे, यहाँ मुसलमानों तथा मरहठों के निरन्तर आक्रमणों के कारण अशान्ति ही रही। अशान्ति में काव्य-रचना नहीं होती। कविता तो शान्ति की चिर-सहचरी है। इसके सिवा उस प्रान्त में कवियों के आश्रयदाता बड़े बड़े महाराजा तथा जागीरदार नहीं हुए। कवि अपनी जीविका के लिए सर्वदा आश्रयदाता की खोज में रहता है। यदि उसे कोई ऐसा आश्रय नहीं मिला जिससे उसका निर्वाह हो तो उदर-भरण ही की चिन्ता में लग कर उसकी शक्ति क्षीण हो जाती है। अन्य प्रान्तों में हिन्दी के कवियों को राजा-महाराजाओं द्वारा उचित आश्रय मिलता था। यदि जयपुर-नरेश महाराज जयसिंह ने बिहारी को, महाराष्ट्र-वीर-केशरी शिवाजी ने भूषण को, जगत्सिंह ने पद्माकर को, अकबर ने गङ्ग, बीरबल, नरहरि, तानसेन आदि लगभग २० कवियों को, और, और अनेक जागीरदारों ने अन्य कवियों को उचित आश्रय न दिया होता तो हम इन महाकवियों का कौशल न देख पाते। अन्य प्रान्तों में तो यह रीति थी कि सभी श्रीमानों के आश्रय में कोई न कोई कवि रहता था जिसकी रचनाओं का वे उचित सत्कार करते थे, पर गुजरात में यह सब कहाँ? फिर संवत् १७४० के लगभग गुजराती भाषा की उन्नति होने लगी और हिन्दी का ह्रास। गुजराती भाषा के प्रसिद्ध कवि प्रेमानन्द तथा उनके अनेक शिष्यों ने गुजराती भाषा का उद्धार करके उसकी उन्नति में तन, मन, धन सभी कुछ लगा दिया। हिन्दी-कविता के प्रचार में इन बाधाओं के होते हुए भी गुजरात प्रान्त ने हिन्दी की वह सेवा की है जो अन्य भिन्न-भाषा-भाषी प्रान्तों से किसी प्रकार कम तो क्या, कुछ अधिक ही है। यह आश्चर्य की बात नहीं है कि गुजरात में हिन्दी के थोड़े कवि हुए हैं, परन्तु यह अवश्य आश्चर्यजनक है कि ऐसे समय में भी इतने कवियों ने हिन्दी भाषा में काव्य-रचना की।

अब प्रश्न यह है कि गुजरात-प्रान्त ने हिन्दी भाषा को क्यों अपनाया। इस प्रश्न का उत्तर देना यद्यपि कुछ कठिन है तो भी गुजराती-साहित्य तथा गुजरात-प्रान्त के धार्मिक इतिहास द्वारा कुछ कारण बताये जा सकते हैं। सबसे पहला कारण यह था कि विक्रम-संवत् की पन्द्रहवीं शताब्दी के पूर्व गुजराती भाषा केवल बोलचाल की भाषा थी। वह इतनी परिपक्व न थी कि उसके द्वारा कवि अपने हार्दिक भाव जनता के सम्मुख प्रकट कर सके। गुजराती भाषा का पहला कवि जूनागढ़वासी भक्त नरसी मेहता का कविता-काल संवत् १५१२ के लगभग है। इसके पूर्व प्रायः सभी शिक्षित पुरुष संस्कृत अथवा हिन्दी ही पढ़ते थे। गुजराती भाषा के जन्म के पूर्व ही महाकवि चन्द, जल्हन, विद्यापति, कबीर, गोरखनाथ, रामानन्द आदि कवियों ने हिन्दी की इतनी उन्नति कर दी थी कि उसमें प्रत्येक भाव, विशेषतः धार्मिक और आध्यात्मिक, सुगमता से वर्णित हो सकता था। तब यदि गुजरात-प्रान्तवासी अपनी अपरिपक्व भाषा को त्याग एक उन्नत तथा भावमयी भाषा को अपनायें तो इसमें आश्चर्य ही क्या है। दूसरा मुख्य कारण यह है कि गुजरात-प्रान्त में वैष्णव धर्म की मुख्य शाखा वल्लभ-सम्प्रदाय की अधिक प्रबलता है। इस सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक गोस्वामी श्रीवल्लभाचार्य जी थे। उन्होंने और उनके पुत्र गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथ जी ने वल्लभ-सम्प्रदाय के प्रचारार्थ हिन्दी का ही आश्रय लिया। वल्लभ-सम्प्रदाय का प्रायः समस्त साहित्य व्रज-भाषा में है। गो० वल्लभाचार्य जी के चार शिष्य तथा गो० विट्ठलनाथ जी के चार शिष्य—ये आठों शिष्य व्रज-भाषा के धार्मिक साहित्य के स्तम्भ हैं। यही अष्टछाप के नाम से प्रसिद्ध हैं और गुजरात-प्रान्त में इनका अब तक मान है। इस प्रकार गुजरात में वैष्णव

धर्म के प्रचार के साथ साथ हिन्दी का भी प्रचार हो गया। गुजरातियों के धर्मग्रन्थ हिन्दी ही में होने के कारण हिन्दी से उनका पूर्ण प्रेम हुआ। इसका फल यह हुआ कि हिन्दी-साहित्य को गौरवान्वित करनेवाले दयाराम, मुक्तानन्द, ब्रह्मानन्द जैसे धार्मिक कवि उस प्रान्त में हुए।

गुजरात-प्रान्त के हिन्दी-कवियों से हिन्दी-प्रेमी प्रायः अनभिज्ञ हैं। "मिश्रबन्धुविनोद" में उन्हीं कवियों का वर्णन है जो लेखकों को शिवसिंह-सेंगर-कृत "शिवसिंह-सरोज" में मिले हैं। खोज करने से केवल दो-चार कवियों का पता चला है। इस लेख में कोई ३५ कवियों का वर्णन है। इनमें से ६ कवियों का वर्णन मिश्रबन्धुविनोद में है। यदि गुजरात-प्रान्त में हिन्दी-कवियों की खोज की जाय तो अनेक उत्तमोत्तम कवियों का पता चल सकता है। वहाँ हिन्दी-कवियों की कविता प्रायः लुप्त हो रही है; इस कारण यह अत्यन्त आवश्यक है कि गुजरात-प्रान्त में हिन्दी-कवियों की खोज शीघ्र ही आरम्भ की जाय।

नरसी मेहता के पहले भी हिन्दी के कोई कवि हुए थे कि नहीं, इसका पता नहीं चलता। सम्भव है, हुए हों। यथार्थतः गुजरात में हिन्दी का अभ्युदय संवत् १७०० के लगभग हुआ। उस समय ऐसे अनेक कवि हुए जिन्होंने गुजराती तथा हिन्दी दोनों भाषाओं में कवितायें लिखीं। गुजराती-साहित्य पर हिन्दी का बहुत प्रभाव पड़ा है। इसमें सन्देह नहीं कि यदि गुजराती पर व्रज-भाषा का प्रभाव न पड़ता तो आज उसका कुछ दूसरा ही रूप होता। रविदास पटेल के आश्रित श्यामल भट्ट ने तो तुलसीकृत रामायण देख कर गुजराती में भी दोहे, चौपाई आदि व्रज-भाषा के छन्दों में काव्य-रचना की है। उसकी कविता में भी व्रज-भाषा के अनेक शब्दों का समावेश है। संवत् १७४० के लगभग प्रेमानन्द ने अपने ३५ से अधिक शिष्यों द्वारा हिन्दी के प्रति अश्रद्धा दिखाते हुए वर्तमान गुजराती-साहित्य की उन्नति करवाई। उसके बाद हिन्दी का ह्रास ही होता गया। तो भी काठियावाड़ में हिन्दी के प्रेमी अधिक थे। इस कारण वहाँ अनेक कवि हुए। कुछ कवियों ने हिन्दी को धार्मिक भाषा समझ कर उसमें कविता करने की चेष्टा की। संवत् १६४० से तो गुजरात-वासियों ने हिन्दी की ओर से प्रायः बिलकुल ही मन हटा लिया और अपनी प्रान्तिक भाषा गुजराती ही की उन्नति में दत्तचित्त रहने लगे। आज-कल केवल दो ही चार कवि ऐसे हैं जो हिन्दी-भाषा पर अपना प्रेम प्रकट करते हैं।

प्रारम्भिक काल, संवत् १४५४ विक्रमी।

इस काल में प्राकृत से अनेक रूपों में परिवर्तित हो कर हिन्दी-भाषा का विकाश हुआ। यह हिन्दी का बाल्य-काल है। प्रत्येक कवि की रचना-शैली भिन्न भिन्न होने के कारण तथा नये नये शब्दों के समावेश से इस काल में हिन्दी का कोई स्थिर रूप न था। चन्द बरदाई, जल्हन, अमीर खुसरो, गोरखनाथ, स्वामी रामानन्द आदि कई कवियों ने हिन्दी को स्थिर रूप देने की चेष्टा की। गुजरात-प्रान्त में इस काल में एक भी हिन्दी-कवि नहीं हुआ। इसका मुख्य कारण यह प्रतीत होता है कि हिन्दी-भाषा तब बाल्यावस्था में थी। इससे इतनी परिपक्व न हुई थी कि इसका प्रचार गुजरात जैसे दूरवर्ती प्रदेश में हो सके। यह कहना तो अनुचित है कि गुजरात-वासियों का इस प्रान्त के वासियों से कोई सम्बन्ध नहीं था, क्योंकि इस प्रान्त के निवासी प्रति वर्ष द्वारका की यात्रा किया करते थे और गुजरात-वासी भी मथुरा, अयोध्या, प्रयाग, काशी आदि तीर्थ-स्थानों में यात्रा के लिए आया करते थे। देश में अशान्ति रहने के कारण इस समय कवि नहीं हुए, यह कहना भी सर्वथा युक्तिसङ्गत नहीं। भारत के इतिहास में किसी भी प्रान्त में ऐसा कोई काल नहीं हुआ जब कवि हुए ही न हों। हमारे देश में आदि-कवि वाल्मीकि से लेकर व्यास, कालिदास, भवभूति, भारवि, दण्डी, बाण, माघ आदि कवि बराबर होते ही आये हैं। तत्कालीन गुजराती कवियों ने जो कुछ लिखा वह संस्कृत अथवा अपभ्रंश भाषा में ही लिखा। प्राकृत भाषा का अन्तिम वैयाकरण हेमचन्द्र सूरि गुजरात का ही था। उसने संवत् ११४५ में जन्म लिया और गुर्जरराज सिद्धराज जयसिंह की आज्ञा से "सिद्धहेमशब्दानुशासन" नामक व्याकरण की रचना की। अन्य लेखकों ने व्याकरण तथा पिङ्गल पर ग्रन्थ लिखे। इनमें नीचे टिप्पणी है, जिसमें सुगमतापूर्वक भाव व्यक्त करने की इच्छा से उस समय की प्रचलित भाषा में, जो गुजराती का प्राचीन रूप है, सूक्ष्म टीका भी कर दी गई है। "मुग्धावबोध

औक्तिक'' नाम का एक व्याकरण है, जिसे संवत् १४०० विक्रम के लगभग देवसुन्दर गुरु के एक शिष्य ने लिखा था। उससे वर्तमान भाषाओं की उत्पत्ति विषयक ज्ञान प्राप्त करने में बहुत कुछ सहायता मिलती है।

माध्यमिक काल, संवत् १४४४-१६८० विक्रमी।

वैसे तो इस काल में हिन्दी की बड़ी उन्नति हुई, परन्तु गुजरात में जितने कवि हुए उनकी संख्या सन्तोष-जनक नहीं। इसका मुख्य कारण यह प्रतीत होता है कि उस समय गुजरात में अशान्ति फैली हुई थी। अहमदाबाद के सुलतान गुजरात के उत्तर भाग में राज्य करते थे। संवत् १५२६ में मुसलमानों ने जूनागढ़ ले लिया और पूर्वी गुजरात लेने के लिए गुजरात की प्राचीन राजधानी चम्पानेर पर आक्रमण किया। शासकों के अत्याचार से प्रजा पीड़ित थी। संवत् १६३० में मुग़ल-सम्राट् अकबर ने गुजरात जीता, परन्तु फिर भी पूर्ण शान्ति स्थापित न हुई। ऐसी अराजकता में कविता की उन्नति कैसे होती? इस काल में गुजराती भाषा के भी मुख्य पाँच ही कवि हुए, जिनमें से तीन तो केवल नाम-मात्र के ही कवि हैं। शेष दो कवियों ने हिन्दी में भी कविता की है। अन्य प्रान्तों में तो हिन्दी की बड़ी उन्नति हुई है। इतने कम समय में किसी अन्य भाषा की वैसी उन्नति होना सम्भव नहीं। कबीर, सूरदास, तुलसीदास, नन्ददास आदि अनेक कवियों ने अपनी कविता द्वारा समस्त उत्तरी भारत में एक अपूर्व धार्मिक स्रोत बहा दिया। फिर अकबर ने भी कवियों को सम्मान तथा आश्रय प्रदान कर के हिन्दी को उत्कृष्ट भाषा बनाने में कसर नहीं की। परन्तु गुजरात में अराजकता तथा अशान्ति का साम्राज्य था। इसीलिए वहाँ अच्छे कवि नहीं हुए।

वह समय शैव मत के ह्रास तथा वैष्णव धर्म की उत्तरोत्तर वृद्धि का था। ईश्वर-प्राप्ति के लिए वैष्णव धर्म का मुख्य साधन भक्ति है। अतएव माध्यमिक काल में भक्त कवि हुए हैं। उन्होंने श्रीकृष्ण के प्रेम में उन्मत्त हो कर और भक्ति-विषयक सरस कविताये रच कर समस्त भारत में धर्म का प्रचार बढ़ाया। वैष्णव धर्म की सभी शाखाओं ने कविता द्वारा ही अपना मत फैलाया। इसलिए वैष्णव धर्म के साथ साथ कविता की भी अच्छी उन्नति हुई। गुजरात-प्रान्त में उस समय हिन्दी के केवल तीन कवि हुए। उनकी कविता का ढङ्ग निराला ही है। उन्होंने गुजराती तथा हिन्दी दोनों भाषाओं में कविता की है। एक ने तो हिन्दी की अपेक्षा गुजराती में अधिक और शेष दोनों ने गुजराती की अपेक्षा हिन्दी में अधिक काव्य-रचना की है।

(१) नरसी मेहता, १४७०-१५३१ विक्रम-संवत्।

ये नागर जाति के कुलीन ब्राह्मण थे। इनका निवास-स्थान जूनागढ़ था। इनके कुटुम्बी शैव होने के कारण वैष्णव धर्म के विरोधी थे। नरसी मेहता की माता वैष्णव-धर्मावलम्बिनी थी जिससे इन्हें भी कुछ कुछ वैष्णव धर्म का ज्ञान हो गया। एक बार अपनी भाभी से अपमानित हो कर इन्होंने घर-द्वार त्याग दिया और साधु-सङ्गति में रह कर कृष्ण के पूर्ण भक्त हो गये। इनके साथी नीच जाति के हिन्दू थे। अतएव इनके कुटुम्बियों ने इन्हें जाति-भ्रष्ट कर दिया और एक जाति-भोज में सम्मिलित न होने दिया। इस पर इनके नीच जाति के अन्य साथियों ने नागर ब्राह्मणों पर आक्रमण करके नरसी मेहता को जाति में पुनः लेने के लिए लोगों को बाध्य किया। यह किंवदन्ती प्रसिद्ध है कि श्रीकृष्ण ही ने नरसी मेहता की लाज रखने को इन नीच जातीय भक्तों का रूप धारण किया था। वैष्णव समुदाय में इनके विषय में इस प्रकार की कई चमत्कार-पूर्ण कथायें प्रसिद्ध हैं।

ये गुजराती-साहित्य के जन्मदाता कहे जाते हैं। गुजराती में इन्होंने हारमाला, रासलीला तथा अन्य फुटकर पद बनाये हैं और हिन्दी में भी कुछ फुटकर पद तथा सामलदास का विवाह नामक काव्य की रचना की है। इनकी भाषा शुद्ध हिन्दी नहीं। इसका कारण यह है कि ये अन्य प्रान्त के थे। फिर, उस समय हिन्दी का कोई स्थिर रूप भी न था। इनको हिन्दी का कवि मानने में किसी किसी को सन्देह हो सकता है, परन्तु ये हिन्दी के कवि माने ही जाते हैं। शिवसिंह सेंगर ने "शिवसिंह-

सरोज" में हिन्दी-कवियों में इनका नाम लिखा है। उसी के आधार पर मिश्रबन्धु-विनोद में भी इनका वर्णन है। १०० वर्ष पूर्व ही ब्रज के भक्त कवियों ने इनको हिन्दी-कवि माना है। संवत् १६०० के लगभग कृष्णानन्द व्यास-देव ने अपने "रागसागरोद्भव रागकल्पद्रुम" में मीराबाई, तानसेन, सूरदास, तुलसीदास, विट्ठलस्वामी इत्यादि भक्त कवियों की कविताओं के संग्रह में इनकी कवितायें भी उद्धृत की हैं। इससे प्रतीत होता है कि ये हिन्दी के भी कवि थे। यह सच है कि इनका एक भी हिन्दी-पद उपलब्ध नहीं। "रागसागरोद्भव रागकल्पद्रुम" से उद्धृत जो पद शिवसिंहसरोज में है वह भी गुजराती में ही है। इसलिए इन्हें हिन्दी-कवि कहना ठीक नहीं जान पड़ता। तो भी इतना निस्सन्देह कहा जा सकता है कि इनकी कविता में प्राचीन हिन्दी की झलक अवश्य है। संवत् ११४० में प्रेमानन्द भट्ट ने इनके जीवन की मुख्य मुख्य विलक्षण घटनाओं का वर्णन "नरसी महतानू मामेरु" नामक एक काव्य-ग्रन्थ में किया है।

इनकी कविता भक्ति-रस-पूर्ण है। उसका प्रत्येक चरण श्रीकृष्ण के प्रेम में मत्त और आत्मविस्मृत भक्त के हृदय का उद्गार है। गुजराती-साहित्य में इनकी प्रभाती बहुत प्रसिद्ध है।

(२) मीराबाई।

ये मेड़ता के राठोड़ रत्नसिंहजी की एक-मात्र कन्या थीं। इनका विवाह संवत् १५७३ में चित्तौड़ के सुप्रसिद्ध सीसोदियाकुलतिलक राजा संग्रामसिंह के पुत्र भोजराज से हुआ था। विवाह के बाद दस ही वर्ष में भोजराज की मृत्यु हो गई, जिससे मीराबाई को जन्मपर्यन्त वैधव्य भोगना पड़ा। परन्तु मीराबाई को इसकी कुछ चिन्ता न थी। उसने तो "गिरधरनागर" से स्नेह-सम्बन्ध जोड़ लिया था। सदा साधु-सेवा में जीवन व्यतीत करने के लिए मीरा चित्तौड़ छोड़ कर वृन्दावन चली आईं। वहां भी थोड़े दिन रह कर शेष जीवन द्वारका में व्यतीत किया। वहां वह साधु-सेवा में जीवन व्यतीत किया करती थी तथा रात दिन "गिरधर गोपाल" के गुणगान में लीन रहती थी। कहा जाता है कि मीरा के देवर राना विक्रमादित्य ने मीरा का चित्त साधु-सेवा से हटाने के लिए कई प्रयत्न किये। यहां तक कि विवश होकर विष का प्याला भेजा। किन्तु मीरा ने उसे अमृततुल्य समझ कर पी लिया।

द्वारका में रह कर मीराबाई ने गुजराती तथा हिन्दी दोनों के साहित्य-क्षेत्र में अमृतवर्षा की है। उसकी कविता में भक्ति-रस का अपूर्व स्रोत बह गया है। गुजरात में नरसी मेहता और मीराबाई का बड़ा मान है। दोनों ने गुजराती-साहित्य को जन्म देकर अपना नाम अमर कर दिया है। मीराबाई का अधिकांश समय द्वारका में व्यतीत हुआ। इसलिए गुजरात-प्रान्त के कवियों में ही इनकी गणना होती है। इनकी भाषा में गुजराती का मिश्रण भी अधिक है। नीचे इनका एक पद उद्धृत किया जाता है जिससे इनका अगाध प्रेम तथा हार्दिक भक्ति प्रकट होती है—

बसो मेरे नैनन में नँदलाल।
मोहनी मूरत सांवरी सूरत नैना बने बिसाल।
अधर सुधारस मुरली राजत उर बैजन्ती माल॥
क्षुद्रघण्टिका कटि तट-सोहत नूपुर शब्द रसाल।
मीरा प्रभु सन्तन सुखदाई भक्त बछल गोपाल॥

(३) दादू दयाल।

रामानुज-सम्प्रदाय की एक प्रधान शाखा दादूपन्थी के नाम से प्रसिद्ध है। उस शाखा के संस्थापक दादू दयाल ही थे। इनका जन्म दादूपन्थियों के अनुसार संवत् १६०१ में हुआ था। कबीर के समान इनके भी जन्म के विषय में एक कथा प्रसिद्ध है। कहते हैं कि ये महात्मा लोदीराम नामक एक नागर ब्राह्मण को अहमदाबाद में साबरमती नदी में बहते हुए मिले थे। इनकी जाति का निश्चय करना कठिन है। यह प्रसिद्ध है कि इनके गुरु कबीर के पुत्र कमाल थे। इनकी मृत्यु संवत् १६६० में हुई। ये बड़े दयालु तथा क्षमाशील थे। इसी कारण इनका नाम दादू दयाल पड़ा। इन्होंने लगभग समस्त राजपूताने में पर्यटन किया था।

इनकी कविता से इनके धार्मिक भाव अच्छी तरह प्रकट होते हैं। ये महात्मा हिन्दू-मुसलमानों में भेद न मानते थे, तथा मूर्ति-पूजा, अनेकेश्वरवाद आदि के कट्टर विरोधी थे। कबीर के समान इन्होंने, ज्ञान-मार्ग का प्रचार करने के लिए, दोहे, साखी इत्यादि लिखे हैं। परन्तु कबीर में और दादू दयाल में इतना भेद है कि इन्होंने

किसी मत का खण्डन नहीं किया। हाँ, विवेकपूर्ण शब्दों में इन्होंने निर्भय होकर अपने मत का प्रतिपादन किया है। कबीर के समान इनकी कविता में छन्दोभङ्ग की अत्यन्त भरमार है, किन्तु भाव की उत्कृष्टता तथा सत्योक्ति में ये किसी से हीन नहीं। बहुत से दोहों में तो इन्होंने कबीर को भी नीचा दिखाया है। इन्होंने पञ्जाबी, गुजराती आदि अन्य भाषाओं में भी कविता की है। इनकी भाषा कबीर के समान सरल है, परन्तु शब्दों में यथेष्ट परिवर्तन किया गया है। इनकी कविता से पता चलता है कि ये राम के भक्त थे। परन्तु ये राम, नरतनुधारी, अयोध्याधिपति महाराजा दशरथ के पुत्र नहीं—निराकार, निराधार, निर्लेप, सर्वज्ञ, व्यापक, परब्रह्म हैं, जिनका सम्बोधन 'रोम रोम में रमि रह्या' होने के कारण दादू ने राम-नाम से किया है। इनके धार्मिक भाव, अर्थात् दादूपन्थियों के मूल सिद्धान्त, निम्न लिखित पद से विदित होते हैं—

भाई रे ऐसा पन्थ हमारा।
द्वे पख रहित पन्थ गहि पूरा अवरण एक अधारा॥
वाद-विवाद काहू सो नाहीं माहीं जगत थे न्यारा।
समदृष्टि सूँ भाई सहज में आपहिं आप विचारा॥
मैं ते मेरी यह मत नाहीं निरवैरी निरविकारा।
पूरण सबे देखि आपा पर निरालम्भ निरधारा॥
काहू के सङ्गी मोह न ममता सङ्गी सिरजन हारा।
मन ही मन सूं समझ सयाना आनन्द एक अपारा॥
काम कलपना कदी न कीजे पूरण ब्रह्म पियारा।
इहि पथ पहुँचि पार गहि दादू सो मत सहज सँभारा॥

अपादान तथा करण कारक की विभक्ति 'से' के स्थान में 'थे', 'कभी' के स्थान में 'कदी', 'अपना' के स्थान में 'आपणा', 'न' कार के स्थान में 'ण' कार आदि का प्रयोग गुजराती तथा राजस्थानी भाषा के अनुसार दादू ने कई स्थलों पर किया है। इतना होने पर भी हिन्दी की झलक उनके पदों के प्रत्येक चरण में प्रत्यक्ष है। इनकी कविता में गूढ़ोक्ति, यथार्थोक्ति, लोकोक्ति, उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अनेक अलङ्कारों की अच्छी छटा है। उदाहरणार्थ कुछ दोहे लीजिए—

काया कठिन कमान है, खींचे बिरला कोय।
मारे पाँचो मिरगला दादू सूरा सोय॥
दादू मन मरतक भया इन्द्रिय अपने हाथ।
तो भी कदी न कीजिये कनक कामिनी साथ॥
घीव दूध में रमि रहा व्यापक सब ही ठौर।
दादू बकता बहुत है मथि काढ़े ते और॥
मिसरी माँहे मेल कर माल बिकाना बंस।
यों दादू महँगा भया पारब्रह्म मिलि हंस॥
मैं ही मेरे पोटसर मरिये ताके भार।
बलिहारी गुरु आपकी सिर थें धरी उतार॥

अलङ्कृत-काल, संवत् १६८०-१८८०।

इस दो सौ वर्ष के काल में हिन्दी की उत्तरोत्तर उन्नति होती गई। परन्तु कविता का प्रवाह धर्म की ओर न बह कर शृङ्गार-रस की ओर बहा। इस शृङ्गार-रस-प्रधान कविता के आचार्य रसिक-प्रिया, कविप्रिया, रामचन्द्रिका आदि के प्रणेता ओड़छे के महाकवि केशवदासजी थे। इस काल में महाकवि सेनापति, महाराज जसवन्तसिंह, मतिराम, बिहारी, सूदन, भूषण, देव, दास, पद्माकर आदि कई उत्कृष्ट कवि हुए हैं। प्रायः सभी ने शृङ्गार-रस-प्रधान काव्यों की रचना की है। सूदन और भूषण इन दोनों कवियों ने वीर-रस की कविता कर देश-वीरों को उत्तेजित किया है। इसी समय शब्दालङ्कारों का प्रचार बढ़ा। अनेक कवियों ने अनुप्रास, यमक, श्लेष द्वारा अपनी कविता देवी को पूर्णतया अलङ्कृत किया। बहुतों ने तो भाव की अपेक्षा शब्दालङ्कारों पर ही विशेष ध्यान दिया। तो भी इस समय गुजरात-प्रान्त में शृङ्गार-विषयक कविता का प्रचार नहीं हुआ। केवल दयाराम ने, राधाकृष्ण की आड़ में, कुछ शृङ्गार-विषयक दोहे लिखे हैं। किन्तु वे सर्वपाठ्य नहीं हैं। वह कवि स्वयं ही श्रीकृष्ण का पूर्ण भक्त था। उसकी कविता में शुद्ध शृङ्गार का वर्णन है। गुजरात में तो शृङ्गार के स्थान में भक्ति, ज्ञान, उपदेश, राजनीति, लोकनीति, सदाचार, पिङ्गल आदि विषयों पर ही कविता रची गई है। ठीक इसी समय गुजराती-साहित्य को गौरवान्वित करनेवाले प्रेमानन्द, श्यामल भट्ट, वल्लभ, कालिदास, प्रीतम, रेवाशङ्कर, मुक्तानन्द, ब्रह्मानन्द, दयाराम आदि प्रथम श्रेणी

के अनेक कवि हुए। गुजराती भाषा के इन कवियों में से अनेकों ने हिन्दी में भी कविता की है। किन्तु हिन्दी-साहित्य-सेवियों की अनभिज्ञता के कारण उनका लोप हो रहा है। गुजरात के हिन्दी-कवियों की भाषा में बहुत कुछ सुधार हुआ है और प्रायः सभी कवियों ने शुद्ध ब्रजभाषा का प्रयोग किया है।

(४) रघुराम।

इस कवि का वर्णन शिवसिंहसरोज तथा मिश्रबन्धु-विनोद दोनों में है। ये अहमदाबाद के निवासी थे। इन्होंने सं० १७०१ में सभासार और माधवविलास—दो ग्रन्थ बनाये हैं। माधवविलास हिन्दी-साहित्य के प्राचीन नाटकों में से है।

(५) केवलराम।

ये केशवराम नागर के पुत्र थे और अहमदाबाद में, संवत् १७५६ में, उत्पन्न हुए थे। ये जूनागढ़ के नवाब के, जो 'बाबी' कहलाते थे, आश्रय में रहते थे। इन्होंने बाबी नवाबों की प्रशंसा में 'बाबीविलास' नामक ग्रन्थ बनाया है। केवलराम ने अपना परिचय एक दोहे में इस प्रकार दिया है—

अहमदगढ़ पै राजपुर तुलसी की यह पौल।
केशव सुत केवल बसत नागर विप्र अमोल॥

इन्होंने ८० वर्ष की अवस्था में, संवत् १८३६ में, संन्यास लेकर प्राण छोड़े। इनकी कविता विशुद्ध ब्रज-भाषा में है। उदाहरणार्थ दिल्ली के नवाब फ़खरुद्दीन को परास्त करनेवाले बाबी नवाब जवाँमर्दख़ाँ की प्रशंसा में कहा गया कवित्त नीचे लीजिए—

गजबी गरूर गाज दिल्ली ते दलन साज,
लूटिबे के काज पन्थ गुजर को लीनो है।
बूँदी को बिडारी मारी हाड़ा गाढ़ा जोरन के,
और राव राजा ताके बाँह बल छीनो है॥
प्रबल पठानन सों भिरयो रन जीतबे को,
भारत सो कीन्हो जुद्ध वीर रस भीनो है।
नवल नवाब जवाँमर्दख़ाँ बहादुर ने,
फ़करुं नवाब को फ़क़ीर करि दीनो है॥

(६) व (७) दलपतिराय तथा वंशीधर।

ये दोनों कवि अहमदाबाद के निवासी थे। इन दोनों ने मिल कर पिङ्गलशास्त्र का एक अपूर्व ग्रन्थ बनाया है। दलपतिराय जाति के महाजन थे और वंशीधर श्रीमाली ब्राह्मण। उन्होंने अपना परिचय इस प्रकार दिया है—

भाषा भूषण अलङ्कृत कछुँ यक लच्छण हीन।
श्रम करि ताहि सुधारि सो दलपति राय प्रवीन।
अर्थ कुवलयानन्द को बाँध्यो दलपतिराय।
वंशीधर कवि ने धरे कहूँ कवित्त बनाय॥
मेदपाट श्रीमाल कुल विप्र महाजन काइ।
वासी अमदाबाद के बंसी दलपति राय॥

इन्होंने संवत् १७९८ में अलङ्काररत्नाकर नामक ग्रन्थ बनाया। यह जोधपुर-नरेश महाराजा जसवन्तसिंह-कृत भाषाभूषण की सर्वोत्तम टीका है। इन दोनों कवियों ने बड़े प्रयास से सब अलङ्कारों को अच्छी तरह समझाने के लिए यह ग्रन्थ गद्य में लिखा है। उदाहरण के लिए हिन्दी के उत्तमोत्तम ४४ कवियों की चुनी हुई सरस रचनायें दी हैं। इस संग्रह में हिन्दी-साहित्य के इतिहास के लिए बहुमूल्य सामग्री है। यह पुस्तक मेवाड़ाधिपति राना जगत्सिंह (१७९१—१८०८ विक्रम) के नाम से लिखी गई है।

इनकी कविता विशुद्ध ब्रजभाषा में है। उसमें अल-ङ्कारों का अच्छा चमत्कार है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास आदि पर इन्होंने पूर्ण ध्यान रख कर शुद्ध कविता करने की चेष्टा की है। उदाहरण के लिए एक कवित्त तथा दो दोहे उद्धृत किये जाते हैं—

सकल महीपन के राजे सिरताज राज
पर उपकारी हारी भारी दुख दंद के।
देव जगतेस धीर गुरुता गँभीर धरे
भञ्जन विपच्छ पच्छ दच्छ फोज फन्द के॥
प्रभुता प्रकाश अति रूप को निवास सोहे,
प्रकट प्रकास मेटे जग दुख वृन्द के।
मेघ से समुन्दर से पारथ पुरन्दर से,
रतिपति सुन्दर समान सूर चन्द के॥
रहे सदा विकसित विमल धरे वास मृदु मञ्जु।
उपज्यो नहिं पर पङ्क सों प्यारी तव मुख कञ्ज॥

भौंहें कुटिल कमान सी, सरसे पैने नैन।
वेधत व्रज अबलान हिय बंसीधर दिन रैन॥

(८) जसुराम।

ये राजनीति-विशारद थे। गुजरात-प्रान्त के अन्तर्गत भड़ोंच ज़िले के आमोद नामक ग्राम के निवासी थे। इन्होंने अपनी राजनीति नामक पुस्तक में लिखा है "जसूराम चारन कही राजनीति की रीति"। इससे प्रतीत होता है कि ये चारण थे। इन्होंने संवत् १८१४ में राजनीति नामक ग्रन्थ लिखा है, जिसके आठ अङ्क हैं। राजा, राजकुमार, रानी, मन्त्री, प्रजा, राज-कवि, पदाधिकारी तथा रावत एक एक अङ्क में इन आठों के कर्त्तव्य तथा नियम बड़ी उत्तमता से दिये हैं। इस विशद वर्णन से इनका पूर्ण पाण्डित्य तथा काव्यचातुर्य झलकता है। इन्होंने पौराणिक आख्यायिकाओं से उदाहरण लेकर अपने भावों को पूर्णतया पुष्ट किया है। इन्होंने भी विशुद्ध व्रजभाषा में कविता लिखी है। उसमें गुजराती भाषा की झलक लेश-मात्र भी नहीं। इनकी अन्योक्तियों से इनकी कवित्व-शक्ति भली भाँति प्रकट होती है। इन्होंने कहीं कहीं लोकोक्तियाँ भी बहुत अच्छी कही हैं यथा—राज के वजीरन कों सबै लोक जसूराम तमोली के पान ज्यों सँवारबोई चाहिये—राजनीति राज के वजीरन कूं जसूराम गुड़ ही ते मरे ताकू विष ते न मारिये—पूत ही के लच्छन सुपालने पहँचानिये। एक स्थान पर इन्होंने यह दोहा लिखा है—

जसू न जाचै जाम सूं बड़ भाटन को टेक।
तेरे मागन बहुत हैं मेरे भूप अनेक॥

इससे प्रतीत होता है कि पहले ये जामनगर (काठियावाड़) के किसी राजा के चारण थे। परन्तु पीछे कुछ वैमनस्य होने के कारण उन्होंने अपने आश्रयदाता की इस प्रकार भर्त्सना करके उनका आश्रय त्याग दिया। नीचे इनकी कुछ कवितायें उद्धृत की जाती हैं—

चातक दादुर मोर छिति, सदा निवाहत नेह।
नृप ऐसे चहिये जसू, जैसे चहिये मेह॥
कबहूँ कलह न कीजियें आपन के घर आप।
कीजे आप कुटिलता, शत्रू को सन्ताप॥

जो दीजे परधान पद, तो कीजे इतबार।
जो इतबार न होइ जसु तो परधान निवार॥
भस्माङ्गद तप कियो शिवहि अपनो करि थाप्यो।
जार करे अंगार शीव ऐसो वर आप्यो॥
सो गिरिजा कूं देखि शिवहिं के पाछे धायो।
कोन भांति किरतार आप उलटो दुख पायो॥
सब मंत्री रहु सांचे सदा, क्रूर बने नहि काम ही।
जग बीच कोई ऐसो जसू होइ न निमकहराम ही॥

(९) कल्याण।

कविवर कल्याण वैष्णव-धर्मानुयायियों के प्रसिद्ध तीर्थ-स्थल डाकोरजी के सन्त थे। ये पूर्ण सन्त थे और अभी तक इनका अखाड़ा डाकोरजी में प्रख्यात है। इनका कविता-काल लगभग संवत् १८४५ है। इन्होंने छन्द-भास्कर, रस-चन्द्र आदि अनेक ग्रन्थ बनाये हैं। इनकी कविता में आध्यात्मिक ज्ञान तथा नीति का समावेश है और भाषा है विशुद्ध हिन्दी। उदाहरणार्थ एक घनाचरी तथा एक कुण्डल लीजिए—

जीवन अपार जाकी जाति को न आवे थाह,
किये कोष भांति भांति रत्नों की ढेरी है।
सम्पति के सागर जगत में कल्यान कहे,
औरन को दीजिये बड़ाई सब तेरी है।
अङ्ग अङ्ग पूरन तरङ्गन ते छाय रह्यो,
सोहे चन्द तात एक बात घट घेरी है।
बाट के बटाऊ प्यासे पूँछे नीर कूप कहां,
अहो क्षीर सागर बड़ाई धिक तेरी है।
पाजी बाजी झूँठ तज लोलप लोल स्वभाव।
हिन्दूपति सो मर गये नाना माधवराव॥
नाना माधवराव मुये जयसिंह सवाई।
मिरजा मुनिब नवाब मोत तिन कूँ भी आई॥
कहत दास कल्यान भयो काया में राजी।
भज भज श्री भगवान् झूठ तज पाजी बाजी॥

(१०) मुक्तानन्द।

ये गुजराती-साहित्य के उच्च कोटि के कवि हैं। गुजरात में इनके धार्मिक विचारों तथा इनकी कविताओं का विशेष आदर है। किन्तु इनकी हिन्दी-कविता गुजराती की अपेक्षा शिथिल है। यह किंवदन्ती है कि इन्होंने १०००

पद गुजराती में तथा इतने ही हिन्दी में बनाये हैं। ये महात्मा गढ़हा के निवासी और स्वामी-नारायण-सम्प्रदाय के प्रभावशाली साधु थे। इनका कविता-काल संवत् १८६० के लगभग है। इन्होंने विवेकचिन्तामणि, सत्सङ्ग-शिरोमणि आदि ग्रन्थ बनाये हैं, जिनमें ज्ञान-मार्ग, नीति, उपदेश आदि का उत्तम वर्णन है। इनकी उपमायें अनूठी हैं। इन्होंने वृन्द के समान दोहे के उत्तरपाद में अच्छे अच्छे दृष्टान्त दिये हैं। ये संस्कृत के अच्छे ज्ञाता प्रतीत होते हैं, क्योंकि इन्होंने कई संस्कृत-श्लोकों का अनुवाद किया है। इनकी भाषा विशुद्ध व्रज-भाषा है। उदाहरणार्थ एक सवैया तथा दो दोहे नीचे दिये जाते हैं।

चन्द से शीतल रूप अनङ्ग से देव गजानन से जग गाने,
सिद्धि शिरोमणि गोरख से कविराजहु काव्य रचे सुख साने।
शूर जरासँध रावण से रिपु जीति के देश सबै घर आने।
ऐसो भयो तो कहा मुक्तानँद जो कारण रूप श्रीकृष्ण न जाने॥

मुक्त मनुज तन पाय के हरि उर धारत नाँहि,
वृथा श्वास तिह धमन सम मृतक तुल्य जग माँहि।
मुक्त मनुज तन पाय के जीभ न हरि गुण गात,
सो दादुर की जीभ सम वृथा बकत दिन रात॥

(११) दयाराम।

प्रारम्भिक काल के गुजरात-प्रान्त के हिन्दी-कवियों में जो स्थान मीराबाई तथा दादू दयाल का है वही स्थान इस अलङ्कृत-काल में दयाराम तथा ब्रह्मानन्द का है। मीराबाई तथा दयाराम में और दादू दयाल तथा ब्रह्मानन्द में बहुत कुछ समानता प्रतीत होती है। दयाराम गुजराती भाषा के प्रथम श्रेणी के प्रतिभाशाली कवि हो गये हैं। गुजराती भाषा में इन्होंने भगवद्गीतामाहात्म्य, भक्तिपोषण, नीति-भक्ति के पद, शृङ्गार के भजन आदि कई विषयों पर रोचक कवितायें लिखी हैं। हिन्दी में भी इनकी कविता उच्च कोटि की है, इसमें कोई सन्देह नहीं। हिन्दी-भाषा में इन्होंने सतसई, वस्तुवृन्ददीपिका, वृन्दावनविलास तथा फुटकर पद आदि बनाये हैं। इस कवि-कुल-भूषण ने अपना परिचय सतसई के अन्त में दिया है, जिससे ज्ञात होता है कि ये नर्मदा के तट पर चण्डीपुर नामक ग्राम के निवासी थे। ये साठोदरा नागर ब्राह्मण थे। संवत् १८७२ में इनका जन्म हुआ था। ये श्रीमन्त भट्ट के वंशज, तथा प्रभुराम के पुत्र, वल्लभ-सम्प्रदाय के परम वैष्णव थे। ये कृष्ण के पूर्ण भक्त थे। प्रसिद्ध है कि बाल्य-काल में कुसङ्गति के कारण इनका चरित्र बहुत बिगड़ गया था। परन्तु फिर सत्सङ्गति से इन्हें ज्ञान हुआ और ये परम वैष्णव हो गये। इनकी शृङ्गार-विषयक कविता भी मिलती है। इनके ग्रन्थों में सतसई सर्वोत्तम है। यह सतसई बिहारी-सतसई के बनने के १५० वर्ष पश्चात् बनी है। इससे यह अनुमान किया जाता है कि रामसहायदास और विक्रमशाह के समान इन्होंने भी बिहारी का अनुसरण करके यह सतसई बनाई है। दयाराम को बिहारी के समान उत्कृष्ट तथा प्रतिभाशाली कवि कहना धृष्टता है। परन्तु इनके कुछ दोहे बिहारी की जोड़ के ही नहीं, किन्तु सरसता तथा भाव की गम्भीरता में बढ़ कर भी हैं। इसमें सन्देह नहीं कि कवित्व-शक्ति में बिहारी का पद इनसे ऊँचा है। तो भी दयाराम भक्ति-रस-विषयक कविता तथा चित्रालङ्कार-युक्त नीति-वैराग्य के कुछ दोहों में बिहारी से बाज़ी मार ले गये हैं। सतसई के पहले ६० दोहों में ईश्वर-प्रार्थना है। फिर २०० दोहों में श्रीकृष्ण-राधिका के शुद्ध शृङ्गार का वर्णन है। विवेक, शिक्षा, नीति, वैराग्य, भक्ति आदि के ३०० दोहे तथा श्लेष और चित्र-काव्य के १५० दोहे इन्होंने लिखे हैं। सतसई के कुछ अच्छे अच्छे दोहे यहाँ उद्धृत किये जाते हैं—

चाहुँ बसाये हृदय में धरूँ त्रिभङ्गी ध्यान।
ताते राख्यों कुटिल उर होइ असी सों म्यान॥
मो उर में निज प्रेम अस परिवह अचलित देहु।
जैसे लोटन दीप सो सरक न ढुरक सनेहु॥
पीताम्बर परिधान प्रभु राधा नील निचोल।
अङ्ग रङ्ग सँग परस्पर यों सब हारद तोल॥
मुकुर मुकुर सब वस्तु भइ नयन अयन किय लाल।
दग पसार जित जित अली तित तित लखु गोपाल॥
ललना लोचन सित असित गोलक डारे लाल।
यह त्रिवेनि मज्जन लही मुक्ति विरह गोपाल॥

इन उदाहरणों से ज्ञात होता है कि सतसई की भाषा कितनी मधुर है। यथार्थ में दयाराम की काव्य-प्रौढ़ता के दर्शन उसके श्लेष तथा अन्य शब्दालङ्कारों से युक्त दोहों में होते हैं। इन दोहों में विशेषता यह है कि इनमें सर-

लता और सरसता के साथ साथ स्वाभाविकता भी है। वस्तुवृन्ददीपिका में संख्यावाचक शब्दों का स्पष्टीकरण तथा गूढ़ार्थकोष के समान पद्य में संख्यायुक्त शब्दों की पूर्णतया व्याख्या की गई है। यह ग्रन्थ संवत् १८७४ में समाप्त हुआ था। फुटकर पद लगभग १७५ हैं, जो सङ्गीत और काव्य के प्रेमी पाठकों को रुचिकर होंगे। वृन्दावनविलास बड़ा गूढ़ है। उसमें वृन्दावन की महिमा का गुणगान विचित्र रीति से किया गया है।

(१२) ब्रह्मानन्द।

इनका यथार्थ नाम लाड़ था। ये आबू पर्वत की तलहटी में खानगाँव के निवासी थे। इनके पिता का नाम शम्भूदान था। संसार से विरक्त होकर इन्होंने अपनी जीविका छोड़ दी और काठियावाड़ चले गये। वहाँ इन्होंने स्वामीनारायण-सम्प्रदाय के प्रसिद्ध गुरु स्वामी सहजानन्द से दीक्षा ली। पहले अपना नाम श्रीरङ्ग रक्खा। परन्तु फिर उसे बदल कर ब्रह्मानन्द नाम धारण किया। इन्होंने स्वामी सहजानन्द को अपना गुरु बताया है, जैसा कि इन्होंने एक स्थान में कहा है—

संसार विघन सब मेटि के पार किया भव फन्द से।
कह ब्रह्मानन्द ममता टरी सद्गुरु सहजानन्द से॥

ये स्वामीनारायण-सम्प्रदाय के प्रसिद्ध पण्डित हो गये हैं। इन्होंने गुजराती में भी कविता की है। इनके बनाये चार ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। उनके नाम—धर्मप्रकाश, विदुरनीति, सुमतिप्रकाश तथा ब्रह्मविलास हैं। इनका कविता-काल संवत् १८७५ के लगभग माना जाता है, क्योंकि ये १८८८ तक अवश्य विद्यमान थे।

इनकी कविता का विषय धार्मिक तथा सामाजिक है। वह नीति और सदाचार की शिक्षाओं से पूर्ण है। इन्होंने अपनी कविता में कण्ठीधारण, मूर्तिपूजा आदि वैष्णव धर्म के साधनों को निरर्थक कह कर कबीर के समान ज्ञान-मार्ग का प्रतिपादन बड़े कौशल से किया है। कबीर तथा अन्य धार्मिक कवियों की तरह इनकी कविता में छन्दोभङ्ग भी है; परन्तु भाव उत्कृष्ट हैं। धार्मिक कवि छन्दोभङ्ग दोष पर प्रायः ध्यान देते भी नहीं। क्योंकि उनका मुख्य उद्देश तो कविता द्वारा अपने मत की पुष्टि तथा प्रचार करना होता है। सर्वाङ्गसुन्दर कविता रच कर साहित्योन्नति करना उनका काम नहीं। कविता कवि का हृदयोद्गार है। उसके प्रवल प्रवाह को रोकने के लिए पिङ्गल तथा व्याकरण-सम्बन्धी अन्य बाँध बाँधना सर्वथा अनुचित है। परन्तु इतना अवश्य होना चाहिए कि कविता-प्रवाह एक नियमित तथा उचित क्रम से बह कर मानव-जाति के शुष्क हृदय को सरसता प्रदान करे; प्रवल वेग से बह कर भाव-लतिका को समूल नष्ट न कर दे। इनकी कविता में कहीं कहीं गुजराती शब्दों का समावेश है, जिससे व्रजभाषा के सहज माधुर्य में कर्कशता आ जाती है। ब्रह्मानन्द ने जो 'मह्या' 'खासड़ा' 'छोकरा' आदि शब्दों का प्रयोग किया है उससे ज्ञात होता है कि ये दयाराम, मुक्तानन्द आदि गुजरात-प्रान्त के अन्य हिन्दी-कवियों के समान व्रजभाषा के अच्छे ज्ञाता न थे। इनकी कविता के भी कुछ उदाहरण लीजिए—

मिलहि भूमि को राज साज सुख सम्पति नाना
मिलहि सर्ग सुरलोक प्रबल अमृत को पाना।
मिलत इन्द्र अधिकार मिलत क्रम करि पद विधि को
अष्ट सिद्धि पुनि मिलत मिलत संग्रह नव निधि को।
सुत भ्रात तात बनिता मिले खूब खजाना नंग है
कहे ब्रह्म मुनी सब ही मिले इक दुर्लभ सत्सङ्ग है।

दिन क्वै गये खेलन दौड़न में
बहु बाल लीला अरु क्रीड़न में।
जुवा होय रम्यो रँग जुवति से
दिन क्वै गये खावन पीवन में॥
वृद्ध होय बँधी अँग और व्यथा
दिन क्वै गये साधन सीखन में।
ब्रह्मानन्द कहे करतार भज्या बिन
धूर तेरे नर जीवन में॥

(१३) दीनदर्वेश।

ये पालनपुर (गुजरात) के आस-पास रहते थे। इनका कविता-काल संवत् १८८० के लगभग है। मिश्र-बन्धुविनोद में दीनदर्वेश नामक एक बुँदेलखण्डी कवि का समय १८७७ दिया हुआ है। सम्भव है, ये दोनों एक ही हों और पालनपुर के दीनदर्वेश वृद्धावस्था में संन्यास धारण करने पर बुँदेलखण्ड में आकर रहने लगे हों। ये जाति के लुहार थे। परन्तु बालसाधु के शिष्य

होकर संन्यासी हो गये थे। ये हिन्दू-मुसलमानों में भेद नहीं मानते थे। इन्होंने स्वयं लिखा है—

हिन्दु कहें सो हम बड़े मुसलमान कहें हम्म।
इक मुंग की दो फाड़ है कुण जादा कुण कम्म॥
कुण जादा कुण कम्म कभी करना नहिं कजिया।
एक भगत हो राम दूसरो माने रजिया॥
कहे दीनदर्वेश दोय सरिता मिल सिन्धू।
सबदा साहिब एक एक मुसलमाँ हिन्दू॥

इनकी भाषा शुद्ध व्रजभाषा नहीं और छन्दोभङ्ग भी खूब है। परन्तु इन्होंने धार्मिक तथा आध्यात्मिक भाव बड़ी सुन्दरता से व्यक्त किये हैं। इनकी भाषा में गुजराती मिश्रण बहुत खटकता है।

(१४) कहान (कान)।

ये राधनपुर (गुजरात) के निवासी थे। जाति के ब्राह्मण थे। बेचारे काने थे। कहा जाता है कि सिद्धपुर के मेले में कहान का दीनदर्वेश से, एक कुण्डलिया की रचना पर, विवाद हुआ था। इससे प्रतीत होता है कि कहान कवि का कविता-काल संवत् १८८० के लगभग ही है। दीनदर्वेश के अनुसार इनकी कुण्डलिया नीति तथा शिक्षाविषयक हैं। यथा—

मिशरी घोरे झूँठ की ऐसे होय हजार।
जहर पियावे साँच का सो बिरला संसार॥
सो बिरला संसार पटंभर उनका ऐसा।
मिशरी जहर समान जहर है मिशरी जैसा॥
कहे सुकविया कान भूल मत जैयो मोरे।
तिनके सिर पैजार झूँठ की मिशरी घोरे॥

(१५) रणछोड़जी।

ये जाति के नागर थे, शैवमतानुयायी थे और जूनागढ़ के नवाबों के दरबार में प्रधानाध्यक्ष थे। इन्होंने शिवरहस्य, भाषा शिवपुराण, कामदहन, सदाशिवविवाह आदि कई ग्रन्थ बनाये हैं। इनकी शिवस्तुति बड़ी अच्छी है। इन्होंने विशुद्ध व्रजभाषा का प्रयोग किया है। यथा—

अहि बिन मणि जैसे मही बिन धनी जैसे
कही बिन सुनी जैसे मोती बिन पानी है
राज बिन गाम जैसे लाज बिन वाम जैसे
दीप बिन धाम जैसे सुखमा की हानी है
बच्छ बिन छीर जैसे वृच्छ विन नीर जैसे
लच्छ बिन तीर जैसे सत्य विन बानी है
राय रनछोर कथा सर्वथा सुनी शिव की
और कथा वृथा जथा बाल की कहानी है।

महाकाल कङ्काल श्रीकाल कालम्
गरे व्याल मालं धरे ज्वाल भालम्
जगज्जाल जन्जाल हा विश्वस्वामी—
नमामी नमामी नमामी नमामी
... ...
भुजङ्गादद निर्गदं मन्दहासं,
सदा आपदाहं गदापानिदासम्
सुनादं सुवादं चिदानन्दस्वामी
नमामी नमामी नमामी नमामी

(१६) हरिदास।

ये रामानुज-सम्प्रदाय के सन्त काठियावाड़ के अन्तर्गत खादड़पुर के वासी थे। इन्होंने संवत् १८८१ के लगभग शुद्ध व्रजभाषा में हरिविलास नामक एक ग्रन्थ बनाया, जिसमें लोकाचार तथा धार्मिक विषय के साथ साथ नीति के भी अच्छे उपदेश हैं। धार्मिक तरङ्ग में आध्यात्मिक विचारों के अतिरिक्त इनके काव्यचातुर्य की अपूर्व झलक दिखाई देती है। उदाहरणार्थ—

चञ्चल इन्द्रपुरी सुख पाय के
अन्त की बेर महा सुख पाऊँ,
जौ सुख में दुख चौगुन होत है
सो सुखके हूँ नजीक न जाऊँ।
दाना चुगाय के पंख मरोड़त
ऐसे चुगे पर मैं न रिझाऊँ,
कहि हरिदास सुनो सब सज्जन
ना गुड़ खाऊँ न कान बिधाऊँ।

वर्तमान काल, संवत् १८८०।

इस काल में हिन्दी ने नया रूप धारण किया। क्रमशः शृङ्गारवेश को त्याग कर नवीन वेष धारण किया। व्रजभाषा का ह्रास तथा खड़ी बोली का प्रचार होने लगा। इसके साथ साथ गद्य का पूर्ण प्रचार हुआ। अनेक पत्र-पत्रिकायें प्रकाशित होने लगीं। परन्तु गुजरात-प्रान्त में अलङ्कृत

काल की अपेक्षा इस काल में शृङ्गार-रस-प्रधान कविता का कुछ प्रचार हुआ। इस काल में गुजराती साहित्य की भी बहुत कुछ उन्नति हुई। इसी से गुजरात-प्रान्तवासी, हिन्दी-कवि हतोत्साह हुए। कवियों ने अपनी प्रान्तीय भाषा पर विशेष ध्यान दिया। फल यह हुआ कि इस काल में हिन्दी-कवि गुजराती-कवियों के समान प्रतिभा-सम्पन्न नहीं हुए। परन्तु आदित्यराम तथा गोविन्द गीलाभाई ये दोनों हिन्दी-भाषा के उत्कृष्ट कवि हैं। इस काल में गुजरात-प्रान्त में व्रजभाषा का ही प्रचार हुआ।

(१७) कालिदास।

ये काठियावाड़ के अन्तर्गत मूली ग्राम के निवासी थे। ये राजा यशवन्तसिंह के चारण थे। इनका कविता-काल १९२९ विक्रम के लगभग समझा जाता है। इन्होंने अपने आश्रयदाता राजा यशवन्तसिंह की प्रशंसा में वीररस-पूर्ण कविता, शुद्ध व्रजभाषा में, की है। यथा—

साजै चतुरङ्ग सैन भूप फतमालसुत
भानु छिप जात आसमान रज अटके।
धसकि पहार यों धनंभार धूजत है
लचक फनिन्द में कमठ पीठि कटके॥
कहै कालिदास दलहुं तैं दावादारन के
पट्टन दुपट्टन धुँधली के रूप पटके।
भूप यशवन्त तेरे सुनत निशान अहो,
भीमगज खोखा के समान रिपु भटके॥

(१८) केसरीसिंह।

ये ध्रोल के निवासी, भूपसिंहजी के पुत्र थे। इनका कविता-काल संवत् १९२९ के लगभग था। अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् ये पालीताने में अपने मामा के यहाँ रहने लगे। इनकी बुद्धि बहुत तीक्ष्ण थी। कविता इनकी बहुत अच्छी है। इन्होंने नीति, शृङ्गार आदि कई विषयों पर, विशुद्ध व्रजभाषा में, कविता की है। उदाहरणार्थ एक रूपकालङ्कारयुक्त कवित्त दिया जाता है—

चम्पक चमेली अरु केतकी कनैर जुही
ताके बान साज के उमङ्ग सरसायो है
दाउदी के तुर्रा अरु मुकुट हजारा किये
हेगल हमेल इष्कपेंचा मन भायो है।
केसरी कहत सब फूलन को सिँगार साज
मकर को ध्वज सो तो केवरा बनायो है
शैल के करन काज साज के समाज ऐसे
मानो ऋतुराज रतिराज बनि आयो है।

(१९) ज्येष्ठालाल।

ये बीजापुर के रहनेवाले, जाति के चारण, थे। इनका कविता-काल संवत् १९२९ के लगभग था। इनकी कविता शुद्ध व्रजभाषा में है। इनके हास्य-रस-प्रधान, चमत्कार-पूर्ण कुछ कवित्त हिन्दी में प्रसिद्ध हैं। इनकी कविता में गूढ़ हास्य के साथ काव्य-चातुर्य का भी आनन्द आता है। उदाहरणार्थ एक कवित्त दिया जाता है—

गोरे गोरे भुजदण्ड दीरघ बने हैं नैन
शोभा के सदन सब ही के मन माने हैं
अजब जलेब सू जलेबदार जेब देन
द्वारे गजबाज हेम पूरन खजाने हैं।
ऐसे सुन नरनाह सुजस की बाढ़ी चाह
याते कवि आस पास आन मँडराने हैं
हम मरदाने जान यश के कवित्त पढ़े
द्वारे दरबान कहें साहब जनाने हैं।

(२०) रविराज।

ये काठियावाड़ के अन्तर्गत मूली ग्राम के चारण थे। इन्होंने जाड़ेजा ठाकुर केसरीसिंह की प्रशंसा में कविता की है। इनका कविता-काल १९३५ के लगभग अनुमान किया जाता है। इनकी मृत्यु संवत् १९५१ में हुई। इन्होंने नर्मदालहरी नामक एक ग्रन्थ बनाया। इनकी कविता शुद्ध व्रजभाषा में है और साधारणतया अच्छी है। उदाहरणार्थ एक कवित्त उद्धृत किया जाता है—

सुन्दर शरीर होय महारणधीर होय
वीर होय भीम सों लरैया आठो याम को,
गरवा गुमान होय बड़ो सावधान होय
सान होय साहबी प्रतापी पुञ्ज धाम को।
पढ़त अमान जेपैं मघवा महीप होय
दीप होय वंश को जनैया सुख श्याम को
सर्व गुनज्ञाता होय यदपि विधाता होय
दाता जो न होय तौ हमारे कहा काम को।

(२१) युगलकिशोर।

ये काठियावाड़ में लिम्बड़ी राज्य के चारण थे। दान के लिए ये अन्य राजाओं के पास भी जाया करते थे। कदाचित् इनके पूर्वज पञ्जाब-प्रान्त के वासी थे। इनका कविता-काल लगभग संवत् १९३५ के है। इनकी कविता शुद्ध व्रजभाषा में है। यथा—

गरजन लागी गूँज गगन मृदङ्गन की
बीजुरी तरीन पातुरीन पायमाल की,
झरके झरन सी परन पिचकारन की
धरन में धाई धूम आनँद रसाल की।
जयसिंह महीपत के आजु दरबार बीच
पावस सी भई ऋतु फागन विसाल की
घरी घरी घर में किसोर घन घोर सम
घूम घूम आई घटा गरद गुलाल की।

(२२) आदित्यराम।

इन्होंने अपनी कविता में अपना नाम रविराम भी रक्खा है। ये जामनगर (काठियावाड़) के प्रश्नोरा नागर ब्राह्मण थे। ये सङ्गीत-विद्या तथा वाद्य-विद्या में बड़े निपुण थे। इनका बनाया हुआ सङ्गीतादित्य नामक ग्रन्थ प्रसिद्ध है। इनकी कविता विशुद्ध व्रजभाषा में है। ये अनुप्रास के बड़े प्रेमी थे। पद्माकर के समान इनकी कविता में भी अनुप्रास की अधिकता है। पर उससे कविता शिथिल नहीं हुई है। कहीं कहीं तो वह बड़ी सरस हो गई है। भक्ति और नीति पर ही इन्होंने कविता की है—

गान तान मानयुत नाचे नट वेस धरे
कामनी वसीकरन देख्यो महाफन्द में,
करत विलास रास हास सुख सम्पत्ति सों
जमुना के तीर धीर धरे न अनन्द में।
कहत अदीतराम सूझत न कछू काम
धाम धनि धरा धन माने दुख दन्द में,
श्रीमदनमोहन की माधुरी सु मूरत पै
मोहयो मन मेरो ज्यों मिलिन्द मकरन्द में।
तन तरुनाई आई जा दिन ते थक्यो भाई
तरुनी तमासे ताई और तुक तान में,
कछू ना विचार करे नेकहू न धीर धरे
भरे भव भोगि भाँति भाँति न अमान में।
रविराम रस नाते रास रहे कस नाते
कपट कुटिलता ते काहू की न कान में,
ए रे मन मेरो महा मोह माहिं मत माचै
ममता मनाय मदमातो मरे मान में।

(२३) महरामणजी।

ये राजकोट-निवासी ठाकुर थे। इन्होंने अपने सात मित्रों की सहायता से शृङ्गार-रस-पूर्ण प्रवीणसागर नामक एक बृहद् ग्रन्थ बनाया। किन्तु दुर्भाग्यवश इस ग्रन्थ की समाप्ति के पहले ही इनकी मृत्यु हो गई। इन्होंने इसे संवत् १९३८ में प्रारम्भ किया था। इस अपूर्ण ग्रन्थ को सिहोर-निवासी कवि गोविन्द गीलाभाई ने, संवत् १९४५ में, पूर्ण किया है। इनकी कविता शुद्ध व्रजभाषा में है। कहीं कहीं सरल गुजराती शब्द भी आ गये हैं। यथा—

जैसे निरमळ होत है कनक अनल के सङ्ग
तैसे प्रेमी विरह बल चढ़े सुरति को रङ्ग।
बे दरदी जरदी समर (स्मर) ताको लगे न तीर
दरदी घट पट है नहीं कैसे बचे शरीर।

(२४) नीलकण्ठ।

इनकी कविता में कहीं लिखा है कि "महीपत मल्हार सो ख्वार ह्वै के गयो केद याको ही विचारो भेद तोहू पर नारीं है"—इससे प्रतीत होता है कि मल्हारराव गायकवाड़ के समय में ये हुए। मल्हारराव, उद्दण्ड शासक होने के कारण, संवत् १९३२ में, बडोदा के राजसिंहासन से, अँगरेज़ों द्वारा, उतार दिये गये थे। उनकी मृत्यु संवत् १९५० में मदरास में हुई थी। इस कारण, नीलकण्ठ का कविता-काल संवत् १९४० के लगभग अनुमान किया जाता है। ये बड़ोदे के निवासी थे। इनकी कविता में शुद्ध व्रजभाषा प्रयुक्त हुई है, इसलिए उसमें बड़ी सरसता और मधुरता आगई है—

वे जग अन्धन के मगदा चलिबो इन नीकनहू को बिगार्यो
वे बलिवास बसावत हैं इन वास उजार कुवासन पार्यो
सूरन थाह जतावत वे इन प्रेम अथाह के वारिधि डार्यो
देखहु री हरि की बँसुरी इन कैसे सुबंस को बंस बिगार्यो

नागर कवि का एक सवैया इसी प्रकार का है। परन्तु उसमें इसका खण्डन है। वह इस भाँति है—

वे वनवास कुठोर करैं इन वास मुखाम्बुज को पन धारयो।
वे सखि आग लगावत हैं इन कानन में रस अमृत डारयो।
नागर वे नहिं आनँद दाइन आँनद लै व्रज में विसतारयो।
देखहु री हरि की बँसुरी इन कैसे कुवंस को वंस सुधारयो।

(२५) हरिजीवन।

ये काठियावाड़ के अन्तर्गत पोरबन्दर के निवासी थे और पूरे ब्रह्मनिष्ठ थे। इनकी कविता में गुजराती-शब्दों का समावेश होने के कारण कुछ कर्कशता आगई है। शिवसिंहसरोज में हरिजीवन नामक एक कवि का नाम दिया गया है। किन्तु कुछ भाषा तथा लेख-शैली में भेद होने के कारण वह कोई दूसरे ही कवि ज्ञात होते हैं। इनकी कविता ज्ञानोपदेश से परिपूर्ण है। यथा—

कोउक रामहि राम रटे अरु कोउक कृष्णहिं कृष्ण कहावे
कोउक योग समाधि करै प्रतिमा कोउ पूज कै पूज चढ़ावै।
कोऊ ईमान रे मान सों जारत कोउक एक अनन्त ठरावै
चेतन चाह बन्यो अपनी हरजीवन भावि निमित्त धरावै।

(२६) चौरामल्ल।

ये काठियावाड़ के निवासी, साधारण श्रेणी के कवि थे। इनका कविता-काल संवत् १९४५ वि० के लगभग अनुमान किया जाता है। इन्होंने भारत की दुर्दशा पर थोड़े से कवित्त लिखे हैं, जिनमें खड़ी बोली और व्रज-भाषा का विचित्र मिश्रण है। यथा—

आया है कलू का दौर घरो घर काँगा रोल,
पोल पोल ठोर ठोर पाप बेली जागी है
केती हुती ऋद्धि सिद्धि केते हुते सन्त वृद्ध
छोड़ा हिन्दुवाना तुरकाना हद लागी है
झूठन को साँच करें साँच को बनात झूठ
पैसे बिन बात नाँहि लोभ ज्वाल जागी है
राजन की रीति गई पञ्च की प्रतीत गई
अब तों अतीत सों अनीत होन लागी है।

(२७) फ़क़ीरुद्दीन।

ये सूरत के सिपाही थे। कविता हीन श्रेणी की है। इन्होंने अपनी दुःखमयी दशा का वर्णन इस प्रकार किया है—

सूरत को सार गयो लोक को व्यवहार गयो
रोजगार डूब गयो दशा ऐसी आई है,
टूट गये साहुकार, उठ गई धीर धार,
नहिँ कोऊ कोऊ यार, बैरी सगा भाई है।
खाने हू को जहर नहिँ रहने हूं को घर नहिँ
बात कहा कहूँ यार सभी दुखदाई है
कहते फ़क़ीरुद्दीन, सुनो हो चतुर जन
टूट गये तो भी पक्के सूरती सिपाही हैं॥

(२८) मौड़जी।

ये काठियावाड़ के अन्तर्गत हालार ज़िले के मालिया नामक ग्राम के निवासी जाड़ेजा ठाकुर थे। इन्होंने अफीम की निन्दा में, पोस्तपच्चीसी नामक एक अच्छी पुस्तक बनाई है। इनकी मृत्यु संवत् १९६३ में हुई। इनकी कविता की भाषा में गुजराती का थोड़ा भी मिश्रण नहीं है। उदाहरणार्थ इनका एक कवित्त उद्धृत किया जाता है। इनकी कविता साधारण श्रेणी की है—

होती जो मैं विधवा तो सांख्य के सिद्धान्त ही ते
ध्यान धरि ईश्वर में मन को लगावती,
होती जो मैं सधवा तो प्रेम उद्दीपन ते
प्रेम लपटाइ अति नाथ को रिझावती।
होती जो कुमारिका तो पेखती न अन्य नर
योग ते अनूप महामोच को मिलावती
हाय नाहिँ विधवा न सधवा कुमारिका न
अमली पती से नहिँ एको गति पावती।

(२९) गोविन्द गीलाभाई।

इनका जन्म भावनगर-राज्यान्तर्गत सिहोर में, संवत् १९०५ में, हुआ। ये गुजराती और हिन्दी दोनों अच्छी तरह जानते थे। इनके पिता का नाम गीलाभाई था। ये चौहानवंशी राजपूत थे। इनका हिन्दी-प्रेम प्रशंसनीय है। इनके पुस्तकालय में हिन्दी के अनेक ग्रन्थ हैं। इन्होंने गुजराती तथा हिन्दी दोनों भाषाओं में अच्छी कविता लिखी है। वर्तमानकाल के गुजरात-प्रान्त के हिन्दी-हितैषियों में ये अग्रगण्य हैं। इन्होंने अपने राधा-मुखषोडशी नामक ग्रन्थ में अपना परिचय इस भाँति दिया है—

कोंधत कमन देश काठियासुवाड़ता में
सुन्दर सिहोरपुर पुनीत विख्यात है।
कुटुम्ब कलित वा में रहत सदाय हम
ज्ञाति के खवास खास विश्व में विभात हैं॥
विक्रम संवत् वार, उन्नीस पचास मधि
उर में उमङ्ग धारि नेह ते नितान्त हैं।
गोविन्द सुकवि रची राधामुखषोडशी
ये रसिक रिझायबे कों आछी अवदात है।

इन्होंने अनेक पद्य ग्रन्थ बनाये हैं जिनसे ज्ञात होता है कि ये काव्य-शास्त्र के पूर्ण पण्डित थे। इनके मुख्य ग्रन्थ ये हैं—(१) नीतिविनोद (२) पट्ऋतु (३) श्रृङ्गार-सरोजिनी (४) राधामुखषोडशी (५) विष्णुविनयपच्चीसी (६) विवेकविलास (७) लक्षणबत्तीसी (८) महाराणाजी कृत प्रवीणसागर का उत्तरार्ध (९) पावसपयोनिधि (१०) समस्यापूर्तिप्रदीप (११) वक्रोक्तिविनोद (१२) श्लेष-चन्द्रिका (१३) गोविन्दज्ञानबावनी और (१४) प्रारब्ध-पचासा। इनके सब ग्रन्थों में प्रायः नीति भक्ति, श्रृङ्गार, तथा वैराग्य-विषयक कवितायें हैं। इनकी कविता में विशुद्ध व्रजभाषा प्रयुक्त हुई है। उसमें गुजराती का थोड़ा भी मिश्रण नहीं है। गुजरात-प्रान्त के आधुनिक हिन्दी-कवियों में आदित्यराम तथा कविवर गोविन्द सबसे अधिक प्रतिभाशाली कवि हैं। इनके पाण्डित्य का पता इनके बनाये ग्रन्थों से ही चलता है। इनकी कविताओं में अलङ्कारों का अच्छा चमत्कार है। इन्होंने संस्कृत-श्लोकों के भाव लेकर कविता-रचना की है। उदाहरणार्थ एक कवित्त दिया जाता है—

(संस्कृत) इतर पापफलानि यथेच्छया वितर तानि स हे चतुरानन।

अरसिकेषु कवित्वनिवेदनं शिरसि मा लिख मा लिख मा लिख॥

सुनिये चतुर विधि अरज हमारी एक
आपना उमङ्ग धारि चाहत कहन को।
पूरब के पाप पुण्य जोय जमें होयँ मेरे
देहु फल ताके दिल चाहे सो सहन को॥
चाहे तो दरिद्र और कीजिये धनेश पुनि
चाहे तो बल सों वैर बपु में बहन को।
गोविन्द सुकवि पर लिखियो लिलार नाँहि
नीरस नरन पास कबता कहन को॥

इनकी कविता बड़ी प्रासादिक है। नीचे कुछ उदाहरण दिये जाते हैं—

अङ्गन पै गजखाल नहीं यह अम्बर नील हमारो विशाल है,
मुण्डन की नहिँ माल गले महँ हाटकहार हमेल रसाल है।
शीशजटा कवि गोविँद ये नहिं ओपत सो अति धम्मिल-जाल है,
रे रतिनाथ सम्हारि के मारियो, ईस नहीं हम कोमल बाल हैं॥
है न जटा यह बार विराजत, नील न ग्रीव में मुष्क लगाये।
शीशन चन्द्रकला यह गोविँद पुष्प प्रभा बिलसे सुखदाये॥
अङ्ग विभूति नहीं सितता यह नाथ वियोगन ते तन लाये,
रे मनमथ्थ महेश भ्रमे हम बाल कूँ मारन क्यों धसि आये।

(३०) उद्धव उपनाम औघड़भाई।

ये काठियावाड़ के अन्तर्गत लखतर के निवासी औदीच्य ब्राह्मण हैं। इन्होंने कर्णसिंहजी के नाम से कर्णजक्तमणि और कुकविकुठार नामक दो ग्रन्थ बनाये हैं। इनकी कविता हीन श्रेणी की है।

(३१) जीवा भक्त।

ये भावनगर के निवासी, जाति के राजपूत थे। इन्होंने ३५ वर्ष की अवस्था में संन्यास ले लिया था और फिर नर्मदा के तट पर रहने लगे थे। इनकी कविता वैराग्य तथा ज्ञान-विषयक है। कविता साधारण है। उदाहरण के लिए एक सवैया दिया जाता है—

धीरज तात क्षमा तिमि मात रु शान्ति सुलोचनि बाम प्रमानो
सत्य सुपुत्र दया भगिनी अरु भ्रात भले मन संयम मानो।
ज्ञान को भोजन वस्त्र दसो दिशि भूमि पलङ्ग सदा सुखदानो
जीवन ऐसे सगे जग में सब कष्ट कहा अब योगि को जानो।

(३२) भाण।

ये गिरनारा ब्राह्मण, मौनजी के पुत्र, कच्छ के अन्तर्गत माँडवी नामक स्थान के निवासी हैं। इन्होंने भाण-विलास, भाण-बावनी इत्यादि अनेक ग्रन्थ बनाये हैं। कविता हीन श्रेणी की है। इन्होंने व्रजभाषा में कविता लिखी है।

अज्ञात काल।

दो ऐसे कवियों का भी पता लगा है जिनके स्थिति-काल का ठीक ठीक निर्णय करना कठिन है।

(३३) हरिसिंह ।

ये कच्छ के अन्तर्गत खानकोटड़ा ग्राम के निवासी थे । जाति के जाड़ेजा ठाकुर थे और स्वामी रामदासजी के शिष्य थे । इन्होंने ज्ञान-कटारी नामक ज्ञान-मार्ग का एक ग्रन्थ बनाया है । कविता साधारण है ।

(३४) दीहल ।

ये मुसलमान थे । काठियावाड़ के कुण्डला नामक ग्राम में रहते थे । भक्ति के उन्मेष में इन्होंने हिन्दी में कविता लिखी है ।

यह है उन गुजराती-कवियों का वर्णन जिन्होंने सुदूर गुजरात में रह कर हिन्दी-काव्य की सेवा की है । इनके सिवा कई सज्जनों ने गुजराती होकर भी वर्तमान समय में हिन्दी-साहित्य की सेवा की है और कर रहे हैं । उनके इस उद्योग के लिए साधुवाद !

खेद है कि जिस गुजरात-प्रान्त में मीराबाई, दादू दयाल, ब्रह्मानन्द, दयाराम, आदित्यराम, गोविन्द गीलाभाई जैसे प्रतिभा-शाली कवि हो गये वहाँ अब हिन्दी-हितैषियों का अभाव है । तथापि आशा है, गुजरात-प्रान्त में हिन्दी-भाषा का फिर आदर होगा और वहाँ के निवासी गुजराती भाषा के साथ साथ हिन्दी-भाषा की भी उन्नति में यथाशक्ति योग देंगे, क्योंकि अब भारत-माता के सुपुत्र, आत्मवीर महात्मा गाँधी ने हिन्दी का पक्ष ग्रहण किया है और निःस्वार्थ भाव से उसकी उन्नति के लिए वे चेष्टा भी कर रहे हैं । उनके उद्योग से केवल गुजरात-प्रान्त ही में क्यों, किन्तु समस्त भारत में हिन्दी-भाषा राष्ट्र-भाषा का स्थान प्राप्त कर सकती है ।

भवानीशङ्कर याज्ञिक

संस्कृत-भाषा में रेखा-गणित ।

प्रारम्भ में ही यह लिख देना आवश्यक है कि इस प्रवन्ध का लेखक, गणित-शास्त्र को इन्फ्लुयञ्ज़ा अर्थात् श्लेष्मज्वर की अपेक्षा अधिक भयङ्कर मानता है । वह बाल्यकाल से सुनता आया है कि यूक्लिड की ज्यामेट्री का सम्पूर्ण अनुवाद शायद जयपुर में है । परन्तु बीच बीच में आशङ्का हुआ करती थी कि यह पुस्तक कहीं हमारी पाठ्य-तालिका में न नियत हो जाय । एक दिन बातें करते करते जयपुर के एक पण्डित से विदित हुआ कि जयपुराधिपति सुविख्यात ज्योतिषशास्त्रवेत्ता महाराजा सवाई जयसिंह जी के सभा-पण्डित जगन्नाथ जी के बनाये हुए दो बड़े ग्रन्थ हैं; एक सम्राट्-सिद्धान्त और दूसरा रेखा-गणित ।

रेखा-गणित वाम्बे गवर्नमेंट के सेन्ट्रल बुक-डिपो से प्रकाशित हुआ है । उसका संशोधन पण्डित कमलाशङ्कर प्राणशङ्कर त्रिवेदी महाशय ने किया है । उसी ग्रन्थ के आधार पर मैं इस पुस्तक का परिचय देता हूँ । विज्ञ पाठक मेरी इस अनधिकार चेष्टा को क्षमा करें ।

ग्रन्थ-परिचय के पूर्व संक्षेप में यह लिख देना आवश्यक प्रतीत होता है कि त्रिवेदी महाशय ने किन किन पुस्तकों के आधार पर इस पुस्तक का संशोधन किया है । आपका कहना है कि सबसे पहले बड़ोदे के स्वर्गीय हरिलाल हर्षदराय ध्रुव ने इस पुस्तक के प्रकाशन का उद्योग किया । ध्रुव महोदय स्वीडन और नार्वे के अष्टम इन्टरनैशनल कांग्रेस की पण्डित-सभा में बड़ोदा राज्य की ओर से प्रतिनिधि बन कर गये थे । तभी उन्होंने जगन्नाथ-कृत रेखा-गणित पुस्तक को प्रकाशित करने के लिए इन पुस्तकों को एकत्र किया था । परन्तु दुर्भाग्यवश, उनकी अकाल मृत्यु हो जाने से, यह कार्य सम्पन्न न हुआ । सम्पादक त्रिवेदी महाशय को स्वर्गीय ध्रुवजी की धर्मपत्नी से उक्त ग्रन्थ का कुछ अंश मिला । किन्तु वह अपूर्ण था । तब त्रिवेदी महाशय ने समग्र पुस्तक प्राप्त करने के लिए अन्यत्र चेष्टा की । उद्योग करने पर निम्नलिखित पुस्तकें प्राप्त हुईं, और उन्हीं की सहायता से रेखा-

गणित का प्रथमांश सम्पादन किया गया। वे पुस्तकें ये हैं—

१—स्वर्गीय ध्रुव महोदय की पुस्तक।

२—त्रावङ्कोर के महाराजा-कालेज की पुस्तक।

३—काशी के गवर्नमेंट कालेज के अध्यक्ष स्वर्गीय डाकृर वीनिस महोदय द्वारा प्राप्त पुस्तक।

४—काशी के गवर्नमेंट कालेज की पुस्तक।

इन पुस्तकों में चतुर्थ पुस्तक ही सबसे उत्कृष्ट और छापने योग्य मिली। यह जगन्नाथजी की लिखी हुई पुस्तक की नक़ल है, जो जयपुराधिपति महाराजा सवाई जयसिंह की आज्ञा से, उनके निज के उपयोग के लिए, लोकमणि नामक लेखक ने की थी। ग्रन्थ बनने के कुछ समय बाद ही, संवत् १७८४ में (१७२८ ईसवी में), इसकी नक़ल की गई थी। लोकमणि ने इसका परिचय यों दिया है—

युगवसुनगभूवर्षे शुचिशुक्ले युगतिथौ रवेर्वारे।
व्यलिखल्लोकमणिः किल सम्राजामाज्ञया पुस्तम्॥

ग्रन्थ-परिचय।

ग्रन्थ-परिचय के साथ ग्रन्थकार का भी कुछ परिचय देना अप्रासङ्गिक न होगा। कहा जाता है कि बादशाह औरंगज़ेब ने महाराजा सवाई जयसिंहजी से एक बार कहा कि हमारा यह विश्वास है कि पण्डित लोग अरबी और फ़ारसी भाषा की योग्यता नहीं प्राप्त कर सकते। बादशाह की इस धारणा को दूर करने के लिए महाराज दक्षिण उसे जगन्नाथ पण्डित को अपने साथ ले आये और उनको जयपुर में ठहरा कर अरबी-फ़ारसी भाषा की शिक्षा दिलाई। उस समय जगन्नाथ पण्डित की अवस्था २० वर्ष की थी। उसी अवस्था में वे संस्कृत के परम पण्डित हो गये थे। पण्डितराज ने, थोड़े ही समय में, अरबी और फ़ारसी में विशेष पाण्डित्य सम्पादन कर लिया। उन्होंने अरबी-भाषा से रेखा-गणित और सम्राट्-सिद्धान्त का संस्कृत में अनुवाद किया। जगन्नाथ के सिद्धान्त-सम्राट् ग्रन्थ में रेखा-गणित के बहुत से विषय हैं। उसमें १३ अध्याय, १४१ प्रकरण, और १९६ क्षेत्र हैं। कहा जाता है कि उसके अनेक सिद्धान्त महाराज जयसिंह जी के ही बनाये हुए हैं। रेखा-गणित में १५ अध्याय हैं। उसके प्रथम छः अध्याय सर्वत्र प्रसिद्ध हैं। इस कारण उनका परिचय देने की कोई आवश्यकता नहीं। क्योंकि सातवाँ, आठवाँ और नवाँ अध्याय ज्यामिति का गणित-भाग है, दसवें अध्याय में भिन्नाङ्क-सम्बन्धी विषय है और ग्यारहवें से पन्द्रहवें अध्याय तक घनक्षेत्र-सम्बन्धी बातें हैं। यह रेखा-गणित-ग्रन्थ का संक्षिप्त परिचय हुआ।

अब ज्यामिति-रेखा-गणित या शिल्पशास्त्र-विद्या के सम्बन्ध में दो एक आलोच्य बातों का उल्लेख किया जाता है।

ऊपर लिखा गया है कि रेखा-गणित अरबी-भाषा से अनुवादित तथा सङ्गृहीत ग्रन्थ है। पण्डित जगन्नाथ ने ग्रन्थारम्भ में लिखा है—

पूर्वविहितं (?) शास्त्रं यत्र कोणावबोधनात्।
क्षेत्रेपु जायते सम्यग् व्युत्पत्तिर्गणिते यथा॥
शिल्पशास्त्रमिदं प्रोक्तं ब्रह्मणा विश्वकर्मणे।
पारम्पर्यवशादेतदागतं धरणीतले॥
तद्विच्छिन्नं महाराजजयसिंहाज्ञया पुनः।
प्रकाशितं मया सम्यक् गणकानन्दहेतवे॥

इन श्लोकों का अनुवाद देने की आवश्यकता नहीं। इस अवतरण से प्रतीत होता है कि रेखा-गणित या शिल्पशास्त्र हमारे देश में बहुत दिनों से "पारम्पर्यवशात्" चला आता है। किन्तु वह विच्छिन्न अवस्था में था। जगन्नाथजी ने उसका अच्छी तरह प्रचार किया। इस विषय में हम किसी अन्य देश के ऋणी नहीं। यह भारत की निज की सम्पत्ति है। किन्तु जगन्नाथ के द्वितीय ग्रन्थ, सिद्धान्त-सम्राट्, की भूमिका में लिखा है—

ग्रन्थं सिद्धान्तसम्राजं सम्राट् रचयति स्फुटम् ।
तुष्ट्यर्थं जयसिंहस्य जगन्नाथाह्वयः कृती ।
अरबीभाषया ग्रन्थो मिजास्तीनामकः* स्थितः ॥
गणकानां सुबोधाय गीर्वाण्या प्रकटीकृतः ॥

अर्थ स्पष्ट है। पण्डितजी ने अरबी-भाषा के मिजास्ती नामक ग्रन्थ को परिष्कृत करके संस्कृत में इसकी रचना की है। अब प्रश्न यह होता है कि इन दोनों में सच किसे मानें। रेखा-गणित भारतवर्ष का शिल्प-शास्त्र है, अथवा अरब के द्वारा ग्रीस से आया है। हम इसकी विशेष मीमांसा किये बिना ही आगे बढ़ते हैं।

भारत के सभी शास्त्र वेदमूलक, "ब्रह्मणा प्रोक्तं", हैं। शिल्प-शास्त्र या रेखा-गणित का उत्पत्ति-स्थान भी वेद ही है। तैत्तिरीय-संहिता-ब्राह्मण, बोधायन और आपस्तम्ब में वैदिक यज्ञ की भूमि, वेदि-कुण्ड आदि बनाने की जो विधि पाई जाती है उससे यह स्पष्ट मालूम हो जाता है कि ज्यामिति-शास्त्र पर भारत का स्वत्व है। आपस्तम्ब के कल्पसूत्र का तीसवाँ अध्याय शुल्वसूत्र है। उसमें ज्यामिति के बहुत से सिद्धान्त पाये जाते हैं। ये सब ग्रन्थ बहुत प्राचीन कहे जाते हैं। इसमें किसी का मतभेद नहीं। अतएव यह मानना ठीक नहीं कि यह शास्त्र दूसरे देश से भारत में आया है। इस सम्बन्ध में मैकडानेल साहब ने अपने "संस्कृत-साहित्य के इतिहास" में लिखा है कि ब्राह्मणों ने धर्म और उसके सम्बन्ध के कर्मकाण्ड में जिस प्रकार से पवित्रता और स्वातन्त्र्य की रक्षा की है उससे यही अनुमान किया जा सकता है कि किसी भी धार्मिक कार्य के लिए विदेश से कोई भी सिद्धान्त ग्रहण नहीं किया गया है। मैकडानल साहब की यह बात है भी बहुत ठीक। इसके सिवा, वैदिक यज्ञ के सम्बन्ध में जिन सूत्रों का उल्लेख किया गया है वे ग्रीक सभ्यता का अभ्युदय होने के बहुत पहले के हैं। यह बात प्रमाणित हो चुकी है। और यह भी निश्चित है कि भारत में वैदिक युग से ज्योतिष-शास्त्र, गणित इत्यादि की चर्चा आरम्भ हो गई थी और उसकी उन्नति भी हो रही थी। उस समय, सबसे पहले, दशमलव की गणना और बीज-गणित का आविष्कार हुआ। भारत से ही अन्य सभ्य देशों में उनका प्रचार हुआ। उस समय भारत में ज्योतिष की अत्यन्त सूक्ष्म गणना की प्रणाली प्रचलित थी। तब ज्योतिष से घनिष्ठ सम्बन्ध रखनेवाली यह विद्या अज्ञात थी, इस बात पर विश्वास नहीं किया जा सकता। हमारा तो यह विश्वास है कि ग्रीस में प्रचलित रेखा-गणित की जन्म-भूमि भारतवर्ष ही है।

इस विषय में और भी कई योरोपीय विद्वानों की सम्मतियाँ उद्धृत की जा सकती हैं, किन्तु उनसे इस छोटे से लेख को बढ़ाने की इच्छा नहीं। पण्डित-सम्राट् जगन्नाथ ने जो कहा है कि यह शिल्प-शास्त्र 'ब्रह्मणा प्रोक्तं' है और भारत में वह विच्छिन्न अवस्था में था, तथा उसको उन्होंने 'गणकानन्द-हेतवे' प्रकाशित किया है—इसका कारण हम जान चुके। पर पण्डितजी ने रेखा-गणित को मिजास्ती से अनुवाद किया है, इसे अस्वीकार करने की कोई आवश्यकता नहीं।

पण्डितराज जी के कहने का मतलब यह था कि इस विद्या की उत्पत्ति भारतवर्ष में ही हुई और यहीं से उसका प्रचार विदेशों में हुआ। विदेश में उसका कुछ और ही रूप हो गया। वही परिवर्तित रूप उनके अनुवादित ग्रन्थ में सङ्गृहीत है। मूल पुस्तक अरबी-भाषा में थी और उसकी रचना नसीरुद्दीन ने की थी।

* मिजास्ती ग्रन्थ का प्रणेता नसीरुद्दीन मुहम्मद बिन-हुसैन अलथ्सुसी फ़ारिस का ज्योतिषी था। १२७६ ईसवी में उसकी मृत्यु हुई। उसने उक्त ग्रन्थ की भूमिका में लिखा है कि मैंने सूर-निवासी यूक्लिड की ज्यामिति के १५ अध्याय सङ्ग्रह करके अपने ग्रन्थ की रचना की है।

इस विषय में विशेष कहना हमारे लिए अनधिकार-चर्चा है। इस कारण संक्षेप से उक्त ग्रन्थ का परिचय ही दे दिया है। आशा है, गणित-शास्त्र के निष्णात विद्वान् इस पर कुछ विशेष लिखने की कृपा करेंगे*।

केदारनाथ

दीप-निर्वाण।

किया रवि ने क्षण भर विश्राम।
चन्द्र को देकर अपना धाम।
नभोदेश में चन्द्रकला का होने लगा विनोद।
उसकी हास्य-प्रभा देख कर बढ़ा सभी का मोद।

कुटी थी कोई शोभा-हीन।
वहाँ जलता था दीप मलीन।
थे इतने नक्षत्र गगन में, था सबमें आलोक।
किन्तु कुटी का हर सकता था केवल दीपक शोक।

हुआ जब निशाकाल का अन्त।
आगये नभ में नलिनीकन्त।
निष्प्रभ हुआ चन्द्रमा लज्जित होकर किया प्रयाण।
थी कुटीर में क्षुद्र दीप की ज्योतिशिखा म्रियमाण।

बढ़ा कर जीवन किसी प्रकार।
किया रवि का उसने सत्कार।
प्राणों की आहुति से उसने किया जगत्-कल्याण।
निकली एक मलिन रेखा ही हुआ दीप-निर्वाण।

पदुमलाल पुन्नालाल बख़्शी

---

* यह लेख बाबू सुबोधचन्द्र मजूमदार, बी० ए०, ने बँगला की 'अर्चना' नामक पत्रिका में प्रकाशित कराया था। लेखक महोदय की इच्छा से उसका यह हिन्दी-अनुवाद हमें भेजा गया है। सं० स०

विपद्बन्धु।

गिरौ मयूरा गगने पयोदा लक्षान्तरेऽर्कश्च जलेषु पद्मम्।
इन्दुर्द्विलक्षं कुमुदस्य बन्धुर्यो यस्य मित्रं न हि तस्य दूरम्॥

[१]

प्रयाग के विख्यात दवा-फ़रोश रामचन्द्र कक्कड़ का पुत्र कुमुदनाथ आज लन्दन नगरी में बहुत ही विपन्न है।

पिता की जीवितावस्था में ही भेषज-रसायन का अध्ययन करने के लिए कुमुद विलायत गया था। मालदार पिता का इकलौता बेटा जब जितना रुपया माँगता, पिता उतना ही भेज देते थे। अन्यान्य छात्रों की अपेक्षा कुमुद का मासिक ख़र्च भी अधिक होता था। अब उसमें और भी वृद्धि हो गई थी। पिता को मरे पूरे दो वर्ष हो गये। फूफाजी और दूकान के मैनेजर साहब दूकान का काम-काज करते हैं। मैनेजर ने जब से काम सँभाला है तब से कुमुद के पास काफ़ी रुपये नहीं रहते। फिर भी हर महीने नियमित रुपये चले आते हैं। इधर दो-ढाई महीने से रुपयों की आमद बन्द है। कुमुद प्रति सप्ताह चिट्ठी लिख लिख कर कड़ा तक़ाज़ा कर रहा है। और अब तो उसने दो तार भी भेजे हैं। फिर भी अभी तक कोई उत्तर नहीं आया।

आज सोमवार है। हिन्दुस्तान से डाक आवेगी। सोच करते रहने से रात मे कुमुद को अच्छी नींद नहीं आई। वह सोचता रहा है कि देखें चिट्ठी के साथ रुपयों की हुण्डी आती है या नहीं। सात बजते ही कुमुद उठ बैठा। और रोज़ बिना आठ बजे उसकी नींद टूटती ही न थी।

लन्दन के बेज़वाटर नामक महल्ले में किराये पर कमरे लेकर वह रहता था। प्रति सप्ताह घरवाली को किराया देने की शर्त थी। आज दो महीने हुए, कुमुद ने उसे एक पैसा भी नहीं दिया। इसके अलावा, इष्ट मित्रों से—किसी से दो पाउण्ड, किसी से चार पाउण्ड—वह बहुत कुछ क़र्ज़ भी ले चुका है। अगर आज की डाक से तीन महीने के ख़र्च का रुपया आजाय तो ख़ैर है, नहीं तो कुमुद को बड़ी विपद् में फँसना पड़ेगा।

सोने के कमरे में जो असबाब था वह बढ़िया अतएव क़ीमती था। चारों ओर दीवारें मटमैले और सुनहरे रङ्ग के चित्रित काग़ज़ से मढ़ी हुई थीं। नीचे उमदा क़ालीन बिछा था। दीवार से एक ओर मोटे रेशम का फ़ीता लटकता था। कुमुद ने उठ कर उसके झब्बे को खींचा। मिनट भर में मकान की दासी ने दरवाज़े पर आकर पूछा—"कहिए साहब?"

"डाक आई है?"

"नहीं—अभी तक तो नहीं आई।"

"अच्छा, गरम पानी लाओ।"

गरम पानी आ गया। मुँह धोकर कुमुद कपड़े पहनने लगा। कपड़े पहन कर सिगरेट रखने की सोने की डिबिया खोल कर देखा तो एक भी सिगरेट नहीं। कल से सिगरेट नहीं हैं; रुपये की कमी के कारण वह सिगरेट नहीं ख़रीद सका है। अब पतलून के दोनों पाकिटों में हाथ घुसेड़ कर वह खुले हुए जँगले के आगे खड़ा हो गया।

मई का महीना है। बाहर धूप फैल रही है। दूध बेचनेवाले की घरघराती हुई गाड़ी, रोटीवाले की गाड़ी, घर घर सामान देती जाती है।

अन्त में दूर डाकवाले के दर्शन हुए। धीरे धीरे वह इस मकान के समीप आया। अब कुमुद जल्दी से नीचे उतर गया।

चिट्ठी तो आई—लेकिन लिफ़ाफ़े पर कक्कड़ कम्पनी की मुहर नहीं! न मैनेजर की चिट्ठी आई है और न रुपया आया है। कुमुद का सिर घूमने लगा।

अन्यान्य चिट्ठियाँ लेकर वह धीरे धीरे अपने सोने के कमरे में लौट आया। लिफ़ाफ़े खोल खोल कर वह चिट्ठियाँ पढ़ने लगा। उनमें यह पत्र भी था—

प्रयागराज, २४ एप्रिल।

भैया कुमुद,

पिछले इतवार को तुम्हारी चिट्ठी मिली। सोमवार को मैं तुम्हारी दूकान पर इस बात का पता लगाने गया था कि आख़िर तुम्हारे पास रुपये भेजने में इतनी देर क्यों हो रही है। वहाँ मैनेजर से भेंट न हुई। दूकान में जो काम-काज कर रहे थे उनसे मालूम हुआ कि मैनेजर साहब आज-कल दूकान में कभी ही कभी आजाते हैं।

बाज़ार में अफ़वाह है कि कक्कड़-कम्पनी का दिवाला होनेवाला है। तुम्हारे पिता की मृत्यु के बाद से ही तुम्हारे फूफाजी और मैनेजर साहब मिल कर दूकान की रक़म हड़प रहे हैं। दूकान पर जब क़र्ज़ हो गया तब तुम्हारे रहने का मकान नीलाम हो गया। उसे तुम्हारे फूफाजी ने एक और आदमी के नाम से ख़रीद लिया है।

विश्वस्त सूत्र से पता लगा है कि पहली जून को मैनेजर साहब दिवालिया होने के लिए दर्ख़ास्त देंगे। दूकान से चीज़ें हटाई जा रही हैं और जाली हिसाब आदि भी तैयार किया जा रहा है।

अगर तुम पहली जून से पहले ही यहाँ आ सको और मैनेजर को दिये गये अधिकार को मनसूख़ करा सको तो तुम्हारी दूकान बच सकती है; वर्ना नहीं। मुझे एक वकील मित्र से ये बातें मालूम हुई हैं।

हम लोग अच्छी तरह हैं। तुम्हारा जल्दी आजाना बहुत ज़रूरी है।

तुम्हारा

सिद्धिनाथ।

चिट्ठी पढ़ कर कुमुद माथे पर उँगली रख कर सोचने लगा। आज तेरहवीं मई है, सत्रहवीं मई शुक्रवार को मार्सलीज़ से पी० एण्ड ओ० कम्पनी का जहाज़ छूटेगा। अगर वह जहाज़ मिल जाय तो इकतीसवीं मई को बम्बई और पहली जून की आधी रात को प्रयाग पहुँचेंगे। पहली तारीख़ से पहले न पहुँच सके तो कोई लाभ नहीं।

अगर फ़्रांस या इटली का कोई जहाज़ जाता हो तो समय पर पहुँच सकते हैं। हाँ, किराये के लिए रुपये? मेरे पास तो कुल पाँच-छः पैसे हैं; इसके सिवा और कुछ नहीं। कुमुद को मालूम था कि फ़्रांस और इटली के जहाज़ों में तीसरा दर्जा भी होता है—किराया भी कम लगता है। देखें, शायद कुछ क़र्ज़ मिल जाय।

कुमुद ने दासी को बुला कर कहा—"बहुत जल्द हमें एक प्याला चाय और कुछ खाने के लिए ले आओ। हम अभी बाहर जाते हैं।"

कोई पन्द्रह मिनट में दासी पके हुए दो अण्डे, कई टुकड़े रोटी के, मक्खन और चाय ले आई। झटपट इन चीज़ों को किसी तरह गले से नीचे उतार कर कुमुद हाथ में छड़ी ले बाहर निकल पड़ा।

लड्गेट-सर्कस में टामस कुक कम्पनी का आफ़िस है। वहाँ जाने पर कुमुद को मालूम हुआ कि अगर कल यहाँ से रवाना हो सके तो मार्सलीज़ में एक फ़्रांसीसी जहाज़ मिल जायगा। यह जहाज़ वक़्त पर बम्बई पहुँच जायगा।

कुमुद ने पूछा—"इतनी देर से टिकट लेने पर जहाज़ में जगह मिल जायगी ?"

कर्मचारी ने कहा—"अब गरमियों का मौसम है। जो जहाज़ भारत को जाते हैं उनमें भीड़ बहुत नहीं होती। जो जहाज़ भारतवर्ष से इस तरफ़ आते हैं उनमें मुसाफ़िरों की अवश्य अधिकता रहती है। जगह काफ़ी मिलेगी।"

"लेकिन हम तो तीसरे दरजे में जायँगे।"

"तीसरे दरजे में भी काफ़ी जगह रहती है।"

कुमुद ने तीसरे दरजे का किराया भी पूछ लिया। हिसाब लगा कर देखा, अगर २५ पाउण्ड मिल सकें तो किसी प्रकार प्रयागराज के दर्शन हो जायँ।

अब कुमुद इष्ट-मित्रों से क़र्ज़ लेने चला।

(२)

पाँच बजे कुमुद हाईगेट की आमनीबस से पिकाडिली के मोड़ पर उतरा।

चेहरा उतर गया है, आँखें धँस गई हैं और ज़ोर ज़ोर से साँस चल रही है।

दिन भर मित्रों के दरवाज़ों की ख़ाक छानने पर भी सात पाउण्ड से अधिक द्रव्य न मिल सका। अभी १८ पाउण्ड और चाहिए! अब कोई उपाय नहीं।

अगर सभी इष्ट-मित्र यहाँ होते तो शायद काम हो जाता। कितने ही मित्र समुद्र-किनारे गरमियाँ बिता रहे हैं। और और साल कुमुद भी समुद्र-किनारे चला जाता था। इस साल पास टके न होने से नहीं जा सका। जिनको रुपयों का टोटा है वही छात्र लन्दन में पड़े वक्त काट रहे हैं।

उधार माँगने जाकर दो-एक जगह कुमुद को अपमानित भी होना पड़ा। वह बेचारा परले सिरे का अभिमानी है।

सवेरे उन्हीं दो अण्डों को पेट में रख कर वह घर से बाहर निकला था। तब से उसने भोजन तो दूर, पानी का घूँट भी नहीं पिया। मन की दशा अच्छी न होने से उसे भूख की ख़बर ही नहीं; परन्तु प्यास के मारे उसका गला सूखा जाता था।

आमनीबस से उतर कर मोड़ पर खड़ा खड़ा कुमुद सोचने लगा। उसे जिन जिन के घर जाना चाहिए था सबके घर भटक आया। और भी दो-चार परिचित छात्र हैं, पर उनसे १८ पाउण्ड मिलने की आशा नहीं।

कुमुद सोचने लगा—"अब क्या करूँ?—डेरे पर लौट चलें? वहाँ लौटते ही घरवाली अपना लम्बा चौड़ा बिल पेश करेगी!"

कुछ ही दूर पर एक उच्च श्रेणी की पान-शाला का साइनबोर्ड दिखाई दे रहा था। कुमुद ने अपने थके हुए चरणों को उसी ओर बढ़ाया। वहाँ उसने एक गिलास ह्विस्की और सोडा लाने का हुक्म दिया।

नौकर ने तुरन्त ही आज्ञा का पालन किया। कुमुद एक ही साँस में गट गट करके आधे से अधिक गिलास ख़ाली कर गया। इसके बाद मेज़ पर दोनों कुहनियाँ रख कर और हथेलियों से मुँह को ढक कर वह अपने भाग्य की चिन्ता करने लगा।

ठीक वक्त पर देश पहुँचना असम्भव है—इसलिए सब डूबा। उसे अब भिखारी होना पड़ेगा। देश से अब रुपया न आवेगा। पहले से ही वह जिनका ऋण लिये बैठा है उनका क़र्ज़ अदा न कर सकेगा। वे लोग उसे चोर-लफङ्गा भी समझेंगे। मकान ख़ाली कर देने के लिए घरवाली बहुत करके नोटिस देगी और अपना रुपया वसूल करने के लिए उसका असबाब रख लेगी। दूसरे ही दिन से एक टुकड़े रोटी के लिए उसे भिखारी बन कर किसी के दरवाज़े जाना होगा!

कुमुद ने सिर उठाया। गिलास में जो बचा था उसे पी गया। नौकर ने एक टटका सान्ध्य समाचार-पत्र उसके आगे रख कर पूछा—"और एक गिलास लाऊँ?"

"लाओ"—कह कर कुमुद ने उस पत्र को खोला। आलस्य से इधर-उधर दृष्टि डाल कर उसने कोई आधे कालम के समाचार पढ़ डाले। बड़े बड़े अक्षरों में, तिहरे हेडिङ्ग के नीचे, यह समाचार था—लिवरपुल-निवासी एक इज़्ज़तदार सौदागर ने, बैपार में घाटा होने के कारण और क़र्ज़ पटाने के लिए कोई उपाय न देख कर, रात को अपने दफ़्तर की कोठरी में बैठ कर तमञ्चे से आत्म-हत्या कर ली।

कुमुद ने मन में कहा—"ठीक तो है!—खोजने पर भी रास्ता न मिलता था—यही तो रास्ता है।"

नौकर व्हिस्की से परिपूर्ण गिलास और बिल ले आया। क़ीमत चुका कर, व्हिस्की पीते पीते कुमुद सोचने लगा—"कौन रोवेगा? न बाप है, न माँ है और न भाई है। बहनें हैं, वे रोवेंगी। इष्ट-मित्रों में कोई कोई रोवेगा। और—नहीं, जान पड़ता है वह न रोवेगी। काले के लिए कहीं गोरी रोती है?"

व्हिस्की के गिलास को ख़ाली करके कुमुद मन ही मन कहने लगा—"अगर ज़िन्दा बना रहूँ तो सबसे पहले सिर झुका कर दग़ाबाज़ का ख़िताब लेना पड़ेगा। इसके बाद पेट पालने के लिए इस देश में न जाने कितनी लाञ्छना सहनी पड़ेगी। ज़िन्दा रहने में कौन सा सुख है? इससे अच्छा तो यही है कि हाइडपार्क में बैठ कर दन्न से एक आवाज़—और उसके साथ साथ खेल ख़तम।"

कुमुद मानों कल्पना से देखने लगा, दूसरे दिन के समाचार-पत्रों में बड़े मोटे टाइप में छपा है—

HYDE PARK TRAGEDY
AN INDIAN STUDENT
SHOOTS HIMSELF
With a Revolver

कुछ देर में वह मेज़ पकड़ कर खड़ा हो गया। उस समय उसके नेत्र गुड़हल के फूल की तरह सुर्ख़ थे। अगर कोई जान-पहचानवाला उसको उस अवस्था में देखता तो उसके मन की बातों को बिना जाने ही शङ्कित हो जाता।

वहाँ से निकल कर कुमुद आमनीबस में जा बैठा। हाबर्न में वह बन्दूकों की एक दूकान में गया। वहाँ से उसने एक तमञ्चा और छः कार्तूस ख़रीदे। कोट के भीतरी पाकेट में उसने उन्हें सावधानी से छिपा कर रख लिया। अब वह अपने कालेज के कमरे में बैठ कर कुछ चिट्ठियाँ लिखने लगा।

(३)

कुमुद ने एक एक करके कई चिट्ठियाँ लिखीं। पर हिन्दुस्तान के लिए सिर्फ़ दो—बाक़ी सब वहीं विलायत में स्थित इष्ट-मित्रों के लिए। जिन जिन से उसने क़र्ज़ लिया था उनको लिखा—"मैं देश को पत्र लिख रहा हूँ, अगर मेरी दूकान में कुछ बचा होगा तो उससे आप-लोगों का क़र्ज़ चुका दिया जायगा। और अगर वहाँ कुछ न बचा होगा तो भाई तुम इस बात को भूल जाना कि मुझे कुछ क़र्ज़ दिया था। यही समझ लेना कि तुमने अपने अभागी मित्र को विपत्ति के दिनों में दान कर दिया है।" घरवाली मेम को लिखा—"हमारी किताबें और सामान बेच कर अपने दाम वसूल कर लेना। अगर कुछ बच जाय तो वह भिखारियों को दान कर देना।" कुमुद ने एक व्यक्ति को एक पत्र और लिखना चाहा। हाथ में क़लम लिये कुछ देर तक सोचता रहा। अन्त में न लिखने का ही निश्चय किया।

पाकेट में चिट्ठियाँ रख कर कुमुद उठ बैठा। उस समय रात के आठ बज चुके थे, किन्तु ग्रीष्म-काल में इस समय भी लन्दन में दिन का सा उजेला है। कालेज से निकल कर उसने डाकघर से दो टिकट ख़रीदे और हिन्दुस्तान आनेवाली दोनों चिट्ठियों पर चिपका दिये। उन दोनों को वह चिट्ठियों के बम्बे में डालने चला—फिर सोचा, नहीं, अन्यान्य चिट्ठियों के साथ इन्हें भी पाकेट में ही रहने दो। कल पुलिस ही इन्हें डाकघर में डाल देगी।

पाकेट में हाथ डाल कर देखा, तमञ्चा और डाक-टिकट ख़रीद लेने पर अब कुल चार पेनी बची हैं। एक पेनी आमनीबस का किराया हुआ और एक पेनी उस बेञ्च का किराया देना होगा जिस पर हाइडपार्क में बैठ कर मैं निर्जनता और अन्धकार की प्रतीक्षा करूँगा। पृथ्वी में अब और दो पेनियों की क्या ज़रूरत है? लड़के को गोद में लिये एक भिखारिन जा रही थी। उसे कुमुद ने वे दोनों पेनियाँ दे दीं। "ईश्वर आपका भला करे"—कह कर भिखारिन चली गई।

आमनीबस आई। हाइडपार्क के फाटक के सामने जब कुमुद उतरा तब साढ़े आठ बजे थे। हाइडपार्क में प्रवेश करके उसने सोचा—"और आध घण्टा जाने दो! आध घण्टे बाद अँधेरा हो जायगा।"

अब भी बहुतेरे नर-नारी पार्क के भीतर घूमते फिरते हैं। स्थान स्थान पर घास के ऊपर दो-दो कुरसियाँ पड़ी हैं। प्रायः सभी पर एक एक युगल-मूर्त्ति विराजमान है।

इधर-उधर घास पर बैठ कर अथवा लेट कर लोग गप-शप कर रहे हैं। जहाँ मनुष्यों की भीड़-भाड़ थी उस स्थान को छोड़ कर कुमुद एकान्त स्थल की खोज में घूमने लगा।

दिन का उजेला रात की ओढ़नी में छिपने लगा। एक जगह कुमुद उदास भाव से खड़ा था। उसी समय किसी ने पीछे से एकाएक उसके हाथ को स्पर्श किया। उसने चौंक कर पीछे मुड़ कर देखा। देखते ही टोपी उठाकर उसने कहा—"उथेलो! बड़े भाग!"

कुमुद ने जिससे सम्भाषण किया वह कोई बीस वर्ष की युवती है। फ़ैशन से उसकी पोशाक और सजावट की मुहब्बत न थी। उसकी बातचीत का ढँग भी शिक्षिता महिला की तरह का न था। वह ऐसी युवती न थी जिसे अँगरेज़ी में लेडी (Lady) कहते हैं। वह किसी होटल के भोजन-विभाग में नौकर थी। उसी भोजनशाला में, कोई एक साल पहले, कुमुद से उसका पहले पहल परिचय हुआ था।

युवती ने कहा—"चलो बस रहने भी दो। बड़े भाग! मानो हमें देख कर बहुत ही खुश हुए हैं। कोई एक महीने में आज मुलाक़ात हुई है। अच्छा कुमुद तुम्हारा चेहरा ऐसा क्यों हो गया? तुम्हें क्या कोई बीमारी होगई थी?"

कुमुद ने कहा—"नहीं तो।"—वह मन में सोच रहा था, याद नहीं पड़ता कि मैंने जान-बूझ कर किसी और का कोई विशेष अनिष्ट किया हो—पर इसका तो मैं अपराध कर चुका हूँ। उसके लिए आज इससे क्षमा-प्रार्थना करके ही जाऊँ—जान पड़ता है, यही मौक़ा देने के लिए ईश्वर ने दया करके इस समय इसे यहाँ भेज दिया है।

उथेलो बोली—"चलो, घूमें। अच्छा बतलाओ,- तुम इधर महीने भर से अच्छी तरह थे न? हमें धोखा तो नहीं देते हो? अगर भले-चङ्गे थे तो इधर महीने भर से हमारे होटल में क्यों नहीं आये?"

"इसी लिए कि रुपये न थे।"

"वाहियात बात! रुपये न होने से ही तुम हमारे होटल में खाना खाने नहीं आये! क्यों, तुम्हारे रुपये क्या हुए?"

"तीन महीने हो गये, देश से रुपये नहीं आये।"

"क्यों?"

"रोज़गार में घाटा हुआ है।"

"क्या कहते हो?"—कह कर उथेलो शङ्कित भाव से कुमुद की ओर देखने लगी।

हाइडपार्क के बीचों बीच सर्पेण्टाइन नामक एक दीर्घिका है। इस समय बातें करते करते ये उसी सर्पेण्टाइन के पास आ गये। इस दीर्घिका में छोटी छोटी कई क़िश्तियाँ हैं। इन्हें किराये पर लेकर लोग जल-विहार किया करते हैं। उथेलो ने कहा—"प्यारे कुमुद, चलो क़िश्ती लेकर हम लोग ज़रा सैर कर आयें। अँधेरे में पानी पर सैर करने में बड़ी मौज है।"

कुमुद ने कहा—"अफ़सोस की बात है, मेरे पास किराया देने के लिए दाम नहीं। सिर्फ़ एक पेनी है और दुनिया में यही मेरी अन्तिम पेनी है।"

उथेलो ने कहा—"क्या कहते हो? दुनिया में मेरी अन्तिम पेनी के क्या मानी?"

कुमुद ने कहा—"अर्थात् इस पेनी के सिवा और कुछ भी हमारा नहीं।"

सन्दिग्ध भाव से उथेलो कुमुद की ओर ताकती रही। कुमुद ने कहा—"देखो, सर्पेण्टाइन के उस किनारे पर खूब एकान्त है—चलो, हम वहीं बैठें। तुमसे कुछ कहना है।"

उथेलो ने कहा—"चलो।"

सर्पेण्टाइन के किनारे किनारे चल कर जब उस पार वे पहुँचे तब अँधेरा हो गया। पार्क में जगह-जगह बिजली की रोशनी हो गई। रोशनी से दूर एक पेड़ के नीचे, जल के पास ही, घास के ऊपर दोनों बैठ गये।

(४)

उथेलो इतना खूब समझ गई थी कि आज कुमुद का मन बहुत ख़राब है। इसी से वह उसका जी बहलाने के लिए स्त्री-सुलभ तरह तरह की बातें करने लगी। किन्तु उसने देखा कि कुमुद के कानों में वे बातें पहुँचती ही नहीं। दो-दो तीन-तीन बार कहने पर भी वह सुप्तोत्थित व्यक्ति की तरह पूछने लगता—"क्या कहती हो?"

अँधेरा खूब घना हो गया। आकाश में सैकड़ों तारे चमकने लगे। हवा के हलके झोके से ताथेई ताथेई करनेवाली सर्पेण्टाइन की छाती पर तारागणों की

माला का प्रतिबिम्ब पड़ रहा है। हाथ पर सिर रक्खे हुए अर्द्धशयीन अवस्था में कुमुद सर्पेण्टाइन के जल की ओर टकटकी लगाये देख रहा है। उथेलो ने पूछा—"कुमुद क्या सोच रहे हो?"

कुमुद—"तुमने शेली का नाम सुना है?"

"कौन? क्या कोई तुम्हारा दोस्त है?"

"वे विगत शताब्दी में एक महाकवि हो गये हैं।"

"हाँ, मुझे न मालूम था।"

"उन्होंने पहले हेनूरियेट नाम की एक युवती से विवाह किया था। फिर कुछ दिनों में दोनों के प्रेम का नाता टूट गया। इसके बाद एक दिन हेनूरियेट रात को यहाँ आई और उसी सर्पेण्टाइन के पानी में डूब मरी।"

यह बात सुनते ही उथेलो के रोंगटे खड़े हो गये। उसने कहा—"ओफ़, कैसी भयङ्कर बात है! तुमको किस तरह मालूम हुआ?"

"मैंने शेली के जीवनचरित में पढ़ा है।"

उथेलो सन्न हो गई। फिर वह शङ्कित चित्त से कुमुद की ओर देखने लगी। किन्तु वह अन्धकार में उसके चेहरे का भाव न जान सकी। अब उसने एक और उपाय किया।

उसने प्रेम के स्वर में कहा—"अच्छा कुमुद, जो मैं उस हेनूरियेट की तरह इस सर्पेण्टाइन में कूद पड़ूँ तो तुम क्या करो?"

कुमुद—"मैं भी पानी में कूद पड़ूँ और तुम्हें निकाल लाऊँ।"

"तुम तैरना जानते हो?"

"कुछ कुछ। जब मैं देश में था तब कई मरतबे शर्त लगा कर गङ्गा पार कर चुका हूँ।"

उथेलो का हृदय काँप उठा। उसने कहा—"ईश्वर को धन्यवाद"।

कुमुद ने पूछा—"उथेलो, तुमने ऐसा क्यों कहा?"

उथेलो चुप रह गई; कुछ न बोली।

कुमुद ने फिर पूछा—"तुम्हें क्या यह सन्देह हो गया है कि आज मैं सर्पेण्टाइन में कूद कर आत्महत्या कर लूँगा?"

उथेलो ने रोते रोते कहा—"चलो हटो, मैं न बोलूँगी।"

कुमुद मन में कहने लगा—"बड़े अचरज की बात है! पृथ्वी से सदा के लिए विदा होते वक़ यह कहाँ से आकर आँसू भरी दृष्टि से मेरा रास्ता रोके खड़ी है? मेरी स्वदेशीया नहीं, स्वजातीया नहीं, और तो क्या सवर्णा भी नहीं—मेरी कोई नहीं—इसे इतना रञ्ज क्यों है?" कुमुद की आँखों से दो बूँद आँसू टपक पड़े।

और दो-चार बातों के बाद कुमुद ने कहा—"देखो उथेलो, मैं तुम्हारे निकट अपराधी हूँ। क्या मुझे उसके लिए क्षमा कर दोगी?"

उथेलो ने पूछा—"कौन सा अपराध?"

"मन में सोचो—मैंने क्या तुम्हारे साथ कुछ अन्याय नहीं किया?"

कुमुद का हाथ पकड़ कर उथेलो बोली—"आज तुम ऐसी बातें क्यों कर रहे हो?"—उसकी यह आवाज़ गद्गद कण्ठ से निकली थी।

कुमुद—"अगर किसी ने किसी का कुछ अपराध किया हो तो क्या वह उससे क्षमा न माँगे?—उथेलो तुम मुझे क्षमा कर दो।"

कुमुद का हाथ छोड़ कर उथेलो ने कहा—"रहने दो; जो ऐसी बातें करोगे तो मैं रोने लगूँगी। तुम्हें आज हो क्या गया है?"

यह भाव देख कर कुमुद उसे समझाने लगा।

कुमुद अर्द्धशयान अवस्था में पड़ा था। उथेलो समीप ही बैठी थी। कुछ इधर-उधर की बातें करके उथेलो ने खेल खेल में कुमुद के कोट का बटन खींचा। एकाएक उसे मालूम हुआ कि किसी जगह कोई चीज़ है। उसने फुर्ती से कुमुद के पाकेट से वह चीज़ निकाल ली और रुँधे हुए स्वर से पूछा—"कुमुद, यह क्या है?"

कुमुद—"तमञ्चा।"

"इसकी ज़रूरत?"

"रात-बिरात अँधेरे-उजेले में न जाने कहाँ कहाँ घूमा करता हूँ। साथ में तमञ्चा रहना अच्छा है। घोड़े को मत दबाना।"

इसी बीच उथेलो बड़ी फुर्ती से उठ कर खड़ी हो

गई। कुमुद की बात ख़तम भी न होने पाई थी कि वह पानी की तरफ़ लपकी।

"क्या करती हो, क्या करती हो"—कहता हुआ कुमुद भी उसके पीछे दौड़ा। पानी के पास जाकर उसने उथेलो का वस्त्र पकड़ लिया।

उथेलो ने उसी दम सर्पेण्टाइन के मध्य भाग की सीध में पूरे ज़ोर से तमञ्चा फेक दिया।

पानी के किसी अदृश्य अंश से 'छप' ऐसी आवाज़ सुनाई दी। नरशोणित के बदले वह शिशु-राक्षस अपनी अग्निमयी तृषा को पानी से ही निवारण करने पर बाध्य हुआ।

(५)

उथेलो के हाथ को बड़े ज़ोर से दबा कर कुमुद ने कहा—"शैतान, यह क्या किया?"

उथेलो बोली—"शैतान, अच्छा ही तो किया—ख़ूब किया—मेरी ख़ुशी—छोड़ दे मेरी कलाई"।

कुमुद ने कहा—"सोचा भी है—तमञ्चे के सिवा मेरे लिए और कोई उपाय नहीं है?"

उथेलो—"हाय! छोड़ो मेरी कलाई; हाथ तो कट गया। दर्द होता है—अरे छोड़!"

कुमुद ने उसका हाथ छोड़ दिया। धीरे धीरे फिर उसी जगह वह आ बैठा। इस सरतबे वह लेटा नहीं।

उथेलो ने वहाँ आकर कहा—"देखो अपनी करतूत। क्या किया है! मेरी कलाई की चूड़ी टूट कर कलाई के मांस में घुस गई है। अरे रे!"—वह दर्द के मारे हाथ झटकने लगी।

पाकेट में दियासलाई थी। एक सलाई जला कर कुमुद ने देखा कि उथेलो की बात बिलकुल सच है। अनामेल की चूड़ी टूट गई है और एक टुकड़े की नोक उथेलो की कलाई में छिद गई है। ख़ून बह रहा है।

वह उसे तुरन्त झील के किनारे ले गया। चूड़ी के टुकड़े को निकाल कर उसने घाव को धोया। फिर कुछ घास उखाड़ कर उसे ख़ूब चबाया और घाव पर रख दिया। फिर रूमाल से एक टुकड़ा फाड़ कर पानी में भिगोया और पट्टी बाँध दी। प्रेम के साथ पूछा—"उथेलो! क्या अब भी बहुत दर्द है?"

उथेलो—"नहीं, अब कुछ घट गया है।"

"सचमुच उथेलो मैं पशु हूँ। चलो"—कह कर फिर दोनों उसी जगह जा बैठे।

कुमुद ने कहा—"अब दर्द कैसा है? चलो किसी दवाख़ाने में अच्छी तरह से बँधवा दें।"

उथेलो खड़ी हो गई—"एक पेनी से क्या दवा हो सकेगी"?

आह भर कर कुमुद ने कहा—"हाँ, मैं तो भूल ही गया।"

उथेलो ने कहा—"चलो अब बाहर चलें। किसी दवाख़ाने में नहीं, किसी भोजनशाला में चलें। मेरे पास रुपये हैं। बड़ी भूख लगी है।"

कुमुद ने पूछा—"क्या तुम खाना खाकर न आई थीं?"

"सात बजे ही खा आई थी। इधर तीन-चार घण्टे में फिर भूख न लगेगी! तुमने खाना कब खाया था?"

"खाया ही नहीं।"

"खाया नहीं!—चाय?"

"चाय भी नहीं पी।"

"नाश्ता?"

"वह भी नहीं। आठ बजे घर से दो अण्डे खाकर निकला हूँ। तब से फिर कुछ भी नहीं खाया।"

यह सुन कर उथेलो बोली—"हाय हाय! दिन भर में कुछ भी नहीं खाया! चलो, जल्दी चलो—अब ज़रा भी देर न करो।"

फाटक से निकल कर दोनों एक भोजनालय में पहुँचे। उथेलो ने पूछा—"कोई एकान्त कमरा ख़ाली है?"

नौकरनी ने ज़रा मुसकुरा कर कहा—"हाँ है, आइए।"

कमरे में दोनों के लिए खाने का सामान आ गया। अब यहाँ और कोई न आ सकेगा। बिना बुलाये नौकरनी भी न आ सकेगी।

पेट में कुछ आहार पहुँचने पर कुमुद की देह में मानों नये प्राणों का सञ्चार हुआ। भोजन कर चुकने पर नौकरनी मेज़ साफ़ कर गई।

अब कुरसी छोड़ कर दोनों आराम कुर्सियों पर लेट

गये। उथेलो ने पूछा—"अच्छा बतलाओ तो कुमुद, तुम पर यह पागलपन क्यों सवार हुआ था ?"

आरम्भ में कुमुद कुछ बतलाता ही न था; बड़ी मुश्किलों से उसने अपना हाल बतलाना शुरू किया। आदि से अन्त तक सब बातें सुना कर उसने कहा—"इस अवस्था में सिवा आत्महत्या के और मैं कर ही क्या सकता हूँ ? और उपाय ही क्या है ? आज तुमने रोक लिया तो कल सही, कल नहीं तो परसों सही—इसके सिवा मुझे और कोई मार्ग नहीं सूझता। बतलाओ न, क्या करूँ ? जो आत्महत्या नहीं करता तो भूखों मरना पड़ेगा। उससे तो—"

उथेलो—"कितने पाउण्ड मिलने पर तुम देश पहुँच सकते हो ?"

"पचीस पाउण्ड।"

"कल शाम की रेल ही आख़िरी रेल है ?"

"हाँ।"

"कल के बजे तक रुपये मिल जाने से तुम्हारा काम हो सकता है ?"

"तीन बजे तक।"

"अच्छा, मैं कोशिश करूँगी।"

कुमुद अचम्भे में आकर बोला—"तुम ! उथेलो, तुम्हें पचीस पाउण्ड कहाँ मिलेंगे ?"

उथेलो—"दस पाउण्ड तो मेरे ही पास हैं। डाकख़ाने में जमा हैं। जब चाहे उठा लाऊँगी। बाक़ी पन्द्रह पाउण्ड कहीं से लाने की चेष्टा करूँगी। अगर मुझे कामयाबी हो जाय तो फिर तुम वह अपना पूरा इरादा छोड़ दोगे न ?"

"ज़रूर।"

"अच्छा, कल तीन बजे तुम चान्सेरी लाइन और फ़्लीट स्ट्रीट के मोड़ पर मिलना। मैं आऊँगी। अगर मैं रुपये पा जाऊँगी तो उसी समय दे दूँगी।"

"बहुत अच्छा।"

रात के साढ़े ग्यारह बज गये। भोजनालय से निकल कर दोनों उथेलो के डेरे की ओर बढ़े। वह दो मील है। दरवाज़े के बाहर जब वे परस्पर बिदा हुए तब अँगरेज़ी तारीख़ बदल गई थी।

(६)

दूसरे दिन निर्दिष्ट समय और स्थान पर, कुमुद से उथेलो की भेंट हुई। रुँधे हुए गले से कुमुद ने पूछा—"कहो क्या हुआ ?"

"रुपये मिल गये। पहले कुक के दफ़्तर को चलो—टिकट ले आवें।"

"तुम मेरे साथ चलोगी ?—तुम्हारे काम में—"

उथेलो ने हँस कर कहा—"मेरी तो छुट्टी है ! पट्टी बँधे हुए हाथ से जो मैं परोसूँगी तो कोई भोजन ही न करेगा !—इसी से मैनेजर ने हाथ अच्छा हो जाने पर ही काम पर बुलाया है। इतने दिनों की छुट्टी है। अच्छा ही हुआ—नहीं तो रुपयों का इन्तज़ाम करने के लिए वक़्त न मिलता।"

दोनों ने कुक के दफ़्तर से टिकट ख़रीद लिया।

शाम के आठ बजे विक्टोरिया स्टेशन से कुमुद की गाड़ी छूटेगी। दोनों एक साथ खाना खाकर ठीक वक़्त पर स्टेशन पहुँच गये।"

कुमुद ने कहा—"उथेलो, तुम्हारे इस उपकार को मैं ज़िन्दगी भर न भूलूँगा। अगर मैं अपने रोज़गार की रक्षा कर सका—तो दो महीने बाद तुम्हारे ये रुपये भेज दूँगा।"

उथेलो कुछ भी उत्तर न दे सकी। गला भर आया और आँखों में आँसू आ गये।

गाड़ी छूटने का समय हो गया।

उथेलो ने कहा—"गुडबाई कुमुद—जान पड़ता है, हमारी तुम्हारी यह अन्तिम भेंट है।"

कुमुद—"यह बात क्यों कहती हो, उथेलो ?"

उथेलो—"जब हमारे तुम्हारे बीच सात हज़ार मील का अन्तर हो जायगा तब फिर क्या हमारी याद करोगे ?"

"तुम्हें भूल सकता हूँ ? शरीर में प्राण रहते तो ऐसा होने का नहीं।"

उथेलो ने कहा—"यह लो, लालटेन दिखा रहा है। गाड़ी पर सवार हो जाओ, गुडबाई (अन्तिम अभिवादन)।"

"गुडबाई नहीं, उथेलो। फिर मिलूँगा, फिर मुलाक़ात

होगी" —कह कर कुमुद ने अथेलो के हाथ पर अपने ओठों का स्पर्श कर दिया।

गाड़ी छूट गई।

[बँगला से अनुवादित]

ललीप्रसाद पाण्डेय

परमाणु की शक्ति।

मनुष्य-मात्र का यह स्वभाव है कि वह अपने ज्ञान को परिमित नहीं देखना चाहता। वह सदैव नूतन तथ्यों के सङ्ग्रह करने में व्यग्र रहता है। इसी को जिज्ञासा कहते हैं। इसी से प्रेरित होकर मनुष्य आत्म-कल्याण-साधन करने में समर्थ होता है; इसी से वह अपने ज्ञान की वृद्धि करके उन्नति की चरम सीमा को पहुँच जाता है। जिसमें यह जिज्ञासा नहीं, यह ज्ञान-लिप्सा नहीं, उसकी उन्नति कभी नहीं हो सकती। अनन्त काल से ज्ञान का अविराम स्रोत बह रहा है। कहाँ इस का अन्त होगा, यह कोई नहीं कह सकता। पर इसमें सन्देह नहीं कि मनुष्यों के ज्ञान का विकास होता ही जारहा है।

आज-कल विज्ञान-विषय के एक से एक विलक्षण आविष्कार हो रहे हैं। हाल में ही वैज्ञानिकों का ध्यान एक विस्मयोत्पादक शक्ति के आविष्कार की ओर आकृष्ट हुआ है। यदि उन्हें अपने उद्योग में सफलता प्राप्त होगई तो संसार का रूप ही पलट जायगा। बरमिंहम-विश्वविद्यालय के अध्यापक अर्नस्ट रदरफर्ड ने अणुओं को विभक्त कर दिया है। कुछ लोगों ने और भी आविष्कार किये हैं। उनसे यह ज्ञात होता है कि अणुओं के विभक्त होने पर एक ऐसी शक्ति उद्भूत होती है जो वर्तमान सभ्यता का संहार कर सकेगी और मनुष्यों को देवोपम बना सकेगी। यह है परमाणु की शक्ति।

परमाणु अनन्त हैं। इसलिए यह शक्ति भी अनन्त है। यदि कोई इसका दुरुपयोग करना चाहे तो यह सर्वसंहारिणी शक्ति क्षण भर में किसी भी
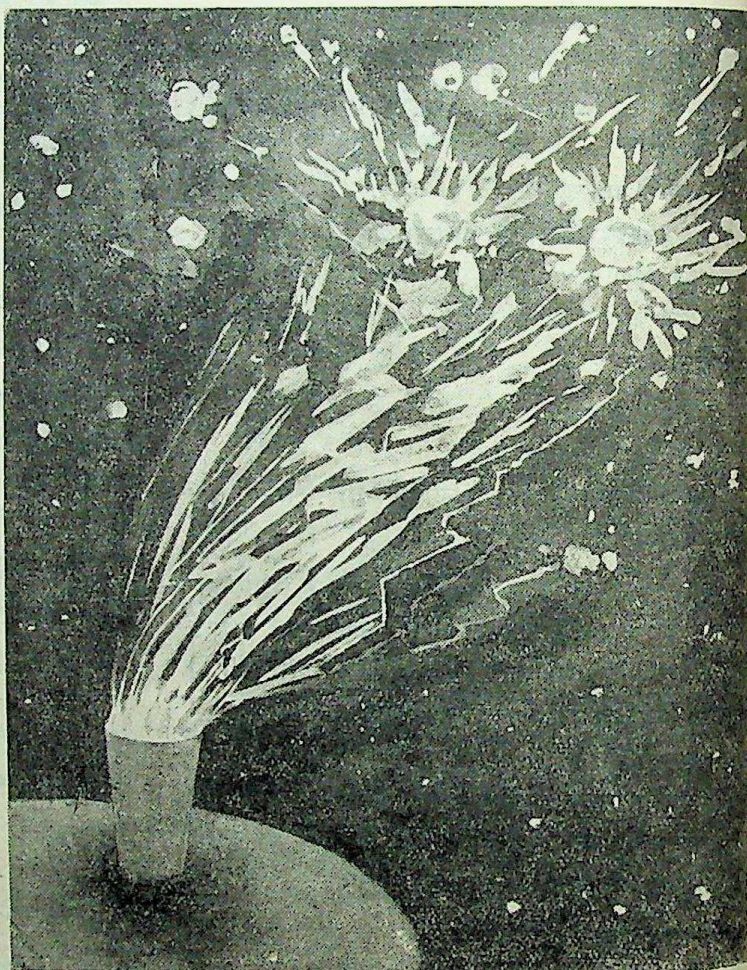
एक ग्लास पानी से बड़े बड़े ग्रह-उपग्रहों का नाश।

देश का नाश कर सकती है। इसके लिए सामग्री की ज़रूरत नहीं। एक ग्लास पानी में इतनी शक्ति है कि वह ब्रिटिश साम्राज्य के सारे बड़े बड़े जहाज़ों को उड़ा कर हिमालय की चोटी पर धर दे। पर यदि इसका सदुपयोग किया जाय तो इससे व्यवसाय की बड़ी समृद्धि हो सके। मज़दूरों का झगड़ा दूर हो जाय। डाकुओं और चोरों का भय न रहे। पुलिस की भी ज़रूरत न रहे। युद्ध सदा के लिए लुप्त हो जाय। और मानव-जीवन की क्षणभङ्गुरता भी नष्ट हो जाय।

एक छोटे से यन्त्र से विश्व का संहार।

ये केवल मनोमोदक नहीं। ख्यातनामा वैज्ञानिकों की सम्मति है। वैज्ञानिक-शिरोमणि सर आलिभर लाज का नाम ख़ूब प्रसिद्ध है। उनका भी यही विश्वास है। न्यूयार्क के डाक्टर आरुभिङ्ग लैङ्गम्यूर, जो वहाँ जनरल एलेक्ट्रिक कम्पनी के मुखिया हैं, ऐसा ही ख़याल करते हैं। अतएव इसकी सत्यता पर हमें विश्वास करना ही पड़ता है।

यह शक्ति कैसे उत्पन्न होती है, यह जानने के लिए हमें दो बातों पर ध्यान देना चाहिए। पहली बात तो यह है कि संसार के सभी पदार्थ अनन्त अणुओं के मेल से बने हैं। दूसरी बात यह है कि ये अणु भी स्वयं परमाणुओं से बने हुए हैं। इन परमाणुओं से ही यह शक्ति पैदा होती है।

अच्छा तो यह शक्ति आती कहाँ से है? हम देखते हैं कि जब पानी भाफ के रूप में बदल जाता है तब भाफ में वह शक्ति आजाती है कि उससे बड़े बड़े एञ्जिन चलने लगते हैं। शक्ति आने का कारण यह है कि पानी, भाफ के रूप में परिवर्तित होने पर, अणुओं में विभक्त हो जाता है। अणुओं में स्वभाव से ही तीव्र गति है। उन्हीं की गति से भाफ की शक्ति प्रकट होती है।

अणुओं से भी तीव्रतर गति परमाणुओं की है। इसलिए यदि हम अणुओं को परमाणुओं में विभक्त कर सकें तो उससे असीम शक्ति उत्पन्न हो सकती है। यह शक्ति भाफ की शक्ति से करोड़ों गुनी अधिक होगी। वैज्ञानिकों ने यन्त्रों के द्वारा
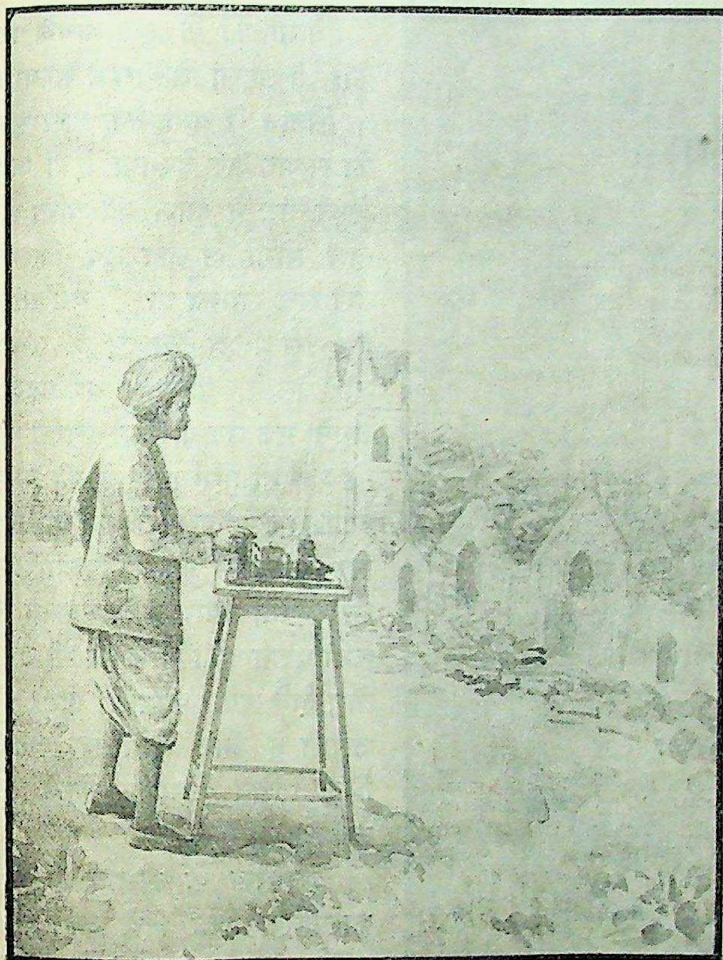
इस शक्ति का परिचय प्राप्त कर लिया है। उनका कहना है कि जैसे आज-कल भाफ के बल से एञ्जिन चलाये जाते हैं वैसे ही हम इसका उपयोग कर सकेंगे। यह शक्ति सभी पदार्थों में अन्तर्हित है। केवल उनके उपयोग का ज्ञान होना चाहिए। इसके

परमाणु की शक्ति से बड़े बड़े ड्रेडनाटों और आकाशयानों का नाश।

लिए सबसे पहले आवश्यक यह है कि हम अणु को परमाणुओं में विभक्त कर सकें। इसमें सर अर्नेस्ट रदरफर्ड को सफलता प्राप्त हो गई है। देखें, कब इसका उपयोग होने लगेगा।

हम लोग इस भीषण शक्ति की कल्पना रेडियम से कर सकते हैं। रेडियम से जो परमाणु उद्भूत होते हैं उनकी सबसे मन्द गति एक सेकंड में ७००० मील है। उनमें ऐसी प्रबल शक्ति है कि कैसा भी दृढ़ पदार्थ क्यों न हो वे अनन्त उत्ताप पैदा करके उसमें प्रवेश कर जाते हैं। एक्सरेज़ इसी परमाणु-शक्ति का नमूना है।

वैज्ञानिकों के इस कथन पर कोई भी सहसा विश्वास न करेगा। पर विज्ञान ने अभी तक असम्भव को सम्भव कर दिखाया है। जब जेम्स वाट ने भाफ की शक्ति का हाल लोगों से कहा तब किसने उसे सच समझा था? पर आज हम उसे प्रत्यक्ष देख रहे हैं। एच० जी० वेल ने, बीस ही वर्ष पहले, अपने एक उपन्यास में लिखा था कि शीघ्र ही मनुष्य पक्षियों की तरह आकाश में भ्रमण करने लगेगा। तब सब लोग उसे एक औपन्यासिक की कल्पना समझते थे। सम्भव है कभी परमाणु की शक्ति का भी उपयोग होने लगे। कम्पनी खड़ी की जारही है और वैज्ञानिक इसके लिए एञ्जिन निर्माण करने में लगे हैं।

इस लेख के सम्बन्ध में तीन काल्पनिक चित्र दिये जाते हैं। उनमें परमाणु की शक्ति के उदाहरण हैं। एक में दिखाया है कि एक ग्लास पानी बड़े बड़े ग्रह और उपग्रहों को आसमान में उड़ा रहा है। दूसरे में एक छोटे से यन्त्र की शक्ति से एक मनुष्य विश्वसंहार कर रहा है। तीसरे में बड़े बड़े ड्रेडनाटों और विमानों का नाश दिखाया जा रहा है। ये

सब परमाणु की शक्ति के ही करिश्मे हैं। चित्र अँगरेज़ी की "पियरसन्स मैगेज़ीन" से लिये गये हैं।

भारत में शिक्षा-प्रचार।

गत वर्ष भारत में शिक्षा-प्रचार के तीन कारण बाधक थे। एक तो महा-युद्ध का भीषण परिणाम, दूसरा इन्फ्लुयंज़ा ज्वर का प्रकोप और तीसरा दुर्भिक्ष। यद्यपि इनका प्रभाव शिक्षा की उन्नति में बुरा ही हुआ तो भी इनसे कुछ अंशों में लाभ भी हुए। महायुद्ध में स्कूलों और कालेजों ने साम्राज्य की रक्षा के लिए कम काम नहीं किये। बम्बई-प्रान्त में शिक्षा-विभाग की ओर से युद्ध-ऋण के लिए सवा दस लाख रुपये दिये गये। बेलजियम के बालकों के उद्धार के लिए ५० हज़ार रुपये भेजे गये। बरार के स्कूलों ने भी अच्छी रक़म दी। संयुक्त-प्रान्त के शिक्षा-विभाग के अधिकारियों ने भी अच्छा काम किया। कितने ही शिक्षक और इन्स्पेक्टर फ़ौज में भरती हुए। इन्फ्लुयंज़ा का प्रकोप बढ़ने पर स्कूल और कालेज के विद्यार्थियों और अध्यापकों ने रोगियों की अच्छी सेवा-शुश्रूषा की। स्वयं-सेवकों में सबसे अधिक प्रशंसा-पात्र वही हुए। फिर भी इनके कारण विद्यार्थियों की संख्या घट गई। सब मिला कर शिक्षा पानेवालों की संख्या ७९,३६,५७७ है। गत पूर्व वर्ष की अपेक्षा इस साल ११,४९१ लड़के कम हो गये। जन-संख्या के हिसाब से यहाँ सैकड़े पीछे ३.२५ लोग शिक्षा पाते हैं।

ग़ैर सरकारी स्कूलों में ही विद्यार्थियों की संख्या घटी है—विशेष करके बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा में।

शिक्षा देनेवाली संस्थाओं की संख्या में फ़ी सैकड़ा १.७८ की वृद्धि हुई है, पर विद्यार्थियों की संख्या में सिर्फ़ सैकड़े पीछे ०.७३ की ही वृद्धि हुई है।

युद्ध के पहले और उसके बाद शिक्षा-विभाग में जितना व्यय किया गया है उसका विवरण नीचे दिया जाता है—

साल	गवर्नमेंट से प्राप्त	सर्वसाधारण से प्राप्त	कुल
१९१३-१४	५,१०,११,४९०	४,५२,१२,३८०	१०,०७,२३,८७०
१९१४-१५	६,३३,०२,७९२	४,५८,६७,७००	१०,९१,७०,४९२
१९१५-१६	६,२१,६८,९०४	४,८६,६०,३८५	११,०८,२९,२८९
१९१६-१७	६,१४,८०,४७१	५,१४,०२,५९७	११,२८,८३,०६८
१९१७-१८	६,४८,०१,६९०	५,३४.०७,४४७	११,८२,०६,१३७
१९१८-१९	७,१७,२६,२९२	५,८१,३६,७८१	१२,९८,६३.०७३

यद्यपि लोगों को गत वर्ष आर्थिक कष्ट रहा तथापि उच्च शिक्षा प्राप्त करने की लालसा से ख़र्च करने में उन्होंने सङ्कोच नहीं किया। इस साल फ़ीस द्वारा २१,१५,४५४ रुपये और अधिक वसूल हुए।

गत वर्ष गवर्नमेंट की ओर से तीस तीस लाख रुपये दो बार मिले। एक तो प्रारम्भिक शिक्षा के लिए और दूसरे कृषि और औद्योगिक शिक्षा के लिए।

गत वर्ष शिक्षा-प्रचार के लिए १,१६,५०,००० रुपये अधिक ख़र्च हुए। कुल १२,९८,६३,०७३ रुपये ख़र्च हुए। शिक्षा-संस्थाओं की संख्या भी अब बढ़ कर १,६२,३३० हो गई है। विद्यार्थियों की संख्या में अधिक वृद्धि नहीं हुई। सब मिला कर ७९,३६,५७७ लड़के शिक्षा पा रहे हैं। इनमें से ६६,२३,१४९ लड़के हैं और १३,१३.४२८ लड़-कियाँ। लड़कियों की संख्या में प्रायः पचास हज़ार की वृद्धि हुई है।

पौर्वात्य विषयों की शिक्षा के लिए अब १३ कालेज हो गये हैं; पहले से चार अधिक। उनमें ६६१ विद्यार्थी शिक्षा पा रहे हैं। बिहार और उड़ीसा में संस्कृत-शिक्षा का निरीक्षण करने के लिए एक

सुपेरिंटेन्डेंट की नियुक्ति हुई है। उनकी राय है कि 'टोलों' में संस्कृत-शिक्षा का प्रबन्ध अत्यन्त असन्तोषजनक है। औद्योगिक शिक्षा देने के लिए अब २७२ स्कूल हो गये हैं। उनमें १३,५२४ विद्यार्थियों को शिक्षा दी जाती है। इससे पहले सिर्फ़ २५७ स्कूल थे। सन्तोष की बात है कि औद्योगिक स्कूलों की कुछ तो संख्या बढ़ी। व्यापारिक शिक्षा के लिए ८२ कालेज और स्कूल हैं। उनमें विद्यार्थियों की संख्या ४,७६५ है। कृषि-शिक्षा की उन्नति के लिए शिमले में जून १९१७ में एक कानफ़रेन्स हुई थी। उसमें यह निश्चय हुआ था कि प्रत्येक प्रान्त में एक कालेज और कई स्कूल खोले जायँ। भारतीय सरकार ने उसके इस मन्तव्य को स्वीकार कर लिया है और इसे कार्यरूप में परिणत करने का भार प्रान्तीय सरकारों पर छोड़ दिया है। हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमानों में शिक्षा का प्रचार बढ़ा है। कुल १६,५६,५३६ मुसलमान लड़के शिक्षा पा रहे हैं।

नराधम।

(१)

अरे नराधम! त्रिविध पुरुष जग में होते हैं
तेरे सम क्या सभी अन्धतम में सोते हैं।
बिना किये सत्कार्य्य वदन से नहीं कहे जो
बिना स्वार्थ के कष्ट अन्य के लिए सहे जो॥
वह पुरुषोत्तम संसार में कहा गया है, जानना।
सुन कर पर के गुण-गान तू बुरा न मन में मानना॥

(२)

जो कहने पर करे, करे जो कह दे मुख से,
स्वार्थ-युक्त जो मनुज हरे पर के दुख, सुख से।
कभी स्वप्न में नहीं किसी की करे बुराई,
भेद-भाव को छोड़ मान ले सबको भाई।
रे अधम! उसे मध्यम पुरुष जग में कहना चाहिए।
सुन कर निज लक्षण पर तुझे यहाँ न रहना चाहिए॥

(३)

निज लक्षण को नीच, श्रवण कर सावधान हो।
जिसे श्रवण कर शीघ्र चूर्ण आत्माभिमान हो।
बहु प्रकार बहु बार कहे पर भी न करे जो,
जग में अपयश से न चित्त में तनिक डरे जो॥
जो स्वार्थ-हेतु पर लाभ को सदा नष्ट करता रहे।
फिर तू ही कह तो क्यों नहीं उसे नराधम जग कहे?॥

(४)

कर नीचों के कार्य व्यर्थ उत्तम बनता है
तेरे हाथों देख हुई दुखिया जनता है।
है तेरी अपकीर्त्ति विश्व के कोने कोने
कभी एक पल भी न सुजन पाते हैं सोने॥
यदि चाहे तू निज सुयश तो छोड़ कुटिलता को अभी।
रे अधम! रेणुमय कुण्ड में कमल न खिलता है कभी॥

(५)

सबको अपना समझ आत्म को विश्वमात्र का
पर तुझ से क्या कभी कार्य्य होगा सुपात्र का?
विश्व बीच जो उच्च कुलोद्भव नर होता है
न्याय, सत्य, सद्भाव उसी के उर होता है॥
तू कण्टक-कुल के कीच से नीच! हुआ उत्पन्न है।
तू पर धन, धाम, परस्व के हरने में व्युत्पन्न है॥

(६)

जो करके अन्याय अन्य के गुण हरता है
पर की रोटी छीन उदर को जो भरता है।
जो पर को कर दुखी चैन सब विध करता है
पर अपकृति के लिए जो न मन में डरता है॥
क्या ये लक्षण तुझ में न हैं, क्यों चुप है, कुछ बोल दे।
क्यों अन्ध बधिर सा है बना हृदय नेत्र को खोल दे॥

(७)

जो नर पर को गिरा स्वयं उत्थित होता है
पर को हँसता देख हृदय में जो रोता है।
अपने सिर के दोष अन्य के सिर मढ़ता है
पर को पीछे हटा आप आगे बढ़ता है॥
वह अधमराज सुन रे अधम! कभी गिरेगा आप भी।
निज पाप-जनित पर-शाप का कहीं पचा है ताप भी!

(८)

जो कहता है नीति घोर विश्वासघात को
खाकर भी जो शपथ पूर्ण करता न बात को ।
चले मराली चाल काक के कर्म करे जो
करे लोक-संहार अन्य की भूमि हरे जो ॥
सुन अधम ! आत्म-अपकीर्त्ति की जिसके हृदय न लाज है ।
वह इन्द्रासन पर भी रहे तदपि अधम-सिरताज है ॥

(९)

जो सशक्त को मित्र, शत्रु दुर्बल को जाने,
करे वधिक के कार्य साधु निज मन में माने ।
पर की इच्छा रोक करे जो निज मनमानी
ऐहिक सुख-लव-लीन बने तो भी जो ज्ञानी ॥
वह बर्बर-कुल उत्पन्न है नरवर हो सकता नहीं ।
रे अधम ! क्रोध करना नहीं, मेरी तो अनुमति यही ॥

(१०)

कर अमेध्य-आहार आत्म-उपचार करे जो
उपकारी के भी न साथ उपकार करे जो ।
धर्मनीति की ओट कपट-व्यापार करे जो
परदेशों को लूट देश का प्यार करे जो ॥
उस नर-पिशाच से दूर ही सबको रहना चाहिए ।
रे अधम ! बता तू ही उसे क्या क्या कहना चाहिए ॥

(११)

जो अपना ब्रह्मास्त्र समझता है खल छल को,
कल से निर्बल बीच दिखाता है निज बल को ॥
जो न रहे सन्तुष्ट निगल कर भी भूतल को ।
होता हो कृतकृत्य लड़ा कर जो पर-दल को ॥
वह नर-पिशाच है रे अधम ! उसे मनुज कहते नहीं ।
कह क्या तुझ में भी दोष ये अरे भरे रहते नहीं ?

(१२)

कूट-नीति के जाल बिछा कर सुचित रहे जो ।
करे क्रूरता आप अन्य को क्रूर कहे जो ॥
न्यायासन पर बैठ करे अन्याय सदा जो ।
दीनों के धन छीन बढ़ावे आप सदा जो ॥
जो दुखी जनों की जीभ भी शठ हिलने देता नहीं ।
उस अधमराज को चैन भी जग मिलने देता नहीं ॥

रामचरित उपाध्याय

मेघदूत में विज्ञान ।
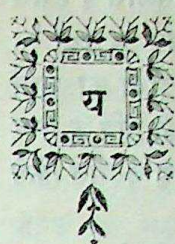
यह वैज्ञानिक युग है । यहाँ विज्ञान की महत्ता का वर्णन करना अनावश्यक है । क्योंकि आज-कल चारों ओर उसी की चर्चा है ; सर्वत्र उसके कौशल दिखाई पड़ते हैं । हमारे भारतवर्ष में कभी विज्ञान की चर्चा थी या नहीं, इसका निर्णय करना कठिन है । आर्य्यसमाजियों ने वेदों से कई वैज्ञानिक बातें ढूँढ़ निकाली हैं । पण्डित भीमसेन शर्म्मा ने भी अपने पत्र द्वारा वैदिक काल की कई वैज्ञानिक बातें सुनाई हैं । पर उनकी बातों पर लोगों को विश्वास नहीं होता । वे कहते हैं कि यदि वेद में विज्ञान है तो पाश्चात्य विज्ञान का प्रसार होने के पहले इन लोगों ने वेदों से विज्ञान की प्राचीनता क्यों न सिद्ध की ? ख़ैर, मैं भी वही साहस करता हूँ । मैं दिखलाना चाहता हूँ कि मेघदूत ऐसे छोटे ग्रन्थ में भी अनेक वैज्ञानिक बातें हैं । मैं यह नहीं कहता कि जैसे सिद्धान्त पहले थे वैसे ही आज भी हैं और प्राचीन तथा नवीन प्रक्रियायें एक सी हैं । तो भी मैं इतना अवश्य कहूँगा कि विज्ञान की बातों को प्राचीनों ने पौराणिक रूप दे दिया है, पर उनमें वैज्ञानिक तथ्य अवश्य हैं ।

मेघदूत के पाँचवें श्लोक में लिखा है "धूमज्योतिः सलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः" । इस पद में मेघ बनने की प्रक्रिया है । अर्थात् मेघ धुआँ, तेज, जल और हवा के संयोग से बनता है । कैसे बनता है, इसके विशेष विवरण की यहाँ आवश्यकता नहीं । महाकवि की इस बात को आधुनिक वैज्ञानिक विद्वान् भी मानते हैं । सम्भव है कि वे इसे सर्वांश में न मानें, किन्तु अधिकांश में इससे अवश्य सहमत होंगे । हमारे प्राचीन ग्रन्थों में भी इसका वर्णन है । पहले अधिकाधिक यज्ञ होते रहने से समय समय

पर वृष्टि अधिकता से होती थी। प्राचीन पुरुष यज्ञाभाव को वृष्ट्यभाव का कारण बतलाते हैं। मेघ के बनने में याज्ञिक धूम अर्थात् पवित्र पदार्थों का धुवाँ मेघ का साधक और विकृत पदार्थों का धुवाँ मेघ का बाधक है। मेघदूतोक्त बात की पुष्टि के लिए उपनिषदों और पुराणों के कुछ प्रमाण उद्धृत किये जाते हैं—

अग्नौ प्रास्ता हुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः॥
× × ×
अन्नाद् भवन्ति भूतानि पर्ज्जन्यादन्नसम्भवः।
यज्ञाद् भवति पर्ज्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः॥
× × ×
विवस्वानंशुभिस्तीक्ष्णैरादाय जगतो जलम्।
सोमे मुञ्चत्यथेन्दुश्च वायुना धीमयैर्यदि॥
नालैर्विक्षिपतेभ्रेषु धूमानलिनमूर्तिषु।
न भ्रश्यन्ति यतस्तेभ्यो जलान्यभ्राणि तान्यतः॥
अभ्रस्थाः प्रपतन्त्यापो वायुना समुदीरिताः।
संस्कारं कालजनितं मैत्रेयासाद्य निर्मलाः॥
× × ×

श्रीगोस्वामी तुलसीदास जी भी कहते हैं—

धूम-अनल-सम्भव सुनु भाई।
तेहि बुझाय घन पदवी पाई॥१॥
सोइ जल अनल-अनिल-संघाता।
होइ जलद जग-जीवन-दाता॥२॥
× × ×

मेघदूत के पन्द्रहवें श्लोक में लिखा है—"वल्मीकाग्रात्प्रभवति धनुः खण्डमाखण्डलस्य"। अर्थात् वल्मीक से इन्द्र-धनुष का टुकड़ा उत्पन्न हो रहा है। इन्द्र-धनुष सूर्य्य की किरणों के कारण बनता है। जब सूर्य्य पश्चिम में रहता है तब वह पूर्व की ओर उत्पन्न होता है और जब सूर्य्य पूर्व की ओर होता है तब वह पश्चिम की ओर दिखाई पड़ता है। वह तिरछी किरणों की प्रतिच्छाया है। दोपहर को वह नहीं दिखलाई पड़ सकता और न बिना बादल और वृष्टि के ही वह उदित हो सकता है। उसमें सात प्रकार के रङ्ग होते हैं।

इस पूर्वोक्त श्लोक-खण्ड का वल्मीक शब्द सन्दिग्ध है। वल्मीक शब्द के कई अर्थ हैं। इन अर्थों के आधार पर कई टीकाकारों ने कई प्रकार की बातें कही हैं। शब्दार्णव में वल्मीक शब्द का अर्थ लिखा है—बामलूर, अर्थात् बाँबी या दियकाँण (The top of ant-hill) और पर्वत की चोटी। "बामलूरे गिरेः शृङ्गे वल्मीकपदमिष्यते"। अन्यान्य कोषों में लिखा है—'वल्मीकः सातपो मेघः"। "वल्मीकः सूर्य्य इत्यपि"। श्रीजगदीशकृत "शब्दशक्तिप्रकाशिका" के अपादान-कारक प्रकरण में भी "वल्मीकः सातपो मेघः" लिखा है।

मल्लिनाथ बाँबी और आतपयुक्त मेघ से इन्द्र-धनुष का होना लिखते हैं। सुबोधा और सारोद्धारिणी टीका में लिखा है—"इन्द्रचापं किल वल्मीकान्तर्व्यवस्थितमहानागशिरोमणिकिरणसमूहात्समुत्पद्यते"। वल्लभ, सनातन, रामनाथ, भरत, हरगोविन्द, कल्याणमल्ल और अन्यान्य टीकाकार 'वल्मीकाग्रात्' का 'रामगिरिश्रृङ्गात्' अर्थ करते हैं। रामनाथ, वल्लभ आदि 'वल्मीकात्' का 'सूर्य्यात्' भी अर्थ करते हैं। 'वल्मीकाग्रात्' 'सातपमेघात्' यह अर्थ भी वल्लभ आदि टीकाकार लिखते हैं। 'वल्मीकः सातपो मेघः' 'वल्मीकः सूर्य्य इत्यपि' इनका पता कोषों में नहीं लगता। पर इन अर्थों से वैज्ञानिकता में बाधा नहीं पड़ती। रामगिरि का शिखर मान लेने में भी कोई बाधा नहीं। क्योंकि दूर से देखनेवाले ऐसा अनुमान कर सकते हैं। उच्च होने के कारण बाँबी और टीले से भी यही अनुमान हो सकता है। अन्यान्य अर्थ प्राचीनता से भरे हैं।

इन्द्र-धनुष के विषय में वराहमिहिर कहते हैं—"सूर्य्यस्य विविधवर्णाः पवनेन विघट्टिताः कराः साभ्रे। वियति धनुःसंस्थाना ये दृश्यन्ते तदिन्द्रधनुः॥"—

"केचिदनन्तकुलोरगनिःश्वासोद्भूतमाहुराचार्य्याः ॥
तद्याथिनां नृपाणामभिमुखमजयावहं भवति ॥"

× × × ×

चौवनवें श्लोक में कालिदास लिखते हैं "तान् कुर्वीथास्तुमुलकरकावृष्टिपातावकीर्णान्" अर्थात् पहाड़ी मृग जब तुम्हें बाधा पहुँचावें तब उन्हें करका (ओले) बरसा कर तितर बितर कर देना। इसके पहले, एक श्लोक में "तस्या एव प्रभवमचलं प्राप्य गौरं तुषारैः" अर्थात् जिससे गङ्गा पैदा हुई है उस हिमालय पर पहुँच कर........... इस वर्णन से विज्ञान की एक बड़ी मार्मिक बात निकलती है। इधर कालिदास ने कई श्लोकों में जल पीने और वृष्टि करने आदि का वर्णन किया है। परन्तु जब वे हिमालय की तराई में पहुँचते हैं तब जलवृष्टि न कराकर करका-वृष्टि कराते हैं। क्यों ? वे समझते हैं कि चारों तरफ़ हिमालय की बर्फ़ीली चोटियों से निकलते समय मेघ में तरल रूप से जल का रहना कभी सम्भव नहीं।

विज्ञान के सिद्धान्त से जल की तीन अवस्थायें होती हैं। जब शीत की अधिकता होती है तब जल बर्फ़ का आकार धारण करता है; जब उष्णता का सञ्चार होता है तब तरलावस्था में जल दिखलाई पड़ता है; और जब जल में अधिक ताप पहुँचता है तब वह जल भाफ़ (वाष्प) बन जाता है। इस सिद्धान्त को दिखलाने में कालिदास ने किसी बात की त्रुटि नहीं की। मेघ पहले यथास्थान जल बरसाता आया है, पर हिमालय में शीत की अधिकता से जमे हुए जल को करका रूप से बरसाता है। जल-विन्दुओं ने करका (Hail-stone) का आकार धारण किया है।

× × × ×

काले काले भवति भवतो यस्य संयोगमेत्य।
स्नेहव्यक्तिश्चिरविरहजं मुञ्चतो बाष्पमुष्णम् ॥

इससे भी विज्ञान की एक बात निकलती है। इसमें 'भवतः' मेघ के लिए और 'यस्य' रामगिरि के लिए आया है। इन दोनों के संयोग का वर्णन कालिदास ने बड़ी ख़ूबी से किया है। यदि दो मित्र परस्पर कुछ समय के बाद मिलें तो करुणा-मिश्रित प्रेम के वशीभूत होकर उनके नेत्रों से आँसू चलना स्वाभाविक है। पर इस स्वाभाविक वर्णन के साथ विज्ञान का भी कुछ अंश है। पहाड़ चार महीने की गर्मी से बहुत उत्तप्त हो जाता है। उस पर यदि मेघ थोड़ा जल बरसा दे तो भाफ़ निकलने लगती है। उत्तप्त वस्तु पर शीत के संयोग से भाफ़ बनती है। जाड़े के दिनों में प्रातःकाल जो कुहरा देख पड़ता है वह इसी वैज्ञानिक सिद्धान्त का निदर्शन है इस बात को कालिदास बड़ी बुद्धिमत्ता से व्यक्त करते हैं।

× × × × ×

विद्युद्गर्भः स्तिमितनयनां त्वत्सनाथे गवाक्षे।
वक्तुं धीरः स्तनितवचनैर्मानिनीं प्रक्रमेथाः ॥

इस पद्यार्थ का भावार्थ यह है कि जब तुम खिड़की पर जाकर बैठ जावगे तब मेरी पत्नी टकटकी बाँध तुम्हें देखने लगेगी। उस समय तुम अपनी प्यारी बिजली को गोद में छिपा कर मन्द मन्द गर्जनरूपी वचनों से उस मानिनी से कहना प्रारम्भ करना।

यह सर्वसम्मत वैज्ञानिक सिद्धान्त है कि बादल में बिजली होती है। जब दो बादल एकत्र होते हैं तब उनमें विद्युत्सञ्चार होता है। यदि किसी बादल में अधिक बिजली हुई तो वही दूसरे में चली जाती है। जब यह सञ्चालन-प्रक्रिया होती है तभी गर्जन होता है। जब गर्जन होता है तब विद्युत्स्फुरण भी अवश्य होता है। ये दोनों काम साथ ही साथ होते हैं।

यक्ष यह सोचता है कि यदि मेघ अपने गर्जनद्वारा बोलने का उपक्रम करेगा तो विद्युत्स्फुरण भी अवश्य ही होगा। इससे मेरी प्रिया की दृष्टि स्थिर होना सम्भव नहीं। जब उसकी दृष्टि स्थिर

न रहेगी तब समाचार सुनने में वह दत्तचित्त नहीं हो सकती। अतः यत्न पहले ही से मेघ को सावधान किये देता है कि भाई मेघ! तुम विद्युद्गर्भ हो जाना। अपने गर्जन के समय बिजली को अपने उदर में रोक रखना, छिपाये रहना ऐसा न हो कि उस समय बिजली चमक जाय। कहिए, कालिदास ने इस वैज्ञानिक सिद्धान्त को योग्यतापूर्वक व्यक्त किया है या नहीं।

× × × × ×

मेघदूत में ऐसी ही और वैज्ञानिक बातें हैं। घटा घिरने और घहराने पर गोबर-छत्ते निकलते हैं—"कर्तुं यच्च प्रभवति महीमुच्छिलीन्ध्रामवन्ध्याम्"। ठंढी हवा से गूलर पकते हैं—"शीतो वातः परिणमयिता काननोदुम्बराणाम्।" तेज़ हवा मेघों को इधर-उधर बखेर देती है। इससे मन्द मन्द हवा ही उनके लिए उपयुक्त है—"मन्दं मन्दं नुदति पवनश्चानुकूलो यथा त्वाम्"। मेघ में जल रहने से गुरुत्व और न रहने से लघुत्व आ जाता है—"तोयोत्सर्गद्रुततरगतिः......अन्तःसारं घन तुलयितुं नानिलः शक्ष्यति त्वाम्।" इत्यादि बातों को देखने से कौन कह सकता है कि मेघदूत में वैज्ञानिक बातें नहीं।

मेघ-सम्बन्धी मेघदूत के इने-गिने श्लोकों में इतनी वैज्ञानिक बातों को देख कर हम तो यह समझते हैं कि कालिदास विज्ञान के अनेक सिद्धान्तों से परिचित थे।

रामदहिन मिश्र

वज्रपात।

(१)

कैसा वज्रपात हाय! भारत-मही में हुआ,
परम प्रशस्त कीर्त्ति-यूप ध्वस्त हो गया।
घोर अन्धकार हुआ सूझता सुपन्थ नहीं,
वृद्ध बाल युवा हर एक त्रस्त हो गया।
पड़ा है तुषार मुरझाये हैं कमलमुख,
पस्त हौसले हैं दिल है शिकस्त हो गया।
आते ही अगस्त के अखण्ड अर्धरात्रि बीच
भारत-प्रताप भासमान अस्त हो गया॥

(२)

ले गया कराल काल नाविक प्रवीण छीन
जाति का जहाज़ मँझधार में डुबो गया।
व्याकुल बिलखते विचारते बने न कुछ
वामता से विधि की विषम विष बो गया।
सो गया सनेही भाग्य रो गया स्वभाग्य ही के
हाय हाय कैसा ये महा अनर्थ हो गया।
तिलक त्रिलोक का हमारा लोकमान्य हाय
भारत-वसुन्धरा का रत्न आज खो गया।

(३)

धारा बाँध आती अश्रु-धारा है अखण्ड आज
हो गया जिगर चोट खाके रेजा रेजा हाय।
बाल गङ्गाधर वीर तिलक वसुन्धरा का
लोकमान्य धीर भगवान ही का भेजा हाय।
सुरपति-सदन सिधारा जो न हारा कभी
मारा यमराज ने यों मर्म ही पै नेजा हाय।
काल-करबाल की कुटिलता कठोरता से
कट गया भारत का कोमल कलेजा हाय।

(४)

फट गया भाग्य आज स्वत्व का स्वतन्त्रता का
जीवन का एक-मात्र वही तो सहारा था।
लूट गया आर्य्य-अवनी का ताज तेजवन्त
छोड़ता सदैव जो प्रकाश-पुञ्ज-धारा था।
छूट गया नेता गुणी-गणमध्य अग्रगण्य
दीन देशवासियों की मुक्ति का जो द्वारा था।
टूट गया भारत-गगन का सितारा
वृद्धा माता का लकुट और मुकुट हमारा था।

(५)

बिललाते बम्बई बरार मध्यदेशवाले,
अङ्ग-वङ्गवासी अपङ्ग खूब रोते हैं।
आगरा, अवध और पञ्जनद देश दुखी
भूलता नहीं है दुख जागते कि सोते हैं।

खिन्न है विहार और मदरास है उदास,
भारत के प्रान्त लख अन्त जान खोते हैं।
कौन दे सहारा प्यारा भारत-तिलक नहीं
आशाबेलि सूखी है हताश हाय होते हैं।
[प्रताप में]
"सनेही"

विविध विषय।

१—ज़मींदारों और तअल्लुक़ेदारों की साम्पत्तिक अवस्था।

बहुत दिनों से लोग कहते चले आ रहे थे कि इस प्रान्त के ज़मींदार और तअल्लुक़ेदार दिन पर दिन ऋण के अथाह सागर में धीरे धीरे डूबते चले जा रहे हैं; यदि इनके उद्धार का उपाय शीघ्र ही न किया गया तो ये बेचारे किसी दिन रसातल को चले जायँगे। यह भनक सरकार के भी कान में पड़ी और बार बार पड़ी। तब उसे बड़ी चिन्ता हुई। प्रजापालक राजा को अपने करद भू-स्वामियों की यह दुर्दशा सुन कर चिन्ता होनी ही चाहिए। तब इस प्रान्त के वर्तमान लफ़्टिनेंट गवर्नर, सर हरकर्ट बटलर, ने कहा—इसका पता लगाना चाहिए कि यह अफ़वाह कहाँ तक सच है। उन्होंने अपने अफ़सरों से इस विषय की गोपनीय रिपोर्ट माँगी। यह इसलिए कि सबको न मालूम हो जाय कि मामला क्या है। जाँच केवल ज़मीन के उन मालिकों की साम्पत्तिक अवस्था की की गई जो सरकार को साल में ५ हज़ार या उससे अधिक माल-गुज़ारी देते हैं। इस जाँच का परिणाम सरकार ने अब प्रकट कर दिया है। अफ़वाह ठीक नहीं निकली। इसी से सरकार ने शायद इस मामले को गोपनीय रखने की ज़रूरत नहीं समझी। जो रियासतें कोर्ट आव् वार्ड्स के प्रबन्ध में हैं उनकी ३० सितम्बर १९१६ तक की सालाना रिपोर्ट की सरकार ने जो समालोचना की है उसी में इस जाँच का फल सर्व-साधारण को बता देने की कृपा उसने की है। इस जाँच से मालूम हुआ है कि इस प्रान्त की ९६ रियासतों में से

(क) ६१ फ़ी सदी को किसी का एक हब्बा भी देना नहीं

(ख) १९ फ़ी सदी क़र्ज़दार तो हैं, पर बहुत नहीं

(ग) १९ फ़ी सदी बहुत अधिक क़र्ज़दार हैं

(घ) ९ फ़ी सदी कोर्ट आव् वार्ड्स के अधीन हैं।

इससे यह ज़ाहिर हुआ कि ⅗ तो क़र्ज़ से एक-दम बरी और ⅖ क़र्ज़दार हैं। ख़ुशी की बात है जो सभी रियासतें क़र्ज़दार नहीं। जिन पर कुछ भी क़र्ज़ नहीं वे, आशा है, अपने काश्तकारों के साथ अच्छा सलूक करेंगी—उनके लगान में बार बार इज़ाफ़ा न करेंगी—और लखनऊ-विश्वविद्यालय के लिए जो चन्दा हो रहा है उसमें जी खोल कर चन्दा भी देंगी। रहीं मक़रूज़ रियासतें; सो उनको चाहिए कि वे फ़िज़ूलख़र्ची से बच कर अपना क़र्ज़ चुकता डालने की चेष्टा करेंगी।

पाँच हज़ार से कम मालगुज़ारी देनेवालों की माली हालत की जाँच सरकार ने शायद इसलिए नहीं की कि ऐसे लोग हज़ारों होंगे। उनकी जाँच में बहुत समय लगेगा और शायद नक़शे वग़ैरह तैयार करने में मिहनत भी बहुत पड़े। पर बड़े बड़े ज़मींदार और तअल्लुक़ेदार जैसे सरकार की प्रजा हैं वैसे ही छोटे छोटे ज़मींदार भी हैं। उनकी अवस्था की भी जाँच होनी चाहिए। सम्भव है ये लोग बड़े ज़मींदारों की अपेक्षा अधिक मक़रूज़ निकलें। माँ-बाप को अपनी सभी सन्तति की रक्षा करनी चाहिए—सबकी एक सी ख़बर रखनी चाहिए। हमारी तो हाथ जोड़ कर यह प्रार्थना है कि छोटे बड़े ज़मींदारों की जाँच की अपेक्षा दीन दुखिया किसानों और अन्य गृहस्थों की साम्पत्तिक अवस्था की जाँच की ही सबसे अधिक ज़रूरत थी। अगर ऐसी जाँच कभी हो तो सरकार को मालूम हो जाय कि इन लोगों के घरों में दारिद्र्यदेव कितना भीषण ताण्डव नृत्य कर रहे हैं, कितने क़र्ज़ में ये लोग डूबे हुए हैं, और कहाँ तक ये लोग प्रजा-वत्सल माननीय बटलर महाशय की दया के पात्र हैं। प्रान्त ही की नहीं, सारे देश की साम्पत्तिक सुदशा या कुदशा का दारोमदार इन्हीं पर है। इन्हीं से टका वसूल

करके छोटे बड़े ज़मींदार ऐश करते हैं और मालगुज़ारी देकर सरकारी ख़र्च चलाते हैं। जड़ में पानी न डाल कर—थाल्हे की घास न निकाल कर—पत्तियों को पोंछते बैठना कितना लाभदायक है, यह इतनी मोटी बात सर्व-साक्षी सरकार के कान में डालने की ज़रूरत नहीं।

२—अछूत जाति के लड़कों के लिए स्कूल।

हिन्दू-धर्म्म के अभिमानी महाशय मोची, कोली, पासी आदि नीच मानी गई जातियों के सम्पर्क से दूर रहते हैं। छू जाने पर नहाते हैं; कपड़े धो डालते हैं। अस्पृश्य-स्पर्शन का यह पातक दक्षिण में—विशेषकर मदरास-प्रान्त में—बहुत घोर समझा जाता है। वहां तो इन लोगों की छाया तक अस्पृश्य मानी जाती है। ऐसी दशा में इन बेचारों के बच्चों की शिक्षा का प्रबन्ध कैसे हो सकता है। और जातियों के लड़कों के साथ इनके लड़के नहीं बैठ सकते। पर बिना शिक्षा के मनुष्य में मनुष्यता कम, पशुता ही अधिक रहती है। इधर राजा का धर्म्म है कि वह अपनी सारी प्रजा का पालन सन्तानवत् करे। यदि वह इस धर्म्म का पालन करता है और सब जातियों के बच्चों को मदरसों में एक साथ पढ़ाने की चेष्टा करता है तो असन्तोष बढ़ता है—उच्च कुलाभिमानी कहते हैं, नीचों के लड़कों के साथ हम अपने लड़कों को न बैठने देंगे। इस विरोध को उत्पन्न न होने देने के लिए गवर्नमेंट ने अस्पृश्य जाति के बच्चों के लिए अलग मदरसे खोलने का निश्चय कर लिया है। इस निश्चय के अनुसार काम भी होने लगा है—किसी प्रान्त में अधिक मदरसे खुल गये हैं, किसी में कम। काम जारी है; आवश्यकतानुसार उसका विस्तार बढ़ रहा है। अपने प्रान्त की गवर्नमेंट ने भी कुछ ज़िलों में, परीक्षा के तौर पर, कुछ मदरसे खोले थे। उसका फल अच्छा हुआ है। इस कारण उसने अब इस काम को उन्नति देने की ठानी है। २४ जूलाई के गवर्नमेंट गैज़ट में अब उसने एक मन्तव्य प्रकाशित किया है। उसने लिखा है कि प्रत्येक ज़िले के डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की मदद करने के लिए वह तैयार है। जिस ज़िले में अस्पृश्य जातियों के लड़के काफ़ी हों वह ज़िला जगह जगह पर मदरसे खोल सकता है। ऐसे डिस्ट्रिक्ट बोर्डों के इन मदरसों के लिए ४०) महीने पर एक निरीक्षक (Supervisor) दिया जायगा। इसके सिवा मुदर्रिसों की तनख़्वाह और दूसरे ख़र्च के लिए भी गवर्नमेंट रुपया देगी। २० लड़के भी यदि मिल जायँगे तो मदरसा खुल सकेगा। अपर प्राइमरी दरजा पास कर के जो लड़के मिडिल स्कूलों में पढ़ने जायँगे उन्हें ६) महीना वज़ीफ़ा मिलेगा। १९२१-२२ और १९२२-२३ में जो बोर्ड जितने मदरसे खोल सके उसका नक़शा माँगा गया है। अब यदि बोर्ड कोशिश करें, और नीच मानी गई जातियों को शिक्षा के लाभ कोई अच्छी तरह समझा दे तो, बहुत सम्भव है, सरकार की इस उदारता के कारण, इन लोगों के लड़के थोड़ा बहुत पढ़-लिख कर मनुष्य हो जायँ। पर खेद है, इस अच्छे काम में अनेक बाधाओं की सम्भावना है। पहले तो ये लोग अपने लड़कों से मवेशी चरवाते और खेत खलिहान की रखवाली कराते हैं। मज़दूर रख नहीं सकते और मज़दूर समय पर मिलते भी नहीं। यदि ये किसी तरह अपने बच्चों को मदरसे भेजने को राज़ी भी हो जायँ अथवा भेज भी सकें तो भी कहीं कहीं कुछ कठिनाइयां अवश्य उपस्थित होंगी। इनकी मूर्खता से इस समय अनेक उदार-चरित लोग बड़े बड़े फ़ायदे उठा रहे हैं। इनके पढ़-लिख जाने पर उनके ये फ़ायदे यदि बिलकुल ही न जाते रहेंगे तो कम ज़रूर हो जायँगे। अतएव ये लोग इनकी शिक्षा-प्राप्ति में विघ्न डाले बिना न रहेंगे। तथापि यदि बोर्ड दृढ़तापूर्वक इनकी सहायता करने पर कमर कसें और अपने सुपरवाइज़र के द्वारा इन्हें शिक्षा के लाभ समझावें तो धीरे धीरे कामयाबी होने में सन्देह नहीं।

३—१९२१ ईसवी की मुर्दुमशुमारी।

हर दस वर्ष बाद मर्दुमशुमारी होती है। पिछली मर्दुमशुमारी १९११ में हुई थी। अगली १८ मार्च १९२१ की रात को होगी। जे० टी० मार्टन साहब, आई० सी० एस०, सारे हिन्दुस्तान के लिए मर्दुमशुमारी के कमिश्नर नियत हुए हैं। आक्टोबर १९१९ से ही उन्होंने अपना दफ़्तर खोल दिया है। इस काम के लिए हर सूबे में एक एक अफ़सर अलग नियत हुआ है। प्रारम्भिक काम शुरू हो गया है। फ़ार्म तैयार हो कर छप भी चुके हैं। शुमारकुनिन्दा लोगों को जो किताबें मिलेंगी उनके नमूने भी गैज़ट आव् इंडिया के साथ बँट चुके हैं। इन फ़ार्मों और किताबों के सम्बन्ध में गवर्नमेंट ने १४ जून को शिमले से

एक मन्तव्य प्रकाशित किया है। उसमें लिखा है कि इन फ़ार्मों वग़ैरह की ख़ानापुरी प्रायः उसी तरह की जायगी जिस तरह १९११ में की गई थी। पर इस दफ़े कुछ विशेषता होगी। वह यह—सरकारी हुक्म है कि ईसाई धर्म्म के अनुयायियों के सारे फ़िर्क़ों के नाम तो दर्ज किये जायँ, पर हिन्दू-मुसलमानों के नहीं। किसी किसी सूबे में यदि ज़रूरत समझी जाय तो मुसलमानों के शिया और सुन्नी भेद बता दिये जायँ, पर और नहीं। इसी तरह हिन्दुओं में जो फ़िर्क़े सनातन-धर्म्म के अनुयायियों से बिलकुल ही अलग हो गये हैं वे, ज़रूरत समझी जाय तो, अलग दिखा दिये जायँ। इसके आगे इस धर्म्म के नाना सम्प्रदायों के उल्लेख की ज़रूरत नहीं। इस आज्ञा या सङ्केत के अनुसार आर्य्यसमाजी और ब्राह्मो लोगों की गणना शायद अलग हो सकेगी, पर हमारे अन्य भाई—रामानन्दी, कबीरपन्थी, गोस्वामी आदि अपनी गिनती कराने के लिए बहुत करके टापते ही रह जायँगे। सो भाई, "शुभस्य शीघ्रम्"। जिसे जो कुछ कहना हो, जल्दी कहे; अर्ज़ी-पुर्ज़ा लगाने से न चूके!

नक़शे के तेरहवें ख़ाने में भाषा (ज़बान) का विवरण रहेगा। सरकार का हुक्म है कि इसकी ख़ानापुरी करने में तूलतवील करना अच्छा नहीं। लिपि के विषय में विशेष तफ़सील देने से भी कुछ लाभ नहीं। जिसकी जो भाषा उसकी वही लिपि। सरकारी हिदायतों में यह नहीं लिखा कि कौन किस लिपि में लिख सकता है, यह भी बतलाया जाय। सरकार का कथन है कि सिवा संयुक्त-प्रान्त के अन्य प्रान्तों में इस प्रकार का भेद बताना बहुत ही कम महत्त्व रखता है। संयुक्त-प्रान्त में भी पिछली दफ़े इस भेद-भाव का विवरण, सरकार की दृष्टि में, बनावटी था। बात यह कि सरकार की समझ में इस सम्बन्ध में लोगों ने असलियत छिपाई थी—नागरी के बदले उर्दू और उर्दू के बदले नागरी लिपि लिख दी थी या लिखा दी थी। तथापि सरकार की आज्ञा है कि प्रान्तिक गवर्नमेंट यदि मुनासिब समझे तो लिपि का यह भेद भी दर्ज करा दे। वक़्त बहुत कम रह गया है और नागरी लिपि के जाननेवालों की अलग गणना होना बहुत ज़रूरी है। अतएव बिना विलम्ब गवर्नमेंट को इस विषय में सत्परामर्श देना चाहिए। नहीं तो पीछे हाथ मलते रह जाना पड़ेगा और "हिन्दुस्तानी" का जयजयकार हो जायगा।

४—ताड़-पत्र पर लिखी हुई सबसे पुरानी पुस्तकें।

जर्मनी में प्राचीन वस्तुओं और प्राचीन पुस्तकों की ख़ूब खोज होती है। पन्द्रह बीस वर्ष की बात है, कुछ खोज करनेवाले तुर्किस्तान पहुँचे। वहाँ एक जगह कूचा है। उसके पश्चिम, कुछ दूर पर, एक चीनी गुहा-मन्दिर में डाक्टर वान लीकाक को ताड़-पत्र पर लिखी हुई कुछ पुस्तकें मिलीं। उन्हें वे अपने साथ ले गये। ये पुस्तकें खण्डित नाटक हैं। कई हैं। बौद्ध धर्म्म के अनुयायी विख्यात विद्वान् अश्वघोष के लिखे हुए हैं। ये वही अश्वघोष हैं जिनका महाकाव्य—बुद्धचरित—इतना प्रसिद्ध है। बर्लिन-विश्वविद्यालय के अध्यापक वान लूडर्स ने इन नाटकों का सम्पादन करके प्रकाशित किया है। आपने कई ताड़पत्रों के फ़ोटो भी दिये हैं और अपनी विद्वत्तापूर्ण भूमिका में अनेक ज्ञातव्य बातों का उल्लेख किया है। बुद्धघोष ईसा के बहुत पहले हो गये हैं। अतएव जान पड़ता है, ये नाटक अब तक प्राप्त हुए संस्कृत के नाट्य-साहित्य में सबसे अधिक पुराने हैं। इनमें भी संस्कृत के साथ शौरसेनी, मागधी और अर्द्ध मागधी प्राकृत-भाषाओं का प्रयोग हुआ है। पर ये भाषायें उन भाषाओं के पुराने रूप हैं जो पीछे के रचे हुए नाटक ग्रन्थों में पाई जाती हैं। एक नाटक में बुद्धि, धृति और कीर्ति भी पात्र रूप में प्रवर्तित की गई है। एक और नाटक में बुद्ध, मौद्गलायन और कौण्डिन्य को रङ्गमञ्च पर उतरना पड़ा है। इससे सूचित है कि सदाचार और बौद्ध धर्म्म के सिद्धान्तों के प्रचार के लिए अश्वघोष ने इनकी रचना की है। जिस विदूषक के बिना संस्कृत-नाटक नीरस मालूम होते हैं उसकी भी अवतारणा अश्वघोष ने की है। इन नाटकों का प्रकाशन जर्मनी में हुए कोई १० वर्ष हुए। पर इसकी ख़बर अब कहीं भारतवर्ष के पुरातत्त्वप्रेमियों को हुई है। हम इस विषय में माडर्न रिव्यू के एक "Epigraphist" के ऋणी हैं।

५—भारतवर्ष की भाषायें।

मुद्दत से विलायत में बैठे हुए डाक्टर ग्रियर्सन इस देश की भाषाओं की जांच पड़ताल कर रहे हैं। आपकी

जाँच का फल मोटी मोटी कई जिल्दों में प्रकाशित हो चुका है। ये जिल्दें सरकारी दफ़्तरों में पड़ी पड़ी सड़ रही हैं। शायद ही इनसे कभी कोई लाभ उठाता हो। क़ीमत इनकी ख़ूब डट कर रक्खी गई है, क्योंकि ख़र्च भी इन पर ख़ूब हुआ है। इस कारण, इन बातों से दिलचस्पी रखनेवाले मध्यवित्त के अनेक लोग इन्हें मोल नहीं ले सकते।

भाषाओं की जांच का यह काम अब समाप्तप्राय है। इस बहुत बड़े ग्रन्थ की आठ जिल्दें तो पहले ही निकल चुकी थीं। युद्ध समाप्त होने पर नवीं जिल्द भी निकल गई। इसके २ खण्ड हैं। इनमें पश्चिमी हिन्दी, पञ्जाबी और पहाड़ी भाषाओं का विवरण और उनके नमूने हैं। दसवीं जिल्द छप रही है। उसमें ईरानी भाषाओं का वर्णन रहेगा। शेष रही ग्यारहवीं जिल्द, सो वह भी लिखी जा चुकी है और दसवीं जिल्द के छप जाने पर छापेख़ाने के सिपुर्द कर दी जायगी। इस अन्तिम जिल्द में उन भाषाओं पर बहस की जायगी जिसे अँगरेज़ी में गिप्सी (Gipsy) कहते हैं। गिप्सी वे लोग कहाते हैं जो अपने बाल-बच्चे और जानवर लिये हुए इधर-उधर घूमा करते हैं। आज यहाँ हैं, कल वहाँ। इन्हें ख़ानाबदोश कहना चाहिए। इनकी भाषायें या बोलियाँ बड़ी ही विलक्षण हैं। इनको जाननेवाले बहुत ही कम हैं। इन लोगों की भाषा की माया यही जान सकते हैं। पर ग्रियर्सन साहब अब इनकी गुप्त बोलियों को भी अपने ज्ञानालोक से आलोकित कर देंगे। डाक्टर साहब की जांच का निष्कर्ष यह है कि भारत में १७९ भाषायें और ५४४ बोलियां बोली जाती हैं। उनका विवरण इस प्रकार है—

नाम	भाषायें	बोलियाँ
मान-खेर	१	३
मुण्डा	६	११
स्यामी-चीनी	३	४
तिब्बती-बर्म्मी	११३	८२
द्राविड़ी	१६	२३
ईरानी	८	३५
दारदी (Dardic)	१३	२२
हिन्दू-आर्य्य (Indo-Aryan)	१७	३४५
जिनका कोई विभाग नहीं किया जा सकता	२	१९
कुल	१७९	५४४

अपनी हिन्दी हिन्दू-आर्य्य भाषाओं की श्रेणी के अन्तर्गत है। ज़रा इस श्रेणी की भाषाओं की शाखा-प्रशाखाओं—बोलियों—की संख्या तो देखिए। कुछ ठिकाना है, ३४५! जहां तक हमें ज्ञात है, डाक्टर साहब के इस श्रेणी-विभाग और बोली-विभ्राट् की आज तक किसी हिन्दीदां ने विस्तृत आलोचना करके अपनी सम्मति नहीं दी।

६—सफ़ाई और तन्दुरुस्ती के महकमे की रिपोर्ट।

यह रिपोर्ट हर साल निकलती तो है, पर बहुत देर से निकलती है। पिछले साल की रिपोर्ट कोई ७ महीने बाद कहीं अब निकली है। इसे देखने से अनेक बातें ज्ञात होती हैं। उनमें से जन्म-मरण और बीमारियों के लेखे को प्रधान समझना चाहिए; क्योंकि इस लेखे से अपने प्रान्त की सुदशा या दुर्दशा का बहुत कुछ पता चलता है। प्लेग की बीमारी बिलकुल नई बीमारी है। उसकी कृपा से आज तक करोड़ों भारतवासियों ने जान से हाथ धो डाले हैं। इस महायुद्ध में जितने लोग अब तक काम आये हैं उतने से भी अधिक लोग इस देश में इस बीमारी से यमालय को जा पहुँचे हैं। इस प्रान्त में इस बीमारी ने कितने मनुष्यों का बलिदान लिया, यह लेखा, सिर्फ़ पिछले ६ वर्षों का, नीचे दिया जाता है—

१९१४—६९,५६८
१९१५—५०,६४६
१९१६—३९,५६२—१,८५,७७६
१९१७—१,०७,८००
१९१८—१,४८,६४१
१९१९—१४,३३१—२,७०,७७२

४,५६,५४८

देखिए, सिर्फ़ ६ साल में ४½ लाख से भी अधिक आदमियों ने अपनी इहलीला समाप्त कर दी। १९१७

और १८ में तो इस बीमारी ने बड़ा ही ग़ज़ब ढाया। १९१७ में एक लाख और १९१८ में डेढ़ लाख के लगभग लोगों की जान गई। हां, पिछले साल इसका प्रकोप कम रहा। ईश्वर करे, अब इसकी इसी तरह कमी होती जाय। पर कैसे आशा करें, वह कम हो जायगी। १९१६ में इसने ३९ हज़ार ही से कुछ अधिक नरनाश किया था। पर दूसरे ही साल, १९१७ में, उससे लगभग तिगुने आदमियों की आहुति इसकी विषम वह्नि में पड़ गई।

रिपोर्ट के साल १२,१६,४६७ बच्चे उत्पन्न हुए। पर मरे कितने आदमी? १९,५१,६६२—अर्थात् जितने पैदा हुए उतनों से ४३,५१,१६५ अधिक मरे! मतलब यह हुआ कि प्रान्त की आबादी इतनी कम हो गई। यही बात दूसरी तरह से इस प्रकार कही जा सकती है कि फ़ी एक हज़ार आदमियों पीछे ३२·३९ बढ़े और ४१·६९ घटे! वृद्धि कम, ह्रास अधिक!

इस बढ़े हुए ह्रास का विशेष कारण बच्चों की मृत्यु है। बेचारे बच्चे बहुत अधिक मरते हैं। फ़ी एक हज़ार पीछे २५३ बच्चे मर जाते हैं। शिव! शिव! कारण ग़रीबी, अज्ञान, गन्दगी और माता-पिता के कुसंस्कार के सिवा और क्या हो सकता है।

दिल्लगी तो यह कि जहां म्युनीसिपेलिटी है—जहां सफ़ाई और तन्दुरुस्ती क़ायम रखने के लिए बड़े बड़े उपाय किये जाते हैं—वहाँ, कहीं कहीं, देहात से भी अधिक मौतें होती हैं। उदाहरण के लिए फ़ी एक हज़ार आदमियों पीछे वृन्दावन में ८९, बलरामपुर में ७१ और कानपुर में ६३ आदमी मर गये। जब तक शिक्षा का यथेष्ट प्रचार न होगा, जब तक लोगों को पेट भर खाने को न मिलेगा, और जब तक शहरों की सफ़ाई आदि का काफ़ी प्रबन्ध न होगा तब तक मौत महारानी अपना कर कम करनेवाली नहीं।

त्रिकाल स्नान नहीं, तो त्रिकाल-सन्ध्या करने की विधि का निर्देश करनेवाले हिन्दू लोग, जान पड़ता है, मौत से बिलकुल नहीं डरते। मुसलमान यदि हज़ार पीछे ३५, ईसाई ५ और दूसरे धर्म्मों के अनुयायी ८ मरते हैं तो वे खुशी खुशी ४३ मर जाते हैं। वे जानते जो हैं कि—जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च। क्या डर जो मौत आ गई! मर कर नया जन्म धारण करेंगे!! पुराने—जीर्ण शीर्ण—शरीर के न रहने का क्या सोच!!!

७—ट्रावनकोर के नये दीवान।

माइसोर और बरोदा की तरह दक्षिण का ट्रावनकोर राज्य भी उन्नतिशील है। वाणिज्य-व्यवसाय तथा शिक्षा में उसने बड़ी उन्नति की है। और और विषयों में भी वह इस देश की सैकड़ों रियासतों से बहुत आगे है। वहां के नरेश ने जन-समुदाय और राज्य के कर्म्मचारियों की एक

ट्रावनकोर के नये दीवान, राव-बहादुर टी० राघवैय्या, बी० ए०।

कार्यकारिणी मण्डली भी स्थापित कर दी है। इस मण्डली में प्रजापक्ष के नेताओं को बहुत कुछ कहने सुनने का अधिकार प्राप्त है। उन्हीं की सलाह से बड़े बड़े राजकीय काम होते हैं। सलाह उनकी मानी जाय या न मानी जाय, ली अवश्य जाती है। इस राज्य के दीवान अर्थात् प्रधान अमात्य प्रायः सदाही अनुभवी, विद्वान् और राजकार्यपटु सज्जन होते आये हैं। एम० कृष्ण नेयर, सी० आई० ई० अब तक इस पद पर थे। अब वे इससे अलग हुए हैं। उनकी जगह अब मिली है—राव-बहादुर टी० राघवैय्या, बी० ए० को। आप अनन्तपुर के कलेक्टर के पद से ट्रावनकोर गये

हैं। राघवैय्या महाशय का जन्म १८७२ ईसवी में हुआ था। बी० ए० होकर आप १८९३ ईसवी में मदरास-प्रान्त की प्राविंशल सरविस में भरती हुए। कई ज़िलों में आपने डिवीज़नल अफ़सर का काम किया। कोई १५ वर्ष तक भिन्न भिन्न प्रकार के काम आप करते रहे। जिस ज़िले में गये, सब लोग आपसे ख़ुश रहे। चार वर्ष तक आपने मदरास कार्पोरेशन के रेविन्यू आफ़ीसर का भी काम बड़ी नामवरी के साथ किया। कुछ समय तक आपने इस कार्पोरेशन के चेयरमैन (अध्यक्ष) के पद को भी अलङ्कृत किया। १९१० में आप राव-बहादुर बनाये गये और रेवेन्यू बोर्ड के असिस्टेंट सेक्रेटरी नियत हुए। इसके अनन्तर कई साल तक आप कई ज़िलों में डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट और कलेक्टर के आसन पर आसीन रहे। हाल में आप अनन्तपुर के कलेक्टर थे। वहीं से ट्रावनकोर पधारे हैं। ऐसे कारपरदाज़, तजरुबेकार और ऊँची शिक्षा पाये हुए लोगों को जो राजा अपना प्रधान मन्त्री नियत करता है उसके राज्य की उन्नति होनी ही चाहिए।

८—परलोकवासी बाबू भूतनाथ पाल।

बाबू भूतनाथ पाल कलकत्ते के नामी व्यवसायी श्रीयुत बट्टो कृष्टो पाल के पुत्र थे। उनका जन्म १८६६ में हुआ था। उनके पिता की, उस समय, आर्थिक दशा अच्छी न थी। पर वे थे बड़े उद्योगी पुरुष। अपने ही पुरुषार्थ से उन्होंने १८५१ में एक दवाख़ाना खोला जो आज-कल बी० के० पाल एंड को० के नाम से प्रसिद्ध है। १८८२ में, सोलह ही वर्ष की अवस्था में, बाबू भूतनाथ पाल अपने पिता की सहायता करने लगे। आरम्भ में उन्हें बड़ी कठिनाई हुई। पर वे उद्योग करते ही गये। उनकी उन्नति होने लगी। कुछ समय बाद उनका काम इतना बढ़ गया कि उसके लिए उन्हें बानफील्ड लेन में एक बड़ा भारी मकान लेना पड़ा। पर वह भी पर्याप्त न हुआ। इसलिए उन्हें फिर मकान बढ़वाना पड़ा। आज-कल उनका कारख़ाना कोई डेढ़ लाख फुट ज़मीन पर है। सात बड़े बड़े मकान हैं। शोभा बाज़ार स्ट्रीट और बानफील्ड्स् लेन में जो दो बड़े बड़े मकान हैं वे बड़े ही भव्य हैं। यह सब बाबू भूतनाथ पाल के उद्योग का फल है।

बाबू भूतनाथ पाल अपने व्यवसाय में बड़े निपुण थे। उसकी उन्नति के लिए वे नये नये उपाय सोचा करते थे। १९१० में उन्होंने वनस्पति-शास्त्र में निपुण एक वैज्ञानिक को इस काम पर नियुक्त किया कि वह उत्तरी भारत में भ्रमण कर के देखे कि दवाओं के लिए कौन कौन पौधे उपयुक्त हो सकते हैं। तभी से बेलाडोना, पोडोफिक्स, कोलोसिन्थ आदि तैयार करने के लिए यहीं की चीज़ें काम में आने लगीं। १९१२ में इसी के लिए एक बड़ी भारी प्रयोगात्मक विज्ञानशाला (Research Laboratory) स्थापित हुई। अब तो उसका भी काम ख़ूब बढ़ गया है।

बाबू भूतनाथ को अपने व्यवसाय ही की चिन्ता नहीं थी, उन्हें देश-हित का भी ख़ूब ख़याल था। अच्छे कामों में व्यय करने में वे सङ्कोच न करते थे। उनकी ही वदान्यता से शिवपुर में एक हाई स्कूल और बेनी टोला में दो लोअर प्राइमरी स्कूल स्थापित हुए। बर्दवान और पूर्व बङ्गाल के दीन दुखियों के लिए उन्होंने ख़ूब दान दिया। रामकृष्ण-सेवाश्रमों की भी उन्होंने अच्छी सहायता की।

सार्वजनिक कार्यों में वे बड़े उत्साह से सम्मिलित होते थे। वे बङ्गाल नेशनल चेम्बर आव् कामर्स के मेम्बर थे। उसमें उन्होंने अच्छा काम किया। इसके सिवा एन्टीसेपटिक ड्रेसिङ्ग कम्पनी लिमिटेड, बङ्गाल पाटेरीज लिमिटेड और कलकत्ता सोपवर्क्स लिमिटेड के वे डाइरेक्टर थे। इन सबकी उन्नति के लिए वे सदैव यत्न करते रहे।

खेद है, ऐसे देशहितैषी सज्जन का गत १४ मई को देहान्त हो गया।

९—सर शापुरजी बरूचा।

संसार में लोग स्वार्थ-सिद्धि के लिए सभी कुछ किया करते हैं। जो कीर्ति-लोलुप होते हैं वे कीर्ति ही की इच्छा से पर-सेवा-व्रत-धारण करते हैं। कुछ अपने कृत्यों से समाज में गौरवान्वित होने के लिए उद्योग करते हैं। कुछ अपनी क्षमता की वृद्धि के लिए ही प्रयत्न करते हैं। निस्स्वार्थ भाव से सेवा करनेवाले कम होते हैं। परन्तु ऐसे ही लोगों से संसार का यथार्थ में कल्याण होता है। अपने जीवन-काल में वे जो कुछ करते हैं उससे तो संसार का कल्याण-साधन होता ही है, अपनी मृत्यु के बाद भी वे एक ऐसा अक्षय्य आदर्श छोड़ जाते हैं जिसका अनुकरण

करके अन्य लोग भी पर-सेवा में निरत होते हैं। खेद है, अभी हाल में, एक ऐसे ही सज्जन का देहावसान हो गया। उनका नाम था सर शापुरजी बरूचा।

सर शापुरजी भारतवर्ष के प्रसिद्ध व्यवसायी थे। उन्होंने धन और यश दोनों अर्जित किये। पर, रहे वे सर्वदा निस्पृह। देखा गया है कि जो लोग अपनी शक्ति से संसार में उच्च स्थान प्राप्त करते हैं उन्हें इसका गर्व होता है। पर सर शापुरजी को अभिमान ज़रा भी नहीं छू गया था। आरम्भ में उनकी अवस्था हीन थी। उन्हें विपत्ति भी खूब सहनी पड़ी। पर वे अपनी इस अवस्था से खिन्न

सर शापुरजी बरूचा।

कभी नहीं हुए। इसी से हम उनके हृदय की उच्चता का अनुमान कर सकते हैं।

सर शापुरजी का जन्म भड़ोच में, सन् १८४६ में, हुआ था। वहीं उन्हें प्रारम्भिक शिक्षा भी मिली। उनके पिता वहीं व्यवसाय करते थे। जब शापुरजी ६ वर्ष के थे तभी उनके पिता की मृत्यु हो गई। इसके चार ही दिन बाद शापुरजी के भाई भी चल बसे। तब इनके लिए कोई भी अवलम्ब न रहा। इनकी विधवा माता पर ही सब भार पड़ा। कुछ लोगों ने सहायता करनी चाही, पर माता ने किसी की भी सहायता स्वीकार न की। उसने घर का सब सामान बेच दिया और अपने तीन बच्चों को लेकर वह बम्बई चली गई। उसने दूसरों के घर काम-काज करके अपने बच्चों का पालन पोषण किया और उन्हें शिक्षा भी दी। यह समय उस साध्वी ने जिस तरह व्यतीत किया, इसका वर्णन शापुरजी ने स्वयं किया है—

"किसी ने गुजराती में मेरा जीवनचरित लिखते हुए कहा है कि मैं सड़क के लेम्पों के नीचे बैठ कर बड़ी रात तक पढ़ा करता था। परन्तु पढ़ने का ऐसा सौभाग्य मुझे कभी प्राप्त नहीं हुआ। उस समय तो हम लोगों को अपने पेट की ही चिन्ता थी। मैं अपनी दो बहिनों के साथ रात को बड़ी देर तक कपड़ा सिया करता था जिससे सुबह तक कपड़े तैयार हो जायँ। स्कूल में ही मुझे पढ़ने का समय मिलता था। जब मैं १७ वर्ष का हुआ तब मैंने माँ के रहने लायक़ घर बना लिया। १० साल तक उसने हम लोगों के लिए कितना कष्ट सहा, इसका ख़याल करके मैं कितने ही बार, अकेले में, रोया हूँ। उसकी मृत्यु के बाद उसके सन्दूक़ में मेरे मृत भाई के कपड़े, बड़ी सावधानी से तह किये हुए, मिले। मेरा जीवन ही ऐसा व्यतीत हुआ है कि मैं दूसरों की विपत्ति का अच्छी तरह अनुभव कर सकता हूँ।"

कुछ समय के बाद शापुरजी को एशियाटिक बैंकिंग कारपोरेशन (Asiatic Banking Corporation) में एक जगह मिल गई। उस समय बम्बई के नामी धनिक प्रेमचन्द रायचन्द का बड़ा भारी प्रभाव था। सौभाग्य से शापुरजी पर उनकी कृपा-दृष्टि हो गई। तब से शापुरजी की उन्नति होने लगी। फिर तो वे ऐसे बढ़े कि प्रेमचन्द रायचन्द के सबसे बड़े प्रतिद्वन्द्वी हो गये। उन्होंने तिलोकचन्द के साझे में व्यवसाय किया और थोड़े ही समय में उनकी अच्छी प्रसिद्धि हो गई। प्रेमचन्द के बाद बम्बई के दलालों के वही नेता हुए। पर सिर्फ़ दलाली के काम में उनका जीवन व्यतीत नहीं हुआ। उन्होंने रुई के व्यवसाय में भी अच्छी उन्नति की। उनके उद्योग से कितने ही पुतलीघर चल निकले। प्रसिद्ध व्यवसायी ताता को भी उनकी सहकारिता से कई कामों में अच्छी सफलता हुई।

शापुरजी की उदारता तो विख्यात है ही। उन्होंने

कितने ही विपद्ग्रस्तों का उद्धार किया और कितने ही निस्सहायों को आश्रयप्रदान किया। शापुरजी को आडम्बर ज़रा भी पसन्द न था। वे अपनी प्रसिद्धि न चाहते थे। न जाने उन्होंने कितने लोगों की सहायता गुप्त रीति से की है।

अँगरेज़ी में एक कहावत है—कीर्ति छाया के समान है। जो उसे पकड़ना चाहते हैं उनसे तो वह दूर भागती है। पर जो उसकी ओर देखते तक नहीं उनके पीछे पीछे है। शापुरजी ने कभी कीर्ति की इच्छा से काम नहीं किया, पर कीर्ति ने उनका साथ कभी नहीं छोड़ा।

१०—क्या स्वप्नावस्था में आत्मा शरीर छोड़ जाती है?

पीअरसन्स मेगज़ीन नामक मासिक पुस्तक की गत अप्रेलवाली संख्या में एक कहानी निकली है। उसमें लेखक ने यह बतलाने की चेष्टा की है कि स्वप्नावस्था में कभी कभी आत्मा शरीर को छोड़ कर बाहर निकल जाती है। इस पर उक्त पुस्तक के सम्पादक महोदय ने यह विज्ञापन दिया कि जो लोग अपना ऐसा ही अनुभूत वृत्तान्त लिख भेजेंगे उन्हें वे १० पौंड पारितोषिक देंगे। यह पारितोषिक डब्ल्यू० हेमले नामक एक सज्जन को निम्नलिखित वृत्तान्त भेजने पर मिला।

हेमले साहब का कहना है कि एक शनिवार के दिन मध्याह्न-काल में भोजन करके वे अपने कमरे में पलँग पर आराम करने लगे। थोड़ी ही देर में उन्हें नींद आ गई। फिर वे जाग पड़े। उठ कर उन्होंने घड़ी निकाल कर देखा तो ५ बजने में १० मिनिट थे। तब वे चाय पीने के लिए तैयार हुए। खिड़की खुली हुई थी। बाहर देखा तो बाय स्कौट्स (बालचरसंघ) के तीन लड़के सड़क पर खड़े थे। इतने में उनकी दृष्टि अपने पलँग पर गई। वहाँ उन्होंने देखा कि वे ख़ुद लेटे हुए हैं। यह देख कर उन्हें भय भी हुआ और आश्चर्य भी। इतने में उन्होंने चाय पीने का ख़याल किया और बिना हिले ही रसोईघर में पहुँच गये। वहाँ उनकी बहन चाय बना रही थी, पर उसने उनकी ओर देखा तक नहीं। तब तो घबरा कर वे फिर अपने कमरे में आये। वहाँ देखा कि पलँग पर उनका जो शरीर था वह प्राणहीन मालूम होता था। तब उन्हें यह विश्वास हो गया कि वे मर गये। कुछ देर बाद उनका वह शरीर फिर जाग पड़ा। बाहर वैसे ही तीन लड़के सड़क पर खड़े हुए थे। रसोई घर में सब चीज़ें वैसी ही थीं जैसी कि उन्होंने पहले देखी थीं। घड़ी देखी। उसमें पाँच बजने में आठ मिनट थे।

११—शाही ज़माने के प्रसिद्ध ऐतिहासिक पुरुष राजा रघुनाथ बहादुर।

राय रायान राजा रघुनाथ बहादुर ने शाहेजहाँ और औरङ्गज़ेब के शासनकाल में बड़ी प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। इनकी गणना प्रसिद्ध उमराओं में थी। सबसे पहले इन्हें नायब का पद मिला। उस पद पर रह कर इन्होंने अच्छा काम किया। इसी से शाहेजहाँ के राजत्व-काल के तेईसवें वर्ष इन्हें राय की उपाधि मिली। तीन वर्ष बाद इन्हें दूसरा काम सौंपा गया। सब सरकारी काग़ज़ इनके ही सिपुर्द किये गये। यहाँ तीन वर्ष काम करने के बाद इन्हें ख़िलअ़त दी गई और रायरायाँ की उपाधि भी मिली। उसी समय बादशाह ने इन्हें अस्थायी रूप से दीवाने आला का पद भी दिया। जब दाराशिकोह और शुजा के साथ औरङ्गज़ेब का युद्ध छिड़ा हुआ था तब यही औरङ्गज़ेब को सलाह दिया करते थे। औरङ्गज़ेब के सिंहासनारूढ़ होने के दो वर्ष बाद इनकी प्रतिष्ठा भी बढ़ी और पद-वृद्धि भी हुई। १०१३ हिजरी तक इन्होंने समग्र साम्राज्य के मन्त्री का काम सँभाला। औरङ्गज़ेब के शासनकाल के छठे वर्ष इनकी मृत्यु हुई।

राजा रघुनाथ बहादुर जैसे राजनीति में विचक्षण थे वैसे ही युद्ध-कार्य में भी निपुण थे। औरङ्गज़ेब को हिन्दू-मात्र से घृणा थी। राजा रघुनाथ बहादुर के लिए यह कम गौरव की बात नहीं कि औरङ्गज़ेब तक ने उनकी क़द्र की।

प्रोफ़ेसर यदुनाथ सरकार ने अपने औरङ्गज़ेब के इतिहास में इन्हें खत्री लिखा है। पर अब उन्होंने इन्हें कायस्थ मान लिया है। राय उमराव राजा लालबहादुर, सिविल सर्जन, रोहतक और राय राजगोविन्द साहब, दिल्ली, आदि इनके वंशज अभी तक वर्तमान हैं।

१२—योरप में बौद्ध-धर्म।

चालीस वर्ष पहले योरप में बौद्ध-धर्म के विषय में

लोग बहुत कम जानते थे। संस्कृत का प्रचार होने पर कुछ विद्वानों का ध्यान इधर आकृष्ट हुआ। सबसे पहले लन्दन में पाली-टेक्स्ट सोसाइटी (Pali Text Society) नामक एक संस्था स्थापित हुई। उसका उद्देश पाली-भाषा के ग्रन्थों का उद्धार करना था। उसके सदुद्योग से बौद्ध-धर्म के कितने ही प्राचीन ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ। बौद्ध-साहित्य की ओर योरप के कुछ बड़े बड़े विद्वान् झुके। जिन विद्वानों ने इस विषय में काम करके अच्छी ख्याति प्राप्त की है उनके नाम हैं—प्रोफ़ेसर रीज़ डेविड्स, श्रीमती रीज़ डेविड्स, डाक्टर मारिस, प्रोफ़ेसर ई० मूलर, प्रोफ़ेसर जेकोबी, डाक्टर आर० रोस्ट, डाक्टर कारपेंटर आदि। डाक्टर स्टीन ने खोज का खूब काम किया है। मध्य-एशिया में उनके परिश्रम से बौद्ध-धर्म-विषयक अनेक ज्ञातव्य बातें प्रकट हुईं। प्रोफ़ेसर रीज़ डेविड्स ने तो अपना जीवन ही इसमें लगा दिया है। १८८२ में उन्होंने जर्नल आफ़ पाली टेक्स्ट (Journal of Pali Text) नामक एक सामयिक पत्र भी निकाला। आरम्भ में उन्हें बड़ी कठिनता हुई। पर स्याम देश के अधिपति ने उन्हें आर्थिक सहायता दी। तब उनका काम अच्छी तरह चलने लगा। यह तो बौद्ध-साहित्य के विषय में हुआ। अब बौद्ध-धर्म के प्रचार के विषय में भी कुछ सुनिए।

कुछ विद्वान् यह अनुमान करते हैं कि कभी प्राचीन काल में बौद्ध-धर्म का प्रवेश योरप में होगया था। कुछ तो यह कहते हैं कि इँगलेंड के डूइड लोग बौद्ध-मतावलम्बी थे। इस में सन्देह नहीं कि बौद्ध-धर्म के प्रचारक बड़ी दूर तक गये थे। अमेरिका में भी उनके धर्म के कुछ चिह्न पाये जाते हैं। ईसाई धर्म पर भी बौद्ध-धर्म की छाया पड़ी है, ऐसा भी कोई कोई ख़याल करते हैं। आज-कल भी बौद्ध-साहित्य पर योरोपीय विद्वानों का अनुराग बढ़ रहा है। कुछ तो बौद्ध-धर्म में दीक्षित भी हो रहे हैं। कुछ वर्ष पहले रङ्गून में एक योरप-निवासी ने ही एक बौद्ध-समाज (International Buddhist Society) की स्थापना की थी। उन्होंने अब यति-धर्म स्वीकार कर लिया है। वे अब बौद्ध-भिक्षु हो गये हैं। उनका नाम है आनन्द मित्तेय। उन्होंने बुद्धिज़्म (Buddhism) नामक एक पत्र भी निकाला है। वह बौद्ध संस्थाओं को मुफ़्त भेजा जाता है। इसीसे उनका नाम योरप में अच्छा फैल गया है। योरप के कुछ और विद्वान् भी बौद्ध-संघ में आगये हैं। तीन अभी बरमा में ही हैं। इसकी एक शाखा लन्दन में भी खोली गई है। बौद्ध-धर्म-विषयक पुस्तकें खूब बिक रही हैं। जर्मनी में भी एक बौद्ध-समिति स्थापित होगई है। वह लिपज़िक नामक नगर में है। एक जर्मन बौद्ध-यति बरमा में है। इटली, आस्ट्रिया, स्विटज़रलेंड, डेनमार्क, हालेंड और बेलजियम में भी बौद्ध-साहित्य की अच्छी उन्नति हो रही है। जान पड़ता है, योरपवाले अपने क्रिश्चियन-धर्म्म से कुछ कुछ विरक्त होते जाते हैं।

१३—कृषि से लाभ।

भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश है। अधिकांश लोगों का जीवन-निर्वाह कृषि पर ही अवलम्बित है। कृषि से अच्छा लाभ होता है। पर जिनकी यह जीविका है वे प्रायः दरिद्रता से ग्रस्त ही रहते हैं। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि जो सुशिक्षित हैं वे खेती करना अपमानजनक समझते हैं और जो कृषि करते हैं उनमें शिक्षा का सर्वथा अभाव है। आज-कल कृषि-विज्ञान की इतनी उन्नति हो रही है कि यदि लोग उसका अच्छी तरह उपयोग करें तो उन्हें यथेष्ट लाभ हो। अमेरिका में कृषि-विज्ञान पर गत वर्ष ४०७ मूल-ग्रन्थ निकले। ग्रेट-ब्रिटन में २२७ ग्रन्थ इसी विषय पर प्रकाशित हुए। ऐसे ग्रन्थों के प्रचार से वहां कृषि को बड़ी उत्तेजना मिलती है। हमारे देश में भी सरकार ने एक कृषि-विभाग खोल रक्खा है। पर खेद की बात है कि हमारे किसान सरकार की इस कृपा से लाभ नहीं उठा सकते, क्योंकि इस विभाग का सब काम-काज अँगरेज़ी में होता है। रवीन्द्र बाबू ने इसी सम्बन्ध में कहा है—"I believe that India is the only country in the world where the Government has an Agricultural Department which publishes its bulletins for the benefit of the cultivators in a language unknown to them, making these poor cultivators pay the cost of this heartless joke played upon themselves. अर्थात्—भारतवर्ष ही एक ऐसा देश है जहां कृषि-विभाग द्वारा प्रकाशित

पुस्तकें किसानों के लाभ के लिए उस भाषा में लिखी जाती हैं जिसका उन्हें ज्ञान ही नहीं। यह ख़ासी दिल्लगी है। पर इस दिल्लगी का ख़र्च उन दरिद्र किसानों को ही उठाना पड़ता है।

यह तो अशिक्षित किसानों की बात हुई। जिन्हें अँगरेज़ी भाषा का पर्याप्त ज्ञान है, जो कृषि-विभाग से लाभ उठा सकते हैं, वे सेवा-वृत्ति से उदर-पूर्त्ति करना सम्मान-सूचक समझते हैं। कदाचित् किसानों की दुर्दशा देख कर उनकी यह समझ हो गई है कि कृषि-व्यवसाय से लाभ नहीं। उनका यह भ्रम दूर करने के लिए बम्बई-प्रान्त के कृषि-विभाग के डाइरेक्टर ने कराची में, कुछ दिन पहले, एक व्याख्यान दिया था। उसमें उन्होंने कहा था—"लार्ड विलिङ्गडन की इच्छा से मैंने १६ एकड़ ज़मीन पर खेती की। मैंने उसमें सिर्फ़ २०) लगाये और तेरह महीने में मैंने १४६३) रुपये पैदा किये।" इसमें आश्चर्य की कुछ बात नहीं। इसी खेती की बदौलत अमेरिका में अनेक लोग करोड़-पति हो गये हैं।

१४—काग़ज़ के कपड़े।

जिस जर्मनी की क्रूरता, कुटिलता और नृशंसता के दास्तान आज पाँच छः साल से सुनते आ रहे हैं उसीने एक बड़े ही परोपकार का काम कर दिखाया है। और, परोपकार भी ऐसा, जिससे उसे भी लाभ पहुँचे और करोड़ों आदमियों की भी काया, थोड़े ही ख़र्च से, ढक जाय। वहाँ के किसी कारीगर या कारख़ानेदार ने काग़ज़ की पोशाक बना डाली है। इसका वृत्तान्त उस दिन हमने एक अँगरेज़ी अख़बार में पढ़ा। लिखा था कि लन्दन के किसी दूकानदार के यहाँ हालेंड की राह जर्मनी से कुछ तैयार कपड़े, नमूने के तौर पर, पहुँचे हैं। ये कपड़े रोज़मर्रा के इस्तेमाल के हैं। इनमें कोट, वास्कट, पतलून, कमीज़ सभी हैं और सभी काग़ज़ के हैं। देखने में बड़े सुन्दर और बहुत हलके हैं। काट-छाँट और फ़ैशन सब वर्तमान काल का है। शौक़ीनों के सब तरह पसन्द आने योग्य हैं। एक सूट—अर्थात् एक कोट, एक वास्कट और एक पतलून—ख़रीदने में केवल १।) ख़र्च होता है—१२००) के १००० सूट ! भगवान् करे कपड़े की इस गरानी के ज़माने में जर्मनी-वाले, ब्रिटिश सरकार की आज्ञा से, काग़ज़ के कुर्तों, कोटों और अँगरखों से भारत के बाज़ारों को पाट दें। किसी तरह ग़रीब देहातियों और मिहनत मज़दूरी करनेवाले शहरातियों की लज्जा तो रहे।

१५—भारतवर्ष में जन्म-मृत्यु का लेखा।

५ जून के गैज़ट आव् इंडिया में ३० सितम्बर १९१९ तक का भारतवर्ष का जन्म-मृत्युविषयक लेखा प्रकाशित हुआ है। उसी से हम निम्न-लिखित सूची उद्धृत करते हैं।

प्रान्त	जन्म	मृत्यु	वृद्धि (+) अथवा ह्रास (—)
देहली	५,२३०	३,८३०	+१,४००
बङ्गाल	२,०५,०९६	२,९९,४०६	—९४,३१०
बिहार और उड़ीसा	२,२४,००१	३,५४,०७९	१,३०,२७८
आसाम	३५,००२	७६,७२४	—४१,७२२
संयुक्त-प्रान्त	३,४०,६५७	३,६०,३५३	—१९,६९६
पञ्जाब	१,६९,८४८	१,२०,५१७	+४९,३३१
उत्तर-पश्चिम-प्रान्त	१२,२३४	१५,४७१	—३,२३७
मध्य-प्रदेश	९२,५६७	१,६८,३८४	—७५,८१७
मदरास	२,२२,२७७	२,५१,३३७	—२९,०६०
कुर्ग	८८७	१,८२९	—९४२
बम्बई	१,१५,८०७	१,५९,२२५	—४३,४१८
ब्रह्मदेश	६७,०७५	८२,२७१	—१५१९६

इससे विदित है कि सिर्फ़ देहली और पञ्जाब में जन-संख्या में वृद्धि हुई। जन-संख्या में सबसे अधिक ह्रास बिहार और उड़ीसा में हुआ। सम्पूर्ण ब्रिटिश भारत की जन-संख्या में ४,५३,६७६ की कमी हो गई।

३१ दिसम्बर १९१९ तक का लेखा १९ जून के गैज़ट आव् इंडिया में निकला है। उसकी भी सूची नीचे दी जाती है।

प्रान्त	जन्म	मृत्यु	वृद्धि (+) अथवा ह्रास (—)
देहली	६,४९६	५,४७५	+१,०२१
बङ्गाल	३,९२,००२	४,५९,६९७	—६७,६९५
बिहार और उड़ीसा	२,८५,३२०	३,५१,९२२	—६६,६०२
आसाम	६१,७२८	६८,४६१	—६,७३३

प्रान्त	जन्म	मृत्यु	वृद्धि (+) अथवा ह्रास (—)
संयुक्त-प्रान्त	४,७३,७२२	४,६१,७६०	—१८,०३८
पञ्जाब	२,७१,३८१	१,६७,६६०	+१,०३,७२७
उत्तर-पश्चिम-प्रान्त	१६,४२६	१४,८५६	+४,५७३
मध्य-प्रदेश	१,६०,६६०	१,४८,२६३	+१२,६६७
मदरास	२,६३,४८०	२,६०,६७६	+३२,५०१
कुर्ग	१,०३२	१,२६५	—२६३
बम्बई	१,६३,३१२	१,३८,६०३	+२४,७०६
ब्रह्मदेश	८५,०१५	७१,२७१	+१३,७४४

इन तीन महीनों में ३३,६४१ की वृद्धि जन-संख्या में हुई। जुलाई से दिसम्बर तक का हिसाब लगाने से ब्रिटिश भारतवर्ष की जन-संख्या में ३,६६३०४ की कमी हुई। चलो, भूखों मरने से मर जाना अच्छा!

१६—दैनिक प्रताप।

कई वर्ष से प्रताप नाम का साप्ताहिक पत्र कानपुर से निकल रहा है। उसका सम्पादन योग्यतापूर्वक होता है। इसी से उसका बड़ा मान है। उसका प्रचार भी बहुत है। उसके लेख बड़े महत्त्व के होते हैं। उनसे सचाई, देशभक्ति और निर्भीकता टपकती है। देश की दशा और देशवासियों की हृद्गत भावनाओं का ख़ूब ख़याल रख कर उसका सम्पादन होता है। उसके विचार देशवासियों ही के आन्तरिक विचार कहे जा सकते हैं। यही कारण है जो उसका इतना आदर और इतना प्रचार है। अब, विजया दशमी से, उसका एक दैनिक संस्करण भी निकला करेगा। उस संस्करण को भी समयानुकूल और बहुगुण-सम्पन्न बनाने की पूरी चेष्टा की जायगी। जहाँ तक हम जानते हैं, आयोजन को देखने से यही विश्वास होता है कि वह संस्करण भी बहुत ही अच्छा निकलेगा और लोग उसे भी बहुत पसन्द करेंगे। अँगरेज़ी के दैनिक पत्रों में जो विशेषतायें रहती हैं उन सबको चरितार्थ करने का यत्न किया जा रहा है। पृष्ठ संख्या ८ होगी और मूल्य १८) वार्षिक। साल भर का मूल्य एक मुश्त भेजनेवालों के साथ १) की रिआयत की जायगी। ग्राहक होने के लिए—व्यवस्थापक, दैनिक प्रताप, प्रताप-प्रेस, कानपुर, को लिखना चाहिए।

——

पुस्तक-परिचय।

१—जैन-साहित्य-संशोधक—मुनिराज श्रीजिनविजयजी महाराज द्वारा सम्पादित। यह सामयिक पत्र पूने से निकलना आरम्भ हुआ है। इसके पहले अङ्क में जैन-साहित्य पर विद्वानों के गवेषणापूर्ण निबन्ध हैं। इसके ऐतिहासिक प्रबन्ध अर्वाचीन प्रथा के अनुसार लिखे गये हैं। इसमें महावीर-स्वामी की निर्वाण भूमि का रङ्गीन और राणा कुम्भा के समय के चित्तौड़ के स्तम्भ का सादा चित्र सर्वथा इस पत्र के योग्य है। एक विशेषता इस पत्र में यह भी है कि इसमें हिन्दी, गुजराती और अँगरेज़ी तीनों भाषाओं के लेखों को यथाक्रम स्थान दिया गया है। गुजराती भाषावाले भाग की भी लिपि नागरी ही है। अतएव यह पत्र अपने ढँग का सर्वप्रथम मासिक पत्र है।

हम इस पत्र के विद्वान् सम्पादक को उनके परिश्रम के लिए बधाई देते हैं और अन्य लोगों से प्रार्थना करते हैं कि वे भी अपने साहित्य के संशोधन के लिए इसका अनुकरण करें। इसका मूल्य ५) वार्षिक है। मिलने का पता—भारत-जैन-विद्यालय, फर्गुसन-कालेज रोड, पूना।

विश्वेश्वरनाथ

❋

२—सूरीश्वर अने सम्राट्—इस पुस्तक की भाषा गुजराती, पृष्ठ-संख्या ४०० के ऊपर, छपाई सुन्दर और मूल्य २॥) है। अँगरेज़ी, हिन्दी, संस्कृत, गुजराती, उर्दू और फ़ारसी भाषाओं के नये पुराने अनेक ग्रन्थों के आधार पर, मुनिराज विद्याविजय ने इसकी रचना की है। श्रीयशोविजय-जैन-ग्रन्थमाला के व्यवस्थापक ने भावनगर से इसका प्रकाशन किया है। उन्हीं को लिखने से यह जिल्ददार सुन्दर पुस्तक मिल सकती है। सरस्वती के पुराने पाठकों को स्मरण होगा कि इस पत्रिका की किसी पिछली संख्या में जैनाचार्य्य हीरविजय सूरि का जीवनचरित प्रकाशित हो चुका है। उसी चरित में हीरसौभाग्य नामक एक संस्कृत-काव्य की भी कुछ बातों का उल्लेख किया जा चुका है। इस प्राचीन संस्कृत-काव्य में हीरविजय सूरि का चरित-चित्रण काव्य-सङ्गत ढँग से किया गया है। इसके कर्ता देवविमल गणि नाम के एक जैन कवि थे। इसके सिवा विजय-प्रशस्ति काव्य, जगद्गुरु-काव्य और कृपा-

रसकोश आदि काव्यों की भी चर्चा सरस्वती में हम कर चुके हैं। इन पुस्तकों में भी हीरविजय सूरि तथा उनके कई विद्वान् शिष्यों की कुछ न कुछ कथा है। प्रस्तुत पुस्तक के लेखक ने ऐसी ऐसी और अनेक पुस्तकों का अध्ययन करके इस ग्रन्थ की रचना की है। विन्सेंट स्मिथ साहब ने अँगरेज़ी में अकबर पर जो पुस्तक लिखी है उससे तथा आईने अकबरी आदि पुस्तकों से भी लेखक ने बहुत कुछ सहायता ली है। काव्यों और गुजराती के पुराने रासों में हीरविजय सूरि के जो वर्णन हैं उनका तत्कालीन ऐतिहासिक सामग्री से मिलान करके लेखक ने इस पुस्तक में यथासम्भव वही बातें लिखी हैं जिनके लिए उन्हें ऐतिहासिक प्रमाण मिले हैं। कहने का मतलब यह कि उन्होंने उपाय भर कपोलकल्पनाओं से बचने की चेष्टा की है। इससे इस पुस्तक की महत्ता बढ़ गई है।

अकबर को किसी धर्म्म से द्वेष न था। वह सभी धर्म्मों के आचार्यों का आदर करता था। अपने समय में हीरविजय सूरि की बड़ी प्रशंसा सुन कर उसने उन्हें गुजरात से सादर बुलाया। सूरीश्वर अपने कई विद्वान् शिष्यों को साथ लेकर पैदल फ़तेहपुर सिकरी पहुँचे। वहाँ अकबर पर उनके उपदेशों का इतना असर पड़ा कि वह कुछ कुछ जैन धर्म्म की ओर झुक गया। सूरीश्वर की विद्वत्ता, धार्म्मिकता और निस्पृहता पर उसे आश्चर्य्य और आनन्द हुआ। फ़रमान जारी करके उसने साल में कुछ निश्चित समय तक प्राणिहिंसा बन्द कर दी। उसकी ऐसी प्रवृत्ति देख कर कुछ लेखकों ने उसे जैन धर्म्म का अनुयायी तक कह डाला है। इस पुस्तक के लेखक ने सूरीश्वर की यात्रा से आरम्भ करके अकबर के साथ समागम तक का वृत्तान्त दिया है। साथ ही इन दोनों के सम्बन्ध की और भी अनेक बातें लिखी हैं। अकबर और जहाँगीर आदि के पाँच छः फ़रमानों का फ़ोटो भी दिया है। बादशाह और अबुलफ़ज़ल के चित्र विलायत से मँगा कर उनके भी फ़ोटो दिये हैं। पुस्तकारम्भ में हीरविजय सूरि की एक प्राचीन मूर्ति का भी चित्र छाप दिया है। इस पुस्तक के अवलोकन से हीरविजय सूरि के परवर्ती भी कई जैन विद्वानों और धर्म्माचार्यों का हाल मालूम हो सकता है। अकबर के समय में तथा उसके बाद भी जैन, इसलाम और हिन्दू धर्म्म की क्या दशा थी, इसका भी बहुत कुछ आभास इस पुस्तक से मिलता है। इसके कर्ता विद्याविजय ने बड़े परिश्रम और बड़ी खोज से इसकी रचना की है। हिन्दी-प्रेमी किसी जैन को चाहिए कि वह इसका अनुवाद हिन्दी में प्रकाशित करे। ऐसा करने से जैन धर्म्म के पूर्वाचार्यों की महिमा का ज्ञान गुजराती न जाननेवाले हिन्दी-भाषाभाषी जनों को भी हो जायगा। इसलाम धर्म्म के अभिमानी बादशाह को, अपने उपदेशों से, अपने धर्म्म के सिद्धान्तों की ओर झुका देना हीरविजय सूरि की विज्ञता, साधुता और बहुत बड़ी योग्यता का परिचायक है। ऐसे महात्मा का यशोगान करनेवाले जैनमुनि विद्याविजय को बहुत बहुत साधुवाद। आपकी यह पुस्तक बड़े मोल की है और गुजराती भाषा जाननेवाले जैनेतरों के भी पढ़ने योग्य है।

⁂

३—भावचित्रावली—बाबू धीरेन्द्रनाथ गङ्गोपाध्याय अच्छे चित्रकार हैं। भावव्यञ्जक चित्र बनाने में आपने इधर कुछ समय से विशेष ख्याति पाई है। हर्ष, शोक, भय, घृणा इत्यादि भावों के प्राधान्य में मनुष्य की मुखचर्या भिन्न भिन्न प्रकार के चिह्न धारण करती है। अच्छा चित्रकार मुखाकृति तथा अङ्ग-भङ्गी की व्यञ्जकता से ही इन मनोभावों को व्यक्त कर देता है। धीरेन्द्रनाथ महाशय के इस तरह के अनेक चित्र, तथा सामाजिक बातों से सम्बन्ध रखनेवाले भी चित्र, बँगला के एक मासिक पत्र में निकलते रहे हैं। उन सबका सङ्ग्रह बँगला और अँगरेज़ी में पुस्तकाकार प्रकाशित हुए कुछ समय हुआ। सुनते हैं, इन पुस्तकों का अच्छा आदर हुआ है। उन्हीं का यह हिन्दी-संस्करण कलकत्ते की हिन्दी-पुस्तक-एजन्सी (१२६, हैरिसन रोड) ने प्रकाशित किया है। चित्रों की संख्या शायद १०० होगी, पर हमने गिनी नहीं। इनमें से कई चित्र रङ्गीन भी हैं। चित्र आर्टपेपर पर छपे हैं। हर चित्र पर पतले काग़ज़ का आवेष्टन है। भाव-प्रदर्शन का यह बहुत ही अच्छा ढँग है। इन चित्रों में से कितने ही चित्र देख कर बच्चे और अपढ़ अबलायें भी जान जाती हैं कि चित्र से किस मनोभाव की सूचना होती है। चित्रकार में एक विशेषता बहुत बड़ी है। वे एक होकर, भिन्न भिन्न प्रकार के भावों

के प्रदर्शन द्वारा, अनेक हो जाते हैं। अर्थात् जब वे हर्ष प्रकट करते हैं तब उनकी आकृति कुछ और हो जाती है और जब भय प्रकट करते हैं तब कुछ और। उनके इस तरह के भिन्न भिन्न चित्र देखने पर लोग मुश्किल से पहचान सकते हैं कि एक ही मनुष्य ने ये सब भूमिकायें ग्रहण की हैं। पुस्तक में एक त्रुटि है। इसमें कहीं कहीं बँगला मुहावरों, वाक्यों और शब्दार्थों के अनुवाद ठीक ठीक अर्थ-व्यञ्जक नहीं हुए। उदाहरण के लिए—"ऊँट की कोई कल नहीं सीधी"। न तो इस पर कहीं पृष्ठाङ्क हैं और न कहीं चित्रों की सूची या नामावली ही है। मूल्य इस सुन्दर जिल्दधारी पुस्तक का ४) है। इसका एक और भी संस्करण है। उसका नाम है—राजसंस्करण। उसका मूल्य ६) है। वह शायद राजाओं के पास ही "समालोचनार्थ" जाता है। हां, क़ीमत देकर राजा और रङ्क सभी उसे पा सकते हैं। न सरस्वती रानी और न सरस्वती का सम्पादक राजा। इसीसे ये उस संस्करण के पाने के मुस्तहक़ नहीं समझे गये। तथापि हिन्दी-पुस्तक-एजन्सी से इन दोनों की प्रार्थना है कि सरस्वती में इस समालोचना ने जितनी जगह घेरी है उसकी क़ीमत का अन्दाज़ा कर लेने की वह कृपा करे। व्यवसाय-कौशल की भी कुछ सीमा होनी चाहिए।

❋

४—नागरी-प्रचारिणी पत्रिका—काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा अपनी पत्रिका बहुत वर्षों से निकाल रही है। रूप, रङ्ग और आकार में कई बार परिवर्तन होने पर भी उसके प्रकटन-काल में परिवर्तन नहीं हुआ। वह मासिक ही रही। इधर कुछ समय से उसमें थोड़ी सी शिथिलता आ गई थी। इससे उसकी मनोरञ्जकता और उपादेयता कुछ कम होगई थी। सुख और सन्तोष की बात है कि उसकी ये त्रुटियां अब दूर हो गई हैं। साथ ही अब वह "प्राचीन-शोध-सम्बन्धी त्रैमासिक पत्रिका" हो गई है। उसका आकार बड़ा हो गया है। वह सचित्र हो गई है और पृष्ठ-संख्या सौ से भी अधिक कर दी गई है। काग़ज़ और छपाई प्रशंसनीय हो गई है। उसके इस नवीन संस्करण के पहले भाग का जो पहला अङ्क निकला है उसमें कई लेख बड़े महत्त्व के हैं। पुरातत्त्व या प्राचीन शोध-सम्बन्धी जो पत्र अँगरेज़ी में निकलते हैं, इसे अब उन्हीं के पथ की पथिक समझिए। इस पहले अङ्क में डूँगरपुर-राज्य की स्थापना और शैशुनाक मूर्त्तियां—ये दो लेख पढ़ कर पाठक बहुत कुछ ऐतिहासिक ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। यदि यह पत्रिका इसी ढँग से समय पर निकलती गई तो हिन्दी में एक नई चीज़ होगी। इसका वार्षिक मूल्य ३) है। हिन्दी के प्रेमियों को चाहिए कि इसे आश्रय प्रदान करें। चार बड़े बड़े विद्वान् अब इसका सम्पादन करेंगे। सिर्फ़ इसकी यह एक बात ज़रा खटकती है। क्योंकि बहुत आदमियों के साझे की खेती ज़रा कम फलती है।

❋

५—भारत का धार्म्मिक इतिहास—यह कोई पौने दो सौ सफ़े की साधारण छपी हुई पुस्तक है। इस पर काग़ज़ की साधारण जिल्द भी है। भाषा इसकी गुजराती और मूल्य १) है। इसे उमरेठ-निवासी शाह देवजी लल्लु भाई ने लिखा है। आप ही से यह मिल सकती है। पता है—दूकान सेठ मनीलाल लल्लुभाई, दालमण्डी, कलेक्टर-गंज, कानपुर। पुस्तक खोज से लिखी गई है। इसमें हिन्दू, ईसाई, बौद्ध, जैन, पारसी इत्यादि धर्म्मों की मुख्य मुख्य बातें हैं। साथ ही इस देश में शैव, शाक्त, वैष्णव, वेदान्त, विशिष्टाद्वैत, स्वामीनारायणमत, निम्बार्क सम्प्रदाय, ब्राह्मसमाज, आर्यसमाज, सिक्ख, राधास्वामी आदि अनेक सम्प्रदायों का भी वर्णन है। सब की उत्पत्ति आदि का उल्लेख और मुख्य मुख्य सिद्धान्तों का विवेचन किया गया है। वैदिक काल, ब्राह्मण-काल, और पुराण-काल आदि हेडिंग दे कर उस उस ज़माने की धार्म्मिक विशेषतायें भी बताई गई हैं। लेखक महाशय ने शायद संस्कृत-भाषा में सर्वदर्शनसंग्रह नाम का ग्रन्थ नहीं देखा। देखते तो उनकी इस पुस्तक के लिए उन्हें और भी कुछ सामग्री मिल जाती। तब गाणपत्य आदि कुछ अन्य पुराने सम्प्रदायों का विवेचन भी इसमें आ जाता। अनेक धर्म्मों और सम्प्रदायों की मोटी मोटी बातें यदि कोई गुजराती भाषा जाननेवाला जानना चाहे तो उसे वे सब इस पुस्तक में मिल सकती हैं। इसके लेखक महाशय को चाहिए कि यदि इसका अगला संस्करण निकले तो इसमें

दिये गये संस्कृत के अवतरणों को किसी संस्कृतज्ञ से शुद्ध करालें।

❋

६—पुस्तक-द्वितय—इन्दौर में एक समिति है। उसका नाम है—मध्यभारत-हिन्दी-साहित्य-समिति। महाराजा होलकर की सहायता से वह एक ग्रन्थमाला निकालती है। इस माला की ६ और ७ नम्बर की पुस्तकें हमें समालोचना के लिए मिली हैं। एक पुस्तक का नाम है—**जर्मनी में लोक-शिक्षा**। इसका आकार मझोला, पृष्ठ-संख्या २०० के ऊपर, छपाई और काग़ज़ सुन्दर, और मूल्य ।॥) है। यह एक मराठी-पुस्तक का अनुवाद है। अनुवादक हैं—श्रीयुत पशुपाल वर्म्मा। जर्मनी में जैसी शिक्षा दी जाती है उसका इसमें सविस्तर वर्णन है। मूल लेखक ने स्वयं जर्मनी जा कर पुस्तकस्थ विषय का ज्ञान सम्पादन किया है। इसके अवलोकन से जर्मनी की शिक्षापद्धति का बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त हो सकता है। पुस्तक में एक उपसंहार है। उसमें अपने देश में प्रचलित शिक्षा-प्रणाली की तुलना जर्मनी की शिक्षा-प्रणाली से की गई है; साथ ही अपने देश की शिक्षा के दोष भी बताये गये हैं। पुस्तक का यह अंश बड़े ही महत्त्व का है। पुस्तक बड़े काम की है। दूसरी पुस्तक है—**विज्ञान और आविष्कार**। इसका आकार और छपाई इत्यादि पहली पुस्तक के सदृश है। इसकी पृष्ठ-संख्या २७४ और मूल्य १=) है। अनेक अँगरेज़ी ग्रन्थों और दो एक मराठी लेखों के आधार पर इसकी रचना की गई है। रचयिता हैं—श्रीयुत सुखसम्पत्तिराय भण्डारी। इसमें आविष्कार और विज्ञान की महिमा का बड़ा अच्छा वर्णन है। इन विषयों से सम्बन्ध रखनेवाली और भी अनेक बातें इसमें हैं। भिन्न भिन्न विज्ञानों के स्थूल विवरण और उनके आविष्कर्ताओं के कार्य्य-कलाप के उल्लेख भी हैं। पुस्तक बड़ी मनोरञ्जक और विशेष ज्ञानवर्धक है। भाषा सरल और सुन्दर है। पुस्तक के आरम्भ में एक विषय-सूची की कमी खटकती है। जिन आविष्कर्ताओं और विज्ञान-वेत्ताओं के उल्लेख इसमें आये हैं उनके जीवन का कुछ हाल भी यदि इसमें दे दिया गया होता तो बहुत अच्छा होता। ये दोनों ही पुस्तकें पूर्वोल्लिखित समिति से इन्दौर के पते पर पत्र भेजने से मिल सकती हैं।

७—सस्तुं-साहित्य-वर्धक कार्य्यालय की पुस्तकें। इस कार्य्यालय ने दो पुस्तकें भेजने की कृपा की है। दोनों की भाषा और लिपि गुजराती है; छपाई और काग़ज़ साधारण है; पक्की जिल्द चढ़ी हुई है। पहली पुस्तक है—**सुबोधनीति-कथा**। इसकी पृष्ठ-संख्या २१० और मूल्य १० आने हैं। इसमें इसके लेखक खरशेदजी बमनजी फरामरोज ने १५३ कहानियाँ लिखी हैं। मनुष्य, पशु, पक्षी, पेड़, पहाड़ आदि अनेक जड़-चेतन वस्तुओं का आलम्बन कर के छोटी छोटी कहानियाँ लिखी गई हैं। वे प्रायः सभी मनोरञ्जक हैं। उपदेश तो कुछ न कुछ सभी से मिलता है। विशेष कर के लड़कों और लड़कियों के बड़े काम की हैं। दूसरी पुस्तक का नाम है—**आगल धसो**। इसकी पृष्ठ-संख्या कुछ कम छः सौ और मूल्य १॥) है। यह एक अँगरेज़ी पुस्तक का गुजराती अनुवाद है। मूल पुस्तक का नाम है—Pushing to the front लेखक हैं मार्डन नाम के एक अमेरिका-निवासी विद्वान्। इनकी पुस्तकों की बड़ी क़दर है। यह अनुवाद डाह्या भाई लक्ष्मण भाई पटेल ने किया है। पुस्तक बड़े महत्त्व की है। इसे पढ़ कर अकर्मण्य भी कर्मठ और उत्साहहीन भी उत्साह-पूर्ण हो सकते हैं। जीवन में साफल्य-प्राप्ति के जो उपाय इसमें बताये गये हैं वे अमोघ हैं। अनुवादक के अनुसार यह पुस्तक—"निराशों को आशामय, निर्बलों को बलवान्, कायरों को बहादुर और मुर्दादिलों को मर्द"—बनानेवाली है। ये दोनों पुस्तकें पूर्वोक्त कार्य्यालय से, कालबादेवी, बम्बई, के पते पर पत्र लिखने से मिल सकती हैं।

❋

८—भारत की साम्पत्तिक अवस्था—इधर कई महीने से पत्र-पत्रिकाओं में इस पुस्तक की समालोचनाओं की धूम है। इसका प्रकाशन करनेवाली—हिन्दी-पुस्तक-एजेन्सी (१२६, हरिसन रोड, कलकत्ता)—ने अब इसकी एक कापी भेज कर सरस्वती के भी सौभाग्य की वृद्धि की है। पुस्तक का आकार मध्यम, छपाई और काग़ज़ उत्तम, तथा जिल्द मनोरम है। पृष्ठ-संख्या ६०० के ऊपर है। इसके लेखक हैं—प्रोफ़ेसर राधाकृष्ण झा, एम० ए०। इसका नामकरण बहुत ठीक हुआ है। इसमें वाकर और

मार्शल की पुस्तकों के सदृश सम्पत्तिशास्त्र का व्यापक विवेचन नहीं—है कुछ ज़रूर, पर विस्तृत नहीं। अतएव यह इस विषय का शास्त्र नहीं। इसमें अपने देश की साम्पत्तिक व्यवस्था या अवस्था का ही विशेष विवेचन है। यह विवेचन योग्यतापूर्वक किया गया है। जहाँ तक प्राप्त हो सके हैं, आवश्यक विषयों और वस्तुओं के नक़शे देकर सब बातें अच्छी तरह समझाई गई हैं। यह इसमें बहुत बड़ा गुण है। पर साथ ही एक बात विचारणीय भी है। वह यह कि साम्पत्तिक अवस्था सभी देशों की बदलती रहती है। भारत की तो बात ही न पूछिए। आज कुछ है, कल कुछ। अतएव इस पुस्तक की कितनी ही बातों के जल्द पुरानी हो जाने का डर है। यदि इसके नये संस्करण शीघ्र शीघ्र न निकलेंगे तो इसके अनेक नक़शे पुराने हो जायँगे और बहुत कम काम के रह जायँगे। आशा है, इसके प्रकाशक इसकी इस त्रुटि को समय समय पर दूर करते रहेंगे। पुस्तक के तीन खण्ड हैं। उनमें से प्रत्येक में विशेष करके सम्पत्ति, उद्योग-धन्धों और बनिज-व्यापार का क्रमशः वर्णन है। पुस्तक के पिछले दो खण्ड अधिक महत्त्व के हैं। उनमें औद्योगिक और व्यापार-विषयक प्रायः सभी मुख्य मुख्य बातों का वर्णन उत्तमता से किया गया है। इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दी में इस विषय की यह सबसे अच्छी पुस्तक है। आशा है, लोग इसका समुचित आदर करेंगे। इसके आरम्भ में ३ पृष्ठों की एक भूमिका हिन्दी में है। उसके नीचे प्रसिद्ध इतिहास-लेखक बाबू यदुनाथ सरकार का नाम है। उसमें एक जगह लिखा है—"भारत की किसी भी भाषा में ऐसा उत्कृष्ट और उपकारी ग्रन्थ अब तक नहीं छपा"। सरकार महाशय की इस उक्ति में यदि ज़रा भी अत्युक्ति न हो तो फिर हिन्दी के सौभाग्य का क्या कहना है! मूल्य इस पुस्तक का ३॥) है।

✲

९—**विज्ञान-पत्रिका**—बम्बई में कालबादेवी रोड पर, त्रिभुवनदास लहरचन्द, एल० एम० एस०, नाम के एक डाक्टर रहते हैं। आप जैन-ज्ञान-महोदधि नाम का एक विश्वकोश बना रहे हैं। यह ग्रन्थ Encyclopedia Britannica के सदृश होगा। इसमें आप जैनों से सम्बन्ध रखनेवाली कोई बात नहीं छोड़ना चाहते। जैन-शास्त्र, जैन-धर्म्म, जैनेतिहास, जैन-भूगोल और जैन-ग्रन्थ तथा ग्रन्थकार आदि से सम्बन्ध रखनेवाली सभी बातों पर लेख देना चाहते हैं। इसी ग्रन्थ से सम्बन्ध रखनेवाली यह एक छोटी सी ५२ सफ़े की पुस्तिका है। भाषा और लिपि इसकी गुजराती है। इसमें डाक्टर साहब ने अपने भविष्यमाण ग्रन्थ का रूप और आकार-प्रकार बताया है। उसके कुछ नमूने और जैनों की प्राचीन इमारतों आदि के चित्र भी दिये हैं। विद्वानों से ग्रन्थ-निर्म्माण-विषयक कुछ प्रश्न करके उनसे सलाह माँगी है और यथाशक्ति सबसे सहायता के लिए प्रार्थना की है। आपका यह उद्योग जितना ही प्रचण्ड है उतना ही उपयोगी भी है। अतएव आपको अनेक साधुवाद। हमारा तो निवेदन है कि जैनों ही को नहीं, जैनेतरों को भी इस काम में आपकी सहायता करनी चाहिए। तैयार होने पर आप अपने इस गुजराती-ग्रन्थ का अनुवाद देवनागरी-लिपि और हिन्दी-भाषा में ही प्रकाशित करना चाहते हैं, जिसमें सभी प्रान्तों के निवासी इससे यथेष्ट लाभ उठा सकें।

✲

१०—**हिन्दी-बाल-व्याकरण**—यह इस छोटे आकार की ६० सफ़े की पुस्तक का पहला भाग है। प्रोफ़ेसर नारायणप्रसाद मैंड़, बी० एस-सी० ने इसे लिखा है। इसका ढँग नया है। हिन्दी सीखनेवाले छोटे छोटे बच्चों के बड़े काम की है। मूल्य २½ आने हैं। मिलने का पता—मैनेजर, एज्यूकेशनल बुक डिपो, जोधपुर, राजपूताना।

✲

११—**स्वास्थ्यरक्षा**—मँझोले आकार के ७६ पृष्ठों की यह पुस्तक है। मूल्य आठ आना। लेखक हैं, वैद्यराज श्रीकेदारनाथ घोष, एम्० ए०। आप डी० ए० वी० कालेज (लाहौर) में आयुर्वेद के अध्यापक हैं। यह पुस्तक छात्रों के लिए लिखी गई है। परन्तु जो छात्र नहीं हैं वे भी इससे लाभ उठा सकते हैं। आयुर्वेदानुसार स्वास्थ्य-रक्षा के नियम जानना सभी के लिए हितकर है। पुस्तक अच्छी है। भाषा कुछ क्लिष्ट है। ऐसी पुस्तकें

ख़ूब सरल भाषा में लिखी जानी चाहिए। यह पुस्तक लेखक महाशय से सूत्रमण्डी, कूचा बुलामल, लाहौर के पते पर पत्र लिखने से मिल सकती है।

❋

१२—नवीन पत्र-प्रकाश—आकार मँझोला, पृष्ठ-संख्या १५२, काग़ज़ और छपाई अच्छी। लेखक—श्रीयुत शालग्राम द्विवेदी, और प्रकाशक मिश्र-बन्धु कार्यालय, दीक्षितपुरा, जबलपुर। मूल्य चौदह आने। अँगरेज़ी में जिस ढँग के "लेटरराइटर्स" होते हैं, यह उसी ढँग की किताब है। जो हिन्दी में पत्र लिखना सीखना चाहते हैं उनके यह बड़े काम की है।

१३—भारतीय जागृति—आकार मँझोला, पृष्ठ-संख्या २०२, मूल्य १), लेखक—बाबू भगवानदास केला। आपही इसके प्रकाशक हैं। आप कुछ समय से एक भारतीय ग्रन्थमाला निकाल रहे हैं। यह उसी माला की छठी पुस्तक है। पुस्तक में भारतवर्ष की सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक अवस्थाओं का विवरण है। प्राचीन काल से अब तक अपने पुनरुत्थान के लिए उसने जो कुछ उद्योग किये हैं उसकी भी संक्षेप में आलोचना है। आज-कल जिन मुख्य बातों की चर्चा हो रही है उन्हीं का संक्षिप्त उल्लेख इसमें है। पुस्तक अच्छी है। पर इसकी छपाई ख़राब है। काग़ज़ भी अच्छा नहीं। मिलने का पता—सम्पादक, प्रेम, वृन्दावन।

❋❋❋

नीचे नाम दी हुई पुस्तकें भी पहुँच गई हैं। भेजने-वाले महाशयों को धन्यवाद—

१—देशभक्त वीर राठोड़ की वक्तृता—प्रकाशक, कांग्रेस कमेटी, अजमेर।

२—भारत-भारत—प्रकाशक, भारतीय ग्रन्थभण्डार, कुरसवाँ, कानपुर।

३—बच्चों के लिए सोने का चांद—सम्पादक, पं० शिवसहाय चतुर्वेदी, देवरी, सागर।

४—श्रीविशुद्धानन्द-सरस्वती-मारवाड़ी-अस्पताल (कलकत्ता) का वार्षिक विवरण (१९१९-२०)

५—स्वामी विवेकानन्द यांचें चरित्र, भाग नववाँ—सम्पादक, रामचन्द्र नारायण मण्डली, बम्बई।

६—राजपूताना–मध्यभारत–सभा की रिपोर्ट (१९१९-२०)

७—The Report on the administration of the Sadabart Fund for the year ending 31 st March, 1920.

८—गीतानुशीलन का पहला खण्ड—प्रकाशक, बाबू गणेशचन्द्र प्रामाणिक, गढ़ाफाटक, जबलपुर।

चित्र-परिचय।

तीर्थयात्री।

हिन्दू-मात्र की दृष्टि में तीर्थ-यात्रा का बड़ा महत्त्व है। धर्म्म-प्राण हिन्दू बड़ी श्रद्धा-भक्ति से तीर्थ-यात्रा करते हैं। अब तो रेल के कारण यह यात्रा और भी सुलभ हो गई है। पर पहले हज़ारों कोस से, पैदल चल कर, श्रद्धालु पुरुष तीर्थों को जाया करते थे। इसके लिए वे लोग सभी प्रकार के कष्ट सानन्द सह लेते थे। इस अङ्क में जो चित्र प्रकाशित किया गया है उसमें एक नववयस्क युवक अपनी माता को तीर्थ-यात्रा कराने लिये जा रहा है। देखिए, माता सिर पर गठरी रक्खे हुए प्रसन्न-चित्त चली जा रही है। न तो उसके चेहरे से मार्ग की थकावट जान पड़ती है और न यही प्रकट होता है कि उसे सिर पर गठरी रखने में कोई कष्ट हो रहा है। वह तो तीर्थ-यात्रा की उमङ्ग में चली जा रही है और मार्गजनित कष्टों को कुछ समझती ही नहीं। मातृभक्त पुत्र के चेहरे पर भी श्रम-सञ्जात कोई चिह्न नहीं। यह चित्र कलकत्ते के बाबू रामेश्वरप्रसाद वर्मा की चित्र-कला-नैपुण्य का नमूना है।

Printed and published by Apurva Krishna Bose, at The Indian Press, Ld., Allahabad.

वासंती
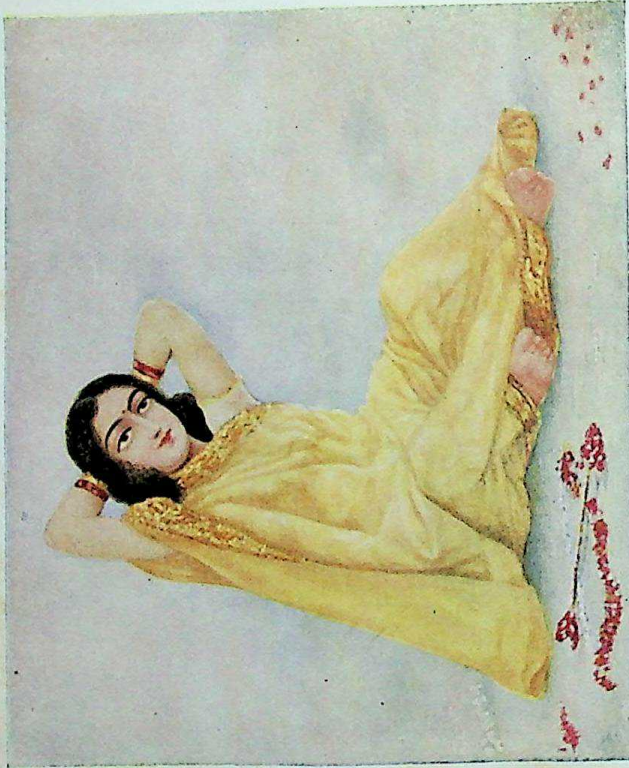
इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।
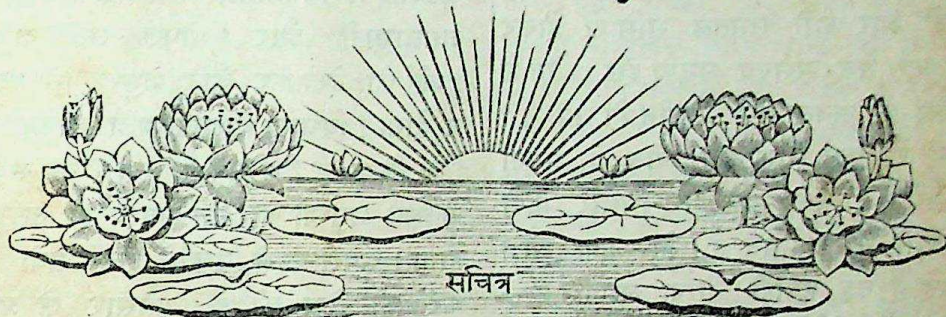
भाग २१, खण्ड २] सितम्बर १९२०—भाद्रपद १९७७ [संख्या ३, पूर्ण संख्या २४९

प्रभु की प्राप्ति।

प्रभो, तुम्हें हम कब पाते हैं
जब इस जनाकीर्ण जगती पर एकाकी रह जाते हैं
जब तक स्वजन सङ्ग देते हैं
हम अपनी नैया खेते हैं
तब तक हम-तुम उभय परस्पर नहीं कभी सुध लेते हैं
पर ज्योंही नौका बहती है
हममें शक्ति नहीं रहती है
देख भौंर में तब हम उसको रोते हैं चिल्लाते हैं
प्रभो, तुम्हें हम कब पाते हैं
जब तक भोग भोगते धन से
और सबल रहते हैं तन से
हम मदान्ध सम तब तक तुमको भूले रहते हैं मन से
पर जब सब धन उड़ जाता है
रोगों का दल जुड़ जाता है
तब हम तुम्हें याद कर करके बुरी तरह बिललाते हैं
प्रभो, तुम्हें हम कब पाते हैं
पाते हैं तुमको अनुरागी
पर होकर भव तक के त्यागी
देख नहीं सकते हो हममें तुम कोई निज भागी
तुमसे अधिक कौन धन होगा
और कौन तुमसा जन होगा
इसीलिए तुम-मय होकर हम पास तुम्हारे आते हैं
प्रभो, तुम्हें हम कब पाते हैं

मैथिलीशरण गुप्त

कविता का भविष्य।

संसार परिवर्तनशील है, क्योंकि वह उन्नतिशील है। स्थिरता जड़त्व का सूचक है। जो जड़ नहीं वे जङ्गम हैं; उनकी गति अवरुद्ध नहीं होती। मानव-जीवन का जो स्रोत अनादि काल से बह रहा है वह उद्देश-हीन नहीं। वह किसी एक लक्ष्य की ओर जा रहा है। परन्तु उसका प्रवाह कभी पहाड़ों, कभी जङ्गलों और कभी समतल भूमि से होकर बहता है। अब तक असंख्य मनुष्य इस स्रोत में बह कर काल के अनन्त गर्भ में लीन हो गये हैं। परन्तु उनमें से कुछ लोग इस स्रोत में अपना चिह्न छोड़ गये हैं। उनके भाव और विचार भाषा के रूप में अभी तक वर्तमान हैं। जो भाषा आज हम बोल रहे हैं वह हमारी पैतृक सम्पत्ति है—हमारे पूर्वजों की अर्जित की हुई है। ज्यों ज्यों नये नये भावों की वृद्धि होती जाती है त्यों त्यों भाषा के रूप में परिवर्तन होते जाते हैं। अनन्त काल से मनुष्य अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए चेष्टा करते आ रहे हैं। हमारी वर्तमान भाषा उसी का परिणाम है। भविष्य में उसका क्या रूप होगा, यह कोई नहीं कह सकता।

भाषा की उन्नति के साथ ही साथ कविता की उन्नति होती है। कविता है भावों की अभिव्यक्ति। कवि अपने समय का प्रतिनिधि-स्वरूप होता है। इसलिए उसकी कृति में उस समय के भावों का प्रतिबिम्ब लक्षित हो जाता है। अभी जितने काव्य उपलब्ध हैं उनके द्वारा हम यह जान सकते हैं कि किस समय किस भाव की प्रधानता थी। अतीत को देख कर और वर्तमान से उसकी तुलना करके हम भविष्य के विषय में कुछ अनुमान कर सकते हैं। प्राचीन कविता के साथ आधुनिक कविता की तुलना करके हम इतना अवश्य कह सकते हैं कि भविष्य में उसका रूप कैसा होगा। यहाँ हम यही बतलाने की चेष्टा करेंगे कि प्राचीन काल में कविता की गति किधर थी, उसे आधुनिक रूप कैसे प्राप्त हुआ और अब उसकी गति किस ओर है।

संसार में प्रविष्ट होते ही मनुष्य जब बाह्य जगत् पर दृष्टिपात करता है तब वह एक बार ही आश्चर्य-सागर में डूब जाता है। अनन्त नभोमण्डल पर देदीप्यमान असंख्येय नक्षत्र-समूह, पृथ्वी पर अभ्रभेदिनी पर्वतमाला, असीम जलराशि, प्रकाण्ड ज्वालामुखी और भीषण जल-प्रपात आदि दृश्यों को देख कर कौन मनुष्य विस्मय-विमुग्ध न होगा? विधाता ने इतना बड़ा आयोजन किसके लिए किया है? ये सब हैं क्या? यह सब जानने के लिए मनुष्यों का मन अवश्य ही उत्सुक हुआ होगा। सबसे पहले उन्होंने इन्हीं भावों को व्यक्त करने की चेष्टा की है। संसार के प्राचीनतम काव्यों में इन्हीं की प्रधानता है।

विस्मय हमें तभी होता है जब हम किसी बात को नहीं समझ सकते। सबसे पहले प्रकृति का पर्यवेक्षण करके मनुष्य विस्मित होता है, क्योंकि उसके लिए प्रकृति रहस्य-पूर्ण रहती है। जब वह विश्व के रहस्य का उद्घाटन करने में समर्थ नहीं होता तब वह प्रकृति में एक दिव्य, अनिर्वचनीय शक्ति का अनुभव करने लगता है। इसी समय देवताओं की कल्पना की जाती है। मनुष्य जल में वरुण को प्रत्यक्ष देखता है, अनन्त नभोमण्डल में वह मूर्त्तिमान् इन्द्र का दर्शन करता है और पवन के शीतल स्पर्श में वह दयामय जगदीश्वर के कर-स्पर्श का अनुभव करता है। इस प्रकार प्रकृति को सजीव करके वह उससे अपना घनिष्ठ सम्बन्ध जोड़ लेता है। होमर के काव्यों में देवताओं और मनुष्यों का जो सम्मिलन हुआ है वह ऐसे ही समय में सम्भव जान पडता है। उत्तर-पश्चिम योरप में

जो प्राचीन गाथायें प्रचलित हैं उनमें भी प्रकृति की शक्ति का अनुभव करके देवताओं की कल्पना की गई है।

प्रकृति की दो शक्तियाँ हैं अथवा यह कहना चाहिए कि उसके दो रूप हैं। एक तो दया-पूर्ण, दूसरा भयङ्कर। प्रकृति उत्पन्न भी करती है और संहार भी। जब मनुष्य उसकी सर्वसंहारिणी शक्ति का अनुभव करता है—जब वह देखता है कि प्रकृति के सामने उसकी शक्ति अगण्य है—तब उसके भावों का रूप बदल जाता है। ग्रीस के देवताओं का जैसा चित्रण किया गया है उससे यह मालूम होता है कि वे मनुष्यों से थोड़ी भी सहानुभूति न रखते थे। संसार उनका क्रीडाक्षेत्र था। मनुष्य उनकी क्रीडा का एक साधन-मात्र था। मानव-जीवन पर किसी अदृष्ट शक्ति का आधिपत्य प्रदर्शित करने के लिए वियोगान्त नाटकों की सृष्टि की गई है। किसी किसी कवि के दुःखान्त नाटकों में यही भाव स्पष्टतया दिखलाया गया है। मनुष्यों के जीवन में एक शक्ति काम कर रही है। वह अनुल्लङ्घनीय है। उससे आहत होकर क्षुद्र मनुष्य पल भर में नष्ट हो जाता है। प्रकृति से मनुष्य का साहचर्य सम्भव नहीं। उससे सर्वदा सङ्ग्राम करना पड़ता है।

ज्यों ज्यों मानव-समाज की वृद्धि होती है त्यों त्यों उसकी अन्तर्हित शक्ति का स्फुरण होता है। कुछ लोग ऐसे भी पैदा हो जाते हैं जिनकी शक्ति अलौकिक मानी जाती है। वे अपनी इस शक्ति से जगत् का कल्याण-साधन कर जाते हैं। तब उनका भी यशोगान होता है। यही कविता का प्रारम्भिक काल है। भारतवर्ष में रामायण और महाभारत और योरप में होमर के इलियड और ओडेसी काव्य इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

परन्तु यहाँ हमें एक बात ध्यान में रखनी चाहिए। सभी देशों में, सभी कालों में, कवियों का कार्य-क्षेत्र एक सा नहीं रहता। सच तो यह है कि कवि का कार्य-क्षेत्र क्या है, यह कहना बड़ा कठिन है। आज तक जितने कवि हुए हैं उन्होंने एक ही पथ का अनुसरण नहीं किया। सबके आदर्श भिन्न भिन्न थे। महाकवि वाल्मीकि ने अपनी रामायण की रचना में जो आदर्श रक्खा था वह कालिदास और भारवि के महाकाव्यों में नहीं। योरोपीय साहित्य में होमर का जो आदर्श था वह पोप, वर्ड्सवर्थ अथवा टेनीसन की रचनाओं में नहीं पाया जाता। यहाँ हम किसी कवि की क्षुद्रता अथवा महत्ता पर विचार नहीं कर रहे। हम तो यहाँ सिर्फ़ उनके आदर्शों पर विचार कर रहे हैं। इन सब कवियों की कृतियों पर थोड़ा भी ध्यान देने से यह निश्चय हो जाता है कि इन्होंने अपने अपने देश और काल की रुचि का ख़याल करके भिन्न भिन्न आदर्शों का अनुसरण किया है। यही उचित भी है। कवि को अनुकरण न करना चाहिए; उसे कोई नई बात पैदा करनी चाहिए। जिस पथ पर एक कवि को सफलता हुई है उसी पर चल कर दूसरा भी कवि हो सके, यह सम्भव नहीं। देश-काल में भेद पड़ जाने पर कभी कभी तो ऐसा करना अत्यन्त उपहासास्पद हो जाता है। अँगरेज़ी-साहित्य के इतिहास में एक ऐसा उदाहरण है भी। प्रसिद्ध लेखक एडिसन के समय में ड्यूक आफ़ मार्लबरा के विजय प्राप्त करने पर एक काव्य लिखा गया था। उसमें कवि ने ड्यूक को होमर के वीरोचित गुणों से युक्त करके कवच और सन्नाह धारण करा कर युद्धभूमि में, अग्रगामी योद्धा के वेश में, उपस्थित कराया था। प्राचीन काल में वीरता के आदर्श राम और हेक्टर थे। पर अब तो नेपोलियन के समान मनुष्य ही विश्वविजयी हो सकते हैं। इसलिए होमर अथवा वाल्मीकि के युद्ध-वर्णन का आदर्श आधुनिक कवियों के काम का नहीं। आदर्श तो बदलते ही हैं; विषय भी परिवर्तित होते रहते हैं।

जिन विषयों को प्राचीन कवि पद्यबद्ध करने योग्य नहीं समझते थे उन पर आधुनिक कवि काव्य-रचना करते हैं। अतएव यह निर्णय करना बड़ा कठिन है कि कवि का कार्यक्षेत्र क्या है।

कहते हैं कि कल्पना ही कवि का कार्य-क्षेत्र है, सत्य नहीं; सौन्दर्य है, ज्ञान नहीं; हृदय है, मस्तिष्क नहीं; भाव है, विवेक नहीं। भावों की यह प्रधानता सिर्फ़ काव्य में ही नहीं मानी जाती, किन्तु सभी ललित-कलाओं में भावों का प्राधान्य माना जाता है। भावों के आविष्करण को कला कहते हैं। पर आप किसी भी कला को लीजिए। उसमें विशेषत्व प्राप्त करने के लिए एक विशेष शिक्षा की आवश्यकता होती है। जब तक उसका निर्दिष्ट ज्ञान नहीं होता तब तक उसमें सफलता-प्राप्ति नहीं होती। ज्ञान के विकास से भावों का विकास होता है। यदि यह बात न होती तो कवि अपने बाल्यकाल में ही उत्तमोत्तम कविता लिख डालता और इटली के रैफल नामक प्रसिद्ध चित्रकार के सबसे उत्तम चित्र उसके बाल्य-काल में ही अङ्कित हुए होते, क्योंकि बाल्यकाल में भावों का जितना प्राबल्य रहता है उतना प्रौढ़ावस्था में नहीं। सच तो यह है कि ज्ञान की ऊर्जितावस्था में ही कला का सबसे अच्छा विकास होता है। हृदय के साथ मस्तिष्क की पुष्टि होने पर भावों की उत्तम अभिव्यक्ति होती है।

यदि हमारा यह सिद्धान्त ठीक है तो हमें कहना चाहिए कि विज्ञान के विकास से कला का ह्रास नहीं, प्रत्युत वृद्धि होती है। लार्ड मेकाले ने मिल्टन के विषय में कहा है कि मिल्टन उस युग में हुआ जब कविता का समय गुज़र चुका था। पर हम समझते हैं कि मिल्टन का उदय अपने ही उपयुक्त समय में हुआ। उसके काव्यों में भावों की जो गम्भीरता और भाषा की जो प्रौढ़ता है वह उसी के युग के अनुकूल है। भारतीय साहित्य के इतिहास पर एक बार दृष्टि डालिए। वीर-रसात्मक काव्य के अन्तिम कवि व्यास थे। उनके बाद कोई भी कवि वीर-रस की कविता लिखने में यथेष्ट समर्थ नहीं हुआ। इसका कारण यह है कि व्यवसाय की समृद्धि के साथ ही साथ विलासिता की वृद्धि होती है। उसके दो परिणाम होते हैं। एक तो विलासिता से विरक्ति और दूसरी उससे अनुरक्ति। अतएव शान्ति के समय में वैराग्य-रस अथवा शृङ्गार-रस की ही कवितायें लिखी जाती हैं। जब जाति में सङ्घर्षण रहता है—परस्पर द्वन्द्व-युद्ध चलता है—तब वीर-रस की कविता का समय आता है। मिल्टन के शैतान का व्याख्यान इँगलैंड के विप्लव-युग के ही उपयुक्त था। चन्द का रासो और भूषण की कविता अपने युग के अनुकूल ही थी। क्षीणशक्ति और राजनैतिक स्वत्व से हीन हिन्दू-जाति भगवान का आश्रय खोजे और भक्ति-रस के काव्यों में तल्लीन हो जाय तो आश्चर्य नहीं है।

हम कह आये हैं कि काव्यों में भावों का आधिपत्य स्वीकृत किया जाता है। परन्तु क्या काव्य में और क्या अन्य ललित-कलाओं में, सभी में, भावों के स्पष्टीकरण से चरम सत्य का ही विकास होता है। इसमें सन्देह नहीं कि कविता का सत्य दर्शन-शास्त्र या विज्ञान का सत्य नहीं है और न उसमें वह सत्य है जो किसी धर्म अथवा मत विशेष से स्पष्ट किया जाता है। उसमें सत्य का प्रकाश कुछ दूसरी ही रीति से होता है। कवि किसी भी मत का अनुयायी हो, कोई भी सिद्धान्त मानता हो, पर ज्यों ही वह अपने सिद्धान्तों को पद्य-बद्ध करता है अथवा वर्डस्वर्थ या ड्राइडन के समान पद्यों में धार्मिक शिक्षा देना चाहता है त्यों ही वह कवि के उच्च आसन से गिर जाता है। कवि का काम न तो शिक्षा देना है और न दार्शनिक तत्वों की व्याख्या करना है। उसके हृदय से तो वह गान

उद्गत होना चाहिए जिससे समस्त मानव-जाति की हृत्तन्त्री में विश्व-वेदना का स्वर बज उठे।

मनुष्यों में ईश्वरदत्त शक्तियों में से वाणी की महिमा सबसे अधिक है। हिन्दू-मात्र उसे साक्षात् देवी सरस्वती के रूप में उपास्य समझते हैं। संसार के बाल्यकाल से लेकर आज तक इसी वाणी का ही विकास होता जा रहा है। जब भावों की वृद्धि होती है तब भाषा में रूपान्तर होता है। जब कोई भाषा भाव-ग्रहण करने में असमर्थ होती है तब उसका अन्त हो जाता है और उसका आसन दूसरी भाषा ले लेती है। यही कारण है कि भाषा एक सी कभी नहीं रहती उन्नतिशील मानव-जाति के लिए भाषा में परिवर्त्तन होते रहना आवश्यक है। सारांश यह कि सभी भाषायें सभी भावों को व्यक्त करने में समर्थ नहीं होतीं। यही कारण है कि भिन्न भिन्न भाषाओं में भिन्न भिन्न स्वर प्रकट होते हैं। भारतीय भाषाओं में जो भाव व्यक्त हो सकते हैं वे भाव योरोपीय भाषाओं में भली भाँति व्यक्त नहीं होंगे। तो भी इतना हम अवश्य कहेंगे कि भावस्रोत की एक ही धारा एक ही समय में सर्वत्र बहती है। प्राचीन काल में सभी कवि प्रकृति की देदीप्यमान शक्तियों का गान करते हैं। इसके बाद कवि वीरों का यशोगान करते हैं। इसके बाद नाटकों की सृष्टि होती है। फिर शृङ्गार-रस पर काव्य-रचना होती है, भाषा का माधुर्य बढ़ता है, अलङ्कारों की ध्वनि सुन पड़ती है और पद-नैपुण्य प्रदर्शित किया जाता है। इसके बाद सांसारिक विषयों से घृणा होती है। भक्ति के उन्मेष में कोई प्रकृति का आश्रय लेता है, कोई प्राचीन आदर्शों का।

बाह्य-प्रकृति के बाद मनुष्य अपने अन्तर्जगत् की ओर दृष्टिपात करता है। तब साहित्य में कविता का रूप परिवर्तित हो जाता है कविता का लक्ष्य 'मनुष्य' हो जाता है। संसार से दृष्टि हटा कर कवि व्यक्ति पर ध्यान देता है। तब उसे आत्मा का रहस्य ज्ञात होता है। वह सान्त में अनन्त का दर्शन करता है और भौतिक पिण्ड में असीम ज्योति का आभास पाता है।

भविष्य कवि का लक्ष्य ईश्वर ही होगा। अभी तक वह मिट्टी में सने हुए किसानों और कारखाने से निकले हुए मैले मज़दूरों को अपने काव्य का नायक बनाना नहीं चाहता था। वह राजस्तुति, वीर-गाथा अथवा प्रकृति-वर्णन में ही लीन रहता था। परन्तु अब वह क्षुद्रों की भी महत्ता देखेगा और तभी जगत् का रहस्य सबको विदित होगा। जगत् का रहस्य क्या है, इस पर एक ने कहा है कि असाधारणता में यह रहस्य नहीं है। जो साधारण है वही रहस्यमय है: वही अनन्त सौन्दर्य से युक्त है। इसी सौन्दर्य को स्पष्ट कर देना भविष्य कवियों का काम होगा।

हिन्दुओं की सचाई।

भूमण्डल की समस्त जातियों में से जैसी सचाई हिन्दुओं में है वैसी अन्य किसी मनुष्य-समुदाय में नहीं। यह बात मनःकल्पित नहीं है। इसके समर्थन में अनेक अभ्रान्त प्रमाण हैं। हिन्दू-जाति संसार में अत्यन्त प्राचीन है। इसके जीवन-काल में अनेक प्राचीन जातियों का विनाश हो चुका है और अनेक नवीन जातियों का प्रादुर्भाव हो गया है। जब हम हिन्दू-जाति की सचाई की आलोचना करें तब हमें केवल इसकी वर्तमान दशा पर ही दृष्टि न डालनी चाहिए, किन्तु इसके प्राचीन इतिहास को भी देखना चाहिए। सन् १००० ईसवी तक हिन्दू-जाति अपने स्वाभाविक रूप में थी और अपनी मान-मर्यादा पर स्थित थी। इसके बाद इस देश में विदेशियों का आगमन हुआ और क्रमशः भारतवर्ष पर उनका आधिपत्य हो गया। तब से अब तक यह देश विदेशियों के द्वारा शासित हो रहा है। इनके शासन-काल में भारतवर्ष की प्राचीन सभ्यता पर कितने ही आघात-प्रत्याघात हुए। उसका अब वह प्राचीन रूप रहा भी

नहीं। तो भी हिन्दू-जाति अपने प्राचीन आदर्शों को बिलकुल भूल नहीं गई है। अब भी वह अपने अतीत गौरव की रक्षा कर रही है। हज़ार वर्ष पहले हिन्दू कितने सच्चे होते थे, इसका कुछ हाल हम यहां लिखते हैं। अब न तो वह समय ही रहा और न वह हिन्दू-जाति की सचाई ही रही। यह वैदेशिक संसर्ग का फल है। कुछ समय का भी प्रभाव है। देखिए, अँगरेज़ी न्यायालयों का उद्देश न्याय करना है, सच-झूठ का निर्णय करना है। तो भी आज-कल अनेक आनुपङ्गिक कारणों से सत्य की अपेक्षा असत्य की ही वृद्धि होती जाती है। अब तो न्याय के अनुसन्धान में बैरिस्टरों, वकीलों और मुख़्तारों की बड़ी आवश्यकता है। इनके बिना कोई मामला ही नहीं सुलझता। पर क्या कोई कह सकता है कि ये सदैव सत्य पथ के ही प्रदर्शक होते हैं? लोकमत तो इसके विरुद्ध है। मुसलमानों के शासन-काल में हिन्दूप्रजा अत्याचार से पीड़ित थी। अपनी रक्षा करने के लिए उसे अनेक प्रयत्न करने पड़े थे। पर अँगरेज़ी राज्य में वह भय नहीं। तो भी मनुष्यों को अपने जीवन-निर्वाह के लिए ऐसे अनेक उपाय करने पड़ते हैं जो केवल सचाई से नहीं चल सकते। अब भी शहरों के रहनेवालों की अपेक्षा ग्रामीण मनुष्य सचाई पर कुछ अधिक आरूढ़ हैं। गाँवों की पञ्चायतों में अब भी दूध का दूध और पानी का पानी हो जाता है। शहरों की लीला अकथनीय है। वहाँ अनेक कारणों से जैसी सचाई चाहिए वैसी नहीं रही। तथापि सचाई बिलकुल ही उड़ नहीं गई। अब भी भारतवासी अन्य देशवासियों की अपेक्षा अधिक सच्चे होते हैं। भारत में झूठ बोलना अब भी पाप समझा जाता है।

प्राचीन भारतवासियों की सत्यनिष्ठा का वर्णन हम नहीं करेंगे। इस विषय में विदेशियों के कथन अधिक प्रामाणिक हैं। उनमें से कुछ का उल्लेख नीचे किया जाता है। प्राचीन हिन्दू-साहित्य में सत्य की जैसी प्रशंसा की गई है उससे भी हिन्दुओं की सत्यप्रियता प्रमाणित होती है। सारांश, हिन्दू-जाति की सत्यनिष्ठा के ये प्रमाण तीन प्रकार के हैं—

(१) यूनान, चीन आदि देशवालों के लेख।
(२) मुसलमान और अँगरेज़-लेखकों के वर्णन।
(३) हिन्दू-साहित्य के अन्तर्गत प्रमाण।

इन्हीं प्रमाणों को हम नीचे देते हैं। सुनिए—

(१) केसियस नामक एक यूनानी ईसा से पाँच सौ वर्ष पहले ईरानी बादशाह के दरबार में हकीम था। उसने हिन्दुओं के सच्चे व्यवहार के विषय में अपने ग्रन्थों में बहुत कुछ लिखा है। अपने ग्रन्थ में भारतवासियों की न्यायशीलता की प्रशंसा में उसने एक पूरा अध्याय ही लिख डाला है। सबसे पहले उसी ने भारतवासियों के विषय में लिखा है।

(२) पाटलिपुत्र में सम्राट् चन्द्रगुप्त के दरबार में सिल्यूकस निकेटर का यूनानी एलची मेगास्थनीज़ था। वह लिखता है कि यहां (भारतवर्ष में) बहुत ही कम चोरियां होती हैं। लोगों में सत्य और धर्म का बड़ा आदर और सम्मान है। यहाँ के लोग चोरों के भय से अपने मकानों को बन्द नहीं करते। उन्हें अपने कोषों की रक्षा के लिए तालों की भी ज़रूरत नहीं पड़ती।

(३) एरियन ईसा से पहले दूसरी शताब्दी में हुआ है। वह लिखता है कि हिन्दुस्तान में नगरों और गाँवों का हाल जानने के लिए निरीक्षक रक्खे जाते हैं। वे सब जगह घूम फिर कर सच्ची सच्ची रिपोर्ट राजा को देते हैं। वे झूठी रिपोर्ट कभी नहीं देते। झूठ बोलने का अभियोग कभी किसी भारतवासी पर नहीं लगाया गया।

(४) ह्यूएनसाङ्ग एक चीनी यात्री था जो भारतवर्ष में सातवीं शताब्दी में बौद्ध धर्म का अध्ययन करने आया था। वह लिखता है कि भारतवासियों में सचाई और ईमानदारी, ये दो बड़े गुण हैं। वे अन्याय से किसी का धन नहीं लेते। उनके राज्य-शासन में सत्य की प्रधानता रहती है।

(५) भारतवर्ष को पहले-पहल अपने अधिकार में करनेवाले मुसलमानों की इस विषय में जो सम्मतियाँ हैं वे ग्यारहवीं शताब्दी के इद्रिसी नामक एक मुसलमान लेखक की एक पुस्तक में दी हुई हैं। उनका सारांश यह है—

हिन्दू न्यायपरायण हैं। वे न्याय-पथ से कभी विचलित नहीं होते। वे अपनी बात के बड़े धनी हैं। अपने इन गुणों के लिए वे ऐसे प्रसिद्ध हैं कि उनके देश में सभी देशों से अनेक मनुष्य आते रहते हैं।

(६) तेरहवीं शताब्दी में मार्को पोलो नाम का यात्री भारत में आया था। उसका कथन है कि भारतवासी

संसार भर में सबसे अच्छे व्यापारी हैं। वे बड़े सच्चे हैं। वे किसी भी चीज़ के लालच से झूठ नहीं बोलते।

(७) चौदहवीं शताब्दी में फ्रायर जोर्डेनस नामक एक ईसाई भिक्षुक हो गया था। उसने लिखा है कि दक्षिणी और पश्चिमी भारतवर्ष के लोग बड़े सच बोलनेवाले और न्यायप्रिय हैं।

(८) पन्द्रहवीं शताब्दी में कमालुद्दीन अब्दुर्रज़्ज़ाक समरकन्दी, खुतन के राजा का दूत होकर, कालीकट और विद्यानगर के राजाओं के दरबार में आया था। वह लिखता है कि इस देश (भारतवर्ष) में व्यापारी और दूकानदार खूब अमन-चैन से रहते हैं। यहाँ चोरी-डकैती का डर नहीं है।

(९) सोलहवीं शताब्दी में अकबर बादशाह का वज़ीर अबुलफ़ज़ल आईने-अकबरी में लिखता है कि हिन्दू बड़े धार्मिक, शिष्टाचारी, प्रसन्नचेता और न्यायपरायण हैं। ज़ियादह मिलना-जुलना वे पसन्द नहीं करते। अपने अपने कामों में सभी कुशल होते हैं। सभी सत्यपथ ग्रहण करते हैं। वे दूसरों के उपकारों को नहीं भूलते। अपने उपकारियों के बड़े कृतज्ञ होते हैं। उनमें स्वामिभक्ति असीम है। हिन्दू सैनिक तो समर-भूमि से भागना जानते ही नहीं।

(१०) पिछले समय के मुसलमानों के भी भाव हिन्दुओं के प्रति ऐसे ही थे। कर्नल स्लीमेन लिखते हैं कि मेरी बातचीत एक बड़े प्रतिष्ठित मुसलमान अफ़सर से हुई। उसका नाम सलामतअली था। उसने कहा कि मुसलमानों में ७२ फ़िरक़े हैं और हर एक फ़िरक़े का आदमी अपने ही फ़िरक़ेवाले के साथ रहना पसन्द करता है, लेकिन हिन्दुओं में यह बात नहीं। वे मुसलमानों के साथ रहने से भी प्रसन्न रहते हैं।

(११) सर जान मालकम साहब लिखते हैं कि मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि हिन्दुओं में झूठ बोलने की आदत नहीं है। यदि वे कभी झूठ बोलते हैं तो भय से अथवा नासमझी से। जब उनको बात समझा दी जाती है तब हमेशा सच ही कहते हैं।

(१२) प्रोफ़ेसर विलसन ने हिन्दुओं की सत्यप्रियता और उनके सद्व्यवहार की बड़ी प्रशंसा की है। आप लिखते हैं कि मुझे कलकत्ते की टकसाल में हिन्दू कारीगरों के साथ रहने का बहुत अवसर मिला है। मैं उनका हाल अच्छी तरह जानता हूँ। वे बड़े मिहनती, हँसमुख और स्वामि-भक्त होते हैं। वे न तो शराब पीते हैं, न लड़ते-झगड़ते हैं और न अफ़सरों की आज्ञा को ही टालते हैं। वे अपने काम में बड़े निपुण होते हैं। जब वे किसी पर विश्वास कर लेते हैं तब उससे अपने मन की सब बातें कह देते हैं। विलसन साहब को हिन्दू-पण्डितों से भी बहुत काम पड़ा था, क्योंकि उन्होंने उनसे संस्कृत सीखी थी। पण्डितों के विषय में उनकी सम्मति है कि वे बड़े परिश्रमी, बुद्धिमान्, प्रसन्नचित्त और सरल-हृदय होते हैं। उनमें बच्चों की सी सरलता होती है। काम-काज तथा अन्य लौकिक विषयों से वे अपरिचित होते हैं। यह तो पण्डितों के विषय में उनकी राय है। अन्य भारतवासियों के विषय में वे लिखते हैं कि वे बड़े शिष्टाचारी, सभ्य, बुद्धिमान्, उदारचेता और नियमों का अनुसरण करनेवाले होते हैं।

(१३) कर्नल स्लीमन हिन्दुस्तान में बहुत वर्षों तक ठगी बन्द करने के महकमे में कमिश्नर थे। उन्होंने अपने भ्रमण (My Rambles) नाम की एक पुस्तक लिखी है। वह १८४४ में प्रकाशित हुई थी। उसमें भारतवासियों का सच्चा सच्चा हाल लिखा गया है। स्लीमन साहब स्वयं बड़े सत्यप्रिय थे। उनकी इसी किताब की कुछ बातें नीचे दी जाती हैं।

ग्रामीणों में झूठ नाम-मात्र भी नहीं है। ये लोग झूठ बोलना अथवा धोखा देना जानते ही नहीं। असभ्य गोंड-भीलों में भी ऐसे हैं जो झूठ कभी नहीं बोलेंगे, चाहे उन्हें मनुष्य-हत्या करने में कुछ भी सङ्कोच न हो। गाँव में पीपल का पेड़ होता है। उसे हिन्दू बड़ा पवित्र समझते हैं और कहते हैं कि इस पर हमारे देवता रहते हैं। कोई भी ग्रामीण पीपल के पेड़ के नीचे खड़ा होकर झूठ न बोलेगा। गाँवों की पञ्चायतों में सब आदमी सच बोलते हैं। मेरे सामने ऐसे सैकड़ों मामले आये हैं जिनमें झूठ बोलने से अपराधियों के धन और प्राण दोनों की रक्षा हो सकती थी। पर उन्होंने झूठ बोलना स्वीकार नहीं किया। जो लोग शहरों में आकर अदालतों में झूठ बोल जाते हैं वे भी अपने गाँव की पञ्चायत में कभी झूठ नहीं बोलते। यदि उनके हाथ में गङ्गाजली रख दी जाय अथवा उन्हें उनके

देवता की शपथ दिलाई जाय तो वे लोग कभी झूठ न बोलेंगे।

१४ मौन्ट स्टूअर्ट यलफिन्सटन साहब अपने "भारत के इतिहास" में लिखते हैं कि हमारे बड़े बड़े नगरों में जैसे लुच्चे-लफंगे मिलते हैं वैसे हिन्दुओं में नहीं। गाँवों में प्रायः सभी भले आदमी हैं। पड़ोसियों के साथ उनका बड़ा स्नेहपूर्ण व्यवहार रहता है। दूसरों के साथ भी वे असद् व्यवहार नहीं करते हैं। भारतवर्ष में ठगों और डाकुओं के पापकार्यों की गणना करने पर भी यहां इतने अपराध नहीं होते जितने कि इँगलेंड में। हिन्दू सीधे और सच्चे आदमी हैं और क़ैदियों के साथ भी वे जैसा दयापूर्वक व्यवहार करते हैं वैसा एशिया में और कोई जाति नहीं करती। इनमें व्यभिचार नहीं है। इस बात में इनका स्थान अन्य देशों से अवश्य उच्च है। इनके शुद्ध चरित्र से हमें शिक्षा मिलती है।

१५ भारतवर्ष के पहले गवर्नर जनरल वारन-हेस्टिङ्गज़् साहब लिखते हैं—

हिन्दू बड़े सज्जन हैं। वे दूसरों पर दया करते हैं। उनके साथ कोई उपकार किया जाय तो वे बड़े कृतज्ञ होते हैं। यदि कोई उनके साथ बुराई भी करे तो वे उससे बदला लेने के लिए इतने इच्छुक नहीं होते जितने कि अन्य देशवासी। वे स्वामिभक्त होते हैं, सबसे स्नेह रखते हैं और राजाज्ञा का उल्लङ्घन नहीं करते।

१६ बिशप हेबर लिखते हैं—

हिन्दू लोग वीर, सभ्य और बुद्धिमान् हैं। विद्या और सुधार के वे बड़े प्रेमी हैं। वे गम्भीर और मिहनती हैं। माँ-बाप की बड़ी सेवा करते हैं। सदा धैर्य और शिष्टाचार से काम लेते हैं। यदि उनके साथ थोड़ी भी दया का व्यवहार किया जाता है तो वे बड़ी कृतज्ञता प्रकट करते हैं। मैंने ऐसे आदमी और कहीं नहीं देखे।

१७ प्रोफ़ेसर मेक्समूलर लिखते हैं कि मुझे बीस वर्षों से हिन्दुस्तानी लड़कों को ऐसी अच्छी तरह देखने का अवसर मिला है कि यदि उनके चाल-चलन में कोई बुराई होती तो वह मुझसे छिपी न रहती। जब उनमें परस्पर अथवा अँगरेज़ लड़कों के साथ वाद-विवाद होता तब वे सभी सच बोलने की चेष्टा करते और उदारतापूर्वक दूसरों के साथ व्यवहार करते थे। हमने योरप और अमरीका के लोगों में ऐसा सद्व्यवहार नहीं देखा। उनके तर्क में उद्दण्डता न होती थी, प्रत्युत सहनशीलता रहती थी। मैं यह भी कह सकता हूँ कि जब संस्कृतज्ञ अँगरेज़ विद्वान् उनको असभ्य कह कर ताना मारते या दुर्वाच्य कहते—जिससे उनकी अनभिज्ञता, बल्कि शिक्षा-त्रुटि का पता लगता है—तब इन लड़कों को बड़ा आश्चर्य होता। जब कभी ये लड़के भूल करते तब वे अपनी भूल को मानने के लिए सदैव तत्पर रहते। जब उनकी बात प्रमाणित सिद्ध हो जाती तब वे अपने अँगरेज़-मित्रों के साथ तानेज़नी कभी न करते। वे नुक्ताचीनी भी कभी नहीं करते और न अपनी बात रखने के लिए हठ ही करते हैं। वे झूठ को सदैव त्याज्य समझते हैं। उनमें वैसी चालाकी नहीं जैसी कभी कभी दूसरे लोगों में हुआ करती है—जैसे किसी चीज़ को लिख कर छपवा देना; फिर उसको स्वयं झूठ समझना। इस तरह दूसरों को धोखा देकर अपनी प्रशंसा करा लेना, ये सब बातें इनमें नहीं हैं। इन हिन्दुस्तानी छात्रों से हम लाभ उठा सकते हैं।

आप और भी कहते हैं—मुझसे अँगरेज़ व्यापारियों ने बार बार कहा है कि जैसी व्यापारिक साख भारतवर्ष में है वैसी और किसी देश में नहीं। इस देश में हुण्डी बिना सिकारी नहीं रहती। मेरे कहने का यह अभिप्राय नहीं कि हिन्दुस्तान के सभी ३३ करोड़ आदमी देवता हैं, परन्तु मैं आपको यह विश्वास दिलाना और समझाना चाहता हूँ कि भारतवर्ष के मनुष्यों पर झूठ बोलने का दोष लगाना सर्वथा निर्मूल, अतएव मिथ्या, है। सन् १००० ईसवी के बाद भारतवर्ष में विदेशियों के आक्रमण होने लगे। मुसलमानों के राजत्वकाल में हिन्दुओं पर जो भयङ्कर अत्याचार हुए उनका वृत्तान्त पढ़ कर मुझे इस बात का आश्चर्य है कि भारतवासियों में इतनी सचाई और सज्जनता रह कैसे गई। बिल्ली के सामने चूहा सच नहीं बोलता। इसी तरह हिन्दू भी मुसलमान-हाकिमों के सामने सच बोलने की हिम्मत नहीं रखते थे। यदि आप किसी लड़के को डरा दें तो वह डर से झूठ बोलने लगेगा। इसी तरह जब आप लाखों आदमियों को भयभीत कर देंगे तब यह आश्चर्य की बात नहीं कि वे आपसे

पञ्जे से निकलने के लिए असत्यपथ का भी अवलम्बन करें। इँगलेंड ऐसे स्वतन्त्र देश में इस समय सच बोलना सहज बात है। लेकिन ज्यों ज्यों हम वृद्ध होते जाते हैं त्यों त्यों बिलकुल सच बोलना कठिन मालूम होता है। अत्याचार से पीड़ित हिन्दुओं को भी यह मालूम हो गया कि दुर्दिन में सर्वथा सच बोलना कितना कठिन है। भारतवर्ष में विदेशियों के आक्रमण होने के बाद से निरन्तर अत्याचार होने के कारण हिन्दुओं की सचाई में अन्तर पड़ने लगा।

हिन्दुओं की सचाई के विषय में हिन्दू-साहित्य में अनेक प्रमाण मिलते हैं। ऐसा कौनसा हिन्दू ग्रन्थ है जिसमें सत्य की महिमा का गान न हो। इस विषय के अगणित प्रमाणों में से कुछ नीचे उद्धृत किये जाते हैं।

संस्कृत में सत् शब्द का अर्थ है होना। जो वास्तव में है, वही सत्य है। इसी प्रकार ऋत् शब्द का अर्थ है सीधा। जो बात बिना जोड़-तोड़ फन्द-फरेब के हो वही ऋत् या सत्य है। इन शब्दों से ही ज्ञात होता है कि हिन्दू लोग सत्य को सरल, स्वाभाविक और सीधी बात समझते हैं। सत्य बोलना और सत्य व्यवहार करना उनके लिए स्वाभाविक बात थी—बनावटी नहीं। हिन्दुओं ने अपने देवताओं के लिए सत्, ऋत् आदि विशेषणों का बहुत प्रयोग किया है। उन्होंने परमात्मा को सत्-चित्-आनन्द के नाम से पुकारा है।

ऋग्वेद के सातवें मण्डल में १०४ और ११४ मन्त्रों में वसिष्ठजी का वाक्य है—"झूठे मनुष्य नाश को प्राप्त हों।" अथर्ववेद के (४) १६ में कहा है कि जो झूठ बोलता हो उसे तेरे सतलड़े भयङ्कर पाश बाँध लें और सच बोलनेवालों से दूर रहें।

शतपथ-ब्राह्मण में कई स्थलों में सत्य की बड़ी प्रशंसा की गई है—(अध्याय २, ३) भावार्थ यह है कि जो सत्यवादी है उसका दिन पर दिन प्रभाव बढ़ता जाता और उसकी दशा निरन्तर उन्नत होती जाती है। जो झूठ बोलता है उसका हाल इससे विपरीत है। इसलिए मनुष्य को सदैव सत्य ही बोलना चाहिए। झूठ बोलने से मनुष्य अपवित्र और पतित हो जाता है। तैत्तिरीय आरण्यक के दसवें अध्याय में कहा गया है—जैसे गड़े के ऊपर रक्खी तलवार पर चलता हुआ मनुष्य डरता है कि अब गिरा अब गिरा और बहुत सावधान रहता है वैसे ही मनुष्य को झूठ बोलनेवालों से सावधान रहना चाहिए।

कठोपनिषत् में पिता और पुत्र का एक आख्यान है, जिसमें पिता ने अपने सत्य व्रत के अनुसार यज्ञ में पुत्र का भी बलिदान कर दिया है। जब वह पुत्र यमराज के पास पहुँचा तब यम ने उसे तीन वर देने की प्रतिज्ञा की। इन तीन वरों में एक वर ऐसा था कि जिसे यम कदापि नहीं देना चाहता था; पर वचन-बद्ध होने के कारण वह उसे देने के लिए बाध्य हुआ। यह वर था मृत्यु के बाद की बातों का जानना।

रामायण की सारी कथाओं का मूलाधार राजा दशरथ का कैकेयी को वचन देना है। यद्यपि वह वचन विवश होकर दिया गया था तथापि उसका पूरा करना परमावश्यक था। जब कैकेयी ने राजा दशरथ से, वचन के अनुसार, रामचन्द्र को वनवास देने के लिए कहा तब राजा को वनवास की आज्ञा देनी ही पड़ी, यद्यपि इससे उन्हें इतना दुःख हुआ कि अन्त में प्राण ही दे देने पड़े। सच कहा है—

> रघुकुल रीति सदा चलि आई।
> प्राण जाहिँ वरु वचन न जाई॥

राजा दशरथ के देहावसान पर जब भरत रामचन्द्रजी के पास वन में गये और उन्हें अयोध्या लौट आने के लिए बहुत कुछ कहा तब रामचन्द्रजी ने यही उत्तर दिया कि मुझे चौदह वर्ष तक वन में रहने के लिए पिता ने आज्ञा दी है। मैं इस आज्ञा को भङ्ग नहीं कर सकता।

इसके बाद जाबालि ऋषि ने रामचन्द्रजी को बहुत कुछ समझाया तो भी रामचन्द्रजी अपने वचन पर दृढ़ रहे। इस अवसर पर रामचन्द्रजी ने सत्य की जो प्रशंसा की है वह पढ़ने योग्य है।

महाभारत में भी सत्य की ऐसी ही महिमा वर्णित है। भीष्म की प्रतिज्ञा थी कि मैं स्त्री पर कभी शस्त्र-प्रहार न करूँगा। इसी प्रतिज्ञा के अनुसार भीष्म ने शिखण्डी के बाणों की चोट सह कर अपने प्राण त्याग दिये; पर शस्त्र न चलाया। इसी महाभारत में लिखा है कि यदि सहस्र अश्वमेध और एक सत्य तराजू में तोले जायँ तो

सत्य का पलड़ा ही भारी निकलेगा और हज़ार अश्वमेधों से बढ़ जायगा।

जब दुष्यन्त ने शकुन्तला को न पहचान कर उसे अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार न किया तब शकुन्तला ने दुष्यन्त से यही कहा कि राजन्, अपने अन्तःकरण की वाणी सुन। यह मत समझ कि मैं अकेली हूँ। तू अपने हृदयस्थ सत्पुरुष को नहीं पहचानता। वह तेरे दुष्कर्मों को जानता है—उसके सामने तू पाप कर रहा है। पाप करनेवाला समझता है कि मेरे पापों को कोई नहीं देखता। यह झूठ है। उसे हृदयस्थ सनातन-पुरुष (अन्तःकरण) और देवता देखते हैं।

शतपथ-ब्राह्मण में अरुण-औपवेशी ने अपने मित्र के प्रश्न के उत्तर में कहा है कि गार्हस्थ्य अग्नि रखनेवाले को मौनव्रत धारण करना पड़ता है, क्योंकि उसे असत्य बोलना सर्वथा त्याज्य है और सर्वथा असत्य तभी त्याज्य हो सकता है जब मौनव्रत का अवलम्बन किया जाय।

स्मृतियों में भी सत्य की ऐसी ही महिमा गाई गई है। याज्ञवल्क्य जी कहते हैं—

वन में कुटी में रहने से, अथवा साम्प्रदायिक विधियों का पालन करने से, अथवा श्वेत-कृष्णवर्ण होने से धर्म नहीं होता। वह तो कर्म से ही होता है। जो काम तुम स्वयं अपने लिए नहीं करना चाहते वह दूसरों के लिए भी मत करो।

मनुस्मृति में भी लिखा है कि दुष्ट लोग यह समझते हैं कि हमें पापकर्म करते कोई नहीं देखता। उन्हें उनका अन्तःकरण और देवता देखते हैं।

तुमने जन्म भर कैसे ही अच्छे काम क्यों न किये हों, वे सब असत्य बोलते ही नष्ट हो जायँगे। वसिष्ठ-स्मृति में लिखा है कि सत्य व्यवहार करो, असत्य नहीं। सच बोलो, झूठ नहीं। दूर दृष्टि रक्खो, पास नहीं। परमात्मा की ओर देखो, नीचे मलिन पदार्थों की ओर नहीं। हिन्दू-साहित्य से परिचय रखनेवाले ऐसे कौन हैं जिन्होंने सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र का चरित्र न सुना और न पढ़ा हो। उन्होंने तो सत्य के लिए सब राज-पाट, स्त्री, पुत्रादि छोड़ दिये थे। हिन्दू-इतिहास, पुराण, काव्य-ग्रन्थ सभी सत्य की महिमा से पूर्ण हैं। जहाँ देखो वहीं सत्य का ज्वलन्त आदर्श देदीप्यमान है।

कन्नोमल, एम० ए०

बेटियाँ।

हैं तभी से पड़ रहीं जञ्जाल में
आह! जब वे थीं नहीं पूरी खिली।
धूल में ही दिन बदिन हैं मिल रही
फूल के ऐसी बहुत सी लाडिली ॥१॥

आह! हैं बिकती भुगतती दुख वही
धूम है उनके उखाड़ पछाड़ की।
हम भले ही लड़खड़ाती जीभ से
बात कह लें लड़कियों के लाड़ की ॥२॥

बेटियाँ छिलते कलेजे को कभी
सामने आ खोल भी सकतीं नहीं।
आह! क्यों हम फेर दें उन पर छुरी
जो कि मुँह से बोल भी सकती नहीं ॥३॥

आह! जो बेटियाँ न चिल्लाईं
बारहा दुख बहुत अँगेजे पर।
तो कभी क्यों न हाथ रख देखें
हम उछलते हुए कलेजे पर ॥४॥

आह! सीधी बेटियों के लिए भी
कब सके हम धूल में रस्सी न बट।
आज हम हैं चट उन्हीं को कर रहे
जो नहीं दिखला सकीं जी की कचट ॥५॥

खेह होते देख सुन्दर देह को
नेह-धारें हैं नहीं जिसमें बहीं।
जो न पिघला देख कलियाँ सूखती
वह कलेजा है कलेजा ही नहीं ॥६॥

बाप ही ढाह जो विपत देवे
तो किसे वह पुकारने जाती।
आह! सारी विपत्तियों में ही
जो रही बाप बाप चिल्लाती ॥७॥

मान है, उनमें अभी मरजाद है
बेटियों को मान कैसे लें मिलें।

आह ! कैसे मौत वे माँगें न तो
जो जवानी की उमँगें ही पिसें ॥८॥
लड़कियों को न बेतरह लूटें
आह ! उनका लहू न हम गारें।
वे अगर हाथ का खिलौना हैं
तो न उनको खेला खेला मारें ॥९॥
दुख भला किस तरह कहें उसका
जो पड़ी हो विपत्ति-घानी में।
आह ! मन मार मार कर अपना
जो भरी हो मरी जवानी में ॥१०॥

अयोध्यासिंह उपाध्याय

भाषा का स्वराज्य।

जिस प्रकार संसार में प्रत्येक देश को अपनी समृद्धि के लिए स्वराज्य की आवश्यकता है उसी प्रकार उसे अपनी भाषा और अपने धर्म की उन्नति के लिए भी स्वराज्य अभीष्ट है। यथार्थ में भाषा और धर्म का स्वराज्य राजनैतिक स्वराज के अन्तर्गत ही है, और स्वाधीन देशों में राज्य-व्यवस्था के साथ साथ धर्म और भाषा को उन्नत करना प्रत्येक राजा अथवा शासक का कर्त्तव्य होता है। संसार में किसी भी राष्ट्र की मुख्य पहचान उसकी भौगोलिक स्थिति, जातीयता, धर्म और भाषा है। 'राष्ट्र' शब्द की न्याय-सङ्गत व्याख्या के विषय में बहुत कुछ मत-भेद होने पर भी, उसमें जातीयता, स्थान, धर्म और भाषा के तत्त्व प्रधान हैं। राष्ट्रीय एकता इन तत्त्वों के समावेश के विना असम्भव है। इन साधारण तत्त्वों के उप-भेदों में सूक्ष्म अन्तर भले ही हो, पर इनका स्थूल रूप राष्ट्रीयता की स्थिति और उन्नति के लिए परम आवश्यक है। उदाहरणार्थ, अँगरेज़-राष्ट्र की सबसे मोटी पहचान क्या है?—अँगरेज़-जातीयता (जिसमें स्वाभाविक, सामाजिक और राजनैतिक लक्षण सम्मिलित हैं), क्रिस्तानी धर्म, और अँगरेज़ी भाषा। इसी प्रकार जर्मन-राष्ट्र और फ्रेञ्च-राष्ट्र भी अपने इसी प्रकार के चिह्नों से परिचित होते हैं। पिछले महायुद्ध में शत्रुओं और मित्रों की 'राष्ट्रीयता' का निर्णय करने में बहुधा इन्हीं तत्त्वों की सहायता ली गई थी। 'राष्ट्रीयता' का प्रश्न आज-कल इतना महत्त्व-पूर्ण है कि यदि कोई व्यक्ति किसी कारण से चोटी कटा कर अपनी 'राष्ट्रीयता' छिपाना भी चाहे तो बड़ी खोज के साथ उसका पता लगाया जाता है और प्रमाणों द्वारा वह राष्ट्रीयता उस व्यक्ति पर स्थापित कर दी जाती है। कदाचित् इन्हीं विचारों से प्रेरित होकर स्वर्गवासी पण्डित प्रतापनारायण मिश्र ने लिखा था कि—

"जो चाहो अपना कल्याण।
रटो निरन्तर एक-ज़बान—
हिन्दू, हिन्दी, हिन्दुस्थान॥"

इस निबन्ध में हम 'जातीयता' और धर्म के विषयों पर कुछ न लिख कर केवल भाषा-सम्बन्धी तत्त्व पर—और विशेष कर हिन्दी के विषय में—अपने विचार प्रकट करने की चेष्टा करते हैं।

राष्ट्रीयता की साँकल में एक सुनहली कड़ी जोड़ने के लिए भाषा—और विशेष करके एक व्यापक और उन्नत भाषा—की बड़ी आवश्यकता है। हम लोगों में यही अभाव देख कर हमारे लेखकों ने कम से कम गत २५ वर्षों में भाषा का तत्त्व स्थापित करने की चेष्टा की है। हम लोग कुछ समय तक अज्ञान, स्वार्थ और मिथ्याभिमान के वश होकर यह बात भूले रहे कि राष्ट्रीयता के लिए हमें अपनी स्वाभाविक भाषा की आवश्यकता है। हम लोग केवल उसी भाषा को अपनी मातृ-भाषा मानते रहे जो विदेशी राजनैतिक कारणों से हमारे ऊपर लाद दी गई थी। आनन्द का विषय है कि हममें से प्रायः सभी लोग अब राष्ट्रीयता के लिए भाषा की आवश्यकता समझ कर हिन्दी के प्रति

विशेष रूप से आकृष्ट हो रहे हैं। इस समय तो हिन्दी, सौभाग्य से, हिन्दुस्तान में एक प्रकार की राष्ट्रीय भाषा हो रही है।

भारत की वर्त्तमान शासन-प्रणाली के कारण अनेक प्रान्तों में भाषा की उन्नति का प्रश्न उदासीनता की दृष्टि से देखा जाता है। इस अवस्था का यह फल हुआ है कि एक ही प्रान्त में दो दो भाषाओं का प्रचार है, जिससे समय समय पर इन भिन्न भिन्न भाषा-भाषियों में मुठ-भेड़ हो जाया करती है और आन्तरिक वैमनस्य तो बहुधा बना ही रहता है। यह विरोध विद्यार्थियों तक में पाया जाता है। कहीं कहीं एक ही भाषा का प्रचार होने पर भी सरकार अपनी एक निराली ही भाषा चलाती है जिसे सीखने के लिए न्यायार्थियों को (डाकृर ग्रियर्सन के शब्दों में) पग पग पर मुँडना पड़ता है। भाषा की एकता के तत्त्व का उड़िया लोगों को उस समय पूरा ज्ञान था जब उन्होंने लार्ड कर्ज़न के समय में सरकार से यह प्रार्थना की थी कि सम्पूर्ण उड़िया-भाषी जाति एक ही शासन के अधीन रक्खी जाय। सरकार ने उनकी यह प्रार्थना स्वीकृत कर दी; क्योंकि सरकारी नीति, सच्चे क्रिस्तानी धर्म के अनुसार, ऐसी ही है कि "जो कोई खटखटायगा वह अवश्य पायगा।" इसी तत्त्व पर बङ्ग-विच्छेद के विरुद्ध आन्दोलन हुआ था जिससे सरकार को वह हानिकारक घटना रद करनी पड़ी। स्वर्गवासी रानडे महाशय ने अपने "मराठा-इतिहास" में एक जगह लिखा है कि "भारत का शासन सफलता और सन्तोष के साथ तभी चल सकता है जब इसके प्रान्तों का सङ्गठन भाषा की एकता के आधार पर हो।" धर्म की एकता होने पर भी भाषा की भिन्नता से कठिनाई उत्पन्न होती है; परन्तु भाषा की एकता धर्म की भिन्नता को भी जीत लेती है। लन्दन में भिन्न-धर्मी यहूदी भी हैं; पर वे अँगरेज़ों के साथ भाषा के सूत्र में बँधे हुए हैं। इसी प्रकार गुजरात के अन्यधर्मी बोहरे वहाँ के हिन्दुओं से इतने सम्बद्ध हैं कि वे उनकी भाषा के बिना अपना काम ही नहीं चला सकते। राष्ट्रीयता के अन्य चिह्नों का लोप हो जाने पर भी भाषा एक प्रधान चिह्न बना रहता है।

भाषा की विविधता से राष्ट्रीय एकता में बड़ा विघ्न उपस्थित होता है। एक ही शासन में भिन्न भिन्न भाषाओं के होने से लोग अपनी अपनी भाषा का उत्कर्ष बढ़ाने की अलग अलग चेष्टा करते हैं और यथाशक्ति दूसरी भाषा के अधिकारों को नष्ट करने के उपाय सोचते रहते हैं। सम्मिलित-परिवार-संस्था में जैसी कठिनाई और विपत्ति उपस्थित होती है वैसी ही अवस्था सम्मिलित-भाषा-प्रथा में पाई जाती है। भाई भाई अलग अलग रह कर अपना और दूसरे का हित साधने में जितना प्रेम प्रदर्शित कर सकते हैं उतना सम्मिलित रह कर रात-दिन की खट खट में नहीं दिखा सकते। भाषा की एकता का प्रश्न अभी तक गम्भीर रूप से हम लोगों के सामने उपस्थित नहीं हुआ है और जब तक जनता सरकार को इस विषय की आवश्यकता न समझावेगी, तब तक सरकार भी इसके प्रति उदासीन ही रहेगी।

हम अपने मुख्य विषय से कुछ दूर भटक गये हैं। हमारा प्रधान वक्तव्य यही है कि भारत को स्वराज्य मिलने पर देशी भाषाओं को भी स्वराज्य मिले और उनके साथ हमारी मातृ-भाषा हिन्दी भी स्वराज्य की अधिकारिणी समझी जाय जिससे वह अपना शासन आपही कर सके। इस समय किसी किसी प्रान्त में उसके भाग्य-विधाता ऐसे लोग हैं, जो या तो इसका ज्ञान ही नहीं रखते अथवा इसके प्रति उदासीन हैं। मध्य-प्रदेश में तो यह अवस्था विशेष रूप से दिखाई देती है। वहाँ हिन्दी बहुत कुछ पराधीन अवस्था में है और आश्चर्य की बात तो यह है कि हमारी भाषा की ऐसी

शोचनीय अवस्था उस समय है जब कि इसका विरोध करनेवाली कोई दूसरी भाषा वहाँ नहीं बोली जाती। वहाँ हमारी भाषा के शिक्षक, हमारी भाषा के अनुवादक, हमारी भाषा के लेखक, हमारी भाषा के परिदर्शक तथा परीक्षक और हमारी हिन्दी के संशोधक तथा विचारक बहुधा ऐसे महात्मा हैं जिनकी मातृ-भाषा हिन्दी नहीं है, जिन्होंने येन केन प्रकारेण उसका टूटा-फूटा ज्ञान प्राप्त कर लिया है और प्रभुता-वश जिनकी धृष्टता यहाँ तक बढ़ गई है कि "मारवाड़ का ऊँट ब्रज के मोर को केका-ध्वनि सिखाने लगा है।" इस दुरवस्था से केवल भाषा ही की हानि नहीं हो रही है, किन्तु यथार्थ हिन्दी-भाषियों की आर्थिक और नैतिक अवनति भी हो रही है। "जो चाहिए गगन पर सो भूमि पर पड़ा है"। जिस देश में अँगरेज़ लोग महामहोपाध्यायों को संस्कृत पढ़ाने का दुःसाहस कर सकते हैं वहाँ बेचारी हिन्दी को कौन पूछता है! मध्य-प्रदेश की म्युनिसिपाल्टियों का यह अन्धेर है कि ताँगों के नम्बर, सड़कों के नाम, और मील-पत्थर अँगरेज़ी में लिखे जाते हैं मानों उनका उद्देश केवल अँगरेज़ी पढ़े-लिखे लोगों को ही ठीक रास्ता बताने का है और निरी हिन्दी जाननेवालों को इधर-उधर और भी भटकाने का है!

हिन्दी-भाषियों की यह संकटावस्था तभी दूर हो सकती है जब हिन्दी को स्वराज्य प्राप्त हो और हमारी भाषा को स्वराज्य तभी प्राप्त होगा जब सरकार नीचे लिखे उपायों को सच्चे मन से काम में लायगी—

(१) सबसे प्रधान और प्रथम उपाय यही है कि कोई भी हिन्दी-भाषी प्रदेश अन्य-भाषा-भाषी प्रदेश में मिला हुआ न रक्खा जाय। यथार्थ में प्रजा के अनेक कष्ट इसी अनमिल मिश्रण से उत्पन्न होते हैं। इधर बिहार-प्रान्त उडिया-प्रान्त के साथ और उधर मध्य-प्रदेश महाराष्ट्र-प्रान्त के साथ मिला हुआ है। इस 'गड़बड़-झाले" को दूर करने के लिए बिहार-प्रान्त संयुक्त-प्रदेश में मिला दिया जाय और संयुक्त प्रदेश के चार बुँदेलखण्डी ज़िले मध्य-प्रदेश में मिला दिये जायँ। फिर मध्य-प्रदेश में से मराठी-भाषी ज़िले निकाल कर उधर बरार, खान-देश आदि में सम्मिलित कर दिये जायँ। **भाषा के तत्त्व पर यह प्रदेश-विभाग और भी कई रीतियों से हो सकता है** जिनका उल्लेख इस समय आवश्यक नहीं जान पड़ता। अभी तो इस विषय की चर्चा का आरम्भ-मात्र है। आशा है कि समाचार-पत्र इस चर्चा को आगे बढ़ावेंगे।

(२) यद्यपि पूर्वोक्त उपाय से बहुतेरे कष्ट दूर हो सकते हैं तथापि दूसरा उपाय यह होना चाहिए कि हिन्दी का आत्म-निर्णय केवल हिन्दी-भाषियों के हाथ में रहे। इस अधिकार की रक्षा के लिए हिन्दी के काम पर कोई ऐसा कर्मचारी नियुक्त न किया जाय जिसकी मातृ-भाषा हिन्दी नहीं है या जिसने इस भाषा का योग्यतापूर्वक अध्ययन नहीं किया है। हिन्दी की विशेष योग्यता के पदों पर कर्मचारियों को नियत करने का अधिकार केवल हिन्दी-भाषी जनता ही के हाथ में रहे।

(३) कचहरियों और कौंसिलों में हिन्दी को अबाध्य स्थान दिया जाय और जो न्यायाधीश अपने निर्णय हिन्दी में लिखना चाहें उन्हें इस काम के लिए पूर्ण स्वतन्त्रता दी जाय।

(४) सर्वसाधारण के लिए जो सरकारी सूचनायें प्रकाशित की जायँ वे हिन्दी में रहें। सरकारी गज़ट हिन्दी में भी छापा जाय। सिक्कों और नोटों पर हिन्दी भी रहे।

(५) अँगरेज़ों की हिन्दी-भाषा-सम्बन्धी परीक्षा कुछ कड़ी कर दी जाय और उसके परीक्षक हिन्दी-भाषी विद्वान् रहें।

(६) हिन्दी-ग्रन्थ-प्रणयन का कार्य्य केवल हिन्दी-भाषी विद्वानों को दिया जाय।

हमारी भाषा में एक कहावत है कि "आप भले तो जग भला"। हम सरकार से अपनी भाषा के लिए उचित सत्कार की आशा तभी कर सकते हैं जब हम स्वयं उस भाषा का आदर करना सीखें। अपनी भाषा के प्रति हम लोग अपने कर्त्तव्य का पालन कर रहे हैं या नहीं, इसकी जाँच के लिए हमें नीचे लिखे प्रश्नों का उत्तर देना चाहिए—

(१) क्या हम लोग तन, मन और धन से अपनी भाषा और उसके साहित्य को बढ़ा रहे हैं ?

(२) क्या हम अपनी भाषा का अनादर देख कर उसके लिए जननी और जन्म-भूमि के उद्धार के तुल्य प्रतीकार करने को उद्यत रहते हैं ?

(३) क्या हम अपने दैनिक कार्यों में विदेशी भाषाओं के बदले अपनी मातृ-भाषा का उपयोग करते हैं ?

(४) क्या हमने कुतर्कियों का मुँह बन्द करने के लिए अपनी भाषा का पूर्ण अध्ययन किया है ?

(५) क्या हमने अपने प्रदेश में अपनी भाषा के एक-च्छत्र राज्य के लिए कभी कोई प्रयत्न किया है ?

साधारण परीक्षा के लिए ये पाँच प्रश्न बस होंगे। तात्पर्य यह कि मक्खन निकालने के लिए दही को क्या, दूध को भी विलोना पड़ता है। यह बात अलग है कि संसार के बड़े बड़े युद्ध बहुधा आराम-कुरसी पर बैठे बैठे लिखने से भी जीत लिये जाते हैं, पर उनके लिए हथियारों, सैनिकों, सेना-पतियों—और आज कल प्राणघातक आविष्कारों की भी आवश्यकता होती है। हम लोग जातीयता का उद्धार करें, राष्ट्रीयता को बढ़ावें, धर्म की उन्नति और प्रचार करें, पर भाषा को एक साधारण वस्तु न समझें। भाषा एक बड़ी भारी जीवित शक्ति है। भाषा ही इतिहास है, भाषा ही विज्ञान है, भाषा ही समाज है और भाषा ही देश है। भाषा ही में राज-भक्ति है और भाषा ही में राज-विद्रोह है। जन्म और मृत्यु भी भाषा ही में है।

दिवाकर शर्मा

मेघ।

संस्कृत-अन्योक्तियों के हिन्दी-अनुवाद के कुछ नमूने।

(१)

अमुं काल-क्षेपं त्यज जलद गम्भीरमधुरैः
किमेभिर्निर्घोषैः सृज झटिति झाङ्कारि सलिलम्।
अये पश्यावस्थामकरुणसमीरव्यतिकर-
ज्वलद्दावज्वालावलिजटिलमूर्त्तेर्विटपिनः॥

जलद मधुर गम्भीर धुनि तजि गरजनि की बानि।
'श्रीकवि' नाहक होत है कालछेप में हानि॥
कालछेप में हानि जानि उर दया धारि लै।
घोर विपति में परयो याहि तरु को उबारि लै॥
घोर बयारि-सहाय पाय पजरयो दावानल—
झुलसत, हाय! बुझाय तुरित झङ्कारि डारि जल॥

(२)

अयि जलद यदि न दास्यसि
कतिचित् त्वं चातकाय जलकणिकाः।
तदयमचिरेण भविता
सलिलाञ्जलिदानयोग्यस्ते॥

हो इहि काल दयाल तू जो न बुन्द दुइ चारि।
दै है चातक को जलद अतिशय तृषित निहारि॥
अतिशय तृषित निहारि वारिकन द्वैक न दैहो।
कालछेप कै वृथा मीत! पाछै पछितैहो॥
'श्रीकवि' या की दशा जलद तू जो नहिँ जोइहि।
तो जल-अञ्जलि-दान योग तेरो यह होइहि॥

(३)

विलपति तथा सारङ्गोऽयं भवानयमुन्नतो-
जलमपि च ते संयोगोऽयं कथञ्चिदुपस्थितः।

उपकुरु कुरु प्रह्वं चेतो न वेत्सि यदग्रतो-
जलधर पुनः क्व त्वं क्वायं क्व ते जलबिन्दवः ॥

जलधर तुम्र आगे करत यह सारङ्ग बिलाप।
तुम उन्नत अरु जलभरयो भागन भयो मिलाप ॥
भागन भयो मिलाप ताप याको हरु जल दै।
करु या को उपकार आपनी श्री को फल लै ॥
'श्रीकवि' बन्यो सँयोग आय तीनहुँ को यह भल।
फिरि यह चातक कहाँ, कहाँ तू, कहँ तेरो जल ॥

(४)

आपो विमुक्ताः क्वचिदाप एव
क्वचिन्न किञ्चिद् गरलं क्वचिच्च।
यस्मिन् विमुक्ताः प्रभवन्ति मुक्ताः
पयोद तस्मिन् विमुखः कुतस्त्वम् ॥

जलधर तेरो जल दियो कहुँ जलही रहि जात।
'श्रीकवि' कलुक न होत कहुँ कहुँ विष ह्वै दरशात ॥
कहुँ विष ह्वै दरशात पात जैसो जहँ पावत।
तहँ तैसो गुन धारि आपनो रूप दिखावत ॥
पै जहँ तेरो मुकुत तोय परि होत मुकुत फल।
ता पै तू कत विमुख होत, नहिँ देत जलद जल ॥

(५)

कर्तव्यो हृदि वर्तते यदि तरोरस्योपकारस्तदा
मा कालं गमयाम्बुवाह समये सिञ्चैनमम्भोभरैः।
शीर्णे पुष्पफले दले विगलिते मूले गते शुष्कतां
कस्मै किं हितमाचरिष्यसि परीतापस्तु ते स्यास्यति ॥

करिबो जो मन में अहै या तरु को उपकार।
तो यह काल गवाँइबो है घन वृथा विचार ॥
है घन वृथा विचार सार कालहि पीवत है।
'श्रीकवि' या को अबहि सीँचु जौ लों जीवत है ॥
जब जैहै जड़ सूख फूल फल दल शाखा जरि।
तो का करिहै, हाथ मीँजि रहिहै करुणा करि ॥

(६)

त्वमेव चातकाधार इति केषां न गोचरः।
धिगम्भोधर तस्यापि कार्पण्योक्तिं प्रतीक्षसे ॥

जलधर तू ही एक है चातक को आधार।
'श्रीकवि' यह साँची कथा विदित सकल संसार ॥
विदित सकल संसार सार यहि कौन न मानै।
यह अनन्य तजि तोहिँ अन्य काहू नहिँ जानै ॥
पै ताहू के बैन दीन परखत है तू अगर।
तो तू निपट अजान, तोहिँ धिक धिक है जलधर ॥

(७)

कालातिक्रमणं कुरुष्व तडितां विस्फूर्जितैस्त्रासय
स्फारैर्भीषणगर्जितैरतितरां कार्पण्यं मुखे दर्शय ॥
अस्यानन्यगतेः पयोद मनसो जिज्ञासया चातक—
स्याधेहि त्वमिहाखिलं तदपि न त्वत्तः परं याचते ॥

चाहै घन कितनो करै कालक्षेप सदुपाय।
'श्रीकवि' तरजै गरजि कै सरजै करकनि घाय ॥
सरजै करकनि घाय बिज्जुलरजनि डरपावै।
या मन परखन हेत कोटि विधि तू कलपावै ॥
चाहै जो करु, पै अनन्य तेरो पपिहा है।
तोहिँ तजि और न ठौर जाचिहै मरिहै चाहै ॥

(८)

हे पाथोद यथोन्नतेन भवता दिग्व्याप्ता सर्वतो-
मन्ये धीर तथा करिष्यसि खलु क्षीराब्धितुल्यं सरः।
किन्त्वेष क्षमते नहि क्षणमपि ग्रीष्मोष्मणा व्याकुलः
पाठीनादिगणस्त्वदेकशरणस्तद्वर्ष तावत् कियत् ॥

घन तू जस उनयो नयो दिशि विदिशन में छाय।
यातें जान्यो परत यह भरिहो ताल बनाय ॥
भरिहो ताल बनाय नाहि कछु संशय या मैं।
करिहो सागरसरिस याहि काहू बिरिया मैं ॥
'श्रीकवि' पै तजि दीन मीन सहि सकत न इक छन।
तब लगि थोरहु बरषि राखु याको जीवन घन ॥

(९)

आश्वास्य पर्वतकुलं तपनोष्मतप्तं
दुर्दावविह्विविधुराणि च काननानि।
नानानदीनदशतानि च पूरयित्वा
रिक्तोऽसि यज्जलद सैव तवोत्तमा श्रीः ॥

भीषम ग्रीषम-तपन-कर-तपे महीधरपुञ्ज।
पजरी दुसह दवागि सें झुलसे कानन कुञ्ज॥
झुलसे कानन कुञ्ज-पुञ्ज-वासी सब जीवन।
सरसा सश्यन हरसा कृषकन दे निज जीवन॥
'श्रीकवि' सरिसर ताल खाल शत भरि करि समगम।
रीतेहू ह्वै लसत पालि घन तू व्रत भीषम॥

(१०)

नभसि निरवलम्बे सीदता दीर्घकालं
त्वदभिमुखविसृष्टोत्तानचञ्चूपुटेन।
जलधर! तव धारा दूरतस्तावदास्तां
ध्वनिरपि मधुरस्ते न श्रुतश्चातकेन॥

जलधर तेरी ओर यह चातक चोंच उठाय।
कब सों परखत है दुखी प्यासो आस लगाय॥
प्यासो आस लगाय हाय असहाय निहारत।
निरवलम्ब नभ माँहि डीठि दै अतिशय आरत॥
'श्रीकवि' तुअ जलदान आन तो रही दूर पर;
धुनिहू मधुर न सुनी दीन चातक ने जलधर॥

(११)

कूपाम्भोऽपि पिबन्तु कूपरसिका वापीषु वापीजुषो-
नाद्येयाश्च पतत्रिणोऽपि मुदिता आस्वादयन्तामपः।
सारङ्गस्य नभोनिवेशितदृशः किन्तेन यावन्महीं-
मम्भोभिः स्नपयन्नसावुदयते न प्रावृषेण्यो घनः॥

❀

रसिया वापी कूपसर सरि-जल के खगवृन्द।
'श्रीकवि' जे, ते तहँ करैं नीरपान सानन्द॥
नीरपान सानन्द करैं विहरैं उमङ्ग भरि।
यह ते चातक को न मन्द भल इन्द वृथा करि॥
यह तो जब लगि घन न आय महि भरिहि बरसिया।
तब लगि रहिहि उपास खास वारिद को रसिया॥

(१२)

आसक्ताः प्रतिकोटरं विषधरा भानोः करा मूर्धनि
ज्वालाजालकरालदावदहनः प्रत्यङ्गमालिङ्गति।
सर्वानन्दनचारुचन्दनतरोरेतस्य जीवातवे
हे जीमूत विमुञ्च वारि बहुशो युष्मद्यशो जृम्भताम्॥

याके प्रति कोटर लगे विषधर विषम कराल।
'श्रीकवि' यहि शिर पै तपत चण्डकिरन करजाल॥
चण्डकिरन करजाल ज्वालवलयी दावानल।
झुलसत याके अङ्ग अङ्ग चन्दन है बेकल॥
याकै जीवन हेत वारि दै मेघ! मया कै।
बाढ़ै तेरो सुयशपुञ्ज जग दीनदया कै॥

(१३)

सन्तापं जगतो विलुम्पसि धरां धाराभिरासिञ्चसि
क्षेत्राण्यङ्कुरयस्यसून्मुकुलयस्यन्हाय नीपद्रुमान्।
सारङ्गस्य नभोनिवेशितदृशश्चञ्चूपुटीपूरणे
वैमुख्यं वहसि त्वमम्बुद यदि प्रत्येतु को नाम तत्॥

❀

हरत जगत-परिताप घन! भरत-भूमि जलधार।
हरित करत खेतन बहुरि मुकुलित नीप-सुडार॥
मुकुलित नीप-सुडार करत यहि को फुर मानै।
जब इक चातक-चोंच पूरियो तू नहिँ जानै॥
'श्रीकवि' जब यह तुअ अनन्य इमि रहत तृषिततर
तो मानै तोहि कौन वारिधर! लोकतापहर॥

(१४)

शोषं गते सरसि शैवलमञ्जरीणा-
मन्तस्तिमिलुठति तापविशीर्णदेहः।
अत्रान्तरे यदि न वारिद वारिपूरै-
राप्लावयेस्तदनु किं मृतमण्डनेन?॥

❀

करिहो एती कृपनई धरिहो नीर बटोर।
मरिहो घन तरसाय कै भरि हो कबै बहोर॥
भरि हो कबै बहोर घोर ग्रीषम तें तचि कै।
लोटत है यह मीन, ताल सूख्यो गरि पचि कै॥
'श्रीकवि' जो इहि काल वारि दै ताल न भरिहो।
मुए मीन पै ह्वै उदार फिरि तू का करिहो?॥

(१५)

मार्गो भूरिजलं मरुस्थलभुवि स्वप्नेऽपि नो लभ्यते
तीव्रो वाति समीरणः क्वचिदपिच्छायाभृतो न द्रुमाः॥
अङ्गारप्रकरान् किरन्निव रविर्ग्रीष्मे तपत्यम्बरे
तद्भोः पान्थहिताय पूरय धरां पाथोद! पाथोभरैः॥

जलधर मरुमारग विपुल लखि न परत कहुँ नीर।
छायातरु को नाम नहि खरतर बहत समीर॥
खरतर बहत समीर पीर अतिशय सरसावत।
ग्रीषम रवि अङ्गारभार चहुँधा बरसावत॥
'श्रीकवि' पथिकन विकल देखि भल औसर जल भर।
वरषि भूरि भरि भूमि सुहरषित दै करि जलधर॥

(१६)

दीनानामिह परिहाय शुष्कसस्या-
न्यौदार्य्यं प्रकटयतो महीधरेषु।
औन्नत्यं परममवाप्य दुर्मदस्य
ज्ञातोऽयं जलधर तावको विवेकः॥

❁

जलधर दीनन की खड़ी खेती सूखति हाय।
तू ऊपरभूधरन मैं बरसत ताहि विहाय॥
बरसत ताहि विहाय हाय! ह्वै जीवनदायक।
जग को जीवन हरत होय उन्नत अरु लायक॥
'श्रीकवि' वैभव औ विवेक नहिं रहत एकथर
यह प्रतीति निजनीति दिखाई तू ने जलधर॥

विद्यारत्न विजयानन्द त्रिपाठी
(श्रीकवि)

विमानों का भविष्य।
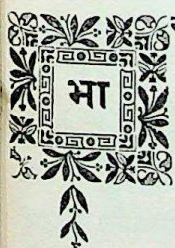
भारतवर्ष की साधारण जनता तो क्या, शिक्षित लोग भी यह नहीं जानते कि पाश्चात्य देशों ने विमान-रचना में कैसी विलक्षण उन्नति की है। गत विश्वव्यापी युद्ध में भी भारत की कुछ बड़ी बड़ी छावनियों में हवाई जहाज़ देख पड़े थे—सीतापुर, लाहौर, क्वेटा, मुलतान और रावलपिण्डी में तो उड़ते हुए विमान देखने का सौभाग्य हमें भी प्राप्त हुआ था। परन्तु उनका चढ़ना, उतरना या उनकी रचना देखने का अवसर प्राप्त होना वहाँ दुर्लभ था। सम्भव है, क्वेटा या कई अन्य स्थानों के कुछ लोगों को ऐसा अवसर भी मिला हो।

परन्तु यहाँ की व्यवस्था विचित्र है। तरह तरह के हज़ारों हवाई जहाज़ इँगलेंड, फ्रांस आदि देशों में बन चुके हैं। इँगलेंड में ही दस बारह बड़ी बड़ी कम्पनियों ने हवाई जहाज़ बनाने का काम लिया है। तीन सप्ताह पूर्व लन्दन के एक सिरे पर हेंडन के मैदान में विमानों की प्रदर्शिनी की गई थी जिसमें छोटे बड़े तरह तरह के २५० विमान दिखाये गये थे। लगभग एक लाख मनुष्य उस प्रदर्शिनी को देखने गये थे। चार घण्टे तक तमाशा होता रहा। युद्धों में विमान क्या क्या काम करते हैं—यह भली-भाँति वहाँ दिखाया गया। नगरों पर बम कैसे गिराते हैं और वहाँ के घर कैसे जलते हैं; दूसरे हवाई जहाज़ों पर गोलियाँ कैसे चलाते हैं; शत्रु-सेना को कैसे छिप कर देखते हैं या उस पर गोलाबारी कैसे की जाती है; खन्दकों में गोले छोड़ कर जहाज़ कैसे बचता है; कृत्रिम मेघों की छाया में छिपा हुआ विमानों का समूह कैसे किसी नगर पर आक्रमण करता है; कृत्रिम मेघों को तोड़ कर शत्रु-विमानों को कैसे देख सकते हैं; शत्रु के विमानों को गोलियों से कैसे नीचे गिराते हैं; यह सब लोगों को बतलाया गया। आकाश में उड़ते हुए विमानों के खेल देख कर दर्शकों को बड़ा मनोरञ्जन हुआ। वैसे तो सभी खेल कौतूहल-वर्धक थे, पर दो खेलों से दर्शकों के मनोरञ्जन की विशेष वृद्धि हुई।

एक बड़ा भारी बैलून (गुब्बारा) जिस पर मनुष्य का एक पुतला बिठाया गया था—आकाश में उड़ा। थोड़ी देर में उस पर गोलियाँ चलाई गईं; बैलून में आग लग गई; वह जलता हुआ नीचे गिरा; पर बीच ही में जल कर भस्म हो गया।

दूसरा खेल एक लड़की ने दिखाया। एक उड़ते हुए हवाई जहाज़ से रस्सी के सहारे एक लड़की भूमि पर उतर आई। आकाश में विमान उड़ रहा था। रस्सी से लटकी हुई वह लड़की भी उस विमान के साथ साथ बड़े वेग से हिल रही थी। परन्तु विमान की गति और रस्सी के हिलने से उस लड़की के उतरने में कोई बाधा नहीं हुई। वह बराबर तेज़ी से नीचे उतरती चली आई। इसी प्रकार कोई एक हज़ार फुट से रस्सी पर लटकती हुई वह भूमि पर कूद पड़ी। जब वह यह खेल दिखा रही थी तब सभी-नर-नारियों के दिल दहल रहे थे। किन्तु उसके सही सलामत पहुँचने पर आनन्द का समुद्र उमड़ पड़ा। ऐसे ही एक खेल की सूचना अमरीका से मिली है।

एक उड़ते हुए हवाई जहाज़ से रस्सी के सहारे एक लड़की उतर कर दूसरे उड़ते हुए हवाई जहाज़ पर चली गई। अठारह वर्ष की लड़की ने जिस निर्भयता और सफ़ाई से यह काम किया उसे देख कर सब लोग चकित हो गये। जब वह खेल दिखा चुकी तब लोग बड़ी देर तक उस पर तालियाँ बजाते रहे। यह खेल लड़की दस बार कर चुकी है।

इन खेलों के हो चुकने पर हवाई जहाज़ों का दिखाना बन्द नहीं हो गया। **क्रिस्टल पैलेस** (शीशमहल) में युद्ध के बड़े बड़े हवाई जहाज़ दिखाये गये। वहाँ प्रति दिन हज़ारों नर-नारी जाकर अपनी जाति के गौरवास्पद कृत्यों को देख कर उत्साहित होते हैं।

और विशेषता समझाई जाती है। हवाई जहाज़ कैसे बनाये जाते हैं, इसका सम्पूर्ण क्रम एक विभाग में दिखाया है। ऊपर आकाश से नीचे की तसवीरें कैसे ली जाती हैं, बेतार का तार जहाज़ में कैसे काम करता है, टेलीफ़ोन से बातें कैसे की जाती हैं, जहाज़ चलानेवाले और मुसाफ़िरों की रक्षा का क्या क्या सामान है, जहाज़ में आग लग जाने पर, या उसके इञ्जन के बिगड़ जाने पर किन विधियों से बचाव किया जाता है—ये सब बातें भिन्न भिन्न विभागों में दिखाई गई हैं। एञ्जीनियरिङ्ग कम्पनियों ने अपने अपने एञ्जिन दिखाये हैं और वहाँ उनके आदमी अपने एञ्जिन की विशेषतायें समझाने के लिए खड़े हुए हैं।

प्रदर्शिनी देखने के लिए छोटे बड़े सभी बड़े चाव से
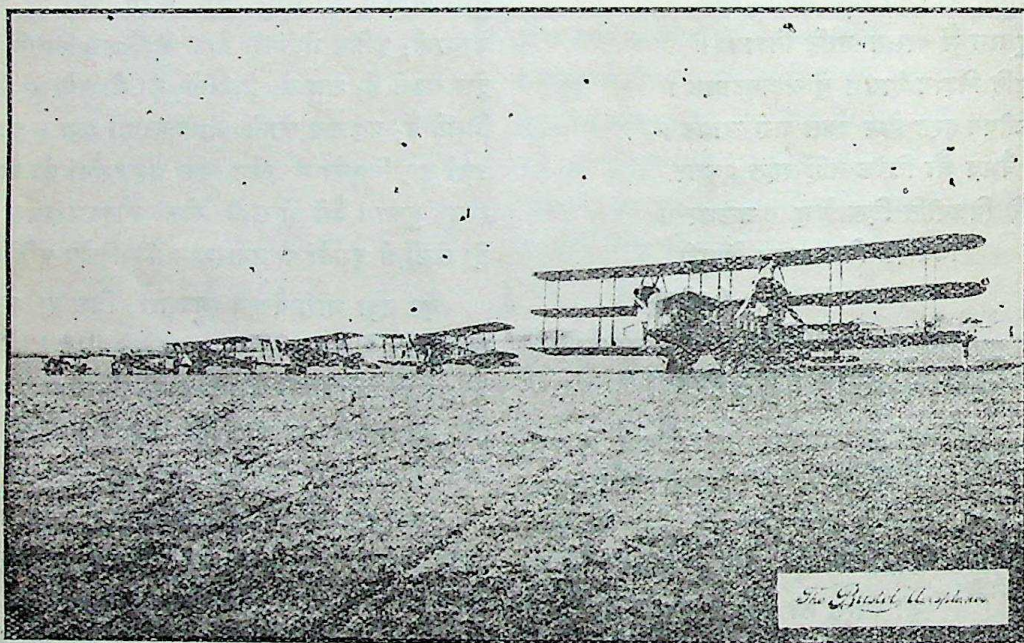
ब्रिस्टल कम्पनी के हवाई जहाज़।

इतने पर भी अन्त नहीं हुआ। **ओलिम्पिया** (Olympia) के सुप्रसिद्ध भवन में हवाई जहाज़ों की प्रदर्शिनी १० दिनों तक होती रही। इँगलेंड और स्काटलेंड की सब कम्पनियों ने (जो विमान-निर्माण का कार्य्य करती हैं) अपने जहाज़ों के नमूने वहाँ भेजे थे। एक एक विभाग में एक एक प्रकार के विमान रक्खे हैं। हर एक को देखने का अवसर है। जहाज़ों पर चढ़ा कर लोगों को उनकी रचना

जाते हैं। जब हम प्रदर्शिनी देख रहे थे तब स्पेन के महाराज भी देखने के लिए आये। उनकी सादगी देख कर चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ। उनका वेश साधारण आदमियों का सा था। आप बड़े मिलनसार और हँसमुख हैं।

पवनराज।

इस लेख में किसी एक भी कम्पनी के सभी जहाज़ों के विषय में सविस्तर नहीं लिखा जा सकता। केवल कुछ

मनोरञ्जक बातें अति संक्षेप से हम देते हैं । ब्रिस्टल कम्पनी ने छः प्रकार के जहाज़ खड़े दिखाये हैं । सबसे बड़ा (Triplane) तीन जोड़ी पङ्खवाला है और बाक़ी सब (Biplane) दो जोड़ी पङ्खवाले हैं । ट्राईप्लेन को हम **पवनराज** कह सकते हैं । उस पर १६ आदमियों के बैठने और सामान रखने आदि के लिए स्थान है । १६ कुर्सियाँ इस प्रकार रक्खी हैं कि उनके मध्य में आने जाने के लिए जगह है । हर मुसाफ़िर के पास एक शीशे की खिड़की है जिसमें से वह बाहर के सब दृश्य देख सकता है । इस पवनराज को एक तरह की रेलगाड़ी समझिए । इसमें चार एञ्जिन काम करते हैं । हर एञ्जिन में ४१० घोड़े की शक्ति है । इनके कारण इसमें रक्षा का सामान बहुत है । एक दो एञ्जिन बिगड़ जायँ तो भी जहाज़ को कोई हानि नहीं पहुँचती । ६४० मील के बेरोक सफ़र के लिए पैट्रोल रखने का सामान है । यह जहाज़ १३० मील प्रति घण्टे जा सकता है और २०,००० फ़ुट की उँचाई तक भी उड़ सकता है । इसमें आग लग जाने का डर बहुत कम है । इसे हर प्रकार से सुरक्षित और आनन्ददायक बनाने का यत्न किया गया है ।

ब्रिस्टल बालक—यह एक छोटा सा जहाज़ साधारण मोटर के समान है । इसमें एक आदमी चढ़ कर या चलानेवाले को साथ लेकर सैर के लिए जा सकता है । उसकी साधारण गति ७० मील प्रति घण्टा है । छोटे सफ़रों के लिए इससे अच्छा दूसरा जहाज़ नहीं है ।

आवरो बालक ।

ब्रिस्टल बालक का मुक़ाबला **आवरो** कम्पनी का **आवरो बालक** ही कर सकता है । इस जहाज़ की बड़ी तारीफ़ है । इसने वैसा काम भी किया है वह ७,००० फ़ुट की उँचाई पर ७५ मील की गति से जा सकता है । ६० मील प्रति घण्टा तो बड़े आराम से जाता है । ६०० फ़ुट की उँचाई पर ३५ मिनट में चढ़ जाता है । केवल ३५-४० घोड़े की शक्ति का एञ्जिन इसमें लगा है । इस पर महाशय हिंकलर रोम और ट्यूरिन तक सफ़र कर आये हैं । प्रातःकाल ३१ मई के दिन लन्दन से चल कर ९½ घण्टे में वे ट्यूरिन पहुँच गये, अर्थात् ६५० मील का सफ़र उन्होंने कर लिया । एल्प्स पर्वत के ऊपर से जाते हुए १०,००० फ़ुट की उँचाई पर से जहाज़ गया । ट्यूरिन से यह जहाज़ रोम और फिर रोम से ट्यूरिन गया । कुछ दिन वहाँ ठहर कर इँगलेंड वापस आया । यह सचमुच तारीफ़ का काम है । इसने १९१९ की एरियल डरबी (Aerial Derby) नामक दौड़ में ७० मील की गति से उड़ कर पारितोषिक प्राप्त किया ।

२४ जुलाई १९२० की एरियल डरबी अर्थात् विमानों की दौड़ में दो **आवरो बालक** उड़ाये गये । ये दो सौ मील के दो चक्कर मार करके आगये । एक प्रति घण्टा ७३ मील, दूसरा प्रति घण्टा ८० मील की गति से गया । दोनों को पारितोषिक मिले । इस दौड़ में एक आश्चर्यजनक बात यह हुई कि १६ विमानों में से मार्टिनसाइड (Martinside) कम्पनी का विमान, जिसमें ३०० घोड़े की शक्ति है, १ घण्टे और १८ मिनटों में दो सौ मील का चक्कर लगा आया—अर्थात् १५३⅘ मील प्रति घण्टे के हिसाब से साधारण तौर पर उड़ता रहा । यदि वह जहाज़ भारत से इँगलेंड की यात्रा करे तो ५,००० मील की यात्रा तै करने के लिए उसे ३३ घण्टे ही उड़ना पड़े । यदि कई स्थानों पर उतरने-चढ़ने और आराम के लिए १५ घण्टे और रख लें तो भी हम २ दिन में ही सुगमता के साथ इँगलेंड की यात्रा कर सकेंगे ।

आवरो बालक की एक तारीफ़ यह भी है कि एक यन्त्र लगा देने से यह समुद्र पर किश्ती की तरह मज़े में तैर सकता है । सारांश यह है कि दो आदमी इसमें बैठ कर आकाश में या समुद्र पर अपनी इच्छा के अनुसार विहार कर सकते हैं । इसका मूल्य भी अधिक नहीं है । सिर्फ़ ८५० पौंड; मोटरकार से थोड़ा ज़ियादह ।

विकर्ज़ कम्पनी के विमानों की भी जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है । इसके विमानों ने बड़े मार्के के काम कर दिखाये हैं । इसी के विमानों ने सबसे पहले अमेरिका से आयरलेंड तक, इँगलेंड से आस्ट्रेलिया तक, लन्दन से मध्य अफ़्रीका और केरो से दक्षिण अफ़्रीका तक निर्विघ्न यात्रा की है । इसके भ्रमण का वृत्तान्त देना व्यर्थ है । इतना ही कह देना उचित है कि

अब विमान से हम २,००० मील की यात्रा बे-खटके कर सकते हैं। जहाँ अब तक जहाज़ और रेल द्वारा जाने में महीनों लगते हैं, वहाँ कुछ दिनों में ही हम अब आ जा सकेंगे। जहाँ आबादी न होने से अथवा पर्वत या रेतीले मैदानों के कारण रेल ले जाना कठिन है, वहाँ भी इन विमानों के द्वारा मनुष्य मज़े में चला जा सकता है।

वह दिन कितना विचित्र होगा जब लोग भारत से इँगलेंड तक तीन दिन में, इँगलेंड से आस्ट्रेलिया ५-६ दिन में, इँगलेंड से अमेरिका १२ घण्टे में पहुँच जाया करेंगे! किन्तु वह दिन दूर नहीं। दो ही तीन वर्ष में

कलकत्ते से रङ्गून जाने में सात दिन लगते हैं। पर विमान पर यह कुछ ही घण्टों का सफ़र होगा! गर्मियों के मौसम में नैनीताल, दार्जिलिङ्ग, कसौली, शिमला, मसूरी, मरी, डलहौज़ी, क्वेटा आदि स्थान भी सुगम हो जायँगे।

काश्मीर, क्वेटा या पेशावर के फल सारे देश में केवल एक दिन में ही दूर दूर पहुँच सकेंगे। आज-कल जो फलों की रेल गाड़ियाँ चलती हैं उनमें देरी हो जाने से फल सड़ जाते हैं। पर विमानों के द्वारा ताज़े फल सब जगह मिल सकेंगे।
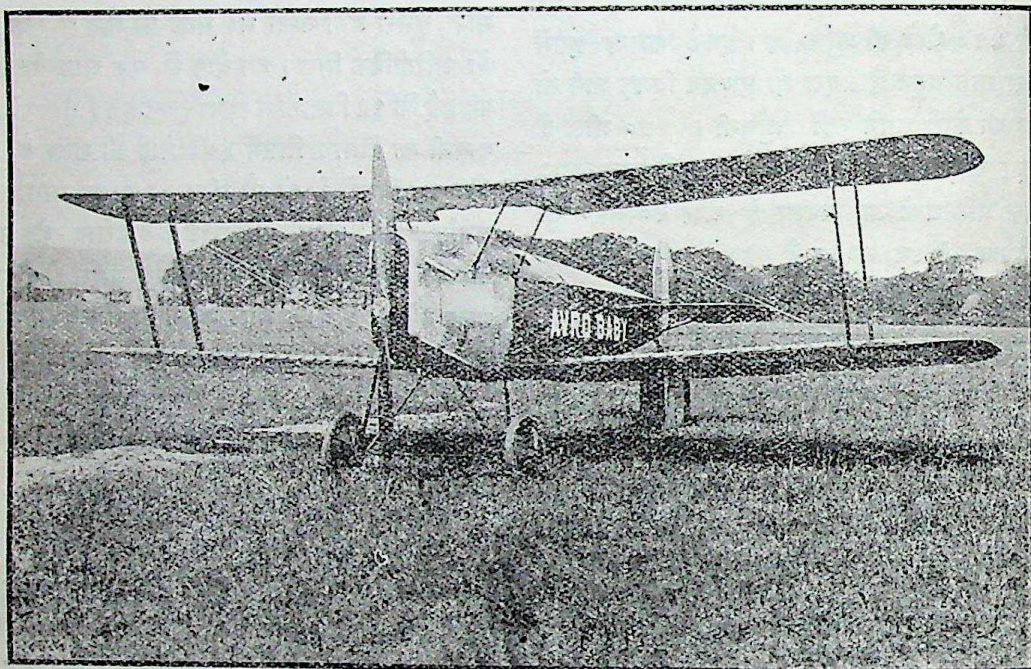
आवरो बालक नामक हवाई जहाज़।

यह सम्भव हो जायगा और ४-५ वर्ष में साधारण जनता के लिए भी ऐसी यात्राओं के साधन सुलभ हो जायँगे।

भारतवर्ष के समान विशाल देशों में तो विमानों की बड़ी ही आवश्यकता है। वहाँ डाक गाड़ियों पर पेशावर से बम्बई या कलकत्ते जाने में चार दिन लग जाते हैं। काश्मीर से रामेश्वर जाने के लिए तो लगभग दो सप्ताह चाहिए! क्या ही अच्छा होगा जब इन लम्बे सफ़रों को हम १ दिन में ही बड़ी सुगमता से कर लिया करेंगे!

वह दिन दूर नहीं जब रामेश्वर का यात्री हरद्वार में स्नान करने के लिए शनिवार को प्रातःकाल चल कर, आदित्यवार को स्नान करके, सोमवार को प्रातःकाल घर वापिस पहुँच जावेगा। अमरनाथ, बदरीनाथ, द्वारका, जगन्नाथ, थानेश्वर आदि तीर्थ-स्थानों की यात्रायें आज-कल के समान कष्ट-दायक न रहेंगी। उनके लिए महीनों तक घर-बार और काम-काज छोड़ने की आवश्यकता न होगी।

राजों महाराजों का कर्त्तव्य—विमानों की यात्रा

को सफल करने—लोगों के दिलों से भय हटाने और विमान चलाने तथा बनाने में राजों महाराजों को आगे बढ़ना चाहिए। यदि ३० बड़ी बड़ी रियासतें भी एक एक दो दो विमान अपनी और जनता की सवारी के लिए ख़रीद लें तो बड़ा लाभ हो। १००० से ३००० पौंड में अच्छे विमान आ सकते हैं। इँगलेंड में तो १,००,००० पौंड डेली मेल जैसे पत्र पारितोषिक में दे डालते हैं। आस्ट्रेलिया की गवर्नमेंट ने १०,००० पौंड का इनाम दिया था। क्या हमारे नरेश इस शुभ कार्य्य में शरीक न होंगे? २ या ३ हज़ार पौंड किसी नरेश के लिए क्या चीज़ है? अपने और अपनी प्रजाओं के लाभ के लिए ऐसे कामों में उन्हें पीछे न रहना चाहिए।

सेठ साहूकारों के लिए अवसर—हम ऊपर बतला चुके हैं कि भारत में विमानों की कितनी आवश्यकता है। यदि कुछ धनी जन खुद या कम्पनियाँ बना कर इस काम को हाथ में लें तो उन्हें अवश्य लाभ होगा। उन्हें ऐसा अवसर हाथ से न खोना चाहिए। अभी तो यह काम खुला पड़ा है। थोड़े ही समय के बाद इस पर भी कोई अँगरेज़ कम्पनी कब्ज़ा कर लेगी। तब उनके लिए इस व्यवसाय का भी द्वार बन्द हो जायगा।

योरप में बड़ी शीघ्रता से यह कार्य्य बढ़ेगा। लन्दन से हालेंड, पेरिस और स्विटज़रलेंड तक तो हवाई जहाज़ आने-जाने लगे हैं। प्रति दिन दो बार विमान इन देशों को जाते हैं। धीरे धीरे किराये भी कम हो रहे हैं। फ़ांस आदि देशों में विमान द्वारा पत्र भेजने में २ शिलिङ्ग का टिकट लगाना पड़ता था। अब साधारण टिकट से २ पैन्स = ८ पैसे का अधिक टिकट लगाने से विमानों पर पत्र जाया करेंगे। भारतवर्ष की डाक के लिए भी यही नियम है। सायङ्काल तक रेल के द्वारा जो पत्र न जा सकते हों—२ पैसे का अधिक टिकट लगा देने से रात के १२ बजे तक पत्र डाल सकेंगे! इस प्रकार आशा है कि थोड़े समय में ही विमानों से आने जाने का ख़र्च कम हो जायगा।

लन्दन में कई कम्पनियों ने सैर कराने का काम ले रक्खा है। एक गिनी = ११ रुपये देकर १८ मील का चक्कर विमान पर हम लगा सकते हैं। भारतवर्ष के बड़े नगरों, जैसे बम्बई, मदरास, कलकत्ता, देहली, लखनऊ, कराची में दो दो विमान रख कर लोगों को सैर कराने का काम हाथ में लिया जाय, तो विमानों की सवारी से जनता का भय हट जायगा। इससे अधिक परिचय होने से लोग लम्बे सफ़रों के लिए तैयार हो सकेंगे। साथ ही, कई भारतीय युवक विमान चलाने का काम सीख सकेंगे। पहले पहल तो हमें सभी कामों के लिए अँगरेज़ रखने पड़ेंगे। परन्तु एक वर्ष में ही कई युवक काम सीख जायँगे। इससे हम सभी तरह के लाभ उठा सकेंगे और हमारी मातृभूमि भी उन्नति-पथ पर अग्रसर हो जायगी।

बालकृष्ण, एम० ए०
(लन्दन)

अनुरोध।

प्रभो, तुम कब होगे गुणवान।
निर्गुण ही तुमको कहते हैं जग के सब विद्वान।

भले बुरे का ज्ञान नहीं है,
नीचों की पहचान नहीं है,
तुममें कुछ अभिमान नहीं है, सबमें एक समान।

निराकार हो रूप छिपाते,
अन्तर्यामी होकर आते,
सम्मुख होने में भय पाते, तुम हो नाथ महान।

विश्वम्भर तुमको सब कहते,
लक्ष्मीपति भी बन कर रहते,
फिर दीनों से स्नेह जोड़ते, है इसमें अपमान।

सबकी यही विनय है प्रभुवर,
अपना माया-जाल तोड़ कर,
एक बार इस अवनी-तल पर आओ हे भगवान।

पदुमलाल पुन्नालाल बख़्शी, बी० ए०

काशिनाथ रघुनाथ मित्र।

उद्यमेन हि सिद्ध्यन्ति कार्य्याणि न मनोरथैः।
न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः॥

विष्णु शर्म्मा का यह वचन बहुत ठीक है। उद्योग से क्या नहीं हो सकता? पास कौड़ी न होने पर भी, उद्योग करने से, मनुष्य करोड़-पति हो सकता है। सर्वथा असहाय होने पर भी, उद्योग के बल पर, मनुष्य संसार को अपना अनुगत बना सकता है। विशेष विद्या-प्राप्ति न करने पर भी, उद्योग की बदौलत, मनुष्य ऐसे ऐसे काम कर दिखाता है जो बड़े बड़े विद्या-दिग्गजों से भी नहीं हो सकते। छः रुपया महीना तनख़्वाह पानेवाले, देहाती मदरसे के एक मुदर्रिस, ने भी अपने सतत उद्योग से कुछ कुछ ऐसा ही आश्चर्य्य-जनक काम कर दिखाया है। इस मुदर्रिस का नाम था—काशिनाथ रघुनाथ मित्र।

दक्षिण के कोंकण-प्रान्त में एक ज़िला रत्नागिरी है। उस ज़िले के आज-गाँव नामक एक छोटे से गाँव में काशिनाथ का जन्म १८७१ ईसवी में हुआ। घर में ग़रीबी थी। काशिनाथ के पिता उनके बाल्यकाल ही में परलोक पधार गये। यह और भी दुर्भाग्य की बात हुई। काशिनाथ ने अपने ही गाँव के मदरसे में शिक्षा पाई। अँगरेज़ी की नहीं, केवल मराठी की। छठा दरजा किसी तरह उन्होंने पास कर लिया। उसके आगे पढ़ाई का प्रबन्ध वहाँ था ही नहीं। अब क्या हो? कुछ नहीं। पेट-पूजा के लिए सेवा-वृत्ति स्वीकार करने के सिवा और कोई उपाय ही न था। काशिनाथ वेंगुरला नामक क़सबे को चले गये वहाँ की मराठी-पाठशाला में नौकरी पाने की चेष्टा की। चेष्टा सफल हुई। आप ६) महीने पर नायब मुदर्रिस हो गये। दिन में ६ घण्टे तो वे छोटे छोटे बच्चों के साथ सिरखपी करते और रात को अँगरेज़ी जाननेवालों के यहाँ जा जाकर अँगरेज़ी पढ़ते। इस तरह धीरे धीरे वे थोड़ी सी अँगरेज़ी भी पढ़ गये। पर यह क्रम बहुत दिन नहीं चल सका। तनख़्वाह कम होने के कारण उन्हें वेंगुरला छोड़ना पड़ा। छोड़ने का कारण यह भी हुआ कि काशिनाथ ने एक मासिक पत्र निकालने की इच्छा की। बात यह हुई कि उन्हें अख़बार पढ़ने का बड़ा शौक़ था—विशेष करके केसरी और सुधारक। इनके सिवा मराठी की और भी पत्र-पत्रिकायें वे ध्यान से पढ़ते थे। उन्होंने कहा, चलो बम्बई चलें। वहाँ कोई और उद्योग ऐसा करें जिससे कुछ अधिक पैसे भी मिलें और साथ ही पत्र निकालने की इच्छापूर्ति के प्रयत्न की ओर भी कुछ आगे बढ़ें।

१८९३ ईसवी में वे बम्बई आये। कुछ दिन वहाँ भी एक मराठी मदरसे में शिक्षक का काम किया। फिर किसी महाजन के यहाँ उन्हें कोई काम मिला। तदनन्तर "प्रभाकर" नामक मराठी के दैनिक पत्र के वे रिपोर्टर हुए। कुछ समय तक एक मासिक पत्र के लिए ग्राहक बनाने का काम भी अपने सिर लिया। इन पिछले व्यवसायों के कारण उनके मन में पत्र निकालने की जो अभिलाषा थी वह और भी पल्लवित हो उठी। अन्त में, १८९५ के आरम्भ से, उन्होंने मासिक मनोरञ्जन नामक एक सचित्र मासिक पत्र मराठी में निकाल ही दिया। इस नाम के जो दो एक पत्र हिन्दी में इस प्रान्त से प्रकाशित होते हैं अथवा हो चुके हैं उनके नामकरण का मूल इसी मराठी पत्र को समझना चाहिए। यदि हम भूलते नहीं तो कुछ समय पूर्व किसी ने इस पत्र का एक हिन्दी-रूपान्तर भी निकालना शुरू किया था। पर शायद चला नहीं, और चले भी कैसे? सभी तो काशिनाथ नहीं।

मासिक मनोरञ्जन निकला, पर छोटे आकार

के सिर्फ़ १२ पृष्ठ उसमें रक्खे गये। और मूल्य? केवल ॥) साल! काशिनाथ ने इस पत्र को ऐसी योग्यता से चलाया कि साल ही भर में उसके २००० ग्राहक हो गये। फिर क्या था। उसकी दिन पर दिन उन्नति होने लगी। अपने पत्र को सर्वसाधारण के लिए रुचिकर बनाने की इच्छा से काशिनाथ ने पहले गुजराती और फिर बँगला भाषा सीखी। इन भाषाओं के पत्रों से भी अच्छे अच्छे लेख—विशेष करके कहानियाँ—वे अपने पत्र

काशिनाथ रघुनाथ मित्र।

में देने लगे। हिन्दी वे पढ़ और समझ लेते ही थे। सरस्वती में प्रकाशित कहानियों पर भी उन्होंने कई बार हमले किये। अँगरेज़ी में भी तब तक उनकी बहुत कुछ गति हो चुकी थी। अतएव उस भाषा के भी पत्रों से मनमाने लेख लेकर उनके अनुवाद और सारांश वे अपने पत्र में प्रकाशित करने लगे। अनुभव से वे जान गये थे कि किस प्रकार के लेख लोग अधिक पसन्द करते हैं और कैसी भाषा लिखने से लोग उनके लेख चाव से पढ़ते हैं। उन्होंने सदा ऐसे ही मनोरञ्जक और बहुजनोपयोगी लेख प्रकाशित किये जिन्हें स्त्रियाँ और बच्चे तक प्रेम से पढ़ें। यह कुञ्जी हाथ लग जाने से उन्हें बड़ी सफलता हुई। मनोरञ्जन का प्रचार बढ़ता ही गया और उसे वे धीरे धीरे उन्नति की ओर खिसकाते ही चले गये। स्त्री-शिक्षा के वे बड़े पक्षपाती थे। अतएव स्त्रियों के पसन्द आने योग्य लेख उन्होंने अधिक प्रकाशित करना अपना कर्त्तव्य समझा। पहले पहल सारा पत्र उन्हीं को लिखना पड़ता था। पर पीछे से बड़े बड़े पदवीधर तक मनोरञ्जन के लेखक हो गये। कई विदुषी स्त्रियाँ भी उसमें लेख देने लगीं।

मनोरञ्जन सचित्र तो था ही। क्रम क्रम से चित्रों की संख्या बढ़ने लगी और चित्र भी अच्छे निकलने लगे। उधर पत्र का आकार भी बढ़ गया और पृष्ठ-संख्या भी धीरे धीरे यहाँ तक बढ़ी कि पहले से कोई दस-गुनी हो गई। मूल्य ॥) से ४=) तक हो गया।

कुछ समय के उपरान्त काशिनाथ, समय समय पर, अपने पत्र के विशेषाङ्क भी बड़ी सजधज से निकालने लगे। एक पुस्तक-माला का प्रकाशन आरम्भ करके उन्होंने अनेक अच्छी अच्छी पुस्तकें भी प्रकाशित कीं। पर इतने से भी उन्हें सन्तोष न हुआ। उनका पत्र दूसरों के प्रेस में छपता था। पुस्तकें भी उन्हें अन्यत्र छपानी पड़ती थीं। इससे हानि होती थी; देर लगती थी और अनेक विघ्न बाधायें झेलनी पड़ती थीं; अतएव उन्होंने अपना प्रेस भी करने का निश्चय किया और एक ऐसी

योजना निकाली कि उन्हें काफ़ी रुपया मिल गया। यह रुपया उन्होंने कुछ तो अब तक जिसका था उसे लौटा दिया है और कुछ आगे चल कर लौटा दिया जायगा। आपका प्रेस, सुनते हैं, बहुत अच्छा है और अच्छे से अच्छा काम देता है।

अपने व्यवसाय को उन्नत करने—मनोरञ्जन को पहले दरजे का मासिक पत्र बनाने—के लिए उन्होंने अजस्र श्रम किया। कभी कभी तो उन्हें काफ़ी नींद लेना भी हराम हो गया। व्यायाम किया नहीं; दिमाग़ को विश्रान्ति दी नहीं। फल यह हुआ कि उनका हाज़मा बिगड़ गया। उसके कोष से और भी कुछ रोग उत्पन्न हो गये। अन्त में पेट के भीतर एक फोड़ा निकल आया। उस पर शस्त्र-क्रिया की गई और उसी से उनका निधन हो गया। यह दुर्घटना २३ जून १९२० को हुई।

काशिनाथ अपने प्रेस और पत्र के सञ्चालन की अच्छी व्यवस्था कर गये हैं। आशा है वे दोनों ही पूर्ववत् चलते रहेंगे। अब शायद उनके छोटे भाई उनका काम-काज देखते हैं।

काशिनाथ रघुनाथ मित्र के उदाहरण से यह सिद्ध है कि मनुष्य यदि अपनी धुन का पक्का हो—यदि वह जी लगा कर उद्योग करे और परिश्रम से न डरे—तो कोई काम ऐसा नहीं जिसमें उसे सफलता न हो।

मानव-चरित्र।

(१)

जिस समय मेरा दूसरा विवाह हुआ था उस समय मुझे ज़रा भी परिताप न हुआ था। बात यह थी कि पहला विवाह माता की प्रसन्नता के लिए पिता ने, जब मैं १३ वर्ष का था, कर दिया था और द्विरागमन से पहले ही मेरी मानों तन्द्रा में पाणिगृहीता स्त्री अपने बाप के यहाँ हैज़ा करके मर गई थी। मुझे बारात की याद है, नाच की याद है, आतिशबाज़ी की याद है; विवाह की याद नहीं। आधी रात के बाद कुछ आदमी मुझे जगा कर ससुराल ले गये थे और वहाँ से सुबह होते होते फिर मुझे जगा लाये थे। मैं क़रीब क़रीब सोता रहा था। जो कुछ वहाँ हुआ वह सब मैंने बेहोशी में किया। इसलिए उसकी याद नहीं। पहली स्त्री के मरने का जिस दिन ख़त आया उस दिन माता रोईं; मैं हँसा। बाप सुस्त हुए कि फिर फ़िक्र करनी पड़ेगी। उस समय मेरी आयु १५ वर्ष की थी। मिडिल में दो बार फेल हो चुका था।

माता ने बहुत कुछ कहा, पर पिता इस बार अपनी बात पर अड़ गये। उन्होंने कहा, लड़का जब इंट्रेंस पास हो जायगा तब उसका ब्याह करूँगा। माँ ने रूठ कर कहा—पास नहीं होगा तो ब्याह भी न होगा। पिता ने कुछ ढीले पड़ कर कहा—पास क्यों न होगा। सब्र करो।

पिता ने घर की ग़रीबी का अपमान किया था; ठेकेदारी में ख़ूब धन पैदा किया था। पर इतना नहीं कि हम लोग हाथ पर हाथ रखे बैठे रहते और अकर्मण्यताभरी अमीरी में अजीर्ण जैसे रोगों का शिकार बन जाते। ईमानदार ठेकेदारों में उनका नाम सबके पहले आता था। एक जगह और पहले आता था—कंजूसों में। न किसी का रखते थे, न किसी को बख़्शते थे। अपने सिद्धान्तों में अटल थे। बड़े भाई को ठेकेदारी में डाल दिया था। मुझे पढ़ा रहे थे। सोचते थे इञ्जीनियर बनाऊँगा।

मेरे एक साथी लड़के ने एक बार उनसे कहा—इस बार इनके (मेरे) लिए एक मास्टर रख दीजिए।

पिताजी ने उत्तर दिया—स्कूल में भी तो मास्टर ही पढ़ाते हैं। घर पर वैसा कौन पढ़ा सकता है। लड़का समझ कर पढ़े और मिहनत करे तो घर पर न मास्टर की ज़रूरत है और न मौलवी की।

वह चुप हो गया, क्योंकि पिताजी का स्वर क्रोध की कठोरता के कारण खरखरा हो चला था। ओवरसियर का लड़का होने के कारण जब वह उठा तब पिताजी ने अपनी कर्कशता का श्राद्ध करने के लिए उससे मुसकरा

कर कहा—मालूम होता है मेरा मतलब तुम समझ गये। कहो, बाबू दौरे से लौटे या नहीं ?

वह संक्षेप में उत्तर देकर और खिसिया कर चला गया।

(२)

बीस साल की उम्र में जाकर कहीं मेरी नाव पार लगी। मैं इंट्रेंस पास हुआ। गज़ट की जिस संख्या में मेरा नाम उत्तीर्ण विद्यार्थियों की सूची में आया था उसी में मेरे सहपाठी, ओवरसियर के पुत्र, महेश का नाम बी० ए० के उत्तीर्ण विद्यार्थियों में से पहले ५ में था। यह देख कर मुझे अपने पास होने की उतनी खुशी न हुई। महेश को बी० ए० पास करने के लिए क्या यही साल रह गया था। एक बार फेल हो जाने से उसकी ज़ात में क्या बट्टा लग जाता! मैं दूसरे साल पास हुआ था। लोग मुझे बधाई देने आने लगे और सुस्त देख कर कहने लगे—भाई बहुत से लड़के चार चार बार परीक्षा देते हैं और पास नहीं होते। मैंने मन में कहा—बहुत से लड़के पैदा होते ही मर जाते हैं।

मैंने सोचा था कि पास हूँगा तो यह करूँगा, वह करूँगा। पर महेश की सफलता ने मेरे उत्साह को जड़ से उखाड़ दिया। शाम को पिताजी आये तो मेरी सफलता पर बड़े प्रसन्न हुए और मेरी माता से बोले—कहो लड़का इंट्रेंस पास हुआ या नहीं। तुम मेरी जान खाये जाती थीं। अब इसी साल लड़के का ब्याह करो। मैंने इधर उधर की बातें करके पिताजी से महेश के बी० ए० में अच्छे नम्बरों से पास होने का समाचार भरसक अपने चेहरे को खुश बना कर कहा। पिताजी का चेहरा मेरी बात सुन कर दमकने लगा और उनके मुँह से उसकी तारीफ़ों का सोता बहने लगा। मैं जल कर ख़ाक हो गया। मैं समझा था वे उस बात को बे-ज़रूरी समझ कर योंही उड़ा देंगे और कम से कम इस उपेक्षा से ही मेरे हृदय को शान्ति मिलेगी। पर पिता को नीचाशय पुत्र के क्षुद्र हृदय का क्या पता था। मैंने उनसे ज़िक्र करके और एक पाप लगा लिया। महेश के पिता कई वर्ष हुए बदल गये थे। महल्ले के काम-काजी लोग उन्हें भूल चले थे। मगर पिताजी के सामने होकर महल्ले का कोई पढ़ा लिखा या ओवरसियर का परिचित आदमी निकलता तो वे उसे बुला कर ओवरसियर के भाग्य की सराहना करके महेश के पास होने का समाचार सुनाते और उस की होनेवाली उन्नति की कल्पना करके बड़े प्रसन्न होते।

यह दशा क्यों दुर्दशा देख कर मुझसे न रहा गया। मैं बहन से मिलने का बहाना करके कुछ दिनों के लिए घर से टल गया।

(३)

अगले सहालग में मेरा विवाह शहर में ही एक जगह होगया। कई जगह से बातचीत चल रही थी। पर माता ने एक ग़रीब घराने की ख़ूबसूरत लड़की को मेरे लिए पसन्द किया। मैंने भी अनुमति दे दी। विवाह हो गया। स्त्री के सुन्दर रूप और उससे भी सुन्दर व्यवहारों ने मुझे उसका अनन्यभक्त बना दिया। मैंने समझा कि बस मनुष्य-जीवन की सार्थकता हो गई। मैं अपने प्रेम की बातें अपने कुछ मित्रों को भी सुनाता था। माता हमारे सुख को देख कर फूली न समाती थी। पर पिताजी कुछ गम्भीर हो चले थे। मेरी बेकारी उन्हें एक आँख न भाती थी। आख़िर उन्होंने मुझे जङ्गलात के महकमे में क्लार्क करा ही दिया और मुझे अपनी प्रेम की जीवित प्रतिमा पत्नी को छोड़ कर चकराते जाना पड़ा।

कोई ७ वर्ष बीत गये। पारिवारिक जीवन में भारी अन्तर पड़ गया। माता-पिता चल बसे। अब मैं दो सन्तानों का पिता, अपने हाथ से कमाये कई हज़ार रुपयों का मालिक था। मैंने अपनी स्त्री को ख़ूब भारी भारी ज़ेवर बनवाये, बढ़िया बढ़िया कपड़े दिये, पर सफ़ाई वहाँ भी न थी। १० तोले के कड़े बनवाता तो १५ के बताता था और ४० की साड़ी मेरे हाथ में आते ही ६० की हो जाती थी।

उस दिन डिपुटी कन्सर्वेटर साहब हमारे यहाँ मुआयना करने के लिए आने को थे। दफ़्तर ख़ूब साफ़ किया गया था। बड़े बाबू की मैली मेज़ के भी उस दिन भाग्य खुल गये थे। ठेकेदारों की कुछ शिकायतें थीं। उन्हें भी डिपुटी साहब फ़ैसल करने को थे।

११ बजे डिपुटी साहब का मोटर आया। मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब उसमें से पेशकार के साथ डिपुटी के रूप में महेश उतरा। महेश गोरा था। अब

साहबी ठाठ में उसे कोई न पहचान सकता था कि यह हिन्दुस्तानी है। किन्तु मैं उसके साथ ४ वर्ष तक रहा था। मैंने उसे उतरते ही पहचान लिया। बड़े बाबू उसे बड़े आदर के साथ अन्दर ले गये। उसने बड़ा कड़ा निरीक्षण किया। ठेकेदारों की मुर्गी और डाली तो उसने पहले ही लौटा दी थी। इसकी ख़बर तो उसके आने से पहले ही दफ़्तर में पहुँच गई थी। बड़े बाबू की दावत भी उसने स्वीकार न की।

मैं अपनी जगह पर बैठा तमाशा देख रहा था। बड़े बाबू सख़्त परेशान थे। और बाबुओं के भी मुँह उतर रहे थे। मैं भी पाप की कमाई में हिस्सेदार था। पर हाथ पाँव बचा कर चलता था। इसलिए मज़े में बैठा हुआ पेन्सिल से कान कुरेद रहा था। उठते समय उसकी दृष्टि मुझ पर भी पड़ी और उसने कुछ पहचान कर मुझसे पूछा—"हरनाथ, तुम यहाँ क्लर्क हो?"

मैंने कहा—जी हुज़ूर।

उसने मुसकरा कर कहा—किस जगह रहते हो?

मैंने कहा—बड़े बाज़ार में।

'अच्छा शाम को तुम्हारे मकान पर आऊँगा' कह कर वह मोटर में सवार हो गया। अब क्या था दफ़्तर के बाबुओं ने मुझे घेर लिया। 'भई, बड़े उस्ताद हो, डिपुटी साहब से इतनी गहरी मित्रता है और आज तक पता न दिया।' बड़े बाबू भी लोभपूर्ण दृष्टि से कहने लगे—'हरनाथ, यह बड़ी अच्छी बात हुई कि डिपुटी साहब तुम्हारे मित्र निकल आये। इनसे ठेकेदारों की शिकायत के मामले को, 'हश अप' कराओ; नहीं बड़ी बदनामी होगी और साथ ही हानि भी। मुझे डिपुटी साहब के रङ्ग-ढङ्ग अच्छे नहीं मालूम होते।'

मैंने सबको सच सच बता दिया कि मुझे आज दोपहर तक यह मालूम न था कि महेश डिपुटी होकर यहाँ आता है। कोई ६ वर्ष से मेरा उसका पत्र-व्यवहार तक नहीं है।

(४)

पहले तो मैंने सोचा कि शाम को महेश खुद ही आवेगा। मकान चलूँ। फिर तबीयत ने न माना। मैं डाक बँगले पहुँच गया। चपरासी बाहर बैठा था। उसने झुक कर सलाम किया और नाम का कार्ड माँगा। मेरे पास कार्ड न था। मैंने अपना नाम बता कर कहा—बस यही कह देना। चपरासी के लौटने से पहले ही महेश, जो अब धोती-कमीज़ पहने पूरा हिन्दुस्तानी बना हुआ था, निकल आया। उसने कहा—"हरस्वरूप आओ भाई। आज बहुत दिन बाद मिले और अकस्मात् मिले।" वह मुझे कमरे में ले गया। वहाँ मैंने देखा कि एक स्त्री बैठी पुस्तक पढ़ रही है। उसे देख कर मेरे मन में न मालूम क्या क्या आने लगा। इतने में ही उसने कहा—हरस्वरूप, मैं तुम्हारा परिचय अपनी स्त्री से कराता हूँ।

परिचय होने पर मैंने जाना कि वह महेश की स्त्री है। मैट्रिक है और बहुत होशियार है। पर मेरी स्त्री की तरह खूबसूरत नहीं है।

उसकी स्त्री किसी बहाने से दूसरे कमरे में चली गई और हमारी बहुत देर तक बातें घुटती रहीं। उसने पिछले ६ वर्ष का इतिहास बड़ी सरलता से कह सुनाया। उसकी सरलता और सचाई देख कर मेरा हृदय बलहीन हो गया और इसी लिए मैं दफ़्तर के सम्बन्ध में कुछ न कह सका। कोई १॥ घण्टे बाद मैं उठा। उसने कहा—शाम को मैं तुम्हारे पास आऊँगा।

मैंने कहा—हुज़ूर क्यों तकलीफ़ फ़रमाते हैं।

उसने कहा—क्या बकते हो, हज़ूर हज़ूर! क्या मुझे तुम अपना मित्र नहीं समझते। दफ़्तर में तो मैं चुप हो गया था। इस आदत को छोड़ो। यह गुलामी की पहचान है। अँगरेज़ का बाप आये तो भी हज़ूर मत कहो। पर अपना काम ईमानदारी से करो। आत्म-गौरव बड़ी चीज़ है।

मैंने कहा—भई तुम्हारा अर्दली खड़ा था, इसलिए कह दिया। अन्दर तो मैंने एक बार भी हज़ूर नहीं कहा।

उसने कहा—यह भी एक तरह की कमज़ोरी है। अच्छा—नमस्ते।

(५)

मैं बड़े झगड़े में पड़ गया। शाम को महेश आ गया। मैं उससे अपनी स्त्री की योग्यता और उसके रूप की बड़ी प्रशंसा और निश्चय ही सच्ची प्रशंसा कर आया हूँ। वा-

इससे मिलना चाहेगा। उस समय क्या उचित होगा। आख़िर मैंने अपने दिमाग़ के भाड़ से जहाँ ईर्ष्या की आग हर समय जलती रहती थी विचारों का भुर्ता इसी रूप में निकाला कि उससे स्त्री का परिचय कराना ठीक नहीं। वह बड़ा आदमी है। मैं छोटा हूँ। उसके पास सुख के अनेक साधन हैं—विद्या है, बल है, सभी कुछ है। मेरे पास जो कुछ है वह अपूर्ण है। हाय न उसके ऊपर विश्वास हुआ और न अपनी साध्वी स्त्री पर।

शाम को महेश आया। मैंने बाहर की कोठरी में उसकी मेहमानदारी का प्रबन्ध कर छोड़ा था। उसने कहा—मैं अपनी स्त्री को भी लाता था, किन्तु उसे कुछ ज्वर हो गया। उसे भी न आ सकने का दुःख है।

फिर उसने खूब बातें कीं। खाना खाया। मेरे बच्चों को प्यार किया। उन्हें एक गिनी दी।

उसने न मालूम मेरे मनोभाव को किस तरह ताड़ लिया कि उसने मेरी स्त्री से मिलने की इच्छा को प्रकट ही न किया। हँसी खुशी वह ६ बजे चला गया और मैंने समझा कि ग्रह टला। मेरा दिल न मालूम क्यों दबा जाता था।

(६)

पन्द्रह दिन बाद हुक्म आया कि हेड क्लर्क का दर्जा तोड़ दिया गया। वह सेकेण्ड क्लर्क बना कर नैनीताल भेजा गया। और क्लर्कों पर भी आफ़त आई। मैं चकराते ही रहा; पर तनख़्वाह में पांच घट गये और भविष्य में सावधान रहने की सूचना मिली। मेरे साथी कहने लगे—तुम्हारे मित्र ने खूब रिआयत की। मैंने उन लोगों से झूठ मूठ कह दिया था कि मैंने सिफ़ारिश कर दी है। मुझसे अब भी न हुआ कि सच बात कह दूँ और उन्हें धोखे में न रक्खूँ। मैंने कीचड़ को कीचड़ से साफ़ किया—कहा—बड़े आदमी हैं, कुछ कहते हैं, कुछ करते हैं।

उस दिन चित्त बहुत दुखी था। महेश को मेरा वेतन तो न घटाना था। मैं समझता था, यह उसने अन्याय किया। पर मेरे मन में ही मेरा शत्रु छिपा हुआ था, जो उसके पक्ष में था और मुझे असह्य यातना पहुँचाता था।

उस दिन मैंने अपनी स्त्री से सब बातें खोल कर कहीं। उसे मेरी तनख़्वाह घटने पर दुःख हुआ, किन्तु उसने महेश को दोषी न ठहराया। मैं अपनी स्त्री से सदा यही कहा करता था कि तुझसे अधिक प्रेम मैं संसार में किसी से नहीं करता हूँ; तू ही मेरी आराध्य देवता है। वह सुन कर चुप हो जाती थी। मैं समझता था कि बस बाज़ी मार ली। अपने प्रेम का उसे विश्वास दिला दिया। उससे जितनी बातें होती थीं उनमें इसी तरह की बातों का आधिक्य होता था। पर आज जो उससे मानव-चरित्र पर बातचीत चल पड़ी तो मुझे मालूम हुआ कि मेरी स्त्री की धारणा इस विषय में मुझसे कहीं ऊँची है। हाय, उस समय भी यदि अपनी मानसिक हीनता का पता चल जाता।

कई सन्तानों की माता होने से मेरी स्त्री का स्वास्थ्य ख़राब हो चला था। उसके सौन्दर्य की वह छटा रोज़ बरोज़ कम होती जाती थी। अब छोटी छोटी बातों पर मुझे क्रोध आ जाता था। मैं जो कुछ कहता, वह सह लेती थी। बाद को मुझे भी दुःख होता था। पर तबीयत में प्रेम की वैसी न छूटनेवाली चिपक अब न थी। रूप-लोलुप मन अब उतना प्रसन्न न था।

आख़िर स्त्री को निमोनिया ने आ दबाया। बहुत दिनों से क्रमशः क्षीण होनेवाले शरीर में रोग का आक्रमण अन्त में भयङ्कर हो उठा। फिर वही हुआ जो सबका एक दिन होगा। तीन बच्चों को रोता और मुझे विलाप करता छोड़ कर साध्वी स्त्री परलोक-पथ पर चल खड़ी हुई।

(७)

शुरू शुरू में मैंने खूब विलाप किया। स्त्री की प्रशंसा और अपनी भाग्यहीनता के तज़करों का सिलसिला छेड़ दिया। जो आता परेशान हो कर उठता। सहानुभूति पाने की इच्छा से मैं जो कुछ कहता था उससे घृणा का उपहार ही प्रायः मुझे मिलता था। पर यह अब समझता हूँ। उस समय समझता था, कपट काम कर रहा है। एक दिन पिछले सुख याद करके खूब रोया। आराम-तलब मनुष्य अपने आराम की सामग्री नष्ट होने पर बड़ा खरा प्रेमिक बन जाता है। सूजी हुई आँखों को लेकर मैं अपने चार मित्रों के पास हो आया और उन्हें उस

दिन दिल पर जो कुछ गुज़री थी उसके साथ जो नहीं भी गुज़री थी वह भी सुना आया। पर यह स्वांग कोई ६ महीने ही चला। आख़िर मुझे अपनी खिचड़ी मूँछों को काला करने के लिए बढ़िया ख़िज़ाब की शरण लेनी पड़ी। ग़रीब बापों की जवान पर क्वारी लड़कियों का पता लगाना पड़ा। लालची नाई पुरोहितों की ख़ातिर में अपनी कंजूसी की गांठ खोलनी पड़ी।

साल भर के अन्दर ही फल निकल आया। एक पटवारी की जवान कन्या के साथ उसकी इच्छा के विरुद्ध मेरा विवाह हो गया। इस बार की लाटरी में सौन्दर्य पाया, पर सौजन्य न पाया। रङ्ग था, ख़ुशबू न थी।

रूप का उपासक मैं अपनी तरुण स्त्री को अपने जीर्ण मस्तिष्क की उपजी कच्ची कल्पनाओं का सहारा लेकर पहली स्त्री के प्रेम की गाथा सुनाने लगा। उसके प्रेमपूर्ण सेवाभाव पर अपने आदर्श प्रेम की गोट लगाने लगा। पर मेरी स्त्री का हृदय न पसीजता। वह मुँह फट जवाब देती—तुम मर्द हो; तुम्हें किससे प्रेम है। तुम क्या जानो, प्रेम किसे कहते हैं। अपने स्वार्थ के लिए तुम दूसरों के जीवन की बलि देने में अपनी चतुराई समझते हो, बहादुरी समझते हो। उनको मरे अभी एक वर्ष भी न हुआ कि मुझे फांस लाये। क्यों मोल ले आये। जिन गहनों और वस्त्रों को दिखा कर तुम अपने प्रेम का सस्ता नाटक खेलते हो वे सब तुम्हारे क़ब्ज़े में हैं; तुम्हारे पास हैं। अब उनका उपयोग मेरे लिए हो रहा है। मुझे कुछ न चाहिए। जितनी हो सकेगी तुम्हारी और बच्चों की सच्चे दिल से सेवा करूँगी। पर एक बात कहती हूँ। मुझे प्रेम का सब्ज़ बाग़ मत दिखाना। मुझे मर्दों की मुहब्बत धोखे की टट्टी दिखाई देती है।

ख़िज़ाब लगी मूँछों में से दांतों की खण्डित पङ्क्ति को दिखा कर जब मैं उसके प्रबल पक्ष का विरोध करने के बहाने पुरुषों की बहादुरी का सूचक तर्क-जाल फैलाता तब वह उठ कर चली जाती। मैं बैठा हुआ अपनी हीनता का क्षणिक अनुभव करने लगता।

(८)

आख़िर तीसरी स्त्री को भी वही रोग हुआ जिसने दूसरी के प्राण लिये थे। तीन दिन के बाद ज्वर कुछ कम हुआ तो उसने कहा—कहो अब फिर किसी की बलि दोगे?

मैंने रोते हुए कहा—मैं अपनी जान देकर तुम्हें बचाऊँगा।

उसने कहा—बड़ी को जान देकर बचा लेते तो मुझे तुम्हारी बात का यक़ीन हो जाता। ख़ैर। अब इस दुःखान्त नाटक को बन्द करो। ज़िन्दा गुड़ियों से मत खेलो। मुझे क्षमा करो। मैंने तुम्हारी कुछ सेवा नहीं की। यह कह कर वह अभिमानिनी रोने लगी। मैं भी रो पड़ा। उसके बाद फिर उसे होश न हुआ। दसवें दिन वह भी उसी मार्ग पर चल दी जो वास्तव में मैंने अपने हाथों से उसके लिए बनाया था।

× × × ×

मैंने कहा—गुरुदेव, मेरे चरित्र के सुधार की कुछ आशा है?

गुरुदेव—मानव-चरित्र के जिस निम्नतर स्तर में तुम्हारा जीवन व्यतीत हुआ है उससे तुम अवश्य कुछ ऊपर आ गये हो। बिना सत्य की उपासना के आत्मा का विकाश नहीं होता। तुमने अपने आत्मचरित में सत्य को छिपाने की वृथा चेष्टा नहीं की है।

मैं—आप अन्तर्यामी हैं। आपसे कोई बात कैसे छिपाई जा सकती थी और न अब कुछ छिपाने को है। सब कुछ देकर इतना ही तो मिला है—अन्तर्यामिन्!

गुरुदेव—अन्तर्यामी तो भगवान् ही हैं। मैं तो योग-मार्ग का एक बहुत क्षुद्र पथिक हूँ। और, हां, तुम्हारे मित्र महेश का पिता होने के कारण तुम्हारे बहुत से हालात से परिचित हूँ। मेरी जटाओं ने मुझे तुमसे अब तक छिपा रक्खा था। ख़ैर, अब तुम अपने बच्चों के पालन-पोषण और शिक्षण का पक्का प्रबन्ध कर आये?

मैंने आश्चर्य्य और बड़े हर्ष से उन्हें देखते हुए कहा—जी हां। आपके चरणों की छाया में आकर ही मुझमें यह थोड़ा सा परिवर्तन हुआ है। अब निश्शङ्क होकर इन चरणों में रहने का विचार है। मानव-चरित बड़ा गूढ़ है और फिर हम जैसे कुटिल पुरुषों का अन्धकार-पूर्ण चरित। उसे उन्नत बनाने में आपके चरणों की छाया ही मेरे लिए एक-मात्र अवलम्ब है।

गुरुदेव—अच्छा एक वर्ष हमारे साथ घूमो और कुछ अभ्यास करो। बाद को यह निश्चय किया जा सकेगा कि उस पथ पर तुम सफलता के साथ चल सकते हो या नहीं।

ज्वालादत्त शर्मा

अपमानित आत्मा।

होगा कब तक कहो पयान।
किस सुख की आशा से अब तुम अटक रहे हो प्राण ॥ १ ॥
इस ऐसे तन में तुम रह कर,
अपमानों को नित सह सह कर,
पतित हो चुके खूब यातना पा कर नरक-समान ॥ २ ॥
उचित तुम्हें था मिट जाते तुम,
मान-भङ्ग पर कट जाते तुम,
मृत्यु-धार में उलटा देते निज जीवन-जलयान ॥ ३ ॥
या साहस कर आगे बढ़ते,
अपमानी के सिर पर चढ़ते,
खाल खींच लेते तुम भी थे आर्य-भूमि-सन्तान ॥ ४ ॥
इस प्रकार यदि बदला पा कर,
अपमानी का नाम मिटा कर,
मिट जाते तुम, सोच नहीं था, हो जाते बलिदान ॥ ५ ॥
मानधनी तुमको सब कहते,
स्रोत प्रशंसा के नित बहते,
हम सब रहते ऋणी तुम्हारा होता घर घर गान ॥ ६ ॥

देवीप्रसाद गुप्त,
बी० ए०, एल-एल० बी०

लार्ड एस० पी० सिंह।

नये शासन-सुधार के व्यवस्थानुसार रायपुर के लार्ड सिंह या सिनहा (श्रीयुत सत्येन्द्रप्रसन्न-सिंह) विहार और उड़ीसा प्रान्त के गवर्नर नियुक्त हुए हैं। भारतीयों में आप ही सबसे पहले बङ्गाल सरकार के स्टैंडिंग कौन्सल हुए, आप ही सबसे पहले एडवोकेट जनरल हुए, आपको ही सबसे पहले भारत-सरकार की व्यवस्थापक सभा में स्थान मिला, आप ही सबसे पहले लार्ड की उपाधि से विभूषित हुए, आप ही सबसे पहले अंडर-सेक्रेटरी आव् स्टेट हुए, और अब आप ही सबसे पहले गवर्नर के उच्च पद पर बिठाये गये हैं। आपने अभी तक भिन्न भिन्न पदों पर रह कर जैसी योग्यता से काम किया है उससे आशा होती है कि आप विहार और उड़ीसा का शासन योग्यता-पूर्वक करेंगे।

लार्ड एस० पी० सिंह।

लार्ड सिनहा का जन्म २४ मार्च सन् १८६२ को रायपुर, ज़िला वीरभूम, में हुआ। आपका वंश बड़ा प्राचीन और प्रतिष्ठित माना जाता है। आपके पिता क्षितिकान्तसिंह ईस्ट-इण्डिया-कम्पनी के शासन-काल में अच्छे ओहदे पर थे। सन् १८६५ में उनकी मृत्यु हो गई। उनके चार लड़के थे। लार्ड सिंह उनके सबसे छोटे पुत्र हैं। बाल्यकाल में ही पितृ-

प्रेम से वञ्चित हो जाने पर भी आपका लालन-पालन माता की संरक्षा में भली भाँति हुआ।

आपकी प्रारम्भिक शिक्षा अपने गाँव के स्कूल में ही हुई। वहीं से माइनर वृत्ति की परीक्षा पास करके आप वीरभूम के ज़िला स्कूल में भरती हुए। १८७७ में पहले दरजे में आपने प्रवेशिका परीक्षा पास की। फिर आपने उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रेसीडेन्सी कालेज में जाकर नाम लिखाया, वहीं आपने बी० ए० तक अध्ययन किया। पर बिना पास किये ही आप पढ़ने के लिए विलायत चले गये। विलायत जाने के पहले आपका विवाह एक ज़मींदार की कन्या से हो गया था।

विलायत पहुँचते ही आपने खूब उत्साह से अध्ययन आरम्भ किया। पहले आपका विचार सिविल सरविस की परीक्षा में प्रविष्ट होने का था। पर उसमें कई झंझट देख कर लिंकन्स-इन में बैरिस्टर होने के लिए आप भरती हो गये। इसके लिए जितनी परीक्षायें होती थीं उन सबको आपने बड़ी योग्यता से पास किया। आपको लिकन्स-इन की छात्रवृत्ति भी मिली और अन्य भी कई पारितोषिक मिले। १८८६ में बैरिस्टर होकर आप भारत लौटे और कलकत्ता हाइकोर्ट में बैरिस्टरी करने लगे। शुरू शुरू में कुछ समय तक आपकी वकालत अच्छी नहीं चली, पर सात ही आठ वर्ष बाद आपकी वकालत अच्छी चमकने लगी। आप प्रथम श्रेणी के बैरिस्टरों में गिने जाने लगे। आपकी मासिक आमदनी ४० हज़ार रुपये तक पहुँच गई थी।

कानून में आपकी योग्यता असाधारण थी। गवर्नमेंट ने भी आपकी योग्यता की क़द्र की और आप १९०३ में Standing Counsil अर्थात् सरकारी मुक़द्दमों में पैरवी करने के लिए बैरिस्टर नियुक्त हुए। इसके बाद १९०६ में आप एडवोकेट जनरल बनाये गये। पहले तो आप उस पर अस्थायी रूप से नियुक्त हुए थे, पर पीछे से शीघ्र ही आप मुस्तकिल हो गये। यह पद बड़े गौरव का गिना जाता है; और तब तक इस पर अँगरेज़ ही नियुक्त होते थे। सिनहा की इस नियुक्ति से भारतवासियों को बहुत हर्ष हुआ। इसके बाद आपकी और भी गौरव-वृद्धि हुई। १९०९ में आप बड़े लाट की व्यवस्थापक सभा के सभासद् बनाये गये। तब से आपकी सम्मान-वृद्धि बराबर होती ही गई। आप राजकीय सभापरिषद् और सभा-मन्त्रिमण्डल में सम्मिलित हुए। फिर समर-सभा में भारतवर्ष के प्रतिनिधि होकर गये, प्रीवी कौन्सिल के सभासद निर्वाचित हुए, भारत के उपमन्त्री बनाये गये, लार्ड की उपाधि से भूषित होकर हाउस आव् लार्ड्स में बैठे। अब आप बिहार के गवर्नर हुए हैं।

भारतवर्ष के राजनैतिक मामलों में पहले आप कम ध्यान देते थे। सच तो यह है कि उस समय आपको अवकाश भी कम मिलता था। १८८६ में कलकत्ते की कांग्रेस में आप पहले पहल शरीक हुए थे। तब से आप बराबर राजनैतिक विषयों की चर्चा करते आ रहे हैं। १९१५ में आप नेशनल कांग्रेस के सभापति चुने गये। राजनीति में आप नरम पक्ष के अनुयायी हैं।

आपका स्वभाव बड़ा शान्त है। अभिमान थोड़ा भी नहीं है। आप मनोविकारों के वशीभूत भी नहीं हैं। बड़े उदार-हृदय हैं। विपद्ग्रस्तों की सहायता के लिए आप सदैव प्रस्तुत रहते हैं। शिक्षा-प्रचार के कामों से आपको बड़ा प्रेम है। कितने ही विद्यालयों को आप नियमित रूप से सहायता देते हैं।

ऐसे शासक के अधीन रह कर बिहार और उड़ीसा प्रान्त अच्छी उन्नति करेगा। आशा तो ऐसी ही है।

मुक्ति ।

(१)

मुक्ति ! हाँ, मुक्ति मुझे मिल जाय,
सिद्धि की युक्ति मुझे मिल जाय ।
भजन, पूजन, आराधन में,
योग, जप, तप के साधन में,
देवमन्दिर के अर्चन में,
पूज्य प्रतिमा के चर्चन में,
मिला है मुझे न उचित उपाय,
मुक्ति ! हाँ, मुक्ति मुझे मिल जाय ।

(२)

सृष्टि का बन्धन विकट बड़ा,
स्वयं स्रष्टा तक पाश पड़ा !
ध्यान करले क्या रूप खड़ा !
जीव जड़ता में रहा जड़ा ।
थकित है साधन का समुदाय,
मुक्ति ! हाँ, मुक्ति मुझे मिल जाय ।

(३)

मुक्तिमय ! तू तरु-पुञ्जों में,
कि है नवलता-निकुञ्जों में ?
मञ्जु मणि-मण्डित अङ्गों में,
कि जल की तरल तरङ्गों में ?
किसे दूँ पूजा-पुष्प-निकाय ?
मुक्ति ! हाँ, मुक्ति मुझे मिल जाय ।

(४)

तुझे कब पाते सुखभोगी ?
कि तू है कुशल कर्मयोगी ।
बना हूँ मैं भव-रुज-रोगी,
सिद्धि ढोंगी को कब होगी ?
कर्म की कलिका खुल खिल जाय,
मुक्ति ! हाँ, मुक्ति मुझे मिल जाय ।

(५)

खुलें दृग देखें दीनों को,
स्वेद-सिञ्चित-जन-मीनों को,
श्रान्त श्रमजीवी हीनों को,
धूल-धूसरित मलीनों को,
खड़ा जिन में तू रज लपटाय,
मुक्ति ! हाँ, मुक्ति मुझे मिल जाय ।*

गोकुलचन्द शर्मा

सेठ खेमराज श्रीकृष्णदास ।

बम्बई के प्रसिद्ध व्यवसायी सेठ खेमराज श्रीकृष्णदास का गत ३० जुलाई को, ६४ वर्ष की अवस्था में, देहावसान हो गया । हिन्दी और संस्कृत के धार्मिक ग्रन्थों का प्रकाशन करके आपने अक्षय कीर्ति प्राप्त की । हिन्दी-भाषा-भाषी तो आपके सदैव उपकृत रहेंगे । आपके ही हिन्दी-प्रेम से हिन्दी के प्राचीन कवियों के ग्रन्थ अब सुलभ हो गये हैं । पुराण, धर्मशास्त्र, काव्य, वैद्यक आदि विषयों के प्रसिद्ध प्रसिद्ध संस्कृत-ग्रन्थों के हिन्दी में अनुवाद करा कर आपने हिन्दी-साहित्य की श्रीवृद्धि की और संस्कृत से अनभिज्ञ लोगों के लिए उन ग्रन्थों का ज्ञान सुलभ कर दिया । श्रीवेङ्कटेश्वरसमाचार-पत्र निकाल कर आपने लोगों में सार्वजनिक ज्ञान का प्रचार-द्वार उन्मुक्त कर दिया । इसके सिवा आपसे आश्रय पाकर कितने ही हिन्दी के लेखकों ने हिन्दी की अच्छी सेवा की । आपकी मृत्यु से हिन्दी-भाषा का एक बड़ा सहारा ही चला गया । यह जान कर किस हिन्दी-प्रेमी को दुःख न होगा ?

आपका जन्म संवत् १९१३ में हुआ था । अल्पावस्था में ही आप अपने भाई सेठ गङ्गाविष्णुजी के पास रतलाम चले आये । उस समय सेठ गङ्गाविष्णुजी विरक्त होकर संसार छोड़ देना चाहते थे । पर एक महात्मा के उपदेश से आपने अपने भाई सेठ खेमराज को बुला कर बम्बई में पुस्तक बेचने का व्यवसाय शुरू किया । सेठ खेमराज जी की

---

* महाकवि रवीन्द्र की छाया पर ।

अवस्था थी तो छोटी, पर उनमें वे सब गुण विद्यमान थे—जिनसे मनुष्य को व्यवसाय में सफलता मिलती है। सबसे पहली बात तो यह थी कि आप बड़े परिश्रमी थे। साथ ही बड़े मिष्ट-भाषी और बड़े सच्चे भी थे। पुस्तक बेचने के लिए पहले आप पूर्व की ओर दरभङ्गा तक जाते थे तो उत्तर में पञ्जाब तक पहुँच जाते थे। उस समय भी आपकी आमदनी का तृतीयांश गो-ब्राह्मण के निमित्त ख़र्च हो जाता था। धन्य आपकी धर्म्मिष्ठता और धन्य आपका औदार्य। शीघ्र ही आपकी उन्नति हुई और थोड़े ही दिनों के बाद आपने एक लीथो प्रेस ख़रीद लिया। उसी में आप हिन्दी और संस्कृत के ग्रन्थ छापने लगे। उस समय छापेख़ानों का प्रचार अच्छी तरह नहीं हुआ था। हिन्दी के तो एक ही दो छापेख़ाने थे और उनमें भी सिर्फ़ क़िस्से-कहानी ही की किताबें अधिकतर छपती थीं। सेठ खेमराज जी ने ही सबसे पहले हिन्दू-धर्म के अच्छे अच्छे ग्रन्थों को छाप कर सस्ते दामों में निकालना शुरू किया। इसी के लिए बम्बई में श्रीवेङ्कटेश्वर प्रेस खोला गया। कुछ वर्षों के बाद सेठ गङ्गाविष्णुजी ने श्रीवेङ्कटेश्वर प्रेस खेमराजजी को सौंप कर कल्याण में एक दूसरा प्रेस—लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर प्रेस—स्थापित किया। ये दोनों छापेख़ाने अच्छी तरह चलने लगे। फल यह हुआ कि जो कभी एक साधारण पुस्तकविक्रेता थे वे अपने अध्यवसाय और परिश्रम से एक विशाल सम्पत्ति के स्वामी हो गये।

सेठ खेमराजजी बड़े धर्मनिष्ठ थे; आदर्श हिन्दू थे। आप श्रीवैष्णव थे। उदारचेता तो इतने थे कि आपने लाखों रुपये दान-धर्म में ख़र्च कर डाले। आपने धर्मशाला बनवाई, सदावर्त खोला, तालाब और कुएँ खुदवाये और ऐसे ऐसे कई काम किये जिनसे आप बहुत ही लोकप्रिय हो गये। बम्बई में मारवाड़ी-विद्यालय आपके ही प्रयत्न से स्थापित हुआ है।

आपका सभी सम्मान करते थे। सरकार आपकी जितनी प्रतिष्ठा करती थी उतनी प्रजा भी करती थी। राजा-महाराजा भी आपका सदैव आदर करते थे। भारत-धर्म-महामण्डल ने आपको यथार्थ में ही धर्मभूषण कहा है। इससे यह उपाधि सार्थक हो गई है।

आपकी चार सन्तति जीवित हैं। दो पुत्र सेठ रङ्गनाथ और सेठ श्रीनिवास—और दो विवाहिता कन्यायें। आपकी धर्म-पत्नी का देहान्त दो वर्ष पहले ही हो चुका।

भगवान् आपके पुत्रों को चिरञ्जीव करें जिससे वे भी देश-सेवा और साहित्य-सेवा करके आपही के समान यशोभागी हों।

जो लोग पुस्तकें बेचना छोटा काम समझते हैं उन्हें सेठ खेमराज जी के चरित्र से शिक्षा लेनी चाहिए। बात यह है कि काम कोई भी छोटा नहीं। काम करनेवालों ही की बुद्धि को छोटी या थोड़ी समझना चाहिए। मनुष्य यदि बुद्धिमान् और व्यवसाय-कुशल है तो वह सेठजी ही की तरह परिश्रम, सत्यता, उदार व्यवहार और उत्साह-पूर्ण कार्य्य-सञ्चालन से रङ्क से राव हो सकता है। सम्पत्ति-प्राप्ति के द्वारा इस लोक में तो यश और परलोक में काम आने के लिए धर्म-सञ्चय भी कर सकता है।

जानकीगीतम्।

कई वर्ष हुए, अपने मामा के पुस्तकालय में मुझे इस ग्रन्थ की एक हस्तलिखित प्रति मिली थी। उसे पढ़ कर मेरा चित्त बहुत प्रसन्न हुआ, विशेषतः इस कारण से कि उन दिनों मैं गीतगोविन्द की "मधुरकोमलकान्तपदावली" का अध्ययन ध्यान-

पूर्वक कर रहा था। इस नवोपलब्ध ग्रन्थ की "माधुर्य्यमञ्जुलपदा" रचना पर मेरा चित्त इतना आकर्षित हुआ कि इस ग्रन्थ और जयदेवकृत गीतगोविन्द को साथ ही साथ रख कर पढ़ना और दोनों की तुलना करना आरम्भ कर दिया। इतने पर भी सन्तोष न हुआ तो "जानकीगीत" पर एक विशद संस्कृत-टीका लिखना प्रारम्भ किया, और ऐसे काम के लिए अपनी पूर्ण योग्यता पर सन्देह करते हुए भी उसे समाप्त किया।

पुस्तक अभी तक प्रकाशित नहीं हुई, क्योंकि मैं इस सोच में था कि यदि यह ग्रन्थ कहीं प्रकाशित हो चुका हो तो पुनः प्रकाशन ठीक नहीं। अभी तक इसके कहीं प्रकाशित होने का पता मुझे नहीं मिला। अतः सम्भव है कि कुछ दिनों में मैं इसे प्रकाशित कर दूँ। अस्तु।

इस ग्रन्थ के कर्त्ता 'हरि' नामक कोई कवि हैं जिनके विषय में मैं और कुछ नहीं जानता, और न ग्रन्थ ही से उनका कुछ पता मिलता है। गीतगोविन्द में जयदेव कवि ने जैसे अपने नाम की भरमार की है वैसे ही 'हरि' ने भी अपने इस ग्रन्थ में किया है। परन्तु जयदेव के लिए तो कहा भी जाता कि "पद्मावतीचरणचारणचक्रवर्त्ती" पद में पद्मावती शब्द से जयदेव ने अपनी स्त्री का सङ्केत किया है; और "श्रीभोजदेवप्रभवस्य रामादेवीसुतश्रीजयदेवकस्य । पराशरादिप्रियवर्गकण्ठे श्रीगीतगोविन्दकवित्वमस्तु" से अपने पिता, माता और साथी का परिचय दिया है; परन्तु 'हरि' कवि के ग्रन्थ में इस प्रकार का भी कुछ पता नहीं मिलता। ग्रन्थ का अन्तिम पद्य यह है—

> विद्याविभूषणयुतो हरिरब्जनाभ-
> पादारविन्दमधुपो यदिदं व्यधत्त ।
> श्रीजानकीचरितगीतमुदग्रभावा-
> स्तत्साधवः प्रतिदिनं मुदिताः पिबन्तु ॥

परन्तु इससे सिवा कवि की विद्या और भक्ति के उनका व्यक्ति-गत और कुछ भी पता नहीं चलता।

श्रीअयोध्याजी के लक्ष्मणटीला स्थान पर सीतारामजी के भक्तों का एक विशेष सम्प्रदाय रहता है। वे लोग अपने धर्म्म-रहस्य प्रायः गुप्त रखते हैं। उसी सम्प्रदाय के एक महात्मा से मुझे एक बार मालूम हुआ कि उनके सम्प्रदाय में हरि नामक कोई आचार्य्य हो गये हैं। उनका अनुमान था कि यह कविता इन्हीं हरि महाशय की हो सकती है। जो कुछ हो।

जानकीगीत में श्रीराम और सीताजी का प्रायः वैसा ही वर्णन है जैसा गीतगोविन्द में श्रीकृष्ण और राधिकाजी का है। ग्रन्थ क्या है, गीतगोविन्द की हूबहू नक़ल उतारी गई है; परन्तु नक़ल बड़ी योग्यता से उतारी गई है, अर्थात्

> कविरनुहरतिच्छायामर्थं कुकविः पदन्तथा चौरः ।
> सर्वप्रबन्धहर्त्रे साहसकर्त्रे नमस्तुभ्यम् ॥

में जो बुराइयाँ नक़्क़ालों की दिखाई गई हैं उनसे बचने का उद्योग हरि-कवि ने यथा-शक्ति किया है। परन्तु दोनों ग्रन्थों की अनुरूपता छिपाये नहीं छिपती। आगे चल कर दोनों ग्रन्थों के कुछ पद्यों की तुलना की जायगी।

जानकीगीत में छः सर्ग हैं, जिनके नाम क्रम से ये हैं—

१—जानकीमानविधान; २—तदन्यविहारशङ्कावर्णन; ३—श्रीरघुनाथविरहव्यथावर्णन; ४—जानकीमानमोक्षण; ५—रासविलासवर्णन; ६—सानन्दसीतारघुनन्दन।

इन नामों से ग्रन्थ के विषय का दिग्दर्शन हो जाता है।

राग और ताल का विशेष ज्ञान मुझे नहीं है, तथापि गीतगोविन्द और जानकीगीत के पदों में जो राग-ताल आये हैं उनका उल्लेख करता हूँ ताकि विशेषज्ञ लोग ठीक ठीक अनुमान कर सकें।

गीतगोविन्द में—मालवराग, गुर्जरीराग, वसन्त-राग, रामकरीराग, मालवगौडराग, कर्णाटराग, देशराग, देशीवराडीराग, गुणकरीराग, भैरवी-राग, विभासराग आये हैं और रूपक-ताल, निःसार-ताल, यति-ताल, एकताली-ताल, अष्टताल आये हैं।

जानकीगीत में—ललितराग, गन्धारराग, विभावराग, रामकरीराग, अल्हैयाराग, आसा-वरीराग, टोडीराग, ईमनराग, नायकीराग, काफ़ी-राग, अडाणाराग, विहागराग, केदारराग, सोरठ-राग, परजराग आये हैं और त्रिताली-ताल, एक-ताली-ताल, त्योरा-ताल, यात्रा-ताल हैं।

सङ्गीत के एक पुराने ग्रन्थ में रागों और रागि-णियों का विवरण इस तरह दिया गया —

आदौ मालव[१] रागेन्द्रस्ततो मल्लार[२]-संज्ञितः।
श्रीरागश्च[३] ततः पश्चात् वसन्त[४]स्तदनन्तरम् ॥
हिन्दोल[५]श्चाथ कर्णाट[६] एते रागाः षडेव तु।
षट्त्रिंशद्रागिणीस्तत्र क्रमशः कथिता मया ॥
धानसी[१] मालसी[२] चैव रामकिरी[३] च सिन्धुड़ा[४]।
आशावरी[५] भैरवी[६] च मालवस्य प्रिया इमाः ॥
वेलावली[१] च पुरवी[२] कानड़ा[३] माधवी[४] तथा।
कोड़ा[५] केदारिका[६] चापि मल्लारदयिता इमाः ॥
गान्धारी[१] शुभगा[२] चैव गौरी[३] कौमारिका[४] तथा।
वेलोयारी[५] च वैरागी[६] श्रीरागस्य प्रिया इमाः ॥
तुड़ी[१] च पञ्चमी[२] चैव ललिता[३] पटमञ्जरी[४]।
गुर्जरी[५] च विभाषा[६] च वसन्तस्य प्रिया इमाः ॥
मायूरी[१] दीपिका[२] चैव देशकारी[३] च पाहिड़ा[४]।
वराड़ी[५] मोरहाटी[६] च हिन्दोलस्य प्रिया इमाः ॥
नाटिका[१] चाथ भूपाली[२] रामकेली[३] गड़ा[४] तथा।
कामोदा[५] चापि कल्याणी[६] कर्णाटस्य प्रिया इमाः ॥

गीतगोविन्द के नाम (सिवा गुणकरी के) ऊपर की फ़िहरिस्त से मिल जाते हैं; परन्तु जानकी-गीत के नाम अल्हैया, ईमन, काफ़ी, नायकी, अड़ाणा, सोरठ, परज आदि इस फ़िहरिस्त से नहीं मिलते। इसमें सन्देह नहीं कि ये नाम सङ्गीत के नवीन ग्रन्थों में मिलते हैं; परन्तु इससे यह बात अवश्य सिद्ध होती है कि देश में काफ़ी, ईमन, अल्हैया आदि नवीन नामों का सञ्चार होने के बाद ही जानकीगीत लिखा गया है। ग्रन्थ बहुत पुराना नहीं मालूम होता।

अब दोनों ग्रन्थों की रचना की तुलना कीजिए गीतगोविन्द का प्रथम श्लोक है—

मेघैर्मेदुरमम्बरं वनभुवः श्यामास्तमालद्रुमै-
र्नक्तं भीरुरयं त्वमेव तदिमं राधे गृहं प्रापय।
इत्थं नन्दनिदेशतश्चलितयोः प्रत्यध्वकुञ्जद्रुमं
राधामाधवयोर्जयन्ति यमुनाकूले रहः केलयः ॥

जानकीगीत का प्रथम श्लोक है—

नवरागभराञ्चितात्मवृत्तेः
सरयूकुञ्जगृहेषु राघवस्य।
जनकात्मजया समं समन्ताद्
विजयन्ते रतिकेलयोऽनवद्याः ॥

दोनों में काम-भीरुता, नदीतट, कुञ्जस्थली, केलि का वर्णन है।

दोनों ग्रन्थों के दूसरे ही श्लोकों में कवियों ने अपनी विद्या, भक्ति और इरादे का पता दिया है—

गी० गो०—वाग्देवताचरितचित्रितचित्तसद्मा
पद्मावतीचरणचारणचक्रवर्त्ती।
श्रीवासुदेवरतिकेलिकथासमेत-
मेतं करोति जयदेवकविः प्रबन्धम् ॥

जा० गी०—साहित्यदिव्यदरविन्दमरन्दमत्त-
चित्तद्विरेफपतिरम्बुजनेत्रसक्तः।
श्रीजानकीरघुवरप्रथितां सुकेलिं
माधुर्य्यमञ्जुलपदां हरिरातनोति ॥

पूरे पूरे श्लोकों ही की नहीं, किन्तु एक एक चरण की भी अनुरूपता मिलती है। वही छन्द, वही समासबहुलता, वही शब्द-चमत्कार, वही अहंभाव।

आगे चलिए। श्रीकृष्ण-विषयक रति का वर्णन तो जगह जगह है; परन्तु श्रीरामविषयक रति का

वर्णन बहुत कम मिलता है। जहाँ है वहाँ गुप्त रूप में, इशारों में, थोड़ा सा है। फिर ऐसे विषय को खोल कर लिखना कवि के लिए कहाँ तक उचित है, इस बात के दिखलाने के लिए जानकी-गीत का तीसरा श्लोक देखिए—

श्रीरामस्य समस्तभूपतिमणेर्यन्नृत्यकौतूहलं
तत्तस्मिन्नहि दुर्घटं रसिकता सम्भाजि सत्स्वरे ।
इत्थं यत्खलु भारती भगवतः संवीक्ष्यते विस्फुटं
वाल्मीकस्य ततो रघूद्वहप्रियो नृत्यं वितन्वन्तु तत् ॥

बस, 'महाजनो येन गतः स पन्थाः'—वाल्मीकिजी ने जो बात लिखी वह 'हरि' क्यों न लिखें?

जयदेव और हरि ने पण्डितों से अपना अपना ग्रन्थ पढ़ने के लिए जो अपीलें की हैं वे भी सुनिए—

गी० गो०—यदि हरिस्मरणे सरसं मनो
यदि विलासकलासु कुतूहलम् ।
मधुरकोमलकान्तपदावलीं
शृणु तदा जयदेवसरस्वतीम् ॥

जा० गी०—भवति भो रसिका रघुनन्दने
जनकजारमणे यदि मानसम् ।
सरसकाव्यकलाञ्चितसत्पदं
हरिगिरं शृणुतातिसृदुं तदा ॥

इतनी पक्की स्पर्धा करने पर भी मालूम नहीं कि 'हरि' कवि ने 'यदि विलासकलासु कुतूहलम्' का भाव अपने पद्य में क्यों नहीं प्रकट किया। या तो 'जनकजारमण' शब्द के द्वारा इशारा-मात्र कर दिया है या श्रीरामजी की केलिलीला को कुतूहल मानना योग्य नहीं समझा।

'वाचः पल्लवयत्युमापतिधरः' आदि श्लोक में जयदेवजी ने अपने आपको सर्वश्रेष्ठ बताया है। पर इतना अहङ्कार दिखलाना हरि कवि ने मुनासिब नहीं समझा।

जयदेव ने 'जय जगदीश हरे' और 'जय जयदेव हरे' आदि गीतों से दशावतार की और विशेषतः श्रीकृष्ण की स्तुति की है। हरि ने भी एक गीत से श्रीराम की और दूसरे से सीताजी की स्तुति की है—

"रघुकुलकमलविभाकर सखसागर हे: निज-जनमानसवास, जय जय दाशरथे"।

"जय जय जानकि रघुपतिदयिते। विधिशिव-सनकशुकादिकमहिते। देवि शरणं तव करुणा, अभिलषिता त्रिभुवनगुरुणा"। दो एक गीतों की तुलना भी कर लीजिए—

गी० गो०—ललितलवङ्गलतापरिशीलनकोमलमलयसमीरे
इत्यादि ।

जा० गी०—मृदुलरसालमुकुलरसतुन्दिलपिकनिकरस्वनभासे।
माधविकासुमनानवसौरभनिर्भररसङ्कुलिताशे ।
विलसति रघुपतिरतिसुखपुञ्जे, निर्मलमलयज-
कुङ्कुमपङ्किलतनुरिह वरतनुपुञ्जे । ध्रुवम् ॥ १ ॥
विषमविशिखकरनखरनिचयसमकिंशुककुसुमकराले ।
मानवतीगणमानविदारिणि चञ्चलमधुकरजाले ॥ २ ॥
धृतमकरन्दसुमन्दगन्धवहभाजि विराजितशोभे ।
विविधवितानकान्तिपरिशीलनजनितयुवतिजनलोभे ॥३॥
हरिपरिरचितमिदं मधुवर्णनमनु रघुनाथमुदारम् ।
पिबत बुधा मधुमधुरपदावलि निरुपमभजनसुधारम् ॥४॥

देखा आपने, जयदेव ने 'वसन्त' के विशेषणों में और हरि ने 'वरतनुपुञ्जे' के विशेषणों में बड़े बड़े समासों के द्वारा वसन्त और शृङ्गार का बहुत सा मसाला पाठकों के सामने रख दिया।

दोनों कवियों ने माधुर्य्य-गुण दिखलाने का विशेष ध्यान रक्खा है। ग्रन्थ भर में ढूँढिए तो टवर्ग का बहुत कम पता मिलेगा। वर्गाक्षरों में प्रथम-द्वितीय और तृतीय-चतुर्थ अक्षरों का संयोग बहुलता से मिलेगा। अलङ्कार भी खूब हैं। पढ़ने से ऐसा मालूम होता है कि मानों रस की नदी चुपके चुपके से बही जा रही है। कहीं खड़खड़ाहट—कहीं कर्णकटुता—का पता तक नहीं।

एक बात में हरि कवि जयदेव से भी बढ़ गये हैं। जयदेव ने शृङ्गाररस की बातें खोल खोल कर कही हैं—जैसे

'शिथिलीकृतजघनदुकूलम्', 'उरसि ममैव शयानम्', 'नखलिखितघनस्तनभारम्', 'सकचग्रहचुम्बनदानम्', 'निधुवनशीलम्', परन्तु हरि ने बड़ी ही सफ़ाई से वही बातें वर्णन की हैं। देखिए—

विरचितरतिसमरोचितशयने ।
धामनि विविधकुसुमकृतचयने ॥
विहरति रामो जनकजया ।
मदनतरलमतिरमितमया ॥
विधुरपि चुम्बति विधुमनुपालम् ।
वलयति कनकलताऽपि रसालम् ॥
अरुणसरोरुहयुगमतिवेलम् ।
कोकयुगोपरि रचयति खेलम् ॥
मन्थरवपुरुरीकृतकम्पा ।
असितघनोपरि निवसति शम्पा ॥
हरिभणितं रघुराजविहारम् ।
कुरुत बुधा हृदि मधुरिमसारम् ॥

इस लेख में जो पद्य उद्धृत किये गये हैं उनका हिन्दी-अनुवाद देने का इरादा करते हुए भी लेख-बाहुल्यभयात् वह इरादा पूरा नहीं किया जा सका।

चन्द्रमौलि सुकुल

बन्दरों की भाषा।

सरस्वती में कुछ वर्ष पहले अध्यापक गार्नर के विषय में एक नोट प्रकाशित हो चुका है। उसमें यह बतलाया गया था कि अध्यापक महाशय अफ़रीका के जङ्गलों में बन्दरों की बोली सीखने का प्रयत्न कर रहे हैं। कुमारी सिमोल्टन नामक एक अमेरिकन महिला ने अफ़रीका जाकर उनसे भेंट की थी उस समय अध्यापक महाशय को अपने उद्योग में बहुत कुछ सफलता हो गई थी। वे मज़े में बन्दरों के साथ बातचीत कर सकते थे। अभी हाल में "प्रवासी" में उनके विषय में एक बड़ा मनोरञ्जक लेख निकला है। उसी का सारांश नीचे दिया जाता है—

गार्नर साहब का पूरा नाम है डाकृर रिचर्ड एल० गार्नर। जब से आपको बन्दरों की भाषा सीखने की इच्छा हुई तब से आप अपना सब काम छोड़ कर उसी के पीछे पड़ गये। इसी लिए अफ़रीका के जङ्गलों में वर्षों घूमते रहे; मनुष्यों का सम्पर्क छोड़ कर आप बन्दरों के साथी बने। गोरीला और चिम्पैंज़ी नाम के बन्दर बड़े भयानक होते हैं। उनके साथ रहना अपने प्राणों को सङ्कट में डालना है। फिर भी आप अपने काम में लगे ही रहे। उद्योग और अध्यवसाय से क्या नहीं होता। अन्त में आपका मनोरथ पूर्ण हुआ और आप बन्दरों की भाषा सीख गये। अपने काम में सफलता प्राप्त कर लेने के बाद आप परलोकान्तरित हुए।

मनुष्यों की तरह पशु-पक्षी भी समाजों में रहते हैं। उनके कार्य-क्रम से यह भी सूचित होता है कि वे परस्पर सहानुभूति भी रखते हैं। पशुओं में बन्दर बड़े बुद्धिमान् होते हैं। वे लोग कभी कभी ऐसी बुद्धिमत्ता से काम करते हैं कि देख कर आश्चर्य होता है। किसी एक पर विपत्ति आते ही सबके सब एकत्र होकर उसकी रक्षा में तत्पर हो जाते हैं। वे घायलों की सेवा-शुश्रूषा भी बड़ी सावधानी से करते हैं। ये सब बातें तभी सम्भव हो सकती हैं जब वे एक दूसरे के हृद्गत भावों को अच्छी तरह समझ सकें। इसीलिए यह प्रश्न होता है कि क्या बन्दरों की भी कोई भाषा होती है?

भाषा है क्या? ध्वनि-विशेष से अपनी इच्छायें दूसरों को प्रकट कर देना, यही भाषा है। यदि हम किसी ऐसे स्थान में जायँ जहाँ न तो कोई हमारी भाषा समझे और न हम किसी की भाषा समझें तो ऐसी अवस्था में हम क्या करेंगे। जब वे लोग परस्पर बातचीत करते हैं तब हम उनके कार्य-क्रम

और भावभङ्गी पर ध्यान देते हैं। जब हम देखते हैं कि एक विशेष शब्द का उच्चारण करने के बाद वे एक विशेष काम करते हैं तब हम उस कार्य का सम्बन्ध उस शब्द से जोड़ लेते हैं और यह कहते हैं कि उस शब्द का यही अर्थ होता है। इसी प्रकार भिन्न भिन्न कार्यों को भिन्न भिन्न ध्वनि विशेषों के बाद होते देख कर हम उन ध्वनियों का अर्थ निकाल लेते हैं। इसी उपाय का अवलम्बन करके अध्यापक गार्नर ने बन्दरों की भाषा सीखने का प्रयत्न किया। आपने पहले बन्दरों के सभी कामों का भली भाँति निरीक्षण किया। इससे आपको यह निश्चय हो गया कि बन्दरों की भी भाषा होती है। एक बार आप किसी बग़ीचे में गये। वहाँ एक कटघरे में एक बड़ा बन्दर बन्द था। उसी के दूसरे हिस्से में कुछ और छोटे बन्दर बन्द थे। वे उससे डरते थे। गार्नर साहब ने देखा कि डरने पर वे एक विशेष प्रकार की आवाज़ करते हैं। उसे सुन कर दूसरे बन्दर भी भयभीत हो जाते थे। इसी तरह एक बार, जब आप अफ़्रीका में थे, आपको एक बन्दर मिला। वह स्वयं बन्दी था। पर जब उसके साथी पास ही के बग़ीचे में फल खाने आते और वह कोई भय की बात देखता तब वह आवाज़ देकर अपने साथियों को सचेत कर देता। ऐसी ऐसी बातों से गार्नर साहब को विश्वास हो गया कि बन्दर परस्पर बातचीत करते हैं।

ग्रामोफ़ोन में अपनी भाषा सुन कर बन्दर का विस्मय करना।

बन्दरों की भाषा समझनेवाला एक और आदमी था। उससे अध्यापक गार्नर को थोड़ी बहुत सहायता अवश्य मिली। वह इटली का रहनेवाला था, उसके पास एक बन्दर था। उसका नाम था जिआकेमो। उसका मालिक उसे सिर्फ़ जिआक कहा करता था। अध्यापक महोदय ने उस बन्दर को ख़रीदना चाहा। परन्तु वह राज़ी न हुआ। उसने जिआक को छाती से लगा कर कहा, "नहीं, नहीं, मैं इसे कभी नहीं बेच सकता।" जिआक भी उससे ऐसा चिपट गया कि मानों वह भी उसका मतलब समझ गया हो।

जब से आपको बन्दरों की भाषा सीखने की

इच्छा हुई तब से आप उनकी आवाज़ पर ध्यान देने लगे। वे लोग आपस में जैसी आवाज़ करते थे उसका ठीक ठीक उच्चारण आप लिख लेते थे। फिर आप दूसरे बन्दरों के पास जाकर उन्हीं शब्दों का उच्चारण किया करते थे। उसे सुन कर बन्दर जो कुछ करते थे उसे आप लिख लेते थे। इस तरह करते करते आपने यह निश्चय किया कि बन्दरों की भी भाषा है-और वे एक दूसरे की बातें समझ भी सकते हैं।

इसके बाद आपने दो बन्दरों को अलग अलग कमरों में बन्द कर दिया। फिर आपने एक बन्दर की आवाज़ को ग्रामोफ़ोन के रिकार्ड में भर लिया। तब आप दूसरे बन्दर के कमरे में गये। वहाँ आपने ग्रामोफ़ोन पर उसी रिकार्ड को लगा दिया। उसे सुन कर वह बन्दर अस्थिर हो उठा और चारों तरफ़ अपने साथी को खोजने लगा। फिर इस बन्दर की आवाज़ भर कर आप पहले बन्दर के पास ले गये। उसे सुन कर वह और भी अधिक बोलने लगा। चोंगे में हाथ डाल कर अपने साथी को ढूँढ़ने भी लगा।

जब कोई बन्दर किसी दूसरे बन्दर को युद्ध के लिए ललकारता है तब वह एक प्रकार की आवाज़ करता है। गार्नर साहब ने उसको भी भर कर एक दूसरे बन्दर को सुनाया। ललकार सुनते ही वह बन्दर क्रुद्ध हो उठा और वह भी वैसा ही शब्द करने तथा अपने प्रतिद्वन्द्वी को ढूँढ़ने लगा।

इस प्रकार एक शब्द से सब बन्दरों को एक ही प्रकार का काम करते देख कर गार्नर साहब ने उस शब्द का अर्थ ढूँढ़ निकाला इसी प्रयत्न में उन्होंने बन्दरों की भाषा में प्यास के लिए शब्द जान लिया। उसे आज़माने के लिए वे एक बन्दर के कटघरे में पहुँचे। वह बन्दर बड़ा बुद्धिमान् था। ज्यों ही गार्नर साहब ने बन्दरों की भाषा में 'प्यास' शब्द का उच्चारण किया त्यों ही वह दौड़ कर अपना कटोरा ले आया। उसमें दूध डाला गया और उसने मज़े में पिया। इसी उपाय से उन्होंने बन्दरों की भाषा के वाक्य और उसके अर्थ निश्चित किये।

डाक्टर गार्नर ने जिस तरह बन्दरों की भाषा सीखी उसी तरह उन्होंने बन्दरों को मनुष्यों की

बन्दर दूध पी रहा है।

भाषा सिखलाने का भी प्रयत्न किया। उनका एक पाला हुआ बन्दर था। उसका नाम था मोजेज। उसने अँगरेज़ी का 'मामा', जर्मन का 'वी' और

फ़्रेंच का 'फ्य' उच्चारण करना सीख लिया था। फ़्रेंच भाषा में 'फ्य' आग को कहते हैं। गार्नर साहब उस बन्दर को आग दिखा दिखा कर बार बार 'फ्य' कहा करते थे। इसका फल यह हुआ कि मोजेज जब कभी आग देखता तब 'फ्य' कह कर चिल्ला उठता।

बन्दरों की भाषा सीख लेने पर गार्नर साहब उनसे बराबर बातें किया करते थे। आपके पास एक बन्दरी थी। उसका नाम था सूसी। उसका एक बार फ़ोटो लिया गया। दूसरी बार फिर फ़ोटो लेने की ज़रूरत पड़ी। पर सूसी तैयार
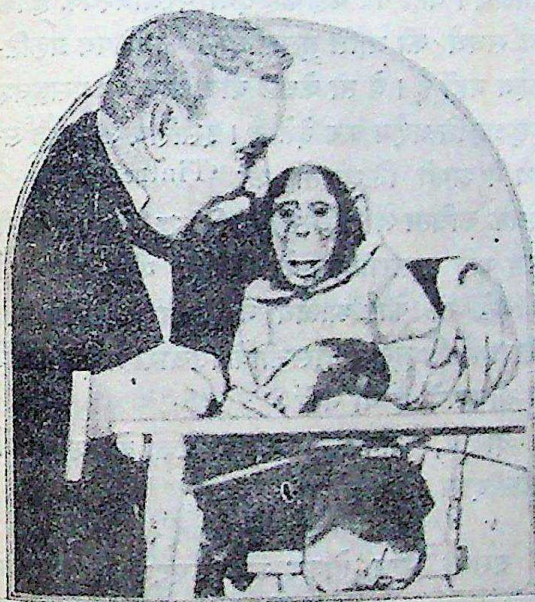
फ़ोटो खिंचवाने के लिए सूसी का राज़ी होना।

नहीं होती थी। फिर गार्नर साहब ने उसे उसकी भाषा में समझाया। तब वह बड़ी मुश्किल से राज़ी हुई। इसी तरह एक बार आप एक जन्तुशाला में चिम्पैंज़ी नाम के बन्दरों के कट-घरे में गये। सब बन्दर सो रहे थे। आपने जाकर उनकी भाषा में कहा—ऊः ऊः। सब एक-दम जाग पड़े और आकर गार्नर साहब को उत्तर देने लगे। एक दूसरी जाति से अपनी जाति की भाषा सुन कर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। ऐसी घटनायें कई बार हुई हैं।

आह्वान।

देश का चलो करें सम्मान।
जननी जन्मभूमि का हम पर है अधिकार महान॥
अपने लिए न हम हैं जीते स्वीय नहीं ये प्राण।
जीते हैं वे जिनको है कुछ पूज्य-देश-अभिमान॥
जिसने अपने पतित देश का किया नहीं कल्याण।
है वह नीच कीच सा, पापी, मोहपूर्ण नादान॥
यह जीवन तो नाशवान है, इसका मूल्य न मान।
इसे सार्थक करिए भाई! हरिए सब अज्ञान॥
चींटी तक जीती रहती है जीना है आसान।
जान नहीं जीने ही के हित-ऐसा दैव-विधान॥
'जीवें' 'जीवें' सब चिल्लाते नहीं किसी में जान।
जीवन सफल उन्हीं का जिनको प्यारा देश महान॥

मनोहरप्रसाद मिश्र

तुलसीदास और वर्ड्सवर्थ।

अंगरेज़ी के कवियों में विलियम वर्ड्सवर्थ की गणना प्रथम श्रेणी में है। प्रकृति के सौन्दर्य-वर्णन में तो वे अद्वितीय हैं। यदि शेक्सपियर मानव-स्वभाव के चित्रण में विचक्षण हैं तो वर्ड्सवर्थ प्रकृति-वर्णन में पटु हैं। उस दर्जे तक कोई कवि नहीं पहुँचा। वैसे तो कविवर कीट्स ने भी प्रकृति के वाह्य-सौन्दर्य-वर्णन में कविता की पराकाष्ठा कर दी है और प्रकृति का सजीव चित्र सा खींच दिया है। परन्तु वे भी अदृश्य जगत् के सौन्दर्य का उपभोग नहीं कर सके। वर्ड्सवर्थ के लिए प्रकृति जड़, निर्जीव, नहीं। उसे वे सजीव मानते थे। यही कारण है कि उन्हें अदृश्य जगत् का रहस्य ज्ञात हो गया।

एक दृष्टान्त लीजिए। एक साधारण फूल है। और लोगों की दृष्टि में उसमें कोई सौन्दर्य ही नहीं। संसार तो उस पर दृष्टिपात भी न करेगा। परन्तु उस क्षुद्र फूल की महिमा गाना कवियों ही का काम है। कवि सम्भवतः उसकी सुगन्धि का वर्णन करेगा। उसकी सुकुमारता से अपनी प्रेमिका के कोमल अङ्गों की उपमा देगा। उसके सौन्दर्य पर मुग्ध हो जायगा। उस पर प्रातःकालीन शिशिर-बिन्दुओं की शोभा देखेगा। बस, साधारण कवि अपनी शक्ति इसी में लगा देगा। परन्तु वर्ड् सवर्थ की राय में—

"To me the meanest flower that blows can give
Thoughts that do often lie too deep for tears."

अर्थात् एक क्षुद्र से क्षुद्र फूल से भी मुझमें अनिर्वचनीय भावना उत्पन्न होती है।

नदी के तट पर स्थित सूर्यमुखी के फूल का वायु के झोंकों से इधर-उधर हिलना एक साधारण घटना नहीं है। वह जड़ पदार्थ की गति नहीं है। वैज्ञानिक चाहे कुछ कहें; उसके हिलने में समस्त संसार का गूढ़ रहस्य वर्तमान है। परन्तु वह रहस्य जड़वादियों (Materialists) के शुष्क हृदयों में उद्भासित नहीं हो सकता। उसके यथार्थ ज्ञान के लिए प्रकृति का आश्रय लेना होगा।

"That serene and blessed mood,
In which the affections gently lead us on,—
Until the breath of this corporeal frame
And even the motoins of our human blood
Almost suspended, we are laid asleep
In body, and become a living soul:"

संक्षेप में इसका तात्पर्य है कि प्रकृति के वैचित्र्य-दर्शन के निमित्त योग और समाधि की आवश्यकता है। तभी हम वस्तुओं के आन्तरिक भावों को समझ सकेंगे—"We see into the life of things."

इसी प्रकार ध्यानपूर्वक, समाधिद्वारा, हम उस साधारण फूल की आन्तरिक चैतन्यावस्था का भी अनुभव कर सकते हैं। पवन के मन्द वेग से उस फूल को भी आनन्द प्राप्त होता है। उसे भी सुख-दुख का अनुभव होता है—

"And, tis my faith that every flower
Enjoys the air it breathes."

अर्थात् यह मेरा विश्वास है कि सभी फूल पवन के स्पर्श से आनन्द का अनुभव करते हैं—

"To every natural form, rock, fruit, or flower,
Even the loose stones that cover the highway,
I gave a moral life : I saw them feel,
Or linked them to some feeling"

वर्ड् सवर्थ का यह एक सिद्धान्त है। अच्छा, अब इसकी तुलना तुलसीदासजी के विचारों से कीजिए। यहाँ पर यह कह देना परमावश्यक है कि वर्ड् सवर्थ की भाँति तुलसीदास का विषय प्रकृति-वर्णन नहीं है। वे तो केवल बीच बीच में प्रसङ्गवश कुछ प्रकृति-वर्णन कर देते हैं। इसलिए जैसे वर्ड् सवर्थ ने अपने सिद्धान्तों को "Tintren Abbey" नामक कविता में सविस्तर लिपिबद्ध किया है उसी तरह यदि तुलसीदास के विचार एक स्थान में न मिलें तो कोई आश्चर्य नहीं। हमें केवल यह देखना है कि तुलसीदासजी के विचारों में वर्ड् सवर्थ की भावनायें हैं या नहीं।

देखिए, जनकजी की वाटिका के वर्णन में तुलसीदास जी कहते हैं—

"जहँ वसन्त ऋतु रही लुभाई"

वसन्त मुग्ध होकर उस उपवन में निवास करने लगा। स्थूल पदार्थों की कौन कहे, यहाँ तो ऋतु भी मुग्ध होते हैं।

और सुनिए। महादेव जी की समाधि भङ्ग करने को मनोज जा रहा है। उसकी माया से, देखिए, संसार की क्या दशा होगई है—

"सबके हृदय मदन-अभिलाषा।
लता निहारि नवहिँ तरु-शाषा॥
नदी उमँगि अम्बुधि कहँ धाई।
सङ्गम करहिँ तलाव तलाई॥"

मूढ़ जगत् जिनको जड़ और अचेतन कहता है वही "लता, तरुपाँती" और नदी-तालाब कवि की दृष्टि में चेतन हैं और काम के वशीभूत भी हो सकते हैं। यदि गुसाईंजी यह चौपाई न कह कर केवल "सर सरिता वन-भूमि-विभागा। जनु उमँगत अम्बुधि अनुरागा" ही कहते तो 'जनु' के कारण हम उनकी उक्ति को केवल उपमावाची मान कर छोड़ देते। परन्तु यहाँ यह स्पष्ट हो जाता है कि तुलसीदास भी प्रकृति को चैतन्य मानते हैं—तभी तो सीता-वियोग-दुःखित श्रीरामचन्द्र जी कहते हैं—

"पूछत चले लता तरु-पांती"।
"हे खग मृग हे मधुकर-श्रेनी।
तुम देखी सीता मृगनयनी"॥

और इसी प्रकार सीताजी भी अशोकवृक्ष से प्रार्थना कर रही हैं—

"सुनहु विनय मम विटप अशोका।
सत्यनाम करु हरु मम शोका॥

यह कवि की कोरी कल्पना नहीं है। 'लता तरु-पाँती' प्रश्न पूछने का केवल यही तात्पर्य हो सकता है कि कवि की दृष्टि में वे सब चेतन हैं।

इसका और भी प्रमाण लीजिए—

"सहित समाज साज सब सादे।
चले राम वन अटन पियादे॥
कोमल चरण चलत बिनु पनहीं।
भइ मृदु भूमि सकुचि मन मनहीं॥
कुश कण्टक काँकरी कुराई।
कटुक कठोर कुवस्तु दुराई॥
महि मञ्जुल मृदु मारग कीन्हें।
बहति बयारि त्रिविध सुख लीन्हें॥"

जब रामचन्द्रजी के लिए पृथ्वी मन में सकुच कर मार्ग के कुश-कण्टकों को हटा देती है, जब उनके सुख के लिए त्रिविध बयारि बह रही है, जब उनको धूप से बचाने के लिए "करत जात छाया जलद" तब उपर्युक्त सिद्धान्त में कुछ भी सन्देह नहीं हो सकता।

वर्ड्सवर्थ के काव्य में सभी प्राकृतिक पदार्थ केवल अपने ही आनन्द के अनुभव में मग्न रहते हैं। इससे उनका स्वार्थ प्रकट होता है। पेड़ों की टहनियों पर पानी बरसने से, या नीचे बिछी हुई सूखी पत्तियों पर ओले पड़ने से केवल टहनियों या पत्तियों ही को आनन्द प्राप्त होता है, जिसके कारण वे नृत्य किया करती हैं। परन्तु तुलसीदास की सृष्टि में सभी जड़ पदार्थ मनुष्यों के सुख-दुःख से सहानुभूति रखते हैं। उनके मत से प्रकृति हमारे हर्ष-शोक में सम्मिलित होती है—

"अवधपुरी प्रभु आवत जानी।
भई सकल शोभा की खानी॥
भइ सरजू अति-निर्मल नीरा।
बहै सुहावन त्रिविध समीरा॥"

और—

"श्रीहत सर सरिता वन बागा।
नगर विशेष भयानक लागा॥
खग मृग हय गज जाहिँ न जोए।
राम-वियोग-कुरोग-बिगोए॥"

और भी—

"जब ते आइ रहे रघुनायक।
तब ते भो वन मङ्गल-दायक॥
फूलहिँ फलहिँ विटप विधि नाना।
मञ्जु-ललित-बर बेलि-बिताना॥
गुञ्ज मञ्जुतर मधुकर-श्रेनी।
त्रिविध बयारि बहै सुखदेनी॥"

इन युक्तियों की तुलना अँगरेज़ी के प्रसिद्ध लेखक एवं कवि स्काट के "Lay of the last Minstrel" नामक काव्य के पाँचवें सर्ग के प्रारम्भिक पद्यों से की जा सकती है—

"When the poet dies Nature mourns her worshipper and celebrates his obsequies."

अर्थात् जब कवि का देहान्त होता है तब प्रकृति

अपने उपासक इत्यादि की मृत्यु पर शोक-प्रकाशन करती है। झरने ही उसके शोकाश्रु हैं। पवन उसकी आहें हैं। इत्यादि—

वर्ड्सवर्थ के एक दूसरे सिद्धान्त से भी तुलसीदास का मत मिलता है। जिस प्रकार तुलसीदासजी कहते हैं कि—

"सिया-राममय सब जग जानी।
करहुँ प्रणाम जोरि जुग पानी॥"

और

"जड़ चेतन जग जीव जे
सकल राममय जानि।
बन्दों सबके पद-कमल॥
सदा जोरि जुग-पानि॥"

उसी प्रकार वर्ड्सवर्थ का भी विश्वास है कि प्रकृति की प्रत्येक वस्तु में परमात्मा की चेतन-शक्ति का वास है। इस सिद्धान्त का हमारे यहाँ कितना प्रचार है, इसके लिखने की आवश्यकता नहीं। वेदान्त इसी पर ज़ोर देता है। पाश्चात्यों के लिए यह चाहे नई बात हो, परन्तु हमारे देश का तो यह प्राचीन सिद्धान्त है। तुलसीदास जी की इसमें कुछ विशेषता नहीं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि यद्यपि तुलसीदास जी की कविता का मुख्य विषय प्रकृति-वर्णन न था, तथापि उनके ग्रन्थों में—और विशेषतः रामायण में—ऐसे कितने ही स्थल हैं जहाँ उनके मत की तुलना वर्ड्सवर्थ के सिद्धान्तों से की जा सकती है। सच तो यह है कि प्रकृति-वर्णन में भी तुलसीदासजी का स्थान उतना ही ऊँचा है जितना वर्ड्सवर्थ का।

लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी, बी० ए०

विविध विषय।

१—प्लेग-निवारण की योजना।

भारतवर्ष की भूमि पर प्लेग को पैर रक्खे कोई २५ वर्ष हो चुके। इस इतने समय में उसने लाखों मनुष्य मार खाये। गाँव के गाँव उजड़ गये, कुटुम्बों के उजड़ जाने या विनष्ट हो जाने की तो बात ही नहीं। गवर्नमेंट ने प्लेग के अस्पताल खोले, बीमारों के लिए झोपड़े बनवाये, लोगों के घर कलई से पुताये, टीका लगाने के लिए डाक्टर नियत किये, और भी न मालूम क्या क्या प्रयत्न किये। शुरू शुरू में तो उसने प्लेग की छूत से छू गये घरवालों के कपड़े-लत्ते तक "अग्नये स्वाहा" कर दिये। पर प्लेगासुर का प्रचण्ड प्रताप धीमा न हुआ। इधर महायुद्ध के कारण सरकार और बड़े बड़े कामों में उलझी रही। इससे उसे प्लेग दूर करने के नुसखे तैयार करने के लिए ज़रा कम फ़ुरसत मिली। पर अब युद्ध की ज्वाला यदि बुझी नहीं तो उसकी तीव्रता बहुत कुछ कम हो गई है। इस कारण सरकार का ध्यान प्लेग की ओर फिर विशेष रूप से आकृष्ट हुआ है। उसने २१ अगस्त १९२० के गैज़ट आव् इंडिया का एक अतिरिक्त परचा निकाला है। उसमें उसने लिखा है कि प्लेग को पधारे बहुत समय बीत गया। बहुत नरनाश हो चुका। उससे प्रजा की रक्षा करना सरकार का काम है। क्या मानी जो पूरा प्रयत्न किया जाय और प्लेग पाताल को न धँस जाय! फिर उसने आज तक किये गये प्लेग-नाशक यत्नों का वर्णन किया है और अपने डाक्टरों, रसायनज्ञों तथा और अधीनस्थ प्रान्तिक गवर्नमेंटों से कहा है कि प्लेग की कोई रामबाण ओषधि यथाशक्ति ढूँढ़ निकालो और ऐसी कोशिश करो कि भारत का पिण्ड इस नरान्तक रोग से छूट जाय। तब तक उसने एक बड़ा ही अच्छा उपाय सोच निकाला है। उसका विश्वास है कि काले रङ्ग का चूहा ही (Black Rat) प्लेग फैलाता है। पहले वही बीमार पड़ता है। उसके बदन के पिस्सू जब मनुष्यों को काटते हैं तब उन्हें भी प्लेग हो जाता है और यह चूहा, आदमियों की बस्तियों में—घरों में—

रहता है, बाहर जङ्गलों और खेतों में नहीं। सो इस दुष्ट जीव का ही अत्यन्ताभाव कर डालना चाहिए। न वह रहेगा और न उसके बदन के पिस्सू किसी को काटेंगे। तब प्लेग आपही आप नष्ट हो जायगा। अतएव इस चूहे को मकान के भीतर न फटकने देना चाहिए। कोना कोना साफ़ रखना चाहिए। कहीं भी उसका बिल न रहने देना चाहिए। अनाज के खत्तों को इस तरह रखना चाहिए—हो सके तो उनको पक्के कर देना या लोहे की चादरों से ढक देना चाहिए—कि उन तक चूहों की पहुँच ही न हो। बात यह कि न उन्हें खाने को मिलेगा और न वे कोठरी कोठरी, कमरे कमरे घूमते फिरेंगे। इसके सिवा और भी जिन प्रयत्नों से इन चूहों का नाश हो सके उन्हें भी खूब दत्तचित्त होकर करना चाहिए। इसमें शिथिलता करना मानों प्लेग को सादर निमन्त्रण देना है। सरकार की इस दयालुता और नेक सलाह के लिए प्रजावर्ग को भूरि भूरि धन्यवाद देना चाहिए। कुछ लोग कहते हैं कि प्लेग हो जाने का कारण ग़रीबी भी है। जिन्हें पेट भर खाने को नहीं मिलता वही विशेष करके प्लेग का शिकार हो जाते हैं। पर ऐसे लोगों का कथन मिथ्या नहीं तो निस्सार ज़रूर होगा। यदि उसमें कुछ तथ्य होता तो सरकार भी अपने मन्तव्य में उसका उल्लेख करती।

२—म्यूर सेंट्रल कालेज।

इलाहाबाद का म्यूर सेंट्रल कालेज इस सूबे में सबसे श्रेष्ठ समझा जाता है। उसकी १९१९–२० ईसवी की रिपोर्ट से मालूम हुआ कि इस साल यह कालेज चलाने में कुछ कम २ लाख ५६ हज़ार रुपया ख़र्च हुआ। पर इस इतने ख़र्च के लिए कालेज को किसी और का मुँह नहीं ताकना पड़ा। क्योंकि जितना ख़र्च हुआ, फ़ीस वग़ैरह से उससे अधिक आमदनी हुई। आमदनी की रक़म ३ लाख ९ हज़ार रुपया समझिए। सो ख़र्च भुगता कर हज़ारों रुपया बच रहा। इस दशा में जब हम यह सुनते हैं कि अमुक वर्ष इतने लड़के जगह की कमी, या मास्टर महाशयों या प्रोफ़ेसर पण्डितों की न्यूनता, के कारण भरती नहीं हो सके तब बहुत अन्तस्ताप होता है। रुपये की जब कमी नहीं तब दो एक कमरे और क्यों नहीं बना लिये जाते? अथवा एक आध अध्यापक और क्यों नहीं रख लिया जाता? गत वर्ष छात्रों की अधिकता के कारण पहले वर्ष की कक्षा के दो भाग कर दिये गये थे। इससे अधिक छात्र लिये जा सके थे। पर, इस साल, सुनते हैं, वैसा नहीं किया गया। फलतः कुछ लड़कों को भरती होने से अवश्य ही निराश होना पड़ा होगा। ३१ मार्च १९२० को इस कालेज के छात्रों की संख्या ५५० थी अर्थात् पिछले साल की अपेक्षा ६० छात्र अधिक अध्ययन करते थे। उनमें से ३०७ तो आर्ट्स (अर्थात् कला-सम्बन्धिनी) क्लासों में थे और २४३ विज्ञान-सम्बन्धिनी क्लासों में। इससे सूचित है कि छात्रों या उनके अभिभावकों का ध्यान विज्ञान की शिक्षा-प्राप्ति की ओर कम है। पर बात होनी चाहिए इसकी उलटी। तथापि सन्तोष इतने ही से कुछ कुछ हो सकता है कि पहले की अपेक्षा अब लड़के विज्ञान अधिक सीखने लगे हैं। पूर्व-निर्दिष्ट ५५० छात्रों में से ब्राह्मण-देवताओं के देवोपम लड़कों की संख्या थी केवल १४६ और ब्राह्मणेतर हिन्दुओं के लड़कों की ३११—पर इन इतने हिन्दुओं में से एम० ए० क्लासों में सिर्फ़ २ लड़के संस्कृत पढ़ते थे। यह बात ज़रा खटकनेवाली है। १९१८–१९ की परीक्षाओं में एम० ए० और एम० एस-सी० की परीक्षाओं का फल बहुत अच्छा रहा। इस कालेज में पढ़नेवाले लड़कों में से सबसे अधिक लड़के हिन्दू होस्टल में रहते हैं, जिनकी संख्या रिपोर्ट के साल १४१ थी।

३—अध्यापक वसु का क्रेस्कोग्राफ़।

मनुष्य को खाना न मिलने से वह कमज़ोर हो जाता है और अधिक उपवास से मर भी जाता है। प्राणिमात्र का यही हाल है। प्राणियों ही की तरह ज़मीन को भी खाद्य दरकार होता है। उसे उसकी ख़ुराक न मिलने से वह अशक्त हो जाती है। और, कुछ दिनों तक लगातार भूखी रहने पर फिर उसमें पेड़-पौधा, घास-पात कुछ नहीं उगता। बात यह है कि पेड़-पौधे भी तो कुछ खाते हैं; सिर्फ़ मिट्टी से उनका गुज़र बसर नहीं होता। मिट्टी में कुछ पदार्थ-विशेष मिले रहते हैं। उन्हीं को अपनी जड़ों से चूस कर वे जीते हैं, बढ़ते हैं और शक्ति-सम्पन्न होते हैं। खाद्य जितना ही अच्छा होता है, वृद्धि भी उनकी उतनी ही अधिक होती है और फल-फूल भी वे उतना ही अधिक देते हैं। कुछ पेड़-पौधों को एक प्रकार का खाद्य पसन्द है,

कुछ को दूसरे प्रकार का। मतलब यह कि भिन्न भिन्न प्रकार के पौधों की रुचि भी, मनुष्यों की तरह, भिन्न भिन्न प्रकार की है। पेड़-पौधों के खाद्य का नाम है खाद। उसी पर पेड़ों की तन्दुरुस्ती और ज़िन्दगी क़ायम रहती है। अध्यापक वसु ने क्रेस्कोग्राफ़ नाम का जो यन्त्र बनाया है उसकी सहायता से हम प्रत्यक्ष देख सकते हैं कि कौन पौधा कितनी देर में कितना बढ़ता है। यह समाचार अख़बार पढ़नेवाले बहुत पहले ही पढ़ चुके हैं। अख़बार पढ़नेवाले ही क्यों सभी लोग—शिक्षित काश्तकार, ज़मींदार, महाजन, व्यापारी, व्यवसायी, कारख़ानेदार—इस ख़बर को सुन चुके हैं और ख़ूब आश्चर्य्य भी प्रकट कर चुके हैं। इनके सिवा, हमारी गवर्नमेंट भी सुन चुकी है और उसके संस्थापित, महकमे जिराअत, के बड़े बड़े डाइरेक्टर, मास्टर और इन्स्पेक्टर जनरल भी सुन चुके हैं। पर उससे फ़ायदा उठाने की बात इस देश में किसी ने नहीं सोची। और सोची भी हो तो उसकी भनक, भाई, हमारे कानों में तो पड़ी नहीं। सोची किसने है—हज़ारों कोस दूर, समुद्र के भीतर स्थित, आस्ट्रेलिया और इँगलेंड के टापुओं में रहनेवाले लोगों ने! वे इस यन्त्र की सहायता से अनाज, फल-फूल और तरकारियों आदि के पौधों को भिन्न भिन्न प्रकार की खाद देकर उनकी वृद्धि की जांच करेंगे। जिस खाद से पौधे ख़ूब बढ़ेंगे, और ख़ूब मोटे ताज़े होंगे, और ख़ूब फलें फूलेंगे वही खाद देकर वे उनकी खेती करेंगे। इस तरह जिस चीज़ की इस समय एक ही फ़सल होती है उसकी दो फ़सलें वे पैदा करेंगे और जिसकी दो होती हैं उसकी तीन! और हम लोग बैठे बैठे क्या करेंगे? हम करताल हाथ में लेकर गावेंगे—"जय जगदीश हरे!"

४—चन्द्रमा पर बाण-वर्षा की तैयारी।

चन्द्र! लोगों की नज़र तो तुम पर बहुत मुद्दत से है। तुम्हें सज़ा देने की तजवीज़ें पुरातन काल से लोग करते चले आ रहे हैं। पर तुम अब तक बचे ही रहे। "अयोगि-वधू-वध-पातक"—करके भी तुम्हारा बाल कोई नहीं बाँका कर सका! राहु के मुँह के भीतर जाकर भी तो तुम कटे हुए गले की राह निकल भागते हो। पर अब तुम्हारी ख़ैर नहीं। सारी कसर अब निकल जायगी। संयुक्त-राज्य (अमेरिका) के प्रोफ़ेसर राबर्ट एच० गोडर्ड तुम पर शर-सन्धान किये हुए बैठे हैं। तुम्हारी ही नहीं, मङ्गल महाराज तक को वे अपने बाण का निशाना बनानेवाले हैं। सावधान! प्रोफ़ेसर साहब किसी कालेज में लड़के पढ़ाते हैं और दिन रात तुम्हें अपने बाणों से छेद डालने की युक्तियाँ भी लड़ाया करते हैं। कुछ समय से नई और पुरानी दोनों प्रकार की दुनिया में आपकी अलौकिक युक्तियों के श्रवण और पाठ की धूम मची हुई है। आप कहते हैं कि हम ६३७ सेर का एक भीषण बाण छोड़ेंगे। उसमें कुछ ऐसा मसाला रक्खेंगे कि जब बाण का वेग कम होने लगेगा तब उस मसाले की पहली थैली धड़ाम-शब्द करके जल उठेगी और बाण को आगे बढ़ा देगी। इसी तरह एक के बाद एक थैली का मसाला छूटता जायगा और बाण बढ़ता चला जायगा। जब वह २,४०,००० मील का सफ़र करके चन्द्रमा के पृष्ठ-देश पर आघात करेगा तब उसमें रक्खा हुआ एक और मसाला जल उठेगा। उसका प्रकाश इतना तीव्र होगा कि पृथ्वी पर बैठे बैठे हम उसे देख लेंगे और जान लेंगे कि बाण ने पातकी शशलाञ्छन से उसके पुराने और नये सभी पातकों का प्रायश्चित्त करा लिया!

५—शकर पैदा करनेवाला पेड़।

गन्ने से बनी हुई शकर को खानाख़राब करने के लिए अभी तक चुकन्दर से ही बनी हुई शकर बहुत काफ़ी थी। अब उसका एक और प्रतिद्वन्द्वी क्यों शत्रु उत्पन्न हो गया है। उस दिन अँगरेज़ी के एक पत्र में देखा तो मालूम हुआ कि ब्रिटिश कोलम्बिया में चुक़न्दर का एक चचा निकल पड़ा है। वहाँ डगलस-फर (शाहबलूत) नाम का एक पेड़ होता है। उसकी पत्तियों पर शकर आपही आप पैदा होती और जम जाती है। सो भी थोड़ी नहीं, पाव इंच से लेकर दो इंच के घेरे में उसकी पपड़ी पड़ जाती है। वह देखने में सफ़ेद और खाने में लज़ीज़ होती है। मुँह में रखने पर पहले तो उसकी पीठी सी बन जाती है, पर शीघ्र ही वह घुलने लगती है और ज़रा ही देर में मुँह मीठा करके पेट में चली जाती है। अगर कहीं इस पेड़ से शकर तैयार होकर भारत आने लगी तो ईख महारानी को भारत से शायद सदा के लिए बिदा होना पड़े। न भी बिदा हुई और देव-उठानी एकादशी के दिन भगवान् पर चढ़ाने के लिए उनकी

एक आध टुकड़ा मिल भी गया तो क्या उसे मिलना कह सकते हैं। वह तो पूर्वजों की यादगार-मात्र समझी जायगी।

६—फ़्रांस में किसानों और मज़दूरों की सहयोगिता।

वर्तमान युग को वैज्ञानिक युग कहना चाहिए। सभी देशों में विज्ञान की उन्नति हो रही है। विज्ञान की वृद्धि से व्यवसाय की समृद्धि हो रही है। जो देश विज्ञान में पिछड़ा हुआ है वह व्यवसाय में भी आगे नहीं बढ़ सकता। यही कारण है कि वैज्ञानिक शिक्षा पर सभी लोग इतना ज़ोर दे रहे हैं। पर इसका एक परिणाम बड़ा बुरा हो रहा है। व्यवसाय की उन्नति से गाँव उजड़ते जा रहे हैं। लोग अब शहरों में रहना अधिक पसन्द करते हैं। आज-कल यन्त्रों का उपयोग इतना बढ़ गया है कि हाथ की कारीगरी नष्ट हो रही है। गाँव में जो लोग अपने हाथ से कपड़े तैयार करते थे उनका तो अब वह रोज़गार ही चला गया। दरिद्र किसान अब खेती करना पसन्द नहीं करते। शहरों में मज़दूरी से उनका जीवन-निर्वाह अधिक सुलभता से हो सकता है। इसी लिए दुर्भिक्ष पड़ने पर अथवा और किसी प्रकार का आर्थिक सङ्कट आने पर वे गाँव छोड़ कर शहर का ही आश्रय लेते हैं। यह लक्षण अच्छा नहीं। जो ज़मींदार या ताल्लुक़ेदार हैं उन्हें चाहिए कि वे किसानों को आश्रय देकर गाँवों में रक्खें। सभी सभ्य देशों में आज-कल कृषि की ओर अधिक ध्यान दिया जा रहा है, क्योंकि कृषि ही देश के जीवन का आधार है। फ़्रांस में धनी ज़मींदार अपने मज़दूरों के लिए अच्छे ढङ्ग से काम कर रहे हैं। भारतवर्ष के लिए यह ढङ्ग नया नहीं, परन्तु यदि इसका सर्वत्र प्रचार कर दिया जाय तो सचमुच बड़ा लाभ हो। वह ढङ्ग यह है—

फ़्रांस में ज़मीन काफ़ी है। जिनके पास ६०० एकड़ ज़मीन है वे बड़े ज़मींदार कहाते हैं। उनके लिए खेती करने के तीन उपाय हैं। या तो वे ख़ुद खेती करें, या दूसरे किसानों को लगान पर ज़मीन दें अथवा दूसरों को हिस्सेदार बना कर खेती करें। अन्तिम उपाय को ज़मींदारों और मज़दूरों की सहयोगिता कहते हैं। इसमें उपज के दो हिस्से होते हैं। एक ज़मींदार का, दूसरा मज़दूरों का। मज़दूर जितना धन खेती में लगाते हैं उतना ही हिस्सा लेने का उन्हें हक़ रहता है। कृषि के उपयोगी पशु ख़रीदना और बेचना, बीज पसन्द करना, खाद डालना, फ़सल काटना, ये सब काम खेत के मालिक की अनुमति से होते हैं। इससे मज़दूरों को यह लाभ है कि उन्हें किसी प्रकार का भय नहीं रहता। उपज कम होने पर उन्हें सारी हानि नहीं उठानी पड़ती। इसके सिवा वे मज़दूर बन कर काम नहीं करते, हिस्सेदार हो जाते हैं। इससे वे ख़ूब मन लगा कर काम करते हैं। यह प्रथा फ़्रांस में प्राचीन काल से प्रचलित है।

७—भारतवर्ष का गोधन।

धार्मिक हिन्दुओं की दृष्टि में गाय माता के समान पूज्य है। वे उसकी रक्षा करना अपना धर्म समझते हैं। अन्य देश-वासियों की दृष्टि में गायों का कुछ भी धार्मिक महत्त्व नहीं। तो भी वे लोग अपने अपने देशों में गायों की रक्षा और वृद्धि के लिए सदैव तत्पर रहते हैं। भारतवर्ष का यह अभाग्य है जो वह अपने गोधन की रक्षा करने के बदले उसे दूसरे देशों को अर्पण कर रहा है। एक बार बम्बई के लेजिसलेटिव कौंसिल में इसी विषय पर प्रश्न किया गया था। उस पर गवर्नमेंट ने स्वीकार किया था कि ब्रेजिल के कुछ लोग गुजरात में मवेशी ख़रीद कर अपने देश भेज रहे हैं। इसके बाद एक प्रेसनोट निकला। उससे मालूम हुआ कि उसी के पहले साल ११७८ मवेशी ब्रेजिल को, ११० बेलजियम को, १०० फ़्रांस को, ११२ ज़ंजीबार को भेजे गये थे। यह तो एक साल के मवेशियों का हाल है। यदि सोलह सत्रह साल का हिसाब लगाया जाय तो इनकी संख्या लाखों तक पहुँचेगी। भारतवर्ष में गोधन का इतना आधिक्य नहीं है कि वह दूसरे देशों को कुछ दे सके। सच पूछो तो इस विषय में वह अन्य कई देशों से हीन है। "दी वर्ल्ड एंड दी न्यू डिस्पेंसेशन" नामक पत्र में एक सूची निकली है। उससे मालूम होता है कि अर्जेन्टाइन में प्रति दो मनुष्य पीछे ७ गायें हैं, यूनाइटेड स्टेट्स में प्रति तीन मनुष्यों के पीछे २ गायें, विलायत में प्रति ४ मनुष्यों पीछे १ गाय, जर्मनी और फ़्रांस में प्रति तीन मनुष्यों के

पीछे १ गाय और रूस और भारतवर्ष में प्रति ४ मनुष्यों के पीछे एक गाय है।

८—इम्पीरियल लाइब्रेरी।

सर्वसाधारण की ज्ञान-वृद्धि के लिए स्कूलों का स्थापित किया जाना जितना आवश्यक है उतना ही पुस्तकालय खोलना। सभी सभ्य देशों में पुस्तकालयों की उन्नति करना परमावश्यक माना गया है। भारतवर्ष में महाराजा बड़ोदा ने अपने राज्य में पुस्तकालयों का अच्छा प्रचार किया है। सन् १९१८ से भारतवर्ष में पुस्तकालय-स्थापना का आन्दोलन होने लगा है। उसी साल, जनवरी में, भारतवर्ष के सब पुस्तकालयों के अध्यक्षों का एक सम्मेलन, लाहोर में, हुआ था। भारतीय सरकार के शिक्षा-विषयक सलाहकार उसमें सभापति हुए थे। भारत के सभी भागों में पुस्तकालय स्थापित करने, देशी भाषाओं के प्राचीन ग्रन्थों की खोज करने, पुस्तकालय-सम्बन्धी एक सामयिक पत्र निकालने, एक समिति स्थापित करने, आदि का निश्चय हुआ। पुस्तकालयों के प्रचार के लिए सम्मेलन में उपाय सोचे गये। १९१९ के जून में ऐतिहासिक काग़ज़-पत्रों की जाँच के लिए नियत की गई कमिटी (Historical Records Commission) की एक बैठक शिमला में हुई थी। उसका यह उद्देश था—लोगों को सरकारी काग़ज़ात प्राप्त करने में सुभीता करना और लोगों में इतिहास की खोज करने की लालसा बढ़ाना। हर्ष की बात है कि सरकार का ध्यान इधर आकृष्ट हुआ है। पुस्तकालयों की उपयोगिता को कौन स्वीकार न करेगा। भारतवर्ष में सबसे प्रसिद्ध पुस्तकालय कलकत्ता की इम्पीरियल लाइब्रेरी है। नीचे हम कलकत्ता-रिव्यू के एक लेख के आधार पर उसके विषय में कुछ बातें लिखते हैं—

लार्ड विलियम बेंटिङ्क भारतवर्ष के गवर्नर जनरल थे। उनके चले जाने पर यहाँ कुछ समय तक सर चार्ल्स मेटकाफ़ पर भारत का शासन-भार पड़ा। उन्होंने १८३५ ईसवी में भारतीय प्रेसों को स्वतन्त्र कर दिया। इस कारण उनकी बड़ी ख्याति हुई। लोग बड़े कृतज्ञ हुए। जब सर चार्ल्स मेटकाफ़ भारतवर्ष से जाने लगे तब लोगों ने उनकी स्मृति-रक्षा के लिए उपाय सोचा। सबसे अच्छा उपाय यही समझा गया कि उनके नाम से एक पुस्तकालय खोल दिया जाय। कलकत्ते में एक लाइब्रेरी सर्वसाधारण के लिए खोली गई। उसके लिए अलग कोई मकान न मिला। तब डाक्टर एफ़० पी० स्ट्राङ्ग के बँगले में ही पुस्तकालय स्थापित किया गया। वहीं १८४१ तक पुस्तकालय रहा। १८४४ तक फोर्ट विलियम कालेज में पुस्तकें ले जाकर रक्खी गईं। इसके बाद स्ट्रेंड-रोड और हेयर-स्ट्रीट जहाँ मिलती हैं वहीं एक जगह, लार्ड आकलेंड की कृपा से, मिल गई। तब चन्दा किया गया। ७०,००० रुपये एकत्र हो गये। १८४४ में मकान भी बन कर तैयार हो गया। पुस्तकालय की स्थापना हो गई। पर उसका प्रबन्ध अच्छा न था। १८९९ में लार्ड कर्ज़न ने भारतवर्ष में एक इम्पीरियल लाइब्रेरी स्थापित करने की आवश्यकता देखी। १९०२ में इम्पीरियल लाइब्रेरी एक्ट पास किया गया। तब कलकत्ता-पब्लिक लाइब्रेरी इम्पीरियल लाइब्रेरी बना दी गई। जान मैकफरलेन साहब उसके अध्यक्ष नियुक्त किये गये। १९०३ में स्वयं वाइसराय ने आकर उसका उद्घाटन-संस्कार किया। उस समय उसमें एक लाख पुस्तकें थीं। इसके बाद एक लाख पुस्तकें और रक्खी गईं। अब तो उसका प्रबन्ध बहुत ही अच्छा है। उससे कितने ही लोग शिक्षा-लाभ कर रहे हैं।

९—कृषि की उन्नति।

अभी भारतवर्ष में कृषि की उन्नति में बड़ी बड़ी बाधायें हैं। सबसे बड़ी बाधा है लोगों की अज्ञानता। कृषि की उन्नति के लिए जो नये नये यन्त्र तैयार किये जाते हैं उनका व्यवहार वे लोग अपनी अज्ञानता के कारण नहीं कर सकते। कभी इँगलेंड का भी यही हाल था। अठारहवीं सदी के अन्त तक वहाँ गाँवों की बड़ी दुर्दशा थी। निकम्मे जानवर, बुरी फ़सल और दरिद्र किसान—यही वहाँ देखे जाते थे। इसमें सन्देह नहीं कि वहाँ उन्नति के लिए बहुत चेष्टा की गई थी। कुछ सुधार भी हुए थे। पर लोगों का विशेष ध्यान इधर आकृष्ट नहीं हुआ था। उन्नीसवीं सदी के आरम्भ में नेपोलियन के युद्ध की समाप्ति होने पर व्यवसाय की बड़ी उन्नति हुई। परिणाम इसका यह हुआ कि खेती की उपजों का मूल्य ख़ूब बढ़ गया और मज़दूरी का निर्ख़ भी बढ़ा। मज़दूर मिलते भी कम थे। तब इसकी

चिन्ता हुई कि थोड़ी मिहनत से अधिक काम किस तरह हो। तब तो तरह तरह के यन्त्र आविष्कृत हुए। उस समय तक कृषि-विज्ञान का प्रचार नहीं हुआ था। लार्ड टाउनसेंड, आर्थर यंग, बैकवेल आदि लोगों ने वैज्ञानिक विद्वान् न होकर भी बड़े उत्साह से कृषि की उन्नति के लिए उद्योग किये। उन्नीसवीं सदी के मध्य काल में कृषि की उन्नति में विज्ञान का प्रयोग हुआ। उससे बड़ा लाभ हुआ। मवेशियों की उन्नति के विषय में भी ख़ूब ध्यान दिया जाने लगा। इस काम में तो ग्रेटब्रिटन संसार के लिए आदर्श हो गया। ज़मीन में पानी देने और खाद डालने की अच्छी रीति निकाली गई। लावस (Lawas) और गिलबर्ट (Gilbert) आदि वैज्ञानिकों ने कृषि-सुधार में अच्छा नाम कमाया। १९१४ से कृषि पर और भी अधिक ध्यान दिया गया। इसके पहले कृषि-विज्ञान की इतनी उपयोगिता कभी प्रमाणित नहीं हुई थी। राजनीति-विशारदों ने भी कृषि का महत्त्व स्वीकार किया। यह तो इँगलेंड का हाल हुआ। डेनमार्क ने १८६२ में, जर्मनी द्वारा पराजित होने पर, कृषि की उन्नति की ओर ध्यान दिया। ५० ही साल में उसने अच्छी तरक़्क़ी की। महायुद्ध के आरम्भ होने के ४० साल पहले जर्मनी ने कृषि के सुधार के लिए अच्छी आयोजना कर ली थी। भारतवर्ष में एक तो किसान निरक्षर और दरिद्र हैं, फिर महँगी और अकाल के कारण वे दुर्दशा-ग्रस्त हो रहे हैं। मज़दूर भी अब कम मिलते हैं। इसलिए अब यह आवश्यक है कि खेती का वह ढङ्ग हो जिससे ख़र्च कम और लाभ अधिक हो। अब तो वैज्ञानिक यन्त्रों का उपयोग करना नितान्त ही आवश्यक है।

इसका एक और भी कारण है। वह है पशुओं की कमी। भारतवर्ष में कृषि के उपयुक्त पशु गाय, बैल और भैंसे हैं। १९१३-१४ में ब्रिटिश भारत में बैलों की संख्या ४,८०,००,००० थी। इनमें भी ३,२०,००,००० पशु निकम्मे थे। कृषि के काम में लाने योग्य पशुओं की संख्या सिर्फ़ १,१६,००,००० थी। भारतवर्ष में प्रति वर्ष कोई २०,००,००,००० बीघे ज़मीन ज़ोती जाती है। इतनी ज़मीन के लिए इतने पशु पर्याप्त नहीं। तीन चार बीघे ज़मीन के लिए दो बैल दरकार होते हैं। एक महाशय ने इन्हीं सब बातों पर विचार करके कृषि की उन्नति के लिए निम्न लिखित उपायों को आवश्यक बतलाया है—

(१) कृषि-विभाग की एक ऐसी शाखा होनी चाहिए जो पशुओं की ही उन्नति पर ध्यान दे।

(२) सरकार चरागाहों और आबपाशी का अच्छा प्रबन्ध कर दे।

(३) पशु-वध रोक दिया जाय।

(४) कृषि-विज्ञान और पशु-पालन-विषयक छोटे छोटे ग्रन्थ किसानों को बाँटे जायँ।

(५) मुफ़् शिक्षा देने का प्रबन्ध किया जाय।

(६) पशुओं के लिए अधिक अस्पताल खोले जायँ।

१०—कोटा का दियासलाई का कारख़ाना।

बङ्गाल नागपुर रेलवे की कटनी-बिलासपुर शाखा पर कोटा एक छोटा सा स्टेशन है। वहाँ दियासलाई का एक कारख़ाना है। उसके मालिक एक गुजराती सज्जन हैं। नाम उनका श्रीयुत अमृतलाल है। कारख़ाने का नाम है अमृतलाल मैच फ़ेक्टरी। वह १९०२ ईसवी में खोला गया था। पहले पहल वहाँ प्रति दिन २०० ग्रोस दियासलाई की डिबियाँ तैयार होती थीं। परन्तु अब कुछ साल से आर्थिक हानि होने के कारण कारख़ाने में कम काम होता है। महायुद्ध के समय दियासलाई के मसाले की क़ीमत बढ़ गई थी और योरप से माल मँगाने में बड़ी कठिनता थी। उस समय यह कारख़ाना क़रीब क़रीब बन्द ही हो गया था। पर अब इसका काम फिर जारी हो गया है। आज-कल हर रोज़ १७५ से लेकर २०० ग्रोस तक डिब्बियाँ तैयार होती हैं।

सलाइयाँ और उनके लिए डिब्बियाँ तैयार करने के लिए ऐसे वृक्षों की लकड़ियाँ काम में लाई जाती हैं जो नरम हों। ऐसे वृक्षों में सेमल का वृक्ष मुख्य है। सलई, केकद और कुल्लू की लकड़ियाँ भी उपयुक्त होती हैं। सलई का उपयोग डिब्बी और उसका निचला भाग बनाने में होता है। दियासलाई बन्द करके भेजने के लिए बड़े बड़े सन्दूक़ भी उसी के बनाये जाते हैं।

सलाइयाँ और डिब्बियाँ बनाने की लकड़ी जब हरी रहती है तभी काट ली जाती है। काटने के बाद १५ दिन के भीतर ही लकड़ी कारख़ाने में पहुँच जानी चाहिए।

नहीं तो काम में लाने के पहले उसे २४ घण्टे तक पानी में उबालना पड़ता है। सलई की लकड़ी जल्दी टूट जाती है। इसलिए बिना उबाले वह काम में नहीं लाई जा सकती। उबालने से लकड़ी मुलायम हो जाती है।

सेमल से सलाई और डिब्बी, और सलई से सिर्फ़ डिब्बी के निचले भाग के लिए पतले पतले टुकड़े बनाये जाते हैं। सेमल और सलई के लट्ठों को कारख़ाने में लाकर सोलह सोलह इञ्च की लम्बाई के टुकड़े काट लिये जाते हैं, जिससे वे छीलने की मेशीन में ठीक जम जायँ। छील कर निकालने के बाद उन टुकड़ों का व्यास ५ से २७ इंच तक होना चाहिए। जिन लकड़ियों की गुलाई १६ इंच से कम होती है वे इस काम में नहीं लाई जा सकतीं।

लकड़ी छीलने की मेशीन दो तरह की है। एक से तो सलाई के लिए पतले पतले टुकड़े बनाये जाते हैं और दूसरी से डिब्बी के लिए। सलाई के टुकड़े १/१२ इंच मोटे बनाये जाते हैं और डिब्बी के १/३० इंच के लगभग। इन टुकड़ों की मुटाई लकड़ी की क़िस्म पर अवलम्बित रहती है। अगर लकड़ी लचीली हो तो उसके टुकड़े भी पतले निकलते हैं।

लकड़ी छीलने की मेशीन से निकल कर ये टुकड़े सलाई काटने की मेशीन में डाले जाते हैं। सलाई तैयार होने पर, सुखाने के लिए, एक कमरे में रक्खी जाती है। इस काम के लिए एक ख़ास कमरा रहता है। उसके कई हिस्से हैं। उनके बीच बीच उत्ताप पहुँचानेवाली नलियाँ लगी रहती हैं। जब अच्छी धूप होती है तब सलाइयाँ बाहर मैदान में ही सुखा ली जाती हैं।

सूख जाने के बाद सलाई पर पालिश की जाती है। इसके लिए एक यन्त्र अलग ही है। वह ढोल के आकार का है और लोहे की छड़ पर खड़ा रहता है। इसी के भीतर सलाई को भर कर घुमाते हैं। एक दूसरी से रगड़ खाकर सलाई अच्छी चिकनी हो जाती है। फिर डिब्बियों में भर कर बाहर भेजी जाती है।

११—क़ैदियों के उद्धार की चेष्टा।

पतितों के उद्धार की चेष्टा करना महत्कार्य है। जो समाज-सुधारक हैं उन्हें चाहिए कि वे सामाजिक कुप्रथाओं को दूर करने के साथ ही साथ अपने उन देश-बन्धुओं की भी दशा सुधारने का प्रयत्न करें जो नीचे ही गिरते जा रहे हैं। प्रति वर्ष छोटे छोटे अपराधों के कारण जो लोग जेल भेजे जाते हैं उनमें से अधिकांश वहाँ से छूट कर फिर आवारागर्दी में पड़ जाते हैं। यदि पहले उनमें थोड़ा बहुत आत्मसम्मान का भाव रहा भी हो तो वह जेल की हवा खाकर उड़ जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि प्रति वर्ष ऐसे अपराधियों की संख्या बढ़ती ही जाती है। अभी हाल में मध्यप्रदेश के जेलों के इन्सपेक्टर जनरल ने १९१९ की जो रिपोर्ट प्रकाशित की है उसमें उन्होंने यह बात स्वीकार की है। गत वर्ष मध्यप्रदेश में सज़ायाफ़्ता लोगों में अधिकांश को ६ महीने से कम ही की सज़ा मिली। इसमें भी १,००० तो ऐसे थे जिन्हें तीन महीने से भी कम की सज़ा हुई थी। इनमें से अधिकांश तो पेट की ज्वाला से पीड़ित होकर चोरी करने पर बाध्य हुए थे। ये लोग अवश्य दया के पात्र हैं। यदि जेल से छूटने पर इन्हें जीविका उपार्जन का कोई ज़रिया मिल जाय तो ये फिर वैसा काम न करें। यदि ऐसी पतितोद्धारिणी संस्थायें हों जो इनकी देख-रेख कर सकें तो ऐसे क़ैदियों को जेल में न रख कर उनके ही संरक्षण में रखना अधिक लाभदायक है। प्रान्तीय सरकार चाहती है कि ऐसी संस्थायें सर्वसाधारण की ओर से स्थापित हों। वह सहायता देने के लिए तैयार है। मध्यप्रदेश में ऐसी दो संस्थायें हैं भी। एक तो रायपुर में है, दूसरी सागर में। रायपुर की संस्था की ओर से अच्छा काम हो रहा है। सागर में अभी लोगों का ध्यान उसकी ओर इतना आकृष्ट नहीं हुआ है जितना कि चाहिए। फिर भी संस्था का उद्योग स्तुत्य है। एक ऐसी संस्था नागपुर में भी खुली थी, पर थोड़े ही दिनों में वह बन्द हो गई। इसमें सन्देह नहीं कि ऐसी संस्थाओं की बड़ी आवश्यकता है। यदि एक भी विपथगामी सुपथ में लगाया जा सके तो समझना चाहिए कि उद्योगी का उद्योग सफल हो गया। हमारी समझ में तो ऐसी एक संस्था प्रत्येक ज़िले में स्थापित होनी चाहिए।

१२—अफ़ीम के व्यवसाय पर अमरीका।

संयुक्त-राज्य, अमरीका, के हाउस आव् रिप्रेजन्टेटिव्ज़ (प्रतिनिधि-सभा) में जून में मेसन साहब ने ग्रेटब्रिटेन के अफ़ीम पैदा करने और बेचने के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव

पेश किया। प्रस्ताव वैदेशिक कार्यों से सम्बन्ध रखनेवाली कमिटी के पास भेज दिया गया है। प्रस्ताव यह है--

(१) यह प्रतिनिधि-सभा प्रस्ताव करती है कि अमेरिका की सरकार ब्रिटिश सरकार से यह प्रार्थना करे कि वह समग्र जनता के हित के लिए अफ़ीम पैदा करना और बेचना छोड़ दे, जैसे कि वह भारत तथा अन्य कई देशों में किया करती है। इस विषय में उसे चीन का अनुकरण करना चाहिए।

(२) यह सभा ब्रिटिश-पार्लमेंट का ध्यान आकृष्ट करती है कि वह कोशिश करके ग्रेटब्रिटन के इस व्यवसाय को बन्द कर दे। क्योंकि ऐसे व्यवसाय से ही संसार में अफ़ीम के नशे की जड़ जमी हुई है।

१३—अमेरिका में वायुयानों की प्रदर्शिनी।

न्यूयार्क में ६ मार्च से १३ मार्च तक वायुयानों की प्रदर्शिनी खुली रही। उसमें युद्धोपयोगी वायुयान नहीं दिखलाये गये। अधिकांश वायुयान ऐसे ही थे जो व्यवसाय अथवा यात्रा के लिए उपयुक्त थे। प्रदर्शिनी में सभी प्रकार के छोटे बड़े वायुयानों का सङ्ग्रह किया गया था। उनमें सबसे अधिक चित्ताकर्षक वह वायुयान था जिसमें १० आदमी मज़े में बैठ कर एक स्थान से दूसरे स्थान तक यात्रा कर सकते हैं। उसमें बैठने के लिए काफ़ी जगह है, खिड़कियाँ हैं और एक कमरा भी है जहाँ असबाब रख सकते हैं। रात को यात्रा करने के लिए रोशनी का भी प्रबन्ध किया गया है। उसमें ४०० घोड़ों की शक्ति रखनेवाले दो एञ्जिन काम करते हैं। वह एक घण्टे में १२४ मील तक जा सकता है। उसकी चौड़ाई ६४ फ़ीट ४ इञ्च है, लम्बाई ३६ फ़ीट ७½ इञ्च और ऊँचाई १२ फ़ीट ११ इञ्च है। वह चार पाँच मन वज़न ले जा सकता है। अब वायुयानों से यात्रा करने में भय नहीं। १९१६ ईसवी में डाक ले जानेवाले वायुयानों ने ४,०५,००० मील की यात्रा की। इसमें ४ मनुष्यों की प्राण-हानि हुई। तीन तो धुन्ध और अँधेरे में नीचे उतरते समय ठीक जगह पर न आने के कारण मरे और एक यान के एक पुर्ज़े से धक्का खा कर मरा। १९१८ तक कोई १७,६६० लोगों ने वायुयान द्वारा यात्रा की। वे ७,०५,२४३ घण्टे तक उड़े। हिसाब लगा कर देखने से मालूम होता है कि २३१० घण्टों में एक मनुष्य की प्राण-हानि हुई।

१४—बड़ौदा में पञ्चायत।

बड़ौदा के महाराज बड़े प्रजा-हितैषी हैं। उन्होंने अपनी प्रजा की उन्नति के लिए अनेक सुधार किये हैं। जिससे प्रजा का हित हो वही काम वे करते हैं। बड़ौदा में पञ्चायत-प्रथा का अच्छा प्रचार हो रहा है। प्रजा के अधिकारों की वृद्धि हो रही है और उनका कार्य-क्षेत्र भी बढ़ाया जा रहा है। अभी, हाल में, पञ्चायतों की एक कानफ़रेन्स हुई थी। उसके अध्यक्ष बड़ौदा के दीवान साहब थे। उसमें दीवान साहब ने बतलाया कि महाराज गायकवाड़ ने गये साल ही पञ्चायतों को राज्य के प्रबन्ध में अधिक अधिकार दे दिये थे। लोकल सेल्फ़ गवर्नमेंट (स्वायत्तशासन) के विषय में अब एक क़ानूनी मसविदा भी बनाया जा रहा है। उससे भी अधिकार बढ़ाये जायँगे। महाराज ने भी यह सूचना दी है कि अब भविष्य में बड़ौदा राज्य का आय-व्यय भी प्रजा की सम्मति से निर्धारित किया जायगा। शिक्षा-प्रचार, स्वास्थ्य, मवेशियों की निकासी और बारिक-मास्टरी का प्रबन्ध पञ्चायतों के हाथ रहेगा। ये शुभ लक्षण हैं। हमें आशा है, अन्य देशी राज्य भी बड़ौदे का अनुकरण करेंगे।

१५—अन्धों के लिए एक उपयोगी यन्त्र का आविष्कार।

अन्धों के लिए पहले जो पुस्तकें तैयार होती थीं उनके अक्षर उभड़े हुए रहते थे। अन्धा आदमी उन्हें टटोल कर पढ़ सकता था। कुछ समय के बाद एक अन्ध-लिपि का आविष्कार किया गया। इससे अन्धों को पढ़ाने लिखाने में बड़ी सुविधा हो गई। उनके लिए उसी लिपि में तरह तरह की पुस्तकें लिखी गईं। पर कुछ समय से वैज्ञानिक इस बात की चेष्टा कर रहे हैं कि अन्धे साधारण छापे की भी पुस्तकें पढ़ने लगें। एक ऐसे यन्त्र का आविष्कार हुआ भी है। उसका नाम है ओलोफ़ोन (Olophone)। पर यह यन्त्र निर्दोष नहीं था। उसके दोषों को दूर करने के लिए गत दो वर्षों से वैज्ञानिक विद्वान् परिश्रम कर रहे हैं। उन्हें अब अपने उद्योग में अच्छी सफलता हो गई है। ओलोफ़ोन में बहुत कुछ सुधार हो गया है। उसकी सहायता

से अन्धा आदमी एक मिनट में २५ शब्द तक पढ़ सकता है। यही बहुत है। यह परिणाम ग्लासगो के डाक्टर बार और स्ट्राउड नामक विद्वानों के दो वर्षों के अनवरत परिश्रम का है।

१६—प्रोफ़ेसर गज्जर।

प्रोफ़ेसर गज्जर की, इसी अगस्त महीने में, मृत्यु हो गई। प्रोफ़ेसर साहब का जीवन-काल कई अंशों में विलक्षण था। आपका जन्म ऐसे कुल में हुआ था जिसमें शिक्षा का अभी तक प्रायः अभाव है। आपके माता-पिता की भी अवस्था अच्छी नहीं थी। आपने अपने ही अध्यवसाय और परिश्रम से नाम कमाया। महाराजा गायकवाड़ की आप पर बड़ी कृपा-दृष्टि थी। उन्हीं की सहायता से आपने बड़ौदा में कला-भवन स्थापित किया। वहाँ औद्योगिक शिक्षा दी जाती है। वहाँ रह कर आपने अच्छा काम किया। इससे आपकी प्रसिद्धि भी खूब हुई। इसके बाद आप बम्बई आये। महारानी विक्टोरिया की मूर्त्ति के दाग़ छुड़ाने पर आपको छोटे बड़े सभी जान गये। फिर आप विलसन कालेज में रसायन-शास्त्र के अध्यापक नियुक्त हुए। पर आप अपने काम से सन्तुष्ट न थे। तब आपने एक प्रयोगात्मक वैज्ञानिक शाला खोली। दस साल तक बम्बई की सभी रासायनिक प्रक्रियायें यहीं होती रहीं। वैज्ञानिक गवेषणाओं में बम्बई का आज जो स्थान है वह आपके ही सदुद्योग का फल है। आपने और भी कई अच्छे अच्छे काम किये। वनिता-विश्राम के स्थापन में आपका भी हाथ था। औद्योगिक उन्नति के लिए तो आपने अपना सर्वस्व ही लगा दिया। आपकी आर्थिक दशा अच्छी रहने पर भी आपने एक पैसा नहीं छोड़ा। जो कुछ था वह सब आपने अपने देश की उन्नति में ही ख़र्च कर दिया।

डाक्टर गज्जर की बनाई हुई प्लेग की दवा का इस देश में बहुत प्रचार है।

ऐसे देश-हितैषी सज्जन की मृत्यु से किसे दुःख न होगा?

पुस्तक-परिचय।

१—प्रास-पुञ्ज—यह एक पुस्तक का नाम है; प[illegible] भाला, बरछी या पाश-नामक गले की फँसरी की तरह क[illegible] कोई हथियार नहीं। पहले तो 'प्रास' देख कर डर लगा, प[illegible] नये आर्म्स-ऐक्ट का स्मरण होने पर दिलजमई हुई; क्योंकि प्रास-आदि रखना अब मना नहीं। कारण यह कि उसकी गिनती फायर आर्म (Fire-arm) में नहीं। पुस्तक खोली तो भीतर महाप्रास के भी दर्शन हुए। पढ़ चुक[illegible] पर पता चला कि ये प्रास और महाप्रास पुराने अलङ्कार-शास्त्रियों के प्यारे अनुप्रास के पूर्वज, वंशज या भाई-बन्द हैं। अस्तु। इस प्रास-पुञ्ज को तैयार करके चतुर्दिक् वितीर्ण या विकीर्ण करनेवाले हैं कोई—नारायणप्रसाद "बेताब" महाशय। आप कलकत्ते के नंबर ७, मार्कस स्क्वायर में रहते हैं और वहीं से इस प्रास-पुञ्ज का प्रचलन करते हैं। पुस्तक आपने बड़ी अच्छी छपाई है और उसकी सुन्दरता को जिल्दरूपी पतली ढाल से ढक भी दिया है। १) देने से प्रासों का यह पुञ्ज मिलता है और २३२ सफ़[illegible] में उसकी परम्परीण, अर्वाचीन तथा हिन्दी, उर्दू, फ़ारसी, अरबी, संस्कृत, सभी से सम्बन्ध रखनेवाली समीचीन, च[illegible] पढ़ने को मिलती है। "बेताब" जी उर्दू-फ़ारसी के छन्दः-शास्त्र के अच्छे ज्ञाता मालूम होते हैं। आप उर्दू-फ़ारसी के काव्य के गुण-दोषों का भी गहरा ज्ञान रखनेवाले जान पड़ते हैं। इस सब ज्ञान-गरिमा से गरिष्ठ होकर अब आ[illegible] "विदुषामनुचरः" बने हैं और हिन्दी के प्रास-प्रेमियों को अपने प्रास-कौशल की कला सिखाने की सिद्धि से सम्पन्न होना चाहते हैं। हमें आशा ही नहीं, विश्वास है, आपको इसमें अवश्य ही सफलता-प्राप्ति होगी।

प्रास जाने दीजिए, अनुप्रास के सम्बन्ध में आप[illegible] जो कुछ लिखा है बहुत ठीक लिखा है। उर्दू, फ़ारसी और संस्कृत के कवियों, महाकवियों और आलङ्कारिकों ने अ[illegible] प्रास के पीछे पड़ कर आज तक जो कुछ कहा सुना है [illegible] सबका निचोड़ तो आपने इस पुञ्ज के पेट में भर [illegible] दिया है, कुछ भी छोड़ा नहीं। आपने अपनी तरफ़ से [illegible] एक नहीं अनेक नई नई बातें—नई नई युक्तियाँ—बता [illegible] की बहुत बड़ी कृपा की है। आपका दावा है कि आ[illegible] अनु-प्रासों के "सिद्धान्तों का इत्र निकाल कर रख दि[illegible]

है"। पर हमारी महा-मन्द मति तो मचल मचल कर कह रही है कि मैं न मानूँगी; यह सिद्धान्तों का इत्र नहीं; यह तो सिद्धातों की रूह है। बेताब होकर बेताबजी से वह एक और भी प्रार्थना करना चाहती है। वह कहती है कि बेताबजी ने एक भयङ्कर भूल कर डाली है। आपने लिख मारा है—

"न्यायी नेत्र अवश्य इस गागर में सागर देख सकेंगे" इस वाक्य में बेताबजी को "सागर" की जगह महाप्रास के पितृव्य महा-सागर को देनी चाहिए थी। हाँ, यदि बेताबजी हमारी मति को न्यायी न मानें तो जाने दें; जिसे वह जगह मिली है वही उस पर क़ाबिज़ रहे।

बेताबजी ने बड़ी सरस और सानुप्रास हिन्दी लिख कर इस प्रास-पुञ्ज की प्रतिष्ठा बढ़ाई है और कोई २०० पृष्ठों में, वर्णक्रमानुसार, सैकड़ों क्या हज़ारों समतोल और सम-प्रास शब्दों का एक कोश का कोश रख दिया है। इस कोश से कवियों को पद्यरचना में बहुत सहायता मिल सकती है। सच तो यह है कि इस विषय की इतनी अच्छी और कोई पुस्तक हमने नहीं देखी—

क्रियेत चेत् साधुविभक्तिचिन्ता
व्यक्तिस्तदा सा प्रथमाभिधेया

बेताबजी, छन्दःप्रभाकर की जो भूल आपने दिखाई सो तो बहुत ठीक दिखाई। पर आपने यह क्या लिख मारा—

"हिन्दी भाषा में क्रियापदों का अन्त में ही आना बोलचाल के अनुसार (ठीक ?) माना जाता है। यदि हम इस अंश में संस्कृत का अनुकरण करें तो बोलचाल का मज़ा किरकिरा हो जाय। हिन्दी-कविता और कवि की उच्चता भी इसी में है कि रोजमर्रा, बोलचाल न बिगड़ने पाय"।

वर्तमान हिन्दी-लेखकों और वक्ताओं के अनुसार बोल-चाल तो है—"न बिगड़ने पाये या न बिगड़ने पावे"। इस 'पाय' को आपने किस उपाय या सम्प्रदाय की बदौलत पा लिया ? बोलचाल या रोज़मर्रा को न बिगड़ने देना सच-मुच ही कवियों के लिए बहुत बड़ा गुण है; पर इससे आपका क्या यह मतलब है कि यदि क्रियापद अन्त में न आवे तो बोलचाल का मज़ा किरकिरा हो जाय ? क्या बोलचाल और क्रियापद एक ही चीज़ है ? यदि हाँ, तो आप अपने इस प्रास-पैसेफ़िक में ज़रा एक डुबकी और लगा देखिए। तुलसीदास ने रामायण के आरम्भ ही में लिखा है—

"जिहि सुमिरत सिधि होइ × × × ×
करहु अनुग्रह सोइ × × × ×

यहाँ "सुमिरत" और "करहु" के अन्त में न आने से कितना मज़ा और कैसे किरकिरा हो गया ?

अथवा—

"भगवान भारतवर्ष में गूँजे हमारी भारती"

यहाँ बीच में घुस कर 'गूँजे" ने भारती के सौभाग्य-भाण्ड को कहाँ तक फोड़ फेंका ?

हज़ारों कोस दूर बैठे हुए छात्रों को आप कलकत्ते से ही पिङ्गल पढ़ा रहे हैं। "विदुषामनुचरः" होने की भी दीक्षा आप ग्रहण कर चुके हैं। अतएव अब आप "छन्दानुसार" और "समवाय सम्बन्ध" आदि पद लिखना छोड़ दीजिए। अपने "यूं, ज्यूं, त्यूं" को भी धता बताइए। "यह" का बहुवचन "ये" लिखा कीजिए और "वो" का पद 'वे' को दे डालने की दया दिखाइए।

❋

२—अध्यात्मतत्त्वालोकः—यह बहुत बड़ा ग्रन्थ है। इसकी पृष्ठ-संख्या एक हज़ार के लगभग होगी। आकार बड़ा है। मोटे काग़ज़ पर अच्छे टाइप में छपा है। पुष्ट जिल्द बँधी हुई है। मूल्य ज्ञात नहीं; पुस्तक में कहीं उसका उल्लेख नहीं। प्रकाशक इसके हैं—अभयचन्द्र भगवान-दास गांधी भावनगर। सम्भव है, उन्हीं से यह पुस्तक मिल सकती हो। मूल ग्रन्थ संस्कृत-पद्य में है। वह आठ प्रकरणों में विभक्त है। कोई ५० पृष्ठों में वह समाप्त हुआ है। उसकी रचना न्यायतीर्थ न्यायविशारद मुनि न्यायविजय ने की है। आपने ही अपने इस मूल ग्रन्थ का भावार्थ गुजराती में लिखा है और उसी भाषा में उसकी विस्तृत व्याख्या भी की है। इतने से भी आपको सन्तोष नहीं हुआ। अतएव श्रीयुत मोतीचन्द जह्वेरचन्द मेहता से मूल ग्रन्थ का पहले तो अँगरेज़ी-अनुवाद कराया है और फिर उनसे अँगरेज़ी में ही व्याख्या भी बड़े विस्तार से कराई है। दोनों प्रकार की ये व्याख्यायें और भावार्थ, मूल-ग्रन्थ-सहित,

अलग छापे गये हैं। पुस्तक के इस भाग ने ८०० के ऊपर पृष्ठ ख़र्च कराये हैं। पर यह श्रम और ख़र्च व्यर्थ नहीं गया। व्याख्याओं और नोटों में जैनधर्म से सम्बन्ध रखनेवाली अनेकानेक ज्ञातव्य बातें भरी हुई हैं। आरम्भ में जो एक विस्तृत उपोद्घात या उपक्रम अँगरेज़ी में है वही जैनधर्म के तत्त्वों और सिद्धान्तों को समझने के लिए बहुत काफ़ी था। व्याख्याओं और नोटों से तो वर्ण्य विषयों को और भी वैशद्य प्राप्त हो गया है। चित्र देखने से तो इस मूल-ग्रन्थ के कर्ता मुनि-महाराज बहुत वयस्क नहीं जान पड़ते, पर आपकी कृति तो जराजीर्णों को भी मात करनेवाली है। उससे तो ज्ञात होता है कि आप जैनागम के पारगामी पण्डित हैं। आपने अपने ग्रन्थ के प्रकीर्णक उपदेश, पूर्व-सेवा, योग के अङ्ग, कषाय-जय, ध्यान-सामग्री, ध्यान-सिद्धि, योग-श्रेणी और अन्तिम शिक्षा नाम के प्रकरणों में अध्यात्म-सम्बन्धिनी बड़ी ही गहन बातें कही हैं। पर कही हैं बड़ी सरल, सरस और भावमयी श्लोकावली में। आप अध्यात्म-तत्त्व के ज्ञाता ही नहीं, सुकवि भी हैं। हम तो आपके ग्रन्थ के अनेकांश पढ़ कर मुग्ध हो गये। कितने ही अंशों का बार बार पाठ किया; पर फिर भी तृप्ति न हुई। ज्ञान, भक्ति और तपस्या आदि का फल आपने यह बताया है—

ज्ञानस्य भक्तेस्तपसः क्रियायाः प्रयोजनं खल्विदमेकमेव
चेतःसमाधौ सति कर्मलेपविशोधनादात्मगुणप्रकाशः

सो बहुत ही ठीक है। संसार में दुर्लभ क्या वस्तु है? तृष्णा-नाश किं वा सन्तोष। न्यायविजयजी की आज्ञा भी यही है—

अखण्डभूमण्डलशासकत्वं न दुर्लभं दुर्लभमेतदेव।
तृष्णानिराशोपगतावकाशं सन्तोषरत्नं परमप्रभावम्॥

जान पड़ता है, मुनि महाराज ने प्राचीन संस्कृत-काव्यों का ख़ूब परिशीलन किया है। तभी तो आपके इस ग्रन्थ में कालिदास आदि महाकवियों की छाया यत्र तत्र देख पड़ती है। यथा—

शिरीषपुष्पाधिकमार्दवाङ्गीं समुच्छलत्सुन्दरकान्तिपूराम्
× × × × × × ×
एवंविधां प्रौढकलाकलापामपि त्यजेद्योषितमन्यदीयाम्
(३—२०, २१

इसे पढ़ कर कालिदास का—"शिरीषपुष्पाधिकसौकुमार्यौ बाहू"—झट याद आ जाता है।

यह संसार दुःखमय है। जो सुख कभी कभी कहीं देख भी पड़ता है वह आपात-रम्य है, क्षणिक है। इन्द्रिय-विषय-जन्य सभी सुख क्लेशपर्य्यवसायी, अतएव परिताप-कारक, हैं। लोग यही नहीं जानते कि सुख कहते किसे हैं। इस ग्रन्थ के कर्ता मुनि महाशय ने इसमें यही बताया है। उन्होंने बताया है कि सुख चीज़ क्या है और उसकी प्राप्ति के साधन कौन कौन से हैं। उन्हीं साधनों की सिद्धि से आत्मतत्त्व का आलोक देखने को मिल सकता है। और तभी प्रकृत सुख मिलने की कुछ आशा हो सकती है।

❋

३—महिम्न-स्तोत्र—आकार बड़ा, छपाई और काग़ज़ बहुत साधारण, पृष्ठ-संख्या १३ + ३७ और मूल्य ।=) है। महिम्न बहुत प्रसिद्ध स्तोत्र है। भक्त और धर्म्मनिष्ठ हिन्दू उसका पाठ प्रति दिन करते हैं। उसमें शिव की स्तुति है। वह पुष्पदन्त नामक गन्धर्व का रचा हुआ कहा जाता है। इस स्तोत्र की अनेक टीकायें और टिप्पणियाँ, संस्कृत में, हैं। एक टीका में तो इसके प्रत्येक श्लोक का अर्थ विष्णु और शिव दोनों पर घटाया गया है। ऐसा यह स्तोत्र—"विन्ध्येश्वरीप्रसाद-गुप्त-विरचित बहु-विषय-विभूषित सुधोपमा (पद्यात्मिका) तथा मनोरमा (गद्यात्मिका) टीका-द्वय सहित"—अब कछवा, मिर्ज़ापुर, से प्रकाशित हुआ है और प्रकाशक, बाबू रामकृष्णदास गुप्त, को लिखने से मिलता है। इसका पद्यात्मक-अनुवाद मूल श्लोक के ही छन्दों में किया गया है। पर ऐसा प्रयत्न कई कारणों से यथेष्ट सफल नहीं हो सकता। यही बात गुप्तजी के अनुवाद के विषय में भी चरितार्थ है। हाँ, आपकी गद्यात्मक टीका अवश्य अच्छी है। उससे मूल का भावार्थ अच्छी तरह समझ में आ जाता है। आपने जगह जगह पर जो नोट दिये हैं वे भी बड़े काम के हैं। उनसे पढ़नेवाले को बहुत सी प्रासङ्गिक बातें मालूम हो सकती हैं। आदि में आपने कथासरित्सागर के आधार पर पुष्पदन्त की कथा भी लिख दी है। गुप्तजी से प्रार्थना है कि "साज" शब्द हिन्दी में पुँल्लिङ्ग मालूम होता है। पर आपने अपने आठवें श्लोक के अनुवाद में स्त्रीलिङ्ग लिखा है—

तथा है खटवाङ्ग प्रभु तव यही साज इतनी

४—कौमारभृत्य अथवा बालचिकित्सा—इसका आकार मध्यम, छपाई साफ़-सुथरी, पृष्ठ-संख्या १८० और मूल्य ॥।) है। इसे विवेचक नामधारी किसी धन्य पुरुष ने लिखा है। धन्य इसलिए कि यह पुस्तक लिख कर उन्होंने अनन्त जनों का उपकार किया है। अतएव वे धन्यवाद के पात्र हैं। बच्चों के पालन-पोषण के विषय में हमारे आयुर्वेद में बहुत कुछ लिखा गया है। पर वे उपचार सर्व-साधारण जन तो जानते ही नहीं, छोटे मोटे वैद्य तक उन्हें भूले हुए से हैं। यही कारण है जो सरकारी जन्म-मरण के लेखों में बच्चों की मृत्यु-संख्या इतनी अधिक देख देख कर विचारशीलों का कलेजा काँप उठा करता है। इसका कुछ कारण तो अधिकांश प्रजा की दरिद्रता भी हो सकती है; पर सबसे बड़ा कारण है अज्ञान। विवेचक महाराज ने जन्मकाल से लेकर बच्चों के पालन-पोषण और रक्षण इत्यादि की व्यवस्था लिख कर उनको होनेवाले रोगों का विवरण तथा शास्त्रसङ्गत चिकित्सा भी लिख दी है। हिन्दी में ऐसी पुस्तक की बड़ी भारी ज़रूरत थी। पढ़ी लिखी स्त्रियाँ इसे पढ़ कर और इसमें दिखाये गये मार्ग का अनुसरण करके अपनी सन्तति की रक्षा ही नहीं, उसकी अकाल-मृत्यु भी बहुत कुछ टाल सकती हैं। गृहस्थों को चाहिए कि इस पुस्तक की एक कापी अपने संग्रह में अवश्य रक्खें। मिलने का पता—जगद्भास्कर-औषधालय, नयागंज, कानपुर।

५—शिवाजी की योग्यता—इस पुस्तक के लेखक के नाम में बड़ी भारी विलक्षणता है। नाम है—"तरुण-भारत, एम० ए०, एल० टी०"। संसार जानता है कि भारत बूढ़ा है। पर इस नाम में भारत के तारुण्य का परिचय दिया गया है। पुस्तकें लिखते हैं मनुष्य। पर यह पुस्तक इस देश ने ही—भारत ने ही—लिख डाली है। एम० ए०, बी० ए० भी मनुष्य ही होते हैं। पर यहाँ भारतवर्ष ने एम० ए० की पदवी धारण कर ली है। अरे भाई! नाम छिपाना था तो चेतन तो बने रहते। एकदम जड़ कैसे हो गये। भारत से मतलब यदि भारतवासियों से है तो सबने मिल कर यह किताब लिखी नहीं; किसी एक ही ने लिखी है। अतएव लेखक का यह नाम, उपनाम या गुप्त नाम कुछ थोड़ा सा आक्षेप-योग्य ज़रूर जान पड़ता है। अस्तु। एम० ए० पासशुदह लोगों से हम अधिक छेड़खानी नहीं करना चाहते। तरुणभारतजी की लिखी हुई इस पुस्तक का आकार मध्यम, छपाई और काग़ज़ सुन्दर, पृष्ठ-संख्या १२८ और मूल्य ॥।) है। इसका प्रकाशन इन्दौर की मध्य-भारत-पुस्तक-एजन्सी ने किया है और वही इसे बेचती है। इसका विषय इसके नाम से ही प्रकट है। इसमें अनेक दृष्टियों से शिवाजी की योग्यता का प्रतिपादन किया गया है। उनके पूर्व की परिस्थिति तथा समकालीन परिस्थिति का भी विवेचन किया गया है। उनके विषय में किये गये आक्षेपों का खण्डन भी किया गया है। पुस्तकान्त के एक परिशिष्ट में यह भी बताया गया है कि मराठी राजसत्ता का नाश क्यों हुआ। पुस्तक ऐतिहासिक है, पढ़ने लायक़ है, महत्त्व रखती है। हाँ भाषा में कहीं कहीं कसर रह गई है, सो भी योंही थोड़ी सी।

※

६—सस्तुं साहित्यवर्धक कार्य्यालय (अहमदाबाद) की दो पुस्तकें। इन दोनों पुस्तकों की भाषा गुजराती है। दोनों पर सुन्दर जिल्द है। छपाई और काग़ज़ अच्छा है। पहली पुस्तक का नाम है—स्वामी विवेकानन्द, भाग ६ और ७। इसकी पृष्ठ-संख्या ४२२ और मूल्य केवल १।) है। इसके छठे भाग में स्वामीजी के सम्भाषण और संवाद, व्याख्यान और वार्तालाप, तथा अँगरेज़ी भाषा के नामी नामी समाचारपत्रों के रिपोर्टरों के साथ प्रश्नोत्तर हैं। सातवें भाग में स्वामीजी के अनेक पत्रों के अनुवाद हैं। इस सामग्री के भीतर गहरा ज्ञान, अनमोल उपदेश और स्वदेश-विषयक अनेक ज्ञातव्य बातें भरी हुई हैं। इसके अनुवादक हैं—नाजुकलाल नन्दलाल चोकसी।

दूसरी पुस्तक है—टूंकी वार्ताओ। यह इस नाम की पुस्तक का पाँचवाँ भाग है। इसकी पृष्ठ-संख्या २६४ और मूल्य ॥—) है। हिन्दी की मासिक, साप्ताहिक तथा अन्य पुस्तकों और पत्रों में निकली हुई मनोरञ्जक, सरस और शिक्षादायक कहानियों आदि के अनुवाद इसमें हैं। उनकी संख्या २८ है। उनमें से ७ कहानियाँ "सरस्वती" से भी ली गई हैं। इन सबके अनुवादन-कार्य-कर्ता हैं—परीख पुरुषोत्तमदास मथुरादास—नाम के

कोई खम्भात-निवासी सज्जन। हिन्दी का सौभाग्य तो देखिए! गुजराती के लेखक उसकी नक़ल करने लगे!

❋

७—स्त्रियों का स्वर्ग—इसका आकार मँझोला, पृष्ठ-संख्या ४३५, मूल्य २) और छपाई अच्छी है। यह पण्डित अमृतलाल सुन्दरजी पढ़ियार नामक एक सज्जन की गुजराती पुस्तक का अनुवाद है। अनुवादक हैं बाबू महावीरप्रसाद गहमरी। पढियारजी ने ऐसी ऐसी कई किताबें लिखी हैं। सभी शिक्षा-प्रद हैं। उनकी यह पुस्तक स्त्रियों के लिए लिखी गई है। आज-कल स्त्रियों की कैसी स्थिति है और कैसी होनी चाहिए, यही इसमें बतलाया गया है। पुस्तक अच्छी है, स्त्रियों के लिए सर्वथा लाभदायक है। इसके पाठ से मनोरञ्जन भी होता है और शिक्षा भी मिलती है। भाषा सरल है। यह लेखक के पास स्वर्गमाला-कार्यालय, चेतगञ्ज, बनारस, के पते पर लिखने से मिल सकती है।

❋

८—हिन्दी-रचना-प्रणाली—इसका आकार मँझोला और पृष्ठ-संख्या ४०८ है। साधारण काग़ज़ पर अच्छे टाइप में छपी है। मूल्य १।) है। पण्डित रामसुन्दर शर्मा काव्यतीर्थ ने इसकी रचना की है। आप रांची के ज़िला स्कूल में हेड-पण्डित हैं। आपही को लिखने से मिल सकती है। कालेजों और स्कूलों के छात्रों के लिए इस पुस्तक का प्रणयन हुआ है और प्रणेता को इसमें सफलता हुई है। इसमें रचना (Composition) अनुवाद (Translation) और प्रबन्ध-रचना (Essay writing) इन तीनों विषयों की शिक्षा नवीन ढङ्ग से दी गई है। विश्वविद्यालय के कितने ही प्रश्न-पत्र तथा उनके उत्तर भी दे दिये गये हैं। अपने विषय की बड़ी उत्तम पुस्तक है। इसमें हमारी दृष्टि में भाषा-सम्बन्धी दोष बहुत हैं।

उदाहरणार्थ—लेखक ने अपना पहला ही वाक्य इस तरह लिखा है—"जिस भाषा में हम लोग बोल चाल करते हैं।" परन्तु बोल चाल करना मुहावरा हिन्दी में रायज नहीं।

❋

९—प्रोफ़ेसर माणिकराव की दो पुस्तकें—ये दोनों पुस्तकें गुजराती भाषा और गुजराती ही लिपि में हैं। आकार दोनों का बड़ा है। छपाई सुन्दर है। पहली का नाम—पवित्रता अथवा ब्रह्मचर्य्य—है। इसकी पृष्ठ-संख्या २५ है। मूल्य ठीक ठीक पढ़ा नहीं जाता। इसमें ब्रह्मचर्य्य की महिमा का बड़ा अच्छा वर्णन है। उससे जो लाभ होते हैं वे ख़ूब दिखाये गये हैं। किस तरह की पुस्तकें पढ़ने और खेल इत्यादि देखने से ब्रह्मचर्य्य का विघात होता है, यह भी इसमें बताया गया है। मिलने का पता—ठक्कर खीमजी तेजपाल, कांदावाड़ी, बम्बई। दूसरी पुस्तक का नाम है—व्यायाममन्दिर—इसकी भी पृष्ठ-संख्या २५ और मूल्य ३ आने है। मिलने का पता है—ठक्कर वल्लभदास खेराज आटावाला, डंकन रोड, बम्बई। इसमें व्यायाम के गुण, व्यायामशाला की उपयोगिता और तरह तरह के व्यायामों का वर्णन है। अन्त में जिन चीज़ों से व्यायाम किया जाता है—फरी, गदके, मुगदल, ज़ंजीर, ढाल, चक्र, धनुष आदि—उनके चित्र दिये गये हैं। प्रोफ़ेसर माणिकराव बड़ोदे की जुम्मादादा-व्यायामशाला के अध्यक्ष हैं। अतएव व्यायाम के विषय में आपकी उक्ति सर्वथा माननीय है।

❋

१०—कौंसिल की मेम्बरी—इस छोटी सी ७० सफ़े की पुस्तक का मूल्य ४ आने है। इसे पण्डित राधेश्याम मिश्र ने लिखा और रामप्रसाद ऐंड ब्रदर्स ने इटावे से प्रकाशित किया है। प्रकाशकों से ही मिलती है। अकर्मण्य और अयोग्य लोग भी कौंसिल की मेम्बरी के लिए लार टपकाया करते हैं। यह दृश्य पहले भी देखने को मिलता था; पर अब, कुछ महीनों से, इसका बाज़ार बेहद गरम हो रहा है। इस प्रहसन में ऐसों की ख़ूब ही धूल उड़ाई गई है।

❋

११—सुशील सन्तति—लेखक डाक्टर ज्वालाप्रसाद शर्म्मा, एम०एस०ए० बी०, पृष्ठ-संख्या १३०, काग़ज़ और छपाई साधारण, मूल्य ।॥) है। कदाचित् लेखक ही के पास—चौबेजी का कटला, अमरोहा, मुरादाबाद के पते पर लिखने से यह पुस्तक मिल सकती है।

इस पुस्तक में अनेक बातों की चर्चा की गई है, जिनका ज्ञान होना स्त्रियों के लिए आवश्यक है। अकेली स्त्री घर और बच्चों को कैसे सँभाल सकती है, यह भी इसमें समझाया गया है। बच्चों के कुछ रोगों की साधारण चिकित्सा भी बतलाई गई है। स्त्री-रोगों के भी विषय में कुछ बातें लिखी गई हैं। पुस्तक काम की है। पर भाषा महा रद्दी और अशुद्धियों से परिपूर्ण है।

❊

१२—भूलोक का अमृत [दूध]—लेखक और प्रकाशक, वैद्य गोपीनाथ गुप्त, कविराज कम्पनी, सीताराम बाज़ार, देहली। आकार छोटा, पृष्ठ-संख्या ६१, छपाई और काग़ज़ बहुत साधारण, और मूल्य ।-) है।

इसमें दूध के गुणों का वर्णन किया गया है, उसके उपयोग बतलाये गये हैं और दुग्धपान की विधि भी बतलाई गई है। परिशिष्ट में दुग्ध द्वारा कुछ रोगों की चिकित्सा कैसे की जा सकती है, यह बात बतलाई गई है। दूध के सम्बन्ध की और भी बहुत सी बातें इस पुस्तक में हैं।

❊

१३—Report. उड़ीसा के पुरी ज़िले में घोर अकाल है। यह दशा कोई सवा डेढ़ साल से है। अगली फ़सल कटने तक अकाल की भीषणता कम होने की नहीं। बरसात में वह और भी अधिक हो गई है। गवर्नमेंट ने इस अकाल से प्रजा की प्राणरक्षा यथेष्ट न की। इस कारण उत्कल-यूनियन नामक संस्था ने कुछ लोगों की एक कमिटी बनादी और उनसे कहा कि आप इस अकाल पर एक रिपोर्ट दीजिए। यह वही रिपोर्ट है। अँगरेज़ी में है। इसमें अकाल-पीड़ित जनों की कारुणिक दशा का बड़ा ही हृदय-द्रावक वर्णन है। पीड़ितों के २ चित्र भी हैं। अनाहार से प्राण खोनेवाले सैकड़ों आदमियों के नाम-धाम भी हैं। सरकारी कर्मचारियों की उक्तियों का खण्डन भी है। और भी बहुत सी बातें हैं। अकालग्रस्त जनों के उद्धार के लिए जिसे जो कुछ दान करना हो वह बाबू जगबन्धुसिंह, वकील, पुरी को भेजने की उदारता दिखावे।

❊

१४—जनकगञ्ज स्कूल का सचित्र इतिहास—इसका आकार बड़ा, पृष्ठ-संख्या लगभग १००, छपाई और काग़ज़ साधारण और मूल्य १) है। इसका सम्पादन और प्रकाशन पण्डित रघुनाथ बलवन्त भागवत ने किया है। ग्वालियर में एक बहुत पुराना स्कूल है। वह जनकगंज स्कूल कहलाता है। भागवतजी उसी के सुपरिंटेंडेंट हैं। उसीका यह साद्यन्त इतिहास है। बड़ा मनोरञ्जक है। इस स्कूल की किस प्रकार दिन पर दिन उन्नति होती गई और इस समय इसकी अवस्था कैसी है, यही इसमें दिखाया गया है। प्रसङ्ग से और भी बहुत सी बातों का वर्णन हुआ है। इसके अध्यापकों, प्रसिद्ध प्रसिद्ध विद्यार्थियों, तथा अन्य कई अफ़सरों और राज-कर्मचारियों के चित्रों और चित्र-समुदायों ने चरित्र की शोभा बढ़ाई है।

❊

१५—फ़्री हैण्ड ड्राइंग बुक, नम्बर १ और २। इसके लेखक और प्रकाशक हैं, बाबू गोपालदत्त सुभाल, ड्राइंग मास्टर, भीमताल, ज़िला नैनीताल। दोनों के मूल्य दस दस आने हैं। इसमें साधारण वस्तुओं और जानवरों के चित्र दिये हुए हैं और चित्र खींचने की कुछ उपयोगी बातें बतलाई गई हैं। कापियों में क्रम है। पहले सीधी सादी वस्तुओं और प्राणियों का ख़ाका दिया गया है, फिर विशेष परिश्रम और अभ्यास-सापेक्ष का। ये कापियाँ ड्राइंग सीखनेवाले विद्यार्थियों के बड़े काम की हैं। इसमें दी हुई आकृतियाँ ख़ूब बड़ी बड़ी हैं।

❊

१६—पेटगाँव के राय साहब कालूराम कुर्मी की कहानी—लेखक हैं श्रीयुत डी० क्लस्टन, एम० ए०, डाइरेक्टर, कृषि-विभाग, मध्यप्रदेश; और अनुवादक हैं मि० लक्ष्मीनारायण दुबे। कलकत्ते की मैकमिलन कम्पनी ने इसे प्रकाशित किया है। इसमें छोटे आकार के ६० पृष्ठ हैं। क़ीमत ।=)। है। यह "बाल और वृद्ध किसानों के लिए कृषि पाठ्य पुस्तक है"। पर भाषा अच्छी नहीं। जगह जगह ऐसे शब्द प्रयुक्त हुए हैं जिन्हें सब लोग न समझ सकेंगे, विशेष करके मध्यप्रान्त को छोड़ कर अन्यत्र रहनेवाले लोग। इसमें एक देहाती गृहस्थ के जीवन-चरित्र के बहाने यह बताया गया है कि सुव्यवस्थित और सुधरी हुई खेती किस तरह करनी चाहिए। पुस्तक अच्छी है।

१७—स्वामी रामतीर्थ—आकार छोटा, पृष्ठ-संख्या ३७, काग़ज़ और छपाई साधारणतः अच्छी, लेखक—श्रीयुत श्यामलाल वैश्य और सम्पादक श्रीयुत व्रजमोहनलाल वर्मा, बी० ए०, एल-एल० बी० । छिन्दवाड़ा के श्रीरामतीर्थ-विवेकानन्द-कार्य्यालय ने इसका प्रकाशन किया है । मूल्य "रामप्रेम" है । स्वामीजी नामी उपदेशक थे । उनके उपदेशों से अनेक लोगों ने लाभ उठाया है । अभी तक हिन्दी में स्वामीजी के समग्र ग्रन्थों का अनुवाद नहीं हुआ है । हर्ष की बात है कि श्रीयुत व्रजमोहनलाल वर्म्माजी के सदुद्योग से हिन्दी-भाषा-भाषियों को अब स्वामीजी के उपदेश-रत्न लभ्य हो जायँगे । यह पुस्तक स्वामीजी के नक़द धर्म का स्वतन्त्र अनुवाद है । पुस्तक पढ़ने योग्य है ।

***

नीचे नाम लिखी हुई पुस्तकें भी पहुँच गई हैं । भेजनेवाले महाशयों को धन्यवाद—

(१) सिद्धपुर के श्रीगोपालकृष्ण-सनातन-ब्रह्मचर्याश्रम की संवत् १९७३, ७४ और ७५ की रिपोर्ट तथा मेमोरेंडम आव् असोसिएशन—प्रकाशक—मंत्री, श्रीगोपालकृष्ण-सनातन-ब्रह्मचर्याश्रम सिद्धपुर (उत्तर गुजरात) ।

(२) अनाथी मुनि—लेखक, श्रीयुत पण्डित रामचरित उपाध्याय; प्रकाशक—श्रीआत्मानंद जैन ट्रेक्ट सोसायटी, अम्बाला शहर ।

(३) हमारी अवनत स्थिति और उससे बचने का उपाय—अनुवादक—एक मारवाड़ी बालक; प्रकाशक, पण्डित जगन्नाथ उमाशङ्कर, सम्पादक, प्रातःकाल, भूतडी झापा, बड़ोदा ।

(४) विचित्र मित्र—लेखक बाबू मूलचन्द्र अग्रवाल; प्रकाशक, साहित्य-कार्यालय, मुरार, ग्वालियर ।

(५) संघव्यायाम अर्थात् क़वायद के हिन्दी-बोल—प्रकाशक, प्रोफ़ेसर माणिकराव, बाबाजीपुरा, बड़ोदा ।

(६) सेठ खीमजी जैराम जे० पी० रीडिंग्रूम, दिल्ली, की १९१९ ईसवी की रिपोर्ट—प्रकाशक, रतीलाल नारायणदास गामी, सेक्रेटरी, दिल्ली ।

(७) हृदय-लहरी—लेखक, श्रीलक्ष्मीनारायण गुप्त ।

(८) अथर्ववेदीय पञ्चपटलिका—सम्पादक, पण्डित भगवद्दत्त, बी० ए०, लाहौर ।

(९) सुलतानचरितकाव्यरत्नम्—कविरत्न छज्जूरामशास्त्रिप्रणीतम् ।

(१०) बाल-शिक्षण-पहेली—लेखक, पण्डित शुकलालप्रसाद पाण्डेय, सिमगा, रायपुर ।

चित्र-परिचय ।

वासन्ती ।

कविवर भवभूति संस्कृत के प्रसिद्ध नाटककार हैं । उनके नाटकों में उत्तररामचरित सबसे अच्छा माना गया है । उसमें करुणरस का अच्छा परिपाक है । उसीमें वासन्ती नाम की एक वनदेवी का हाल आया है । जब सीता देवी पञ्चवटी में रहती थीं तब वासन्ती उनकी प्रिय सहचरी थी । लोकनिन्दा के भय से जब रामचन्द्र ने सीता जी का परित्याग कर दिया तब वासन्ती ने रामचन्द्र को ख़ूब फटकारा था । उसने कहा था—

> अयि कठोर यशः किल ते प्रियं
> किमयशो ननु घोरमतःपरम् ।
> किमभवद्विपिने हरिणीदृशः
> कथय नाथ कथं बत मन्यसे ॥

हे कठोर, यश तुम्हें इतना प्रिय है कि तुमने उसके लिए सीता को छोड़ दिया । परन्तु इससे बढ़कर अयश और क्या होगा ? बतलाओ तो, जङ्गल में उस बेचारी की क्या दशा हुई होगी ।

सरस्वती के इस अङ्क में उसी वासन्ती का चित्र प्रकाशित हुआ है । यह श्रीयुत हीरालाल बब्बनजी की कला-कुशलता का नमूना है ।

Printed and published by Apurva Krishna Bose, at The Indian Press, Ld., Allahabad

आकस्मिक विपत्ति ।

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग ।
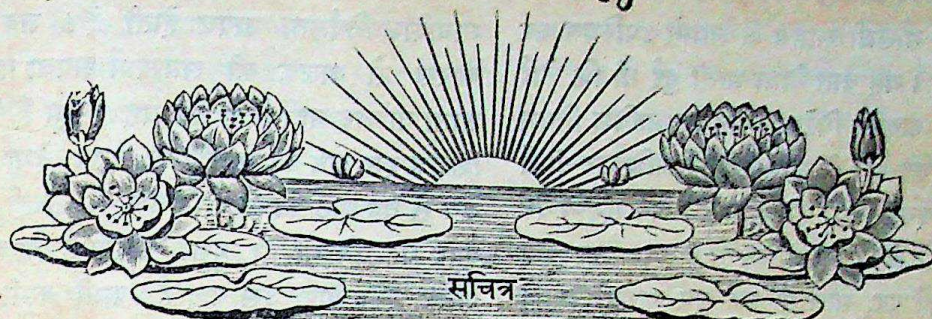
भाग २१, खण्ड २] आक्टोबर १९२०—आश्विन १९७७ [संख्या ४, पूर्ण संख्या २५०

जै जै प्यारे भारत-देश।

जै जै प्यारे देश हमारे
तीन लोक में सबसे न्यारे
हिमगिरि-मुकुट मनोहर धारे
जै जै सुभग सुवेश १—जै जै०

हम बुलबुल तू गुल है प्यारा
तू सुम्बुल, तू देश हमारा
हमने तन मन तुझ पर वारा
तेजःपुञ्ज विशेष २—जै जै०

तुझ पर हम निसार हो जावें
तेरी रज हम शीश चढ़ावें
जगतपिता से यही मनावें
होवे तू देशेश ३—जै जै०

जै जै हे देशों के स्वामी
नामवरों में भी हे नामी
हे प्रणम्य तुझको प्रणमामी
जीते रहो हमेश ४—जै जै०

आँख अगर कोई दिखलावे
उसका दर्प-दलन हो जावे
फल अपने कर्मों का पावे
बने नाम-निःशेष ५—जै जै०

बल दो हमें ऐक्य सिखलावो
सँभलो देश, होश में आवो
मातृभूमि-सौभाग्य बढ़ावो
मेटो सकल कलेश ६—जै जै०

हिन्दू मुसल्मान ईसाई
यश गावें सब भाई भाई
सबके सब तेरे शैदाई
फूलो फलो स्वदेश ७—जै जै०

इष्ट-देव आधार हमारे
तुम्हीं गले के हार हमारे
भुक्ति मुक्ति के द्वार हमारे
जै जै जै जै देश ८—जै जै०

द्विरेफ

शिक्षा-संशोधक संघ।

(Parents and Teachers League.)

हुत समय नहीं हुआ कि शिक्षा का मुख्य स्थान मकतब समझा जाता था। अपने शिष्यों से मकतब के मौलवी साहब का जो बरताव होता था वह सोच कर घृणा और दया पैदा होती है—दया उन बालकों पर जिनको निष्कारण भी दण्ड मिलता था,

और घृणा उस समस्त प्रणाली पर जिसके कारण कपट, मिथ्या-व्यवहार, भय आदि अनेक दुर्गुण विद्या के साथ सिखाये जाते थे। मकतब में पैर धरते ही एक मज़बूत साँट मौलवी साहब के सामने उपस्थित कर दी जाती थी। यह बात गोया मानी हुई थी कि कोई न कोई छात्र अवश्य पिटेगा। यह स्वाभाविक नियम है कि जब दण्ड देने के सामान और अधिकार दोनों प्राप्त हैं तब दण्ड दिया ही जाता है। जब मनुष्य बेंत आदि हाथ में लेकर घूमने चलता है तब और कुछ नहीं तो वृक्षों पर, मार्ग में पड़े हुए पत्थरों आदि

श्रीयुत रामकृष्ण कुलकर्णी, एम० ए० ।

पर, अपना हाथ साफ़ करता जाता है। यद्यपि उन पर चोट करने से कोई लाभ नहीं तो भी यह एक प्रकार का मिथ्याचार सा हो गया है आज-कल के स्कूलों में दण्ड देने का नियम उतना नहीं है। तो भी इस विश्वास के शिक्षकों की संख्या बहुत कम नहीं है जिनका सिद्धान्त है कि Spare the rod, Spoil the child अर्थात् बेंत से काम न लेने से लड़का बरबाद जाता है। कहीं कहीं तो छात्रों को दण्ड देने की ऐसी ऐसी बातें सुनाई देती हैं जिनसे रोमाञ्च हो जाता है। यह तो स्पष्ट ही है कि दण्ड देने की शैली बालकों में भय पैदा करती है। भय से चरित्र के उत्तम गुण विकसित नहीं होते, मानसिक निर्बलता उत्पन्न होती है। जब किसी कारण से बालक की समझ में अपना पाठ नहीं आता या याद नहीं होता तब वह डरता है कि यदि शिक्षक इस बात को जानेगा तो दण्ड देगा। इस भय से वह पाठ को फिर शिक्षक से नहीं पूछता और यह मिथ्या ही प्रकट करता है कि वह पाठ समझ गया और उसे याद है। कभी कभी लड़के स्कूल में छिप जाते हैं। एक महात्मा का कहना है—"जिस बच्चे को दण्ड दिया जाता है उसे न केवल नैतिक हानि पहुँचाई जाती है, किन्तु शारीरिक दुःख से वह डरपोक बन जाता है। अतएव वह अपने से निर्बल जीवों पर अपना क्रोध प्रकट करने का पाठ सीखता है। फल यह होता है कि वह छोटे बच्चों को सताने लगता है। उस बालक के हृदय से पश्चात्ताप करने का गुण जाता रहता है और बदला लेने का अवगुण हृदयाङ्कित हो जाता है। दण्ड के भय से वह धोखेबाज़ बन जाता है और झूठ बोलने लगता है। इसलिए यथाशक्ति बालकों पर विश्वास करना चाहिए और उनका आदर करना चाहिए जिससे वे प्रेम और आदर करना सीखें।"

सुना गया है, एक स्कूल में एक उस्ताद ने एक बालक को, जो बहुधा झूठ बोला करता था, किसी अपराध के कारण एक कोठरी में बन्द कर दिया। थोड़ी देर बाद लड़का चिल्लाया कि मास्टर साहब मुझे निकालो; इसमें साँप है। मास्टर समझे वह झूठ बोल रहा है। लड़के को साँप ने काट लिया।

इसमें सन्देह नहीं कि दण्ड देने से लाभ की जगह हानि है। इस दोष तथा अन्य दोषों को, जो आज-कल की शिक्षा-प्रणाली में पाये जाते हैं, जैसे रटना आदि, दूर करने के लिए शिक्षकों और बालकों का एक संघ स्थापित हुआ है। उसके मुख्य

उद्देश ये हैं—(१) घरों और पाठशालाओं से शारीरिक दण्ड देने की प्रथा को दूर करना—(२) बच्चों के शिक्षण पर प्रभाव डालनेवाले शिक्षण-शास्त्र के नये नये विचारों का प्रचार पालकों और शिक्षकों में करना। प्रत्येक मनुष्य इस संघ का सभासद् हो सकता है, जो संघ के उद्देशों से सहमत हो। चन्दा नहीं देना पड़ता। इसके सभापति मदरास हाईकोर्ट के जज, दीवान-बहादुर, टी० सदाशिव ऐयर हैं। चार उपसभापति हैं—(१) मिस्टर सी० जिनराजदास, एम० ए०, एडयार (२) डाक्टर वलीमुहम्मद, अलीगढ़, (३) राय-बहादुर पण्डित प्राणनाथ सभाभूषण, ग्वालियर, (४) सौभाग्यवती सरोजिनी नायडू। इसके मन्त्री श्रीयुत रामकृष्ण कुलकर्णी, एम० ए०, एल-एल० बी०, प्रोफ़ेसर, विक्टोरिया कालेज, लश्कर, ग्वालियर हैं। मन्त्रीजी छुट्टियों में दौरा करके इस संघ के उद्देशों को फैलाने का प्रयत्न भी करते हैं। वे व्याख्यान देते हैं और पुस्तकें छाप कर वितरण करते हैं। कुलकर्णी महाशय फिलासफी में बम्बई-विश्वविद्यालय के ग्रेजुएट हैं। प्रसिद्ध डाक्टर सेलवी के शिष्य हैं। आपने दर्शन-शास्त्र (Philosoply) और इतिहास (History) में एम० ए० पास किया है। परीक्षा में आप सर्व्वोत्तम निकले थे। आपने तैलङ्ग-गोल्ड-मेडल पाया है। आप एल-एल० बी० भी हुए। परन्तु वकालत में आपकी रुचि न हुई। आपने अपना ध्यान तथा जीवन योगविद्या जानने और उसके अभ्यास में लगाया। इसी को आपने अधिकतर लाभदायक जाना। वकालत करने से यद्यपि अधिक धन प्राप्त कर सकते थे, तथापि मनुष्य-सेवा को आपने अच्छा समझ कर धन-वैभव से मुख मोड़ लिया। आपका स्वार्थ-त्याग प्रशंसनीय है।

अब आप प्रायः १८ साल से थियासफी के सूक्ष्म नियमों का अध्ययन करने और विशेषतः बालकों के विषय में मानस-शास्त्र पर विचार करने में अपना समय लगा रहे हैं। आप लश्कर-कालेज में तर्क-शास्त्र और इतिहास के प्रोफ़ेसर हैं। बालकों की नूतन शिक्षा-प्रणाली पर आप खूब ध्यान देते हैं। अँगरेज़ी में आपने दस पुस्तकें इसी विषय पर छपवाई हैं। उनमें से कई का अनुवाद हिन्दी में भी हो चुका है। लड़कों को देखने और उनसे बातचीत करने का आपको बड़ा चाव है। लोग कहते हैं कि कितने ही बुरी आदतोंवाले बालक आपसे मिल कर अच्छे हो गये हैं आपका तथा संघ का काम सर्वथा प्रशंसनीय है। यदि कोई महाशय आपसे संघ की बाबत या अपने बालकों की बाबत पूछना चाहें तो आप बड़ी ख़ुशी से उत्तर देंगे।

खड्गजीत मिश्र, एम० ए०, एल-एल० बी०

कालिदास की कविता के नमूने।

कवित्व का राज्य इतना विस्तृत और इतना विचित्र है कि एक ही वाक्य में उसे समझा देना असम्भव है। तो भी विज्ञानादि से उसे पृथक् कर देने से—यह न कह कर कि काव्य क्या है, यह बतला देने से कि काव्य क्या नहीं है—हम उसे किसी प्रकार समझ सकते हैं।

विज्ञान से कविता पृथक् है। विज्ञान की भित्ति बुद्धि है, कविता की भित्ति अनुभूति है। विज्ञान का जन्मस्थान मस्तिष्क है, कविता की जन्मभूमि हृदय है। विज्ञान का राज्य सत्य है और कविता का राज्य सौन्दर्य्य है। एक महात्मा ने कहा है कि कवि द्रष्टा है। वैज्ञानिक लोग विज्ञान द्वारा ब्रह्माण्ड में जो शृङ्खला देखते हैं कवि लोग उसी शृङ्खला का अनुभव अनुभूति द्वारा करते हैं। इस शृङ्खला में जो सौन्दर्य्य रहता है वही कवियों का वर्णनीय विषय है। वैज्ञानिक जन कहते हैं कि सन्तान पर माता का स्नेह न रहे तो वह सन्तान जीवित नहीं रह सकती; माता-पिता के यत्न पर ही सन्तान का जीवन आश्रित है। अतएव सृष्टि की रक्षा के लिए माता-पिता का स्नेह आवश्यक है। कवि ऐसा तर्क नहीं करता, वह चुपचाप जननी का वात्सल्य-भाव प्रकट कर देता है। उससे हम लोगों के मानस-पटल पर माता के पवित्र प्रेम का चित्र सदा के लिए अङ्कित हो जाता है। विज्ञान की युक्ति सुन कर हमें

अपने कर्त्तव्य का ज्ञान होता है; परन्तु कवि के अङ्कित चित्र से हममें भक्तिभाव का उदय होता है।

हमने कहा है, कविता का राज्य सौन्दर्य्य है। यह सौन्दर्य्य बहिर्जगत् में रहता है और अन्तर्जगत् में भी। जो कवि केवल बाह्य-सौन्दर्य्य का वर्णन करते हैं वे कवि हैं, इसमें सन्देह नहीं; परन्तु जो लोग मनुष्यों के हृदय-निहित सौन्दर्य का वर्णन करते हैं वे उनसे भी उच्चतर कवि हैं। अवश्य ही बाह्य-सौन्दर्य और अन्तःसौन्दर्य में एक निगूढ़ सम्बन्ध है। मेघ को देखते ही मयूर पूँछ उठा कर नाचने लगता है। केतकी की सुगन्धि से सर्प आकृष्ट होता है। वेणु की ध्वनि से मृग निष्पन्द हो जाते हैं। मनुष्यों पर तो बाह्य-सौन्दर्य का प्रभाव इससे भी अधिक पड़ता है। बहिःप्रकृति का माधुर्य हृदय को गठित करता है। हमारा विश्वास है कि स्नेह, दया, भक्ति, कृतज्ञता आदि गुणों की उत्पत्ति इस सौन्दर्यबोध से ही होती है। प्रस्फुटित फूल देख कर स्नेह विकसित होता है। सूर्य को देखने से हृदय में भक्ति का उद्रेक होता है। अनन्त आकाश को देखने पर हृदय में सङ्कीर्णता नहीं रहती। तथापि बाह्य-सौन्दर्य के वर्णन से अन्तःसौन्दर्य के वर्णन में कवि की कवित्व-शक्ति अधिक प्रकाशित होती है। बाह्य-सौन्दर्य स्थिर, निष्प्राण और अपरिवर्तनीय होता है। पर मनुष्य के हृदय में सदा परिवर्तन होते रहते हैं। कभी भक्ति घृणा में परिणत हो जाती है; कभी अनुकम्पा से प्रेम उत्पन्न होता है; कभी हिंसा से कृतज्ञता का जन्म होता है। जो इस परिवर्तन को देख सकता है वही अन्तर्जगत् के इस विचित्र-रहस्य का उद्घाटन कर सकता है। ये मानसिक पहेलियाँ उसी को स्पष्ट ज्ञात होती हैं। मनुष्य-हृदय की गूढ़तम जटिल समस्या को वह खूब समझ लेता है।

कालिदास ऐसे ही कवि हैं। जगत् के बाह्य-सौन्दर्य के वर्णन में वे जैसे निपुण हैं वैसे ही अन्तःस्थित सौन्दर्य के भी वर्णन में। कालिदास कवि-चन्द्र हैं। उनका आलोक सर्वदा स्निग्ध, मधुर और सुखप्रद होता है। कोई कितना भी दुःखित हो, कालिदास के मधुर आलोक में आते ही वह अपना दुःख भूल जाता है। कालिदास के ग्रन्थों से नीति-शिक्षायें मिलती हैं। तो भी वे सौन्दर्य के उपासक हैं, नीति के नहीं। उन्होंने सभी स्थलों में समाज के हितकर चित्र अङ्कित नहीं किये हैं; उदाहरण के लिए हम उनका मालविकाग्निमित्र ही लेते हैं। उसमें समाज का हितकर चित्र नहीं है। परन्तु उन्होंने हमें सर्वत्र ही यथार्थ सौन्दर्य का बोध कराया है।

अब हम कालिदास की कविता के कुछ नमूने देते हैं—

उपमा के प्रयोग में कालिदास सिद्धहस्त हैं। प्रसिद्धि भी है—उपमा कालिदासस्य। उपमा, वर्णन का एक अङ्ग है। वह विषय को अलङ्कृत करती है; वर्णन को उज्ज्वल करती है; सौन्दर्य को राशीकृत करती है; और मनोराज्य और बहिर्जगत् का सामञ्जस्य प्रकट करके पाठकों को विस्मृत कर देती है। उपमा से कवि का वक्तव्य भी स्पष्टतर हो जाता है। कालिदास की उपमायें सचमुच ही अतुलनीय हैं। कहते हैं, एक बार विक्रमादित्य के सभा-पण्डितों ने विक्रमादित्य के यश का वर्णन 'दधिवत्' किया। जब कालिदास आये तब उन्होंने कहा—'राजंस्तव यशो भाति शरच्चन्द्रमरीचिवत्।" ख़ैर, अब उनकी कुछ उपमायें सुनिए—

> किमित्यपास्याभरणानि यौवने
> धृतं त्वया वार्द्धकशोभि वल्कलम्।
> वद प्रदोषे स्फुटचन्द्रतारका
> विभावरी यद्यरुणाय कल्पते॥

भावार्थ—शिवजी का प्रेम प्राप्त करने के लिए जब पार्वती तपस्या में निरत थीं तब शिवजी स्वयं ब्रह्मचारी के वेश में आये और पार्वती को वैसी दशा में देख कर कहने लगे—भला, यह तेरी कैसी बात है! तेरा तो यह यौवन-काल है। तुझे तो इस समय अच्छे अच्छे आभूषण पहनने चाहिए। तूने सब आभूषण छोड़ कर वल्कल-वस्त्र कैसे धारण कर लिये? ये तो वृद्धावस्था में अच्छे लगते हैं। कह तो सही, सायङ्काल जब चन्द्र और तारे चमक रहे हैं तब रात को क्या सूर्य्य के सारथि अरुण के आगमन की प्रतीक्षा करनी पड़ती है?

> आवर्जिता किञ्चिदिवस्तनाभ्यां
> वासो वसाना तरुणार्करागम्।
> पर्याप्तपुष्पस्तवकावनम्रा
> सञ्चारिणी पल्लविनी लतेव॥

भावार्थ—यह तब का वर्णन है जब पार्वती शिवजी की पूजा करने गई थी। उस समय वह बालसूर्य के आतप-सदृश अरुण वस्त्र पहने हुए थी। स्तनों के भार से वह कुछ झुक सी गई थी। इसलिए ऐसा जान पड़ता था, मानों फूलों के बोझ से झुकी हुई लाल लाल नवपल्लव-धारिणी कोई लता ही आ रही है।

सञ्चारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा।
नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्ण-भावं स स भूमिपालः॥

भावार्थ—इन्दुमती के स्वयंवर में कितने ही राजा आये थे। पर उसने किसी को पसन्द न किया। वह सब राजाओं को छोड़ कर आगे बढ़ती जाती थी। जिस जिस राजा को वह छोड़ती जाती है उस उसके चेहरे पर वैसी ही कालिमा आ जाती है जैसी उस राजमार्ग पर जिसे कि दीप-शिखा रात में छोड़ती चली जाती है।

शृङ्गोच्छ्रायैः कुमुदविशदैर्यो वितत्य स्थितः खं
राशीभूतः प्रतिदिनमिव त्र्यम्बकस्याट्टहासः।

भावार्थ—अपने कुमुद के समान स्वच्छ, उन्नत शृङ्गों से आकाश को व्याप्त कर यह कैलास क्या खड़ा है मानों शम्भु का अट्टहास ही दिन पर दिन जमा हो कर राशीभूत हो गया है।

गङ्गा-यमुना की शोभा भी सुन लीजिए—

क्वचित्प्रभालेपिभिरिन्द्रनीलैर्मुक्तामयी यष्टिरिवानुविद्धा।
अन्यत्र माला सितपङ्कजानामिन्दीवरैरुत्खचितान्तरेव॥
क्वचित्खगानां प्रियमानसानां कादम्बसंसर्गवतीव पङ्क्तिः।
अन्यत्र कालागुरुदत्तपत्रा भक्तिर्भुवश्चन्दनकल्पितेव॥
क्वचित्प्रभा चान्द्रमसी तमोभिश्छायाविलीनैः शबलीकृतेव।
अन्यत्र शुभ्रा शरदभ्रलेखा रन्ध्रेष्विवालक्ष्यनभःप्रदेशा॥
क्वचिच्च कृष्णोरगभूषणेव भस्माङ्गरागा तनुरीश्वरस्य।
पश्यानवद्याङ्गि विभाति गङ्गा भिन्नप्रवाहा यमुनातरङ्गैः॥

भावार्थ—पुष्पक विमान पर बैठे हुए रामचन्द्रजी सीता से कह रहे हैं—हे निर्दोष अङ्गोंवाली, गङ्गा और यमुना के सङ्गम की शोभा देख। यमुना की तरङ्गों से पृथक् किया गया गङ्गाजी का प्रवाह कैसा अच्छा मालूम होता है। कहीं तो गङ्गा फैली हुई कान्तिवाले नीलमों के सङ्ग गूँथे हुए मुक्ताहार के सदृश शोभित है और कहीं नीले कमलों के साथ पोही हुई सफ़ेद कमल-माला के समान शोभा पाती है। कहीं वह नीले हंसों सहित मानस-सरोवर के प्रेमी हंसों की पङ्क्ति के समान दृष्टिगोचर होती है और कहीं कालागुरु की पत्ररचना की हुई पृथ्वी की चन्दन-रचना के समान मालूम होती है। कहीं वह छाया में छिपे हुए अँधेरे के कारण कुछ कुछ कालिमा दिखलाती हुई चाँदनी के सदृश जान पड़ती है और कहीं छिद्रों से आकाश प्रकट करती हुई शरत्काल की श्वेत मेघमाला के समान भासित होती है। और कहीं वह काले सर्पों का भूषण और भस्म का अङ्गराग धारण किये हुए शिवजी के शरीर के समान मालूम होती है। ऐसा ही एक वर्णन और सुनिए—

त्वय्यादातुं जलमवनते शार्ङ्गिणो वर्णचौरे
तस्याः सिन्धोः पृथुमपि तनुं दूरभावात्प्रवाहम्।
प्रेक्षिष्यन्ते गगनगतयो नूनमावर्ज्य दृष्टी-
रेकं मुक्तागुणमिव भुवः स्थूलमध्येन्द्रनीलम्॥

भावार्थ—दूर होने से जिस सिन्धु नदी का चौड़ा प्रवाह भी पतला जान पड़ता है उस पर कृष्ण के समान श्याम वर्ण धारण करनेवाला तू जब जल लेने के लिए झुकेगा तब आकाशचारी देवताओं को वहाँ से ऐसा जान पड़ेगा मानों पृथ्वी पर मोतियों की एक माला पड़ी हुई है और उस माला के बीचोंबीच एक बड़ा सा नीलम लगा हुआ है।—

स्त्रियों के सौन्दर्य का वर्णन साधारण कवियों को अत्यन्त प्रिय है। वे नख से शिखा तक स्त्रियों के रूप का वर्णन करने में अपनी सारी कवित्व-शक्ति लगा देते हैं। कालिदास ने भी स्त्री-सौन्दर्य का वर्णन किया है। परन्तु उनका वर्णन सर्वत्र सजीव और हृदयग्राही है। शकुन्तला को देख कर राजा दुष्यन्त कहता है—

इदमुपहितसूक्ष्मग्रन्थिना स्कन्ददेशे
स्तनयुगपरिणाहाच्छादिना वल्कलेन।
वपुरभिनवमस्याः पुष्यति स्वां न शोभां
कुसुममिव पिनद्धं पाण्डुपत्रोदरेण॥

भावार्थ—शकुन्तला के स्कन्द-देश में सूक्ष्म ग्रन्थि द्वारा वल्कल बाँध देने से उसका विशाल स्तनयुगल आच्छादित हो जाता है। इसलिए शकुन्तला की नवीन देह, पीले पत्तों से ढके हुए कुसुम की भाँति, शोभा नहीं पाती।

परन्तु तुरन्त ही दुष्यन्त को जान पड़ा कि ऐसा कहना हमारी भूल है। वल्कल वस्त्र से शकुन्तला के सौन्दर्य की वृद्धि ही होती है, हानि नहीं। क्योंकि,

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं
मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति।
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी
किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्॥

भावार्थ—जैसे कमल शैवलयुक्त होने से अधिक रमणीय होता है, जैसे चन्द्रमा की कालिमा उसकी शोभा को बढ़ाती है, वैसे ही यह सुन्दरी भी अपने वल्कल-वस्त्रों से अधिक मनोज्ञ हो गई है। बात तो यह है कि जिनकी आकृति मधुर है उनके लिए कौन चीज़ ऐसी है जो अलङ्कार का काम न दे।

शिरीषपुष्पाधिकसौकुमार्यौ बाहू तदीयाविति मे वितर्कः।
पराजितेनापि कृतौ हरस्य यौ कण्ठपाशौ मकरध्वजेन॥

भावार्थ—मैं समझता हूँ कि पार्वती की भुजायें शिरीष के फूल से भी अधिक कोमल हैं। यदि यह बात न होती तो परास्त हो जाने पर भी कामदेव उन्हीं की फाँसी बना कर महादेव के गले में क्यों डालता?

शरीरसादादसमग्रभूषणा मुखेन सालक्ष्यत लोध्रपाण्डुना।
तनुप्रकाशेन विचेयतारका प्रभातकल्पा शशिनेव शर्वरी॥

भावार्थ—शरीर दुबला होने से थोड़े आभूषण पहननेवाली उस सुदक्षिणा की, उसके लोध्र के समान पीले पीले मुख से, ऐसी शोभा हुई जैसी प्रातःकाल के समय थोड़े तारोंवाली रात्रि की शोभा पीले चन्द्रमा से होती है।

नूनं तस्याः प्रबलरुदितोच्छूननेत्रं प्रियाया
निःश्वासानामशिशिरतया भिन्नवर्णाधरोष्ठम्।
हस्तन्यस्तं मुखमसकलव्यक्तिलम्बालकत्वा—
दिन्दोर्दैन्यं त्वदनुसरणक्लिष्टकान्तेर्बिभर्ति॥

भावार्थ—यक्ष अपनी स्त्री के विषय में मेघ से कह रहा है—मेरे वियोग-दुःख से रोते रोते उसकी आँखें सूज गई होंगी। गरम गरम निश्वासों से उसके ओठों का रङ्ग भी उड़ गया होगा। उसकी लम्बी लम्बी, खुली हुई, अलकों से उसका मुख छिप गया होगा। इसलिए हाथ पर रक्खा हुआ उसका मुख तेरे अनुसरण के कारण, क्षीण-कान्ति चन्द्रमा के समान, मलिन जान पड़ता होगा।

मनुष्यों के हृदय में जितनी दुर्बलता है उसकी असङ्गति दिखाने से हास्य का उद्रेक होता है। उस पर आक्रोश करने से व्यङ्ग्य की सृष्टि होती है और उससे सहानुभूति करने पर मृदु परिहास होता है। कालिदास सर्वदा मृदु परिहास करते हैं। राजा दुष्यन्त मृगया के लिए तो घर से निकले और यहाँ—आश्रम में आ कर—एक तापसी पर मुग्ध हो गये। वे नगर को लौट जाने का नाम नहीं लेते। दुष्यन्त के साथी माढव्य को इससे बड़ा विस्मय होता है। उसे तो प्रेम से बढ़ कर भोजन प्रिय है। वह सोचता है कि रसना को तृप्त करनेवाले सारवान् पदार्थों को छोड़ कर प्रेम के पीछे यह दौड़ता फिरता क्यों है? जिससे क्षुधा मन्द होती है, निद्रा नहीं आती, मन में शान्ति नहीं रहती, उसकी चाह मनुष्यों को क्यों इतनी है? इन बातों को सोच कर माढव्य को बड़ा आश्चर्य्य होता है। शृङ्गार-रस के वर्णन में कालिदास अद्वितीय हैं।

देखिए, निम्नलिखित पद्यों में कालिदास ने कैसी मनोहर रीति से कामिजनों की मनश्चेष्टाओं का वर्णन किया है—

अनुयास्यन्मुनितनयां सहसा विनयेन वारितप्रसरः।
स्थानादनुच्चलन्नपि गत्वेव पुनः प्रतिनिवृत्तः॥

भावार्थ—जब शकुन्तला जाने लगी तब दुष्यन्त की भी इच्छा उसके पीछे चले जाने की हुई। परन्तु उन्होंने तुरन्त ही अपने मन की इच्छा दबा डाली। उस समय उन्होंने कहा—यद्यपि विनय के कारण मैं मुनि-कन्या के पीछे नहीं गया, अपने स्थान से उठा तक नहीं, तो भी मुझे ऐसा जान पड़ता है कि मैं उसके पीछे पीछे गया और लौट कर चला भी आया हूँ—

तां प्रत्यभिव्यक्तमनोरथानां महीपतीनां प्रणयाग्रदूत्यः।
प्रवालशोभा इव पादपानां शृङ्गारचेष्टा विविधा बभूवुः॥
कश्चित्कराभ्यामुपगूढनालमालोलपत्राभिहतद्विरेफम्।
रजोभिरन्तःपरिवेषबन्धि लीलारविन्दं भ्रमयाञ्चकार॥
विस्रस्तमंसादपरो विलासी रत्नानुविद्धाङ्गदकोटिलग्नम्।
प्रालम्बमुत्कृष्य यथावकाशं निनाय साचीकृत चारुवक्त्रः॥
आकुञ्चिताग्राङ्गुलिना ततोऽन्यः किञ्चित्समावर्जितनेत्रशोभः
तिर्यग्विसंसर्पिनखप्रभेण पादेन हैमं विलिलेख पीठम्॥
निवेश्य वामं भुजमासनार्धे तत्संनिवेशादधिकोन्नतांसः।
कश्चिद्विवृत्तत्रिकभिन्नहारः सुहृत्समाभाषणतत्परोऽभूत्॥

विलासिनीविभ्रमदन्तपत्रमापाण्डुरं केतकबर्हमन्यः ।
प्रियानितम्बोचितसन्निवेशैर्विपाटयामास युवा नखाग्रैः ॥
कुशेशयाताम्रतलेन कश्चित् करेण रेखाध्वजलाञ्छनेन ।
रत्नाङ्गुलीयप्रभयानुविद्धानुदीरयामास सलीलमक्षान् ॥
कश्चिद्यथाभागमवस्थितेऽपि स्वसंनिवेशाद्व्यतिलङ्घिनीव ।
वज्रांशुगर्भाङ्गुलिरन्ध्रमेकं व्यापारयामास करं किरीटे ॥

भावार्थ—जब इन्दुमती स्वयंवर की रङ्गभूमि में आई तब सब राजा अपना अपना प्रणय प्रकट करने के लिए भाँति भाँति की श्रृङ्गार-चेष्टायें करने लगे। उन श्रृङ्गार-चेष्टाओं से ही उन्होंने दूती का काम लिया। कोई राजा दोनों हाथों से कमल ही फिराने लगा। उस कमल के पत्तों के हिलने से भौंरे दूर हट जाते थे और कमल के पराग का एक मण्डल सा बन जाता था। किसी विलासी ने अपने कन्धे से कुछ सरके हुए दुशाले को ही, ज़रा टेढ़ा मुख करके, ठीक स्थान पर रक्खा। एक राजा ने आँखें ज़रा टेढ़ी करके अपने पैर की उँगलियाँ सिकोड़ लीं और फिर वह उनके नखों से सोने की चौकी पर कुछ लिखने लगा। किसी राजा ने अपने सिंहासन के एक भाग में बाईं भुजा रख कर कन्धे को थोड़ा ऊँचा उठा दिया; फिर वह अपने एक मित्र राजा से बातें करने लगा। दूसरा युवा राजा, स्त्रियों के कान में खोंसने योग्य, पीत-वर्ण केतकी के पत्तों को ही नखों से नोचने लगा। कोई राजा कमल के समान हथेली पर—जिसमें ध्वजा की रेखायें हैं—पाँसे रख कर उन्हें उछालने लगा। किसी राजा ने अपने मुकुट को—यद्यपि वह अपने स्थान से खिसका नहीं था—सँभाला।

विवृण्वती शैलसुतापि भावमङ्गैः स्फुरद्बालकदम्बकल्पैः ।
साचीकृता चारुतरेण तस्थौ मुखेन पर्य्यस्तविलोचनेन ॥

भावार्थ—जब कामदेव ने अपने धनुष पर सम्मोहन नामक बाण चढ़ाया तब क्षण भर के लिए शिवजी का भी धैर्य छूट गया और वे पार्वती की ओर देखने लगे। तब पार्वती भी नव कदम्ब-कुसुमों के सदृश अपने पुलक-पूर्ण अङ्गों से अपना भाव प्रकट करती हुई मुख को तिरछा करके खड़ी हो गई।

करुण-रस के वर्णन में भी कालिदास की तुलना किसी कवि से नहीं हो सकती। उनके अज-विलाप का कुछ अंश सुनिए—

कुसुमान्यपि गात्रसङ्गमात् प्रभवन्त्यायुरपोहितुं यदि ।
न भविष्यति हन्त साधनं किमिवान्यत्प्रहरिष्यतो विधेः ॥
अथवा मृदु वस्तु हिंसितुं मृदुनैवारभते प्रजान्तकः ।
हिमसेकविपत्तिरत्र मे नलिनी पूर्वनिदर्शनं मता ॥
स्रगियं यदि जीवितापहा हृदये किं निहिता न हन्ति माम् ।
विषमप्यमृतं क्वचिद्भवेदमृतं वा विषमीश्वरेच्छया ॥
अथवा मम भाग्यविप्लवादशनिः कल्पित एष वेधसा ।
यदनेन तरुर्न पातितः क्षपिता तद्विटपाश्रिता लता ॥
कृतवत्यपि नावधीरणामपराद्धेऽपि यदा चिरं मयि ।
कथमेकपदे निरागसं जनमाभाष्यमिमं न मन्यसे ॥
ध्रुवमस्मि शठः शुचिस्मिते विदितः कैतववत्सलस्तव ।
परलोकमसन्निवृत्तये यदनापृच्छ्य गतासि मामितः ॥
दयितां यदि तावदन्वगाद्विनिवृत्तं किमिदं तया विना ।
सहतां हत जीवितं मम प्रबलामात्मकृतेन वेदनाम् ॥
सुरतश्रमसम्भृतो मुखे ध्रियते स्वेदलवोद्गमोऽपि ते ।
अथ चास्तमिता त्वमात्मना धिगिमां देहभृतामसारताम् ॥

भावार्थ—जब फूल भी शरीर से छू कर आयु का नाश करने में समर्थ हो सकते हैं तब, हाय, मारनेवाले विधाता का साधन और कौन सी वस्तु न होगी? वह जिससे चाहे उसीसे मार सकता है। अथवा, यमराज कोमल वस्तु को कोमल ही से मार डालता है—देखो, कमलिनी का नाश कोमल पाले से ही होता है। यदि यह माला प्राण लेनेवाली है तो यह मेरे हृदय पर भी तो पड़ी हुई है; यह मुझे क्यों नहीं मार डालती? बात यह है कि विधाता की इच्छा से कभी तो विष अमृत हो जाता है और कभी अमृत विष बन जाता है। अथवा मेरे भाग्य-दोष से विधाता ने इस माला को ही वज्र बना दिया। इसने वृक्ष को तो नहीं गिराया, परन्तु उसकी आश्रित लता का नाश कर दिया। मैंने कितने ही अप-राध किये, पर तूने मेरा कभी तिरस्कार नहीं किया। परन्तु आज तू, बिना ही अपराध के, मुझसे क्यों रूठ गई है? मुझे ऐसा जान पड़ता है कि तूने मुझे छली और शठ समझा है। तभी तो तू बिना पूछे ही परलोक चली गई। मेरे प्राण, जो कुछ देर के लिए तेरे पीछे चले गये, फिर क्यों लौट आये? जान पड़ता है, उन्हें अभी अपने कर्मों का दुःख भोगना है। तेरे मुख पर अभी तक पसीने की

बूँदें वर्तमान हैं, पर तू स्वयं नष्ट हो गई। धिक्कार है देहधारियों के जीवन की इस असारता को।

रति-विलाप का भी एक श्लोक सुनिए। जब वह चिता में जल जाना चाहती है तब कहती है—

शशिना सह याति कौमुदी सह मेघेन तडिल्लप्रलीयते।
प्रमदाः पतिवर्त्मगा इति प्रतिपन्नं हि विचेतनैरपि॥

भावार्थ—चन्द्रमा के साथ उसकी चाँदनी भी चली जाती है। मेघ के साथ ही बिजली भी विलीन हो जाती है। स्त्रियाँ सदा ही अपने पतियों का अनुगमन करती हैं—यह तो अचेतन तक करते हैं।

अभिज्ञान-शाकुन्तल में कवि ने प्रेम और करुण-रस का एक अपूर्व चित्र अङ्कित किया है। शकुन्तला पति-गृह को जा रही है। उस समय कण्व कहते हैं—

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया
अन्तर्बाष्पभरोपरोधिगदितं चिन्ताजड़ं दर्शनम्।
वैक्लव्यं मम तावदीदृशमपि स्नेहादरण्यौकसः
पीड्यन्ते गृहिणः कथं न तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः।

भावार्थ—आज शकुन्तला पति-गृह को चली जायगी। इससे उत्कण्ठा के मारे मेरा हृदय उच्छ्वसित हो रहा है। आँसुओं के अवरोध के कारण कण्ठ गद्गद हो रहा है। और चिन्ता से सामने की भी चीज़ नहीं दिखाई देती। मैं तो अरण्यवासी तपस्वी हूँ। जब स्नेह से मेरी यह दशा हो रही है तब गृहस्थों को अपनी कन्या बिदा करते समय कितना दुःख न होता होगा?

फिर वे शकुन्तला को आशीर्वाद देते हैं—

ययातेरिव शर्मिष्ठा भर्तुर्बहुमता भव।
पुत्रं त्वमपि सम्राजं सैव पूरुमवाप्नुहि॥

फिर वे आश्रम के सब वृक्षों से कहते हैं—

पातु न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।
आदौ वः कुसुमप्रवृत्तिसमये यस्या भवत्युत्सवः
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्।

भावार्थ—हे वृक्षो, जो शकुन्तला पहले तुम्हें जल देकर पीछे स्वयं पीती थी, नवल पल्लवों के गहने पहनने की शौक़ीन होने पर भी जो स्नेह के मारे तुम्हारे पत्ते तक न तोड़ती थी, जो तुममें फूल आने के समय खूब उत्सव करती थी, वह आज पति-गृह को जा रही है। तुम सब अब उसे जाने की अनुमति दो। तुम्हारा भी तो उस पर अधिकार है।

इसके बाद शकुन्तला अपनी दोनों सखियों से बिदा माँगती है। पति-गृह जाने के लिए उसके पैर आगे नहीं बढ़ते; उसका मन इतना व्याकुल हो गया है। प्रियंवदा शकुन्तला को दिखलाती है कि उसके आसन्न विरह से तपोवन की कैसी दशा हो रही है।

उद्गलितदर्भकवला मृग्यः परित्यक्तनर्तना मयूराः।
अपसृतपाण्डुपत्रा मुञ्चन्त्यश्रूणीव लताः॥

भावार्थ—मृगियों ने कुश घास खाना छोड़ दिया है, मोर भी नहीं नाच रहे हैं और लताओं से, आँसुओं के समान, पीले पीले पत्ते गिर रहे हैं।

फिर शकुन्तला अपनी लताभगिनी माधवी से भेंट करती है और उसे अपनी सखियों को सौंपती है। गर्भिणी मृगी का संवाद देने के लिए वह कण्व से अनुरोध करती है। इसके बाद कण्व उसे उपदेश देते हैं।—

शुश्रूषस्व गुरून्कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने
भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मास्म प्रतीपं गमः।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भोगेष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः।

भावार्थ—गुरुजनों की सेवा करना। सौतों से प्रेम रखना। स्वामी के तिरस्कार करने पर भी उसके प्रतिकूल आचरण न करना। सेवकों पर दया-भाव रखना। सब लोगों के अनुकूल रहना। भाग्यशालिनी होने से भोग में आसक्त मत हो जाना। ऐसा करने से ही स्त्रियाँ गृहिणी-पद पाती हैं, नहीं तो वे कुल को पीड़ा देनेवाली होती हैं।—

जाने के समय जब शकुन्तला ने कहा—"तात, आप मेरे लिए उत्कण्ठित न होना", तब कण्व ने उत्तर दिया—

शममेष्यति मम शोकः कथं नु वत्से त्वया रचितपूर्वम्।
कुटजद्वारविरूढं नीवार-बलिं विलोकयतः॥

भावार्थ—हे वत्से, तूने पर्णकुटी के द्वार पर जो नीवार लगाये हैं उन्हें देख कर मेरा दुःख कैसे दूर होगा?

ऐसा कोमल और करुण दृश्य क्या अन्य किसी कवि ने दिखलाया है? अब एक और कथा सुनिए—

अर्धरात्रि हो गई थी। प्रदीप स्तिमित हो गये थे। सब लोग शयन कर रहे थे। ऐसे समय अयोध्या की अधिष्ठात्री देवी ने कुश के शयन-मन्दिर में प्रवेश किया। वह उससे कहने लगी।—

विशीर्णतल्पाट्टशतो निवेशः पर्यस्तसालः प्रभुणा विना मे।
विडम्बयत्यस्तनिमग्नसूर्यं दिनान्तमुग्रानिलभिन्नमेघम् ॥
निशासु भास्वत्कलनूपुराणां यः सञ्चरोऽभूदभिसारिकाणाम्।
नदन्मुखोल्काविचितामिषाभिः स वाह्यते राजपथः शिवाभिः॥
आस्फालितं यत्प्रमदाकराग्रैर्मृदङ्गधीरध्वनिमन्वगच्छत्।
वन्यैरिदानीं महिषैस्तदम्भः शृङ्गाहतं क्रोशति दीर्घिकाणाम्॥
वृक्षेशया यष्टिनिवासभङ्गान् मृदङ्गशब्दापगमादलास्याः।
प्राप्ता दवोल्काहतशेषबर्हाः क्रीडामयूरा वनबर्हिणत्वम्॥
सोपानमार्गेषु च येषु रामा निक्षिप्तवत्यश्चरणान्सरागान्।
सद्यो हतन्यङ्कुभिरस्रदिग्धं व्याघ्रैः पदं तेषु निधीयते मे॥
चित्रद्विपाः पद्मवनावतीर्णाः करेणुभिर्दत्तमृणालभङ्गाः।
नखाङ्कुशाघातविभिन्नकुम्भाः संरब्धसिंहप्रहृतं वहन्ति॥
स्तम्भेषु योषित्प्रतियातनानामुत्क्रान्तवर्णक्रमधूसराणाम्।
स्तनोत्तरीयाणि भवन्ति सङ्गान्निर्मोकपट्टाः फणिभिर्विमुक्ताः॥
कालान्तरश्यामसुधेषु नक्तमितस्ततो रूढतृणाङ्कुरेषु।
त एव मुक्तागुणशुद्धयोऽपि हर्म्येषु मूर्च्छन्ति न चन्द्रपादाः॥

हे राजा, मैं अपनी दशा क्या कहूँ? पहले मैं अलकापुरी को भी कुछ नहीं समझती थी। पर आज तो मेरी बड़ी ही दुर्दशा है। मेरी बस्ती की सब अट्टालिकायें टूट गई हैं; परकोटे भी नष्ट हो गये हैं। आज-कल वह अस्तोन्मुख सूर्य और प्रचण्ड पवन के बखेरे हुए मेघोंवाली सन्ध्या की होड़ कर रही है। जिस राजमार्ग में पहले अपने नूपुरों से मधुर शब्द करती हुई, रात के समय, अभिसारिकायें चलती थीं वहाँ अब चिल्लाती हुई शृगालियाँ मांस ढूँढ़ने के लिए दौड़ा करती हैं। जिन बावलियों का जल पहले स्त्रियों की हथेलियों से ताड़ित होकर मृदङ्ग की गम्भीर ध्वनि की होड़ करता था उनमें अब जङ्गली भैंसों के सींग मारने से कर्ण-कर्कश शब्द होता है। पहले मोरों के बैठने की छतरियां थीं, पर वे अब वृक्षों पर रहते हैं। पहले मृदङ्ग की ध्वनि होते ही वे नाचते थे, पर अब मृदङ्ग कहाँ। इसलिए वे नाचना भी भूल गये हैं। दवाग्नि से उनकी पूँछें भी जल गई हैं। वे सब पहले के मोर नहीं। वे अब जङ्गली मोरों के समान हो गये हैं। जिन सीढ़ियों पर पहले रमणशीला युवतियां अपने महावर लगे हुए चरणों को रखती थीं उन पर अब तत्काल हरिण को मार कर सिंह अपने रुधिर-भरे पञ्जे रखते हैं। खम्भों में स्त्रियों की मूर्त्तियां बनी हुई हैं, पर अब उन पर से रङ्ग उड़ गया है। उन पर सांपों की केंचली चोली के समान लिपटी रहती है। समय के फेर से महलों के चूने (सफ़ेदी) काले पड़ गये हैं; उन पर घास भी उग आई है। अब उन पर मोतियों के समान चन्द्र-किरणें नहीं चमकतीं।

कालिदास वीर-रस की कविता अच्छी न कर सकते थे। रघुवंश में उन्होंने रघु और इन्द्र, अज और उनके प्रतिस्पर्धी नरेश, राम और रावण आदि के युद्ध वर्णन किये हैं। परन्तु उनके युद्ध-वर्णन में भी कोमलता है, ओज नहीं है। उनमें हम न तो योद्धाओं का हुङ्कार सुनते हैं और न शस्त्रों की झनझनाहट। उनसे चित्त उद्दीप्त नहीं होता। ऐसा जान पड़ता है मानों हम कोई कथा पढ़ रहे हैं। निम्नलिखित पद्यों से यह बात विदित हो सकती है —

नदत्सु तूर्येष्वविभाव्य वाचो नोदीरयन्ति स्म कुलोपदेशान्।
बाणाक्षरैरेव परस्परस्य नामोर्जितं चापभृतः शशंसुः॥
उत्थापितः संयति रेणुरश्वैः सान्द्रीकृतः स्यन्दनवंशचक्रैः।
विस्तारितः कुञ्जरकर्णतालैर्नेत्रक्रमेणोपरुरोध सूर्यम्॥
मत्स्यध्वजा वायुवशाद्विदीर्णैर्मुखैः प्रवृद्धध्वजिनीरजांसि।
बभुः पिबन्तः परमार्थमत्स्याः पर्याविलानीव नवोदकानि॥
आवृण्वतो लोचनमार्गमाजौ रजोऽन्धकारस्य विजृम्भितस्य।
शस्त्रक्षताश्वद्विपवीरजन्मा बालारुणोऽभूद्रुधिरप्रवाहः॥

भावार्थ—तुरहियों का इतना तुमुल-नाद होता था कि योद्धाजन एक दूसरे की बात न समझ सकते थे। इसलिए उन्होंने अपने कुल और नाम का उच्चारण न कर, बाणों से ही अपने अपने नाम और कुल एक दूसरे को बता दिये। मतलब यह कि उनके बाणों पर उनके नाम अङ्कित थे; जब एक ने दूसरे पर बाण छोड़ा, तब पढ़ कर उन लोगों को एक दूसरे का परिचय प्राप्त हुआ। सङ्ग्राम में घोड़ों ने खूब धूल उड़ाई। रथों के पहियों से वह धूल और भी बढ़ गई। हाथियों ने अपने कान फटकार कर चारों ओर धूल ही धूल कर दी। फल यह हुआ कि धूल

से सूर्य भी छिप गया। उस समय धूल के बीच मत्स्याकार ध्वजायें, मैले जल में मछलियों के समान, जान पड़ती थीं। धूल के कारण सङ्ग्राम-भूमि में अँधेरा सा छा गया। जब हाथी, घोड़े और योद्धा कट कट कर गिरने लगे तब उनके लाल लाल लोहू का प्रवाह प्रातःकालीन सूर्य की लालिमा की समता करने लगा।

जीव-जन्तुओं के वर्णन में कालिदास सिद्धहस्त हैं—

ग्रीवाभङ्गाभिरामं मुहुरनुपतति स्यन्दने दत्तदृष्टिः
पश्चार्धेन प्रविष्टः शरपतनभयाद् भूयसा पूर्वकायम्।
दर्भैरर्धावलीढैः श्रमविवृतमुखभ्रंशिभिः कीर्णवर्त्मा
पश्योदग्रप्लुतत्वाद्वियति बहुतरं स्तोकमुर्व्यां प्रयाति॥

भावार्थ—गरदन को टेढ़ा कर, पीछे आते हुए रथ की ओर देखता हुआ, बाण लगने के भय से शरीर के पिछले भाग को आगे के भाग में सिकोड़ कर अपने मुख से आधी खाई हुई घास को, श्रम के कारण, रास्ते में डालता हुआ, यह मृग बड़ी तेज़ी से भागा जा रहा है। मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि वह आकाश में ही उड़ रहा है, पृथ्वी पर बहुत कम पैर रखता है।

कालिदास का ऋतु-वर्णन देखिए—

काशांशुका विकचपद्ममनोज्ञवक्त्रा
सोन्मादहंसरवनूपुरनादरम्या।
आपक्वशालिरुचिरा तनुगात्रयष्टिः
प्राप्ता शरन्नववधूरिव रूपरम्या॥

भावार्थ—नवविवाहिता वधू की तरह रमणीय रूपवाली शरद्-ऋतु आ गई। काश के फूल इसकी पोशाक है। खिला हुआ मनोमोहक कमल-समूह इसका मुख है। उन्मत्त हंसों का शब्द इसके नूपुरों की ध्वनि है। पके हुए धान के खेतों की शोभा इसके पतले गात की सुघरता है।

[बँगला से गृहीत]

पदुमलाल पुन्नालाल बख़्शी

बेवायें।

बेतरह जाति की हतक न करें
दें बना बे-असर न सेवायें।
आह! बेहद न जो दबायें हम
तो बबायें बनें न बेवायें॥ १॥

आह! उपजे थे दयासागर जहाँ
अब निरे पत्थर उपजते हैं वहाँ।
है कलेजा तो हमारे पास ही
पास बेवों के कलेजा है कहाँ॥ २॥

मर्द चाहे माल चाबा ही करें
औरतें पीती रहेंगी माँड़ ही।
क्यों न रँडुये ब्याह कर लें बीसियों
पर रहेगी राँड़ सब दिन राँड़ ही॥ ३॥

आह हम आज भी नहीं समझे
जाति की किस तरह करें सेवा।
हो बहुत बंस क्यों न बेवारिस
जब कि बेवा धनी रहें बेवा॥ ४॥

जाति जिससे चल बसा है चाहती
आह! छूटी हैं कुचालें वे कहाँ।
क्यों वहाँ होंगे न लाखों दुख खड़े
लाखहा बेवा बिलखती हों जहाँ॥ ५॥

आह! बेवों का न बेड़ा पार कर
बे-सुधी की धार में है बह चुकी।
आज दिन भी जाग जो सकती नहीं
जाति जीती जागती तो रह चुकी॥ ६॥

आह! बेवा हिन्दुओं की हीन बन
दूसरों के हाथ में है पड़ रही।
जन रही है आँख के तारे वही
जो हमारी आँख में है गड़ रही॥ ७॥

गोद में ईसाइइत इसलाम की
बेटियाँ बहुयें लिटा कर हम लटे।
आह! घाटे पर हमें घाटा हुआ
मान बेवों का घटा कर हम घटे॥ ८॥

आह! जो बेवा निकलने लग गई
पड़ गया तो बढ़तियों का काल भी।
आबरू-जैसा रतन जाता रहा
खो गये कितने निराले लाल भी॥ ९॥

लाज जब रख सके न बेवों की
आह! किस भाँति तब लजायें हम।
घर बसे किस तरह हमारा तब
और का घर अगर बसायें हम॥ १०॥

अयोध्यासिंह उपाध्याय

पादरी नोल्स की रोमन लिपि ।

अँगरेज़ी भाषा में Procrustean bed की कहावत मशहूर है। प्रोक्रस्टेस प्राचीन ग्रीस का एक प्रसिद्ध डाकू था। वह अपने चङ्गुल में फँसे हुए लोगों को मार डालने की नीयत से उन्हें एक लोहे के पलँग पर ज़बरदस्ती सुला देता था। अगर उनके पैर उस पलँग से कुछ बड़े हुए तो उन्हें काट-छाँट कर उसके बराबर कर देता, और जो कुछ छोटे हुए तो उन्हें पकड़ कर खूब ज़ोर से खींचता कि वे और फैल जायँ! विलायत के पादरी नोल्स भी भारतीय भाषाओं पर ऐसा ही अत्याचार करना चाहते हैं। श्यामाचरण गाङ्गुली जैसे दो-एक गुमराह विद्वानों को छोड़ कर आज तक इस देश में कोई भी उनकी ईजाद की हुई संशोधित रोमन लिपि का पक्षपाती न बना। यहाँ की पत्र-पत्रिकाओं में और सबसे अच्छी तरह 'सरस्वती' में ही उसकी अनुपयोगिता युक्तियुक्त प्रमाणों से कई बार सिद्ध कर दी गई। फिर भी वे अपने हठ और दुराग्रह के कारण इन बातों पर ध्यान नहीं देते।

अभी कुछ महीने हुए, कलकत्ते के चौरङ्गी-अख़बार में उनका एक पत्र निकला था। उसमें उन्होंने अन्धकार में भटकते हुए भारतवासियों को यह सन्देश भेजा था कि इस देश में लिपियों की अत्यधिकता और उनकी वर्णमालाओं की अपूर्णता ही शिक्षास्रोत के मार्ग में प्रबल प्रतिरोध का काम कर रही है! चूँकि पादरी महोदय यह अच्छी तरह जानते हैं कि उनकी निकम्मी लिपि के लेप को प्रत्येक भारतीय भाषा अपने लिए विषतुल्य समझेगी, वे विज्ञापनबाज़ों की भाषा में बराबर यह कहते आ रहे हैं कि उनकी लिपि ही हमारे निरक्षरता-रोग की रामबाण औषध है। अतएव, लोग भय और सङ्कोच त्याग कर उसे खुशी से ग्रहण कर लें!

सच तो यह है कि अगर उनकी दवा में उनके बताये हुए गुणों का अर्द्धांश भी होता तो भी हम उनसे यही प्रार्थना करते कि—वैद्यवर! पहले आप अपनी चिकित्सा कीजिए! आप अपने सुधा-सिन्धु की दो बूँदें अपनी उस रुग्ण मातृ-भाषा को दे दीजिए जो, एक सांघातिक लिपि के फेर में पड़ कर, सदियों से त्राहि त्राहि पुकार रही है।" पर हमें तो उनकी दवा पर ज़रा भी विश्वास नहीं, और न हम उनके निदान को ही सही मानते हैं। अँगरेज़ी की वर्णमाला कितनी अपूर्ण है—उसके शब्दों के उच्चारण और उनकी लिखावट में कितना अन्तर है—फिर भी इस समय इँगलेंड में और अमरीका में भी निरक्षर मनुष्यों की संख्या नहीं के बराबर है। रह गई एक देश में अनेक लिपियों की बात, सो अगर भारतवासी सामान्य लिपि का स्थान प्रदान कर सकते हैं तो उसी देवनागरी को जिसके लिए उनके हृदय में श्रद्धा और प्रेम दोनों हैं, न कि उस रोमन लिपि को जो विदेशी होने के कारण वास्तव में हमारी घृणा का पात्र है।

इंडियन रिव्यू (Indian Review) की किसी पिछली संख्या में रोमन लिपि के दो पक्षपातियों के लेख पढ़ने को मिले। एक किसी अँगरेज़ सज्जन का लिखा हुआ, और दूसरा एक बङ्गाली महाशय का। बङ्गाली बाबू लिखते हैं कि देवनागरी के अक्षर रोमन लिपि के अक्षरों से कहीं ज़ियादह स्थान ग्रहण कर लेते हैं! लाखों-करोड़ों का अपव्यय चाहे राजा-प्रजा की ओर से इस देश में रोज़ ही हुआ करे, पर अपनी जातीय लिपि की बदौलत—हम माने लेते हैं कि उनकी समालोचना में कुछ तत्त्व है—४ रीम काग़ज़ की जगह ४ रीम मत ख़र्च होने पावें! और जो यह ख़र्च अनिवार्य्य जान पड़े तो झट उस लिपि का ही बहिष्कार कर दिया जाय!!!

डाकृर आनन्दकुमार स्वामी अभी तक इसी बात पर रोते थे कि सस्ते 'रेकर्डों' के आगे गवैयों के गुण-ग्राहक इस देश में दिन ब दिन कम होते जा रहे हैं—मालूम नहीं इन नये परिमित-व्यय-वादियों के प्रलाप से उनकी भारतीय आत्मा को कितना दुःख पहुँचेगा! अँगरेज़ महाशय ने अपने लेख में देवनागरी वर्ण-माला की त्रुटियों का उल्लेख किया है। उनसे हम साफ़ शब्दों में यही कहना चाहते हैं कि आपकी तरह हम भी जानते हैं कि हमारी वर्णमाला दूसरी भाषाओं की कुछ ध्वनियों को व्यक्त करने में अस-मर्थ है। और हम उसकी परिपुष्टि के उपाय बरसों से सोचते आ रहे हैं। पर आप यह जान रखें कि यदि हमारे प्रयत्न निष्फल हुए, अपनी वर्णमाला के स्वाभाविक सङ्गठन के कारण हम उसका मनमाना संशोधन न कर सके, तो भी हम हरगिज़ उसका परित्याग न करेंगे और आपके निर्दिष्ट पथ का अवलम्बन न करेंगे—चाहे वह कितना ही 'सुगम', 'परिष्कृत' या 'वैज्ञानिक' क्यों न हो! आपके ही एक स्वदेशी कवि ने कहा था—

'इँगलेंड! तू हमको प्यारा—होवें तुझमें दोष हज़ार'।

और हम देवनागरी के प्रेमी भी उसी के सुर में सुर मिला कर आप सज्जनों से कहना चाहते हैं कि—

'अपनी लिपि हमको प्यारी—हो उसमें त्रुटियों की भरमार'!

पर इस लेख द्वारा मैं पादरी नोल्स के तरफ़-दारों का ध्यान लन्दन के ईस्ट इंडिया एसोसियेशन की १७ मई १९२० की कारग्वाइयों की ओर आक-र्षित करना चाहता हूँ। हम पर देवनागरी के लिए अनुचित प्रेम का दोषारोपण वे भले ही कर सकते हैं, पर नोल्स महाशय के देशवासियों से—ख़ास कर उनसे, जो और बातों में हमारी आकांक्षाओं के कट्टर विरोधी हैं—यह आशा कब की जा सकती है कि वे जान बूझ कर देवनागरी के दोषों को छिपाने की चेष्टा करेंगे या वे यह कहेंगे कि दोषों की खानि होने पर भी किसी भी भारतीय लिपि का बहिष्कार उसकी उन्नति के लिए श्रेयस्कर नहीं?

उस तारीख़ को इस सभा में किसी पेंशनयाफ़्ता सिविलियन ने 'तामिल भाषा की कहावतें' पर एक लेख पढ़ा। लेख में जो कहावतें उद्धृत की गई थीं वे सब रोमन लिपि में लिखी हुई थीं। सर जे० डी० रीज़ पहले मदरास प्रान्त में सिविलियन थे, और तामिल भाषा के वे एक बड़े विद्वान् माने जाते हैं। अतएव, वह लेख उनके पास उनकी सम्मति के लिए भेजा गया। पर बड़ी हँसी की बात है कि उद्धृत कहावतों में से एक का भी अर्थ रीज़ महोदय की समझ में न आया, या यों कहिए कि वे उन्हें पढ़ ही न सके! और उनका दावा है कि मैं तामिल उतनी ही अच्छी तरह बोल सकता हूँ जितनी कि अँगरेज़ी!!! इसलिए उन्होंने सभा में, लेख के सम्बन्ध में वक्तृता देते हुए, रोमन-लिपि के पक्षपा-तियों के दुस्साहस की जो कड़ी समालोचना की उसका भावार्थ नीचे दिया जाता है—

"भैंस के आगे बीन बजाने से क्या लाभ? और जिस मनुष्य को भाषाओं से प्रेम नहीं—जो उनके व्यक्तित्व, उनके सौष्ठव और उनकी बारीकियों का न तो ज्ञान रखता है और न उनका आदर करता है—वह यदि पूर्वीय भाषाओं के सुन्दर अक्षरों का विनाश करके, उनके स्थान पर रोमन अक्षरों की सहायता से बनी हुई किसी घृणित लिपि का प्रचार करना चाहे तो आश्चर्य्य ही क्या?

"अरबी लिपि मुसलमानों के लिए पवित्र है और देवनागरी हिन्दुओं के लिए। तामिल लिपि के सम्बन्ध में तामिलों का भी यही भाव है। अत-एव उर्दू या फ़ारसी, हिन्दी या संस्कृत, या तामिल भाषा अपनी ही लिपि में लिखी जाय—उसको सात समुद्र पार का परिधान पहनाने की चेष्टा कोई मत करे। कम से कम मैं आशा करता हूँ, मुझे यह दुर्दृश्य देखने का फिर कोई दूसरा मौक़ा न मिलेगा।

सच तो यह है कि जब रोमन लिपि के अक्षरों को तोड़ मरोड़ कर—उनके नीचे रेखाओं और उनके ऊपर बिन्दुओं की भरमार कर के—जब उनसे किसी भी भारतीय भाषा को व्यक्त करने का काम लिया जाता है तब वे ऐसे ही भद्दे और वाहियात जान पड़ते हैं जैसे दस्तानों की जगह पर मोज़े या टोपियों की जगह पर जूतियाँ!"

मिस्टर स्टैनली राइस ने रीज़ महोदय से सहमत होते हुए कहा—

"किसी भी भारतीय भाषा को रोमन लिपि में लिखने से उसकी सुन्दरता और उसकी ख़ूबियाँ बिलकुल नष्ट हो जाती हैं!"

इस अवसर पर सभापति थे सर हार्वे ऐडमसन, के० सी० एस० आई। उन्होंने भी अपने सम्भाषण में रीज़ महोदय के विचारों का समर्थन किया। अपने अनुभव का ज़िक्र करते हुए वे बोले—

"मैं सर जान रीज़ से इस बात पर पूरा सहमत हूँ कि भारत की भाषायें हमेशा अपनी ही लिपियों में लिखी जायँ। मैं बर्मा की भाषा का काफ़ी अच्छा ज्ञान रखता हूँ, पर मुझे मालूम है कि जब कभी वह रोमन लिपि में लिखी जाती है तब उसे पढ़ना असम्भव हो जाता है!"

जिन महाशय ने लेख पढ़ा था उन्होंने भी इन वक्ताओं के कथन की सत्यता को स्वीकार कर लिया। क्या पादरी नोल्स से भी हम ऐसी ही आशा कर सकते हैं? पर वे तो शायद उस वितण्डा-वादी के समान हैं जिसके सम्बन्ध में गोल्डस्मिथ कवि ने कहा था कि यह—

"यद्यपि जाता तर्कयुद्ध में कई बार लोगों से हार
बहस छोड़ता नहीं—न करता कभी पराजय को स्वीकार!"

पारसनाथसिंह, बी० ए०, एल-एल० बी०

भविष्य की ओर बढ़ो। *

(भारत के युवकों को कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर का उपदेश)

ह मेरे लिए बड़े आनन्द की बात है कि आप लोगों ने मुझे निमन्त्रित करके यहाँ बुलाया है। मुझे विद्यार्थियों के बीच—शिक्षक के समान उनसे दूर नहीं, किन्तु उन्हीं के एक सहपाठी के समान उनके निकट ही—बैठना बहुत अच्छा लगता है। परन्तु कठिनता यह है कि बाह्य दृष्टि से देखनेवाले लोग मुझे भूल से वृद्ध समझ लेते हैं; इसलिए जब युवकगण मुझे निमन्त्रित करते हैं तब वे मुझे अपने निकट नहीं बुलाते, किन्तु मेरे बैठने के लिए एक अलग स्थान, मञ्च पर, निर्दिष्ट कर देते हैं।

इस परिस्थिति से अपने को बचाने के लिए मैंने बस्ती से दूर एक एकान्त स्थान पसन्द किया। इसके बाद लड़कों को अपने पास ठहरने का निमन्त्रण दिया। इस काम को करते समय मुझे उनके लाभ का उतना ध्यान नहीं था जितना कि अपने लाभ का था; अर्थात् यह काम मैंने केवल उन्हीं के लाभ के विचार से नहीं, किन्तु अपने भी लाभ के विचार से किया। अब मैं यह बतलाऊँगा कि लड़कों को बुला कर अपने पास रखने से मुझे क्या लाभ हुआ।

मनुष्य के स्वभाव में गर्व की मात्रा अधिक होती है। इसलिए जब वह वृद्ध हो जाता है तब यह विचार करने लगता है कि अवस्था बढ़ना विशेष रूप से गर्व की बात है। और यदि उसी के जैसे वृद्धों की सङ्गति में उसका समय बीतता हो तो उसके गर्व की मात्रा और भी अधिक हो जाती है। यह महत्त्वपूर्ण बात उसकी समझ में बिलकुल नहीं आती कि जिसे वह 'बढ़ना' समझता है वह वास्तव में 'घटना' है। जिस मनुष्य का भविष्य नित्य घटता ही चला जाता हो उसका नित्य बढ़ते हुए अपने अतीत पर

* विद्यार्थि-वर्ग को सम्बोधन करके दिये गये, कविवर रवीन्द्रनाथ के एक अँगरेज़ी व्याख्यान का भावार्थ।

गर्व करना किस काम का ? यदि वृद्धावस्था वास्तव में गर्व की वस्तु होती तो दैव को वृद्ध मनुष्यों से पृथ्वी को ख़ाली करने में इतना आग्रह न होता। यह बात तो प्रत्यक्ष ही है कि वृद्ध मनुष्यों के लिए दैव की यही आज्ञा सदा रहती है कि 'अपनी राह लो और युवाओं के लिए जगह दो'। क्यों ? हम अपने इस पुराने स्थान को, जिस पर हमारा साठ वर्ष से अधिकार है, क्यों छोड़ दें ? क्योंकि युवा महाराज आ रहे हैं। अब वे इस स्थान पर अधिष्ठान करेंगे। ईश्वर बार बार युवाओं ही को संसार के राज-सिंहासन पर बिठाता रहता है।

क्या ईश्वर के इस कार्य का कोई अभिप्राय ही नहीं ? है, अवश्य है। उसका कोई कार्य अर्थ-रहित नहीं। इसका यह अभिप्राय है कि ईश्वर यह नहीं चाहता कि उसकी सृष्टि अतीत के संग बद्ध होकर उन्नति के पथ में पीछे रह जाय। यदि समय समय पर नवीन शक्तियाँ कार्य को नये सिरे से प्रारम्भ न करती रहेंगी और जो कार्य पूर्ण हो चुका है उसके आधार पर नवीन मन्दिर की स्थापना का अनुष्ठान न होता रहेगा तो उसकी अनन्त शक्ति के आविर्भाव में विघ्न पड़ेगा। जो अनन्त है वह कभी वृद्ध नहीं होता। इसलिए वृद्ध मनुष्य पानी के बुलबुले की तरह फट कर विलीन होते रहते हैं और उषा के प्रकाश में खिलनेवाले कुसुमों की कलियों के समान युवा संसार में प्रवेश करते रहते हैं।

ईश्वर अपनी वीणा बजा कर युवकों को पुकारता रहता है। उसकी इस पुकार को सुन कर जब युवकों के झुण्ड आगे बढ़ते हैं तब यह संसार उनका स्वागत करने के लिए अपने फाटक खोल देता है। इसलिए मैं भी युवकों और लड़कों के बीच बैठना पसन्द करता हूँ जिसमें ईश्वर की इस पुकार को मैं भी सुन सकूँ। इस अनुभव से मैंने जो बड़ा लाभ उठाया है वह यह है कि अन्य वृद्धों के समान मैं युवकों को तिरस्कार की दृष्टि से नहीं देखता; और न मैं भविष्य की उनकी आशाओं पर अतीत की अपनी आशङ्काओं से पानी ही फेरता हूँ। इसके विपरीत मैं उनसे यह कह सकता हूँ कि डरो नहीं; खोज करो, प्रश्न करो, अनुभव करो, तर्क करो। यदि तुम्हें सत्य को पूर्ण रूप से जानने के लिए सत्य तक को छोड़ देने की आवश्यकता पड़ जाय तो उसे भी छोड़ दो। साहस और ईमानदारी के साथ उससे तब तक युद्ध किये जाओ जब तक अन्त में वह तुम पर विजय न प्राप्त कर ले। परन्तु इस युद्ध में तुम सब बात में आगे ही बढ़े रहो।

ईश्वर की वीणा से जो राग निकलता है, असीम अज्ञात में जाने के लिए उसकी जो ध्वनि सुनाई देती है, उसकी प्रतिध्वनि मेरे भी हृदय में उठने लगती है। तब मैं समझता हूँ कि वृद्धावस्था की फूँक फूँक कर पाँव रखने-वाली सावधानता की अपेक्षा बे-परवाह तथा अनुभव-हीन यौवन ही सच्चा पथ-दर्शक है, क्योंकि अनुभवहीनता के आग्रह के सम्मुख सत्य भी नये नये स्वरूपों में नई नई शक्तियों के साथ बार बार पराजित होता रहता है। अपनी उग्रता के कारण नातजुरबेकारी विघ्नों के पहाड़ों का उल्लंघन कर सकती है और असम्भव को सम्भव कर लेती है। सुरक्षारूपी बँधे हुए और उथले पानी में जीवन का सत्य नहीं मिल सकता; उसकी खोज तो ख़तरे से भरे हुए गहरे पानी में, आपत्ति की लोल लहरों में करनी चाहिए। सत्य उन वीरों के लिए है जो उसे प्राप्त करने के लिए अपना जीवन तक अर्पण करने के लिए तत्पर हों, जो उसमें ऐसा असीम विश्वास रखते हों कि उसके लिए बड़े से बड़े आत्म-त्याग को भी तुच्छ समझते हों।

वृद्धावस्था में अधिक बातें बनाने का जो विशेष अधि-कार लोगों को प्राप्त हो जाता है उस अधिकार के आसन पर बैठ कर मैं तुम्हें व्याख्यान सुनाना नहीं चाहता। मैं तुम्हें केवल एक उस बड़ी बात का स्मरण कराना चाहता हूँ जिसे हमारे भारत की शिक्षा-पद्धति और परिस्थिति केवल विस्मरण करा देने ही का यत्न नहीं करती, किन्तु उसका स्मरण करना जुर्म क़रार देती है। प्रायः वह बड़ी बात यह है कि तुम युवा हो। जो कार्य तुम्हारा है उसको तुम्हें न भुला देना चाहिए। तुम यहाँ इसलिए भेजे गये हो कि पुराने समय की जो व्यर्थ और नष्टप्राय वस्तुयें इस संसार में बची हों, जो तुम्हारे समय के—वर्तमान युग के—उपयुक्त न हों तुम उनकी सफ़ाई कर दो। तुम इस पृथ्वी पर इसलिए आये हो कि सत्य की खोज स्वयं करो, उसे अपनाओ, और जिस युग में तुम उत्पन्न हुए हो अपने जीवन से उसकी रचना करो। जिन मनुष्यों का अतीत से प्रेम हो गया है और जो उसे छोड़ना नहीं चाहते वे वास्तव में अपना समय

पूरा कर चुके हैं। उनके बर्खास्त होने की आज्ञा निकल चुकी है और उन्हें शीघ्र ही यहाँ से कूच कर देना पड़ेगा। लेकिन तुम युवा हो। तुम साहस के साथ युवावस्था के दायित्वों और खतरों का स्वीकार करो। संसार की सेवा करने का अब तुम्हारा कर्तव्य है। इस कर्तव्य का अभिप्राय यह है कि तुम संसार को सदा नवीन और मधुर बनाये रक्खो और अपने जीवन की गति को अनन्त की ओर बढ़ाते चलो। अनादि और अनन्त का सन्देश वहन करनेवाले समय की धारा के मार्ग में किसी प्रकार की रुकावटें मत जमा होने दो। मार्ग को साफ़ और खुला रक्खो।

अपने इस कर्तव्य-पथ पर चलने के लिए तुम कौन सी सामग्री दे कर भेजे गये हो? असीम आकाङ्क्षायें।

तुम विद्यार्थी हो। भलीभाँति विचार करो कि तुम्हें कौन सी शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए। पक्षियों के बच्चे अपने माता-पिता से कौन सी शिक्षा ग्रहण करते हैं? अपने पङ्ख फैला कर उड़ जाने की। मनुष्य को भी अपने चित्त के पङ्ख फैलाना, ऊँचे उठना, और असीम में उड़ना सीखना चाहिए। यह सीखने में अधिक प्रयास नहीं करना पड़ता है कि मनुष्य को अपनी रोज़ी कमानी होती है। मनुष्य को अपने जीवन की पूर्णता भी प्राप्त करनी है। इस बात का ज्ञान प्राप्त करने के लिए उसे जिस निर्भीक निश्चय को जागृत रखने की आवश्यकता होती है उसके जागृत रखने में उसको अपनी सारी शक्ति लगा देनी पड़ती है।

आधुनिक युग में आचार्य्य का आसन योरप ने प्राप्त कर लिया है। उसने पूर्व को नीचा दिखला दिया है और अपने ख़ास लाभ के लिए प्राचीन उन्नत देशों का उसने दोहन किया है। हम यह जान चुके हैं कि विजातियों के साथ वह अपने व्यापार में कैसी निर्दयता के साथ रुपया खींच सकता है; और अपने राजनैतिक मामलों में कैसी कुटिल कूट नीति से काम ले सकता है। तो भी हमें बाध्य होकर यह स्वीकार करना पड़ा है कि वह आधुनिक संसार का आचार्य्य हो गया है और जो जातियाँ अपने गर्व अथवा अपनी योग्यता के कारण इस बात को न स्वीकार करेंगी वे मानव-जाति की उन्नति-यात्रा में पीछे रह जायँगी। अकेला पशुबल भी बहुत कार्य कर सकता है, परन्तु उससे मनुष्य को आचार्य का आसन नहीं प्राप्त हो सकता। यह तो पात्र होने पर ही हो सकता है; और यह पात्रता केवल उसी मनुष्य में आ सकती है जिसके उद्देश साहस के अभाव के कारण सङ्कुचित, अथवा वर्तमान के अन्ध-विश्वास से परिमित नहीं। योरप आधुनिक समय का सर्व-स्वीकृत आचार्य है। इसका केवल यही कारण नहीं है कि उसने इतिहास, भूगोल अथवा विज्ञान का ज्ञान प्राप्त कर लिया है। किन्तु, इसका कारण यह भी है कि उस पर महत्त्वाकाङ्क्षाओं का आधिपत्य है, जो उसे बल-पूर्वक आगे बढ़ाने को प्रेरित करता है और जिसकी कोई सीमा ही नहीं है।

जीवन की छोटी छोटी बातों को महत्त्व प्रदान करने और रूढ़ियों की पुष्ट दीवारों के भीतर बन्द रहने से मनुष्य बड़ा नहीं बन सकता। पिँजड़े की ज़ङ्ग लगी हुई छड़ों के अन्दर फुदकते रहने ही से पक्षी के पङ्खों का अस्तित्व सार्थक नहीं हो सकता। मनुष्य की ज्ञान-पिपासा स्वयं ही अपने और प्रकृति के अन्दर छिपे हुए सत्य को जानने की चेष्टा करती है। जल, थल तथा आकाश में और इनसे भी अधिक मनुष्य ही की आत्मा में मानव जाति के लिए ईश्वर ने जो बड़ी बड़ी नियामतें गुप्त रूप से रख दी हैं उन्हें खोज निकालना, वालुकामय मरुस्थल से लाभ उठाना, स्वास्थ्य का पक्ष लेकर रोगों पर विजय पाना, आवा-गमन से स्वतन्त्र होने के लिए स्थान की दूरी को नष्ट कर देना, शक्तियों की स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए मनो-विकारों का नियन्त्रण करना इत्यादि बातों से यह जाना जाता है कि कार्यक्षेत्र की ऐसी परिस्थिति युवावस्था के कारण ही हुई है। इनसे यह भी प्रमाणित होता है कि जो आत्मा जाग उठी है उसे पराजय की आशङ्का नहीं है; उसकी आत्मा दुःखों को और कष्टों को अपने अटल भाग्य का विधान मानने में अपना अपमान समझती है। उसका तो यह विश्वास है कि उसके भाग्य का फ़ैसला उसी के हाथ में है और उस पर प्रभुत्व क़ायम रखना उसका जन्म-स्वत्व है।

योरप ने अपने प्रयत्न के पङ्ख इस तरह विस्तृत रूप में फैला दिये हैं कि आज उसने मानव-जाति का आचार्य्यत्व प्राप्त कर लिया है। साहित्य-ज्ञान के लिए जो शिक्षा योरप हमें देता है यदि हम उसे न सीखें अथवा उस शिक्षा को कुछ विशेष वस्तुओं से सम्बन्ध रखनेवाली

सूचना-मात्र समझ कर ही उसका महत्त्व घटा दें, तो हमारा यह काम अपने आपको धोखा देना और सच्ची शिक्षा से वञ्चित रखना होगा।

शिक्षा-प्राप्ति का अर्थ मनुष्य बनना है। जीवन की पूर्णता प्राप्त करना ही महत्त्व-पूर्ण बात है; इसके सम्मुख अन्य सब बातें तुच्छ हैं। ऊँचे तथा गहरे विशाल उद्देश, अदम्य इच्छा-शक्ति, और अविश्रान्त उद्योग सच्चे पौरुष के लक्षण हैं।

योरप के जनाकीर्ण केन्द्रों में वहाँ की जनता नये काम करने के साहसपूर्ण भाव के साथ अपने बड़े बड़े उद्देश प्रकट कर रही है और उन्हें पूर्ण कर लेने में सफलता प्राप्त कर रही है। इस सफलता-प्राप्ति के लिए छिड़े हुए युद्ध के द्वारा योरपवासी अपनी सच्ची शिक्षा प्राप्त करते हैं। विद्यालयों की शिक्षा के साथ ही निरन्तर उद्योग, अनवरत खोज और आवश्यक परिवर्तन की जीवित शिक्षा भी जारी रहती है। इसके अतिरिक्त वहाँ के विद्यालयों में भी जो शिक्षा मिलती है वह केवल छपी हुई पुस्तकों की ही नहीं होती, किन्तु वहाँ की जातियों के जीवन का स्वाभाविक फल होती है और निरन्तर आत्म-त्याग के परिणाम-स्वरूप सम्पादित होनेवाले जातीय कार्यों की प्रतिनिधि-स्वरूप होती है। यही कारण है कि योरप के विश्वविद्यालय का विद्यार्थी केवल पुस्तकों ही का ज्ञान प्राप्त नहीं करता। इसके विपरीत वह अपने चारों ओर मनुष्य की प्रभुता-पूर्ण आत्मा के अस्तित्व का अनुभव करता है। अपने प्रयत्न के परिणाम-स्वरूप वह जिन कार्यों का सम्पादन करता है वे मानों उसे उसी आत्मा से भेट के तौर पर प्राप्त होते हैं। इसी तरह मनुष्य अपने आपको जान सकता है, इस संसार को अपना बना सकता है और मनुष्य बनना सीख सकता है।

परन्तु जहाँ विद्यार्थियों को केवल विद्यालयों की शिक्षा के टुकड़े और पाठ्य पुस्तकों की इधर उधर की सूचनायें ही मिलती हैं; जहाँ जीवन की अत्यन्त आवश्यक बातों के सम्बन्ध में भी दूसरों से भीख के तौर पर मिलनेवाले पदार्थों पर ही पूरी तरह से अवलम्बित रहना होता है; जहाँ अपनी मातृ-भूमि के चरणों में अर्पण करने के लिए मनुष्य के पास स्वास्थ्य, भोजन, ज्ञान अथवा बल कुछ भी नहीं होता; जहाँ मनुष्य का कार्य-क्षेत्र सङ्कुचित होता है उसके प्रयत्न निर्बल होते हैं; जहाँ जीवन और आत्मा के आनन्द में मनुष्य किसी नवीन प्रकार की सुन्दरता का आविर्भाव नहीं करता है; जहाँ मनुष्य के विचार और कार्य्य प्रचलित रीति और अन्ध-परम्परा के बन्धन से बँधे होते हैं; जहाँ स्वतन्त्र जिज्ञासा और तर्क का केवल अभाव ही नहीं होता, किन्तु ये बातें बुरी बतला कर रोकी जाती हैं; जहाँ मनुष्य अधिकतर अज्ञात शक्तियों से प्रेरित होकर आँधी में उड़नेवाली सूखी पत्तियों के समान बिना किसी उद्देश के उड़ता चला जाता है; वहाँ मनुष्य इन हथ-कड़ियों-बेड़ियों और भूत-काल के नष्टप्राय कूड़े करकट के ढेर के कारण अपनी आत्मा को पहचान कर उसका विकास नहीं कर पाता। भूतकाल की नष्टप्राय वस्तुयें तो अपने स्वरूप के परिवर्तन तथा जीवनी-शक्ति की प्राप्ति के साथ साथ बार बार नवीन जन्म लेती रहने पर ही वर्तमान काल में जीवित रह सकती हैं तथा भविष्य तक पहुँच सकती हैं।

ऊपर जिस प्रकार के समाज का वर्णन किया गया है उसमें निष्क्रिय जीवन व्यतीत करने का दुर्भाग्य जिन्हें प्राप्त होवे अपने को परिस्थिति के अनुकूल बना सकते हैं। परन्तु उनके भीतर जो ईश्वरीय शक्ति विद्यमान है उसका वे कदापि उपयोग नहीं कर सकते और न कभी उसके अस्तित्व में वे विश्वास ही कर सकते हैं।

यदि हम इस बात की जड़ तक जायँ तो हमें मालूम होगा कि हमारी वास्तविक निर्धनता आत्मा की निर्धनता है। हमने मनुष्य की आत्मा का अपमान किया है। उसने हमारे कार्य के विरुद्ध प्रतिक्रिया उत्पन्न हो गई है। जो हम रात दिन कष्ट और दुःख भोग रहे हैं वह उसी अपमान का फल है। किसी सूखी नदी के ख़ाली पड़े स्थान पर खेद करने से क्या लाभ? दुःख करने की बात तो जल-धारा का अभाव है। जब आत्मा की जीवन-धारा का बहना बन्द हो जाता है तब शुष्क (मृत) रीति-रिवाजों का खोखलापन उसी तरह रह जाता है जिस तरह किसी भाषा का लोप हो जाने पर उसके व्याकरण का शुष्क नियम। जिस सत्य पर यह सृष्टि अवलम्बित है वह जीवित और आगे बढ़नेवाला है। वह विकास की चढ़ाई पर लगातार ऊँचा ही चढ़ता रहता है और ऐसा होना भी चाहिए। क्योंकि सत्य का उद्देश असीम और अनन्त को प्राप्त करना है। इस

लिए जब सत्य को किसी प्रकार की बनावटी सीमाओं के अन्दर सदा के लिए बन्द कर देने का यत्न किया जाता है तब वह उसी प्रकार मृत्यु को प्राप्त हो जाता है जिस प्रकार स्वच्छ हवा न मिलनेवाले स्थान में बन्द कर दिये जाने पर दीपक का प्रकाश विलीन हो जाता है। इसी प्रकार मनुष्य की आत्मा को भी, जो अनन्त की ओर चली जा रही है, अपने मार्ग में आगे बढ़ते रहने के लिए प्रत्येक मोड़ पर नवीन बातों के उत्पन्न होने की आवश्यकता हुआ करती है। प्रकाश और शक्ति की ओर वह जो यात्रा कर रही है उसके जारी रहने के लिए उन्नति अत्यन्त आवश्यक है। यदि आत्मा को बन्धनों से जकड़ कर उसकी उन्नति रोकी जाती है तो उसके अस्तित्व का वास्तविक उद्देश ही नष्ट हो जाता है। आत्मा को उन्नति करने से रोकने का अर्थ उसे क़ैद करना ही है, उसका उद्धार करना नहीं।

अपने देश में बहुधा यह बात सुना करते हैं कि जो नित्य है वही सत्य है। इसलिए हम समझने लगते हैं कि सत्य जीवन का नहीं किन्तु मृत्यु का चिह्न है। परन्तु क्या हमारा यह विचार ठीक है ? यदि ठीक होता, यदि संसार में एक भी स्थान ऐसा होता जहाँ कि सत्य का विकास पूर्णता को प्राप्त होकर सदा के लिए रुक गया हो, तो इस संसार में उन्हीं को सफलता मिलती जो अपने स्थान से हिलना तक नहीं पसन्द करते—तो सब प्रकार की उन्नति सृष्टि के आन्तरिक सिद्धान्त के विरुद्ध होती और प्रत्येक प्रकार की गति अपरिवर्तनशीलता की मुर्दा दीवारों से टकरा कर स्वयं ही मृत्यु को प्राप्त हो जाया करती। किन्तु सच बात तो यह है कि सृष्टि की गति एक क्षण के लिए भी नहीं रुकती। यदि हम यह देखें कि पृथ्वी के किसी भाग में मनुष्यों के विचार, समय के प्रवाह की कोई चिन्ता न करके, एक ही स्थान पर एकत्र हुए हैं तो हमें समझ लेना चाहिए कि यह संसार भर की गति का निष्फल विरोध करना है। उनकी इस स्थिरता पर अवश्य ही बार बार धक्के लगेंगे और यदि इससे भी उनमें गति उत्पन्न न होगी तो गतिशील समय का निरन्तर घर्षण उनका पूर्णरूप से लोप कर देगा और इस संसार में उनका कोई चिह्न शेष न रह जायगा।

सच्चा ज्ञान हमें क्या बतलाता है ? 'आत्मानं विद्धि'-अपने आपको जान। 'भूमैव सुखं। भूमात्वेव विजिज्ञासितव्यः।' 'छोटी वस्तुओं में सुख नहीं है, इसलिए उस महतो महीयान् ही की खोज करो'। यदि आत्मा और उस महत् को जान कर उन्हें प्राप्त करना है तो अपने पैतृक ज्ञान के कोष को ताले और कुञ्जी में बन्द करके कार्य करने के समय को सोने में नष्ट करने से काम नहीं चलेगा। यह खोज कर सकने के लिए हमें आगे बढ़ते जाना और नई नई बातें उत्पन्न करते रहना आवश्यक है। ईश्वर भी नित्य नई सृष्टि की रचना करके ही अपने आपको जान पाता है। मनुष्य भी अपने आपको इसी प्रकार जान सकता है। अपने पूर्व-पुरुषों अथवा अधिक भाग्यवान पड़ोसियों के कोष में से कुछ उधार या भीख माँग कर वह अपने स्वरूप को नहीं पहचान सकता।

तो फिर ज्ञान के सागर का वह बन्दरगाह कहाँ है जिस तक पहुँचाने की सच्ची शिक्षा के लिए हमें चेष्टा करनी चाहिए ? वह वहाँ है जहाँ 'अपने आप को जान' और 'महान् की खोज कर'—ये शब्द सार्थक हो जाते हैं। जहाँ मनुष्य अपनी आत्मा को जान लेता है वहीं वह उस महान् को भी पा लेता है। जहाँ मनुष्य को त्याग की वह शक्ति प्राप्त हो जाती है जिससे उसमें उत्पादन का सामर्थ्य आ जाता है वहाँ वह जानने लगता है कि त्याग से ही उसकी वृद्धि होती है। इसी शक्ति से वह मृत्यु पर भी विजय प्राप्त कर लेता है। परन्तु तुम्हारे विश्वविद्यालय के समुद्र में कौन सा बन्दरगाह दिखलाई देता है जिसकी ओर तुम ढेर के ढेर विद्यालयों की शिक्षा-रूपी नौकाओं में बैठ बैठ कर चले जा रहे हो ? तुम्हारा वह बन्दरगाह है—मुंशीगरी, थानेदारी, और बहुत बढ़ गये तो डिपटी कलक्टरी। इतनी तुच्छ आकाङ्क्षाओं को लेकर इतने विशाल सागर की यात्रा के लिए रवाना होना एक महान् लज्जा की बात है। परन्तु हमारा देश इस लज्जा का अनुभव करना भूल गया है। महान् वस्तुओं की इच्छा तक करने की हमारी शक्ति नष्ट हो गई है। किसी अन्य प्रकार की निर्धनता होने से लज्जित होने का कोई कारण नहीं होता, क्योंकि और सब निर्धनतायें बाहरी होती हैं। परन्तु आकाङ्क्षाओं की दरिद्रता भारी लज्जा की बात है, क्योंकि वह अपनी अन्तरात्मा की दरिद्रता का परिणाम है।

इसलिए मैं तुमसे यहाँ यह प्रार्थना करने आया हूँ कि अपने प्रयत्न के क्षेत्र को इतना विस्तृत बनाओ कि तुम्हें इस बात का सदा स्मरण रहे और इसका प्रमाण भी मिल जाय कि तुम केवल रक्त-मांस के लोथड़े ही नहीं हो, किन्तु तुम आत्मा भी रखते हो; और तुम अपनी हानि को लाभ में तथा मृत्यु को अमरत्व में परिणत कर सकने की भी शक्ति रखते हो। यह सच है कि किसी में कुछ अधिक शक्ति होती है और किसी में कुछ कम। परन्तु हमारी आत्मा में स्वाधीन जीवन और आत्म-विकास की जो प्रबल इच्छा होती है उसकी उपेक्षा करके हमें उसका अपमान न करना चाहिए। महान् आकाङ्क्षायें रखने का अर्थ है आराम को तुच्छ समझना और कष्टों को प्रसन्नता से स्वीकार करना। यह अधिकार प्राणि-मात्र में केवल मनुष्य ही को मिला है कि वह सत्य और स्वाधीनता के लिए कष्ट सहन करके अपनी आत्मा को महान् बनावे। किसी भी अन्य प्राणी को यह श्रेष्ठ अधिकार नहीं मिला। हमारे शास्त्रों का कथन है कि 'यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी', जैसा विचार होता है वैसी ही सिद्धि होती है, वैसा ही कार्य होता है।

सिद्धि क्या है? सिद्धि केवल बाह्य वस्तुओं ही की नहीं होती; हमें अनन्त बनने का अधिकार है—यह ज्ञान ही सिद्धि है। ज्ञान का सर्वदा कार्य-रूप में प्रकट होते रहना ही सिद्धि है।

मनुष्य को ईश्वर ने जो वस्तुयें दी हैं उनमें सबसे बड़ी वस्तु हमारी अन्तरात्मा के आवेग हैं। ये ईश्वरदत्त हैं। परन्तु हम बाल्यकाल ही से जान बूझ कर उनका दमन प्रारम्भ कर देते हैं। यह तो बहुधा संसार भर में देखा जाता है कि सांसारिक जीवन के युद्ध और तूफ़ान में पड़कर उच्च आकाङ्क्षाओं के पङ्ख कट जाते हैं और फिर सांसारिक बुद्धिमत्ता का आधिपत्य हो जाता है। परन्तु हम भारतवासियों का यह विशेष दुर्भाग्य है कि अन्य देशों के लोग तो जीवन-युद्ध में सङ्कट पड़ने पर ही अपनी उच्च आकाङ्क्षाओं का साथ छोड़ते हैं; परन्तु हमें जान बूझ कर बाल्य-काल ही से यह शिक्षा दी जाती है कि हम इस सङ्कट के लिए तैयार न हों, और उच्च मार्ग से जीवन-यात्रा कर सकने के लिए जिस सामग्री की—उच्च उद्देश और अपनी आत्मा में विश्वास रखने की—आवश्यकता होती है उसका सङ्ग्रह न करें। मैंने इस बात का अनुभव अपने विद्यालय के छोटे छोटे विद्यार्थियों में अच्छी तरह किया है। आरम्भ में तो कोई कठिनता नहीं होती। परन्तु ज्यों ही वे तृतीय श्रेणी में पहुँचते हैं त्यों ही उनकी सांसारिक बुद्धि प्रकट होने लगती है। वे कहने लगते हैं—"अब हमें और बातें सीखने की आवश्यकता नहीं; अब तो हमें परीक्षायें पास करनी हैं।" इसका अर्थ यह है कि 'हमें ऐसी सड़क से चलना चाहिए कि कम से कम ज्ञान प्राप्त करके हम अधिक से अधिक नम्बर पा सकें।"

इसलिए मैं कहता हूँ कि हमें बाल्य-काल ही से अपने आपको धोखा देने की आदत पड़ गई है। हमें सत्य की ओर ले जाने के लिए हमारी जो अन्तर्गत स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है उसे हम प्रारम्भ ही से धोखा देने लगते हैं। क्या इसका अभिशाप हमारे देश को सहन नहीं करना पड़ता? क्या यही इस बात का कारण नहीं है कि हम भिखमँगों के समान इस बात की प्रतीक्षा किया करते हैं कि हमसे अधिक भाग्यवान लोग अपनी थाली में से ज्ञानरूपी रोटी के कुछ टुकड़े हमारे लिए भी फेंक दें? क्या हेड क्लर्कियाँ हमारे इस अपमान का बदला चुका सकती हैं?

अब तुम समझ गये होगे कि हमारे देश के नवयुवक सन्तोष के साथ यह बात क्यों कह दिया करते हैं कि हमारे ऋषिवर प्राचीन समय ही में इतना लिख गये हैं और कर गये हैं कि अब हमें और विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं। हम घड़ी की स्प्रिंग (कमानी) को तोड़ कर फिर सन्तोष के साथ कहते हैं कि हमने तो समय को भी पूर्णता पर पहुँचा दिया। इसलिए अब वह आगे नहीं बढ़ता। यह अपने आपको धोखा देकर सत्य से वञ्चित करना ही है।

क्या हमारे भारत के सिवा संसार में कोई भी ऐसा देश है जहाँ शिक्षित मनुष्यों की समझ में केवल वही समाज पूर्ण है जहाँ जीवन तो पराजित होता हो और मृतक का राज्य हो; जहाँ विचार शक्ति का कोई महत्त्व न हो और जहाँ मौलिकता अपराध मान कर दण्डित की जाती

है ? निरन्तर उद्योगशील मस्तिष्क और भविष्य की आशा ही संसार की सब बड़ी बड़ी सभ्यताओं के मूल आधार हैं। लेकिन हम इनका केवल बलिदान कर देने के लिए ही तैयार नहीं हैं, किन्तु हम इन्हें नष्ट करने को एक उत्सव मान कर शङ्ख और भेरी बजाते हैं और इस बात का गर्व करते हैं कि संसार भर में ऐसी विचित्र चित्तवृत्ति केवल हमारी ही है। लेकिन हमें अपने आपको धोखा देकर यह न समझ लेना चाहिए कि अगर हम अपने दुर्भाग्य पर गर्व करने लगेंगे तो इससे हमारा दुर्भाग्य कम हो जायगा। जिस प्रकार ज्ञान प्राप्त करने की अपेक्षा परीक्षा पास करने को बड़ा समझ कर अपने को विचक्षण कहना ख़ुद धोखा खाना है उसी प्रकार अपनी आकाङ्क्षाओं को छोटी बना कर और अपना कार्यक्षेत्र सङ्कुचित करके फिर अपरिमित गर्व से फूलना भी अपने आपको उतना ही धोखा देना है। जब हम फल की ओर देखते हैं तब हमें केवल विश्वविद्यालय की डिग्रियाँ (उपाधियाँ) और बड़े बड़े वेतनवाली नौकरियाँ ही दिखाई देती हैं। परन्तु सत्य का जो ऋण हम पर है उसे हम नहीं चुका पाते, और इसलिए हमारा सिर संसार भर के सम्मुख लज्जा के भार से अवनत हो जाता है।

जब हम अन्य जातियों को राजनैतिक स्वतन्त्रता का उपभोग करते हुए देख कर उनसे ईर्ष्या करने लगते हैं उस समय हम इस बात को भूल जाते हैं कि यह स्वतन्त्रता उस मस्तिष्क से उत्पन्न होती है जो सदा बुद्धि-स्वातन्त्र्य के लिए प्रयत्न करता रहता है, जिसकी शक्तियाँ मृत और अर्थ-हीन रीति-रिवाजों को अनुकूल करने में नष्ट नहीं होतीं, और जो उन शुष्क नदियों में नाव चलाने के प्रयत्न में व्यस्त नहीं रहता जिनमें कभी भूतकाल में जल रहने के कारण नौकायें चला करती थीं। हम अपने जीवन-रूपी वृक्ष की जड़ को तो काट डालते हैं और फिर जब अन्य जीवित शाखाओं में स्वतन्त्रता-रूपी फल लटकते देखते हैं तब उनसे ईर्ष्या करते हैं। हम पहले हज़ारों छोटे बड़े लङ्गर लटका कर अपनी नौका को अचल बना लेते हैं और फिर दूसरों की कृपा से मिलनेवाली रिआयतों रूपी रस्सी के बल हम उसे प्रवाह के विरुद्ध खींच कर राजनैतिक स्वतन्त्रता के बन्दरगाह पर पहुँचाना चाहते हैं।

हमको यह जान लेना चाहिए कि स्वतन्त्रता और सत्य साथ ही उत्पन्न होते हैं; उनमें बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। जब हमारे मस्तिष्क द्वारा सत्य का ग्रहण करने के मार्ग में बाधायें आती हैं तब वही बाधायें बाह्य जगत् में भी उपस्थित हो जाती हैं और हमारे कार्य की स्वतन्त्रता के मार्ग में विघ्न डालने लगती हैं। जन्म ही से हमारा लालन-पालन इस प्रकार होता है कि हमें जीवन की छोटी से छोटी बातों में भी बिना विचार किये प्रचलित रीतियों के अनुकूल बनना होता है। यह हमारे लिए विष का काम देता है। इससे हमारी सत्य-ग्रहण करने की शक्ति की स्वतन्त्रता में बाधा पड़ती है। मैं अपने शान्ति-निकेतन के विद्यालय ही से इसका एक दृष्टान्त देता हूँ। कुछ समय की बात है कि मैंने अपनी कक्षा के कम से कम बीस विद्यार्थियों के माथे पर एक नवीन चिह्न देखा। यह सोच कर कि इतने लड़कों का एक साथ एक सा चिह्न लगाना केवल आकस्मिक नहीं हो सकता, मैंने इसकी पूछ ताछ की तो मालूम हुआ कि किसी एक विद्यार्थी ने अपने सहपाठियों से यह कह दिया था कि माथे पर एक विशेष प्रकार का चिह्न लगाने से हमारे पाप नष्ट हो जाते हैं इसी से सब लड़कों ने तुरन्त उसकी बात पर विश्वास कर लिया। हम उन्हें भले ही स्वास्थ्य के वैज्ञानिक सिद्धान्त समझाते रहें, उसका उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। परन्तु पीढ़ियों से उन्हें जो शिक्षा मिल रही है उसके कारण जिस बात की सचाई का कोई भी प्रमाण नहीं दिया जा सकता उस पर विश्वास करने को वे सदा प्रस्तुत रहते हैं। तर्क-विरुद्ध बातों पर तुरन्त विश्वास कर लेने की प्रवृत्ति जहाँ होती है वहाँ सब प्रकार के अनियन्त्रित और स्वेच्छाचारी अधिकारियों की आज्ञा शिरोधार्य कर लेने की प्रवृत्ति भी अवश्य ही उत्पन्न हो जाती है।

इस प्रकार की चित्तवृत्ति से सबसे बड़ी हानि तो यह होती है कि निराशावादिता के साथ यह विश्वास उत्पन्न हो जाता है कि जितनी बुराइयाँ और क्लेश हैं वे सब स्थायी हैं और हमारे भाग्याधीन हैं। पश्चिम (योरप) ने मलेरिया, प्लेग, हैज़ा अथवा प्रकृति या मनुष्य के किसी अन्य अत्याचार को कभी स्थायी और

अमिट नहीं माना। उसका मस्तिष्क सदा चलायमान रहता है, सदा कार्य करता रहता है। इसलिए वह विघ्नों को निरन्तर अपने पथ से हटाता रहता है। इस प्रकार मस्तिष्क से काम लेना, बुद्धि और तर्क में विश्वास रखना, इच्छा-शक्ति का सर्वदा उपयोग करते रहना, जीवन की सब बाधाओं को निरन्तर धक्का मार मार कर दूर करते रहना—यही स्वतन्त्रता प्राप्त करने की सच्ची शिक्षा है।

मैं यहाँ इसलिए नहीं आया हूँ कि दूर बैठ कर तुम्हें व्याख्यान सुनाऊँ। मैं तो तुम्हें अपनी उस लज्जा के सच्चे स्वरूप का दर्शन कराना चाहता हूँ जिस पर हमने अपनी अहम्मन्यता का रोग़न चढ़ा कर चमकदार बना लिया है और जिसे हम गर्व कर सकने योग्य श्रेष्ठ वस्तु प्रमाणित करने का यत्न करते रहते हैं। तुम युवा हो, तुम नवीन हो। देश के इस कलङ्क को धो डालना तुम्हारा कार्य है। तुम्हें न तो औरों को धोखा देने की चेष्टा करनी चाहिए और न स्वयं धोखा खाने की। तुम्हें अपनी आकाङ्क्षायें उच्च बनानी चाहिए, और अपनी चेष्टाओं का क्षेत्र विस्तृत रखना चाहिए। यदि तुम अपनी दृष्टि को निर्मल और स्वच्छ बनाये रहोगे और सीधे क़दम रखते हुए आगे चले जाओगे, यदि तुम अपने आदर्श को स्पष्टता के साथ अपने सम्मुख रख कर साहसपूर्वक उसकी ओर बढ़े चले जाओगे, तो अभी हम मनुष्यता के उस उद्देश को पूर्ण करने में समर्थ हो सकते हैं जिसे पूर्ण करके संसार की अन्य जातियाँ महान् बन रही हैं। वह उद्देश क्या है? अपनी प्रचुर सम्पत्ति में से औरों को देना।

जब हममें औरों को दे सकने की शक्ति नहीं होती तब हम अधिक से अधिक भिखारियों के समान टुकड़े पा सकते हैं। परन्तु जब हममें अपनी प्रचुर सम्पत्ति में से दान करने का सामर्थ्य होता है तब हम अपना निजत्व अवश्य प्राप्त कर सकते हैं। जब हम देना सीख जायँगे तब समस्त संसार हमसे भेंट करने और हमारा स्वागत करने को आवेगा। तब हमें हाथ जोड़ कर यह प्रार्थना करने की आवश्यकता न रहेगी कि 'हम पर दया करो, हमें बचाओ, हमें न मारो।' तब तो मनुष्य-जाति इसमें स्वयं अपना लाभ समझेगी कि हमारी रक्षा करे और हमें हानि से बचावे। तब हम दूसरों की कृपा नहीं किन्तु अपना अधिकार प्राप्त कर सकेंगे।

इस समय हम डरते डरते कह रहे हैं कि हम उच्चासन पर बैठने की महत्त्वाकाङ्क्षा नहीं रखते, हमें तो यदि सिकुड़ कर बैठ सकने के लिए कहीं एक कोना मिल जायगा तो हम इतने ही से सन्तुष्ट हो जायँगे। ईश्वर के नाम पर इतनी तुच्छ इच्छा मत रक्खो, ऐसी क्षुद्र प्रार्थना मत करो। 'छोटी वस्तुओं में सुख नहीं है, इसलिए तू महत् की खोज कर।' हमारे भीतर जो महत् विद्यमान है, यदि हम उसकी उपेक्षा करके केवल बाहर ही उसकी खोज करेंगे तो हमें भीख माँगने से जो सुख या आनन्द मिलेगा वह भी हमारे देश की मृत्यु की पूर्व सूचना देनेवाला ही होगा।

सम्राट् सत्य अपने विजयरूपी रथ पर बैठ कर भ्रमण के लिए बाहर निकले हुए हैं। उनकी दुन्दुभि की आवाज़ एक आकाश से लेकर दूसरे आकाश तक गूँज रही है। जिनका हृदय साहस-रहित है, जिनका मस्तिष्क जड़ है, जिन्हें स्वयं अपने आप ही को धोखा देनेवाले मिथ्या तर्क से प्रेम है, जो मृत भूत काल के अर्थहीन शब्दों से सत्य के पथ को रोकने की चेष्टा करके उसे अपने द्वार का बन्दी बना लेने की आशा करते हैं, वे केवल अपने पैरों के लिए बेड़ी बना सकने ही में समर्थ होंगे। युगों से एकत्र होनेवाले इस कूड़े करकट को दूर कर दो, क्योंकि यात्रियों के सम्राट् भ्रमण कर रहे हैं। उनके लिए मार्ग स्वच्छ रहना चाहिए। प्रति दिन वे प्रश्न करते हैं कि 'तुमने कितनी उन्नति कर ली है?' क्या हम उन्हें वर्षों और युगों के व्यतीत होते रहने पर भी नित्य यही एक उत्तर देते रहें कि एक भी क़दम नहीं? क्या हम उसी एक स्थान पर, संसार-मार्ग के चौराहे पर, अचल भाव से स्थित हो जायँ और युगों के पुराने जीर्ण वस्त्र को धारण किये हुए हम उक्त सम्राट् के रथ पर बैठ कर निकलनेवाले भाग्यवान् यात्रियों के सम्मुख अपने अशक्त हाथ जोड़ कर उनसे भोजन और सहायता, और ज्ञान और स्वतन्त्रता की भिक्षा माँगते रहें? और जब वे हमसे कहें कि 'तुम भी धन

की खोज करने हमारे साथ क्यों नहीं चलते ?' तब क्या हम उनको वर्षों और युगों तक नित्य यही उत्तर देते चले जायँ कि हमें तो अपने स्थान से हटना मना है, क्योंकि हम पवित्र भूत काल के हैं और सदा के लिए मृतक अतीत के साथ बँधे हुए हैं ?'

केशवदेव सहारिया

जातीयता ।

असभ्यता को छोड़ सभ्य बन रहना सीखा, मुँह की सीअन खुली और कुछ कहना सीखा।
जीवन-पथ में घोर दुखों को सहना सीखा, समय-नदी की प्रबल धार में बहना सीखा ॥
बात पुरानी उड़ गई गया पुराना ढङ्ग है।
नई सभ्यता आ गई चढ़ा नया अब रङ्ग है ॥ १ ॥

अनुचित उचित विचार काम निज करना सीखा, कर्म-मार्ग में निर्भय हो पद धरना सीखा।
पर वीरों की तरह समय पर मरना सीखा, आत्म-ह्रास के कठिन रोग से डरना सीखा ॥
देखो सब संसार में उन्नति करते जा रहे।
जैसी करनी की गई हैं वैसा फल पा रहे ॥ २ ॥

यदि हममें हे मित्र नहीं जातीय भाव है, तो सब कुछ है वृथा अगर उसका अभाव है ॥
उसे बचाने का न जिसे सब काल चाव है, उसका जग में भला कहाँ जम सका पाँव है ! ॥
वह नर, नर है ही नहीं नहीं अगर जातीयता।
कब उन्नति वह कर सका जग में दो तुम ही बता ॥ ३ ॥

वह हमको है सदा आत्म-गौरव सिखलाती, उन्नति का है मूल-मन्त्र हमको बतलाती।
भय-पिशाचिनी जब जब है हमको धमकाती, तभी तभी वह साहस देकर धैर्य्य बँधाती ॥
प्रभु हममें जातीयता और आत्म-विश्वास हो।
उन्हें न त्यागें भूल हम जब तक घट में श्वास हो ॥ ४ ॥

जिसने इनको सदा खूब जी से अपनाया, उसका गौरव और मान बढ़ गया सवाया।
उसका ही है कीर्ति-केतु जग में फहराया, उसने ही तो विश्व-बीच है नाम कमाया ॥
जीवन के सुस्वादु को करके अनुगत सा सदा।
आशा-तरु उस जाति का रहे फूल फल से लदा ॥ ५ ॥

जिसने उसको गँवा दिया उसने सब खोया। उसने निज उन्नति पथ में है कण्टक बोया।
वही अन्त में हाथ शीश पर धर कर रोया, कुल-कलङ्क बन गया जाति का नाम डुबोया।
उसका जग में देख लो नहीं कहीं लगता पता।
कलित कीर्ति की शीघ्र ही कुम्हला जाती है लता ॥ ६ ॥

प्रभु है सादर विनय फिरे फिर दिवस हमारा, फिर से चमके भव्य देश का भाग्य सितारा।
सब देशों से आगे होवे भारत प्यारा, मिट जावे अब भेद-भाव हममें से सारा ॥
सीखें हम जातीयता हमको उसका ज्ञान हो।
उसकी रक्षा का हमें पूरा पूरा ध्यान हो ॥ ७ ॥

मणिराम गुप्त

बिजली की ट्राम और रेलगाड़ी।

सरस्वती के पिछले अङ्कों में दिखाया गया है कि बिजली किस प्रकार डाइनमो में उत्पन्न होती है। अब प्रश्न यह है कि इस डाइनमो के एक छोटे से आर्मेचर को चलाने के लिए बड़े बड़े इञ्जिनों की आवश्यकता क्यों पड़ती है? इसका कारण यह है कि डाइनमो के आर्मेचर के तार में ज़ब बिजली उत्पन्न होती है तब वह तार बड़ा शक्ति-शाली चुम्बक बन जाता है। इस तार के चारों ओर दूसरे चुम्बक भी लगे रहते हैं। इनसे भी बिजली पैदा होती है। यह तो नियम ही है कि जब दो चुम्बक पास पास रक्खे जाते हैं तब उन दोनों के बीच आकर्षण होता है। अतएव उस आकर्षण के विरुद्ध आर्मेचर को चलाने के लिए शक्तिशाली इञ्जिन की आवश्यकता पड़ती है।

डाइनमो जितनी तेज़ी से इञ्जिन द्वारा चलाया जाता है उतनी ही अधिक बिजली उसमें पैदा होती है और जितनी अधिक बिजली मोटर में भरी जाती है उतनी ही तेज़ी से मोटर चलने लगती है। इसलिए किसी मोटर को किसी ख़ास गति पर रखने के लिए डाइनमो की चाल को भी उसी के अनुसार घटाना बढ़ाना पड़ता है; किन्तु डाइनमो की चाल घटाये-बढ़ाये बिना ही हम बिजली को कम ज़ियादह करके मोटर की चाल को घटा-बढ़ा सकते हैं। जब किसी नल में पानी की धार को कम ज़ियादह करना होता है तब पानी चलानेवाले इञ्जिन की चाल को कम ज़ियादह न करके नल के पेच की डाट ही ढीली या कड़ी करदी जाती है। इसी प्रकार डाइनमो चलानेवाले इञ्जिन की चाल में परिवर्तन किये बिना ही हम बिजली के रास्ते में बहुत से तार के गुच्छे लगा कर उसको कम जियादह कर देते हैं। ये गुच्छे, जिन्हें रेसिस्टेन्स (Resisecnet) कहते हैं, एक लोहे के चौखटे में लगे रहते हैं। इस चौखटे में एक मूठ लगी रहती है। उसको घुमाने से हम बिजली को यथारुचि सुगमता से घटा-बढ़ा सकते हैं। इससे मोटर की चाल भी इच्छानुसार घटाई बढ़ाई जा सकती है। यह रेसिस्टेन्स, ट्राम में, ड्राइवर के हाथ के पास लकड़ी के ढकने में बन्द रहता है। इसे घटा बढ़ा कर ड्राइवर ट्राम की चाल घटाता बढ़ाता रहता है और जब वह ट्राम को पूरी तेज़ी पर चलाना चाहता है तब वह मूठ को घुमा कर उस रेसिस्टेन्स को बिलकुल ही अलग कर देता है। इस रेसिस्टेन्स के अतिरिक्त इसी के पास एक दूसरा पेच लगा रहता है। उसे Switch (स्विच) कहते हैं। उसको उलट देने से मोटर की चाल के साथ ट्राम की चाल उलटी हो जाती है और ट्राम-गाड़ी पीछे की ओर चलने लगती है।

जितना मोटा तार होता है उसमें उतनी ही अधिक बिजली दौड़ाई जा सकती है। किसी पतले तार में अधिक बिजली प्रवाहित करने से उसमें इतनी अधिक गरमी पैदा हो जाती है कि वह पिघल सकता है। ख़ास शक्तिवाले मोटर के आर्मेचर में ख़ास मुटाई का तार लपेटा जाता है। अतएव उसमें बिजली नियत परिमाण से अधिक नहीं भेजी जा सकती, अन्यथा तार जल उठेगा और मोटर में आग लग जायगी। कारख़ानों में इञ्जिन के अधिक तेज़ चल जाने से अथवा अन्य किसी कारण से प्रायः बिजली अधिक उत्पन्न हो जाती है। उसे मोटर में जाने से रोकने के लिए राँगे का एक तार स्विच के पास लगा रहता है। अधिक बिजली आने से वह जल जाता है। इससे बिजली का मार्ग बन्द हो जाता है और वह मोटर में नहीं जा सकती।

ट्राम को एक-दम खड़ी कर देने के लिए एक

पहियर ड्राइवर के पास लगा रहता है। उसे घुमाने से ट्राम के पहियों में लोहे के डण्डे जाकर जकड़ जाते हैं। तब पहियों का चलना बन्द हो जाता है और ट्राम खड़ी हो जाती है। पास ऐसे यन्त्र लगे रहते हैं जिनकी वायु द्वारा लोहे के उन डण्डों पर धक्का दिया जाता है जो गाड़ी का चलना रोक देते हैं।
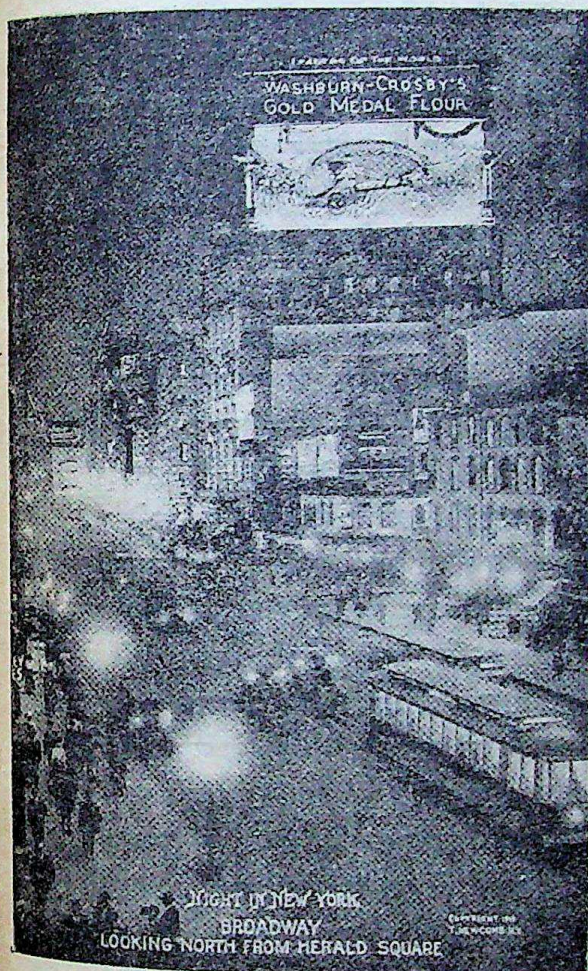
न्यूयार्क (अमेरिका) में रात का दृश्य—बिजली की करामातें।

ट्राम के नीचे बिजली से चलनेवाला वायु का एक पम्प होता है। वह वायु को दबा कर उसे शक्तिशाली बनाता है। तब वायु खूब ज़ोर से डण्डे पर धक्का देती है। इससे पहिये रुक जाते हैं।

कलकत्ते और बम्बई में ट्राम-गाड़ी दिन रात चला करती है। उन्हें चलाने के लिए अधिक परिमाण में बिजली पैदा करनी पड़ती है। इसके लिए शहर के बाहर बड़े बड़े कारख़ाने बने हैं। नल द्वारा बहुत पानी दूर स्थान में पहुँचाने के लिए चौड़े मुँह के नल की ज़रूरत पड़ती है; किन्तु यदि पानी तेज़ गति से पम्प द्वारा भेजा जाय तो छोटे मुँहवाले नल से भी काम चल सकता है। इसी प्रकार यदि बिजली बड़ी शक्तिवाली हो तो वह बहुत दूर तक जा सकती है और उसे पहुँचाने के लिए पतला तार लगाया जा सकता है। बिजली की शक्ति को वोल्ट (Vol) कहते हैं और किसी डाइनमो से एक परिमित वोल्ट तक ही बिजली बनाई जा सकती है; किन्तु डाइनमो में एक ख़ास वोल्ट की बिजली बन जाने पर हम उसे बाहर लाकर उसके वोल्ट अर्थात् शक्ति को बढ़ा सकते हैं। इसके लिए लोहे में लपेटे एक तार के गुच्छे में बिजली प्रवाहित करके लाई जाती है। इस गुच्छे के चारों ओर महीन तार का एक दूसरा बड़ा गुच्छा होता है। उसमें बिजली की शक्ति अधिक या कम कर दी जाती है।

चुम्बक से निकली हुई लकीरों को काट देने से किसी भी तार में बिजली पैदा की जा सकती है; अर्थात् या तो तार घुमाया जाय या स्वयं लकीरें चलें। हमने यह भी बताया है कि डाइनमो में आर्मेचर के तार के गुच्छों को चुम्बक से निकली लकीरों के बीच घुमाने से किस प्रकार आर्मेचर में बिजली पैदा हो जाती है। आर्मेचर को न घुमा कर यदि लकीरें इधर से उधर घुमाई जायँ तो भी बिजली पैदा हो जायगी। इसी नियम के आधार पर रुख़ बदलनेवाला आल्टरनेटिङ्ग करेन्ट तार के एक गुच्छे में प्रवाहित किया जाता है। इससे इस तार के चारों ओर चुम्बक की ऐसी लकीरें पैदा होती हैं जिनके रुख़ इन्हें पैदा करनेवाली बिजली

की रुख़ की तरह बदलते रहते हैं। इसलिए इन रुख़ बदलनेवाली लकीरों में रक्खे जाने से उस दूसरे गुच्छे में भी बिजली पैदा हो जाती है। यदि यह दूसरा गुच्छा पहले से बड़ा है तो इसमें अधिक वोल्टवाली बिजली पैदा होती है और यदि कम है तो कम।

इस नियम के अनुसार डाइनमो से कम शक्ति या वोल्टवाली बिजली पैदा करके उसे इस तार के पहले गुच्छे में पहुँचाते हैं। इस गुच्छे के चारों ओर एक इससे भी बड़ा गुच्छा इस प्रकार लिपटाया रहता है कि वह पहले गुच्छे से छू न जाय। जिस बड़े गुच्छे में बिजली अधिक वोल्टवाली हो जाती है उसको ट्रैन्सफ़ार्मर (Transformer) या वोल्ट-परिवर्तक कहते हैं। बिजली इसी ट्रैन्सफ़ार्मर से सड़क के खम्भों के तारों में पहुँचाई जाती है। याद रहे कि यह ट्रैन्सफ़ार्मर तभी काम दे सकता है जब इसमें रुख़ बदलनेवाली बिजली भेजी जाय, जिससे इसमें पैदा हुई चुम्बक की लकीरें (Lines of Force) अपने रुख़ बदलती रहें। रुख़ न बदलनेवाले डाइरेक्ट करेंट (Direct current) भेजने से काम नहीं चल सकता, क्योंकि इनमें रुख़ बदलनेवाली लकीरें नहीं पैदा होतीं।

इस प्रकार बिजली के वोल्ट को अधिक कर के हम उसे सैकड़ों मील दूर तक ले जा सकते हैं। अमेरिका में नियाग्रा नामक जल-प्रपात से बिजली पैदा करके और इसी प्रकार उसके वोल्ट को बढ़ा कर हम उसे सैकड़ों मील दूर ले जाते हैं। इसी प्रकार मैसोर और काश्मीर-राज्य में जल-प्रवाह द्वारा डाइनमो चला कर बिजली पैदा की जाती है और बड़ी दूर तक पहुँचाई जाती है।

इस प्रकार हम ट्राम-गाड़ी चलाने के लिए बिजली को उसका वोल्ट बढ़ा कर ले आते हैं; किन्तु जो मोटर ट्राम में लगा रहता है वह अधिक वोल्ट की बिजली से नहीं चल सकता और न डाइनमो ही अधिक वोल्ट की बिजली तैयार कर सकता। इसलिए स्थान स्थान पर ऐसे घर बनाये जाते हैं जहाँ उसी प्रकार के ट्रैन्सफ़ार्मर रक्खे जाते हैं जिनके द्वारा बिजली का वोल्ट बढ़ाया जाता है। यहीं पर पहले बिजली तार के बड़े गुच्छे में डाली जाती है। इससे वह छोटे गुच्छे में कम वोल्ट की बिजली बन जाती है। इसके बाद उसे तार द्वारा ट्राम के मोटर में ले जाते हैं। तब मोटर चलता है। यदि ट्राम का मोटर आल्टर्नेटिङ्ग करेन्ट का न होकर डाइरेक्ट करेन्ट से चलनेवाला हो तो इस ट्रैन्सफ़ार्मर से निकली बिजली को हम एक ऐसे मोटर में डाल देते हैं जो इस रुख़ बदलनेवाली आल्टर्नेटिंग करेन्ट से चलता है। इस प्रकार इस मोटर को चला कर हम डाइरेक्ट करेन्ट पैदा करते हैं। फिर डाइनमो को चला कर रुख़ न बदलनेवाला डाइरेक्ट करेन्ट उत्पन्न कर लेते हैं। तब इन्हें ट्राम के मोटर में भेजते हैं जिससे वह चलने लगती है।

तेज़ वोल्ट की बिजली बड़ी भयानक होती है। ट्राम-गाड़ी का जो तार सड़क के खम्भों पर लगा रहता है उसे पृथ्वी पर खड़े होकर छूने से मनुष्य के प्राण तक जा सकते हैं। हम देखा करते हैं कि खम्भों पर तार चीनी-मिट्टी के प्याले या लकड़ी से बँधा रहता है। इससे उसका सम्पर्क धातु के खम्भों से नहीं रहता। यदि खम्भे से तार का स्पर्श हो जाय तो उसमें बहनेवाली बिजली खम्भे से होकर पृथ्वी में चली जायगी। यदि हम किसी लकड़ी पर खड़े होकर तार को छुवें तो कोई हानि नहीं, क्योंकि तब बिजली पृथ्वी में प्रवेश नहीं कर सकती। इसलिए जब तार की मरम्मत करनी होती है तब मिस्तरी लोग लकड़ी पर खड़े होकर उसे छूते हैं। यदि हम पृथ्वी पर खड़े होकर, अथवा पृथ्वी से छूते हुए किसी धातु को पकड़ कर, तार को छुवें तो बिजली बड़ी तेज़ी के साथ हमारे शरीर

से होकर पृथ्वी में चली जाती है। इसलिए बिजली के तार को पृथ्वी पर खड़े होकर कभी न छूना चाहिए। जो बिजली हमारे घरों में लगी रहती है उसका वोल्ट उतना अधिक नहीं होता जितना कि ट्राम की बिजली का होता है। तो भी घर में लगे हुए तार को पृथ्वी पर खड़े होकर छूने से भारी धक्का लग सकता है। यदि हमें बिजली के तार को छूना हो तो लकड़ी के सहारे खड़े होकर अथवा रबर के मोज़े पहन कर छूना चाहिए; क्योंकि बिजली लकड़ी या रबर के द्वारा नहीं बहती।

बिजली की रेल का दृश्य।

योरप और अमेरिका में आज-कल एक नगर से दूसरे नगरों के बीच रेल-गाड़ी बिजली द्वारा चलने लगी है। ये रेल-गाड़ियाँ भी इन्हीं नियमों के आधार पर चलती हैं। जो रेल भाफ़ की शक्ति से चलती है उसे कोयले और पानी की आवश्यकता रहती है। जब उसका कोयला और पानी चुक जाता है तब वह किसी स्टेशन पर खड़ी होकर पानी और कोयला लेने लग जाती है। किन्तु बिजली की रेल-गाड़ी को इन चीज़ों की ज़रूरत नहीं। उसके चलाने के लिए कहीं दूर पर कारख़ाना बना कर बिजली पैदा की जाती है। वहीं से तार द्वारा बिजली भेजी जाती है। उसी से रेल का मोटर चलाया जाता है और तब गाड़ी तेज़ी से दौड़ने लगती है। इस बिजली की गाड़ी को चलाने के लिए केवल एक ही मनुष्य की ज़रूरत रहती है। वह केवल उसका पेंच देखता रहता है।

इनके अतिरिक्त बिजली द्वारा मोटरगाड़ियाँ भी चलती हैं। मोटरगाड़ी चलाने में केवल इस बात की कठिनाई होती है कि तार द्वारा बिजली नहीं आ सकती। अतएव उसमें कई बैटरियाँ रखनी पड़ती हैं। उनमें बिजली भर दी जाती है। इसी बिजली से उसका मोटर चलता है जो ठीक उसके पेंदे में लगा रहता है। तब मोटरगाड़ी चलने लगती है। इसके चुक जाने पर बिजली फिर भरनी पड़ती है। यही कठिनाई है। तो भी बिजली की मोटरगाड़ी रेल की मोटरगाड़ी से कहीं शानदार और चलाने में सहज है। उसे कोई भी साधारण मनुष्य मज़े में चला सकता है।

नाव भी बिजली द्वारा चलाई जाती है। उसमें भी बिजली की बैटरी रखनी पड़ती है। पाठकों ने सबमेरीन (Sub marine) नामक पानी के भीतर भीतर चलनेवाली नाव के विषय में सुना होगा। कोई भी तेल या भाफ़ द्वारा चलनेवाली नाव जल के भीतर छिप कर चुपचाप नहीं चल सकती। किन्तु बिना धुआँ दिये और आवाज़ किये ही यह पनडुब्बी नाव बिजली द्वारा जल के भीतर भीतर दूर तक चुपचाप चली जाती है।

जगन्नाथ खन्ना,
बी० एस-सी०, इ० इ०

योरप के कुछ संस्कृतज्ञ विद्वान् और उनकी साहित्य-सेवा।

आज कल योरप में संस्कृत-भाषा का बड़ा आदर है। वहाँ संस्कृत के अच्छे अच्छे विद्वान् भी हैं। उन्होंने भारतवर्ष के प्राचीन साहित्य के कितने ही ग्रन्थ-रत्नों का उद्धार किया है। उनकी गवेषणाओं से भारतवर्ष को बड़ा लाभ हुआ है। यह उन्हीं के संस्कृत साहित्य-परिशीलन का फल है कि प्राचीन भारतवर्ष की सभ्यता का इतिहास लिखा जा सका है। उनका ही अनुसरण करके डाकृर भाऊ दाजी, राजेन्द्रलाल मित्र, डाकृर भाण्डारकर आदि भारतीय विद्वानों ने भी भारतीय पुरातत्त्व का अनुशीलन किया। योरप में संस्कृत का प्रचार होने से तुलनात्मक भाषा-विज्ञान और धर्म-विज्ञान की उन्नति हुई। सच तो यह है कि यदि ये योरप के विद्वान् इतना परिश्रम न करते तो कदाचित् भारतवासी अपने प्राचीन साहित्य का महत्त्व बहुत समय तक न समझते। सरस्वती में इन विद्वानों का परिचय समय समय पर दिया जा चुका है। यहाँ हम इनके कुछ कार्यों का संक्षिप्त विवरण देते हैं।

संस्कृत-भाषा का अध्ययन पहले पहल सर विलियम जोन्स ने किया। उसके पहले भी कुछ ईसाई-धर्म-प्रचारकों ने संस्कृत का थोड़ा बहुत ज्ञान प्राप्त कर लिया था। हेनरिच नाथ नामक एक जर्मन ने, १६६४ ईसवी में, ब्राह्मणों से शास्त्रार्थ करने के लिए संस्कृत का अध्ययन किया था। एक और जर्मन ईसाई, हेनक्सलेडन, जो यहाँ १६९९ ईसवी में आया, संस्कृतज्ञ था। चार्लस विल्किन्स अवश्य संस्कृत के विद्वान् थे। उन्होंने गीता का अनुवाद किया। वह अनुवाद सन् १७८५ ईसवी में, इँगलेंड में, प्रकाशित हुआ।

सर विलियम जोन्स कलकत्ते में सुप्रीम कोर्ट के जज थे। उन्होंने १७८४ ईसवी में बङ्गाल की एशियाटिक सोसाइटी की स्थापना की। १७९२ ईसवी में उनका किया हुआ ऋतुसंहार का अँगरेज़ी-अनुवाद प्रकाशित हुआ। मनुस्मृति और अभिज्ञानशाकुन्तल का भी उन्होंने अँगरेज़ी में अनुवाद किया। इसके पहले योरप के विद्वानों को प्राचीन भारतवर्ष की सभ्यता का बहुत ही कम ज्ञान था। सर विलियम जोन्स ने ही उनमें प्राचीन
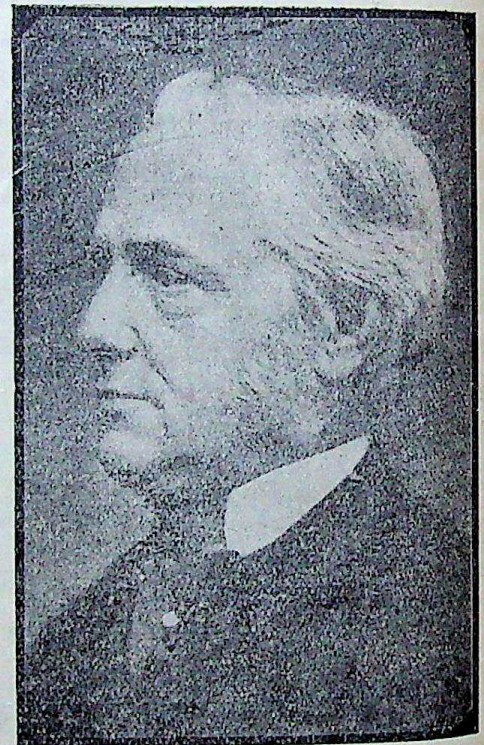
प्रोफ़ेसर मैक्समूलर।

भारत के विषय में ज्ञान प्राप्त करने की अभिलाषा उत्पन्न कर दी। एशियाटिक सोसाइटी से जो जर्नल निकलता है उसमें सर जोन्स ने कई गवेषणा-पूर्ण लेख लिखे। सबसे पहले उन्होंने ही यह प्रमाणित किया कि मेगास्थनीज़ का संड्रोकोटस और चन्द्रगुप्त दोनों एक ही व्यक्ति हैं और पालिबोथ्रा पाटलि-

पुत्र का ही अपभ्रंश है। सन् १७६४ ईसवी में उनकी मृत्यु हुई। उनके स्थान पर हेनरी कोलब्रुक साहब आये।

कोलब्रुक साहब संस्कृत के अच्छे ज्ञाता थे। संस्कृत के सिवा वे अन्य भी अनेक विषयों के ज्ञाता थे। उनका जन्म १७६५ ईसवी में, लन्दन में, हुआ था। १८ वर्ष की अवस्था में उन्हें ईस्ट इंडिया कम्पनी में एक नौकरी मिल गई। यहाँ वे ३२ वर्ष तक भिन्न भिन्न पदों पर काम करते रहे। १८०७ ईसवी में वे बङ्गाल की एशियाटिक सोसाइटी के सभापति हुए। १८१५ ईसवी में वे इँगलेंड लौट गये। वहाँ, १८२२ में, उन्होंने लन्दन में रायल एशियाटिक सोसाइटी की स्थापना की। १८३७ में उनकी मृत्यु हुई। उन्हीं के परिश्रम से योरप में संस्कृत का विशेष प्रचार हुआ।

होरेस हेमन विलसन ने ईस्ट इंडिया कम्पनी के चिकित्सा-विभाग में १८०८ से १८३२ ईसवी तक काम किया। वे भी संस्कृत के विद्वान् हुए। आक्सफ़र्ड में सबसे पहले वही बोडेन-प्रोफ़ेसर के पद पर नियुक्त हुए।

फोर्ट विलियम कालेज, कलकत्ता, में रेवरन्ड केरी संस्कृत के अध्यापक थे। वाल्मीकीय रामायण को सबसे पहले प्रकाशित करने का श्रेय उन्हीं को है।

सर हेनरी मैकनाटन, जो काबुल में मारे गये थे, अच्छी संस्कृत जानते थे।

योरप के अन्य देशों की अपेक्षा जर्मनी में संस्कृत का अधिक प्रचार हुआ। फ्रेड्रिक शेजल नामक विद्वान् ने वहाँ लोगों का ध्यान संस्कृत भाषा के अध्ययन की ओर आकृष्ट किया। उसका भाई आगस्ट डब्ल्यू० शेजल भी संस्कृत का प्रेमी था। उसने जर्मनी में संस्कृत का ख़ूब प्रचार किया। उसने अनेक संस्कृत-ग्रन्थों को जर्मन भाषा में अनुवादित करके प्रकाशित किया। १८१८ में वह बान के विश्वविद्यालय में अध्यापक नियुक्त हुआ। उसने अपनी गवेषणा पेरिस में आरम्भ की। उसके गुरु थे शेज़ी।

फ्रेंचों में सबसे पहले शेज़ी ने ही संस्कृत का अध्ययन किया। वह कालेज डी-फ्रांस में संस्कृत का अध्यापक था। वहाँ उसने संस्कृत-साहित्य की बड़ी सेवा की। अनेक भारतीय ग्रन्थों का सम्पादन किया और कुछ के अनुवाद भी। १८२३ ईसवी में दि इंडियन लाइब्रेरी (The Indian Libray) नामक पत्र का पहला खण्ड प्रकाशित हुआ। उसमें भारतीय भाषा-विज्ञान पर निबन्ध थे। प्रायः सभी शेजल की रचना थी। उसी साल शेजल ने भगवद्गीता का एक अच्छा संस्करण निकाला। १८२६ में उसकी रामायण का पहला भाग निकला। पर वह अपूर्ण ही रह गया।

शेजल के समसामयिक फ्रेञ्च विद्वान् बाप थे। उनका जन्म सन् १७९१ ईसवी में हुआ था। १८१२ में वे भी पेरिस आये और शेज़ी के पास संस्कृत पढ़ने लगे। १८१६ में बाप ने संस्कृत-भाषा के तुलनात्मक विज्ञान पर निबन्ध लिखा। इस विज्ञान के जन्मदाता बाप ही थे। उन्होंने नल-दमयन्ती के उपाख्यान को लैटिन भाषा में अनुवाद करके प्रकाशित किया। सबसे पहले उन्होंने ही महाभारतीय उपाख्यानों का अनुवाद जर्मन भाषा में किया। उनका संस्कृत-भाषा का व्याकरण १८३७ में निकला। उन्होंने एक कोष भी तैयार किया। इन दोनों ग्रन्थों से उनकी अच्छी प्रसिद्धि हुई और इन ग्रन्थों का प्रचार भी योरप में ख़ूब हुआ।

डब्ल्यू० हम्बोल्ट (Mr. Humbolt) साहब ने १८२१ ईसवी में संस्कृत-भाषा का अध्ययन आरम्भ किया। उनसे उनके भाई अलेक्ज़ेंडर हम्बोल्ट का नाम, संस्कृत-विषय में, अधिक विख्यात है। तथापि ये भी संस्कृत के ऐसे वैसे ज्ञाता न थे। भगवद्गीता पर इनकी बड़ी श्रद्धा थी। इनकी राय थी कि इससे अधिक गम्भीर और उच्च विचारों से पूर्ण दूसरा

ग्रन्थ नहीं। हेगल ने गीता की अच्छी आलोचना नहीं की। इस पर इन्होंने कहा—"गीता के विरुद्ध जितने ही अधिक उग्र विचार हेगल के हैं उतनी ही उस पर मेरी श्रद्धा अधिक बढ़ गई है।

भारतवर्ष में जितनी ख्याति मैक्समूलर की है उतनी शायद अन्य योरोपीय पण्डित की नहीं है। मैक्समूलर ने वैदिक साहित्य का अच्छा अनुशीलन किया। उनका जन्म १८२३ ईसवी में जर्मनी के डेशो नामक स्थान में हुआ था। उन्होंने लिपज़िक, हाल और हर्मन ब्रुक से पहले पहल संस्कृत का
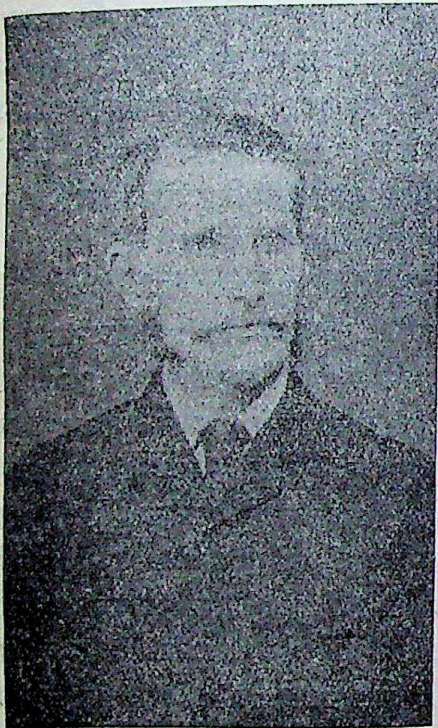
डाक्टर कीलहार्न।

परिचय प्राप्त किया। फ्रांस में आकर उन्होंने यूजेन वर्नो से संस्कृत पढ़ी। १८४६ ईसवी में उन्होंने ऋग्वेद का प्रथम खण्ड प्रकाशित किया। फिर बीस वर्ष तक लगातार परिश्रम करके उन्होंने ऋग्वेद को सम्पूर्ण कर डाला। इस काम में बैरन बुनसेन ने उनको बड़ी सहायता दी। ऋग्वेद के सिवा पचास भागों में प्राच्य धार्मिक ग्रन्थमाला को भी उन्होंने प्रकाशित किया। अच्छे अच्छे, कई ग्रन्थों की रचना भी, उन्होंने की। १९०७ में उनकी मृत्यु हो गई।

जब मैक्समूलर साहब ऋग्वेद का सम्पादन कर रहे थे तब कुछ समय तक डाक्टर कीलहार्न ने भी उन्हें सहायता दी थी। डाक्टर कीलहार्न जर्मनी के निवासी थे। वहीं उन्होंने संस्कृत पढ़ी। लिपज़िक से १८६६ में उन्होंने फिट्-सूत्रों का प्रकाशन किया। वे कुछ समय तक पूने के डेकन-कालेज में अध्यापक भी रहे। यहीं उन्होंने अनन्त-शास्त्री नामक एक विद्वान् से संस्कृत-व्याकरण का अध्ययन किया। फिर उन्होंने नागोजी भट्ट के परिभाषेन्दुशेखर और पतञ्जलि के महाभाष्य का सम्पादन किया। कुछ समय के बाद वे जर्मनी लौट गये। वहाँ वे गाटिंजन में अध्यापक नियुक्त हुए। वहीं १९०८ ईसवी में उनकी मृत्यु हुई।

आर० पिशल नामक संस्कृतज्ञ विद्वान् का जन्म जर्मनी के ब्रेसला नामक नगर में हुआ। वहीं उनको शिक्षा मिली। बर्लिन, आक्सफ़र्ड और लन्दन में भी उन्होंने कुछ काल तक अध्ययन किया। १८७५ ईसवी में वे कील के विश्वविद्यालय में संस्कृत के अध्यापक हुए। १८८५ में उनकी नियुक्ति हेल के सैक्सन विश्वविद्यालय में हो गई। १९०२ में उससे भी उनका सम्बन्ध छूट गया। तब उन्हें बर्लिन के विश्वविद्यालय में जगह मिली। मृत्यु तक वे उसी पद पर काम करते रहे। उन्होंने हेमचन्द्र के कई ग्रन्थों का सम्पादन किया। कालिदास के काव्यों और वेदों पर भी उन्होंने कई महत्व-पूर्ण ग्रन्थ लिखे। वे जैसे संस्कृत के ज्ञाता थे वैसे ही प्राकृत के भी थे।

भारतवर्ष के शिक्षा-विभाग में डाक्टर टीबो का अच्छा नाम है। वे भी जर्मन थे। मैक्समूलर के साथ वे तीन-चार वर्ष तक रहे थे। इसलिए उन्हें

भी संस्कृत का अच्छा ज्ञान हो गया था। १७८५ में वे अध्यापक नियुक्त होकर बनारस भेजे गये। उन्होंने सुल्व-सूत्रों पर एक बड़ा अच्छा निबन्ध लिखा। इससे उनका अच्छा नाम हुआ। बनारस-कालेज में वे १८८८ ईसवी तक रहे। फिर वे पञ्जाब के रजिस्ट्रार नियत हुए। इसके बाद वे म्यूरसेन्ट्रल कालेज में अध्यापक हुए। उन्होंने पञ्चसिद्धान्तिका और शङ्कर-रामानुज-भाष्ययुक्त वेदान्त-सूत्रों का एक उत्तम संस्करण निकाला। इनके सिवा वराहमिहिर पर उन्होंने टिप्पणियाँ लिखीं और मीमांसा और ज्योतिष-वेदाङ्ग पर निबन्ध।

फ्रांस के प्रसिद्ध संस्कृतज्ञ एम० शेजी का उल्लेख हम ऊपर कर आये हैं। योरप में संस्कृत के अध्यापक होने का गौरव सबसे पहले आपको ही मिला। आप १८१४ से १८३२ ईसवी तक संस्कृत पढ़ाते रहे। आपके बाद यह पद यूजिन बर्नफ साहब को मिला। बर्नफ साहब ने संस्कृत-साहित्य में बड़ा काम किया है। उनका जन्म १८०१ ईसवी में हुआ था। १८२४ में पेरिस से वे पदवीधर होकर निकले। दो साल बाद प्रसिद्ध परिडत लासन के साथ उन्होंने पाली-भाषा पर एक महत्त्वपूर्ण निबन्ध लिखा। उन्होंने योरप को बौद्ध-धर्म का परिचय कराया। भारतवर्ष के इतिहास में बौद्ध काल की प्रधान घटनाओं का समय उन्होंने निश्चित किया। भागवत-पुराण का भी सम्पादन करके उसे उन्होंने प्रकाशित किया। ५० वर्ष की अवस्था में ही उनकी मृत्यु हो गई।

प्रोफ़ेसर हरमन जी० जेकोबी एम० ए. पी-एच० डी.।

जर्मनी में रह कर जिन विद्वानों ने प्राच्य साहित्य

का अनुशीलन किया और नाम पाया उनमें सबसे अधिक प्रसिद्धि वेबर साहब की हुई। वेबर साहब मैक्समूलर के समकालीन थे। उनका जन्म १८२५ ईसवी में हुआ था और मृत्यु १६०१ में। उन्होंने यजुर्वेद का सम्पादन किया और बर्लिन के राजकीय पुस्तकालय के हस्त-लिखित संस्कृत-ग्रन्थों की सूची तैयार की। १८५० से १८८५ ईसवी तक, ३५ सालों में, उनका Indischen Studien नामक ग्रन्थ, १७ जिल्दों में, प्रकाशित हुआ। उनके पढ़ाये हुए शिष्यों में से योरप और अमरीका के अनेक प्राच्य-विद्या-विशारद हैं। उनकी प्रसिद्धि भारतीय साहित्य के इतिहास से भी हुई है।

पाणिनि के संस्कृत-व्याकरण का एक बड़ा अच्छा संस्करण बोटलिंग साहब ने निकाला। राथ साहब के साथ मिल कर उन्होंने एक संस्कृत-कोष का भी सम्पादन किया। यह कोष अभी तक योरप में अद्वितीय गिना जाता है। गोल्डस्टूकर साहब ने पाणिनि के स्थिति-काल पर एक बड़ा महत्त्व-पूर्ण ग्रन्थ लिखा है।

भारतवर्ष के शिक्षित-समाज में अब प्रोफ़ेसर जेकोबी का भी नाम प्रसिद्ध हो गया है। जेकोबी साहब ने कई महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की है। जैन-साहित्य के आप अच्छे पण्डित गिने जाते हैं। उनका किया हुआ जैन-सूत्रों का अनुवाद प्राच्य धार्मिक ग्रन्थ-माला में प्रकाशित हुआ है।

इनके सिवा और भी अनेक योरोपीय विद्वानों को संस्कृत का अच्छा ज्ञान है। इंडिया आफ़िस लाइब्रेरी के अध्यक्ष डाक्टर रीनहोल्ड रोस्ट, कलकत्ता-विश्व-विद्यालय के प्रोफ़ेसर जाली, जो टगोर-ला-लेक्चरर नियुक्त हुए थे, जेम्स राबर्ट बालेंटाइन, जो बनारस के गवर्नमेंट कालेज के प्रधान अध्यापक थे, सर एडविन आर्नल्ड, जिन्होंने १८९६ में, चौरपञ्चाशिका का पद्यात्मक अनुवाद प्रकाशित किया था—ये सभी संस्कृत के अच्छे ज्ञाता थे।

यहाँ तक हमने सिर्फ़ कुछ योरोपीय विद्वानों का परिचय-मात्र दिया है।

बुद्ध-जन्म।

(The light of Asia से अनुवादित)

'माया' के प्रासाद-भवन में सीधा ध्वजा-समान
था पलाश का तरुवर कोई, विस्तृत और महान
चिकने पत्रों और सुवासित पुष्पों से आच्छन्न
शीर्षभाग जिसका शोभा से था अतिशय सम्पन्न!
एक दिवस मध्याह्न-काल में, बीते जब नौ मास,
आकर खड़ी हुई वह देवी नीचे उसके पास—
वहाँ सभी की भाँति जान कर समय-प्राप्ति का हाल,
वृक्ष झुका तरुओं से मण्डप रचने को तत्काल!
सहसा बहु पुष्पों की भू ने की शय्या तैयार
और स्नान करने को गिरि ने दी निर्मल जलधार!
योंही पुत्र जना 'माया' ने, हुआ न कोई क्लेश
अति शुभ चिह्न बाल के तन पर थे बत्तीस विशेष
शिशु का भार वहन करने को आ पहुँचे दि पाल
और पालकी में रख उसको पहुँचाया तत्काल
राजसदन में, उन्हें खुशी थी, खुश था यह संसार,
क्योंकि लिया था बुद्ध-देव ने आज मनुज-अवतार

× × × ×
× × × ×

शिशु-दर्शन के अभिलाषी बहु आये नृप के द्वार
किन्तु बड़ा विस्मयकारी था वृद्ध 'असित' का आना!
तप में सुख स्वर्गीय प्राप्त वह करते, तज संसार
बुद्ध-जन्म का हाल उन्होंने दिव्य ज्ञान से जाना!
पुण्य-पुञ्ज को देख सामने नृप ने किया प्रणाम,
शिशु को उनके पद-पद्मों पर रखने आई रानी
कहा 'असित' ने—"पापी हूँगा मैं, मत कर यह काम"
और भूमि को आठ बार छू बोले फिर वे ज्ञानी—
"हों प्रणाम स्वीकार—आप हैं हे शिशुवर! जगदीश
हस्त-पाद सारे अङ्गों से पूरा परिचय पाता,
मुख पर छटा निराली—तन पर चिह्न मुख्य बत्तीस
गौण चिह्न अस्सी—बस सब कुछ साफ़ नज़र है आता!

आप वृद्ध हैं, बड़े भाग्य से आये, अब यह लोक
धर्म्ममार्ग पर आकर अपना त्राण दुखों से पावे—
मैं समाधि लूँगा अब जल्दी—बस इसका ही शोक !
पर कृतकृत्य हुआ दर्शन कर, मौत खुशी से आवे !
राजन् ! अपने पुत्ररत्न को वही पुष्प लो जान
जो है मानव-वंश-वृक्ष में कई युगों पर खिलता,
किन्तु ज्ञान-परिमल जो खिल कर, जग को करता दान
और मनुज-मधुपों को जिससे शुद्ध प्रेममधु मिलता !
यह कुल-कमल देख तुम पाओ सुख—यद्यपि नरपाल !
होगा खड्गाघात तुम्हें इस सुत के कारण पाना,
और सात दिन में रानी को, तज जग का जंजाल
विदा ग्रहण कर शिशु से होगा देव-लोक को जाना !"
आर्ष वचन था सत्य ही,—बीते जब दिन सात—
रानी के सम्बन्ध की आ बीती वह बात !
'माया' सोई सेज पर—सकी न पर फिर जाग,
'त्रयस्त्रिंशस्स्वर्ग' को गई देह वह त्याग !
जिसकी जननी का वहाँ करते सुर उपचार
'महाप्रजापति' पर पड़ा यहाँ उसी का भार !
पले और वह पान कर इस देवी का दुग्ध,
जिनकी वाणी ने किया तीन लोक को मुग्ध !

पारसनाथसिंह, बी० ए०, एल-एल० बी०

जीवन और जीवनी शक्ति ।

हमारे धर्म्म-गुरु बतलाते हैं कि मनुष्य जीवनी शक्ति और शरीर के पारस्परिक सम्बन्ध से बना है । जीवन एक अनित्य और अदृश्य शक्ति है जो आवागमन के चक्र में पड़ा है । शरीर नश्वर है; वह जीवन का आवास-स्थान है । विधाता स्वयं प्रत्येक प्राणी के जीवन-मरण का ब्योरा उसके मस्तक पर लिख देता है । जितनी आयु नियत है उससे क्षण भर भी अधिक मनुष्य जीवित नहीं रह सकता । मृत्यु के समय यम के दूत शरीर से प्राण या आत्मा को निकाल ले जाते हैं और उसे कर्म्मानुसार दण्ड या पुरस्कार देते हैं । तभी वह कर्मानुसार दूसरी योनियों में जन्म लेता है—यही जीवन चक्र है । जीव के मुक्त हो जाने पर उसे फिर संसार में जन्म लेने की आवश्यकता नहीं रहती । जीवन या आत्मा के मुक्त होने के अनेक साधन हैं—दान-पुण्य, तीर्थयात्रा, योग, तपस्या इत्यादि । दान-पुण्य, तीर्थ-यात्रादि संसारी मनुष्यों के लिए हैं और ये साधन धन के द्वारा पूर्ण होते हैं । जप, तप, विरक्त मनुष्यों के लिए हैं और यह साधन बड़ा कठिन है । इन्हें संसार से नाता तोड़ देना पड़ता है—ये लोग जङ्गल और पहाड़ों में रहते हैं, कन्द मूल फल खाकर जीवन निर्वाह करते हैं और सारे सांसारिक सुखों से मुँह मोड़ लेते हैं । इन्हें इसी का भय लगा रहता है कि यदि संसार से ज़रा भी हमारी ममता बनी रही तो फिर जन्म लेना पड़ेगा—मुमुक्षुओं के लिए पारिवारिक बन्धन में रहना वर्जित है । पाप के ही भय से हरिश्चन्द्र ने अपनी धर्म्म-पत्नी को बेच कर पत्नी-व्रत का क्या ख़ूब आदर्श हमारे सामने रक्खा है । मोरध्वज ने अपने पुत्र को आरे से चिरवा कर तुरन्त मुक्ति लेली । रामचन्द्र ने गर्भवती सीता को विकट जङ्गल में छोड़ दिया । ऐसे भी मुमुक्षु हैं जो इस शरीर को मलिन ठहरा कर यम-नियमों द्वारा आत्म-शुद्धि करते हैं । मेले-ठेलों में कुछ मुमुक्षु उलटा टँगे झूलते हुए, कुछ नुकीली कीलों की शय्या पर लेटे, कुछ भस्म रमाये, जटा रखाये, नाख़ून बढ़ाये और कुछ वस्त्रहीन नङ्ग-धड़ङ्ग मिलेंगे । हमारे राजनैतिक नेता देश की दुर्दशा के सम्बन्ध में चाहे जितना सिरखपी करें परन्तु इन मुमुक्षुओं को इन बातों से क्या काम । ये तो सच्चे त्यागी ठहरे न ! यदि देश दरिद्र होता जा रहा है तो इससे अच्छा और क्या ? माया से पिण्ड ही तो छूट रहा है । यदि देश का स्वास्थ्य बिगड़ता जा रहा है और निर्बलता के कारण लाखों मनुष्य प्रति वर्ष अकाल में ही काल के गाल में पड़ रहे हैं तो अति उत्तम है । चलो, सांसारिक दुःख भोगने का समय ही कम हो गया । यही नहीं, किन्तु बड़े बड़े बुद्धिमान् लोग भी आत्मा-परमात्मा की जिज्ञासा में पड़ कर देश की विपन्नावस्था से उदासीन हैं ।

अस्तु । अमरीका से लौटने के बाद जब १९१९ ईसवी में मैं क्षयी-रोग से बहुत पीड़ित हुआ और जीवन की आशा शेष न रही तब सोचा कि मरना तो है ही,

चलो गङ्गा-तट पर मर कर लोगों की नज़रों में मुक्त ही क्यों न हो जाऊँ। अतएव यह निश्चय करके मैं गङ्गा-तट पर जा ठहरा। वहाँ कुछ और ही रङ्ग खिला। स्वच्छ जल-वायु के सेवन और जल-चिकित्सा द्वारा रोग का ह्रास और स्वास्थ्य की वृद्धि होने लगी। चार-पांच महीने में मैं बिलकुल चङ्गा हो गया। इस रुग्णावस्था में मुझे जिन बातों का अनुभव हुआ वे ये हैं—

(१) स्वास्थ्य और जीवन से बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध जान पड़ा। इधर स्वास्थ्य बढ़ा, उधर शरीर में नई जान सी पड़ गई।

(२) स्वास्थ्य का आधार अच्छा भोजन है। जब मैं कुहनी साहब के लेखानुसार स्वच्छ, सात्विक भोजन व्यवहार में लाता था तब पेट हलका और चित्त प्रसन्न रहता था। यदि देर में पचनेवाले पदार्थ सेवन करता था तो तबीयत भारी और बेचैन रहती थी। रोग उभड़ आता था और कभी कभी तो यह मालूम होता था कि मानों अब चले। इससे मैंने विचार किया कि मरना-जीना, रहन-सहन और खान-पान पर ही अवलम्बित है।

(३) स्वास्थ्य-वृद्धि और जीवन-वृद्धि एक बात मालूम हुई और रोगवृद्धि और मृत्यु में कोई अन्तर न दिखाई पड़ा। मैंने सोचा कि जिस बात से रोग बढ़ता है उसी से मृत्यु भी होती होगी। यदि जल-चिकित्सा द्वारा रोग निर्मूल किया जा सकता है तो उसी से मृत्यु भी। इस तरह हम ब्रह्मा के भी अक्षर असत्य कर सकते हैं।

ये सारी बातें मेरे मन में ख़ूब जम गई। शरीर से भी पृथक्, आवागमन के चक्र से बँधा हुआ, कोई जीव है, यह सिद्धान्त अब मुझे भ्रामक मालूम हुआ।

सन् १९१६ ईसवी में मैंने प्रयाग में अपना जल-चिकित्सालय खोला और समाचार-पत्रों में विज्ञापन छपवा कर मृत्यु रोकने का दावा उपस्थित किया। मेरे विज्ञापन पढ़ कर धर्म्मावलम्बी लोग और विशेषतः ज्ञान और विज्ञान के पुराने शत्रु ईसाई पादरी बहुत बिगड़े। मुझे लिखा कि मौत रोकने का दावा करना छोटे मुँह बड़ी बात है। पर मैंने इनकी बातों पर ज़रा भी ध्यान न दिया। क्योंकि मेरा दावा प्रकृति के अटल सिद्धान्तों पर अवलम्बित था; हवाई सिद्धान्तों पर नहीं। मैंने इन भले-मानसों को केवल इतना ही लिख दिया कि मैं विवाद नहीं करना चाहता, किन्तु मैंने जो दावा पेश किया है उसे प्रत्यक्ष कर दिखाने के लिए तैयार हूँ। जब जिसकी इच्छा हो परीक्षा करके देख ले।

एक दिन मैं अपने जल-चिकित्सालय के लिए मेज़-कुर्सियाँ आदि लेने के लिए नगर के विख्यात फ़र्नीचर मर्चेन्ट श्रीमान् भूपतलाल मट्टूमल के यहाँ गया। मुझे दूकान में सामान दिखाया ही जा रहा था कि घर में किसी छोटे बच्चे की हालत ख़राब हो जाने तथा उसकी माता के रोने-धोने की ख़बर लालाजी के पास आई। लालाजी ने मुझसे बच्चे की बीमारी का हाल कहा और उसे देख लेने की प्रार्थना की। मैंने जाकर देखा, बच्चे का पेट फूल रहा था और उसकी साँस धीमी होती जाती थी। मैंने अपनी मृत्यु रोकनेवाली क्रिया के लिए बर्फ़ादि आवश्यक चीज़ें एकत्र करने को कहा। लालाजी ने तुरन्त ही आदमियों को इधर-उधर दौड़ाया। परन्तु अभाग्य-वश जल-क्रिया के लिए आवश्यक सामान एकत्र होने के पहले ही बेचारे बालक की साँस बन्द हो गई। अपनी ज़िन्दगी में आज पहले ही बार मैंने मृत्यु होते देखी। इस बालक के मृत्यु-क्रम का चित्र मेरे ध्यान में खिँच गया। जब कभी मौक़ा मिलता, मैं यही सोचता कि यह बालक क्यों मर गया। क्या उस मृतावस्था में भी उसे पुनरुज्जीवित करने का प्रयत्न हो सकता था? बहुधा मुझे सारी रात यों ही सोचते सोचते बीत जाती। अन्त में मैंने शरीर-शास्त्र (Physiology) का अध्ययन प्रारम्भ किया और उसमें लिखी हुई बातें अपने अनुभव से जांचीं। थोड़े ही दिनों में मुझे शरीररूपी मशीन के पुरज़े, उनका काम, उनका पारस्परिक सम्बन्ध और सञ्चालन-क्रम का यथोचित ज्ञान हो गया और मैंने बच्चे की मृत्यु का सवाल सहज ही में हल कर लिया। मैंने जान लिया कि बच्चे की साँस बन्द हो जाने का मूल कारण पेट का फूलना था। पेट फूल जाने से Diaphragm ऊपर को चढ़ गया; हृदय टेढ़ा हो गया और साँस अन्दर जाने की जगह न रह गई। यदि सांस बन्द होते ही बच्चे का पेट पटक जाता तो

फिर सांस चलने लगती। पेट फूल जाने का कारण वायु का भर जाना है और वायु भर जाने का कारण आंतों में असामान्य गर्म्मी। अब मैंने वायु और गर्म्मी इन दोनों जीवन के शत्रुओं का एक ही साथ जल-क्रिया द्वारा नाश करने का निश्चय कर लिया। जिस जल-क्रिया से हम आंतों में गर्म्मी कम करके वायु का बनना रोक सकते हैं उसी से बनी हुई वायु को (जिसका अधिकांश पानी की भाफ होता है) उसके पूर्व रूप में जमा (Condense) सकते हैं।

थोड़े दिनों के बाद सेन्ट्रल हिन्दू कालेज के बोर्डिङ्ग हाउस के असिस्टन्ट सुपरिन्टेन्डेन्ट, पण्डित रामचन्द्रजी, डबल निमोनिया (Broncho Pneumonia) से पीड़ित मेरे छोटे भाई शिवदयाल को मेरे पास लाये। मेरा छोटा भाई उस कालेज में बी० ए० का विद्यार्थी था। उसे मेरे प्राकृतिक सिद्धान्तों से ज़रा भी सहानुभूति न थी और न मेरी चिकित्सा-विधि पर उसका विशेष विश्वास ही था। गङ्गा-वास करके मेरा क्षयी-रोग से छुटकारा पाना भाई शिवदयाल के नज़दीक गङ्गाजी की अलौकिक और ईश्वरीय शक्ति का प्रसाद था। शिवदयाल ने इस बार अपनी बीमारी की मुझे सूचना तक न दी थी। उसे डर था कि सूचना पाकर मैं कहीं बनारस न पहुँचूँ और अपनी जल-चिकित्सा द्वारा डबल निमोनिया को और भी डबल कर दूँ। बीमार पड़ने पर उसने आठ नौ रोज़ तक बनारस ही में डाक्टरी चिकित्सा कराई। पर जब किसी प्रकार ज़रा भी लाभ न हुआ और हालत दिन पर दिन ख़राब होने लगी तब निराश होकर मेरे पास आया। उसकी हालत उस समय बहुत ख़राब थी। १०५ डिगरी का बुख़ार, नाड़ी की गति १६९ फ़ी मिनट, ज़रा ज़रा देर बाद तेज़ खांसी जिसमें फेफड़ों के सुर्ख़ फेनदार ख़ून से मिला हुआ बलग़म आता था। पिछली चार पांच रातें योंही खांसते खांसते बीती थीं। तिल्ली बढ़ी हुई थी। ऊँचा तो कुछ पहले ही से सुनता था।

आरम्भ में मेरी चिकित्सा से कुछ विशेष लाभ न हुआ। किन्तु तीसरे दिन रोगी की दशा और भी शोचनीय हो गई। कफ से कण्ठ रुँध गया। बोल बन्द हो गया। सांस में भी ख़राबी मालूम होने लगी। मेरे सहायक तथा चिकित्सालय के अन्य कर्म्मचारी कहने लगे कि अब भूमि

२

पर लिटा दीजिए। कोई आशा नहीं दिखाई देती। पर यह दशा देख कर मैं ज़रा भी विस्मित न हुआ। मैं मौत का सिद्धान्त ख़ूब समझे हुए था। भली भांति जानता था कि जिस प्रकार लकड़ी या अन्य पदार्थ अग्नि में भस्म हो जाते हैं उसी प्रकार यह शरीर भी रोगाग्नि में भस्म हो जाता है। लकड़ी की तरह शरीर भी जल-क्रिया द्वारा बुझा कर बचा सकते हैं। अस्तु मैंने अपनी मृत्यु रोकनेवाली जल-क्रिया का प्रयोग किया। बीस ही मिनट के बाद रोगी की दशा सँभल गई। गला खुल गया और उसने हमारे दो एक प्रश्नों का उत्तर दिया। मुझे अब दृढ़ आशा हो गई कि इसे अच्छा कर लूँगा। पांचवें दिन रोग ने एक अत्यन्त भीषण पलटा खाया जिसे देख कर सबके हाथ-पैर ढीले पड़ गये। रोगी का शरीर बिलकुल ठण्डा हो गया और ठण्डा पसीना निकलने लगा। कुहनी साहब की पुस्तक से कोई सहायता न मिली। उसमें केवल गर्म पसीने ही तक की दशा का ज़िक्र था। मैंने अपने पुस्तकालय की प्रायः सारी डाक्टरी की पुस्तकें छान डालीं। पर किसी में भी रोगी की ऐसी दशा में क्या करना चाहिए, इसका विधान न मिला। इस अवस्था को डाक्टरी भाषा में Crisis of Pneumonia और हिन्दुस्तानी में शीत कहते हैं। सबके सब गर्म ओषधियों का सेवन बतलाते हैं। पर मैंने इनमें से किसी की भी सलाह न मानी। मेरे यहां तो गर्म चीज़ों का बड़ा निषेध था। सारे रोगों की उत्पत्ति आंतों में असामान्य गर्म्मी ही से बतलाई गई है। अस्तु। मैंने सोचा कि जब कोयला दहकाते हैं तब कुछ देर बाद उसके ऊपर का हिस्सा जल कर भस्म हो जाता है। यह भस्म हाथ से छूने पर ठण्डी मालूम होती है। ठीक यही दशा इस समय इस रोगी के शरीर की हो रही है। असामान्य रोगाग्नि से जल कर खाल के नीचे का ख़ून शक्ति-हीन पानी सा हो गया है, जिसे शरीर की जीवनधारिणी शक्तियां छिद्रों द्वारा पसीने के रूप में बाहर बहाये देती हैं। इससे मैंने इस शीतावस्था का इलाज शीतल जल ही द्वारा निश्चय रक्खा। इस शीत की दशा में रोगी बोलता बतलाता बहुत कम था। हां, जल-क्रिया के समय अलबत्ते दो-चार बातें कर सकता था। एक जल-क्रिया के बाद दूसरी जल-क्रिया की आवश्यकता तभी है जब पुकारने पर रोगी

हाँ तक नहीं करता और बेहोश सा मालूम होता है। उसकी इस दशा में रोग के अन्य चिह्न भी ग़ायब थे। खांसी केवल नाम-मात्र को आती थी और कफ़ के साथ खून इत्यादि न आता था। इस शीतावस्था में नगर के दो चार सज्जनों ने रोगी को देखा, पर किसी को उसके बचने की आशा न हुई। लोगों ने मेरी चिकित्सा-विधि पर बड़ा आश्चर्य्य किया। चिकित्सा के नवें दिन सबेरे थोड़ी देर के लिए (केवल दस-बारह मिनट के लिए) रोगी का केवल मस्तक गरम मालूम हुआ, किन्तु फिर ठण्डा हो गया। दसवें दिन सबेरे शरीर के ऊपरी भाग में लगभग तीन घण्टे तक गर्मी रही और फिर ग़ायब हो गई। शाम के वक्त मस्तक फिर कुछ कुछ गरम हो गया। ग्यारहवें दिन पूरे शरीर में गर्मी आई और क़ायम रही। तेरहवें दिन रोगी के पेट से कुछ काले रङ्ग का मल निकला और कुछ कुछ भूख भी मालूम हुई। हमने दस दाने अङ्गूर खाने को दिये। पाठकों को सुन कर आश्चर्य्य होगा कि अभी तक रोगी ने जल के सिवा कुछ भी नहीं खाया था। अङ्गूर देने से कुछ खांसी फिर आने लगी। चौदहवें, पन्द्रहवें और सोलहवें दिन रोगी ने फिर जल पीकर काटे। सत्रहवें दिन फिर अङ्गूर दिये गये और हज़म हो गये। इस बार खांसी ज़रा भी न आई। अठारहवें दिन कुछ कच्चा अन्न पथ्य में बढ़ाया गया। उन्नीसवें दिन केले आदि फल खाने को दिये गये और रोगी को इधर-उधर धीरे धीरे टहलने की भी आज्ञा मिल गई।

इस वृत्तान्त से हमने यह निश्चय किया कि हमारे शरीर का सङ्गठन रासायनिक है—कोई पेचीदा या हेर फेर की बात नहीं है। रोगवर्धक पदार्थ, अर्थात् शरीर में विजातीय द्रव्य, एक नियत गर्मी ही के बीच में (within a fixed range of temperature) बढ़ सकते हैं। यदि यह गर्मी इस प्रकार कम कर दें कि रोगवर्धक पदार्थ अशक्त हो जायँ और जीवनधारिणी शक्तियां अपना काम ठीक ठीक करती रहें तो कठिन से कठिन रोग इस प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा निर्मूल किये जा सकते हैं।

हमारा शरीर मृत्युकारक और स्वास्थ्यवर्धक द्रव्यों का रणक्षेत्र है। जिन नियमों के अनुसार दो शत्रुओं में किसी एक की हार जीत होती है वही नियम हमारी ज़िन्दगी और मृत्यु का सवाल तय करते हैं। यदि हमारा शत्रु हमारी सेनाओं पर विजय पाता हुआ हमारे उस दुर्गम दुर्ग में घुस जाय जिसमें हमने अपनी सारी शक्ति सञ्चित कर रक्खी है तो हमारे अस्तित्व का केवल यही सहारा हो सकता है कि हम घुसे हुए शत्रु को किसी विषैली गैस (Poisonous Gas) द्वारा बेहोश कर दें, और नये शत्रु (Re-inforcements) को आने से रोक दें। कुहनी साहब का सिद्धान्त है कि कोई रोग बिना बुख़ार के नहीं होता और बुख़ार बिना किसी रोग के नहीं होता (There is no disease without fever and no fever without disease) और बुख़ार शरीर में विजातीय द्रव्य की सड़न को कहते हैं। शरीर को रुग्ण या मृत कर देना असामान्य रोगाग्नि का काम है। हमारे शरीर का मुख्य दुर्ग रक्त-सञ्चार (Blood Circulation) का केन्द्र अर्थात् हृदय है। हृदय ही नाड़ियों द्वारा जीवन-दायी रक्त को शरीर के प्रत्येक भाग में पहुँचाता है और नसों (शिराओं) द्वारा मल-मिश्रित रक्त शुद्ध होने के लिए शरीर के प्रत्येक भाग से खींचता रहता है। हृदय की सामान्य गति में विघ्न डालनेवाली प्रायः सभी बातें रोगोत्पादक हैं। अप्राकृतिक और अपाच्य भोजन, शोक, डर, इत्यादि सब हृदय की गति को बिगाड़नेवाली बातें हैं*। हृदय की गति में विघ्न पड़ने से फिर शरीर के भिन्न भिन्न भागों को जीवनदायी पोषक पदार्थ आवश्यकतानुसार नहीं पहुँचते और न वहाँ से शिराओं द्वारा मल ठीक तौर पर खिँचता रहता है। इस प्रकार शरीर के सभी भाग डबल सङ्कट में पड़ जाते हैं। न तो उन्हें इच्छा भर खाने को मिलता और न उनके घर से गन्दगी हटती है। प्रायः सभी शरीर रोगी हो जाता है। सबसे कमज़ोर भाग सबसे अधिक कष्ट पाते हैं। उनमें कोई न कोई रोग उठ ही खड़ा होता है। मल के केन्द्र-स्थान पेडू और पेट हैं।

* हमारे देश में मृत्यु का दल हैज़ा, ताऊन, चेचक, इन्फ्ल्यूएञ्ज़ा (Influenza) जूड़ी-बुख़ार, क्षयी इत्यादि नाना प्रकार के वेशों में हरदम मौजूद रहने का कारण पोषक पदार्थों की कमी के अतिरिक्त एक यह भी है कि हमारे देशवासी सदा किसी न किसी के डर या शोक में रहते हैं।

रोगोत्पादक सभी कारणों का प्रभाव पाचन-क्रिया पर पड़ता है। धीरे धीरे आमाशय (Stomach) आंत (Intestines) यकृत (Liver) इत्यादि मल से जकड़ जाते हैं और जीवनधारिणी शक्तियों का पोषण बन्द हो जाता है। यह मल सड़ कर जठराग्नि के स्थान में रोगाग्नि उत्पन्न करता है। पोषण-संस्थान (Digestive System) को आग की भट्टी बना देता है और शरीर को धीरे धीरे सुखाने या भस्म करने लगता है। पेड़ू, पेट इत्यादि में असामान्य गर्मी के कारण शरीर के अन्य भागों में एकत्र मल भी प्रज्वलित होकर शरीर-सङ्गठन को नष्ट करने का कारण बनता है। वास्तव में पेड़ू इत्यादि स्थान मृत्युदल के रहने का क़िला या राजधानी हैं जहाँ से असंख्य मृत्युदल या तो स्वयं सारे शरीर में बढ़ कर या भिन्न भिन्न भागों में सोते हुए मृत्युदल को जागृत और उत्तेजित करके सूक्ष्म जीवधारी रक्ताणुओं के परस्पर सम्बन्ध या सङ्गठन को छिन्न भिन्न कर देता है। सभी जीव-धारियों का शरीर छोटे छोटे रक्ताणुओं से बना है। रक्ताणु जीवनमूल के अत्यन्त ही सूक्ष्म सूत्रों (fine Fibres of protoplasm) से परस्पर बँधे हुए हैं। इन्हीं सूत्रों को मैंने जीवन-शक्ति (Vitality) माना है। मृत्युदल जब रक्ताणुओं के इस परस्पर सम्बन्ध को कमज़ोर कर देते हैं तभी हमें कमज़ोरी मालूम होती है। जब अंशतः नष्ट कर देते हैं तब हम बीमार पड़ जाते हैं और जब उन्हें अधिकांश या बिलकुल नष्ट कर देते हैं तब उसे मृतावस्था समझना चाहिए। मृतावस्था के बाद शरीर में (Autolysis) या स्वतः सड़न आरम्भ हो जाती है।

रोग या मृत्युकारक पदार्थों को एकदम निःशक्त करने के लिए शीतल जल के अतिरिक्त और कोई दवा नहीं है। इन पदार्थों की उत्पत्ति बुख़ार से सिद्ध हुई है। शीतल जल-क्रिया द्वारा शरीर की गर्मी घटाने से शरीर में परिभ्रमण करनेवाले सभी विजातीय द्रव्य सिकुड़ कर निःशक्त हो जाते हैं और जीवन-धारिणी शक्तियाँ उन्हें मलोत्सर्जक इन्द्रियों द्वारा शरीर से बाहर भगाने लगती हैं।

हमारे शरीर का सङ्गठन रासायनिक है। लकड़ी का जलना, लोहे में मोरचा लग जाना और जीवधारियों की मृत्यु हो जाना—सब एक सी बातें हैं। मलोत्सर्जक इन्द्रियों के कार्य में विघ्न पड़ने के कारण मल शरीर ही में इकट्ठा होता रहता है, सड़ता है और जीवन-धारिणी शक्तियों में ज़हर फैला कर मृत्यु पैदा कर देता है। वास्तविक मृत्यु उसी समय होती है जब ज़हरीला मल हृदय-तन्तुओं पर आघात करता है। शरीर में रक्त-सञ्चार का केन्द्र हृदय है। रक्त-सञ्चार बन्द हो जाने से फिर पौष्टिक पदार्थों द्वारा जीवन-धारिणी शक्तियों का पोषण नहीं होता और मृत्यु हो जाती है। मैंने शरीर में इस ज़हरीले मल को बढ़ाने और फैलानेवाले प्राकृतिक नियमों का पता लगा लिया है। मैंने अपने सिद्धान्तों का सफलतापूर्वक व्यवहार केवल रोग नष्ट करने और प्रत्यक्ष मृत्यु को रोकने ही में नहीं, बल्कि मृत्यु के बाद तुरन्त मृत-शरीर को पुनरुज्जीवित करने तक में किया है। इस प्रकार की अनेक मृत-सञ्जीविनी क्रियाओं के पश्चात् मुझे दृढ़ विश्वास हो गया है कि जीवात्मा और रक्त-सञ्चार में कोई भेद नहीं। मुझे यह भी मालूम हुआ है कि शरीर को जीवित रखने के अतिरिक्त जीवात्मा के मानसिक, धार्मिक और भावोत्पादक कार्य्य भी रक्त-सञ्चार ही पर अवलम्बित हैं। मस्तिष्क में रक्तसञ्चार घटा कर मैंने स्वप्न देखना बन्द कर दिया है और रक्त-सञ्चार बढ़ा कर स्वप्न दिखा दिये हैं। मस्तिष्क में सामान्य (Normal) रक्त-सञ्चार न होने ही से बेहोशी आती है। हृदय-गति के क्रम में विघ्न पड़ने से मनुष्य को विस्मृति होती है। मिरगी का दौरा रक्त-सञ्चार के केन्द्र अर्थात् हृदय को उत्तेजित करने से दूर हो जाता है। मस्तिष्क एक अत्यन्त ज्ञान-ग्राहक यन्त्र है। विचारों और ज्ञान-सम्बन्धी भावोत्पादक लहरों को वह प्रकृति से ग्रहण करता है। जैसे बेतार के तार का यन्त्र तारसम्बन्धी बिजली की अदृश्य लहरों को पकड़ लेता है वैसे ही मस्तिष्क भी करता है। सम्भव है, भविष्य में इन ज्ञान-लहरों की प्रकृति तथा आकार का पता लग जाय और हम मानसिक गुण-पूर्ण यन्त्र बना कर ज्ञान-लहरों को पकड़ लें और फ़ोनोग्राफ जैसी चूड़ियों पर अङ्कित करके प्रकृति से भूत, भविष्य, वर्तमानादि का ज्ञान प्राप्त करने लगें। ये सब आश्चर्यजनक कौतुक रक्त-सङ्गठन और रक्त-सञ्चार-सम्बन्धी नियमों द्वारा ही होंगे। उस समय

मानस-शास्त्र (Psychology) को हम मस्तिष्क-स्थित रक्त-सञ्चार-शास्त्र समझेंगे। स्वस्थ, साहसी और स्वाभिमानी केवल वही लोग होते हैं जिनके शरीर में शुद्ध रक्त एक क्रम और एक गति से बहा करता है। ऐसे ही लोग मनसा, वाचा, कर्मणा एक से होते हैं। स्वास्थ्य और सदाचार एक ही बात है। जिन प्राणियों के चेहरे में रक्त-सञ्चार एकसा होता है उन्हीं में प्रेम और जिनमें नहीं होता उन्हीं में द्वेष वास करता है। मुझे अपने एक मित्र से सूचना मिली है कि कलकत्ते में पिछली जातीय कांग्रेस के समय श्रीयुत सर जगदीशचन्द्र वसु ने अपने सूक्ष्म यन्त्रों द्वारा दर्शक को यह बतला दिया कि अनेक फूलों में से जो उसे दिखाये गये उसे सबसे प्यारा कौन सा फूल मालूम हुआ।

रघुवरदयाल गुप्त

(आदित्य-भवन, लखनऊ)

वङ्ग-भाषा का उच्चारण।

यदि वङ्ग भाषा की तुलना जगत् की उन्नतिशील भाषाओं से की जाय तो किसी से बुरी नहीं ठहरती। वङ्किम-रवीन्द्र-गिरीश-द्विजेन्द्र जैसे नर-रत्नों से जिसकी शोभा बढ़ी है वह वङ्ग-भाषा दूसरी प्रभायुक्त भाषाओं के सामने कदापि निष्प्रभ नहीं कही जा सकती है। इसलिए उन्नतिशील भाषाओं में बँगला की भी गणना है। संसार में निर्दोष कोई नहीं। सर्व्वाङ्ग-सुन्दरी वङ्ग-भाषा भी दोषयुक्त है। यह दोष उसके उच्चारण में है। इसका छूटना सर्वथा असम्भव है। यदि कोई ज़बरदस्ती व्याकरण की युक्तियों की शरण लेकर उसे छुड़ाना चाहे—वङ्ग-भाषा को कलङ्क-निर्मुक्त करना चाहे—तो उसका प्रयास विफल होगा। इसके विषय में बड़े बड़े बङ्गाली विद्वानों का यह कथन है कि इस दोष से वङ्ग-भाषा का सौन्दर्य वैसा ही बढ़ता है जैसा कालिमा-कलङ्क से चन्द्र का। हम इसका समर्थन तो नहीं कर सकते। पर इतना अवश्य, कहेंगे कि जैसे चन्द्र का कलङ्क नहीं छूट सकता वैसे ही वङ्ग-भाषा का यह धब्बा। इस धब्बे के कारण वङ्ग-भाषा के उच्चारण में यह कठिनाई है कि यदि जीभ लड़कपन में न फेरी गई तो वह इसके उच्चारण-मार्ग पर कभी शुद्ध चाल चल ही नहीं सकती। इसका उदाहरण दूसरे प्रान्तों के हमारे भाई हैं। जब वे बँगला, विशेष करके उसका पद्य, पढ़ते हैं तब उन्हें बँगला-शब्दों का उच्चारण बहुत अखरता है। यह सभी को मालूम है कि बङ्गालियों की तरह वङ्ग-भाषा का उच्चारण केवल वही कर सकता है जिसका बाल्य-काल का जीवन वङ्ग-भूमि ही में व्यतीत हुआ हो।

वङ्ग-भाषा के उच्चारण में वह धब्बा क्या और कैसा है, यह बताने के लिए हम यहाँ कुछ प्रमाण देते हैं। इस स्थान में यह लिख देना अनुचित न होगा कि उच्चारण का विचार यदि पद्यों के द्वारा किया जाय तो वह सहज ही समझ में आ जायगा। क्योंकि शब्दों की यथार्थ स्थिति का निश्चय पद्य से ही अधिक होता है।

पद्य रचते समय बङ्गाली लेखक की दृष्टि मात्राओं के मेल पर नहीं, अक्षरों के मेल पर रहती है। महाकवि रवीन्द्रनाथ टगोर लिखते हैं—

वनेर पाखी गाहे बाहिरे बसि बसि
वनेर गान छिल यत
खाँचार पाखी पड़े शिखानो बुलितार
दोहाँर भाषा दुई मत॥*

इस पद्य में पहली पङ्क्ति के साथ तीसरी पङ्क्ति का और दूसरी पङ्क्ति के साथ चौथी पङ्क्ति का मेल है। पहली और तीसरी पङ्क्ति में चौदह चौदह अक्षर और दूसरी और चौथी में नव नव अक्षर हैं।

* पाठकों से निवेदन है कि वे इसे कविवर पर दोषारोप न समझें; यहां केवल उच्चारण पर विचार किया गया है। लेखक।

यह अक्षरों का मेल हुआ; मात्राओं का नहीं। मात्रा किसे कहते हैं, यह बात हम लोगों में से बहुतों को मालूम है। तो भी हम यहाँ इसका विवेचन दो चार शब्दों में किये देते हैं। यथा—

वर्णों का उच्चारण स्वर के योग से ही होता है। स्वर-वर्णमाला के दो भाग हैं—ह्रस्व और दीर्घ। अ, इ, उ, और ऋ ये चार ह्रस्व या लघु स्वर हैं और आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः ये नव दीर्घ या गुरु स्वर हैं। एक दीर्घ स्वर दो लघु स्वरों के बराबर है अर्थात् ह्रस्व में एक मात्रा और दीर्घ में दो मात्रायें होती हैं। मात्रा अक्षरों की शब्द-स्थिति का निर्णय करती है।

हमें पूर्वोद्धृत पद्य की मात्राओं को अलग अलग जोड़ कर यह देखना है कि समान पदों में मात्राओं का मेल है या नहीं। यदि समान पदों की मात्रा-समष्टि एक दूसरी के साथ न मिली तो यह सिद्ध होगा कि उच्चारण दोषयुक्त है—

१२१ २ २ २२२ १२ ११ ११=२१ मात्रायें
वनेर पाखी गाहेवा हिरे बसि बसि=१४ अक्षर
१२१ २१ ११ ११=११ मात्रायें
वनेर गान छिल यत= ९ अक्षर
२२१ २ २ १२ १२२ ११२१=२२ मात्रायें
खाँचार पाखी बड़े शिखानो बुलितार=१४ अक्षर
२२१ २ २ ११११=१३ मात्रायें
दोहाँर भाषा दुड़मत= ९ अक्षर

पहली में २१ तो तीसरी में २२ और दूसरी में ११ तो चौथी में १३ मात्रायें हैं। समान-पदों की मात्राओं में मेल नहीं पाया जाता। उनकी इस शाब्दिक स्थिति से यह सिद्ध होता है कि रचना लघुदीर्घ अक्षरों के उच्चारण की पहचान से नहीं की गई।

दीर्घत्व की हानि।

किसी पद्य में यदि मात्राओं का मेल न रहे तो वह पद्य पद्य ही नहीं गिना जा सकता। महाकवि के निर्दिष्ट पद्य में, व्याकरण के नियमों के अनुसार मात्रायें न मिलने पर भी, एक प्रकार का मिलन अवश्य हो रहा है। केवल आक्षरिक मिलन कहना युक्तिपूर्ण नहीं है। क्योंकि अक्षरों का उच्चारण करते हुए हमें समान-पदों के साथ समान-पदों का शाब्दिक मिलन भी दिखाना चाहिए, क्योंकि इसके वैषम्य से तुकबन्दियों की लड़ियाँ टूट जाती हैं—पाठक ठोकर सी खा जाते हैं।

१११ १ १ १ १ १११ ११ ११=१४ मात्रायें
वनेर पाखी गाछे बाहिरे बसि बसि=१४ अक्षर
१११ ११ ११ ११=९ मात्रायें
वनेर गान छिल यत=९ अक्षर
१ १ १ १ १ ११ १११ ११११=१४ मात्रायें
खाँचार पाखी पड़े शिखानो बुलितार=१४ अक्षर
१११ ११ ११११= ९ मात्रायें
दोहाँर भाषा दुड़मत= ९ अक्षर

बङ्गाली लेखक पद्य में अक्षरों की समष्टि ही को उच्चारण की मात्रा-समष्टि मानते हैं। इस अवतरण में जितने अक्षर हैं सब पर एक ही एक मात्रा लगा कर समान-पदों के साथ समान-पदों का शाब्दिक मेल दिखाया गया है। इस प्रकार के उच्चारण में विचित्रता भरी पड़ी है। इसी से दूसरे प्रान्त के लोगों को बँगला के उच्चारण में कठिनाई पड़ती है। देखिए, यहाँ दीर्घवर्णों का दीर्घ उच्चारण सम्भव नहीं, क्योंकि दीर्घवर्ण, एक ही एक मात्रा के अधिकारी बन जाने के कारण, दीर्घत्व के आसन से नीचे उतार दिये गये हैं।

ह्रस्वमय बँगला-भाषा।

"वनेर पाखी गाछे बाहिरे बसि बसि"—की जगह यदि "सकल खग कुल कहत बसि बसि" कहा जाय तो छन्दो-भङ्ग की कोई आशङ्का नहीं। यहाँ भाव का विचार नहीं किया गया है। परन्तु आश्चर्य्य की बात है कि पूर्व्वपद के चौदह अक्षरों में सात अक्षरों के दीर्घ होते हुए भी, चौदहों लघु वर्णों का कल्पित पद उसके साथ शाब्दिक स्थिति की बरा-

बरी कर रहा है। यदि उन सातों अक्षरों के उच्चारण दीर्घ होते तो अवश्य दोनों पदों की शाब्दिक स्थिति में अन्तर पड़ता। बँगला के नियमानुसार दोनों पदों में मेल है। इससे यह साफ़ प्रकट होता है कि पूर्व्वपद के सातों दीर्घ वर्णों के उच्चारण ह्रस्व किये जा रहे हैं। नहीं तो कल्पित पद किसी तरह उसकी बराबरी न करता। यहाँ हम लोगों को भली भाँति मालूम हो जाता है कि वङ्ग-भाषा का उच्चारण ह्रस्वमय है। उससे ह्रस्वों और दीर्घों की शब्दस्थिति में कोई प्रभेद नहीं।

भाषा पर ह्रस्वमयता का प्रभाव।

बँगला-पद्य-समूह के ह्रस्वमय होने के कारण भाषा पर जो प्रभाव पड़ा है वह बड़ा ही कोमल और मधुर है। भाषा की कोमलता ने बङ्गालियों के वेश-भूषा, आहार-विहार, रहन-सहन, हाव-भाव, समाज और जीवन—सभी में कोमलता भर कर वङ्ग-देश को मानों कोमलता की राजधानी बना दिया है। परन्तु—

कोमलता स्त्री का और गाम्भीर्य्य पुरुष का धर्म्म है। एक से दूसरा बिलकुल विपरीत है। वङ्ग-भाषा में यदि कोमलता अधिक है तो उसमें गाम्भीर्य्य की कमी है। इधर उच्चारण की ओर देखिए। पर्य्याप्त पौरुष प्रकट करने के लिए जिन शब्दों की ज़रूरत है उन्हें गम्भीर करना पड़ता है। यदि आवाज़ गुरु-उच्चारणों से ठस, भारी या ऊँची न हो तो भाषा से गम्भीर भाव व्यक्त नहीं होता। बँगला में इस भारीपन का अधिक अभाव है। इसी लिए गम्भीर भावों को व्यक्त करते समय बङ्गाली लोगों के मुख से 'सरे जाव' की जगह 'हट जाव', 'चुप कर' की जगह 'चोपराव' इत्यादि हिन्दी-शब्द स्वभावतः निकल पड़ते हैं। ये शब्द इस बात का परिचय देते हैं कि वङ्ग-भाषा में गाम्भीर्य नहीं।

कुछ अक्षरों के विलक्षण उच्चारण।

बँगला में "अ का उच्चारण न 'अ' है और न 'ओ', बस दोनों के बीचों बीच है। ऐ को बङ्गाली लोग 'ओइ' और औ को 'ओउ' कहते हैं। जैसे—ऐतिहासिक-'ओ इतिहासिक; औषध-'ओउशध'। श, ष, स का श; ण, न का न; व, व का ब उच्चारण होता है। जैसे-विशेष-'बिशेश'; सर्प,-'शर्प'; वेणी-'बेनी'; वेद-'बेद'; अभाव-'अभाव' इत्यादि। व लिखने की यदि ज़रूरत पड़ी तो वे लोग 'ओय' लिख कर काम निकालते हैं; जैसे तेवारी-'तेओयारी'; मेवा-'मेओया'। यदि 'य' आदि का वर्ण हुआ तो 'ज' नहीं तो 'य' ही पढ़ते हैं, जैसे-योग-'जोग'; नियम-नियम। क्+ष्+अ=क्ष को क्ख कहते हैं, जैसे-पक्ष-'पक्ख'; क्+ष्+म्+अ=क्ष्म को क्खँ, जैसे लक्ष्मी-'लक्ख्रीं'; क्+म्+अ=क्म को क्कँ, जैसे रुक्मिणी—'रुक्किँनी; क्+व्+अ=क्व को क्क, जैसे—पक्व-'पक्क'; क्+य्+अ=क्य को क्क, जैसे-ऐक्य-'ओइक्क'। परन्तु यदि कहीं 'य' युक्ताक्षर हुआ तो उसका उच्चारण 'य' ही किया जाता है, जैसे ध्+य्+अ=ध्य का 'ध्य', ध्यान का 'ध्यान'। परन्तु अध्ययन को वे 'अध्धयन' कहेंगे।

स्थानाभाव के कारण पद्यों और शब्दों के एकाधिक उदाहरण नहीं दिये जा सके।

सूर्य्यकान्त त्रिपाठी

श्रीरामचन्द्रजी के प्रति।

किया था पत्नी का क्यों त्याग ?

भगवन् ! भूप रसिकवर थे तुम, यह कैसा वैराग ?
अपनी प्यारी चीज़ त्याग कर किया प्रजा का मान !
उसी प्रजा का ! जिसने तुम पर मढ़ा कलङ्क महान !
किसे नहीं था विदित सती की प्रीति शुद्ध ज्यों आग ?
कलुषित समझ उसी को त्यागा, यही आत्म-अनुराग !

तुम थे भूप, प्रजा थी तुम पर आश्रित सभी प्रकार।
फिर, किस लिए कहो तो तुमने किया प्रजा-सत्कार ?
सती तुम्हारी सीता थी, थी वह सतीत्व-उच्छ्वास।
अग्नि-परीक्षा से क्या तुमको हुआ नहीं विश्वास ?
प्रभो, चाहते रहे वृथा ही सीता का सहवास!
भूप कहाते थे, पर होकर रहे प्रजा के दास!

मनोहरप्रसाद मिश्र

आदतें।

अन्तःप्रवृत्तियों का बड़ा महत्त्व है। परन्तु आदतों का विज्ञान उससे कुछ कम महत्त्व का नहीं। सच पूछो तो यह उससे भी अधिक महत्त्व-पूर्ण है। एक तत्त्ववेत्ता ने कहा है कि मनुष्य आदतों का समूह ही है। हमारे जीवन के अधिकांश कार्य्य आदतों से सम्पन्न होते हैं। हम लोगों का रहन-सहन, आचार-विचार, खान-पान इत्यादि सभी आदतों पर अवलम्बित हैं। मनुष्य के जीवन का ऐसा कोई भाग नहीं जिस पर आदतों का प्रभाव न पड़ता हो। उसके शरीर के कार्यों में, मस्तिष्क के विचारों में और हृदय की भावनाओं में, सभी में आदतों का प्रभाव प्रत्यक्ष मालूम हो जाता है।

जिन आदतों का इतना महत्त्व है उनकी ओर शिक्षकों और संस्थाओं को विशेष ध्यान देना चाहिए। वास्तव में शिक्षा है ही क्या ? इस जगत् में जिन आदतों से हमारे काम विधिपूर्वक होते हैं उन्हें प्राप्त करने को ही शिक्षा कहते हैं।

अन्तःप्रवृत्ति के कारण हम किसी विशिष्ट परिस्थिति में विशिष्ट कार्य करते हैं। हमने किसी का कोई काम देख लिया तो उसका अनुकरण करने की हमारी प्रवृत्ति हो जाती है। कष्टप्रद कार्य्य से भय होता है। आदतों से भी विशिष्ट परिस्थिति में हम विशिष्ट कार्य्य करते हैं। फिर अन्तःप्रवृत्तियों और आदतों में भेद क्या है ? अन्तःप्रवृत्ति स्वभाव से ही पैदा होती हैं; उनका उद्गम प्राकृतिक है। यह सम्भव है कि भिन्न भिन्न अन्तःप्रवृत्तियाँ भिन्न भिन्न समय पर उत्पन्न हों। परन्तु वे सब प्राकृतिक ही हैं। परन्तु आदतें प्राकृतिक नहीं। वे अभ्यास से पैदा होती हैं; उनके लिए प्रयत्न करना पड़ता है। बहुत सी अन्तःप्रवृत्तियाँ चिरस्थायी नहीं होतीं। अगर कुछ काल तक उन अन्तःप्रवृत्तियों का रूपान्तर आदतों में न हुआ तो वे शायद विलीन हो जायँ। उनका मूल स्वरूप कुछ काल के बाद नहीं रह जाता। इसलिए उन्हें आदतों में परिणत करना ही चाहिए, नहीं तो वे लुप्त हो जाती हैं।

अन्तःप्रवृत्ति के कार्यों में बहुधा ज्ञान का अभाव रहता है। वे जान-बूझ कर नहीं किये जाते। पर कुछ आदत डालने के लिए पहले पहल जान-बूझ कर कार्य्य करना होता है। ऐसी आदतें ज्ञान-मूलक होती हैं। आदतें दो प्रकार की होती हैं। एक तो वे जो अन्तःप्रवृत्तियों के विकसित स्वरूप हैं। उन्हें अन्तःप्रवृत्ति-मूलक आदतें कहेंगे। दूसरी वे जो जान-बूझ कर, कृत्रिम रीति से, बनाई जाती हैं। ये ज्ञानमूलक आदतें हैं।

एक और दृष्टि से भी आदतों के विषय में विचार किया जा सकता है। सारे शरीर में सूक्ष्म मज्जातन्तुओं का जाल फैला हुआ है। वे दो प्रकार के हैं। एक के द्वारा किसी बाह्य वस्तु अथवा अन्तर्गत प्रेरणा की संवेदना मस्तिष्क में जाती है। दूसरों के द्वारा मस्तिष्क अथवा पीठ की मज्जारज्जु का निदेश शरीर के भिन्न भिन्न भागों तक पहुँचता है और इच्छित कार्य्य घटित होता है। जब हम दो चार बार किसी रास्ते से आते जाते हैं तब उस रास्ते से आने में कम कठिनाई होती है। दस पाँच बार आने पर तो सारी कठिनाई दूर हो जाती है और हम बिना किसी प्रयास के अन्धे की तरह चुपचाप चले आते हैं। पहले पहल किसी नये मार्ग से गाड़ियों के आने जाने में कुछ रुकावट होती है। पर कुछ काल के बाद रास्ता बन जाता है और पृथ्वी का घर्षण कम हो जाता है। इसी प्रकार पहले पहल कोई कार्य्य करने में अधिक ध्यान देना होता है। किसी प्रेरणा की संवेदना मस्तिष्क पर होने के बाद वहाँ से आज्ञा मिलने और आवश्यक कार्य्य होने में कुछ काल लगता है। परन्तु वही कार्य्य यदि कई बार किया गया और उसका अभ्यास हो गया तो उसको करने में कम समय और कम ध्यान देना पड़ता है। विशिष्ट परिस्थिति

पैदा होते ही विशिष्ट कार्य्य हो जाता है। हम जूता हाथ में लेकर चुपचाप पैर में डाल लेते हैं। कोट पर हाथ रखते ही बटन खोलने का कार्य्य होने लगता है। सोचने की, ध्यान देकर कार्य्य करने की, आवश्यकता नहीं रह जाती। साथ ही हम कई दूसरे कार्य्य भी करते जाते हैं। परन्तु क्या प्रारम्भ में ये कार्य्य इसी प्रकार हो सकते थे? नहीं, उनके लिए हमें विशेष ध्यान देना और अभ्यास करना पड़ता है। इन कार्य्यों का 'मार्ग' शरीर में बन गया—इनके लिए मज्जातन्तुओं का रास्ता शरीर में तैयार हो गया। इस प्रकार शरीर के साथ आदतों का बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है। आदतों का बनना और शरीर में मज्जातन्तुओं के द्वारा संवेदना के आने जाने के रास्ते तैयार करने ही पड़ते हैं।

अन्तःप्रवृत्तियों में संवेदना के आने के और मस्तिष्क से आज्ञाओं के जाने के मार्ग स्वाभाविक बने रहते हैं। परन्तु ज्ञान-मूलक आदतों के लिए ये मार्ग हमें अभ्यास से बनाने पड़ते हैं। अन्तःप्रवृत्ति-मूलक आदतें शीघ्र बन सकती हैं। शरीर की तो पहले ही प्रवृत्ति रहती है। उस मार्ग को सिर्फ़ पका करना होता है। उस प्रवृत्ति के कारण यह काम सरलता से हो जाता है।

परन्तु जिन कार्य्यों को करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति नहीं है उन्हें करने की आदतें डालने के लिए हमें प्रयत्न करना पड़ता है। यह सरल नहीं है। इसके लिए हमें कुछ कष्ट सहना होता है। तथापि यह हमें स्मरण रखना चाहिए कि बाल्यकाल में शरीर कोमल रहता है, मस्तिष्क पूरा नहीं बन पाता। उस समय अन्तःप्रवृत्ति-मूलक कार्य्य भी, यदि उनकी पुष्टि नहीं हुई है, स्थायी नहीं होते। शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक आदतें डालना हमारे हाथ में है। बालक को किन किन वस्तुओं का अनुभव हो, इसका निश्चय करना हमारे हाथ में है। बालक के मन और शरीर पर थोड़ा बहुत हम इच्छानुकूल प्रभाव डाल सकते हैं। मन और शरीर कुछ अंशों में अवश्य इच्छाविधेय हैं। इससे शिक्षक और संरक्षक अपने उत्तरदायित्व का अनुमान कर सकते हैं। यह सच है कि सभी परिस्थितियों को निश्चित करना उनके हाथ में नहीं है और इसी लिए बालक से कौन आदतें डलाई जायँ और कौन न डलाई जायँ, यह वे भलीभांति ठीक नहीं कर सकते। तो भी जो थोड़े बहुत कार्य्य उनके अधीन है वही बड़े महत्त्व का है। वही वास्तव में 'शिक्षा' है और उसी के लिए शिक्षक ज़िम्मेदार हैं। जिन आदतों से व्यक्ति और समाज को लाभ पहुँचे उनको डालना और जिन प्रवृत्तियों से अथवा जिन आदतों के बन जाने से व्यक्ति और समाज को हानि होने की सम्भावना हो उनको न डालने देना ही शिक्षक और संरक्षक का कर्तव्य है। आदतें केवल शारीरिक ही नहीं होतीं, वे बौद्धिक और भावनात्मक भी होती हैं। और इनकी भी ज़िम्मेदारी शिक्षक और संरक्षक के सिर पर है।

शिक्षातत्त्वज्ञों ने आदतें डालने के विषय में कुछ नियम बतलाये हैं। पहले नियम का दिग्दर्शन ऊपर हो चुका है। जब आदतें नहीं पड़ी हैं, जब शरीर और मन कोमल है, तभी यह निश्चय कर लेना चाहिए कि कौन सी आदतें डाली जायँ। देर करने से बहुत हानि होती है। एक बार आदतें पड़ जाने से फिर उनको तोड़ना कठिन हो जाता है। जब उम्र ढल गई, शरीर और मन परिपक्व हो गये, तब यह काम प्रायः असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हो जाता है। इसमें अधिक शीघ्रता भी नहीं करनी चाहिए। आदतें समयोचित बननी चाहिए। जिन बातों की सम्भावना बाल्यकाल में नहीं उनका उस समय बनना अशक्य है और वैसी आशा करना मूर्खता है। बालक सभी बातों को सोच-विचार कर नहीं करते। बालकाल में विचार-शक्ति की आशा न करके उन्हें सीधी सीधी आज्ञा देना अच्छा है। बालक अपनी भलाई-बुराई स्वयं सोच नहीं सकता। उससे तो काम करा लेना चाहिए। तभी उसे अच्छे काम करने की आदत होगी। बड़े होने पर ही उसके कार्य्य बुद्धि-मूलक होंगे।

दूसरा नियम यह है कि किसी आदत को पैदा करने में बालकों को उत्साह प्रदान करते रहना चाहिए। दण्ड, निन्दा, उपहास आदि से भी मनुष्य की प्रवृत्ति कार्यों की ओर हो जाती है। परन्तु स्मरण रहे कि इनका इतना ही परिणाम हो कि इच्छित आदत बनाने की प्रवृत्ति बलवती हो जाय। प्रकृति की भी रीति यही है। किसी आवश्यकता की पूर्ति इन्हीं प्रवृत्तियों से होती है। उनसे मालूम पड़ता है कि बालक में कार्य-शक्ति है। शिक्षा का यह ध्येय होना

चाहिए कि किसी बात की सिद्धि के लिए इस कार्य-शक्ति का उपयोग किया जाय।

तीसरा नियम यह है कि अपने निश्चय पर ही दृढ़ रहना चाहिए। यदि एक बार भी शिथिल हुए तो काम बिगड़ गया। किसी आदत के बनने तक शिथिलता आनी ही न चाहिए। चलो, आज भङ्ग पीलें, कल से न पियेंगे—यह कहने से काम न चलेगा। "एक ही प्याला" नाम का एक मराठी नाटक है। उसमें दिखलाया गया है कि एक ही प्याले से कितना अधःपतन हो सकता है। मित्रों का 'एक ही बार' का अनुरोध मान कर कई लोग हमेशा के लिए बिगड़ गये हैं। वह एक ही बार बड़े महत्त्व का बार है। यदि उसे तुमने हाथ से जाने दिया तो तुम अपने ध्येय से नीचे गिर गये। संरक्षकों और शिक्षकों को इस बात में, विशेष कर छोटे लड़कों के सम्बन्ध में, खूब कड़ा होना चाहिए। नियम का एक बार का भी उल्लङ्घन बहुत बुरा होता है। आदत हो जाने पर कठिन कार्य भी सरल और कभी कभी आनन्दप्रद भी हो जाता है। बुरी आदतों के बन जाने पर उन्हें तोड़ना दुःसाध्य होता है। हाँ, आदत डालने के लिए वही कार्य बार बार करना होता है। इसमें समय लगता है। पर, एक बार आदत पड़ जाने पर समय और कष्ट की बचत होती है।

एक बात और फिर से बतलाना आवश्यक है। आदतों की इमारत उचित अन्तःप्रवृत्तियों की नींव पर ही रची जानी चाहिए। अन्तःप्रवृत्तिमूलक आदतें शीघ्र बन सकती हैं, क्योंकि उनके लिए कम समय लगता है। शील आदतों का समूह ही है। विशिष्ट परिस्थिति में विशिष्ट काम करने को शील कहते हैं और वही आदत भी है। सारांश, अन्तःप्रवृत्तियाँ शील की जड़ हैं। इससे स्पष्ट है कि बाल्यकाल की शिक्षा बड़े महत्त्व की है।

आदतों का महत्त्व हम ऊपर बतला ही चुके हैं। इससे प्रत्यक्ष क्या लाभ होता है, यह भी बतलाना आवश्यक है। पहले पहल जो सायकिल पर बैठना सीखता है उसे बड़ी मिहनत पड़ती है। उसके सम्बन्ध के हर एक छोटे-मोटे कार्यों पर उसे ध्यान देना पड़ता है। कुछ समय के बाद अभ्यास से वह काम इतना सरल हो जाता है कि साइकिल हाथ में है, ध्यान दूसरी ओर है, चुपचाप उठ कर बैठ जाते हैं, बातें भी करते जाते हैं और साइकिल मज़े में चली जाती है। अन्तःप्रवृत्तियों के समान यह कार्य भी अन्तःप्रवृत्त हो जाता है। इससे समय और क्लेश बचते हैं, जो दूसरे कार्यों में लगाये जा सकते हैं। यह कम लाभ नहीं। अगर आदत नहीं पड़ी तो वह पुरुष दूसरे काम उसी समय में नहीं कर सकता। प्रत्येक कार्य के लिए अलग अलग समय लगाना चाहिए। अगर जीवन में हमारी यही स्थिति रहे तो जीवन बड़ा कष्टमय हो जाय। साधारण कामों को हम आदतों के कारण कम क्लेश और थोड़े समय में कर डालते हैं। इससे हमारी शक्ति का व्यर्थ क्षय नहीं होता। अच्छी आदतें डालना अपनी शक्ति को बढ़ाना है। पर यह बात इतने में ही समाप्त नहीं होती। जब कोई काम करने की आदत पड़ जाती है तब वह काम उत्तमता से होता है। इसलिए यदि किसी काम को अच्छी तरह करना हो तो उसकी आदत डाल लेना चाहिए। जब तक आदत न होगी तब तक कोई काम उत्तम रीति से न होगा।

अच्छा पढ़ना हो तो पढ़ने की इतनी आदत हो जाय कि अक्षर देखते ही तुरन्त उनका उच्चारण होने लगे, सोचना न पड़े। उसी समय अर्थ की ओर भी लक्ष्य दे सकते हैं। पहले पहल जो बालक कोई भाषा सीखते हैं उनकी ओर थोड़ा ध्यान देने से यह बात स्पष्ट हो सकती है। पढ़े-लिखे लोगों की इस विषय में इतनी आदत हो जाती है कि उन्हें पढ़ने में थोड़ा भी क्लेश नहीं होता। जब कभी नया शब्द आता है तभी रुकना पड़ता है, और फिर से पढ़ने की आवश्यकता होती है। यही हाल, स्वच्छता, उद्योगशीलता, मानापमान, प्रेम इत्यादि नैतिक आदतों का है। इन सब गुणों के लिए भी आदत डालनी होती है। परिस्थिति अथवा अन्तःप्रवृत्ति होने से शायद वे जल्द बन जायँ, पर जहाँ स्वाभाविक प्रवृत्ति नहीं है, परिस्थिति प्रतिकूल है, वहाँ यत्नपूर्वक नैतिक आदतें डालनी पड़ती हैं।

गोपाल दामोदर तामसकर, एम० ए०

——

विविध विषय।

१—वाणिज्य-व्यवसाय की शिक्षा।

शिक्षा-विस्तार की बड़ी ज़रूरत है। इस बात को गवर्नमेंट सबसे अधिक समझती है। शिक्षित प्रजा भी अब इस बात को ख़ूब समझ गई है। समझ ही नहीं गई, शिक्षा-विस्तार के लिए वह चेष्टा भी करने लगी है। वह ख़ुद भी, निज के तौर पर, शिक्षा-ज्ञान के साधन बढ़ाती है, बड़े बड़े चन्दे देती है और सरकार का दरवाज़ा भी, इस निमित्त, सदा खटखटाया करती है। सरकार भी बड़े बड़े हुक्मनामे और तजवीज़ें निकालती है। स्कूलों की संख्या बढ़ाती है, स्कूल-मास्टरों के वेतन की वृद्धि करती है और कहती है कि वर्तमान स्कूलों की संख्या हम इतने दिनों में दूनी कर देंगे। पर सरकार पर पक्की शिक्षा देने की सनक सी सवार है। वह शिक्षा को पक्की करने के फ़िराक़ में जितना रहती है उतना यह देखने में नहीं कि किस तरह की शिक्षा से इस देश की भूखी जनता का पेट भरेगा। अँगरेज़ों ही की तरह, उन्हीं के जैसे लमहे में, अँगरेज़ी बोल लेने से तो पेट भरता नहीं। अँगरेज़ी में धारावाही लेकचर झाड़ने, बड़े बड़े अँगरेज़ी अख़बारों का सम्पादन करने और अँगरेज़ी में ही प्रकाण्ड पोथियाँ लिख डालने से देश की सम्पत्ति विशेष नहीं बढ़ती। आज-कल वह ज़माना है जिसमें टकाही पूजा जाता है, उसी की सर्वत्र पूछ होती है, उसी से सारे काम निकलते हैं। अब सवाल यह है कि अन्यान्य भरे पूरे देश किस तरह की शिक्षा को महत्त्व देते हैं। क्या वे भी अपने देश की भाषा और साहित्य का चूडान्त ज्ञान प्राप्त करने ही को शिक्षा का सर्वस्व समझते हैं? क्या और देश ऐसी ही शिक्षा की बदौलत बढ़े हैं? नहीं, उन देशों की उन्नति का सबसे बड़ा कारण वाणिज्य और व्यवसाय की वृद्धि ही है। अच्छा तो, इस व्यावसायिक शिक्षा के साधनों को सरकार क्यों नहीं सुलभ कर देती? इँगलेंड की वृद्धि वाणिज्य-व्यवसाय ही की बदौलत हुई है। अमेरिका, जर्मनी और जापान तक ने इसी से अपनी समृद्धि बढ़ाई है। समझ में नहीं आता, यह सब देख कर भी, इस देश की गवर्नमेंट इस प्रकार की शिक्षा देने में इतनी उदासीन क्यों है। इस इतने बड़े देश में वाणिज्य-व्यवसाय की शिक्षा देने के लिए केवल एक कालेज! वह कहाँ है? बम्बई में। उसे भी खुले अभी बहुत साल नहीं हुए। इस कालेज से जितने लड़के, बेचलर आफ़ कामर्स की डिगरी प्राप्त करके निकले हैं, वे सबके सब अच्छे काम में लग गये हैं। जिन्होंने मुलाज़िमत कर ली है उनको प्रायः १००) से कम तनख़ाह नहीं दी गई। इस कालेज से जितने लड़के निकलते हैं उतनों से भी अधिक की माँग सदा बनी रहती है। यह सब देख कर भी सरकार इस तरफ़ मुख़ातिब नहीं होती, यह इस देश के निवासियों के कर्म्मों का फल ही समझना चाहिए। दस-बारह वर्ष तक दिमाग़ ख़ाली करके लड़के मैट्रीकुलेशन पास करते हैं। और पास कर लेने पर भी दस-पन्द्रह रुपये की नौकरी के लिए अर्ज़ियाँ लिये हुए ठोकरें खाते फिरते हैं। पर बारह ही महीने में मुँड़िया अक्षर और बनियई हिसाब-किताब पढ़ कर कम-उम्र लड़के, दूसरे के नौकर बन कर भी, दुकानों पर बैठे बैठे कुछ नहीं तो पच्चीस-तीस रुपया महीना कमाते हैं। और यदि कहीं अपना निज का व्यवसाय करने लगे तो महीने में सैकड़ों हज़ारों के वारे न्यारे करते हैं। यदि यही लड़के वाणिज्य-व्यवसाय की सुव्यवस्थित शिक्षा प्राप्त कर सकें तो फिर क्या कहना है। विलायती हुण्डी, विदेशी व्यापार, बैंकिंग या महाजनी, बीमा, हिसाब-किताब रखना, अर्थशास्त्र, अन्तर्जातीय व्यापार, वाणिज्य-विषयक भूगोल की शिक्षा देने की बात जाने दीजिए, आटा-दाल और तवा-कड़ाही बेचने की शिक्षा का भी तो कहीं प्रबन्ध नहीं। कानपुर से बढ़ कर व्यापारी शहर उत्तरी भारत में नहीं। पर यहाँ भी ऐसी शिक्षा का सर्वथा अभाव! कालेज एक नहीं दो दो। स्कूल तो दरजनों हैं। पर व्यापार करना सिखाने के लिए एक छोटा मोटा सरकारी मकतब तक नहीं। उसकी शिक्षा यदि कहीं मिल सकती है तो दुकानदारों की दुकानों पर बैठ कर उम्मेदवारी करने से! अब एक विश्वविद्यालय लखनऊ में खुलने वाला है और दूसरा आगरे में। उनसे भी वही बी० ए० एम० ए० निकलेंगे। उधर इलाहाबाद के विश्वविद्यालय की काया पलट देने का पूरा पूरा साज़ो-सामान हो रहा है। सरकार यह सब करे। एतदर्थ हम लोगों को उसका

कृतज्ञ होना ही चाहिए। पर साथ ही इतनी दया और दिखावे कि प्रान्त में दो एक स्कूल ऐसे भी खोल दे जहां कपड़ा, गल्ला, लोहा-लङ्गर और दाल-चावल आदि ही ख़रीदने और बेचने की शिक्षा दी जाय। बहुत ख़र्चा पल्ले न हो तो अकेले एक कानपुर ही में एक आध ऐसा स्कूल जारी कर दे। वह भी न हो सके तो इलाहाबाद के विश्वविद्यालय का दुबारा सङ्गठन करते समय वहीं एक कालेज आफ़ कामर्स अथवा ऊँची व्यापार-शिक्षा दी जाने का एक विभाग अलग खोल दे। इसी को इस प्रान्त-वाले तब तक ग़नीमत समझेंगे—

अर्ज़ी हमारी नाय मर्ज़ी तुम्हारी है

२—आबकारी महकमे की रिपोर्ट।

जो साल ३१ मार्च १६२० को ख़तम हुआ उसके सम्बन्ध की आबकारी महकमे की सालाना रिपोर्ट निकले कुछ समय हुआ। उससे मालूम हुआ कि उस साल मादक पदार्थों का ख़र्च तो कम हुआ, पर आमदनी अधिक हुई। यह इस कारण कि सरकार ने इन चीज़ों पर अपना महसूल बढ़ा दिया है। सरकार की आज्ञा है कि हम नहीं चाहते कि लोग मद्य पीकर और गांजा-भांग आदि का मनमाना सेवन कर के मत्त हुआ करें। इसी से हम महसूल बढ़ा कर इन चीज़ों का मूल्य बढ़ा देते हैं। इससे कम आमदनी के लोग ये चीज़ें कम मोल ले सकते हैं। बहुत ठीक। पर प्रश्न यह हो सकता है कि जैसे अमेरिका ने शराबनोशी शराबख़ोरी एकदम बन्द कर दी है वैसे ही आप भी क्यों नहीं कर देते? उठा दीजिए शराब की दुकानें; बन्द कर दीजिए देशी शराब का बनना। तो हम जानें कि आप शराब पीने के ख़िलाफ़ हैं। सम्भव है, अभी ग़रीब होने पर भी, अनेक लोग आटा-दाल की मात्रा में कमी करके किसी न किसी तरह महँगा शराब, गांजा और भङ्ग पीते हों। इसका स्पष्ट उत्तर तो, याद नहीं, कभी सरकार ने दिया हो। पर उसका उत्तर कुछ कुछ इस तरह का हो सकता है। भाई, ऐसा न करना चाहिए। जिन्हें अफ़ीम खाने और शराब पीने का चसका पड़ गया है उन्हें यदि ये चीज़ें न मिलेंगी तो बहुत तकलीफ़ होगी। उनकी तन्दुरुस्ती बिगड़ जायगी। पासी, कोली, चमार आदि शादी-ब्याहों में शराब से ही मिहमानों की सेवा करते हैं। उनके वे जलसे फीके पड़ जायँगे; उन्हें अपनी पुरानी रस्में तोड़ते महा दुःख होगा। वे सरकार को कोसेंगे। सरकार यह सब अज़ाब अपने सिर नहीं लेना चाहती। इन लोगों की ये आदतें धीरे धीरे छुड़ानी होंगी। फिर यह १ करोड़ से भी अधिक की आमदनी जो बन्द हो जायगी तो प्रजा को उसे और किसी रूप में देना पड़ेगा। समझे साहब। सरकार का यह तर्क कैसा है, इस पर हम कुछ भी न कह कर, आबकारी की रिपोर्ट की कुछ बातें लिखते हैं।

हाँ, १६१८-१६ में कोई १५ लाख गैलन देशी शराब खप गई थी; पर १६१६-२० में सिर्फ़ ११ लाख गैलन खपी। पिछले साल उससे १ करोड़ २ लाख रुपये की आमदनी हुई थी, १६१६-२० में १ करोड़ १० लाख की आमदनी हुई। कोई ८ लाख की अधिक! भङ्ग-भवानी से तो कोई २८ फ़ी सदी आमदनी अधिक हुई। चरस की आमदनी फ़ी सदी १४, गांजे की १६ और अफ़ीम की १६ बढ़ गई। सो, सरकारी महसूल बढ़ने पर भी लोग गांजा, भङ्ग, चरस और शराब पीने से बाज़ नहीं आते और शायद कभी आवेंगे भी नहीं। आप चाहे जितनी दुकानें कम कर दीजिए, चाहे जितना कड़ा कर लगा दीजिए, पीनेवाले लोटा-थाली और दाल-चावल बेच कर भी नशेबाज़ी छोड़ने के नहीं। उनकी ये आदतें छुड़ाने की अगर कोई रामबाण ओषधि है तो यही कि इन चीज़ों की बिक्री ही बन्द हो जाय; भङ्ग, अफ़ीम और शराब सिर्फ़ दवा के लिए मिल सके। बस। फिर एक बात और भी है। सरकारी लेखे में विदेशी शराब की खपत का ब्योरा नहीं। वह ब्योरा सरकार अन्यत्र छापती है। उसको देखने से ही मालूम हो सकता है कि विदेशी शराब की खपत का क्या हाल है। हमारे सभ्य और सुशिक्षित भाई कहीं उससे अधिक प्रेम तो नहीं करने लगे? क्योंकि देशी शराब तो नीच जाति के लोगों ही का विशेष पेय है, बाबू और मिस्टर महाशयों का पेय तो विलायती ही होता है।

देशी शराब की दुकानें पहले ६,६०२ थीं। अब हैं ६,४७६। सो एक साल में कोई सवा सौ दूकानें कम हो गईं। ग़नीमत है। सरकार अब अपना महसूल और भी बढ़ा देने के विचार में है। तथास्तु।

३—सरकारी गैज़ट की भाषा ।

हर प्रान्त की गवर्नमेंट अपना अपना गैज़ट हर हफ़्ते निकालती है। गवर्नमेंट आव् इंडिया भी ऐसा ही करती है। इन गैज़टों में हज़ारों बातें ऐसी रहती हैं जिनका ज्ञान होना प्रजा के लिए ज़रूरी है। जीवन-मरण के नक़्शे, फ़सल की दशा, कहाँ कहाँ कितना पानी बरसा—इसकी रिपोर्ट, किस परीक्षा में कहाँ से कितने छात्र पास हुए, कौन कौन क़ानून नये बने और कौन कौन बननेवाले हैं, इसका तथा सरकारी मुलाज़िमों के तबादले वग़ैरह का हाल इन्हीं गैज़टों से मालूम हो सकता है। अपने प्रान्त का भी गैज़ट गवर्नमेंट की भाषा अँगरेज़ी में निकलता है। उसका एक संस्करण उर्दू में भी निकलता है। पर उसमें कुछ ही बातें रहती हैं। उसमें अँगरेज़ी गैज़ट का पूरा पूरा अनुवाद नहीं रहता।

गवर्नमेंट यह बख़ूबी जानती है कि इस प्रान्त के अधिकांश निवासी हिन्दी-भाषा और नागरी-लिपि ही पढ़-लिख सकते हैं। उसके अफ़सरों की बनाई हुई मर्दुमशुमारी की रिपोर्टें इस बात की गवाही दे रही हैं। पर सरकार अपना गैज़ट हिन्दी में नहीं निकालती। इस विषय में गवर्नमेंट से कई दफ़े कहा-सुना जा चुका है, पर कुछ फल हुआ नहीं।

अगस्त में इस प्रान्त के क़ानूनी कौंसिल की एक बैठक १२ तारीख़ को हुई। उसमें माननीय पण्डित गोकर्णनाथ मिश्र ने सरकार से पूछा कि क्या सरकार कृपा करके प्रान्तीय गैज़ट को हिन्दी में भी निकालने का विचार करेगी? इस पर गवर्नमेंट ने सूखा जवाब दिया। कहा, गवर्नमेंट ऐसा करने की ज़रूरत नहीं देखती। इसके बाद मिश्रजी ने एक और सवाल किया। उन्होंने कहा, अच्छा तो क्या गवर्नमेंट उर्दू के गैज़ट में जो बातें अभी नहीं रहतीं उनको भी देकर उसे ही पूरा पूरा निकालने की कृपा करेगी? इसका भी जवाब सूखा ही मिला। सरकार की तरफ़ से माननीय कीन साहब ने फ़रमाया—अभी कुछ ही दिन तो हुए, इस बात पर यथेष्ट विचार हो चुका है। फ़ैसला यह हुआ था कि उर्दू में गैज़ट संक्षिप्त ही निकले। उस फ़ैसले पर गवर्नमेंट अब फिर विचार करने की ज़रूरत नहीं समझती।

चलो, हो चुका। क्यों पुनर्वार विचार नहीं करना चाहती? क्यों हिन्दी में गैज़ट निकालने की ज़रूरत नहीं समझती? इन प्रश्नों का उत्तर देने की भी कृपा सरकार ने नहीं की। प्रार्थना यह है कि सरकार ने सावरेन १०) का कर दिया, इस बात को सिर्फ़ हिन्दी या उर्दू जाननेवाले देहाती फिर कैसे जानें? यह जो टेरीटोरियल फ़ोर्स बिल, अर्थात् फ़ौजी क़ानून का मसविदा, तैयार हुआ है उसकी ख़बर सब लोगों को कैसे हो? उस दिन प्लेग-निवारण की जो तरकीबें सरकार ने अपने वक्तव्य में बताई हैं उनकी ख़बर देहातियों तथा अँगरेज़ी न जाननेवाले दूसरे लोगों को कैसे हो? ज़िरात के मुतअल्लिक़ गवर्नमेंट की जो सूचनायें निकला करती हैं वे क्या केवल अँगरेज़ी जाननेवालों ही के लिए निकलती हैं? दुहाई सरकार की, आपकी इस नीति से अधिकांश लोगों को फ़ायदा नहीं पहुँच सकता।

४—स्त्रियों की उच्च शिक्षा ।

अहमदाबाद में स्त्रियों के लिए एक कालेज स्थापित हुआ है। कुछ समय हुआ, उसका उद्घाटन-संस्कार बड़ौदा के दीवान श्रीयुत मनूभाई नन्दलाल मेहता, सी० एस० आई० ने किया। उस अवसर पर आपने एक वक्तृता दी। उसका सारांश नीचे दिया जाता है—

बम्बई में सर जार्ज क्लार्क के समय से ही स्त्रियों के लिए एक कालेज खोले जाने का विचार हो रहा है। अब अहमदाबाद में यह विचार कार्यरूप में परिणत हुआ है। स्त्री-शिक्षा की उन्नति में अभी इस देश में कई बाधायें हैं। स्त्रियों की अज्ञानता और हमारी सामाजिक अवस्था इनमें सबसे प्रधान हैं। यही कारण है कि स्त्री-शिक्षा की गति इतनी मन्द है। इस विषय में गुजरात-केलवणी मण्डल का कार्य अभिनन्दनीय है। उसने गुजराती स्त्रियों की अज्ञानता दूर करने का भार उठाया है। इसमें सन्देह नहीं कि स्त्री-शिक्षा का प्रश्न बड़ा महत्त्वपूर्ण है और हमें अपनी कन्याओं और बहिनों की उच्च शिक्षा के लिए मनोयोग-पूर्वक प्रयत्न करना चाहिए। जापान में स्त्री-शिक्षा की अच्छी उन्नति हो रही है। स्त्रियों की शिक्षा में तीन बातों का ख़ूब ख़याल रखना चाहिए। सबसे पहले तो इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि स्त्रियाँ भी मनुष्य

में हैं। अतएव जो बात मनुष्य-मात्र के लिए आवश्यक है वह उनके लिए भी है। उन्हें शिक्षा देते समय हमें यह बात न भूलनी चाहिए। फिर इसका भी विचार करना चाहिए कि जाति में उनका भी स्थान है और वे स्त्रियां हैं। इसके अनुकूल ही शिक्षा देना प्रत्येक विश्वविद्यालय का उद्देश होना चाहिए।

जापान के सभी स्कूलों और कालेजों में स्त्रियों के शारीरिक सुधार पर खूब ध्यान दिया जाता है। वहां सदाचार की भी शिक्षा दी जाती है। ये दोनों ही बातें आवश्यक हैं। शिक्षा के दो उद्देश होते हैं—एक तो मानसिक सुधार और दूसरा जीवन-निर्वाह। इसका भी विचार करके स्त्रियों को शिक्षा देनी चाहिए। इनके लिए एक और विषय भी आवश्यक है। वह है सौन्दर्य-बोध की शिक्षा। गान और चित्रकला नारी-जीवन के भूषण हैं। लड़कियां ही भविष्य में गृहिणी होती हैं; इसलिए उन्हें गृहप्रबन्ध की भी शिक्षा देनी चाहिए। जीवन-निर्वाह के लिए सीने-पिरोने आदि की शिक्षा आज-कल खूब लोकप्रिय हो रही है। बड़ा अच्छा हो यदि विधवाओं को अध्ययन-कार्य की शिक्षा दे कर शिक्षा का काम उन्हीं के सिपुर्द किया जाय। अमरीका में अधिकांश अध्यापिका स्त्रियां ही हैं और उन्हें अपने काम में बड़ी सफलता भी हुई है। लेडी डाक्टरों की भी आवश्यकता है। इसके लिए एक अच्छा मेडिकल स्कूल चाहिए। प्रोफ़ेसर करवे का महिला-विश्वविद्यालय स्त्री-शिक्षा के प्रचार में बड़ा काम करेगा। परन्तु उसकी पाठ्यविधि से सभी प्रान्तों की स्त्रियों को सन्तोष न होगा।

५—लेखकों का 'हम'।

इँगलिस्तान के वेस्ट-मिनिस्टर गैज़ट के सम्पादक जे० ए० स्पेन्डर साहब ने न्यूज़-पेपर वर्ल्ड नामक पत्र में इस विषय की कुछ बातें लिखी हैं। आपके कथन का मतलब संक्षेप में नीचे लिखा जाता है—

लन्दन के दैनिक पत्रों में जिन लोगों ने बीस बीस तीस तीस सालों तक लगातार काम किया है उनके नाम तक से लोग परिचित नहीं हैं। यह बात नहीं कि उनमें योग्यता अथवा विद्वत्ता नहीं। वे लोग बड़े योग्य और विद्वान् होते हैं। अधिकांश राजनीतिज्ञों की अपेक्षा वे राजनीति का अधिक अध्ययन और मनन करते हैं और इन राजनीतिज्ञों से कहीं अधिक उनका प्रभाव राज-नीति के क्षेत्र में पड़ता है। पर जन-साधारण में उनका नाम नहीं। उन्हें इसी अज्ञात अवस्था में रह कर काम करना पड़ता है। उन्हें एक निश्चित रीति के अनुसार लिखना पड़ता है। एक नियम यह है कि ऐसे लेखक 'मैं' का प्रयोग नहीं करते, 'हम' लिखा करते हैं। कुछ लोगों का ख़याल है कि लेखक अपनी महत्ता बढ़ाने के लिए ऐसा करते हैं। सच पूछो तो उन्हें ऐसा करना ही पड़ता है। यदि वे ऐसा न करें तो उनका काम ही न चले। मैं अपनी बात कहता हूँ। यदि मैं उत्तम पुरुष एकवचन में लेख लिख कर उसके नीचे अपना नाम देता तो छः महीने में ही काम छोड़ कर मुझे घर बैठना पड़ता। पर मैं इसी 'हम' की बदौलत आज पच्चीस वर्षों से काम कर रहा हूँ। जहां लेखक 'मैं' प्रयोग करते और अपना नाम देते हैं वहां उन्हें अपना नाम बराबर बदलते रहना पड़ता है। यदि वे ऐसा न करें तो लोग विरक्त हो कर कहने लगें—यह है कौन जो अपनी सम्मति हम पर लादना चाहता है। लेख के लिए पर्याप्त समय चाहिए। शीघ्रता न करनी चाहिए। कुछ लोग समझते हैं कि सामयिक पत्रों के लेखक झपाटे से लेख तैयार करते हैं। मुझे विश्वास है, जो ऐसा करते हैं उनकी गणना अच्छे लेखकों में नहीं।

६—स्वीडन की शिक्षा-प्रणाली।

योरप के सभी देश समृद्धि-सम्पन्न और उन्नतिशील हैं। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि वहां जन-साधारण की शिक्षा पर खूब ध्यान दिया जाता है। बड़े बड़े देशों की बात जाने दीजिए, छोटे छोटे देशों में भी लोगों को शिक्षित करने के लिए जी जान से प्रयत्न किया जाता है।

स्वीडन की शिक्षा-प्रणाली पर "प्रवासी" में एक लेख निकला है। उसका सारांश हम नीचे लिखते हैं। पाठक देखें, वहां सरकार प्रजा की ज्ञान-वृद्धि के लिए क्या कर रही है।

स्वीडन की शिक्षा-प्रणाली का मूल मन्त्र है पदार्थ-ज्ञान और मौलिक चिन्ता का उन्नति-साधन। शिक्षा का उद्देश इतना ही नहीं है कि लोगों को कुछ विषयों का बोध करा दिया जाय। उससे लोगों में वह स्फूर्ति आ

जानी चाहिए जिससे वे स्वयं विचार कर सकें और विचार द्वारा अपने ज्ञान की वृद्धि कर सकें।

स्वीडन में उच्च-शिक्षा पर भी लोगों का ध्यान आकृष्ट है। उसमें विश्वविद्यालयों और कालेजों की संख्या पर्याप्त है। यदि देश के विस्तार पर ख़याल किया जाय तो शिक्षा-केन्द्र पर्याप्त से भी अधिक है। वहाँ विज्ञान की चर्चा अधिक है। प्रकृति-विज्ञान में उन्नति करके स्वीडन ने अच्छी ख्याति प्राप्त की है। उसने शब्द-विज्ञान और इतिहास में भी अच्छी उन्नति की है। स्वीडन में उन्नीसवीं शताब्दी में धर्म-याजकों की चेष्टा से लोगों में विद्या की रुचि बढ़ी। १६८६ में एक क़ानून बना जिससे सर्वसाधारण में शिक्षा की अभिवृद्धि होने लगी। शिक्षा-भार भी धर्म-याजकों पर न रहा; वह शासकों पर आ गया। अठारहवीं शताब्दी तक तो शिक्षा-प्रचार में शिथिलता रही। पर उन्नीसवीं शताब्दी से वहाँ शिक्षा-प्रचार का काम तेज़ी से होने लगा। शिक्षा को अनिवार्य करने के लिए लोगों का आग्रह बढ़ा। १८४२ में फिर एक क़ानून जारी हुआ। उससे यह नियम हो गया कि कुछ गाँवों के बीच एक स्कूल अवश्य होना चाहिए। उसमें एक शिक्षक की नियुक्ति सरकार की ओर से हो। ज़रूरत पड़ने पर ऐसे स्कूलों की संख्या बढ़ा देनी चाहिए।

उच्च-शिक्षा के लिए कालेजों की भी वृद्धि हुई। अब वहाँ कालेजों की अच्छी संख्या हो गई है। उनका काम है छात्रों की मानसिक, नैतिक और शारीरिक उन्नति करना। इन कालेजों पर देख-भाल करने के लिए सरकार की ओर से एक कमिटी नियुक्त है। शिक्षक तैयार करने के लिए ट्रेनिङ्ग-कालेज हैं। आज-कल ऐसे १५ कालेज हैं, ९ पुरुषों के लिए और ६ स्त्रियों के लिए। इनके सिवा स्त्रियों के लिए और भी शिक्षा-केन्द्र हैं, जहाँ पाठ्य-क्रम चार वर्षों में समाप्त होता है। कहने की ज़रूरत नहीं, शिक्षा मातृ-भाषा में दी जाती है। विदेशी भाषाओं में अँगरेज़ी और जर्मन को स्थान मिला है। प्रत्येक शिक्षालय में एक डाक्टर रहता है। वह छात्रों को स्वास्थ्य-विज्ञान की मौलिक शिक्षा देता है। प्रारम्भिक पाठशालाओं में ७ से १४ वर्ष तक के लड़के पढ़ते हैं। जो दरिद्र हैं—अपने लड़कों को शिक्षा देने में असमर्थ हैं—उनके भी बच्चों के लिए अच्छा प्रबन्ध है। बुरे लड़कों को सुधारने के लिए एक स्कूल अलग है। वहाँ ८ महीने तक लड़के रक्खे जाते हैं।

छात्रों की शारीरिक उन्नति पर खूब ध्यान दिया जाता है। व्यायाम का एक अलग ही विषय रक्खा गया है। रोगी होने पर छात्रों की बड़ी सेवा की जाती है। इस काम के लिए एक समिति है। उसी के निरीक्षण में रुग्ण छात्र किसी अच्छे स्थान में रक्खे जाते हैं।

देश की भविष्य उन्नति छात्रों पर ही अवलम्बित रहती है। जो देश उनके सुधार के लिए इतना यत्नशील है उसकी क्यों न उन्नति हो?

७—सांख्य-दर्शन के प्राचीन सिद्धान्त।

सांख्य-दर्शन की प्राचीनता में किसी को सन्देह नहीं। उसके आविष्कारक या प्रचारक महर्षि कपिल का उल्लेख श्वेताश्वतरोपनिषद् में है। परन्तु उनके सिद्धान्त किस पर निहित हैं, इसका निर्णय नहीं हुआ। किसी किसी का मत है कि तत्त्वसमास ही कपिल-कृत है। आज-कल कपिल के नाम से जो सांख्य-सूत्र प्रचलित हैं उनके विषय में कितने ही विद्वानों का कथन है कि वे कपिल की रचना नहीं। सांख्यकारिकाओं से उसका सङ्कलन किया गया है। अतएव अब यह देखना चाहिए कि सांख्य-दर्शन का प्राचीनतम रूप हम किसमें देख सकते हैं।

अध्यापक ड्यूसन ने महाभारत के सनत्सुजातपर्व, भगवद्गीता-मोक्षपर्वाध्याय तथा अनुगीता पर एकत्र विचार करके यह निश्चय किया है कि भारतीय दर्शन-शास्त्रों के इतिहास में तीन युग हैं। प्रथम युग उपनिषदों में निबद्ध दार्शनिक मत का युग है। तृतीय युग सूत्र, कारिका और षड्दर्शन का युग है। इन दोनों के बीच का समय महाभारतीय-दर्शन का युग है। इसे प्राचीन सांख्य अथवा मायावाद-हीन वेदान्त कह सकते हैं। बुद्ध-चरित-काव्य के बारहवें अध्याय में, हिन्दू-दार्शनिक आराड कालाम, ने बुद्ध को जिस मत का उपदेश दिया है वह महाभारतीय सांख्य से खूब मिलता है। वहाँ इस अवसर पर कपिल के नाम का उल्लेख भी किया गया है। महाभारत में भी कहा गया है—"ज्ञानञ्च लोके यदिहास्ति किञ्चिद् सांख्यागतं तच्च महन्महात्मन्।" इससे भी यह जान पड़ता है कि महाभारत ने सांख्य के ही सिद्धान्त प्रकट किये हैं।

महाभारतीय सांख्य का सार यह है कि प्रकृति और पुरुष दोनों ही नित्य हैं और इन दोनों के अतिरिक्त ब्रह्म है, जिसके वे अनुगत हैं ।

८—भारतवर्ष में अन्धों के लिए स्कूल ।

अन्धों के लिए सबसे पहले पेरिस में एक संस्था खोली गई। यह सन् १२६० ईसवी की बात है। यह एक अस्पताल था। यह उन सैनिकों की सेवा-शुश्रूषा के लिए स्थापित हुआ था जो क्रूसेड नामक धर्मयुद्ध में अपनी दृष्टि-शक्ति खो बैठे थे। इसके संस्थापक सेंट लुई (St. Louis) थे। ऐसे और भी कई अस्पताल अपाहिजों के लिए खुले। परन्तु उनमें शिक्षा देने का कभी प्रयत्न नहीं किया गया। सन् १६५७ ईसवी में जे० बर्नूली (J. Bernouilli) नामक एक सज्जन ने एक अन्धी लड़की को अक्षर लिखना सिखा दिया। बस, इसके बाद अन्धों को शिक्षा देने की किसी ने चेष्टा न की। १७८४ ईसवी में पेरिस के वेलनशिया हाय को ही सबसे पहले इस काम में सफलता प्राप्त हुई। उस उदार-चेता पुरुष ने अन्धों की शिक्षा के लिए बड़ा आन्दोलन किया। उसी के उद्योग का यह फल है कि अब सभी सभ्य देशों में अन्धों की शिक्षा के लिए अच्छी अच्छी संस्थायें खुल गई हैं और ऐसे कारख़ाने भी स्थापित हो गये हैं जहाँ अन्धे आदमी काम कर के मज़े में अपना जीवन-निर्वाह कर सकते हैं। ऐसी संस्थाओं के हम छः विभाग कर सकते हैं। (१) स्कूल जहाँ रह कर अन्धे छात्र शिक्षा पाते हैं (२) ऐसे स्कूल जहां कारख़ाने भी हैं (३) कारख़ाने जो सिर्फ़ अन्धों के लिए हैं (४) सेवाश्रम (Asylum) जहाँ अन्धे रक्खे जाते हैं (५) स्कूल और सेवाश्रम (६) कारख़ाने और सेवाश्रम।

अन्य देशों में प्रायः अन्धों की शिक्षा का प्रबन्ध सरकार ही करती है। भारतवर्ष में ऐसी संस्थायें प्रायः सर्वसाधारण ही के धन से चलती हैं। सरकार से उनको सहायता ज़रूर मिलती है। एक ऐसी ही संस्था कलकत्ते में है। उसका नाम है Industrial Home and School for Blind Children। १८९७ में उसे श्रीयुत लालबिहारी शाह नामक एक ईसाई सज्जन ने खोला था। उसमें सभी धर्म्मों के अन्धे लड़कों को रखने के लिए प्रबन्ध है। लड़के वहाँ घर ही की तरह आराम से रहते हैं और ऐसी शिक्षा पाते हैं जिससे वे जीविकोपार्जन कर सकें। उन्हें निःशुल्क शिक्षा दी जाती है। भोजन भी मुफ़्त दिया जाता है। वे बेतों से कुर्सी, चिक, टोकरी आदि बनाना सीखते हैं। उन्हें कुछ साधारण सी शिक्षा भी दी जाती है और सङ्गीत भी सिखाया जाता है। इस संस्था का ख़र्च उदारचेताओं के दान से ही चलता है। बङ्गाल की सरकार और कलकत्ता म्यूनीसिपल कारपोरेशन से भी कुछ वार्षिक सहायता मिलती है। अन्धों के कुछ स्कूल और भी हैं। लाहौर में अन्धों के लिए एक सरकारी स्कूल है। वह पञ्जाब के शिक्षा-विभाग की ओर से, सन् १९०६ ईसवी में, स्थापित हुआ था। आज-कल उसमें विद्यार्थियों की संख्या सिर्फ़ २० है। देहरादून के पास राजपुर में ईसाइयों ने एक स्कूल खोल रक्खा है। उसका नाम है The Industrial Home for Christian Blind वहाँ चार या पाँच रुपये महीने का ख़र्च है। लड़कों को उद्योग-धन्धे की बातें भी सिखाई जाती हैं। इनके सिवा जमना-मिशन, इलाहाबाद; डबलिन यूनीवरसिटी मिशन, छोटा-नागपुर; विक्टोरिया ब्लाइंड स्कूल, बम्बई; स्कौच मिशन, पूना; और कोटा में मिस ऐशवर्थ का स्कूल भी अन्धों के लिए है।

९—एक नये विद्यालय की स्थापना—

पब्लिक सर्विस कमीशन ने भारतवर्ष में भूगर्भ-विद्या (Geology) की शिक्षा के लिए एक स्कूल स्थापित करने की सिफ़ारिश की थी। इँगलिस्तान में जैसी संस्थायें हैं उसी तरह का यह स्कूल होना चाहिए। हर्ष की बात है कि सरकार ने धनवाद (Dhanbad) में खनिज (Mining) और भूगर्भविद्या की शिक्षा देने के लिए एक स्कूल खोलने का निश्चय कर लिया है। इस स्कूल का प्रबन्ध भारत-सरकार के अधीन रहेगा। वहाँ सभी प्रान्तों के छात्र शिक्षा-लाभ कर सकेंगे। देशी राज्यों के छात्रों को भी वहाँ शिक्षा-प्राप्ति का सुभीता रहेगा। भारत-सरकार की इच्छा है कि स्कूल की प्रबन्ध-कारिणी सभा में प्रान्तीय सरकारों के भी प्रतिनिधि रहें। जिन संस्थाओं को खनिज और भूगर्भशास्त्र से काम पड़ता है उनका भी सम्बन्ध प्रबन्ध-कारिणी सभा से रहेगा। इस स्कूल का एक उद्देश यह होगा कि इसमें शिक्षा पाकर

छात्र कोयले की खानों में काम करने योग्य हो जायँगे। स्कूल में धातुओं की खानों में भी काम करने की शिक्षा दी जायगी। यह तो स्कूल की बात हुई। इंडियन इन्डस्ट्रियल कमीशन ने साकची अर्थात् जमशेदपुर में एक वैज्ञानिक गवेषणालय Metallurgical Research Institute की स्थापना की सिफ़ारिश की है। भारत-सरकार इस पर भी विचार कर रही है। अभी तक कुछ निर्णय नहीं हुआ। पर यह निश्चित है कि यह प्रयोगालय धनवाद के विद्यालय से सर्वथा भिन्न होगा। हाँ, इसका अवश्य प्रबन्ध रहेगा कि जो छात्र विशेष शिक्षा प्राप्त करना चाहेंगे अथवा केवल थोड़ी बहुत खोज ही करना चाहेंगे उनके लिए सब तरह के सुभीते कर दिये जायँगे। इंडियन इन्डस्ट्रियल कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में इस बात पर भी विचार किया है कि धनवाद के स्कूल का सम्बन्ध किसी विश्वविद्यालय से होना चाहिए कि नहीं। कलकत्ता-यूनीवरसिटी कमीशन ने भी इस पर अपनी सम्मति दी है। पर भारत-सरकार ने इतना तो निश्चय कर लिया है कि अभी प्रारम्भिक दशा में स्कूल का सम्बन्ध किसी विश्वविद्यालय से न होगा। पर वह उच्च आदर्श और उन्नत शिक्षा-प्रणाली पर चलाया जायगा। इस स्कूल की पदवी का मान तभी होगा जब उसका आदर्श ऊँचा हो। अतएव सिद्धान्त और प्रयोग दोनों विषयों की परीक्षा ली जायगी। स्कूल की प्रबन्ध-कारिणी सभा में कलकत्ता और पटना-विश्वविद्यालय के भी प्रतिनिधि रहेंगे।

इस काम में भारत-सरकार विलम्ब करना नहीं चाहती। उसकी इच्छा है कि जितनी शीघ्रता से स्कूल स्थापित हो जाय उतना ही अच्छा। इसलिए वह प्रान्तीय सरकार और विश्वविद्यालय आदि संस्थाओं से—जिनका इस स्कूल से सम्बन्ध रहेगा—शीघ्र ही प्रतिनिधियों की नामावली चाहती है। भारत-सरकार ने प्रधान अध्यापक की नियुक्ति के लिए सेक्रेटरी आव् स्टेट को लिख भी दिया है। प्रबन्धकारिणी सभा के सङ्गठित हो जाने पर विद्यालय-भवन, पाठ्य-विधि, अध्यापकों की नियुक्ति, छात्रों के प्रवेश होने के नियम, विद्यालय के ख़र्च आदि पर विचार किया जायगा।

१०—अशोक के समय में खनिज-विभाग।

प्राचीनकाल में भारत-भूमि रत्नगर्भा के नाम से प्रसिद्ध थी। अब भी यहाँ खनिज पदार्थों की प्रचुरता है। एक पत्र में भारतवर्ष के इसी गुप्त धन के विषय में एक साहब की एक लेख-माला निकल रही है। उससे अनेक ज्ञातव्य बातें विदित होती हैं। उसी के एक लेख से यह मालूम होता है कि अशोक के शासन-काल में खनिज पदार्थों के लिए कैसी अच्छी व्यवस्था थी। भारतवर्ष में जो चीनी यात्री आये थे उन्होंने इसका स्पष्ट उल्लेख किया है कि अशोक के समय में खनिज पदार्थों के लिए एक विभाग ही स्थापित था। उसमें एञ्जिनियर और इन्सपेक्टर नियुक्त होते थे। प्रयोगशालायें भी बनी थीं। सोलहवीं शताब्दी के पुर्तगालवाले ईसाई धर्म-प्रचारकों ने इन चीनी यात्रियों के विषय में लिखते हुए यह कहा है कि हनको (Hankow) के पुस्तकालय में ऐसे ग्रन्थ हैं जिनमें अशोक के खनिज-विभाग का पूरा पूरा वर्णन है। उक्त विभाग के अधिकारियों को जो आदेश दिये जाते थे वे भी एक ग्रन्थ में लिपि-बद्ध हैं। हर्ष की बात है, अनुसन्धान से एक ऐसा ग्रन्थ उपलब्ध भी हुआ है। मैसूर की सरकार कुछ विद्वानों से इसका अनुवाद करा रही है। इसमें सन्देह नहीं कि यह ग्रन्थ बड़े महत्त्व का होगा।

११—भारतीय कला का आदर्श।

पाश्चात्य विद्वानों का ख़याल है कि भारतीय कला—जिसमें मूर्तिनिर्माण कला भी है—मध्यम श्रेणी की है। उसमें ऐसी कोई विशेषता नहीं जो अनुकरणयोग्य हो। विन्सन्ट स्मिथ साहब ने भी अपने प्राचीन भारतवर्ष के इतिहास में यही भाव व्यक्त किया है। उन्होंने लिखा है—The Gandhara or Peshawar Sculptures of India would be admitted by most persons competent to form an opinion to be the best specimens of the plastic art ever known to exist in India. Yet even these are only echoes of the second rate Roman art of the third and fourth centuries. अर्थात् कलाकोविदों की सम्मति में भारतवर्ष में गान्धार की मूर्तियाँ ही सर्वश्रेष्ठ हैं। परन्तु रोम में तीसरी और चौथी शताब्दी में जैसी मध्यम श्रेणी की मूर्तियाँ बनती थीं उनके ही सदृश ये मूर्तियाँ कही जा सकती हैं। पाश्चात्य

विद्वानों के इस भ्रम का कारण यह है कि वे भारतीय कला का इतिहास और उसके आदर्श से सर्वथा अनभिज्ञ रहते हैं। अभी हाल में कलकत्ते में एच० डब्ल्यू० बी० मेरेनो (H. W. B. Mareno) साहब ने अपने एक व्याख्यान में भारतीय कला का महत्त्व बताया है। उन्होंने कहा कि सातवीं सदी से लेकर तेरहवीं सदी तक चीन की चित्र-कला संसार भर में सर्वश्रेष्ठ थी। चीन की कला का उद्भव भारतवर्ष से ही हुआ था। भारतीय कला का प्रभाव बेज़ेनटाइन (Byzantine) अर्थात् रोम की कला पर तो पड़ा ही है, योरप के मध्ययुग में जो गाथिक केथीडरल (Gothic Cathedral) अर्थात् गिरिजाघर निर्मित हुए हैं—उनमें भी उसका प्रभाव स्पष्ट है। रोमन साम्राज्य का नाश करने के लिए एशिया से जो आक्रमणकारी गये थे उन्हीं के साथ प्राच्य कला भी गई। जब यह कहा जाता है कि भारतवर्ष पर योरप का बड़ा भारी प्रभाव पड़ा तब यह भी कहा जाना चाहिए कि भारतीय आदर्शों ने योरप के विकास में बड़ा भारी काम किया है। भारतीय कला पर योरप के विद्वानों के भ्रम का एक और कारण है। वह है उनका विचार-भेद। योरप में बाह्य प्रकृति पर ध्यान दिया जाता है। भारतवर्ष बाह्य स्वरूप का तिरस्कार करता है; वह अन्तर्गत तत्त्व को ग्रहण करना चाहता है। भारतीयों की दृष्टि में शरीर के उस सूक्ष्म विश्लेषण में सौन्दर्य नहीं है जो हमें फिडियस अथवा माइकेल एञ्जेलो की कृति में मिलता है। वे तो बाह्य आकृति से अतीत आत्मा के सौन्दर्य को स्पष्ट करना चाहते हैं। सारांश, पाश्चात्य कला भौतिक है तो भारतीय कला आध्यात्मिक। जावा के बुरोबुदुर पर डाक्टर लीमैन्स ने एक ग्रन्थ लिखा है। वहाँ की अङ्कणकला पर उनका कहना है कि—वहाँ मांसपेशी चित्रित करने में कुछ भी सोच-विचार नहीं किया गया, पर अन्य भागों को अङ्कित करने में बड़ा नैपुण्य-प्रदर्शन किया गया है।

प्राच्य और पाश्चात्य कलाओं की तुलना करने से मालूम होता है कि ग्रीस ने मानव-शरीर की उत्तम रचना को ही अपना आदर्श मान रक्खा था। भारतवर्ष में प्राचीन काल से ही आर्यों को ईश्वरीय शक्ति को मानवरूप में प्रकट करने से घृणा हो गई थी। वैदिक-काल में न तो मन्दिर-निर्माण किये जाते थे और न मूर्ति-पूजा ही प्रचलित थी। हिन्दू-शास्त्रों में मन्दिरों में मानव-मूर्ति रखना अच्छा नहीं समझा गया। शैव अपने मन्दिरों में लिङ्ग स्थापित करते हैं। यह कदाचित् बौद्ध-काल के स्तूप का रूपान्तर है। बौद्ध धर्म से ही भारतीय कला को बड़ा प्रोत्साहन मिला। अतएव चाहे कुछ बातों में पाश्चात्य प्रभाव पड़ा हो, पर भारतीय कला का आदर्श भारतीय ही है और उसकी आलोचना उसी के आदर्श पर हो सकती है।

१२—पूर्व और पश्चिम।

किसी ने कहा है कि पाश्चात्य तत्त्ववेत्ता गीध के समान हैं। वे खूब ऊँचे तो उड़ जाते हैं पर उनकी दृष्टि नीचे, पृथ्वी ही की ओर, रहती है। इसके विपरीत हिन्दू दार्शनिक पार्थिव पदार्थों की सर्वदा उपेक्षा करते हैं। संसार से यह विरक्ति-भाव हिन्दू दार्शनिक का ही कल्पना-प्रसूत माना जाता है। पर त्याग का यह भाव अन्य धर्मों में भी पाया जाता है। बाबू विनयकुमार सरकार ने लिखा है,—"पार्थिव और अपार्थिव पदार्थों पर हिन्दुओं का जैसा विचार है वैसा ही विचार ईसाई मत में भी पाया जाता है। योरप में भी भारत के समान साधक और द्रष्टा हो गये हैं। उदाहरण के लिए पिथागोरस को ही ले लीजिए। उसके विचारों और हिन्दुओं के विचारों में बड़ा सादृश्य है। वह भी हिन्दू दार्शनिक के समान जन्मान्तरवाद पर विश्वास करता था। वह शाक-भोजन का बड़ा पक्षपाती था। भारतीय योगियों के समान नाना प्रकार की तपस्याओं से शरीर को कष्ट देना वह भी उचित समझता था। प्लेटो का संवित्वाद उपनिषदों के सिद्धान्तों से बड़ा मेल खाता है। चीन के भी कुछ तत्त्ववेत्ताओं के सिद्धान्त ऐसे ही थे। इहलोक का त्याग और परलोक की कामना ईसाई धर्म में भी है। क्राइस्ट ने कहा था, "My kingdom is not this world," अर्थात् मेरा राज्य इस पृथ्वी पर नहीं है। उसने यह भी कहा है, "He that loveth father and mother more than me is not worthy of me," और "If any man cometh unto me and hateth not his father and mother and wife and children he can-

not be my disciple अर्थात् जो अपने माता-पिता पर ममता रखता है, जो अभी उनसे विरक्त नहीं हुआ है, वह मेरा शिष्य नहीं हो सकता। ईसा की तीसरी शताब्दी में प्लोटिनस नाम का एक तत्त्ववेत्ता हुआ है। वह स्वयं योग का अभ्यास किया करता था और उसे विश्वास था कि योग के द्वारा मनुष्य ब्रह्म में लीन हो सकता है। प्लेटो की दृष्टि में समस्त विश्व सप्राण है, सबमें आत्मशक्ति और विवेकशक्ति है। वरजिल का भी यही विश्वास था। गेटे ने भी विश्व में चैतन्यशक्ति का अस्तित्व स्वीकार किया है। आप चाहें तो प्लेटो, वरजिल और गेटे को वेदान्तधर्म का अनुयायी कह सकते हैं।"

१३—पोलेंड की स्त्री-सेना।

योरप में स्त्रियों को सामाजिक स्वतन्त्रता प्राप्त है। वे जो काम चाहती हैं करती हैं। हमारे देश की तरह वहां की स्त्रियां पुरुषों पर आश्रित नहीं रहतीं। वे सभी प्रकार के काम करती हैं। उनका कार्य्य-क्षेत्र ख़ूब बढ़ गया है। समाज में तो उनका अधिकार है ही, अब राजनैतिक विषयों की भी वे चर्चा करने लगी हैं। और बड़े बड़े कारख़ानों की प्रबन्धकर्त्री हैं। वे नये नये आविष्कार करती हैं; व्यवसाय करती हैं; ग्रन्थ-रचना करती हैं और मौक़ा पड़ने पर युद्धक्षेत्र में जाकर लड़ने के लिए भी प्रस्तुत रहती हैं। कुछ समय पहले अमरीका के आइओवा कृषि-महाविद्यालय में पढ़नेवाली स्त्रियों ने अपनी एक पलटन तक खड़ी कर ली थी। आज-कल पोलेंड की जैसी

पोलेंड की स्त्री-सेना।

इँगलेंड की पार्लियामेंट में लेडी एस्टर प्रविष्ट हो चुकी हैं। अमरीका के हाउस आव् रिप्रेज़ेंटेटिव में भी एक स्त्री को आसन मिल गया है। महायुद्ध में स्त्रियों ने अनेक साहसिक काम किये हैं। जो काम पहले वे कभी न करती थीं उन्हें भी उन्होंने कर दिखाया है। अब तो वहां स्त्रियां अध्यापिका हैं, डाक्टर हैं, पुलिस इन्स्पेक्टर हैं, मैजिस्ट्रेट हैं दशा है वह बहुतों पर विदित होगी। वहां बोल्शेविकों के आक्रमण को विफल करने और अपने देश की रक्षा करने के लिए स्त्रियों ने वीरवेश धारण किया है। सैनिक वेश-भूषा और शस्त्रास्त्र से सज्जित स्त्री-सैनिकों का एक चित्र अन्यत्र प्रकाशित है।

१४—कुछ भीषण रोग और उनका प्रतीकार।

रोगों की भीषणता के विशेष कारण हैं अज्ञानता और दरिद्रता। भारतवर्ष में दोनों की प्रधानता है। यही कारण है कि यहां प्रति वर्ष हज़ारों मनुष्यों की अकाल-मृत्यु होती है। एक ओर दुर्भिक्ष और दूसरी ओर रोगों का प्रकोप। इन दोनों के बीच पड़ कर भारतवर्ष यम-लोक की यातना अनुभव कर रहा है। प्रजा की रक्षा करना राजा का कर्त्तव्य है। भारतीय सरकार भी हम लोगों के दुःख-निवारण की चेष्टा करती है। रोगों के प्रतीकार के लिए उसने हज़ारों अस्पताल खोल रक्खे हैं। सफ़ाई और तन्दुरुस्ती के लिए एक महकमा ही अलग क़ायम कर दिया है। इन सब कामों में सरकार लाखों रुपये ख़र्च भी कर देती है। खेद इसी बात का है कि सरकार के यत्नशील होने पर भी रोगों का प्रकोप बढ़ता ही जाता है। कभी प्लेग, कभी महामारी, कभी इन्फ़्लुएञ्ज़ा, एक न एक रोग भारत के पीछे लगा ही रहता है। किस साल किस रोग से कितनी मौतें हुईं, इसका हिसाब पाठक नीचे दी हुई सूची में अवलोकन करें—

रोग	१६१५	१६१६	१६१७
प्लेग	३,८०,४०१	२,०५,२२७	४,३७,०३६
हैज़ा	४,०४,४७२	२,८८,०४७	२,६७,००२
चेचक	८३,२८२	६०,६४२	६२,२७७
ज्वर	३६,६०,२८७	४०,८५,७८४	४५,५१,२२१

चार रोगों का किया हुआ यह तीन साल का काम है। १६१८ में इन्फ़्लुएञ्ज़ा का प्रादुर्भाव हुआ। इसने तो ग़ज़ब ही ढा दिया। गांव गांव, घर घर इसके कारण तबाही आई। प्लेग-देव तो पीछा ही नहीं छोड़ते। केवल युक्त-प्रान्त में ही क़रीब डेढ़ लाख आदमी मरे। प्लेग प्राचीन रोग है। एक बार जहांगीर बादशाह के शासन-काल में भी उसका दौरा हो चुका था। १८६४ में उसका दर्शन चीन के कैन्टन नगर में हुआ। फिर वह हांगकांग, मैको और, धीरे धीरे, चीन के समूचे दक्षिण समुद्र-तट पर फैल गया। १८६६ में वह बम्बई आया। तब से यहां इसका अड्डा सा जम गया है।

यह तो हुआ रोगों का हाल। अब सरकार क्या कर रही है, यह भी सुन लीजिए। प्लेग दूर करने के लिए वह चूहों का नाश करना चाहती है। इसी के लिए वह बार बार नोटिस निकालती है और तरह तरह के उपाय बतलाती है। अभी हाल में फिर एक ऐसी ही विज्ञप्ति निकली है। अन्य रोगों के लिए भी ऐसी ही विज्ञप्तियां निकला करती हैं। कुछ समय पहले युक्त-प्रान्त में डाक्टरों की संख्या इस प्रकार थी—

सिविल असिस्टेंट सर्जन—	१०६
सब-असिस्टेंट सर्जन—	५३१
लेडी डाक्टर—	२७
फ़ीमेल (स्त्री) सब-असिस्टेंट सर्जन—	५०
प्राइवेट मेडिकल प्रेक्टिश्नर (अर्थात् निज के तौर पर डाक्टरी करनेवाले)	११२
प्राइवेट प्रेक्टिस करनेवाली लेडी डाक्टर—	१७
कुछ और मेडिकल प्रेक्टिश्नर—	१६०
कुल—	१००६

इस प्रान्त में एक मेडिकल-कालेज है और दो स्कूल। इनमें कोई तीन चार सौ लड़के शिक्षा पाते हैं।

सरकार की इस कृपा का अधिकांश लाभ शहरवाले ही उठाते हैं। बेचारे देहातियों के भाग्य में न तो अस्पताल है और न डाक्टर। वे लोग तो सोंठ, मिर्च, पीपल और चिरायते ही से अपने रोगों का इलाज करते हैं। यदि रोग कठिन हुआ तो किसी अताई वैद्य या हकीम की शरण लेते हैं।

यह भारतवर्ष का हाल है। अन्य देशों की ऐसी दशा नहीं। जापान ही को लीजिए। वहां की गवर्नमेंट को लोगों की तन्दुरुस्ती का बड़ा ख़याल रहता है। देश भर में कोई एक हज़ार अस्पताल होंगे। सिर्फ़ स्कूल के लड़कों की देख रेख के लिए एक हज़ार डाक्टर नियत हैं। जापान में एक स्वास्थ्य-समिति भी है। उसकी देख-भाल में हज़ारों डाक्टर काम करते हैं। योरप और अमरीका में चिकित्सा-शास्त्र के वैज्ञानिक अनुसन्धान में ही हज़ारों विद्वान् लगे रहते हैं। जहां कोई नई खोज हुई कि वह सर्वसाधारण के सामने लाई गई। लोग उसे सुनते हैं और उसका ज्ञान प्राप्त करने की चेष्टा भी करते हैं। यह सब सुशिक्षा का संस्कार है। यहां तो सभी बातों की कमी है।

१५—नोबल-पुरस्कार।

सरस्वती के पाठक नोबल-पुरस्कार से अवश्य परिचित

होंगे। यह प्रति वर्ष दिया जाता है। परन्तु १९१८ और १९१९ में नोवल-पुरस्कार किसी को नहीं दिया गया था। इस साल साहित्य का पुरस्कार स्पेन के एक नाटककार जेसिन्टो बेनावेन्ट (Jacinto Benavente) नामक कवि को मिला है। साहित्य का पुरस्कार जर्मनी को चार बार, फ़्रांस को तीन बार, स्वीडन और डेनमार्क को दो दो बार, स्पेन को दो बार और नारवे, स्पेन, पोलंड, इटली, बेलजियम, भारतवर्ष और इँगलेंड को एक बार मिला है। भारतवर्ष में यह पुरस्कार रवीन्द्र बाबू को मिला था और इँगलेंड में किपलिंग साहब को। किपलिंग साहब को भी हम एक प्रकार से भारतवर्षीय ही कह सकते हैं, क्योंकि उनकी जन्म-भूमि भारतवर्ष ही है।

इस नोवल-पुरस्कार के दाता आलफ्रेड नोवल थे। उन्होंने डिनामाइट नामक बारूद के व्यापार से प्रचुर धन पैदा किया। १८९६ ईसवी में उनकी मृत्यु हुई। उन्होंने अपना धन इसलिए दान कर दिया कि उससे पांच पुरस्कार प्रति वर्ष दिये जायँ। ये पुरस्कार उनको मिलें जिन्होंने पदार्थ-विज्ञान, रसायन-शास्त्र, शारीर विज्ञान अथवा वैद्यक-शास्त्र, साहित्य और सार्वभौम शान्ति के प्रसार में सबसे श्रेष्ठ काम किया हो। तीन पुरस्कारों के निर्णय का अधिकार स्वीडन की ही Swedish Academy of Science नामक संस्था को है। शारीर विज्ञान के पुरस्कार का निर्णय स्टाकहोम की एक विद्वत्परिषद् (Carolin Institute) करती है। पांचवें पुरस्कार के निर्णय के लिए पांच विद्वानों की एक समिति है।

१६—गोयनका मिल्स।

देहली में कपड़े का एक पुतली-घर शीघ्र ही खुलने-वाला है। उसकी मालिक कम्पनी का नाम होगा—The Goenka Cotton Spinning and Weaving Mills Company, Limited—इस मिल का व्यवस्था-पत्र इसी संख्या में अन्यत्र छपा है। पाठक उसे पढ़ें। देश की वर्तमान दशा में ऐसी ऐसी मिलों का खुलना परमावश्यक है। बात इतनी ही है कि प्रबन्ध ठीक हो, डाइरेक्टर अपनी ज़िम्मेदारी को समझें और अधिकारी तथा कर्म्मचारी तजरुबेकार और योग्य हों।

पुस्तक-परिचय।

१—हिन्दी-डिक्टेशन—इस मध्यमाकार पुस्तक की पृष्ठ-संख्या ८० और मूल्य ।≈)॥ है। इसे पण्डित गोकुलचन्द्र शर्म्मा ने लिखा है। साहित्य-सदन, अलीगढ़, को लिखने से मिलती है। डिक्टेशन अर्थात् इम्ला के सम्बन्ध की यह पहली ही पुस्तक हिन्दी में बनी है। इससे भिन्न प्रान्तवासी वे लोग भी जो हिन्दी लिखना सीखना चाहें यथेष्ट लाभ उठा सकते हैं। हिन्दी-स्कूलों के विद्यार्थियों के भी यह बड़े काम की है। अब तो स्कूल-लीविंग परीक्षा में डिक्टेशन का भी एक परचा रहता है। उस परीक्षा के उम्मेदवारों को भी इससे बहुत सहायता मिल सकती है। इसमें पहले तो डिक्टेशन लिखने की प्रणाली बताई गई है, फिर डिक्टेशन लिखने में किन बातों को ध्यान में रखना चाहिए, इस पर लेखक महाशय ने अपने विचार व्यक्त किये हैं, जो बहुत ठीक हैं। डिक्टेशन लिखने में छात्र विशेष करके कौन कौन सी भूलें करते हैं, इसका भी विस्तृत विवेचन उन्होंने किया है। विराम-चिह्नों के प्रयोग की विधि भी आपने बताई है। अन्त में अभ्यास के लिए, अच्छे अच्छे लेखकों के लेखों के अंश दिये गये हैं। जिस मतलब से यह पुस्तक लिखी गई है उसकी सिद्धि इससे अवश्य हो सकती है।

☼

२—पृथ्वीराज—इस मँझोले आकार की अच्छी छपी हुई पुस्तक की पृष्ठ-संख्या १२१ और मूल्य १) है। इसे पण्डित चन्द्रशेखर पाठक ने लिखा है। मिलने का पता है—पाठक एंड कम्पनी, २३ चोर-बागान, कलकत्ता। इसमें देहली के अन्तिम नरेश पृथ्वीराज चौहान का चरित है। अनेक ऐतिहासिक पुस्तकों के आधार पर सुन्दर भाषा में लिखी गई है। पुस्तक में कई चित्र भी हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से पुस्तक बड़े महत्त्व की है। इसे लिखने में लेखक को पृथ्वीराजविजय नामक काव्य भी देख लेना चाहिए था जिसका कुछ अंश कलकत्ते में ही छप गया है।

☼

३—योगत्रयी—लेखक, ठाकुर प्रसिद्धनारायणसिंह बी० ए०; प्रकाशक, देशसुधार-ग्रन्थमाला-कार्यालय, भोजूबीर, बनारस; पृष्ठ-संख्या ९६, मूल्य ॥)

रामाचारक नाम के कोई योगिराज हैं। वे शायद अमेरिका में रहते हैं और अँगरेज़ी भाषा के द्वारा योग-शिक्षा देते हैं। उन्हीं के एक अँगरेज़ी-ग्रन्थ का यह खण्डानुवाद है। ठाकुर साहब ने योगीजी के अन्य ग्रन्थों के भी अनुवाद किये हैं। उनमें से श्वास-विज्ञान की आलोचना सरस्वती में निकल चुकी है। हिन्दी में कुछ समय से आध्यात्मिक विषयों पर खूब ग्रन्थ प्रकाशित हो रहे हैं। स्वामी विवेकानन्द के कर्मयोग, राज-योग और भक्ति-योग पर कई ग्रन्थ निकल चुके हैं। इस पुस्तक में भी इन्हीं योगों का वर्णन है। जान पड़ता है, यह ग्रन्थ योगी जी ने अपने शिष्यों के हितार्थ लिखा है। इसमें उन्होंने अपने मतों का प्रतिपादन किया है। आपका कथन है कि मनुष्य की परमात्म-विषयक भावना में क्रमशः विकास होता रहता है। कल का ईश्वर आज के ईश्वर की अपेक्षा और भी उच्च हो जायगा। अतएव वैदिक काल के ऋषि जिस परमात्मा के ध्यान में मग्न रहते थे उसकी अपेक्षा आधुनिक भारतवर्ष का परमात्मा उच्चतर है। यह तो विकास-सिद्धान्त का बड़ा विकट प्रतिपादन है। आत्मज्ञान के जिज्ञासुओं को अब विदेशी भाषा और साहित्य का आश्रय ग्रहण करना पड़ता है। तथापि ठाकुर साहब की यह पुस्तक निःसन्देह अच्छी है। इसमें विषयों का प्रतिपादन योग्यतापूर्वक किया गया है। सब बातें समझ में आ जाती हैं। अतएव पढ़ने में मन लगता है। रहा, इस पुस्तक के सिद्धान्तों का अनुसरण और अभ्यास। सो इसके विषय में अधिकारी पुरुष कुछ कहें तो कह सकते हैं, हम नहीं।

❋

४—यूरोप के प्रसिद्ध शिक्षण-सुधारक—लेखक पण्डित चन्द्रशेखर वाजपेयी, सम्पादक—श्रीयुत श्रीप्रकाश, बी० ए०, एल-एल० बी०, बारिस्टर-एट-ला; प्रकाशक—ज्ञान-मण्डल-कार्यालय, काशी। आकार मध्यम, पृष्ठ-संख्या १८८, मूल्य १॥=)। काग़ज़ और छपाई अच्छी।

शिक्षा का महत्त्व किसी से छिपा नहीं। परन्तु शिक्षा देना सबका काम नहीं। वह भी एक कला है। अन्य कलाओं की भाँति शिक्षण-कला का भी संसार में बहुत कुछ संस्कार और प्रचार हुआ है। अर्वाचीन योरप और अमेरिका में इस कला की बड़ी उन्नति हुई है। वहाँ देश के बड़े बड़े विद्वानों का ध्यान शिक्षा-सम्बन्धी प्रश्नों को हल करने पर रहता है। कुछ लोग तो शिक्षा-प्रणाली में सुधार करने के कारण अपना नाम अक्षय्य कर गये हैं। इस पुस्तक में ऐसे ही प्रसिद्ध प्रसिद्ध शिक्षा-सुधारकों का हाल दिया गया है। हिन्दी में अब तक इस विषय का कोई अच्छा ग्रन्थ न था। सन्तोष का विषय है कि प्रस्तुत पुस्तक के लेखक ने हिन्दी के इस अभाव को दूर करने की चेष्टा की है। लेखक महोदय का कथन है कि उन्होंने अँगरेज़ी की दो पुस्तकों के आधार पर इसकी रचना की है। यह पुस्तक उनका सारांश है। अतएव डर है कि इस संक्षिप्त सारांश से अँगरेज़ी-भाषा से अनभिज्ञ हमारे देश के शिक्षक इससे विशेष लाभ न उठा सकेंगे। पर इसमें सन्देह नहीं कि इससे उनकी ज्ञान-वृद्धि अवश्य होगी। वे योरप के प्रसिद्ध शिक्षा-सुधारकों के जीवन और उनकी शिक्षापद्धतियों से अवगत हो जायँगे। यही क्या कम है कि हिन्दी के पाठक रूसो और फ्रीबल के विषय में कुछ तो जान सकेंगे। जो लोग शिक्षक नहीं हैं और शिक्षा के विषय में कुछ जानना चाहते हैं उनके लिए भी यह पुस्तक लाभदायक है। खेद की बात है, इस उत्तम पुस्तक के प्रूफ़ ठीक ठीक नहीं देखे गये और इसकी भाषा को बामुहावरा और व्याकरण-सम्मत करने की चेष्टा भी नहीं की गई। लेखक और सम्पादक दोनों की भाषा में अनेक दोष रह गये हैं। यथा—

सम्पादक की भाषा के दोषों के नमूने

(१) हर एक पुश्त × × × यत्न करता है
(२) छोटे उमर के बालक
(३) भारत के विशेष दशा पर विचार

लेखक की भाषा के दोषों के नमूने

(१) वे सिल सिलेवार की शिक्षा (पृष्ठ २६)
(२) बड़े खातिर से रखता (पृष्ठ ८९)
(३) हमारे पाठशालाओं (पृष्ठ १७२)

सम्भव है, इसके विद्वान् सम्पादक और लेखक ऐसी ही भाषा को शुद्ध और आदर्श भाषा समझते हों।

❋

५—सदाचारदर्शन—प्रणेता पण्डित रामनारायण शास्त्री। आकार छोटा, पृष्ठ-संख्या ९६, काग़ज़ और छपाई अच्छी, मूल्य ॥)। लेखक के पास विद्या-प्रचारक संस्था,

स्थान नासिक सिटी, के पते पर लिखने से पुस्तक मिल सकती है।

यह विचित्र पुस्तक है। विचित्र इसलिए कि इस कलि-काल में 'दर्शन' लिखने का साहस कोई नहीं करता। प्राचीन हिन्दू-दर्शन-शास्त्रों का अनुकरण करके शर्म्माजी ने सूत्र-रूप में इस नये दर्शन की रचना की है। आप ही इसके व्याख्याकार हैं। आपने यह अच्छा काम किया कि स्वयं व्याख्या लिख दी। नहीं तो आपके जटिल सूत्रों के अर्थ लगाने में पाठकों को बड़ी दिक़्क़त होती। आपका पहला सूत्र है—"सच्चरित्र वर्तन प्रकार को सदाचार कहते हैं।" इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार किया गया है, "जिस चरित्रशीलता से किसी के साथ अन्याय न होकर मर्यादापूर्वक जीवन व्यतीत किया जाय उसका नाम सच्चरित्र और तदनुसार वर्तन-प्रकार को सदाचार कहते हैं।" अब पाठक इसका जैसा मतलब चाहें लगावें। आपने इसी तरह के १०० सूत्र लिख कर शिष्टता, सभ्यता, दश पाप, दश पुण्य, उपकार, आपद्धर्म्म आदि कोई २० विषयों की व्याख्या की है। विषयों का चुनाव तो आपने अच्छा किया है, पर आपके सूत्रों और व्याख्याओं की भाषा और विचार-विवेचन की शैली आपकी "शास्त्री" उपाधि के सर्वथा अनुकूल ही हुई है। पुस्तक के टाइटिल पेज पर भी—"सरस्वत्यां समालोचनार्थे"—लिख कर आपने शास्त्रीपन का पिण्ड नहीं छोड़ा।

*

६—रत्नभंडार—अर्थात् ज्ञानरामायण। इसके लेखक और प्रकाशक हैं आयुर्वेद-विशारद रसशास्त्री भद्र-गुप्त वैद्य। मूल्य ।=)। काग़ज़ और छपाई साधारण है। इसमें तुलसीदासजी की रामायण से भिन्न भिन्न विषयों पर अच्छे अच्छे पद्य उद्धृत किये गये हैं। पद्यों के नीचे उनका अर्थ भी सरल हिन्दी में लिख दिया गया है। सबके पढ़ने लायक़ है। पद्यों का चुनाव अच्छा हुआ है। पर तुलसीदास के अच्छे से भी अच्छे पद्य, जो आर्य्य-समाज के सिद्धान्तों के प्रतिकूल हैं, इस संग्रह में नहीं फटकने पाये। पुस्तक मिलने का पता—बाबू चिम्मनलाल भद्रगुप्त वैश्य, तिलहर, ज़ि० शाहजहाँपुर।

७—पञ्जाब का हत्या-काण्ड—इसमें बड़े आकार के ढाई सौ सफ़े हैं। ऊपर मामूली सी जिल्द है। भीतर कई चित्र हैं। मूल्य है, ४) रुपये। इसका सम्पादन पण्डित मातासेवक पाठक ने और प्रकाशन—भारतीय पुस्तक-एजन्सी, ११, नारायणप्रसाद बाबूलेन, कलकत्ता, ने किया है। पञ्जाब में जो कष्टकारक काण्ड हुआ था उसके सम्बन्ध की रिपोर्टों का सारांश इसमें हिन्दी में दिया गया है। पहले कांग्रेस-कमीशन की रिपोर्ट का सारांश है। फिर हंटर-कमिटी के बहु-संख्यक सदस्यों की रिपोर्ट का, और अन्त में उसी के अल्प-संख्यक सदस्यों की रिपोर्ट का। पुस्तकान्त में कांग्रेस-कमीशन के सामने दी गई कुछ चुनी हुई गवाहियों का भी अनुवाद है। पञ्जाब की इन दुर्घटनाओं के सम्बन्ध में जिन्हें कुछ जानना बाक़ी हो वे इस रिपोर्ट को पढ़ कर अपने अज्ञानांश की पूर्ति कर सकते हैं।

८—श्रीमद्भगवद्गीतासार—आकार मध्यम, पृष्ठ-संख्या ६६, टाइप बड़ा, काग़ज़ साधारण, मूल्य १२ आने। लेखक—पण्डित घासीराम चतुर्वेदी, प्रकाशक—बाबू गोपाललाल, चाँदनी चौक, रतलाम, से प्राप्य। गीता के अठारहों अध्यायों का संक्षिप्त सार इसमें पद्यबद्ध किया गया है। छन्द आज-कल का प्रचलित छन्द, लावनी के ढङ्ग का, है। पद्यों की भाषा नई और पुरानी हिन्दी की खिचड़ी है। जगह जगह पर छन्दोभङ्ग भी है। हमारी समझ में गीता के सदृश पुस्तक का अनुवाद गद्य में ही लोग अधिक पसन्द कर सकते हैं। तथापि पद्य के प्रेमी इसे मँगा कर देखें कि इसकी पद्य-रचना उन्हें पसन्द है या नहीं। हमें तो वह नीरस जँचती है।

*

९—विधवा-विवाह-खण्डन—इस छोटी सी ६२ सफ़े की पुस्तक की रचना पण्डित झम्मनलाल तर्कतीर्थ (कलकत्ता) ने की है। प्रकाशक हैं—श्रीलाल जैन, ८, महेन्द्र बोस लेन, श्याम-बाज़ार, कलकत्ता। दलीलों और शास्त्रीय अवतरणों से इसमें विधवा-विवाह का खण्डन किया गया है। यह सब ठीक। विधवा-विवाह अशास्त्रीय सही। पर और भी कोई अशास्त्रीय आचार-व्यवहार होते हैं या नहीं? यह प्रायः सारी की सारी द्विजाति अपने वर्णा-श्रम-धर्म्म से च्युत है या नहीं? वेद न पढ़ कर अँगरेज़ी

पढ़ना और सेवावृत्ति करना किस शास्त्र में लिखा है? इन बातों का कोई खण्डन क्यों नहीं करता? और, वेद-त्यागी ब्राह्मणों को पतित या शूद्र समझ कर उनका सम्पर्क कोई क्यों नहीं छोड़ता? इस विधवा-विवाह ही के कारण इतना महाभारत क्यों?

१०—तिलक-गाथा—इस १६ सफ़े की अच्छी छपी हुई पुस्तक में लोकमान्य बाल गङ्गाधर तिलक के परलोक-वास पर पद्यात्मक शोक-प्रकाशन किया गया है और उनकी कीर्ति-कथा कही गई है। इसे पण्डित झाबरमल्ल शर्म्मा ने लिखा है। पुस्तक में तिलक महाराज के कई हाफटोन चित्र हैं। मूल्य ।≈) है। मिलने का पता—राजस्थान एजन्सी, ८।१, रामकुमार रक्षित लेन, कलकत्ता।

११—शनिविचार—इसकी पृष्ठ-संख्या ५२, छपाई साधारण और मूल्य ॥) है। इसका सम्पादन रतलाम के ज्योतिषी श्रीनिवास महादेव पाठक ने किया है। आपही इसे बेचते हैं। यह पुस्तक ज्योतिषियों के काम की है। क्योंकि इसमें शनैश्चर की साढ़े सात वर्ष की दशा आदि का विस्तृत वर्णन है। हिन्दी में ही शुभाशुभ फलों का विवेचन अच्छी तरह किया गया है। इसके सिवा शनि-दशा आदि के सम्बन्ध में और भी कितनी ही ज्ञातव्य बातें हैं।

१२—खाँगर जाति का इतिहास—इसकी पृष्ठ-संख्या २४, छपाई और कागज़ बहुत ही साधारण, और मूल्य ≡) है। इसके लेखक बाबू गोविन्ददास हैं। आपका पता है—छत्रपुर, बुँदेलखण्ड। आप ही से यह पुस्तक मिल सकती है। बुँदेलखण्ड में खांगर या खँगार नाम के कुछ लोग रहते हैं। समाज की दृष्टि में उनका स्थान ऊँचा नहीं समझा जाता। पुस्तक में लेखक ने इसका प्रतिवाद किया है और यह लिखा है कि पूर्व काल में इन लोगों के वंशज बड़ी ऊर्जितावस्था में थे। उनके हाथ में बड़ी प्रभुता थी। वे लोग बड़े वीर थे; उनमें से कितने ही राजा भी हो गये हैं। खँगार शब्द खड्गाहार का अपभ्रंश है। आपने अपने वक्तव्य की पुष्टि में ऐतिहासिक प्रमाण भी दिये हैं।

१३—Annual Report of the Deva Samaj कानपुर ज़िले के अग्निहोत्रीजी ने भगवान् देव-गुरु की पदवी धारण करके लाहौर में जिस देव-समाज की स्थापना की है उसी की यह वार्षिक रिपोर्ट है। रिपोर्ट अँगरेज़ी में है और दिसम्बर १९१८ से नवम्बर १९१९ तक की है। इस समाज ने धर्म्म और सदाचार की कितनी वृद्धि की है, यह तो हमें मालूम नहीं, पर रिपोर्ट से यह अवश्य सूचित होता है कि यह शिक्षा-प्रचार का काम बहुत कुछ कर रहा है। यह काम सर्वसाधारण के चन्दे से चलता है। बड़े बड़े लोग भी चन्दे से इसकी सहायता करते हैं और इसके कार्य्यों को अच्छा समझते हैं।

१४—जीवन-स्मृति—इस छोटे आकार की, छोटे ही टाइप में छपी हुई, मराठी-भाषा की पुस्तक की पृष्ठ-संख्या २२५ और मूल्य १।) है। मनोरञ्जक-ग्रन्थ-प्रसारक मण्डली, गिरिगाँव, बम्बई, ने इसका प्रकाशन किया है और वही इसे बेचती है। कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपने जीवन के पूर्वार्द्ध का वृत्तान्त स्वयं ही लिखा है। पहले वह बँगला में निकला था, फिर उसका अनुवाद अँगरेज़ी में प्रकट हुआ। इस आत्मवृत्त का ढङ्ग अनोखा, भाषा सरस और आलङ्कारिक और भाव हृदयस्पर्शी है। यह देख कर "मासिक मनोरञ्जन" के सम्पादक की प्रार्थना पर श्रीयुत श्रीपाद सखाराम गोखले, बी० ए०, एल० टी० ने इसका रूपान्तर मराठी में कर देने की कृपा की। वही अब "मनोरञ्जन" के ग्राहकों को उपहार में दिया गया है। पुस्तक के अच्छे होने में सन्देह नहीं। खेद है, इसका अनुवाद हिन्दी में अब तक नहीं हुआ।

१५—गान्धी-सिद्धान्त—इस मध्यमाकार पुस्तक पर सुन्दर जिल्द है। छपाई और कागज़ उत्तम है। पृष्ठ-संख्या है इसकी डेढ़ सौ के ऊपर। मूल्य १॥) है। श्रीयुत मोहनदास करमचन्द गान्धी की एक गुजराती पुस्तक है—हिन्द-स्वराज्य। यह पुस्तक १९०८ ईसवी में, ट्रांसवाल में, प्रकाशित हुई थी। गान्धीजी इसका अँगरेज़ी-अनुवाद भी, (Home Rule for India के नाम से) प्रकाशित कर चुके हैं। इसी अँगरेज़ी-पुस्तक का यह हिन्दी-अनुवाद है। अनुवादकर्त्ता पण्डित लक्ष्मण नारायण गर्दे (१, नरसिंह

लेन, कलकत्ता) हैं। उन्हीं से यह मिल सकती है। इसमें क्या है, यह बताने की आवश्यकता नहीं। स्वराज्यवादियों के लिए तो यह संहिता-सदृश ही है, गान्धीजी के अन्यान्य अनुयायियों और भक्तों के भी मननयोग्य है। पुस्तकान्त में एक परिशिष्ट है। उसमें (१) विख्यात पुरुषों के प्रमाण-पत्र (२) महात्मा टालस्टाय और सत्याग्रह (३) रवीन्द्रनाथ का पत्र और (४) स्वदेशी व्रत, ये चार प्रकरण भी बड़े महत्त्व के हैं।

❋

कुछ और चीज़ें

(१) मथुरा की सुखसञ्चारक कम्पनी ने कृपा करके—
४ अँगूठियाँ और
१ होल्डर
भेजा है। अँगूठियां सुनहरी गिलट की हैं। लिखा है, ये अँगूठियां भारतीय नेताओं के चित्र की हैं। देखने में असली सोने की मालूम होती हैं। दाम फ़ी अँगूठी आठ आने। होल्डर चन्दन का है और अच्छा है। दाम चार आने।

❁

(२) वैद्य घूरा मिश्र, राघोपुर, पो० बिहटा, पटना, ने कुछ गोलियां भेजी हैं। आप कहते हैं, इन्हें मुँह में डालने से प्यास नहीं लगती। इसके आगे और कुछ हम जान बूझ कर नहीं लिखते।

❋

नीचे नाम दी गई पुस्तकें भी मिल गई हैं। भेजनेवाले महाशयों को धन्यवाद—

(१) श्रीशम्भुसुधामणिः
(२) पावसचन्द्रिका
(३) श्रीहरिगंगाशतक
} प्रेषक—आर० जे० ब्रदर्स ऐंड कम्पनी, गुदड़ी-बाज़ार, कानपुर।

(४) त्रिकालिका—लेखक, पण्डित श्रीरामाज्ञा द्विवेदी, हिन्दू-विश्वविद्यालय, काशी।

(५) दयादर्पण—लेखक, पण्डित खैरातिराम शास्त्री, जालन्धर शहर।

(६) मानवपथप्रदर्शक, दूसरा अङ्क—लेखक, श्रीयुत गजाधर साहु, काशी।

(७) मालव-छात्रोन्नति-मण्डल की नियमावली
(८) „ „ की सविस्तर व्याख्या
(९) „ „ का पूर्वाङ्क
} प्रकाशक, पण्डित श्रीकृष्णाचार्य, इन्दौर।

(१०) जातीय शिक्षा—प्रकाशक, सेक्रेटरी, आत्म-तिलक-ग्रन्थ सोसायटी, अहमदाबाद।

(११) मेहरबानी के पाठ—लेखक, लाला भगतराम, फ़ीरोज़पुर।

(१२) The Rules and Regulations of The Pethapur Education Society } प्रकाशक, डा० माणेकलाल मगनलाल, पेथापुर।

चित्र-परिचय।

आकस्मिक विपत्ति।

सरस्वती के इस अङ्क में आकस्मिक विपत्ति नाम का रङ्गीन चित्र प्रकाशित हुआ है। इसे कलकत्ते के प्रसिद्ध चित्रकार बाबू रामेश्वरप्रसाद वर्मा ने अङ्कित किया है। मध्ययुग में भारतीय वीरों को बहुधा बीहड़ जङ्गलों और पर्वतों से होकर यात्रा करनी पड़ती थी। कभी कभी सिंहों तक से उनकी मुठभेड़ हो जाती थी। ऐसी यात्रा में उन्हें प्रायः संकटों का सामना करना पड़ता था। परन्तु वे ऐसी आकस्मिक विपत्तियों से ज़रा भी धैर्यच्युत न होते थे। इस चित्र में भी चित्रकार ने यही बात बड़ी कुशलता से प्रकट की है। देखिए, सिंह के आक्रमण से स्त्री तो भयभीत हो गई है। परन्तु वीर अश्वारोही विचलित नहीं हुआ। वह स्त्री को सँभाल कर पीछे देख रहा है। उसके चेहरे से निर्भीकता साफ़ टपक रही है।

Printed and published by Apurva Krishna Bose, at The Indian Press, Ltd., Allahabad.
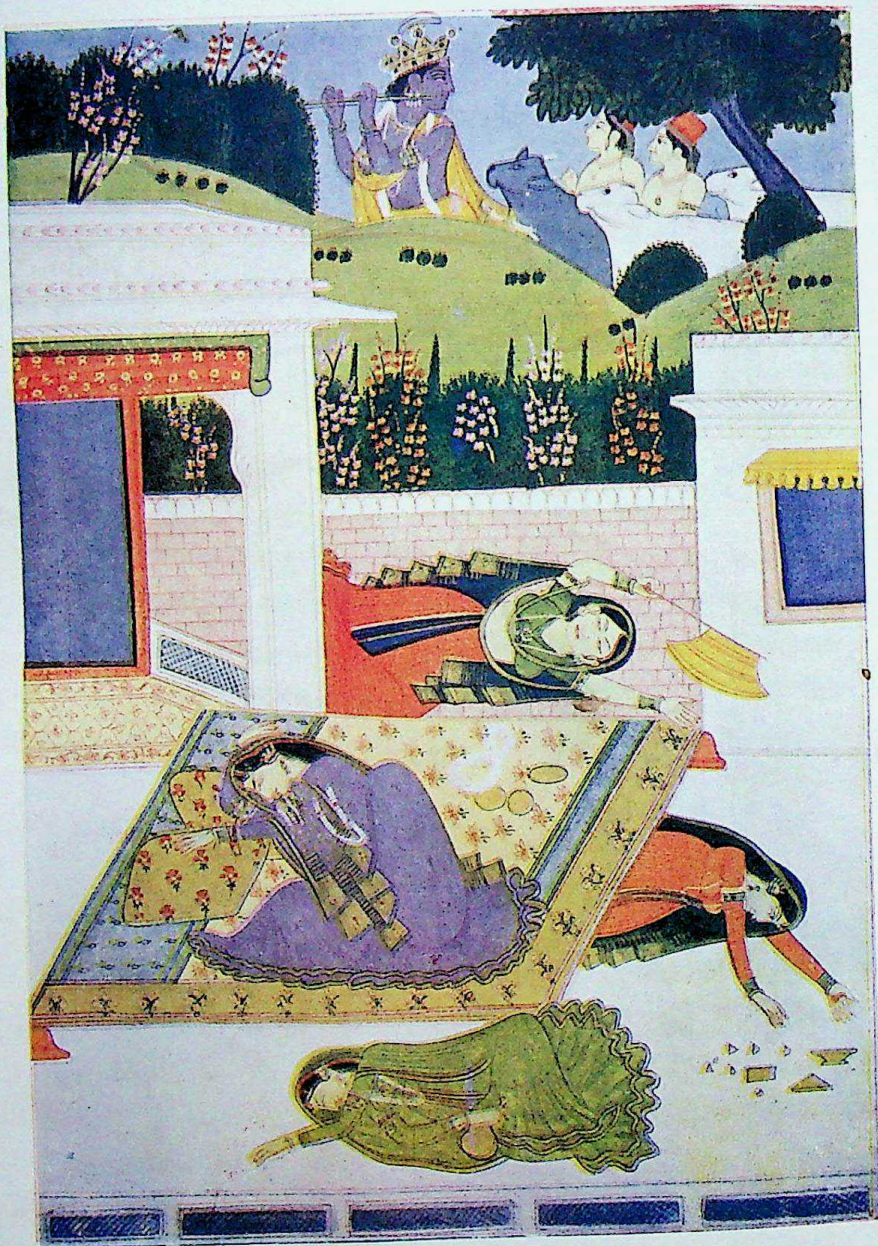
वंशी-ध्वनि ।

कवित्त ।

एक ओर बीजना ढुरावत चतुर नार, एक ओर सखी कर लिये झारी पान की ।
पाछे ते खवासनि खुलावे पान खोल खोल, राधे मुख लाली ज्यों तमकत रतान की ॥
ताही समें बंसरी बजाई कान्ह कुंजन में, आई सु वाकी वाही कुंज केल तान की ॥
बायें गिरी नीरवारी दाहने समीरवारी, पाछे पानदानवारी आगे वृषभान की ॥ १ ॥

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग ।
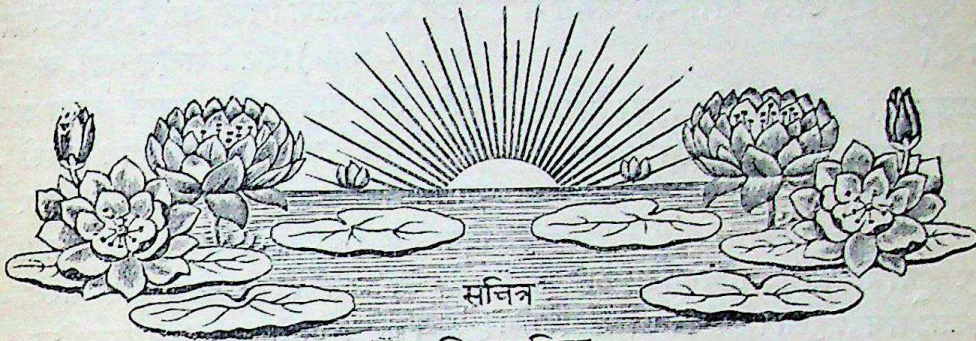
भाग २१, खण्ड २] नवम्बर १९२०—कार्तिक १९७७ [संख्या ५, पूर्ण संख्या २५१

मेरे प्यारे हिन्दुस्तान ।

हम बुलबुल तू चमनिस्तान
हम शरीर तू प्राण-समान
नहीं कहीं तेरा उपमान
जान माल तुझ पर कुरबान १—मेरे०

तू था दुनिया का सरताज
तेरा है हम सबको नाज़
तेरे हाथ हमारी लाज
तुझसे ही हम सबका त्राण २—मेरे०

एक नहीं हम कई करोड़
कर उद्योग काहिली छोड़
सत्पथ से तू मुँह मत मोड़
आँख खोल बलवीर्य-विधान ३—मेरे०

मक्का मसजिद देवस्थान
काशी और प्रयाग-समान
तू ही हम सबका भगवान
जै महान जै महिमावान ४—मेरे०

जिल्वा तेरा जग में छाया
जो जिसने माँगा सो पाया
ग़ैरों को भी सभ्य बनाया
धन्य धन्य जै जै भगवान ५—मेरे०

पञ्चानन

विक्टर ह्यूगो ।

ह्यूगो की गणना संसार के सार्वभौम कवियों में है। उसकी रचना-शक्ति विलक्षण थी। उसने लगातार ५० वर्ष तक साहित्य-सेवा की। वह कवि था, नाटककार था और उपन्यास-लेखक भी था। योरप में उसके ग्रन्थों का बड़ा मान है।

फ्रांस के बेसनकान (Basancon) नामक नगर में, २६ फ़रवरी सन् १८०२ को, ह्यूगो का जन्म हुआ। वह अपनी माता के द्वारा स्नेहपूर्वक प्रतिप्रालित

हुआ। उसकी माता ने राजपक्ष ग्रहण करके नेपोलियन के एक सेनाध्यक्ष के साथ विवाह किया था। राजपक्ष के उत्थान और पतन पर इनका भाग्य अवलम्बित था। ह्यूगो ने अपने शैशव-काल में ही इसका अनुभव कर लिया था। बालक ह्यूगो पर इसका बड़ा प्रभाव पड़ा। यह उसके प्रारम्भिक ग्रन्थों में लक्षित होता है।

बाल्य-काल में ही ह्यूगो की प्रतिभा का विकास होने लगा था। स्विनबर्न नामक एक लेखक ने उसके विषय में लिखा है—There was never a more brilliant boy than Victor Hugo अर्थात् विक्टर ह्यूगो से अधिक तीव्र-बुद्धि कोई भी अपने बाल्य-काल में नहीं हुआ। १६ वर्ष की अवस्था में उसने Bug Jargal नामक एक कथा लिखी। उसमें भावों की कोमलता और प्रवणता दोनों अच्छी तरह व्यक्त हुई हैं। दो साल बाद उसने हन डी आइलैंड (Han d' Island) की रचना की। इसके विषय में एक विख्यात विद्वान् की राय है—No boyish work on record ever showed more singular force of hand, more brilliant variety of power—अर्थात् किसी के भी बाल्य-काल की रचना में क़लम की ऐसी कारीगरी और शक्ति-वैचित्र्य नहीं है।

१८२३ में एडले फाउचर (Adele Foucher) नामक एक महिला के साथ उसका विवाह हुआ। शीघ्र ही उसके अन्य ग्रन्थ प्रकाशित हुए। उनसे उसकी बड़ी ख्याति हुई और फ़्रांस के प्रतिभाशाली कवियों में उसकी गणना होने लगी। उसकी कविताओं का पहला सङ्ग्रह ले ओरियन्टेल (Les orientales) है। उसकी अक्षय कीर्ति की स्थापित करने के लिए यही एक ग्रन्थ पर्याप्त था। इसमें ओज है और माधुर्य भी है। इससे कवि का कला-कौशल और भाषा-नैपुण्य दोनों सूचित होते हैं। १८३१ से १८४० तक उसके अन्य कई ग्रन्थ प्रकाशित हुए। सभी में उसकी विलक्षण शक्ति विद्यमान है। शेक्सपियर के बाद वियोगान्त नाट्य-काव्यों की रचना में वह अद्वितीय है, यह सभी लोगों ने स्वीकार कर लिया है।

ह्यूगो के उन्नत हृदय का एक प्रमाण लीजिए। उसने एक नाटक लिखा था, मेरियन डीलार्मे (Marionde Lorme)। इसमें सन्देह नहीं, वह एक उत्कृष्ट वियोगान्त नाटक था। उसमें राजा अपने मन्त्री के वशीभूत बतलाया गया था। चार्ल्स दसवें के शासन-काल में इसी कारण उसका प्रचार बन्द कर दिया गया। चार्ल्स के बाद उसके उत्तराधिकारी ने ह्यूगो को उस नाटक का प्रचार करने की आज्ञा दे दी। पर ह्यूगो ने अस्वीकार कर दिया।

३८ वर्ष की अवस्था में वह फ्रेंच एकेडमी नामक विद्वत्समिति में सम्मिलित हुआ। उस समय उसने जो वक्तृता दी वह नेपोलियन की कीर्ति का स्मारक है। १८४६ में उसने चेम्बर आव् पीयर्स अर्थात् अमीरों की राजकीय सभा में पोलैंड का पक्ष लेकर व्याख्यान दिया। उसका दूसरा व्याख्यान फ़्रांस की तट-रक्षा पर था। उसने नेपोलियन के निर्वासित परिवार के लिए भी ख़ूब प्रयत्न किया। उसका फल यह हुआ कि फ़्रांस के राजा लुई फिलिप ने निर्वासन-विषयक अपनी आज्ञा रद कर दी। इसके बाद फ़्रांस में षड्यन्त्रकारियों ने हत्या पर हत्या करके नेपोलियन बोनापार्ट को सिंहासनारूढ़ कराया। ह्यूगो निर्वासित हुआ और कोई २८ वर्ष तक वह अपने देश के बाहर रहा। इसी समय उसका प्रसिद्ध ग्रन्थ ले चेटीमेंट्स (Les chatiments) निकला। इसमें ह्यूगो के क्षुब्ध हृदय से ऐसे उद्गार निकले हैं जो किसी भविष्यद्वक्ता के वचन जान पड़ते हैं। उनमें पदलालित्य है, दिव्य भावावली है और हृदयहारी व्यङ्ग्य है। सम्भव नहीं, कोई उसका पाठ करके मुग्ध न हो जाय।

ले चेटीमेंट्स के प्रकाशित होने के तीन साल

बाद ले कनटमप्लेशन्स (Les contemplations) निकला। यदि ले चेटीमेंट्स अर्धरात्रि के अन्धकार में लिखा गया था तो इसकी रचना उषःकाल के मनोरम प्रकाश में हुई थी। इसके ६ भाग हैं। पहले भाग में जीवन के प्रभात-काल के सुख-दुःख, भाव और कल्पनायें, उत्साह और स्फूर्ति वर्णित हुई हैं। इसके प्रयुक्त छन्दों में भी वही मधुरिमा और लालित्य है। दूसरे भाग में भाषा की वैसी ही विशदता और छन्दों का वैसा ही वैचित्र्य है, पर भावों में गम्भीरता आ गई है। तीसरा भाग और भी अधिक परिष्कृत हो गया है। चौथे भाग में शोक का उच्छ्वास है। विक्टर ह्यूगो की एक कन्या अपने पति के साथ १८४३ में नारमेण्डी के किनारे डूब कर मर गई थी। इसी घटना से व्यथित होकर कवि ने जो कवितायें लिखी थीं वे सब इस भाग में हैं। इसके एक एक पद से कवि की मर्म-व्यथा प्रकट होती है। इससे अधिक हृदय-ग्राही वर्णन अन्यत्र नहीं मिल सकता। पाँचवें और छठे भाग में भी कुछ कवितायें, भावों की गम्भीरता और विशदता के लिए अद्वितीय हैं।

१८६२ में ह्यूगो का प्रसिद्ध उपन्यास ले मिजेरेबिल (Les miserables) निकला। आज तक ऐसे उपन्यास की सृष्टि ही नहीं हुई है। इसमें आत्मा की कथा है—वह कैसे विकृत होती है और उसका कैसे उद्धार होता है; दुःखों की ज्वाला से उसका परिशुद्ध रूप कैसे उदित होता है। इसमें जीवन के आलोक और तिमिर का, उत्थान और पतन का, बड़ा ही अच्छा वर्णन है।

इसके बाद ह्यूगो ने विलियम शेक्सपियर की कृति पर एक आलोचनात्मक निबन्ध लिखा। उसके पुत्र ने शेक्सपियर के नाटकों का अनुवाद किया था। उसी के साथ भूमिका के रूप में जोड़ने के लिए इस निबन्ध की रचना हुई थी। इसके बाद उसके अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हुए। यह तो हम कह ही आये हैं कि ह्यूगो में विलक्षण रचना-शक्ति थी। अन्त-काल तक उसमें यह शक्ति विद्यमान रही। उसकी मृत्यु के बाद उसके कई ग्रन्थ प्रकाशित हुए। उनमें भी वही विलक्षणता है; वही प्रतिभा-प्रकाश है। अपने जीवन-काल में ही अनन्त यशोराशि अर्जन करके, १८८५ में, विक्टर ह्यूगो ने अपनी इहलीला संवरण की।

ह्यूगो के चरित्र-चित्रण में एक विशेषता है जो अन्य किसी लेखक में नहीं। उदाहरण के लिए स्काट को ही लीजिए। स्काट में भी चरित्र अङ्कित करने की कुशलता थी, अवलोकन की शक्ति थी और कल्पना थी। यही बात विक्टर ह्यूगो में थी। पर ह्यूगो की कृति से जैसा प्रभाव पड़ता है वैसा स्काट के उपन्यासों से नहीं पड़ा। अर्थ और भाव का जो गाम्भीर्य ह्यूगो में है वह स्काट में नहीं। ह्यूगो की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसने मानव-जीवन में हमें अदृष्ट शक्ति का दर्शन कराया है। संसार में सबसे अलक्षित किन्तु सबसे अनुभूत जो हाहाकार-ध्वनि उठ रही है, जिसके कारण सब अपने अधरों के हास्य में हृदय की मर्मव्यथा छिपाये रहते हैं, वह हमें ह्यूगो की कृति में दिखाई देती है। ह्यूगो के साथ पाठकों की अनवच्छिन्न सहानुभूति रहती है। यही कारण है कि पाठक उसकी प्रतिभा से केवल विस्मय-विमुग्ध ही नहीं होते, उसके साथ ही उसके भावस्रोत में बह भी जाते हैं।

साधारण मनुष्यों के अत्यन्त साधारण जीवन में भी काव्यमय सौन्दर्य रहता है, परन्तु उसे देखने के लिए कल्पना और सहानुभूति चाहिए। राजा के प्रासाद और दरिद्र की क्षुद्र कुटी में जीवन का जो उत्थान-पतन होता है, आशा और निराशा का जो द्वन्द्व-युद्ध मचता है, धनिकता और निर्धनता के बाह्य आवरणों के नीचे जो आँधी उठती है, उसका चित्र खचित कर देना कवि का ही कर्त्तव्य है, यद्यपि यहीं उसके कर्त्तव्यों का अन्त नहीं हो जाता।

ह्यूगो के काव्यों का जो विलक्षण प्रभाव पड़ता है उसका कारण यही है। कवि में जैसे भावों की गम्भीरता है वैसे ही कल्पना-शक्ति की उद्दण्डता भी है। परन्तु अस्वाभाविकता ज़रा भी नहीं। वह जिस प्रकार जीवन के अन्धकारमय रहस्यों पर प्रकाश डालने में निपुण है उसी प्रकार वह मनुष्यों की कोमल वृत्तियों को भी अङ्कित करने में सिद्ध-हस्त है।

विक्टर ह्यूगो ने एक बार प्रिन्स विस्मार्क को सम्बोधन कर के कहा था—"तुझमें एक शक्ति है; मुझमें दूसरी शक्ति है। पर मैं तुझसे बड़ा हूँ। तू शरीर है तो मैं आत्मा हूँ। यदि हम दोनों एक हो जायँ तो संसार का अस्तित्व ही न रहे।"

ह्यूगो के इस कथन में क्या केवल गर्वोक्ति है? नहीं, वह याथार्थ्य से भरी हुई है।

शिवाजी का राज्याभिषेक।

[१]

वाजी ने बहुत से देशों पर आधिपत्य जमा लिया था, विपुल सम्पत्ति सञ्चय कर ली थी, और बहुत बड़ी जल और स्थलसेना इकट्ठी कर ली थी। स्वतन्त्र राजा की भाँति वे शासन भी करते थे। परन्तु प्रकट रूप से मुकुटधारी राजा न होने के कारण एक उन्हीं को नहीं, किन्तु उनके मन्त्रियों को भी बहुत सी आपत्तियाँ झेलनी पड़ी थीं। सच तो यह है कि शिवाजी की हैसियत प्रजा की भाँति थी। मुग़ल-बादशाह के सामने वे साधारण ज़मीन्दार थे और आदिलशाह बादशाह के आगे वे एक जागीरदार के विद्रोही लड़के। राजनीति में वे किसी राजा की समता न कर सकते थे।

शिवाजी जब तक साधारण प्रजा की भाँति समझे जाते रहे तब तक उन पर लोगों की विशेष श्रद्धा और भक्ति नहीं हुई। उनके काम भी राजा की हैसियत से न होते थे। न तो वे किसी सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर ही कर सकते थे और न किसी को, क़ायदे के मुआफ़िक़, कोई जागीर ही दे सकते थे। जो देश-प्रदेश उन्होंने, अपनी तलवार के बल से, जीते थे उन पर उनका पूर्णाधिकार था सही; परन्तु फिर भी क़ानून के अनुसार वे उनकी ठीक जायदाद न थे। जो लोग शिवाजी के अधिकार में आ गये थे, या जो उनकी सेना में काम करते थे वे न तो अपने पहले स्वामी के सम्बन्ध ही को तोड़ सके और न शिवाजी की अवज्ञा ही कर सके। अतः शिवाजी को अपनी राजनीति दृढ़ करने की आवश्यकता हुई।

यह भी ठीक है कि भोंसलों के अभ्युदय ने अन्य मराठा-वंशों में ईर्ष्या पैदा कर दी थी। इन लोगों ने शिवाजी को अपना राजा मानने से तो इनकार कर दिया और अपना महत्त्व समझा आलमगीर या आदिलशाह की प्रजा होने में। इसका कारण यह है कि वे लोग शिवाजी को वर्णसङ्कर, डाकू और अन्यायी समझते थे। इसी लिए वे उन पर नाक भौं सिकोड़ा करते थे। अब शिवाजी को ऐसे उपाय की आवश्यकता प्रतीत हुई जिससे इन लोगों की दृष्टि में उनके लिए प्रेमभाव बढ़े। शिवाजी ने सोचा, यदि विधि के अनुसार मेरा राज्याभिषेक हो जाय तो ये लोग मुझे अपना राजा मानने लगेंगे। फिर मैं इनका स्वामी हो जाऊँगा। ऐसा होने पर ही ये लोग बीजापुर और गोलकुण्डे के शासकों की भाँति मेरी इज़्ज़त करेंगे।

[२]

परन्तु शिवाजी को, अपने आदर्श की पूर्ति में, बहुत रुकावटें जान पड़ीं। प्राचीन हिन्दू-शास्त्र के अनुसार केवल वही मनुष्य नियमानुसार राजा बन सकता है जो किसी क्षत्रिय-वंश का हो। उसी दशा में वह हिन्दू—धर्मावलम्बिनी प्रजा की भक्ति का अधिकारी हो सकता है। भोंसले न तो क्षत्रिय-वंश के समझे जाते थे और न किसी द्विजातीय से उस समय उनका सम्बन्ध ही था। वे तो कृषि करते थे। शिवाजी का परदादा भी कृषक ही कहा जाता है। तब, शूद्र-वंश में उत्पन्न होकर शिवाजी को क्षत्रिय के अधिकार कैसे प्राप्त हो सकते? यदि यह बात सिद्ध हो जाय कि शिवाजी का जन्म क्षत्रिय-वंश में हुआ है, तो फिर भारतवर्ष के कोने

कोने से ब्राह्मण लोग उनके राज्याभिषेक के समय उपस्थित हो सकते हैं और उनकी मङ्गल-कामना कर सकते हैं।

इसलिए, सबसे पहले यही आवश्यक समझा गया कि कोई ऐसा पण्डित ढूँढ़ा जाय जिसकी गुण-गरिमा के आगे किसी को भी प्रतिवाद करने का साहस न हो। अनुसन्धान करते करते ऐसे एक पण्डितजी का पता बनारस में लग गया। इनका नाम गङ्गाभट्ट था। इनकी ख्याति चन्द्रकला की भाँति चारों ओर फैल रही थी। सब लोग कहते थे कि पण्डितजी संस्कृत के बड़े ही उद्भट विद्वान् हैं। इनकी समता करनेवाला आज-कल कोई भी नहीं। कुछ समय तक तो गङ्गाभट्टजी ने शिवाजी के मन्त्री बालाजी आवाजी तथा उनके गुमाश्तों की बात नहीं मानी। अर्थात् उन्होंने उन्हें भोंसला-वंश का क्षत्रिय नहीं माना। परन्तु जब उनको कई प्रमाण दिये गये तब, अन्त में, उन्होंने इस बात को स्वीकार कर लिया और जनता में प्रकट कर दिया कि शिवाजी सर्वश्रेष्ठ क्षत्रिय-वंश में हैं। जिस वंश में महाराणा उदयपुर हुए हैं उसी में शिवाजी हैं। इस वंश के पूर्वपुरुष महाराज रामचन्द्रजी हैं। जब पण्डितजी ने अपनी तर्क-शक्ति के द्वारा लोगों को अच्छी तरह विश्वास करा दिया तब शिवाजी ने प्रसन्न होकर उनको विपुल पारितोषिक दिया और कहा—महाराज, राज्याभिषेक के समय मेरे यहाँ पधारिएगा। क्योंकि पुरोहित का कार्य आपको ही करना होगा। पण्डितजी राज़ी हो गये। अभिषेक के अवसर पर जब पण्डितजी का शुभागमन दक्षिण में हुआ तब शिवाजी ने स्वयं सतारे से कई मील आगे बढ़ कर बड़े ठाठ से उनका स्वागत किया।

[३]

राज्याभिषेक की तैयारी में कई महीने लग गये। स्वतन्त्र हिन्दू-महाराज के राज्याभिषेक के समय जिन वस्तुओं की आवश्यकता होती है और जो कर्म्म किये जाते हैं उनका ज्ञान किसी को न था। अतएव, ऐसे अवसर पर पालनीय नियम खोजने के लिए पण्डितों ने एक सभा स्थापित की। फिर सबने अनेक संस्कृत-ग्रन्थों का अवलोकन करना आरम्भ कर दिया। इसके सिवा, कुछ आदमी जयपुर और उदयपुर भी इसलिए भेजे गये कि देखें, वहाँ किस तरह राज्याभिषेक होता है।

भारतवर्ष के प्रत्येक भाग के विद्वान् ब्राह्मणों को निमन्त्रण दिया गया। जब अन्य लोगों ने राज्याभिषेक की ख़बर पाई तब वे सैकड़ों की संख्या में वहाँ आ गये। ग्यारह हज़ार ब्राह्मण वहाँ एकत्र हुए। बाल-बच्चों-समेत उनकी संख्या पचास हज़ार हो गई। ये लोग रायगढ़ में जमा हुए। महाराज ने चार महीने तक उनको दिव्य भोजन कराया। इतिहासज्ञों का कहना है कि महाराज शिवाजी की दूरदर्शिता और कार्यकुशलता से आगन्तुक व्यक्तियों को खाने-पीने और रहने-सहने की ज़रा भी तकलीफ़ नहीं हुई। इस विषय का सारा प्रबन्ध उन्होंने पहले से ही कर रक्खा था। इसी से दर्शकों को भी कोई असुविधा नहीं हुई। सब काम शान्ति के साथ हुआ।

अँगरेज़-राजदूत हेनरी ओक्जिन्डन का कथन है कि उस समय दैनिक धार्मिक क्रियायें करने और ब्राह्मणों से सलाह लेने के अतिरिक्त शिवाजी कुछ भी न करते थे।

शिवाजी ने अपने गुरु रामदास-स्वामी और माता जिजाबाई को अभिवादन किया और उनसे आशीर्वाद ग्रहण किया। शाहजी की त्यागी हुई पत्नी श्री जिजाबाई बहुत ही दुखी और उदास रहती थी। परन्तु उसका वह सारा दुःख पुत्र-प्रेम के कारण कम हो गया था। शिवाजी उसको बहुत मानते थे। अस्सी वर्ष की अवस्था में जब उसने अपने बेटे को, राजा के उच्च पद पर स्थित देखा तब, वह सारे दुःख भूल कर बहुत ही प्रसन्न हुई। पन्द्रह सौ वर्ष पहले जिस प्रकार गौतमी को अपने पुत्र शातकर्णी के वीर और धार्मिक होने से हर्ष हुआ था उसी प्रकार शिवाजी की माता जिजाबाई को भी, पुत्र को धर्मनिष्ठ और नीति-परायण देख कर, बड़ा आनन्द हुआ। पुत्र के राज्याभिषेक के समय तक जीवित रहने से उसे ऐसा ज्ञान पड़ा मानों परम पिता परमात्मा ने उसकी आयु कुछ और बढ़ा दी है। क्योंकि राज्याभिषेक के बारह दिन बाद ही उसका देहान्त हो गया।

[४]

इसके बाद शिवाजी अपने राज्य के प्रसिद्ध प्रसिद्ध मन्दिरों में देव-दर्शन और पूजन करने के लिए रवाना हुए। मई सन् १६७४ में वे चिपलून गये और वहाँ परशुराम के मन्दिर में देव-पूजा करके १२ मई को रायगढ़ लौट आये। इसके चार दिन बाद वे प्रतापगढ़ को

देवी भवानी की पूजा करने गये। इस देवी की प्रतिष्ठा शिवाजी ने ही कराई थी। वे तुलजापुर की भवानी के दर्शन करने नहीं जा सकते थे। इसी से इन्होंने प्रतापगढ़ में ही देवी की प्रतिष्ठा कराई थी। इस मूर्ति के लिए उन्होंने एक स्वर्णछत्र अर्पण किया था, जो तोल में सवा मन का था। उसका मूल्य ५६,०००) रुपये के लगभग था। इसके अतिरिक्त उन्होंने और भी कई बहुमूल्य पदार्थ देवी को भेंट किये थे।

२१ मई को दोपहर के समय रायगढ़ में आकर वे फिर भक्तिभाव में लीन हो गये। अपने कुल-गुरु बालमभट्ट (प्रभाकर-भट्ट के लड़के) की देख-रेख में उन्होंने महादेव, भवानी और स्थानीय अन्य देवी-देवताओं की, कई दिन तक, पूजा की।

राज्याभिषेक होने के पहले उनका जाति-दोष दूर किया गया। सबके सामने वे पवित्र किये जा कर क्षत्रिय बनाये गये। २८ मई को उन्होंने, बहुत दिनों तक क्षत्रिय धर्म से पराङ्मुख रहने के कारण, तपस्या की। इसके बाद गङ्गाभट्ट ने शिवाजी को जनेऊ पहनाया। जनेऊ द्विजातीय का चिह्न है और उत्तरीय भारत के पवित्र क्षत्रिय उसे पहनते हैं। इसके बाद शिवाजी को मन्त्र और क्षत्रिय-जाति के आचार-व्यवहार बताये गये। शिवाजी ने ब्रह्म-मन्त्र और ब्राह्मणों की भांति जीवन बिताने की विधि जाननी चाही। इस पर उपस्थित ब्राह्मणों ने आक्षेप किया और कहा कि यह कभी नहीं हो सकता। अन्त में गङ्गाभट्ट ने, ब्राह्मणों से कुछ नीचा जीवन बिताने के लिए, शिवाजी को शिक्षा दी। शिवाजी की शुद्धि और उपवीत का कार्य बड़े समारोह के साथ हुआ। ख़ूब दान-पुण्य किया गया। अकेले गङ्गाभट्ट को ही ३५,०००) रुपये मिले।

दूसरे दिन शिवाजी ने अपने जन्म भर के ज्ञात-अज्ञात पापों का प्रायश्चित्त किया। राज्याभिषेक हो जाने पर शिवाजी ने तुलादान कर के अपने शरीर के वज़न के बराबर सात प्रकार के धातु, खाद्य पदार्थ और एक लाख हून (एक प्रकार के सोने के सिक्के) ब्राह्मणों को बांटे।

दो विज्ञ ब्राह्मणों ने कहा—महाराज शिवाजी, अपने लूट-खसोट के ज़माने में आपने कई गाँव जला डाले थे। इससे अनेक गायें, ब्राह्मण, स्त्रियां और बच्चे जल मरे। इस महा-पाप से छुटकारा पाने के लिए आपको दान देना चाहिए। इसकी कोई आवश्यकता नहीं कि पाप का प्रतिफल देने के लिए आप उन मृत व्यक्तियों के सगे सम्बन्धियों को ही कुछ दें। आप तो कारंजा के और देश के ब्राह्मणों को ही दक्षिणा देकर इससे निस्तार पा सकते हैं। दान के लिए ८,०००) रुपये बताये गये। तब, शिवाजी ने यह कार्य भी सहर्ष कर दिया।

[५]

स्वर्ण देकर जब शिवाजी ने सब प्रकार की योग्यता प्राप्त कर ली तब राज्याभिषेक का आरम्भ हुआ। ५ जून को शिवाजी महाराज ने गङ्गाजल से स्नान किया और दिन भर उपवास किया। उसी दिन, शाम को, एक बड़ी भारी रस्म अदा की गई, जिसमें शिवाजी ने ५,०००) हून गङ्गाभट्ट को दीं। इसके सिवा प्रत्येक ब्राह्मण को स्वर्ण के सौ सौ टुकड़े मिले। रात भर शिवाजी महाराज ध्यान करते रहे।

सबेरे, सन् १६७४ ईसवी की छठी जून को, महाराज शिवाजी के राज्याभिषेक का दिन था। छठी जून को महाराज शिवाजी ने प्रातःकाल उठ कर स्नान किया, अपने कुल-देवता की पूजा की और अपने पुरोहित गङ्गाभट्ट तथा दूसरे ब्राह्मणों के पैर छुए। उनको बहुत सा दान और वस्त्र दिये गये।

हिन्दू-राजा के राज्याभिषेक में मुख्य दो काम होते हैं। एक तो उसका अभिषेक (स्नान), और दूसरा उसके सिर पर छत्र का रक्खा जाना। उज्ज्वल वस्त्र पहने, तेल-फुलेल लगाये, और आभूषण धारण किये हुए शिवाजी स्नानागार में गये। उनके गले में मालायें पड़ी थीं। वहाँ, दो फुट चौड़ी और इतनी ही ऊँची एक स्वर्णजटित चौकी पर वे बैठे। हिन्दू-शास्त्रों के अनुसार धार्मिक कार्यों में स्त्री भी पति के साथ आधा भाग लेती है। अतएव शिवाजी की महारानी शिवाजी के बाईं ओर आधी चौकी पर बैठ गईं। उनकी गाँठ शिवाजी के वस्त्र से बँधी हुई थी। युवराज शम्भाजी उनके पीछे बैठा। उसके पीछे शिवाजी के अष्ट-प्रधान, आठों तरफ़, हाथ में गङ्गाजल से परिपूर्ण स्वर्ण-घट लिये खड़े थे। अभिषेक का मुहूर्त आने

पर इन अष्ट-प्रधानों ने मन्त्र पढ़ पढ़ कर महाराज शिवाजी, उनकी धर्म-पत्नी और युवराज का गङ्गाजल से अभिषेक किया। इसी समय कई प्रकार के नाच-गान हुए और जङ्गी बाजा भी बजा। सफ़ेद वस्त्र पहन कर सोलह सौभाग्यवती ब्राह्मणियों ने महाराज, महारानी और कुँवर की आरती उतारी।

इसके बाद महाराज शिवाजी ने शाही पोशाक पहनी। पोशाक में कई प्रकार के हीरे, पन्ने, नीलम, मानिक और जवाहिरात जड़े थे। जवाहिरातों की चमक के आगे किसी की नज़र न ठहरती थी। गले में मोहनमाला और कई प्रकार की अन्य मालायें पड़ी थीं। मस्तक पर पगड़ी भी कई तरह के क़ीमती झब्बों से सुशोभित थी। महाराज ने पहले तो अपनी ढाल, तलवार और धनुष-बाण की पूजा की। फिर गुरुजनों और ब्राह्मणों को प्रणाम किया। इसके बाद उन्होंने शुभ मुहूर्त में सिंहासनवाले कमरे में प्रवेश किया।

राज्याभिषेक का स्थान शास्त्र की विधि से बड़ी अच्छी तरह सजाया गया था। वहाँ कई प्रकार के ऐसे पौधे भी रक्खे गये थे जो माङ्गलिक माने जाते हैं। ऊपर सोने का चँदोवा तना हुआ था। उसमें मोतियों की कई मालायें लटक रही थीं। फ़र्श पर मख़मल के गद्दे बिछे थे। कमरे के बीच में सर्वश्रेष्ठ सिंहासन था। वह कई महीने में बन कर तैयार हुआ था। सभासद का कहना है कि उसमें ३२ मन सोना लगा था। उसका मूल्य १४ लाख रुपया समझा जाता था। यदि हम उनके कथन को सोलहों आने सत्य न मानें तो कोई हानि नहीं; परन्तु एक अँगरेज़ राजदूत का कहना है कि सिंहासन अमूल्य अवश्य था। सिंहासन का धरातल स्वर्ण-खचित था। उसके अष्टस्तम्भों में हीरे, पन्ने इत्यादि अनेक बहुमूल्य रत्न जड़े थे। खम्भों पर सोने का चँदोवा था। चँदोवे में ज़रदोज़ी का बढ़िया काम था। सिंहासन पर जो वस्त्र बिछा था वह कुछ शाहाना और कुछ फ़क़ीराना था। अर्थात् ऊपर तो मख़मल था, परन्तु नीचे चीते की खाल थी।

सिंहासन के दोनों ओर राज-चिह्न-सूचक अनेक पदार्थ रक्खे गये थे। उसके दहिनी ओर सोने की दो मछलियाँ रक्खी हुई थीं, जिनके बड़े बड़े दाँत थे। बाईं ओर घोड़ों की पूँछें रक्खी थीं और न्याय की सूचक तुला दो भालों के ऊपर थी—सोने के दो पलड़े, बिलकुल सधे हुए, रक्खे थे। शाही दरवाज़े के दोनों ओर पौधों के गमले रक्खे थे। इसके अलावा, दो बढ़िया हाथी और दो घोड़े अच्छे साज से सजे सजाये दरवाज़े पर खड़े थे। घोड़ों की लगाम सोने की थी। हाथी-घोड़े भी राज-चिह्न समझे जाते हैं।

ज्यों ही महाराज ने सिंहासन पर चरण रक्खा, त्यों ही चारों ओर से पुष्प-वर्षा होने लगी। तरह तरह के सोने के पुष्पों में हीरे और जवाहिरात जड़े थे। जब पुष्प-वर्षा हो चुकी तब सोलह सौभाग्यवती ब्राह्मणियों ने सोने के थाल में दीपक रख कर महाराज की आरती उतारी। ब्राह्मणों ने मन्त्र पढ़े और महाराज को आशीर्वाद दिया। महाराज ने उनका अभिवादन किया। इसके बाद उपस्थित जनता ने जय-जयकार शब्द किया। वह शब्द इतने ज़ोरों से हुआ कि हाल गूँज उठा। तरह तरह के नृत्य-गान होने लगे। चारण लोग महाराज का यश गाने लगे। भाँड़ तमाशा दिखाने लगे। दूर दूर से जितने तमाशेवाले आये थे, सबने अपना अपना खेल दिखाया। इस समय फ़ौजों ने १०१ फ़ैर करके सलामी दी। इसी समय पुरोहित गङ्गाभट्ट ने महाराज के ऊपर छत्र तान दिया और गगन-गर्जन शब्द के साथ कहा—"छत्रपति महाराज शिवाजी की जय!" इसके साथ ही सब लोगों ने जय-जयकार किया।

अब ब्राह्मण उठे। कुछ आगे बढ़ कर उन्होंने महाराज को आशीर्वाद दिया। महाराज ने इन ब्राह्मणों को और उपस्थित लोगों को भरपूर दान दिया। महाराज ने हिन्दू-शास्त्रों के अनुसार उस समय सोलह प्रकार के दान दिये। इसके बाद सिंहासन के निकट जाकर मन्त्रियों ने महाराज को प्रणाम किया। महाराज ने उनको सिरोपाव, पद-वृद्धि के लिए पत्र और दान में हाथी, घोड़े, वस्त्र, शस्त्र और जवाहिरात दिये।

युवराज शम्भाजी, पुरोहित गङ्गाभट्ट और प्रधान मन्त्री मोरो त्र्यम्बक पिङ्गले सिंहासन से कुछ ही नीचे, एक उत्तमासन पर, बैठे। अन्यान्य मन्त्री, दो क़तारों में, सिंहासन के दोनों ओर खड़े हो गये। अन्य दरबारी और दर्शकगण यथास्थान बैठ गये।

इस समय प्रातःकाल के आठ बज चुके थे। अँगरेज़ी राजदूत हेनरी ओकजिन्डन को नारोजी पन्त जलसे में ले गया। उसने दूर ही से महाराज को प्रणाम किया। उसके दुभाषिये नारायणराव शेणवी ने महाराज को नज़र करने के लिए एक जड़ाऊ अँगूठी निकाली। जब महाराज का ध्यान राजदूत की ओर गया तब उन्होंने उसको पास बुलाया और उसे ख़िलत दी।

भेंट हो चुकने पर महाराज शिवाजी सिंहासन से नीचे उतरे और एक उत्तम घोड़े पर सवार होकर राजमहल की तरफ़ चले। घोड़े का साज़ बहुमूल्य था। फिर महाराज हाथी पर सवार हुए और फ़ौजी जलूस के साथ सारे नगर में घूमे। मन्त्री और जनरल महाराज को घेरे हुए थे। फ़ौजी जलूस के आगे आगे दो हाथियों के ऊपर जरी की पताकायें और गेरुवे झण्डे चलते थे। प्रत्येक पलटन अपना अपना बैंड बाजा बजाती जाती थी। नगर-निवासियों ने मकानों और मार्गों को अच्छी तरह सजाया था। गृह-स्वामिनियों ने महाराज की आरती उतारी और उन पर पुष्पों, खीलों और दूर्वादलों की वर्षा की। रायगढ़ के बहुत से पहाड़ी मन्दिरों के दर्शन करके और भेंट चढ़ा कर महाराजा अपने महल को लौट आये।

७ तारीख़ को फिर दान दिया गया। भिखारियों को भी भिक्षा मिली। लगातार बारह दिन तक दान दिया गया। पण्डितों और संन्यासियों को छोड़ कर सबको दान दिया गया। पुरुषों को ३) से ५) तक और स्त्रियों तथा बच्चों को १) से २) तक मिले।

राज्याभिषेक के दूसरे ही दिन बड़े ज़ोर का तूफ़ान आया। साथ ही साथ बड़े ज़ोर से पानी भी बरसने लगा। इस कारण कुछ देर तक ठण्ड रही। लोगों को बड़ा कष्ट हुआ। आठवीं तारीख़ को महाराज ने बिना किसी नेग-चार के एक कन्या को अपनी चौथी पत्नी बनाया। इसके कुछ समय पहले ही उनकी तीसरी शादी हो चुकी थी।

राज्याभिषेक सकुशल समाप्त हो गया। अब जिजाबाई अपनी पूर्णायु भोग कर, और जीवन के अन्तिम दिनों में सुख लूट कर, इस संसार से चल बसीं। शिवाजी महाराज के लिए वे २५ लाख की जायदाद छोड़ मरीं। कोई कोई इससे भी अधिक बतलाते हैं। माता की मृत्यु का शोक घटने पर, कर्म-काण्ड करने के अनन्तर, शुद्ध होने पर महाराज फिर सिंहासन पर बैठे।

सभासदों की राय है कि महाराज शिवाजी के राज्याभिषेक और दान-पुण्य में १ करोड़ ४२ लाख रुपया ख़र्च हुआ था; परन्तु एक डच सौदागर इस ख़र्च को आर्द्ध करोड़ से अधिक नहीं बतलाता।*

नाथूराम सिंगई।

प्रोफ़ेसर त्रिभुवनदास गज्जर।

प्रोफ़ेसर गज्जर की मृत्यु-वार्ता के विषय में एसोसियेटेड प्रेस से एक सूचना-मात्र प्रकाशित हुई थी। उसी को कुछ बढ़ा कर लीडर के सम्पादक ने उनके विषय में एक छोटा सा लेख प्रकाशित किया था। उसी लेख से इस प्रान्त के लोग प्रोफ़ेसर गज्जर के जीवन-कार्यों से परिचित हुए हैं।

मैं उनसे २२ वर्ष छोटा हूँ। इसलिए यद्यपि मैं उनका समकालिक नहीं, तथापि उनके कालेज के साथियों की अपेक्षा मैं उनके जीवन के कार्यों से अधिक अवगत हूँ।

प्रोफ़ेसर गज्जर की जन्मभूमि सूरत थी। उनके पिता सूरत के विश्वकर्मा थे। उन्होंने ही हम लोगों के प्रायः सभी मकानों को तैयार किया था। इसलिए जब मैं बालक था तभी उनसे परिचित हो गया था। उनके स्वजातियों में शिक्षा का प्रचार न था। वे लोग शिक्षा को महत्त्व नहीं देते थे। इसलिए जब गज्जर कालेज में उच्च शिक्षा पाने लगे तब सभी लोगों को आश्चर्य हुआ। उन्होंने मेडिकल कालेज में चिकित्साशास्त्र का अध्ययन किया। पर उनका जीवन रसायन-शास्त्र की चर्चा, शिक्षा का प्रचार और भारत की उन्नति की कल्पना में ही व्यतीत हुआ। उन्होंने बहुत पहले, शायद १८८६ में,

* एक अँगरेज़ी लेख से अनुवादित।

बड़ोदा में एक ऐसे विश्वविद्यालय की स्थापना की आवश्यकता पर एक लेख लिखा था जिसमें देशी भाषा के द्वारा शिक्षा दी जाय। वे व्यावसायिक शिक्षा के पक्षपाती थे। उनकी यह भी राय थी कि प्रारम्भ में ही साहित्य और विज्ञान की शिक्षा पृथक् पृथक् कर दी जाय। जब वे बड़ोदा में कलाभवन के अध्यक्ष थे तब वे एक विशाल संस्था की देखभाल किया करते थे। उस संस्था का उद्देश था गुजराती भाषा में वैज्ञानिक ग्रन्थों की रचना कराना। यह संस्था तभी सफल होती जब पहले उसके लिए खूब खर्च किया जाता और कुछ काल तक प्रतीक्षा की जाती। पर सरकारी विभागों में न तो इतना धैर्य रहता है और न इतनी स्मरण-शक्ति। इसलिए आपका स्कीम शीघ्र ही दाखिल दफ़्तर हो गया।

किसी समालोचक ने उनके अनुवादों के विषय में कहा था कि वे अलमारियों में पड़े पड़े ग्रन्थकार के महत्त्व का उपहास कर रहे हैं। इधर बड़ोदा से गज्जर का सम्बन्ध भी टूट गया। वे बम्बई चले आये और वहाँ उन्होंने एक रासायनिक प्रयोगशाला स्थापित की। उसमें विश्वविद्यालयों के पदवीधरों को शिक्षा दी जाती थी। उनके छात्र बड़े बड़े व्यवसायियों से मिल कर अपने ज्ञान का सदुपयोग कर सके हैं।

उसी समय किसी दुष्ट ने महारानी विक्टोरिया की मूर्ति पर कालिमा पोत दी। भारत के बड़े बड़े रसायन-शास्त्रियों ने उसे मिटाने की चेष्टा की। पर सभी के प्रयास विफल हुए। तब गज्जर ने इस काम में हाथ लगाया। उन्होंने यह काम बड़े उत्साह से किया, क्योंकि वह कालिमा भारत की राजभक्ति पर भी धब्बा लगाती थी। ६ महीने के अनवरत उद्योग से अन्त में आपका मनोरथ सफल हुआ। इससे आपको बड़ी प्रसिद्धि हुई। आपकी जन्म-भूमि सूरत में भी आपका अभिनन्दन करने के लिए एक बड़ी सभा हुई। मैं उस समय स्कूल में पढ़ता था। मैं भी उस सभा में उपस्थित था। कहा जाता है कि जन्म-भूमि में विद्वानों का मान नहीं होता। परन्तु यह कथन उस समय असत्य प्रमाणित हो गया। सूरत के निवासियों ने बड़े उत्साह से गज्जर की अभ्यर्थना की। उस सभा में उन्होंने अपने सिद्धान्त को भी समझाया। उन्होंने कहा—"मैं ऐसी दवा की खोज में था जिससे रोग नष्ट हो जाय और शरीर विकृत न हो। मूर्ति में भी मैंने इसी सिद्धान्त का उपयोग किया। मैं कृतकार्य भी हुआ। धब्बा जाता रहा और श्वेत पत्थर पर किसी तरह का विकार नहीं आया।"

गज्जर ने प्लेग, हैज़ा, इन्फ़्लुएन्ज़ा और ज्वर की दवायें तैयार करके उनको पेटेन्ट करा लिया। उनका कहना था कि Chlonde of iodine नाम की दवा रोग के कीटाणुओं को दूर करने का सबसे अच्छा उपाय है। यहाँ मुझे उनकी चिकित्साविधि से मतलब नहीं है। मुझे यही बतलाना है कि उनमें भारतीय आध्यात्मिक भाव इतना था कि वे सभी में एकता का अनुभव करते थे।

इसके बाद उन्होंने मोतियों पर आब देने में भी अपने सिद्धान्त का प्रयोग किया। उसमें भी वे कृतकार्य हुए। यदि वे आदर्शवादी न हो कर व्यवहार-कुशल होते अथवा यदि अच्छे लोग उनका साथ देते तो वे लक्षाधीश हो गये होते। परन्तु उनमें यह बात न थी। इससे आर्थिक दृष्टि से उन्हें अपने आविष्कार से कुछ लाभ न हुआ। गुजरात के प्रसिद्ध औपन्यासिक श्रीयुत गोवर्धनराम त्रिपाठी से जीवन भर उनकी घनिष्ठता बनी रही। सरस्वतीचन्द्र में लेखक ने ग्राम और नगर-सुधार का वर्णन बड़े कौशल से किया है। लेखक के हृदय में इसका बीजारोपण गज्जर ही का किया हुआ था। उनकी बहन नान्ही बेहन उनकी सच्ची सहायिका थीं। वनिता-विश्राम की संस्थापिका होने के कारण बम्बई-

प्रान्त में उनका अच्छा नाम है। संसार को ही अपना ध्येय समझनेवाले कुल में इन दोनों भाई-बहन का आदर्श सचमुच विलक्षण था।

गज्जर से मेरी अन्तिम भेंट सूरत में उनके घर ही पर हुई। वे अपने पुस्तकालय में बैठे हुए थे। उनका पुस्तकालय बड़ा भारी था। उसमें साहित्य और विज्ञान-विषयक पुस्तकें कम से कम पाँच भाषाओं की रही होंगी। अपनी ज्ञान-वृद्धि के लिए उन्होंने जर्मन भाषा का भी अध्ययन किया था। जर्मन भाषा से अभिज्ञ होने के कारण मुझसे उनसे घण्टों बातचीत होती थी। जब मैं गया तब वे यूरिक एसिड की जाँच में लगे हुए थे और किसी साहब के एक शराबी खि़दमतगार के लिए दवा भी लिख रहे थे। कुछ देर तक इधर-उधर की बातें होती रहीं। गज्जर को बातें करना खब पसन्द था। कुछ देर के बाद उन्होंने एक-दम मेरी ओर देख कर कहा "आप मेरे बासवेल हूजिए"। बासवेल अँगरेज़ी के प्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर जानसन का मित्र और उनका जीवन-चरित्र-लेखक था। इससे गज्जर ने अपनी तुलना डाक्टर जानसन से की। उनकी यह बात सुन कर, जो उनके कमरे में बैठे हुए थे वे मुसकराने लगे। पर मैं उनके इस कथन से उनका मनोगत भाव समझ गया। उनको ऐसे मित्र की आवश्यकता थी जो उनसे पूर्ण सहानुभूति रक्खे और जिनसे वे अपने जीवन का अनुभव कर सकें। उन्हें एक ऐसे साथी की ज़रूरत थी जो उनके अव्यवस्थित जीवन को व्यवस्थित कर दे। यों तो उनका जीवन बड़ा पवित्र था, पर खान-पान और रहन-सहन में वे बड़े अव्यवस्थित थे। इससे उनका आरोग्य बिगड़ गया था।

गुजरात में, और विशेषकर सूरत में, लोग बड़ों की इज़्ज़त करना नहीं जानते। गज्जर को इसका बड़ा ख़याल रहता था कि उनके पास ऐसे लोग नहीं आते जो उनकी प्रतिभा और गुणों की क़द्र करें और उन्हें उत्साहित करते रहें। यदि वे एक बार योरप चले गये होते तो उन्हें बड़ा लाभ होता। मेरा तो यह ख़याल है कि वैज्ञानिक अनुसन्धान में उनका नाम बङ्गाल से कम न होता। उनमें दोष यही था कि वे एक ही काम में स्थिर होकर न लग सके थे। उनके ऐसे मित्र भी नहीं थे जो उन्हें अच्छी तरह समझ सकें। इस देश में अभी हमें साहित्य का एक उपयुक्त क्षेत्र तैयार करना है, जहाँ साहित्य-सेवी मिल कर अपनी प्रतिभा का विकास कर सकें। अठारहवीं सदी में इँगलैंड के क्लब ऐसे स्थान थे। आज-कल पेरिस के सलून (Salon) की भी प्रसिद्धि इसी कारण है।

गज्जर महोदय वैज्ञानिकों के लिए एक अच्छा आदर्श छोड़ गये हैं। कोई विद्वान् विज्ञान की किसी भी शाखा में क्यों न काम करे, उसे स्मरण रखना चाहिए कि ज्ञान एक है और सभी विज्ञान अभिन्न हैं।

विनायक नं० महेता, आई० सी० एस०

विद्यालय।

है विद्यालय वही जो परम मङ्गलमय हो
वर विचार आकलित अलौकिक कीर्तिनिलय हो।
भावुकता वर वदन सुविकसित जिससे होवे
जिसकी शुचिता प्रीति-वेलि प्रति उर में बोवे।
पा अतुलित बल जिससे बने जाति-बुद्धि अति-बलवती
बहु लोकोत्तर फल लाभ कर हो भारत महि फलवती ॥१॥
होगा भव हित मूल भूत उस विद्यालय का
गिरा देवि के वन्दनीय तम देवालय का।
उसमें होगी जाति सङ्गठन की शुभ पूजा
होवेगा सहयोग-मन्त्र स्वर समधिक गूँजा।
कटुता विरोध सङ्कीर्णता कलह कुटिलता कुरुचि मल
कर दूरित उसमें बहेगी पूत प्रीति धारा प्रबल ॥२॥
शुभ आशायें वहाँ समर्थित रञ्जित होंगी
कलित कामनायें अनुमोदित व्यञ्जित होंगी।
वहाँ सरस जातीयतान रस बरसावेगी
देश-प्रीति सउमङ्ग राग रुचि कर गावेगी।

पूरित होगा गरिमा-सहित वर व्यवहार सुवाद्य स्वर
उसमें वीणा सहकारिता बज कर देगी मुग्ध कर ॥३॥

जिसमें कलह विवाद वाद आमन्त्रित होवे
द्वेष जहाँ पर बीज भिन्नताओं का बोवे।
जहाँ सकल सङ्कीर्ण-भाव की होवे पूजा
आकुल रहे विवेक जहाँ बन करके लूँजा।
उस विद्यालय के मध्य है कहाँ प्रथित महनीयता
होती विलोप जिसमें रहे रही सही जातीयता ॥४॥

प्रायः है यह बात आज श्रुतिगोचर होती
नाश-बीज जातीय सभायें हैं अब बोती।
प्रति दिन उनसे सङ्घ-शक्ति है कुचली जाती
उनसे प्रश्रय है विभिन्नता ही नित पाती।
अब अधःपात है हो रहा उनके द्वारा जाति का
वे चाह रही हैं शान्ति-फल पादप रोप अशान्ति का ॥५॥

अपना अपना राग व अपनी अपनी डफली
बहुत गा बजा चुके पर न अब भी सुधि सँभली।
ढाई चावल की खिचड़ी हम अलग पका कर
दिन दिन हैं मिट रहे समय की ठोकर खा कर।
एकता और निजता बिना काम चला है कब कहीं
वह जाति न जीती रह सकी जिसमें जीवन ही नहीं ॥६॥

जाति जाति की सभा जातियों के विद्यालय
अति निन्दित हैं सङ्घ-शक्ति जो करें न सञ्चय।
उन विद्यालय और सभाओं से क्या होगा
डूब जाय जिससे अपनापन का ही डोंगा।
जो काम न आई जाति के वह कैसी हितकारिता
वह संस्था संस्था ही नहीं जहाँ न हो सहकारिता ॥७॥

जिसमें केन्द्रीकरण नहीं वह सभा नहीं है
जो न तिमिर हर सके प्रभा वह प्रभा नहीं है।
उस विद्यालय को विद्यालय कैसे मानें
जहाँ फूट औ कलह सुनायें अपनी तानें।
मिल जाय धूल में वह सकल स्वार्थ निकेत स्वकीयता
जिससे वञ्चित विचलित दलित हो हिन्दू-जातीयता ॥८॥

यह विचार औ समय दशा पर डाल निगाहें
उन उदार सुजनों को कैसे नहीं सराहें।
जिन लोगों ने सकल जाति को गले लगाया
विद्यालय को सरुचि अवारित द्वार बनाया।
सब काल भाव ऐसे कलित ललित उदय होते रहें
सब लोग मलिनता उरों की अमलिन बन धोते रहें ॥९॥

प्रभो देश में जितने हिन्दू-विद्यालय हों
एक सूत्र में बँधे एकता निजतामय हों।
छात्र-वृन्द जातीय भाव से पूरित होवे
आत्मत्याग-रत रहे जाति-हित सरबस खोवे।
ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य औ शूद्र भिन्नता तज मिलें
बढ़े परस्पर प्यार औ कुम्हलाये मानस खिलें ॥१०॥

अयोध्यासिंह उपाध्याय

म्युनीसिपल्टी।

सभी देशों में यह देखा गया है कि जब व्यवसाय और व्यापार की वृद्धि हुई तब गाँव के कृषकों ने अपनी खेती में अधिक लाभ न देख कर मज़दूरी की तलाश में नगरों का आश्रय लिया। इसका परिणाम यह हुआ कि गाँव उजड़ने लगे और नगरों की वृद्धि होने लगी।

नगर की आरम्भिक अवस्था में आबादी कम होने पर प्रत्येक नागरिक अपने नगर की रक्षा के लिए स्वयं प्रयत्न किया करता था। प्रत्येक मनुष्य अपने मकान के सामने सड़क की सफ़ाई और मरम्मत करता, अपने दरवाज़े पर चिराग़ जलाता और अपने माल-असबाब की रक्षा के लिए स्वयं कानिस्टबल का काम करता। स्वास्थ्य का बनना और बिगड़ना उसी की मिहनत पर आश्रित था। बच्चों की शिक्षा का प्रबन्ध उसी को स्वयं करना पड़ता। कहीं कहीं धार्मिक शिक्षा का प्रबन्ध मन्दिरों में भी था। मतलब यह कि न्याय के लिए अदालत और बाहरी शत्रुओं से नगर की रक्षा के लिए थोड़ी बहुत फ़ौज के अतिरिक्त बाक़ी सभी कामों का प्रबन्ध प्रत्येक नगर-निवासी को स्वयं अलग-अलग करना पड़ता था।

व्यवसाय की समृद्धि और कारख़ानों की वृद्धि होने से जब शहर की जन-संख्या बढ़ने लगी तब यह ज़रूरत हुई कि कोई ऐसा सङ्गठन किया जाय जिसके हाथ में नगर के स्वास्थ्य और भलाई का प्रबन्ध हो। इसी सङ्गठन को म्युनीसिपल्टी कहते हैं।

वर्तमान समय में सभ्य देशों की म्युनीसिपल्टी के हाथ में ये काम होते हैं—नगर-निवासी के जान-माल की रक्षा करना। उसके स्वास्थ्य का ध्यान विशेषरूप से रखना, सड़कों की सफ़ाई और पड़े। उसका काम यह भी होता है कि मनोहर बाग़-बाग़ीचे बना कर नगर-निवासी को प्रकृति के दृश्य दिखलावे और थियेटर, नाट्य-गृह आदि खोल कर जनता के मनोरञ्जन का उपाय करे। सर्व-साधारण के सुभीते और लाभ के लिए बाज़ार बनवाये, छोटे छोटे मुक़द्दमों का फ़ैसला करने का इन्तिज़ाम करे, बीमारों के लिए दाई और डाक्टर रक्खे और अस्पताल बनवाये। मनुष्य के अन्त्येष्टि-कर्म के लिए सुन्दर श्मशान और क़बरिस्तान बनवाये। मकानों के दरवाज़ों पर से कूड़ा हटा सफ़ाई रक्खे। साफ़
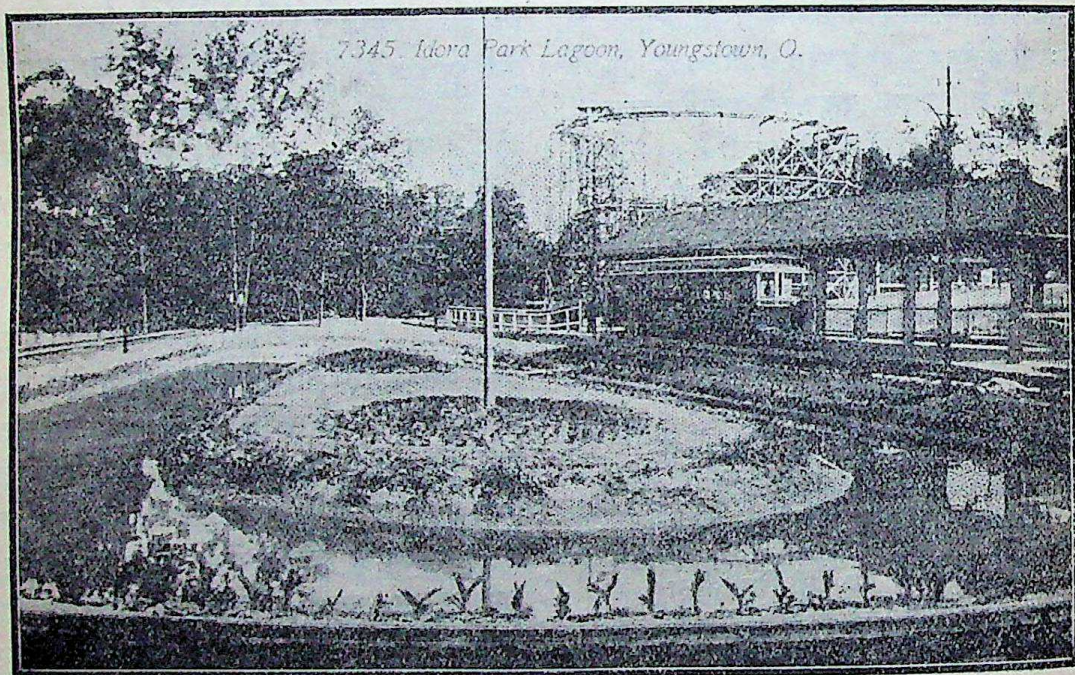
यंगस्टौन (अमेरिका) का एक फूल-बाग़।

रोशनी का प्रबन्ध करना, कूड़ा-करकट उठवाना, नगर के बच्चों को शिक्षा देना, उन्हें सब प्रकार की पुस्तकें मुफ़्त देना और ज़रूरत देख कर उन्हें भोजन भी देना। नगर-निवासियों के लिए मुफ़्त पुस्तकालय क़ायम करना और उसकी शाखायें गली गली खोलना, जिससे नगर-निवासी को अपनी मानसिक उन्नति के लिए कहीं दूर न जाना पानी और बिजली की रोशनी का प्रबन्ध करे। नगर-निवासियों के खाद्य पदार्थों की जाँच करे और ऐसे क़ानून बनाये जिससे कारख़ानों में काम करने-वाले, स्त्री-पुरुषों और बच्चों के स्वास्थ्य बिगड़ने न पावें। नगर में छूत की बीमारी न फैल सके। सड़कों पर तरह तरह की सवारी का प्रबन्ध रहे और कला-कौशल की शिक्षा के स्कूल खोले।

इस प्रकार आधुनिक म्युनीसिपल्टी के कामों के ६ विभाग किये जा सकते हैं —

(१) प्रजा का विपत्तिनिवारण—जैसे पुलिस, न्यायालय और अग्नि बुझाने के विभागों का खोलना।

(२) सफ़ाई और स्वास्थ्य—जैसे बूचड़-खाने, बर्फ़ के कारखाने, सर्वसाधारण के लिए स्नान-घर, धोबी-घर, ग़रीबों के रहने के लिए साफ़-सुथरे झोंपड़े, अस्पताल आदि बनवाना।

(३) दान और सुधार—जैसे अपाहिजों के लिए रोटीघर, धर्मशालायें, सराय और जेल क़ायम करना।

न्यूयार्क (अमेरिका) में म्यूनीसिपैल्टी के द्वारा किये गये जल-विहार के साधन।

(४) शिक्षा और मनोरञ्जन—जैसे स्कूल, बाग़, पुस्तकालय, नुमायश और अजायब-घर आदि का खोलना।

(५) व्यवसाय—जैसे बाज़ार खोलना, सड़कें और पुल इत्यादि बनवाना।

(६) सर्वोपकारी काम—जैसे, पानी की कलें, गैस और बिजली की रोशनी, ट्राम-गाड़ी, टेलीफ़ोन इत्यादि।

इन कामों को सफलतापूर्वक करने के लिए म्युनीसिपल्टी के पास आमदनी के दो वसीले होते हैं—

(१) तरह तरह के महसूल—मकान की जैसे क़ीमत पर टिकस; पानी का महसूल; गाड़ी, मोटर इत्यादि सवारियों पर महसूल; घोड़े, गाय, बैल, गधे, कुत्ते इत्यादि पर महसूल; शराब, गाँजा, भाँग, चरस इत्यादि पर महसूल; चुंगी; और, मुसाफ़िरों पर लगाया गया टिकस इत्यादि।

(२) बाज़ार और अपनी दुकानें; तरह तरह के लाभदायक तथा मनोरञ्जक मेले; और पानी, गैस, बिजली के कारख़ाने इत्यादि।

किसी भी नगर की सफ़ाई और तरक़्क़ी के ख़र्च के लिए आमदनी के यही वसीले हैं। इनके बिना कुछ भी नहीं हो सकता।

योरप के नगरों से हमारे देश का मुक़ाबला करने पर ज़मीन आसमान का फ़र्क़ मालूम पड़ता है। कहाँ एक ओर चौड़ी साफ़ सड़कें; बिजली की रोशनी; सड़कों के दोनों ओर हरियाली और पत्थर की सुहावनी पगडंडियाँ; फलों से लदे हुए हरे भरे बाग़-बग़ीचे, जिनमें पड़े हुए हिंडोलों पर, छोटे छोटे साफ़-सुथरे बालक-बालिकायें झूल रही हों; तालाब जिनमें पड़ी हुई नावों पर युवा-युवतियाँ जल-विहार कर रही हों। कहाँ बड़े बड़े पुस्तकालय, अजायब-घर और नाट्यशालायें? और कहाँ उनके सामने हमारे देश की गन्दी गलियाँ, जिन पर मकानों के पाख़ानों के पानी का छिड़काव होता है, मकानों के दरवाज़ों पर कूड़ा-करकट पड़ा रहता है और इन गन्दी गलियों की धूल और कीचड़ में, जिनमें तरह तरह की बीमारियों के कीड़े रेंगते हों, हमारे देश की भविष्य सन्तान, नगर के बच्चे, खेलते हैं।

इस संख्या में दो-तीन चित्र प्रकाशित हैं। उनसे पाठकों को ज्ञात होगा कि अमेरिका की म्युनीसिपल्टियों ने अपने नागरिकों के आराम के लिए कैसे कैसे साधन प्रस्तुत कर दिये हैं।

हमारे देश की म्युनीसिपल्टी को भी अब अधिक अधिकार मिले हैं। जनता की जागृति के कारण अधिकतर पुराने विचारवाले, बात बात के जी-हुज़ूर कहनेवाले, ख़ुशामदी, अशिक्षित मेम्बरों के स्थान में अब ऐसे मेम्बर चुन कर भेजे जाते हैं जो युवा हैं, जिनके हृदय में तरह तरह की तरङ्गें ज़ोर मार रही हैं, जो पूर्ण शिक्षित हैं और जिनके हृदय में देशभक्ति, देशाभिमान, परोपकार की तृष्णा, निर्भयता, स्वार्थत्याग तथा अपने नगर को सुन्दर, साफ़ और पवित्र बनाने की अभिलाषा है। इन मेम्बरों को चाहिए कि अन्य देशों की म्युनीसिपल्टी की कार्य-प्रणाली का अध्ययन करें और ऐसा उपाय करें जिससे बिना ग़रीबों पर बोझ पड़े म्युनीसिपल्टी की आय बढ़े, जिससे वे ऐसे काम कर सकें कि उनके नगर-निवासियों की

पिट्सबर्ग (अमेरिका) में अन्धे बच्चों के लिए खेल-कूद का प्रबन्ध।

शारीरिक, मानसिक तथा साम्पत्तिक उन्नति हो। उन्हें चाहिए कि वे तङ्ग गलियों को तुड़वा कर जगह जगह चौरस्ते और बाग़ बनवावें, जिनमें स्कूल से छुट्टी पाने पर महल्ले के लड़के खेल-कूद सकें। उन्हें महल्ले महल्ले स्कूल और पुस्तकालय स्थापित करना चाहिए। स्थान स्थान पर स्नानागार बनवाना चाहिए, जिससे ग़रीब लोग स्नान कर के अपना शरीर शुद्ध करें। वे नाट्यशालायें भी स्थापित करें, जहाँ पर देश के सङ्गीत और नाट्य-कलाओं की उन्नति हो। मतलब यह कि देश में आदर्श म्युनीसिपल्टियाँ होनी चाहिए।

जगन्नाथ खन्ना

पुरानी पुस्तकों की खोज।

पुराने पदार्थों की रक्षा से बड़े बड़े लाभ हैं। ऐसे पदार्थों में हर तरह की प्रसिद्ध प्रसिद्ध ऐतिहासिक इमारतें—मन्दिर, मसजिदें, मक़बरे, स्तूप, विहार आदि—शिला-लेख, ताम्रपत्र और सिक्के शामिल हैं। इनके संरक्षण का महत्त्व गवर्नमेंट तो बहुत पहले से ही समझ गई है; इस निमित्त उसने एक महकमा भी अलग खोल रक्खा है। पर अब कुछ दिनों से सुशिक्षित भारत-वासी भी इधर ध्यान देने लगे हैं। इस देश के लिए—हम भारतवासियों के लिए—यह सौभाग्य की बात है। इनकी रक्षा का एक कारण तो यह है कि इनको देख कर हमें इनके निर्माता तथा इनसे सम्बन्ध रखनेवाले पूर्वजों और प्रसिद्ध प्रसिद्ध पुरुषों की याद आती है। उनके बल, पौरुष और प्रभुता का स्मरण करके हमारे हृदय में उनके विषय में भक्ति-भाव का उन्मेष होता है; उनके गौरव से हम अपने को गौरवान्वित समझते हैं; उनके कीर्ति-स्तम्भों के दर्शन से हमारे मन में उस गर्व का अङ्कुर उद्भूत होता है जिसका उद्गमन हमारे लिए सर्वथा प्रशंसनीय है।

दूसरे, इन स्मारक वस्तुओं की रक्षा से हमें अपने पूर्वजों की सभ्यता, शिक्षा, रुचि, कला-कुशलता और आचार-विचारों का भी ज्ञान प्राप्त होता है। यदि अशोक के आदेशों का पता न चलता, यदि गुप्तवंशीय नरेशों के समय के शिलालेख न मिलते, यदि साँची और सारनाथ के स्तूप आदि खोद न निकाले जाते तो भारत की तत्कालीन विभूति, भव्यता, कला-कौशल, साम्राज्य आदि का विशेष पता हमें और किसी मार्ग से न मिलता। यह क्या थोड़ा लाभ है?

अच्छा यह तो जड़ पदार्थों के संरक्षण से होनेवाले लाभ की बात हुई। ये जो सैकड़ों हज़ारों वर्ष की पुरानी पुस्तकें दीमक-देवियों के पेट में चली जा रही हैं, और जिनकी रक्षा का प्रयत्न अब तक बहुत ही कम किया गया है, क्या निर्जीव ईंट-पत्थर की इमारतों से अधिक महत्त्व की नहीं? इनकी स्याही और इनका काग़ज़ अवश्य चेतन नहीं; दोनों ही जड़ हैं। पर पुस्तकों की रक्षा कोई उनके लिए ही नहीं करना चाहता। उनमें जो कुछ लिखा रहता है—उनकी लिपि के भीतर जो विचार बद्ध रहते हैं—वे तो जड़ नहीं। वे तो सचेतन से हैं। उनको पढ़ना और उनको समझना मानों उनके ग्रन्थकारों के साथ प्रत्यक्ष वार्तालाप करना है—उनसे प्रत्यक्ष शिक्षा प्राप्त करना है—उनके प्रत्यक्ष उपदेशों से लाभ उठाना है। जो ग्रन्थकार इस प्रकार, बिना जाति-पाँति के विचार के, सभी को ज्ञानदान कर सकते हैं उन्हें मरा समझना—उन्हें अचेतन कल्पना करना—भारी भूल है। वे सज्ञान और सचेतन हैं और बिना एक पैसा फ़ीस लिये मुफ़् ही सदुपदेश देते और अपने ज्ञान और अनुभव से सबको लाभ पहुँचाने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं।

पर, हाय, हम लोग इतने अन्धे और इतने ज्ञानहीन हैं कि उनकी पुस्तकों की रक्षा का काफ़ी तो क्या थोड़ा भी प्रयत्न नहीं करते। ताड़पत्र और भोजपत्र पर लिखी गई हज़ारों लाखों पुस्तकें नष्ट हो गईं। जो बच रही थीं उनमें से अधिकांश इधर-उधर, देश-देशान्तरों को, पधार गईं। काग़ज़ पर लिखी गई पुस्तकों में से जो बच रही हैं वे भी अब थोड़े ही समय की मिहमान हैं। काग़ज़ हज़ारों वर्ष तो चल सकता नहीं। यह सच है कि गवर्नमेंट, और कुछ अन्य लोग भी, संस्कृत की पुस्तकों की खोज करके

उनकी सूची बनाते हैं, उनकी रक्षा का थोड़ा-बहुत प्रयत्न करते हैं, और उनके प्रकाशन का भी कुछ न कुछ उपाय करते हैं। तथापि यह सब पर्य्याप्त नहीं। पर, ख़ैर, कुछ काम होता तो है। परन्तु हमारी इस अभागिनी हिन्दी की पुरानी पुस्तकों की रक्षा की ओर किसी का ध्यान ही नहीं। जैसे वह सर्वथा ही अनाथ हो ! जैसे उसमें लिखी गई बातें बावलों का बकवाद-मात्र हों ! भाई, अपने पिता-पितामह आदि पूर्वजों की असार बातें सुन लेना भी सन्तान का धर्म्म न सही, कर्तव्य तो होना ही चाहिए। उनकी उन सारहीन व्यर्थ बातों को, उनके समय के अन्य स्मारक पदार्थों की तरह, योंही रक्षित रख छोड़ने से लाभ न सही, हानि भी तो आपकी कुछ होती नहीं। और कुछ नहीं, तो यादगार ही सही। योंहीं उन्हें पड़ी रहने दीजिए। उन्हें नष्ट होने से तो बचा लीजिए। क्या इतना कर देना भी आप अपना कर्तव्य नहीं समझते ?

हिन्दी की ये पुरानी पुस्तकें निरा कूड़ा-करकट भी नहीं। काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा ने अब तक कोई दो दर्जन पुरानी पुस्तकों का सम्पादन और प्रकाशन किया है। यदि आप उनकी नामावली भी देखने की कृपा करेंगे तो आपको मालूम हो जायगा कि उनमें क्या है। उनमें काव्य भी है, इतिहास भी है, चरितमाला भी है, वेदान्त भी है, साहित्य भी है, नीति भी है, आख्यायिकायें भी हैं। उनमें आपको शृङ्गार, वैराग्य, भक्ति आदि अनेक रसों की रोचक सामग्री मिलेगी। सभा को गवर्नमेंट इस खोज के काम के लिए केवल १०००) साल देती है। इतनी ही सहायता से उसने अब तक कितनी ही अच्छी अच्छी पुस्तकों को नष्ट होने से बचा लिया है। पर यह इतना बड़ा काम इस टुटरूँ टूँ सभा से, इसकी वर्तमान अवस्था में, अच्छी तरह नहीं हो सकता। अकेले संयुक्त-प्रान्त में भी पुस्तकों की खोज यदि इसी तरह धीरे धीरे की जायगी तो कोई पचास वर्ष लग जायँगे। तब तक पञ्जाब, राजपूताना, बिहार और मध्यप्रदेश में शायद सैकड़ों हस्त-लिखित पुस्तकें कृमियों की ख़ुराक हो जायँ। यदि यह ज्ञान-भाण्डार इस तरह नष्ट हो जायगा तो आप ही कहिए देश की—सारे देश की न सही, हिन्दी-भाषा-भाषी लोगों की—कितनी हानि होगी। बड़े ही परिताप की बात है कि टूटी फूटी पुरानी दीवारों और कुवें-तालाबों की रक्षा के लिए तो गवर्नमेंट लाखों रुपया ख़र्च करती है, पर इन अनमोल और सजीव रत्नों की रक्षा की तरफ़ बहुत ही कम ध्यान देती है। जो काम एक लाख रुपये से भी अच्छी तरह नहीं हो सकता उसके लिए इस प्रान्त की गवर्नमेंट एक हज़ार ही देने की कृपा करती है। और प्रान्तों की गवर्नमेंटें तो एक हब्बा भी नहीं देतीं। ख़ैर, गवर्नमेंट यथेष्ट ख़र्च न करे तो आश्चर्य्य की बात नहीं। आश्चर्य्य की बात तो यह है कि हम लोग, जिनके पूर्वजों की यह ग्रन्थ-राशि रसातल को चली जा रही है, स्वयं भी कुछ करने की उदारता नहीं दिखाते।

काशी की सभा ने अपने इस खोज के काम को विशेष विस्तार के साथ करने का निश्चय किया है। यह बात हमें उसकी एक रिपोर्ट और उसके एक "निश्चय" से मालूम हुई। वह चाहती है कि उसका यह काम कई प्रान्तीय टुकड़ों में बाँट दिया जाय और विभिन्न प्रान्तों में भी उसका आरम्भ किया जाय। उसका यह निश्चय प्रशंसा के योग्य है। इसी तरह काम करने से अकाल ही में पुस्तकें नष्ट होने से बच सकती हैं। जिन प्रान्तों में हिन्दी-पुस्तकों की खोज हो उस प्रान्त की गवर्नमेंट को चाहिए कि वह सभा की काफ़ी सहायता करे। सबसे अधिक सहायता करनी चाहिए अपने प्रान्त की गवर्नमेंट को, क्योंकि हस्त-लिखित पुस्तकों की समधिक प्राप्ति की सम्भावना इसी प्रान्त में है। परन्तु इसके लिए केवल गवर्नमेंट ही की सहायता के भरोसे क्यों रहा जाय ? यदि वह सहायता न करे तो क्या पुस्तकों को नष्ट होने से बचाना हमारा कर्त्तव्य नहीं ? कम से कम पिछले तीन चार सौ वर्ष से हमारे पूर्ववर्ती ग्रन्थकारों ने अपनी पुस्तकों में जो ज्ञानराशि और मनोरञ्जन की जो सामग्री भर रक्खी है उसे नष्ट हो जाने देना हमारे लिए बड़े ही कलङ्क की बात होगी। अतएव इस काम के लिए सर्व-साधारण को भी यथाशक्ति सहायता करनी चाहिए। यदि इस प्रकार की सहायता से एक लाख भी रुपया जमा हो जाय तो खोज का यह काम सभी प्रान्तों में सुचारु रूप से होने लगे और थोड़े ही समय में सहस्रशः पुस्तकों की सूचियाँ तैयार हो जायँ; वे कहाँ कहाँ हैं, इसका पता लग जाय; अधिक महत्त्वपूर्ण पुस्तकों की प्रतियाँ तैयार कर ली जायँ; और धीरे धीरे

उनके प्रकाशन का काम भी आरम्भ कर दिया जाय। आशा है, विद्वानों, सामर्थ्यवानों और पुस्तक-प्रेमियों का ध्यान इस ओर अवश्य आकृष्ट होगा।

उर्दू-कविता पर एक दृष्टि।

सैयद रास मसऊद ने विलायत में बैठे बैठे एक लेख उर्दू-कविता के विषय में लिखा। फिर उसे वहीं इँगलैंड के एक सामयिक पत्र में प्रकाशित कराया। इस बात को हुए कुछ समय हुआ। लेख काम का है। अतएव उसका आशय नीचे प्रकाशित किया जाता है—

जब हम, यहाँ, इँगलैंड में, अँगरेज़ों को विदेश की अर्वाचीन भाषाओं के साहित्य की ओर विशेष रीति से ध्यान देते हुए नहीं देखते तब हमें आश्चर्य्य होता है। जो अँगरेज़ भारत में बरसों नौकरी पर रहते हैं वे भी वहाँ की भाषाओं के ज्ञान से कोरे ही लौटते हैं। खेद के साथ कहना पड़ता है कि अँगरेज़ों और भारतीयों के बीच और किसी बात में उतना भेद नहीं जितना कि ज्ञान-सम्बन्धी साधनों के प्रति उदासीन रहने में है। और दुर्भाग्य से यह भेद दिन पर दिन बढ़ता ही जा रहा है।

भारत में अगणित भाषायें हैं। उनमें उर्दू एक महत्त्वपूर्ण भाषा है। इसका कारण यह है कि उसकी उत्पत्ति का सम्बन्ध संस्कृत से भी वैसा ही है जैसा कि अरबी और फ़ारसी से। अब वह केवल मुसलमानों की ही ज़बान नहीं रही; उस पर लाखों हिन्दुओं का भी अधिकार है। हिन्दुओं और मुसलमानों के सम्बन्ध का संमिश्रण स्थापत्य अर्थात् गृह-निर्माण-विद्या में भी विद्यमान है। इसका उदाहरण आगरे का ताजमहल है। साहित्य-विषयक संमिश्रण कविता में तो प्रकट ही है।

यद्यपि आदिम मुसलमान आक्रमण-कारियों के सैनिकों के लश्कर से उर्दू उत्पन्न हुई है, तथापि उसकी अब इतनी उन्नति हो गई है कि उसका साहित्य इस समय विशेष श्रीसम्पन्न है। उसने भारत की अन्यान्य जीवित भाषाओं के बीच अपने लिए एक विशेष स्थान प्राप्त कर लिया है। उसके पहले के कविजन अपनी रचनाओं में फ़ारसी-काव्य के भावों का अनुकरण करते थे, यह बात उसकी उत्पत्ति के विचार से स्वाभाविक ही थी। यद्यपि इस अनुकरण-प्रवृत्ति के कारण, अपने हृद्गत भावों को व्यक्त करने की शक्तियाँ उन कवियों में विकसित हो गई थीं, तो भी वे लोग उसे किसी ऐसी शैली में न ढाल सके जिससे उसमें कुछ विशेषतायें उत्पन्न हो जायँ और वह एक नवीन भाषा का रूप पृथक् धारण कर ले। उसका यह वर्तमान रूप तो उसे बहुत दिनों के बाद मिला है।

उन पुराने कवियों की रचनायें उसी प्रकार की कल्पनाओं तथा भावनाओं से परिपूर्ण हैं जैसी कि फ़ारसी-साहित्य में पाई जाती हैं। निस्सन्देह, पहले फ़ारसी-कविता का इतना अधिक अनुकरण किया गया था कि उर्दू-साहित्य का कोई भी ज्ञाता इस बात को जान सकता है और बता भी सकता है कि किस कवि ने फ़ारसी के किस कवि का अनुकरण करने का प्रयत्न किया है। इन मिथ्या आदर्शों के कारण उर्दू-कविता बहुत समय तक जटिलता के पाश में फँसी रही। यद्यपि उस समय के भी कुछ कवियों की रचनाओं में हृदयहारी भाव पाये जाते हैं, किन्तु मौलिकता की ओर किसी ने भी ध्यान नहीं दिया। उस समय के कवियों में महाकवि ग़ालिब का बड़ा नाम है। उनके पद्यों में शब्द-वैचित्र्य तथा

रूपकालङ्कार ही नहीं हैं, वे सुन्दर तथा गम्भीर भावों से भी भरे हुए हैं। वे पद्य हमारी पसन्द के हों चाहे न हों, पर मूल्यवान् अवश्य हैं। हम पर उनका प्रभाव अवश्य पड़ता है।

ग़ालिब उस समय हुए थे जब पुरानी बातें समय के चक्र में पड़ कर नष्ट भ्रष्ट हो रही थीं और अन्तिम मुग़ल-सम्राट् बहादुरशाह बन्दी बना कर रङ्गून भेजे जा चुके थे। उसी समय ग़ालिब ने मार्मिक पीड़ा और दुःख-व्यञ्जक विचार जगत् के सामने, कविता के रूप में, व्यक्त किये। मुग़ल-सम्राट् के पतन के साथ उन्होंने उन सब बातों को अन्तर्धान होते देखा जिनको वे अच्छी समझते थे। उन्होंने अपने मन को दार्शनिक विचारों के स्रोत में निमग्न किया है और अपनी मर्म्मकृन्तक व्यथाओं को विस्मृति के गर्त में डाल देने की चेष्टा की है। उनकी इस ढँग की कविता का असर मन पर बहुत अधिक पड़ता है। अँगरेज़ों के आगमन तथा नये रीति-रिवाजों के प्रचलन को ग़ालिब उस पुराने समाज की मृत्यु की पूर्व-सूचना समझते हैं जिस पर उनका अनुराग था और जिसके वे स्वयं भूषण थे। वे अपनी कविता में उस पुरानी स्थिति को लौटाने की चेष्टा करते हैं। इस प्रसङ्ग में उन्होंने जो पद्य कहे हैं वे करुणरस से परिपूर्ण हैं और बड़े सुन्दर हैं। देखिए, एक शेर में वे कहते हैं—

"एक वस्तु अब तक बची हुई थी जो मुझे उस मण्डली की याद दिलाती थी जो शाम को बैठकों में एकत्र होती थी। वह वस्तु थी बत्ती। हाय! वह भी अपने आप जल गई।"

यह भाव उस पद्य का है जिसको उन्होंने अपनी स्वाभाविक भाषा में व्यक्त किया है। दूसरे स्थान पर वे अपने उस हार्दिक दुःख को, जिसके कारण सांसारिक वस्तुओं की तृष्णा उनके चित्त से दूर हो गई थी, इस तरह व्यक्त करते हैं—

"हाय! हम लोगों के पास केवल कुछ ही गुले लाल तथा गुलाब के रूप में आये हैं, सब नहीं।"

"भगवन्, उनमें से कुछ लोगों के मुख कैसे सुन्दर रहे होंगे जो अब नीचे धूल में दबे पड़े हैं"।

परन्तु ग़ालिब भूतकाल के कवि हैं। लोग उनकी कवितायें इस दृष्टि से नहीं पढ़ते कि उनका रचयिता एक प्राचीन कवि है। उनकी रचनायें भारत में उसी दृष्टि से पढ़ी जाती हैं जिस दृष्टि से कि यहाँ इँगलेंड में मिल्टन की। हाँ, यह बात ज़रूर है कि भारत की नई सन्तान को ग़ालिब की रचनाओं में वे भाव देखने को नहीं मिलते जो वर्तमान मानव-समाज में विद्यमान हैं। हमारी महत्त्वाकाङ्क्षाओं के भावों के अस्तित्व का दिग्दर्शन उनकी कविता में हमें निस्सन्देह नहीं दिखलाई पड़ता।

जब से भारत का सम्बन्ध पाश्चात्य देशों के साथ हुआ तब से उर्दू-साहित्य पर नये नये प्रभाव आप ही आप पड़ने लगे। जिस पुरानी कविता का आदर्श फ़ारसी-कविता था और जो आध्यात्मिक तथा प्रेम के भावों से परिपूर्ण रहती थी, वह अब धीरे धीरे निर्बल पड़ने लगी। यहाँ तक कि विगत शताब्दी के ८० वें वर्ष में उसकी इतिश्री हो गई। महाकवि हाली ने उस आदर्श की उपेक्षा की और देशकालानुरूप कविता करके उसके प्रभाव को नष्ट कर डाला।

हाली नये भावों के प्रचारक हैं। वे अपनी युवावस्था में ग़ालिब के भक्त थे। उन्होंने ख़ुद ग़ालिब की शैली का बरसों अनुकरण किया। परन्तु जब मुसल्मानी समाज के प्रसिद्ध सुधारक, सर सैयद अहमद, का प्रभाव उन पर पड़ा और जब वे भी दिलोजान से उस आन्दोलन में सम्मिलित हो गये, जिसे सुधारक दल ने उस समय उठाया था, तब परिणाम यह हुआ कि "मुसद्दस हाली" जैसे जातीय महाकाव्य ने, सन् १८८० में, जन्म लिया।

उर्दू-साहित्य में यह काव्य अपने ढँग का पहला है। इस काव्य ने हमारी भाषा के साहित्य के इतिहास में एक नवीन युग का प्रवर्तन कर दिया है। इसने उस जातीय कविता की नींव डाली जो इस समय हमारे देश में बल पकड़ रही है। हाली ने अपने इस काव्य द्वारा जो सँदेशा भेजा वह देश के एक छोर से दूसरे छोर तक पहुँच गया। इस काव्य का जो प्रभाव भारत के मुसल्मानों पर पड़ा उसे एक प्रसिद्ध भारतीय आलोचक के ही मुख से सुनिए। आलोचक महोदय लिखते हैं—

"कवि के तहेदिल की वह आवाज़ फूट निकली जो पहले कभी न सुनी गई थी। वह ऐसी सुन्दर, ऐसी प्रभावोत्पादक, ऐसी करुणाजनक, ऐसी उत्तेजक और ऐसी कवित्त्व-पूर्ण है कि उसे सुन कर मुसल्मानी समाज के अहदी तक अपनी आलस्य-निद्रा से चौंक पड़े। मैंने ऐसे मनुष्य देखे हैं जो सिद्धान्तविहीन, धार्म्मिक तथा भ्रातृत्व के भावों से शून्य और विषयासक्त हैं। ये वे लोग हैं जो अपने भोग-विलास के समय दुःख शब्द का उच्चारण तक सुनना गवारा नहीं कर सकते और यदि किसी गायक ने इन लोगों के सामने कोई दुःख-व्यञ्जक पद गा दिया तो उसकी ख़ैर न समझिए। वह अपमान-सूचक शब्दों से तिरस्कृत कर दिया जायगा। परन्तु अब यही लोग मुसद्दस के पढ़े जाने पर ज़रा भी एतराज़ नहीं करते और जब तक उसका पढ़ना जारी रहता है तब तक बैठे बैठे रोया करते हैं। मैंने अपने देश के अन्य धर्म्मावलम्बियों को भी ऐसे अवसरों पर अश्रुपात करते देखा है और कैसे अश्रुपात जो हृद्गत दुःख के कारण स्वतः प्रवृत्त हुए थे, अतएव सच्चे थे।"

पूर्वी देशों में कविता का आज भी अटल प्रभाव है। वह हम लोगों की जीवनी शक्ति है। और, जिन भावों को वह उत्तेजित करती है उन्हें व्यक्त करने में हमें ज़रा भी सङ्कोच नहीं होता।

इस काव्य में इसलाम के उदय तथा उसके पराभव की कथा का उल्लेख किया गया है। इसकी रचना में कवि की आत्मगत ओजस्विता स्वाभाविक रीति से प्रस्फुटित हुई है। महाकवि ने अपने भावों को ज़ोरदार और सुन्दर भाषा में व्यक्त किया है। उन सारे दुःखों को और उन सारी आशाओं को, जो उस समय मुसल्मानों के दिलों पर छाई हुई थीं, उन्होंने अपने इस महाकाव्य में चुन चुन कर रख दिया है। इस काव्य को देख कर लोगों को यह प्रतीत होने लगा है कि हमारी भाषा के साहित्य-क्षेत्र में कोई अनोखी वस्तु आविर्भूत हुई है; हमारी आत्मा को प्रोत्साहित करने के लिए कोई नया साधन उत्पन्न हुआ है। इस काव्य के उदय से पुराने विचार के लोगों का विरोध तिरोहित हो गया। उनका ज़ोर अब जाता रहा।

भारत में आज ऐसा कोई व्यक्ति नहीं जो इस बात से इनकार कर सके कि यह महाकाव्य उर्दू-साहित्य में एक अनूठी वस्तु है। जो आवाज़ हाली ने उठाई थी वह आज भी ज्यों की त्यों गूँज रही है। इक़बाल और चकबस्त (हिन्दू) जैसे तात्कालिक कवियों की रचनायें हज़ारों लोग पढ़ते हैं। इन लोगों की रचनाओं में वह नई आत्मा चमक रही है जिसने भारत को जगा दिया है। उर्दू-भाषा-भाषी लोगों ने तो इक़बाल के तरानों को जातीय गीत के रूप में स्वीकृत किया है।

देवीदत्त शुक्ल

सौन्दर्य।

(१)

वृषभ को शृङ्ग, अश्व को टाप,
शशक को पाद, सिंह को थाप;
प्रकृति रक्षा-हित करती दान,
वस्तु वाञ्छित का कर अनुमान।

(२)

मत्स्य करता जल-तल को पार,
पवन-पथ बनता विहग-विहार;
नरों को कर साहस-सम्पन्न,
नारियों को क्यों किया विपन्न?

(३)

दिया क्या उन्हें? सृष्टि-सौन्दर्य!
वर्म है वही, शास्त्र है शौर्य,
रुका कब यह आयुध-प्रहार?
कौन जो इससे गया न हार?

गोकुलचन्द्र शर्मा

द्रविड़-देश की रामायण।

कुछ विद्वान् रामायण को ऐतिहासिक ग्रन्थ नहीं मानते; उसे वे काव्य समझते हैं। इसका कारण कदाचित् यह है कि उसमें कुछ बातें ऐसी हैं जो हमारी दृष्टि में असम्भाव्य हैं। उत्तर-भारत में आदि-कवि वाल्मीकिजी की रामायण का प्रचार है। उसमें बहुत सी असम्भाव्य घटनायें वर्णित हैं। परन्तु दक्षिण भारत—द्रविड़ देश—में जो रामायण प्रचलित है उसमें ऐसी अप्राकृतिक बातें नहीं हैं। दोनों रामायणों की मूल घटना में भेद न रहने पर भी अनेक स्थलों में बड़ी भिन्नता है। उदाहरण के लिए हनूमान् का ही चरित्र ले लीजिए। वाल्मीकिजी के हनूमान वानराकृति हैं। उनकी पूँछ लम्बी है। वे समुद्र को कूद कर पार कर सकते हैं और सूर्य को भी निगल सकते हैं। परन्तु द्रविड़-देशीय रामायण में हनूमान् विद्वान् और वेदज्ञ अङ्कित किये गये हैं। सच तो यह है कि द्रविड़-देशीय रामायण में वर्णित घटनाओं को ऐतिहासिक मान लेने में किसी को भी आपत्ति न होगी। "प्रवासी" में उसी रामायण पर एक लेख निकला है। उसमें उक्त रामायण की कुछ घटनाओं का वर्णन है। नीचे हम उसी का सारांश देते हैं।

सूर्य-वंशीय राजा सगर जब दक्षिण में दिग्विजय के लिए निकला तब द्रविड़-देश का राजा जीमूतवाहन किसी सुन्दरी राजकन्या के साथ अपना विवाह करने के लिए उद्योग कर रहा था। राजकन्या के रूप और गुणों की प्रशंसा सुन कर राजा सगर ने उस कन्या का अपहरण कर लिया। तब जीमूतवाहन अपमानित होकर लङ्का चला गया और वहाँ लङ्का के प्रतापी नरेश राजा भीम ने उसे आश्रय-प्रदान किया। राजा भीम बड़ा बलशाली था। पर उस समय वह वृद्ध और क्षीण-शक्ति हो गया था। उसकी कोई सन्तान न थी। इसलिए उसने जीमूतवाहन को ही दत्तक पुत्र बना कर उसका विवाह एक राक्षसवंश की कन्या के साथ कर दिया। राजा भीम के बाद जीमूतवाहन ही लङ्का और पाताल-लङ्का के राज्य पर अधिष्ठित हुआ।

जीमूतवाहन के वंश में धवलकीर्ति नामक एक प्रतापी राजा हुआ। उसका एक साला था श्रीकण्ठकुमार। उसने अपने बहनोई के आश्रय में रहना अनुचित समझ कर अपने बाहुबल से एक स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने की चेष्टा की। उसने वानरद्वीप के कुछ देश जीत कर किष्किन्धा-पर्वत पर अपनी राजधानी स्थापित की। अपनी ध्वजा पर उसने वानर का चिह्न रक्खा।

श्रीकण्ठ के वंश में वज्रकण्ठ, इन्द्रायुध, अमरप्रभु और कपिकेतु नामक प्रतापी राजाओं ने जन्मग्रहण किया। अमरप्रभु ने लङ्का की एक राजकन्या के साथ विवाह किया। कपिकेतु के दो लड़के हुए—किष्किन्ध और अन्ध्रक। एक बार उन्हें यह ख़बर मिली कि विजयार्ध पर्वत पर आदित्यनगर की राजकन्या मन्द्रमाली का स्वयंवर होनेवाला है। ये दोनों राजपुत्र उस स्वयंवर में

गये। वहाँ विद्याधर देश के चक्रवर्ती राजा अशनिवेग का पुत्र विजय और लङ्का का राजकुमार सुकेश भी आये थे। राजकन्या ने किष्किन्ध को ही पसन्द किया। विजय को यह अपमान सह्य न हुआ। उसने वहीं किष्किन्ध को युद्ध के लिए ललकारा। अन्धक के हाथों से विजय वहीं मारा गया। राजकन्या से विवाह करके किष्किन्ध अपने देश चला आया। तब अशनिवेग ने किष्किन्ध के राज्य पर आक्रमण किया। लङ्का का राजकुमार सुकेश किष्किन्ध का आत्मीय था। वह किष्किन्ध की सहायता के लिए आया। परन्तु युद्ध में जय अशनिवेग की हुई।

किष्किन्ध, अन्धक और सुकेश पराजित होकर पाताल-लङ्का में रहने लगे। कुछ समय बाद मधुपर्वत पर एक छोटा सा नगर बसा कर किष्किन्ध ने अपने दोनों पुत्र ऋत्तज और सूर्यज को वहीं का राजा बना दिया।

सुकेश के तीन लड़के हुए—माली, सुमाली और माल्यवन्त। वे तीनों बड़े वीर थे। उन्होंने विद्याधरों का पराजय करके अपने पैतृक राज्य का उद्धार किया। इधर विद्याधरों के देश में अशनिवेग की मृत्यु होने पर सहस्रार राजा हुआ। उसके बाद इन्द्र राज्यसिंहासन पर बैठा। इन्द्र के राजत्वकाल में माली, सुमाली और माल्यवन्त ने ऋत्तज और सूर्यज की सहायता से विद्याधरों पर फिर आक्रमण किया। परन्तु इस बार उनकी बड़ी हार हुई। इन्द्र ने फिर लङ्का पर अधिकार जमा लिया। ये लोग फिर भाग कर पाताल-लङ्का चले गये।

यहीं सुमाली के पुत्र रत्नश्रवा के एक लड़का हुआ। उसका नाम रक्खा गया रावण। वह बड़ा पराक्रमी हुआ। उसने इन्द्र को हरा कर लङ्का पर अधिकार किया। फिर किष्किन्धा नगरी को जीत कर ऋत्तज और सूर्यज को उनका राज्य अर्पण कर दिया। सूर्यज की मृत्यु होने पर उसके लड़के बालि और सुग्रीव वहाँ के राजा हुए। इधर रावण ने बालि की बहन के साथ विवाह करने की इच्छा प्रकट की। बालि को यह सम्बन्ध पसन्द न था। इसलिए वह राज्यभार सुग्रीव पर छोड़ कर कहीं चला गया। सुग्रीव ने अपनी बहन का विवाह रावण के साथ कर दिया। वाल्मीकीय रामायण (सुन्दर-काण्ड) में कदाचित् इसी सम्बन्ध का स्मरण कर के हनूमान् ने रावण से कहा था—"हे रात्तसेश, आपके भ्राता वानरपति सुग्रीव ने आपकी कुशल पूछी है।"

एक बार अपनी स्त्री तारा के साथ सुग्रीव का झगड़ा होगया। सुग्रीव राज्य छोड़ कर एक अज्ञात स्थान में रहने लगा। इसके बाद एक मनुष्य सुग्रीव बन कर उसके देश पर राज्य करने लगा। उसमें और सुग्रीव में कुछ ऐसा सादृश्य था कि सभी लोग—यहाँ तक कि राजमन्त्री और तारा भी—धोखे में पड़ गये। जब सुग्रीव को यह ख़बर मिली तब वह बहुत घबराया। हनूरुह द्वीप के राजा, पवनजय के पुत्र, हनूमान् से उसकी बड़ी मित्रता थी। वह उसके पास सलाह लेने के लिए गया। उसी समय हनूमान् को अपने एक दूत से यह ख़बर मिली कि कोशल के सूर्यवंशीय राजा राम, किसी कारण से, अपने भाई लक्ष्मण के साथ जङ्गल जङ्गल घूम रहे हैं। उसने राम से भेंट की। फिर सुग्रीव से उनकी मित्रता करा दी। दोनों ने एक दूसरे की सहायता करने की प्रतिज्ञा की। राम ने छद्मवेशी सुग्रीव को मार कर सुग्रीव को फिर राज्यासन पर बिठाया। तब सुग्रीव ने सीता की खोज के लिए दूत भेजे। दूतों से ख़बर मिली कि सीता को रावण ले गया है। तब सब लोगों ने सलाह कर के यह निश्चय किया कि हनूमान् को ही दूत बना कर रावण के पास भेजना चाहिए। एक तो वह रावण

का आत्मीय है। फिर, वह बड़ा बुद्धिमान् और राजनीतिज्ञ है। इसलिए उसका कहना रावण ज़रूर मान लेगा।

हनूमान् राम का अभिज्ञान लेकर महेन्द्र और दधिमुख पर्वत के रास्ते लङ्का गये। रावण ने हनूमान् की बात न सुनी। फल यह हुआ कि रावण के साथ रामचन्द्र का युद्ध हुआ और उस युद्ध में रावण का वंश ही नष्ट हो गया।

हेनरी फेवर।

प्रकृति का राज्य रहस्यपूर्ण है। जो उसमें विचरण करता है वह प्रकृति की विलक्षणता से मुग्ध हो जाता है। कहीं पहाड़ों की शृङ्गमाला है, तो कहीं विस्तृत वन-भूमि है। कहीं अनन्त जलसागर है तो कहीं तप्त वालुकामय रेगिस्तान है। प्रकृति के कौतुक, उसकी क्षुद्रातिक्षुद्र लीलायें हमें आश्चर्यसागर में डाल देती हैं। सच तो यह है कि उसकी सभी बातें विस्मयोत्पादक हैं, सभी आह्लाद-दायिनी हैं।

प्रकृति के इसी राज्य में हमारे चरितनायक हेनरी फेवर के जीवन का अधिकांश व्यतीत हुआ है। प्राणिशास्त्र के विद्वानों में उनका स्थान बहुत ऊँचा है। यद्यपि वे अब इस संसार में नहीं हैं तथापि उनकी कीर्ति अभी तक विद्यमान है। उनका जन्म उस समय हुआ था जब फ्रांस में घोर अशान्ति फैली हुई थी और आश्चर्य तो यह है कि उनकी मृत्यु भी उसी समय हुई जब फ्रांस शत्रुओं से पीड़ित था। यद्यपि उन्हें नाना प्रकार के सांसारिक दुखों से सामना करना पड़ा, दरिद्रता की बेड़ी से बहुत काल तक वे जकड़े रहे, तो भी मधुमक्खियों, पतङ्गों, मकड़ियों आदि की सङ्गति में रह कर ही उन्होंने अपने को कृतार्थ समझा।

प्राणि-शास्त्र को इतना समुन्नत करनेवाले विद्वान् फेवर एक दरिद्र पिता के पुत्र थे। जीवन भर कठिन परिश्रम करने पर भी वे दरिद्रता के चङ्गुल से मुक्त न हो सके। यदि वे चाहते तो किसी विश्वविद्यालय के अध्यापक अवश्य हो जाते, परन्तु उन्होंने अपने गाँव में ग़रीबी से जीवन बिताना ही पसन्द किया। यहीं उनका समय मकड़ियों के जालों और भौंरों के वंशों के निरीक्षण में ही बीता।

फेवर महाशय का जन्म दक्षिण फ्रांस के सेंट लिवोन्स नामक ग्राम में, सन् १८२३ ईसवी में, हुआ था। उनके पिता वहाँ एक छोटे से होटल में दरबान थे। घर में दरिद्रता का अखण्ड राज्य रहते हुए भी बालक फेवर को ज़रा भी कष्ट नहीं था। घर के सामने का उद्यान उनके खेलने का चौगान था। छोटे छोटे कीड़े-मकोड़े तथा फूल-पत्ते उनके साथी थे। खेल की ऐसी आनन्ददायिनी सामग्री के कारण उनको बाल्यावस्था में दुख का किञ्चिन्मात्र अनुभव नहीं हुआ।

सात वर्ष की अवस्था में वे पाठशाला में पढ़ने के लिए भेजे गये। उनका शिक्षक एक नाई था। वह अपने व्यवसाय के अतिरिक्त गिरिजाघर में घण्टा बजाने का भी काम करता था। फिर भी वह लड़कों को पढ़ाने के लिए समय बचा लेता था। अपने परिवार के साथ वह स्कूल में ही रहता था। उसके जानवरों के कारण विद्यार्थियों को अपनी पढ़ाई में बहुधा बाधा पहुँचती थी। जाड़े के दिनों में प्रत्येक विद्यार्थी को ख़ुद आग जलाने के लिए जङ्गल से लकड़ियाँ चुन लानी पड़ती थीं। यद्यपि स्कूल की ऐसी हीन दशा थी तो भी उसके शिक्षक ने अपने भरसक ऐसा प्रयत्न किया कि उसके विद्यार्थियों में विद्या के प्रति अनुराग जागृत हो गया। इसका एहसान हेनरी अपने जीवन भर मानते रहे।

अकाल के कारण हेनरी के पिता को रोडेज नगर में नौकरी करनी पड़ी। वहाँ हेनरी को पाठशाला में पढ़ने का फिर अवसर मिला। इतने दिनों की ही पढ़ाई में उन्हें महाकवि वर्जिल के ग्रन्थ समझने की योग्यता हो गई। परन्तु इसी बीच में उन्हें अपनी जीविका के निर्वाह की चिन्ता हुई। वे इस समय सिर्फ़ सोलह वर्ष के थे। काम सीखने के लिए समय न था। पशु, पक्षी, कीड़े, मकोड़े तथा फूल-पत्तों का ज्ञान तो धनोपार्जन का साधन नहीं। अतएव वे देहाती बाज़ारों में घूम फिर कर नींबू बेचने लगे। इस समय उनको बहुत कष्ट हुआ; परन्तु प्रकृति-प्रेम और विद्याभिरुचि के कारण उन्हें वह कष्ट कष्ट न जान पड़ा।

इस प्रकार विद्याभ्यास में निरत रहने के कारण फेवर साहब को एक वज़ीफा मिला । गणित और भूमितिशास्त्र में उनकी विशेष रुचि न थी । फलतः वे आलसी और मन्द-बुद्धि विद्यार्थियों की श्रेणी में गिने गये । इससे उनको ग्लानि हुई और उन्होंने अपनी असाधारण बुद्धि का परिचय देने के अभिप्राय से ३ साल की पढ़ाई केवल डेढ़ साल में समाप्त कर दी । परीक्षा में वे प्रथम श्रेणी में पास हुए । इसी समय वे कारपेनट्रास ग्राम की प्रारम्भिक पाठशाला में ३०) मासिक वेतन पर अध्यापक नियुक्त हुए । वहाँ भी उन्होंने अपने प्रकृति-निरीक्षण का काम जारी रक्खा ।

२१ वर्ष की अवस्था में फेवर साहब ने विवाह किया । तब उन्हें अधिक धन उपार्जन करने की चिन्ता हुई । भाग्य ने भी उनका साथ दिया और वे गणित तथा विज्ञान-शास्त्र की उच्च परीक्षा पास करते ही कार्सिका द्वीप के एजोकियो कालेज में अध्यापक हो गये । अब जाकर वे दरिद्रता के थोड़े बहुत बन्धन से मुक्त हुए । इस स्थान के प्राकृतिक दृश्यों से उनके मन में नई नई बातें उत्पन्न होने लगीं । उनके अवकाश का समय फूल, घोंघे और कीट-पतङ्ग एकत्र करने में बीता करता था । वहाँ एक प्रोफ़ेसर से इनकी मित्रता हो गई । वे भी गणितशास्त्र और प्राणिशास्त्र के प्रेमी थे । एक दिन भोजन करते समय उन्होंने फेवर को घोंघे के सम्बन्ध की कुछ अनोखी बातें बताईं । वे बातें उन्होंने घोंघों की चीर फाड़ करके खोज निकाली थीं । इससे फेवर को एक नया ही तरीक़ा मालूम हुआ । भिन्न भिन्न प्रकार के प्राणियों को एकत्र करने और उनके बाह्य शरीर की रचना पर विचार करने के सिवा वे अब शस्त्रद्वारा चीर-फाड़ करके फूलों और कीड़े-मकोड़ों की जांच करने लगे ।

इस विषय में फेवर साहब की ज्ञान-लिप्सा इतनी बढ़ी कि वे दिन रात मिहनत करने लगे । इससे उनका स्वास्थ्य बिगड़ चला और उन्हें अपनी बदली करानी पड़ी । अब के बार वे फ़्रांस के एह्विगनोन गाँव की पाठशाला में अध्यापक हुए । वहाँ भी वे अपनी शिष्य-मण्डली के साथ बाहर खेतों में घूमा फिरा करते थे ।

स्कूल के कामों में फँसे रहने के कारण फेवर साहब को प्राकृतिक विज्ञान का अध्ययन करने के लिए कम अवकाश मिलता था । उनकी यह बड़ी इच्छा थी कि वे किसी विश्व-विद्यालय में अध्यापक हो जायँ जिससे उन्हें पशु-पक्षियों और पौधों के सम्बन्ध में शिक्षा देने का अवसर मिले । यदि वे अपने निश्चय पर दृढ़ रहते तो उनकी कामना फलीभूत हो जाती और विश्वविद्यालय के विद्यार्थी भी उनके ज्ञान से लाभ उठाते । परन्तु उन्होंने अपनी इच्छा को फलित होते न देख अपना इरादा छोड़ दिया और अपना समय प्राकृतिक अनुसन्धान में लगाना ही उचित समझा ।

एक दिन शरत्काल में सन्ध्या-समय फेवर साहब को "बरैया" के छत्ते पर एक लेख पढ़ने को मिला । उसमें लेखक ने छत्ते का तो वर्णन किया ही था; कुछ तरीक़े भी बतलाये थे जिनसे नई खोज की जा सके । इस लेख से फेवर साहब की कार्य-प्रणाली ही बदल गई । अब वे मृत प्राणियों की जाँच-पड़ताल करना छोड़ कर जीवित प्राणियों की ख़ूबियाँ ढूँढ़ने लगे ।

उपर्युक्त लेख प्राणिशास्त्री ड्यूफोर (Dufour) का लिखा हुआ था । उनका कहना था कि बरैया अपने छत्ते में यहाँ वहाँ से जिन गुबरीलों को लाकर सञ्चित करती है वे एक एक, दो दो महीने तक पड़े रह कर भी न सड़ते हैं, न गलते हैं; उनका शरीर ज्यों का त्यों बना रहता है, बिगड़ता नहीं । इस पर उन्होंने यह अनुमान किया कि बरैये के डङ्क से निकले हुए विष में ज़रूर ऐसी कोई शक्ति है जिसका प्रयोग गुबरीलों पर होते ही उनका मृत शरीर बिगड़ने नहीं पाता । फेवर साहब ड्यूफोर के इस कथन की जाँच करने को तत्पर हो गये । बहुत खोज करने पर उन्हें विदित हुआ कि लेखक की बातें ठीक नहीं; क्योंकि बरैया अपने छत्ते में जितने गुबरीले एकत्र करती है वे बहुत काल तक वहाँ क़ैद रहने पर भी मरते नहीं । हाँ, उनकी चलने फिरने की शक्ति ज़रूर नष्ट हो जाती है, जिससे मादी बरैया के अण्डों से बच्चे निकलने तक वे जीवित रहें और बच्चों को यथासमय ताज़ा भोजन मिल सके । क्या ख़ूब, बरैया भी बड़ी अग्रसोची निकली !

फेवर साहब ने अपनी इस खोज को पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया । उनकी यह पुस्तक इतनी रोचक, सरल और मौलिक निकली कि सब वैज्ञानिक इस ग्रामीण पाठशाला के अध्यापक की असाधारण बुद्धि पर मुग्ध हो गये । डार्विन

तक ने इस पुस्तक की प्रशंसा की। उन्हें इस पुस्तक के बदले में पारितोषिक तो कम मिला, परन्तु वैज्ञानिकों की उदार आलोचनाओं से वे विशेष रूप से उत्साहित हुए।

यदि फेवर साहब को अपनी जीविका की चिन्ता न होती और यदि वे केवल प्रकृति-विज्ञान के अध्ययन में ही संलग्न रहते तो सम्भव था कि वे संसार में कोई बड़ा काम कर दिखाते। दासत्व के बन्धन से मुक्त होने के लिए उन्होंने उद्योग तो किया; परन्तु अपने भोले भाले स्वभाव के कारण चूक गये। उन्होंने मजीठ की जड़ से रङ्ग बनाने का सुगम उपाय खोज निकाला। पर वे उसे गुप्त न रख सके। दूसरे लोगों ने उसे जान कर ख़ासा लाभ उठाया और वे मुँह ताकते ही रह गये। उनके इस आविष्कार ने उद्योग-धन्धे में बड़ा भारी परिवर्तन कर दिया; कृत्रिम रङ्ग बनाने की युक्ति निकालने के पहले तक इसकी ख़ूब प्रतिष्ठा रही।

इस आपत्ति-काल में एक पुस्तक-प्रकाशक से सहायता पाने पर उन्होंने उसके लिए प्राकृतिक विज्ञान-विषयक बहुत सी बालोपयोगी पुस्तकें लिखीं। इन पुस्तकों की ओर फ़्रांस के शिक्षा-विभाग के मन्त्री का ध्यान आकृष्ट हुआ और उसने फेवर को उनकी असाधारण योग्यता के बदले उपाधि प्रदान की। इन्हीं मन्त्री महाशय की सहायता से उन्हें फ़्रांस के बादशाह से साक्षात्कार करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। यदि उनमें भोलापन और निर्भीकता की मात्रा न रहती तो, सम्भव था, वे राजकुमारों के शिक्षक नियुक्त हो जाते। बादशाह और काश्तकार दोनों में कुछ भेद न रखने के कारण उन्हें फिर अपने कीट-संसार में वापस आना पड़ा। पेरिस की यात्रा के अनन्तर प्रसिद्ध लेखक जान स्टुअर्ट मिल से इनकी भेंट हुई। इन दोनों में मित्रता हो गई। खेतों में घूमना, फूल-पौधों की विलक्षणता पर बहस करना, ज़मीन पर लेटे लेटे कीट-पतङ्गों का कौतुक देखना, यही इन दोनों का नित्य कर्म हो गया। इन्हें देख कर गाँव के किसान हँसा करते थे।

दिन के अतिरिक्त रात के समय भी पढ़ाने की नौकरी फेवर को मिल गई थी; परन्तु इनके हितचिन्तक मन्त्री महोदय के पदच्युत हो जाने पर इनकी भी नौकरी छूट गई। इसके सिवा पाठशालोपयोगी पुस्तकों की रायलटी मिलना भी बन्द हो गया। इस सङ्कट में फेवर ने जॉन मिल की मदद चाही। उदारचेता मिल ने उनकी प्रार्थना स्वीकार करली और बिना दस्तावेज़ के उन्हें ३०० फ़्रैंक उधार दे दिये।

फेवर को जीवन भर कठिन परिश्रम करना पड़ा। उन्होंने मिल साहब के सब रुपये अदा कर दिये, परन्तु आजन्म उनका उपकार मानते रहे। इसके बाद एकान्त में रहने की इच्छा से वे सेरिगनान के शान्ति कुटीर में चले आये और तीन वर्ष के बाद यहीं से उन्होंने एक ग्रन्थ प्रकाशित किया। उसकी अच्छी क़द्र हुई। इसके बाद उन्होंने "निःसार भूमि-खण्ड" (A piece of waster ground) नामक एक पुस्तक लिखी। उसमें उन्होंने अपने बाग़ीचे के कीट-पतङ्गों का जीवन-वृत्तान्त लिखा। उसमें कीड़ों के सम्बन्ध में ऐसी ऐसी बातें बताई गई हैं जिन्हें मनुष्य पहले न जानते थे। क्षुद्र प्राणियों के प्रति अगाध प्रेम होने के कारण उनकी छोटी छोटी और तुच्छ बातें भी उन्हें आनन्दप्रद थीं। एक स्थान पर वे लिखते हैं कि ये तुच्छ जीव अपनी सहज बुद्धि से विलक्षण काम करते हैं। ऐसा कोई मनुष्य न होगा जो मकड़ी के जाले को देख कर उसकी कारीगरी की तारीफ़ न करे। परन्तु आश्चर्य है कि जिस मकड़ी में जाला बनाने की योग्यता है उसमें उसको सुधारने की शक्ति नहीं। जान पड़ता है कि फेवर महाशय मकड़ी की बुद्धि और असमर्थता का यह अद्भुत मेल देख कर चकरा गये; क्योंकि उन्होंने अपनी पुस्तक में इस बात का उल्लेख कई स्थानों में किया है। उनके खोज करने के ढंग साधारण थे। एक सूक्ष्म-दर्शक काँच, चीर-फाड़ करने की दो छुरियाँ, एक रकाबी, नमूने रखने के लिए दियासलाई की कुछ ख़ाली डिब्बियाँ, टीन के डब्बे और तार के बने ढक्कन। यही फेवर की प्रयोग-शाला (लेबोरेटरी) के सामान थे।

फेवर साहब की सफलता का सबसे बड़ा कारण उनका धैर्य और दृढ़ निश्चय था। काम करते समय उन्हें दुनिया की कुछ ख़बर तक न रहती थी। अपने विचारों में ख़लल पहुँचानेवालों को वे सज़ा दिये बिना न रहते थे। यहाँ तक कि बुलबुल की मधुर वाणी भी उस समय उन्हें अप्रिय मालूम होती थी। धृष्टता करनेवाले पक्षी उनकी बन्दूक़ का निशाना बनते थे। इससे यह नहीं समझना चाहिए कि फेवर साहब क्रूर थे। नहीं, उनका चित्त बड़ा कोमल और दयार्द्र था।

८७ वर्ष की अवस्था में फेवर साहब को दरिद्रता का फिर सामना करना पड़ा। इस समय उनके मित्रों ने उन्हें सहायता दी और सरकार से पेन्शन मिलने लगी। उनकी बनाई हुई पुस्तकों की अधिक बिक्री होने के कारण उनके अन्तिम दिन सुख से बीते। १२ आक्टोबर १६१५ ईसवी को जिस समय उनका देश, फ्रान्स, शत्रुओं से घिरा हुआ था, उन्होंने अपनी इहलीला संवरण की। उन्होंने सब मिला कर प्राणि-शास्त्र-विषयक ग्यारह पुस्तकें लिखी हैं। महत्त्व-पूर्ण होने के कारण उनकी सभी पुस्तकें आदरणीय हुईं।

फेवर-कृत "विचित्र देश की गाथा" नामक पुस्तक अत्यन्त रोचक और शिक्षाप्रद है। उसमें जीव-जन्तुओं की लीला, उनकी कार्य-कुशलता और बुद्धिमत्ता बड़ी योग्यता से, निरीक्षण करके, लिखी गई है। उसी की एक कहानी का अनुवाद नीचे दिया जाता है।

"एक बार मुझे पुराने बादाम के वृक्ष पर एक भूरे रङ्ग का रेशम का कच्चा कोया मिला। उसे मैंने घर ले जाकर मेज़ पर रख दिया। कुछ समय बाद मैं क्या देखता हूँ कि कोये में से एक मयूरपङ्खी कीड़ा निकल कर बाहर झाँक रहा है। इतना बड़ा पतङ्गा देखने का मौक़ा मुझे और कभी नहीं मिला था। यह कीड़ा अपने रङ्ग-बिरङ्गे पङ्खों के कारण बड़ा मनोहर था। उसे मैंने तुरन्त काँच के ग्लास में क़ैद किया। सन्ध्या-समय जब मेरी छोटी बेटी सोने के लिए अपने कमरे में जा रही थी, एकाएक चिल्ला उठी— "दादा, दादा, इधर देखो, आपका पुस्तकालय तो बड़े बड़े पतङ्गों से भर गया है।" मैं तुरन्त अपनी कोठरी में गया। क़रीब एक दर्जन के बड़े बड़े पतङ्गे कमरे के भीतर उड़ रहे थे। पता लगाने पर मुझे विदित हुआ कि प्रातःकाल पैदा हुई राजकुमारी पर "टीका" चढ़ाने के लिए ये सब राजकुमार देश-देशान्तरों से आकर एकत्र हुए हैं। परन्तु इन्हें यह मालूम कैसे हुआ? यह सच है कि रेशम का कीड़ा कोई साधारण कीड़ा नहीं है और उसकी प्रेम-पूजा के लिए एक एक दो दो मीलों से दूसरे कीड़ों का आना कोई विचित्र बात नहीं; परन्तु विचित्रता यह है कि उन्हें इसके शुभ जन्म की सूचना कैसे मिली? यह तो हो ही नहीं सकता कि दृष्टि-शक्ति द्वारा मोर-पङ्खी के जन्म लेने की बात प्रकट हुई हो। रही श्रवण-शक्ति, वह भी असम्भव प्रतीत होता है; क्योंकि ध्यान देकर सुनने से भी रेशम के कीड़े के मुँह से किसी प्रकार की ध्वनि सुनाई नहीं पड़ती। ऐसी दशा में उसे गूँगा कहना अनुचित न होगा। जान पड़ता है, इनके आने का कारण केवल गन्ध होगा।

इस प्रकार तर्क-वितर्क करने के बाद मैंने परीक्षा करना आरम्भ किया। तीक्ष्ण गन्ध से साधारण गन्ध दब जाती है। यदि रेशम के कीड़े से निकलनेवाली गन्ध की अपेक्षा कोई अधिक तीव्र, लेवेन्डर, की खुली शीशी पतङ्गे के पास रखें तो यह अवश्य है कि सब प्रेमी राजकुमार लेवेन्डर की ओर चले जावेंगे और मोरपङ्खी के पास कोई भी न फटकेगा। दूसरे दिन सन्ध्या-समय सब तैयारियाँ की गईं। सूर्यास्त होते ही पहले दिन से भी अधिक प्रेमी एक एक करके कमरे के भीतर आ पहुँचे और लेवेन्डर की ओर थोड़ा भी ध्यान न देकर उसी क़ैदख़ाने के आस-पास चक्कर मारने लगे जिसमें राजकुमारी मोरपङ्खी क़ैद थी। इस प्रकार पतङ्गों के शरीर से निकलनेवाली गन्ध को दबाने की चेष्टा निष्फल हुई।

"यदि हम मयूरपङ्खी को ऐसे स्थान में बन्द करें जहाँ वायु का आना जाना न हो सके तो परिणाम क्या होगा? क्या वह अपना विचार बेतार के तार यन्त्र द्वारा अन्य स्थानों को भेज सकेगी? क्या वह विद्युत् या चुम्बक-प्रवाह से अपना काम लेती है? यह सोच कर पतङ्गों को काँच के औंधे प्याले के भीतर बन्द करके मैंने परीक्षा की। अब की बार कमरे में किसी प्रेमी का आगमन भीतर न हुआ। तब मैंने उस प्याले में एक बारीक सूराख़ बनाया। देखता क्या हूँ कि राजकुमारी के साथ प्रेमालाप करने के लिए राजकुमारों का समूह आ पहुँचा। मेरी शङ्का का समाधान हो गया और साथ ही यह भी सिद्ध हो गया कि क़ैदी चाहे जिस स्थान में बन्द रहे, यदि थोड़ी भी हवा आ जा सकती है तो वह अपना सन्देशा अपने प्रेमियों के पास बिना रुकावट के भेज सकती है।

"इस बड़े रहस्य की व्याख्या समाप्त होने के पूर्व क़ैदी का अन्त हो गया और मुझे अपने प्रश्नों का पूर्णतः उत्तर पाने के लिए बहुत दिनों तक ठहरना पड़ा। सच है, सफलता उसी की दासी है जो धैर्यवान् है और साथ ही अपने

कार्य में दृढ़ भी है। परीक्षा के लिए पतङ्गे खोजते खोजते लगभग तीन वर्ष व्यतीत हो गये। अन्त में मुझे मयूरपङ्खी तो नहीं, परन्तु उसी जाति का एक दूसरा पतङ्गा मिला। इससे मेरी पुरानी पहेली हल हो गई।

"पहले जो मैंने सोचा था कि ये पतङ्गे अपने मित्रों के पास अपने निवास-स्थान की सूचना गन्ध द्वारा भेजते हैं, वही ठीक निकला। अन्तिम परीक्षा करते समय क़ैदी तार के पिँजरे में से निकाल लिया गया, जो कोठरी के पिछवाड़े टँगा हुआ था। वह घण्टाकृति काँच के प्याले के भीतर बन्द किया जाकर कमरे की खिड़की के समीप रक्खा गया। सन्ध्या होते ही बहुत से प्रेमी पतङ्गे एक एक करके आ पहुँचे और सबके सब क़ैदी की ओर बिना दृष्टि डाले उस पर से उड़ते हुए कोठरी में मँडराने लगे। जहाँ क़ैदी बन्द था वहीं एक भाग कोठरी में आनेवालों के लिए खुला था। एक मिनिट के बाद आगन्तुक पतङ्गों का समूह उस तार के पिँजरे के आस-पास उड़ते हुए पाया गया जहाँ क़ैदी कुछ देर पहले बन्द था। इससे प्रकट होता है कि जिस वस्तु को मादी पतङ्गा छू देता है उसमें उससे निकलनेवाली गन्ध बस जाती है। यह गन्ध इतनी सूक्ष्म है कि मनुष्य उसे जान नहीं सकते। भला इतनी सूक्ष्म गन्ध लेवेन्डर की तीव्र गन्ध को कैसे दबा देती है? इस प्रश्न का कुछ उत्तर नहीं मिलता। मेरी समझ में उसके शरीर से निकलनेवाली गन्ध के दो गुण हैं। एक में उसका प्रभाव वायु में मिले हुए परमाणुओं द्वारा होता है और दूसरे में ईथर के प्रवाह से।"

अलाउद्दीन ने इधर चिराग़ घिसा और उधर एक महल तैयार हो गया। ऐसा ही विलक्षण हाल भूमि की गाथा का है। इस सम्बन्ध में फेवर साहब ने एक चतुर प्राणी की कारीगरी का हाल लिखा है। उसका संक्षिप्त विवरण देकर हम इस लेख को समाप्त करते हैं।

बकाइन और गुलाब के पत्तों में विचित्र प्रकार के छिद्र देख पड़ते हैं। उनमें से कुछ तो वृत्ताकार और कुछ अण्डाकृति रहते हैं। इन छिद्रों को देखने से यही प्रतीत होता है कि यह कोई सुस्त और चतुर कारीगर का काम होगा। अण्डाकृति छिद्र भिन्न भिन्न परिमाण के होते हैं। परन्तु वे शुद्धता से कटे हुए रहते हैं। भला, कहो तो इन कपड़ों को काटने छाँटनेवाला दरज़ी कौन होगा? वह दरज़ी मधु-मक्षिका है जो अपना घर बनाने के लिए काट-छाँट कर पत्ते एकत्र करती है।

पत्तों के अण्डाकृति टुकड़ों से थैली बनाई जाती है जिसमें अण्डे और मधु रक्खे जाते हैं। पत्तों के छोटे वृत्ताकार टुकड़े थैलियों के ढक्कन का काम देते हैं। इन्हीं से थैलियों का मुँह बन्द किया जाता है। मधुमक्खी १०, १२ थैलियों से अपने घर का बाहरी ढाँचा बना लेती है। वह प्रायः अपना घर पृथ्वी पर रहनेवाले कीड़े-मकोड़ों के ख़ाली बिल में बनाती है। यदि बिल की गहराई ६, ७ इञ्च से अधिक हुई तो वह उसे पत्तों से पाट कर उसकी गहराई कम कर देती है। बिल के अन्य रास्ते भी मज़बूत पत्तों के फाटक से रूँध दिये जाते हैं। बहुधा देखा गया है कि मधुमक्खी अपने बच्चों के लिए कोमल कोमल पत्तों से पालना भी बनाती है। थैली के भीतर मुलायम पत्ते का अस्तर रहता है। उसी के ऊपर ढकना रक्खा जाता है जो उसके सिरे पर ठीक ठीक जम जाता है और उसमें थैली के भीतर का मधु नहीं लग पाता। यदि कोई मनुष्य अपना सन्दूक़ घर में छोड़ कर उसके मुँह की नाप लिये बिना उसका ढक्कन ख़रीदने को बाज़ार जाय और दैवात् ठीक परिमाण का ढक्कन ले आवे तो उसे अत्यन्त ख़ुशी होगी। ऐसा संयोग पत्ते काटनेवाली मधुमक्खियों को नित्य पड़ता है। इसके सिवा मधुमक्खी अपना सन्दूक़ अँधेरे में बनाती है और वह उस सन्दूक़ को बिना देखे उसमें ठीक ठीक बैठनेवाला ऐसा सुन्दर ढक्कन काट ले आती है, मानों उसने कम्पास का उपयोग किया हो।

फेवर की पुस्तकों में इसी प्रकार की विचित्र कहानियाँ वर्णित हैं। हमारे घर के पास ऐसी बातें रोज़ होती रहती हैं जिनका हम स्वप्न में भी ख़याल नहीं करते। इन चमत्कारों का वर्णन करके उन्होंने संसार को यह दिखा दिया है कि जिन्हें हम तुच्छ कीड़े समझते हैं उनमें भी विलक्षण बुद्धि होती है। अतएव हमें उनसे घृणा न करनी चाहिए।

वनमालीप्रसाद शुक्ल

तुम भी आगे बढ़ते जाओ ।

(स्वामी विवेकानन्द की एक अँगरेज़ी कविता का भावार्थ ।)

(१)

रवि जो मेघों से छिप जावे ,
　　नभ बस अन्धकार दिखलावे ,
धीर ! समर से मुख मत मोड़ो !
　　होगी जय, मत साहस छोड़ो—

(२)

चला शीत जब जग से जाता
　　प्राणप्रद ऋतु-पति है आता
दुख-सुख का यों आना-जाना ,
　　नहीं ज़रा भी तुम घबराना !

(३)

है कर्तव्य कठिन सब नर के
　　सुख हैं सारहीन, क्षण भर के
लक्ष्य न साफ़ नज़र आता है
　　अन्धकार बढ़ता जाता है—

(४)

तुम भी आगे बढ़ते जाओ ,
　　तम से भीति ज़रा मत पाओ !
जो सत्कर्म्म बीज हैं बोते
　　कब निराश वे फल से होते ?

(५)

सज्जन-विद्वज्जन मुट्ठी भर
　　किन्तु वही नेता वसुधा पर !
जन-साधारण को तो मोती
　　की पहचान देर से होती !

(६)

शक्ति-देव है साथ तुम्हारे
　　और दूर-दर्शी जन, प्यारे !
सबके आशिष के भागी हो ,
　　अगर सत्य के अनुरागी हो !

पारसनाथसिंह

पेरिस ।

योरप में फ्रांस देश की राजधानी का नाम पेरिस है। वह बहुत बड़ा नगर है। सुन्दरता में तो वह दुनिया में अपना सानी नहीं रखता। वह अद्वितीय है। सीन नामक नदी उसके बीचोंबीच बहती है। पर नगर की बस्ती नदी के एक तरफ़ अधिक, दूसरी तरफ़ कम है। बीच में नदी आजाने से नगर की शोभा और भी अधिक होगई है। इसके सिवा वह दो पहाड़ियों के बीच में बसा हुआ है। उत्तर ओर की पहाड़ी ३२८ फुट और दक्षिण ओर की २६२ फुट ऊँची है। इन पहाड़ियों ने भी नगर की शोभा-वृद्धि में सहायता पहुँचाई है।

१८०० ईसवी में पेरिस की आबादी ५ लाख के लगभग थी। सौ वर्ष बाद, १९०१ में, बढ़ कर वह २७ लाख हो गई। पिछली मनुष्य-गणना १९११ में हुई थी। तब उसकी मनुष्य-संख्या २८ लाख के लगभग थी।

सीन नदी पर ३२ पुल हैं। सबसे पुराना पुल १५७८ ईसवी में बना था। उसका नाम है—पाँट-नफ अर्थात् नया पुल। "नया" नाम पाने पर भी वह सबसे अधिक पुराना है। जो पुल सचमुच ही सबसे पीछे का—अर्थात् नया—है वह पाँट अलेग्ज़ांड्रे, तीसरा कहलाता है। उसे बने अभी २० ही वर्ष हुए होंगे। इस पुल में केवल एक कमानी है। वह लोहे की है। वह ३५० फुट लम्बा और १३२ फुट चौड़ा है।

पेरिस में सैकड़ों उत्तमोत्तम इमारतें हैं। इन इमारतों की सुन्दरता, कारीगरी और आस पास का दृश्य देखने ही लायक़ है। विस्तृत वर्णन से भी उनकी रमणीयता का यथार्थ चित्र आँखों के सामने नहीं लाया जा सकता। पेरिस में अनेक

विद्वान्, अनेक कला-कुशल और अनेक विज्ञान-वेत्ता रहते हैं। पश्चिमी देशों में जितने बड़े बड़े नगर हैं, फ़ैशन और रँगीलेपन में कोई नगर पेरिस को नहीं पाता। वहीं से नये नये रीति-रवाज, नये नये वस्त्राच्छादन और नये नये भोजन-पान की विधियाँ और और देशों तथा नगरों में फैलती हैं। इन सब बातों में औरों के लिए पेरिस गुरुकल्प होरहा है। दूर दूर से लोग वहाँ सैर करने आते हैं।
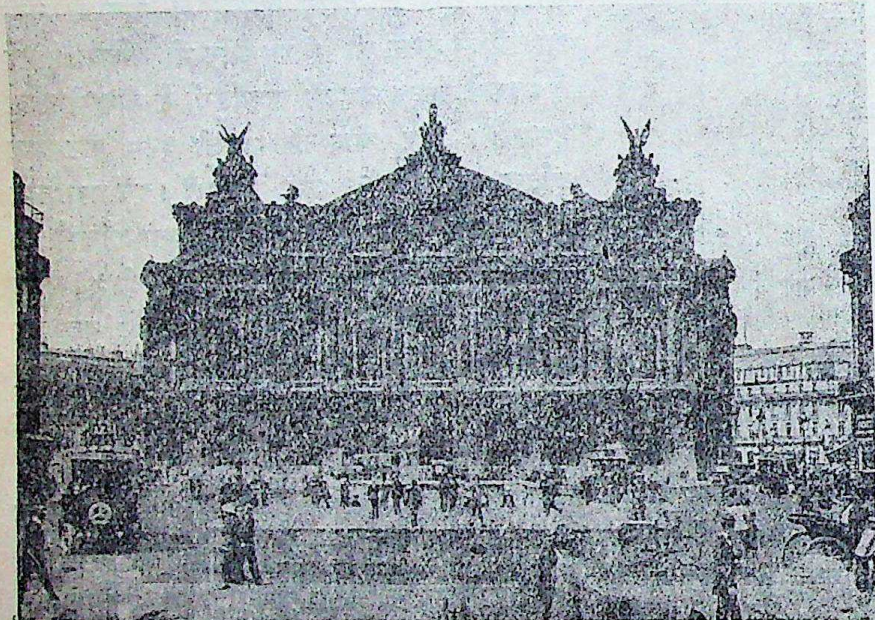
पेरिस का आपरा-हौस (L'Opera)

फ़्रांस में प्रजातन्त्र राज्य है। प्रेसिडेंट, जिसे राजा कहना चाहिए, पेरिस के डि ल'-इलीसी नामक महल में रहता है। प्रजा के प्रतिनिधियों की मन्त्रणा-सभा की बैठक डू-लक्षमवर्ग महल में होती है। कार्य्य-कर्त्ता प्रतिनिधि—अर्थात् डिपटी लोग—बार्बन नाम के महल में काम करते हैं; वहीं उनका दफ़्तर है। ल' ली डि ला सिटी नाम के महल्ले में न्यायालय, गिरिजाघर, घण्टाघर, जेल आदि इमारतें हैं।

सीन नदी के उत्तरी तट पर पेरिस का वह भाग है जहाँ कल-कारख़ाने और बड़े बड़े व्यवसायियों की दुकानें हैं। बनिज-ब्यौपार और उद्योग-धन्धे विशेष करके वहीं होते हैं। वहाँ पर एक जगह है—पैलेस डि ला बैस्टिली। उसे पेरिस का व्यापारिक केन्द्र कहना चाहिए। वहाँ की इमारतें आकाश से बातें करती हैं और करोड़ों रुपये का व्यापार और ख़रीद फ़रोख़्त का काम रोज़ होता है। एक नहीं अनेक बड़े बड़े बाज़ार इस महल्ले में हैं। बोर्सी अर्थात् सराफ़ा-बाज़ार भी वहीं है। एक प्रसिद्ध थियेटर (नाटकघर) भी वहीं है। इनके सिवा एक इमारत और भी है, जो संसार में अपनी प्रतिमा नहीं रखती। वह है वहाँ का पुस्तकागार—फ़्रांस की जातीय लाइब्रेरी। लोगों का ख़याल है कि ऐसा बहुमूल्य पुस्तकालय भूतल में दूसरा नहीं। कहीं न मिलनेवाली—सबसे पुरानी और सबसे नई—पुस्तकों का सङ्ग्रह वहाँ है। उनकी संख्या २५ लाख के लगभग होगी।

सीन नदी के तट पर लोवरे नाम का एक मनोमोहक भवन है। उसमें अनन्त चित्र, मूर्तियाँ तथा भिन्न भिन्न प्रकार की कारीगरी के नमूने सङ्गृहीत हैं। जो वस्तु कहीं और देखने को नहीं मिल सकती वह पेरिस के इस सङ्ग्रहालय में मिलती है। उसे देखने के लिए दूर दूर देशों और विलायतों से विद्वान् और गुणिजन आया करते हैं।

जिस महल्ले में पेरिस के बड़े बड़े बाज़ार हैं उसी के आस पास नाचने-गाने और खेल-तमाशे के साधन भी हैं। कितने ही नाचघर, नाटकघर और आपरा-हौस ऐसे हैं जहाँ रोज़ ही दर्शकों की अपार भीड़ रहती है—रोज़ ही एक न एक खेल-तमाशा हुआ करता है। एक इमारत का नाम है—ग्रैंड आपरा। १४ वर्ष लगातार काम जारी रहने पर १८७५ ईसवी में वह बन चुकी थी। उसमें २००० आदमियों के बैठने की जगह है। कितनी लागत से यह तैयार हुई है, आप जानते हैं? एक करोड़ रुपये से भी अधिक!

पेरिस की प्रख्यात प्रदर्शिनी की इमारत (Le Trocadero)

किस किस चीज़ का उल्लेख किया जाय। पेरिस की प्राचीन बस्ती में भी सैकड़ों चीज़ें देखने लायक़ हैं। उद्यानों, भव्य भवनों, गिरिजा-घरों, और नपोलियन बोनापार्ट के समय की इमारतों का वर्णन इस छोटे से लेख में करना असम्भव है। १८७८ ईसवी में जो बहुत बड़ी प्रदर्शिनी पेरिस में हुई थी उसके लिए एक ख़ास इमारत बनवाई गई थी। उसका नाम है—ली ट्रोकाडेरो। यह प्रासाद बहुत ही दर्शनीय है और सीन नदी के तट पर ही अवस्थित है।

पेरिस में एक बहुत बड़ी जन्तुशाला भी है।

सीन नदी का जो तट कुछ नीचा है उस पर उत्तर से दक्षिण की ओर सेंट मिचल नाम की बस्ती है। इसी तरह जो भाग पूर्व से पश्चिम की तरफ़ है वह सेंट जर्मेन कहाता है। इन्हीं बस्तियों में छात्र-निवास और अधिकतर स्कूल और कालेज हैं। पेरिस का विश्वविद्यालय भी वहीं है। बहुत पुरानी वस्तुओं का एक सङ्ग्रहालय अर्थात् अजायब-घर तथा नामी नामी अर्वाचीन चित्रकारों के चित्रों के नमूने भी वहीं एक चित्रशाला में हैं। कुछ दूर पर होटल डेस इनवैलिड्स नाम का एक प्रसिद्ध भवन है। उसे फ्रांस के राजा चौदहवें लुई ने बनवाया था। उसी में एक सुवर्ण-खचित मण्डप के नीचे पहले नपोलियन की क़ब्र है।

ऊपर जिस प्रदर्शिनी-भवन (ट्रोकाडेरो) का उल्लेख हो चुका है उसी के सामने, सीन नदी के दूसरे तट पर, एफल टावर है। पेरिस में यह एक प्रधान दर्शनीय वस्तु है। संसार का यह एक नामी मीनार है। इसकी उँचाई कुछ कम एक हज़ार फ़ुट है।

पेरिस के चारों ओर रेल दौड़ती है। वह पृथ्वी के ऊपर दौड़ लगाती है। एक रेल पृथ्वी के पेट में भी है। वह भीतर ही भीतर आवागमन करती है

और बिजली की शक्ति से चलती हैं। कई कम्पनियों की रेलें पेरिस से छूटती हैं। उनके पाँच प्रधान स्टेशन हैं।

फ्रांस का सबसे बड़ा नगर पेरिस ही है। वहाँ सैकड़ों लखपती और करोड़पती रहते हैं। व्यापार-व्यवसाय और उद्योग-धन्धे खूब उन्नत हैं। सोने और चाँदी का काम बड़े विस्तृत रूप में होता है।
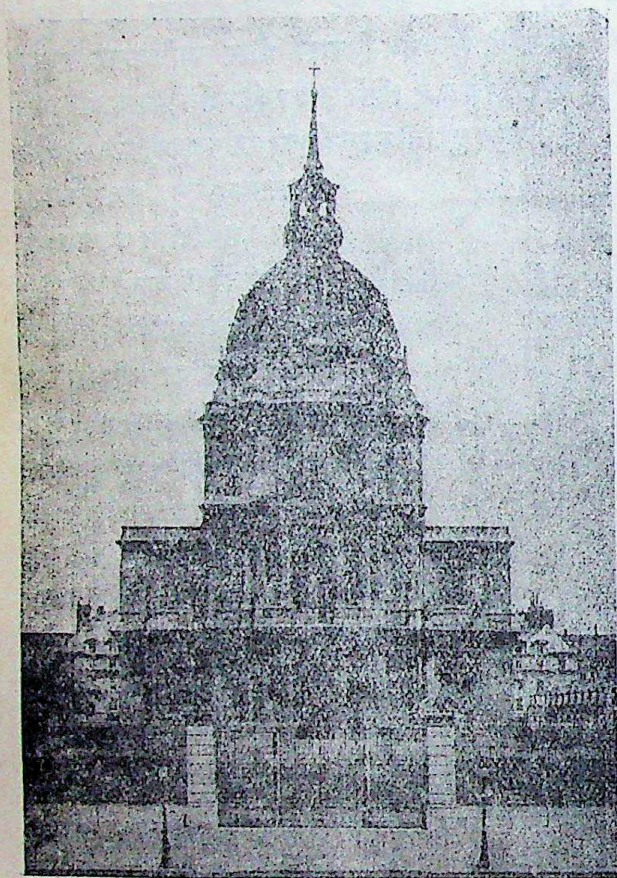
पेरिस का होटल डेस इनवैलिड्स
(L'Hotel Des Involids

वहाँ के जैसे जौहरी और किसी देश में नहीं। हीरे और पन्ने आदि नक़ली रत्न, जो हिन्दुस्तान के बाज़ारों में देख पड़ते हैं, वहीं के कीमियागरों और जौहरियों के आविष्कार हैं। विलास की सामग्री तैयार करने में कोई देश—कोई नगर—पेरिस की बराबरी नहीं कर सकता। सोने-चाँदी के ज़ेवर ही नहीं, चित्र-विचित्र पोशाक और लकड़ी का सामान भी वहाँ बहुत ही बढ़िया तैयार होता है।

इन सब चीज़ों के कारखानों में ५ लाख से कम आदमी—कारीगर, मज़दूर आदि—नहीं काम करते। युद्ध के कारण इसके बाज़ारों और नाटक-घरों आदि की शोभा हाल में कुछ कम हो गई थी। पर अब फिर वे अपने पूर्व-रूप को प्राप्त हो गये हैं, या हो रहे हैं।

पेरिस २० भागों में विभक्त है। हर भाग मेअर नामक एक एक अफ़सर के अधीन है। प्रत्येक मेअर की सहायता के लिए ३ से लेकर ५ तक सहकारी अफ़सर या सहायक हैं।

१९१० ईसवी में नदी की बाढ़ से पेरिस का बहुत सा अंश पानी के भीतर चला गया था। कोई २ लाख आदमियों को इस बाढ़ से कष्ट उठाना पड़ा। लगभग ३ करोड़ रुपये की हानि हुई।

पेरिस बहुत पुराना शहर है। रोमनरेश सीज़र के समय में उसका नाम था लूटेशिया। चौथी शताब्दी में रोम का बादशाह जूलियन वहाँ रहता था। उसका पेरिस नाम पड़े कोई पन्द्रह सौ वर्ष हुए। याद रहे, वह इससे भी बहुत पुराना है। अपने जन्म से अब तक उस पर अनेक जातियों का आधिपत्य रहा—अनेक आक्रमण उस पर हुए। कितनी ही दफ़े वह उद्ध्वस्त हुआ और कितनी ही दफ़े उसने पुनरुज्जीवन प्राप्त किया। नवीं शताब्दी में तो शत्रुदल उसे १३ महीने तक घेरे पड़ा रहा। पर उसकी दाल न गली। इन आक्रमणों के कारण हज़ारों आदमियों को प्राण देने पड़े—भूख से भी और अस्त्राघात से भी। पिछला धावा १८७० ईसवी में जर्मनीवालों ने किया। वे लोग ४ महीने तक उसे घेरे रहे। तब कहीं, निर्दिष्ट शर्तों पर, पेरिस ने आत्मसमर्पण किया। बीस हज़ार जर्मन सैनिक, मार्च १८७१ में, पेरिस के भीतर घुसे

और कुछ दिनों तक उसे अपने क़ब्ज़े में रक्खा। फ्रांस पर मनमाना दण्ड करने और उससे मनमाने प्रान्त छीनने पर जर्मनी ने पेरिस का पिण्ड छोड़ा। उसका बदला, अब कहीं, ५० वर्ष बाद, जर्मनी से फ्रांस ले पाया है।

विषधर सर्प।

सृष्टि में संख्यातीत पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग और पेड़-पौधे पाये जाते हैं। उनमें से किसी एक का भी सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना मनुष्य की ससीम शक्ति के बाहर की बात है। विद्वानों ने पता लगाया है कि जिन नैसर्गिक नियमों के अनुसार मनुष्य अपना जीवन धारण करता है, अधिकांश उन्हीं नियमों के अनुसार अन्य प्राणी भी जीते और जीवन-चर्य्या चरितार्थ करते हैं। आचार्य्य वसु ने तो इस बात तक के निर्भ्रान्त प्रमाण दिये हैं कि जीव-जन्तु ही नहीं, उद्भिज्ज तक में वही चेतन-शक्ति अपना काम कर रही है जो मनुष्यों, पशु-पक्षियों और कीट-पतङ्गों में विद्यमान रहती है। उस ज्ञानमय परमात्मा की प्रभुता और अनन्त शक्ति को तो देखिए। उसने अपने व्यापक नियमों से समस्त संसार का नियमन करके अपनी अचिन्त्य शक्तिमत्ता का कितना प्रबल प्रमाण दे रक्खा है। फिर भी, हज़ारों नास्तिक किसी ईश्वर, जगन्नियन्ता या कर्ता के अस्तित्व में सन्देह करते हैं। वे लोग जड़-प्रकृति, स्वभाव या "नेचर" (Nature) को ही उसका आसन दे डालना चाहते हैं। यही सही। इस दशा में आस्तिक जन नास्तिकों की प्रकृति को ही पुरुष मान लें तो क्या हर्ज ?

घर का ज्ञान प्राप्त करते करते घर-निर्माता तक पहुँच जाना आश्चर्य्य की बात नहीं। छाते को लेकर ढूँढ़नेवला उस कारख़ाने तक ज़रूर पहुँच सकता है जहाँ से बन कर वह बाहर निकला था। वहाँ उसे उस छाते के निर्माण से सम्बन्ध रखनेवाली सैकड़ों बातें मालूम हो सकती हैं; यहाँ तक कि उसके निर्माता कारीगरों से भी उसकी जान-पहचान हो सकती है। इसी तरह ईश्वर की सृष्टि में ये जो अनन्त जड़-चेतन पदार्थ देखे जाते हैं उनके विषय में ज्ञान प्राप्त करते करते उनके निर्माता या नियन्ता का विचार चित्त में थोड़ा बहुत अवश्य ही उत्पन्न हो जाता है। और ऐसे विचार व्यर्थ नहीं। सौभाग्य से यदि उनका विकाश होता चला जाय तो किसी दिन विचार-कर्ता उसी कोटि की आनन्द-प्राप्ति का पात्र हो सकता है जिस कोटि की आनन्द-प्राप्ति के लिए योगी और तपस्वी योग साधन करते हैं।

इस दृष्टि से किसी छोटे से भी छोटे जीव-जन्तु के विषय में ज्ञान सम्पादन करना सर्वथा लाभदायक है। ऐसे ज्ञान-सम्पादन से लौकिक लाभ भी होते हैं। तितलियों और रेशम के कीड़ों का ज्ञान प्राप्त करना इसका उदाहरण समझिए। पर इस प्रकार के ज्ञान की भी प्राप्ति के लिए खोज और श्रम आवश्यक है। बिना श्रम के कुछ नहीं मिलता; अन्नग्रास भी मुँह में नहीं जाता। खेद है, हम लोग श्रम से बहुत डरते हैं; खोज से दूर भागते हैं। यदि हमें किसी साधारण चिड़िया-घर के आँगन में फुदकनेवाली गौरैया—का भी कुछ हाल जानना होता है तो झट हम नैचुरल-हिस्ट्री के ढँग की कोई अँगरेज़ी पुस्तक ढूँढ़ने दौड़ते हैं और उसी की नक़ल करके समाचार-पत्रों और सामयिक पुस्तकों के लिए लेख तैयार करते हैं। मामूली कौवे का हाल ख़ुद देख-भाल करके नहीं लिखते, अँगरेज़ी "जैकडा" के वर्णन की कापी कर के सुलेखक बन बैठने की ताक में रहते हैं।

भारत में अनेक प्रकार के सर्प पाये जाते हैं। पर आज तक किसी ने भी उन सबका ज्ञान प्राप्त करके कोई पुस्तक नहीं लिखी। परन्तु सात समुद्र

पार रहनेवाले अँगरेज़, जो यहाँ कुछ ही समय के लिए आते हैं, साँपों को पालते, उनकी परीक्षा करते, उनकी जीवन-चर्य्या का ज्ञान करते और फिर बड़ी बड़ी पुस्तकें और बड़े बड़े लेख लिखते हैं। ऐसे ही एस० एच० पी० नाम के किसी महाशय ने, टाइम्स आफ़ इंडिया में, साँपों के विषय में एक लेख लिखा है। हम भी ठहरे अपने अनेक अकर्म्मण्य भाइयों के देशवासी। अतएव अपने नगर, गाँव, खेत, बाग़, जङ्गल इत्यादि में विहार करनेवाले सर्पों का ज्ञान स्वयं प्राप्त करने का प्रयास न उठा कर पूर्वोक्त लेखक के लेख की ही कुछ बातें उठा कर नीचे रक्खे देते हैं। साँपों और बिच्छुओं के बिलों में कौन हाथ डालता फिरे!

नागराज। करेत।

जिन लोगों ने साँपों की जाँच-पड़ताल की है उनका कहना है कि हिन्दुस्तान में साँपों की ३०० जातियाँ हैं। उनमें से कुछ जातियाँ विषधर हैं, कुछ निर्विष। जलचर या सागरवासी सर्प सभी विषधर हैं। उनको छोड़ देने पर थलचर साँपों में से ४० जातियाँ ऐसी हैं जिनकी दंष्ट्राओं में विष रहता है। विषधर होना, न होना, बहुत कुछ देश-विशेष से सम्बन्ध रखता है। किसी किसी देश में विषधर साँप अधिक पाये जाते हैं, किसी किसी में विष-विहीन। आस्ट्रेलिया में विषधर साँपों की अधिकता है। पर जिस मैडेगास्कर टापू में और सब देशों से अधिक सर्प निवास करते हैं वहाँ एक भी जाति ऐसी नहीं जिसमें विष हो।

हिन्दुस्तान में दो प्रकार के काले साँप, १[illegible] प्रकार के करैत, ७ प्रकार के धामन और १६ प्रकार के भूरे (बरजतिया) साँप पाये जाते हैं।

काले नागों में से एक जाति बहुत बड़ी होती है। उसे नागराज (King Cobra) कहना चाहिए। उसकी डाढ़ों में बड़ा ही तीव्र विष रहता है। यह साँप बहुत लम्बा होता है। बम्बई के अजायबघर में एक साँप है जिसकी लम्बाई १५ फुट ५ इंच है। ये साँप

विना छेड़े भी मनुष्य पर आक्रमण करते हैं, विशेष करके इनकी मादी। जिस समय इस जाति की नागिन अण्डे रखती है उस समय वह ज़रा सी आहट पाने पर भी काटने दौड़ती है। उस समय उसकी हिंसक-वृत्ति बहुत बढ़ जाती है। कुपित होने पर यह साँप जब तन कर खड़ा हो जाता है तब इसके शरीर के उत्थित अंश की उँचाई मनुष्य के क़द के बराबर पहुँच जाती है। उस समय इसकी कोप-कराल फणा को देख और फुङ्कार को सुन कर अत्यन्त साहसी मनुष्य का भी हृदय दहल उठता है। इस जाति के साँप अपने ही भाई-बन्धुओं को अपना भक्ष्य बनाते हैं। विषधर हो अथवा निर्विष, सामने आ जाने पर किसी को नहीं छोड़ते। एक दफ़े एक नागराज ६ फुट लम्बा एक अजगर निगल गया था। इस प्रकार के साँप सिर्फ़ घने जङ्गलों में पाये जाते हैं।

भूरा साँप (१) भूरा साँप (२)

साधारण जाति के काले साँप प्रचुरता से सर्वत्र ही पाये जाते हैं। इनमें भी कई उपभेद हैं। किसी के फन पर कुण्डलाकार घेरा सा होता है, जिसे गोपद (गोखुर) कहते हैं। किसी में यह घेरा कुछ लम्बा होता है और किसी में होता ही नहीं। यह साँप जिस समय क्रोधाविष्ट होकर अपना फन फैला देता है उस समय फन का दैर्घ्य बहुत बढ़ जाता है। इसकी नागिन जाड़ों में अण्डे देती है। दो महीने में बच्चे निकल आते हैं। उस समय उनकी लम्बाई कोई ८ इंच होती है। पैदा होने के कुछ ही दिन बाद इनकी डाढ़ों में विष पैदा हो जाता है और इनके काटने से प्राणियों की मृत्यु हो जाती है।

करेत जाति के साँपों का रंग कुछ भूरा होता है। उनके शरीर पर थोड़ी थोड़ी दूर पर छल्ले से बने रहते हैं। यह साँप भी बस्तियों में ही अधिक रहता है और विषधर है। इसी के काटने से

अधिकांश मनुष्यों और पशुओं की मृत्यु होती है। बिना छेड़े यह साँप मनुष्य पर कम आक्रमण करता है। पर छेड़े जाने पर यह किसी की रियायत करना नहीं जानता।

धामन जाति के साँप बहुत कम देखने में आते हैं। वे छिपे पड़े रहते हैं और रात ही के समय डरते डरते बाहर निकलते हैं। उनसे मनुष्यों और पशुओं की प्राण-हानि बहुत ही कम होती है।

भूरे साँप बहुत अधिक पाये जाते हैं। ये कुछ काहिल होते हैं। भागते कम हैं। इनके भी कई उपभेद हैं। एक जाति के शरीर पर जगह जगह चट्टे से होते हैं, पर सिर पर कोई चिह्न-विशेष नहीं होता। एक और जाति के सिर पर त्रिशूल या बाण के फल के सदृश चिह्न होता है। यह साँप अपने शरीर की कुण्डली बना कर बैठ जाता है और शरीर की कुण्डलियों को आपस में इस ज़ोर से रगड़ता है कि रगड़ के कारण एक अपूर्व ध्वनि निकलती है।

विषधर साँपों के सिर में एक छोटी सी थैली रहती है। उसी में विष भरा रहता है। यह थैली आँख के पीछे मांस के भीतर होती है। काटते समय दबाव पड़ने से थैली का मुँह खुल जाता है और विष निकल पड़ता है। यह विष एक तन्तुमय नाली से बह कर डाढ़ों में पहुँचता है। ये डाढ़ें किसी किसी जाति के साँप के जबड़े के पीछे और किसी किसी के आगे रहती हैं। डाढ़ों में छेद सा रहता है और काटते समय विष, काटी हुई जगह में टपक पड़ता है।

सर्प-विष का प्रभाव दूर करने के लिए आज तक अनेक ओषधियाँ तैयार हुई हैं। पर पूरी सफलता किसी से भी नहीं हुई। सर्प-विष से ही डाक्टरों ने कुछ ओषधियाँ तैयार की हैं। पिचकारी से वे शरीर के भीतर पहुँचाई जाती हैं। पर जिस प्रकार के सर्प के विष से ये ओषधियाँ बनती हैं उसी प्रकार के सर्पदंश को ये लाभ पहुँचा सकती हैं, औरों को नहीं। सर्प-दंश की सबसे अच्छी दवा यह है कि साँप काटते ही उस जगह को तेज़ चाकू से काट दे। फिर उससे जितना खून निकल सके दबा कर निकाल दे। उस जगह को गरम लोहे से दाग़ भी दे; साथ ही, साँप काटते ही, काटी हुई जगह से कुछ दूर ऊपर, थोड़े थोड़े अन्तर पर, दो बन्द पतली रस्सी, सुतली या कपड़े के लगा दे। ऐसा करने से विष चढ़ने का डर नहीं रहता। क्योंकि खून का दौरान बन्द हो इसी तरफ़ रहता है। आगे नहीं बढ़ता।

केले की गाभ का रस, एक छटाँक से आध पाव तक, घण्टे घण्टे भर बाद पिलाने से भी, सुनते हैं, विष की मादकता नष्ट हो जाती है।

भावना।

अनुभव से जो संस्कार उत्पन्न होता है उसका नाम भावना है। जिस विषय में अनुभव है उस अनुभव से उसी विषय में संस्कार जन्म-ग्रहण करता है। संस्कार के उद्‌बोध-हेतु की प्रेरणा से जागने पर आत्मा और मन के संयोग-विशेष से अनुभूत-विषय में ही स्मृति उत्पन्न होती है।

अब अनुभव यदि यथार्थ हो तो संस्कार भी यथार्थ और संस्कारजन्य स्मृति भी यथार्थ उत्पन्न होती है। अनुभव के अयथार्थ होने पर संस्कार और स्मृति भी अयथार्थ उत्पन्न होती है। संस्कार के कुछ उद्‌बोधहेतु हम नीचे लिखते हैं-

प्रणिधान—चिन्तनीय विषय से भिन्न विषय में मन के सङ्ग का निवारण। किसी बात को भूल जाने पर एकाग्र-चित्त होकर उसी के ध्यान से संस्कार जागता है और फिर स्मृति होती है। **निबन्ध**—अर्थों का एक ग्रन्थ-विशेष में लिखा होना। बालक अष्टाध्यायी के सूत्रों की आवृत्ति करता हुआ यदि अग्रिम सूत्रों को भूलता है तो पुन पीछे के सूत्रों का पाठ कर के अग्रिम सूत्रों को स्मरण कर लेता

है। अष्टाध्यायी में सूत्र क्रम से निबद्ध हैं। अतः क्रमानुसार पठन से अन्य सूत्रों के संस्कारों का उद्बोध होता है, जिससे उनकी स्मृति होती है। **लिङ्ग**—जिन दो वस्तुओं में स्वाभाविक सम्बन्ध है उनमें व्याप्य व्यापक का स्मारक है। धूम अग्नि का लिङ्ग है। अतः अग्नि का स्मारक है। रूप स्पर्श का स्मारक है। राजगृह में प्रातःकाल वाद्यध्वनि राजा के जागने की स्मृति में निमित्त है। **लक्षण**—साङ्केतिक चिह्न-विशेष। वानर-ध्वजा से अर्जुन का स्मरण होता है। **सादृश्य**—देहादि का। अभिनव पुरुष के दृष्टिगोचर होने पर उसके समान आकृतिवाले मित्र का स्मरण होता है। **परिग्रह—स्वस्वामिभाव**। अश्व से अश्वस्वामी का या अश्वस्वामी से अश्व का स्मरण होता है। **आश्रय और आश्रित**—राजा से मन्त्री का या मन्त्री से राजा का स्मरण होता है। **सम्बन्ध**—गुरु-शिष्य-भाव आदि। गुरु से शिष्य की या शिष्य से गुरु की स्मृति होती है। पुत्र से पिता की, पिता से पुत्र की स्मृति होती है। **आनन्तर्य**—कुछ पदार्थों का क्रमशः नियमन। जिन पुस्तकों का अध्ययन क्रमशः नियत है उनमें प्रथम पुस्तक के पाठ के अनन्तर द्वितीय पुस्तक का स्मरण होता है। **वियोग**—मित्र के वियुक्त होने पर मित्र स्मृति होती है। **एककार्यता**—किसी कार्य का कुछ पुरुषों द्वारा किया जाना। सहाध्यायी पठन-कार्य में प्रति दिन सम्मिलित होते हैं। अतः वे परस्पर के स्मारक हैं। **विरोध**—सर्प नकुल का या नकुल सर्प का स्मारक है। **अतिशय-संस्कार**—शिष्य, विद्याद्वारा संस्कारक आचार्य का स्मरण करता है। **प्राप्ति**—याचक की। जिस दाता से धन आदि मिला होता है याचक उसका स्मरण करता है। **व्यवधान-आवरण**—कोश खड्ग आदि का स्मारक है। **सुख**—सुख-हेतु का। **दुःख**—दुःख हेतु का स्मारक है। **भय**—भय-हेतु का स्मारक है। **स्नेह**—भ्राता आदि का। **द्वेष**—शत्रु का स्मारक है। **कार्य**—रथ से रथकार का या चित्र से चित्रकार का स्मरण होता है। उन्माद भी अनुभूत विषयों का स्मारक है।

संस्कार की दृढ़ता या शिथिलता अनुभव की स्फुटता या अस्फुटता पर अवलम्बित है। नवीन पदार्थ यदि स्फुट देखा जाय तो संस्कार की शिथिलता के कारण चिरकाल में स्मृति का उदय होता है। मार्ग में जाते हुए वृक्षादि बहुधा दृष्टिगोचर होते हैं। परन्तु अनुभव अस्फुट है। अतः संस्कार भी अत्यन्त शिथिल होता है, जिससे स्मृति या प्रत्यभिज्ञान का आविर्भाव नहीं होता।

किसी विषय में एक बार विशद अनुभव की विद्यमानता में भी स्मृति का संस्कार प्रत्यभिज्ञान के उत्पत्ति-योग्य नहीं होता। एतादृश विषय में अनुभव के अभ्यास की आवश्यकता है। एक बार पढ़ने से जब विद्यार्थी को पाठ कण्ठस्थ नहीं होता तब अभ्यास से संस्कार स्मृति-योग्य उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार गदाशिक्षाभिलाषी जब गदा के सञ्चालन का अभ्यास करता है तब दृढ़ संस्कारों का उदय होता है। अतः पुनः नहीं भूलता।

किसी विषय में एक बार अस्फुट प्रत्यय की सत्ता में भी चिरकाल में स्मृति उदित होती है। एतादृश स्थल में अधिक प्रयत्नवाला अनुभव कारण है। जब प्रयत्न-पूर्वक मन का सम्बन्ध चक्षु से करके अत्यन्त आश्चर्यप्रद पदार्थ का अवलोकन करते हैं तब दृढ़तर संस्कार उत्पन्न होता है जिससे कालान्तर में भी स्मृति का विशद जन्म होता है।

इस प्रकार पटुता, अभ्यास या आदर-सहित अनुभव से उत्पन्न एक संस्कार की प्रकट अवस्था में, भिन्न संस्कारों की अप्रकट अवस्था में स्थिति होती है। भ्राता पर हम जब क्रोध-संस्कारों के उद्बोध से क्रुद्ध होते हैं तब स्नेह-संस्कार अप्रकट दशा में रहते हैं। अतएव क्रोधशान्ति के अनन्तर प्रेम-संस्कार उदित होते हैं।

संस्कारों में महान् बल होता है। कोई कोई संस्कार बहुत वर्षों के बीत जाने पर भी उद्बोध-हेतु द्वारा जग उठते हैं। अतएव किसी अधम जन की यदि कभी श्रेष्ठ कार्यों में प्रवृत्ति हो तो यह निश्चय करना कि पुनः इस की प्रवृत्ति नीच कार्यों में असम्भाव्य है, युक्तियुक्त नहीं। सम्भव है, कुत्सित संस्कारों के जागने पर कुकर्मों में वह पुनः प्रवृत्त हो जाय। कुसंस्कारों का उच्छेद-विरोधी आत्मतत्त्वसाक्षात्कार से जनित संस्कारों के बिना नहीं हो सकता। आत्मतत्त्वसाक्षात्कार का सामर्थ्य आत्मध्यान से जनित संस्कार-सहित मन में है।

प्राकृतिक स्थूल विषयों में इन्द्रियों की नैसर्गिक प्रवृत्ति है। मन का भी इन्द्रियों के साथ अधिक सम्बन्ध

है। अतः उसका भी प्राकृतिक पदार्थों से सम्बन्ध है। तथापि जड़ पदार्थों के भेदज्ञान के लिए अभ्यास से उत्पन्न संस्कारमाला की महती आवश्यकता है। बाह्येन्द्रियों से भेदज्ञान के लिए संस्कारों की अपेक्षा को हम उदाहरणों द्वारा स्पष्ट करते हैं।

विविध रत्नों का हम जब प्रथम अवलोकन करते हैं तब भेद नहीं भासता। परन्तु रत्नदर्शन के अभ्यास से जो संस्कार उत्पन्न होते हैं इन संस्कारों से सहकृतचक्षु द्वारा रत्नों में जाति, कान्ति का भेद स्पष्ट प्रतीत होता है।

केवड़ा, गुलाब, चम्पक आदि के इत्र की भेद-प्रतीति साधारण जन को नहीं होती। जो विक्रेता है, जिसे कई बार सूँघने से संस्कार उत्पन्न हो चुके हैं, वह संस्कार-सहकृत घ्राणेन्द्रिय से शीघ्र भेद जान लेता है।

गानशास्त्राभ्यास से सारङ्ग, जयजयवन्ती, मेघ आदि राग-रागिनी-विषयक संस्कारमाला जन्म धारण करती है। उसी संस्कारमाला-सहकृत कर्णेन्द्रिय से वीणा या मुख द्वारा उद्गीत राग-रागिनी का विशद भेदावभास होता है।

मधुर, तिक्त आदि रसों के आस्वादाभ्यास से दृढ़ संस्कारों की निष्पत्ति के अनन्तर गुड़, शहद आदि के मधुर रसों में, इमली आदि पदार्थों के अम्लरसों में, अन्य पदार्थों के कटु-कषाय आदि रसों में, संस्कारसहकृतरसनेन्द्रिय से तारतम्य का विज्ञान स्पष्ट होता है।

पाषाण, कुसुम आदि के स्पर्शाभ्यास से पाषाणादि विषय में संस्कारमाला जन्म लेती है। उसी संस्कारमाला-सहकृत त्वचा से पाषाण, काच, त्रपु आदि के कठोर स्पर्श का कदली, कुसुम, पल्लव आदि के मृदु स्पर्श का भेद अनुभव-पद्धति में आता है।

इस प्रकार जब प्राकृतिक पदार्थों का भेदज्ञान अभ्यास-जनित संस्कारों के सर्वथा आयत्त है तब आत्म-ध्यान के अभ्यास से उत्पन्न संस्कारमाला के साहाय्य से हीन मन द्वारा परम सूक्ष्म आत्मतत्त्व के साक्षात्कार की अशक्यता स्पष्ट है। परमात्मसाक्षात्कार के लिए संस्कार-सहित मिथ्याज्ञान का उन्मूलन करना चाहिए। मिथ्याज्ञान-नाश के लिए उपनिषद् आदि शास्त्रों का श्रवण, यमनियम-पालन के साथ करना चाहिए, जिससे रागादि का भी विनाश हो जाय। मनन से, आत्मा-देहादि से भिन्न है; ईश्वर जगत् का कर्त्ता है, इत्यादि जानना चाहिए, जिससे नास्तिकों के आक्षेप-जाल से पराभूत होकर सन्मार्ग का त्याग न हो। श्रवण, मनन के अनन्तर भी मिथ्या ज्ञान के संस्कारों का नाश नहीं होता। यद्यपि ईश जगत् का कर्त्ता, धर्त्ता, संहर्त्ता है। रागादि दोषों की अविद्यमानता में मन से प्रभु का साक्षात्कार होता है, इत्यादि शास्त्रों का उपदेश है। तथापि वह परोक्ष ही भासता है, साक्षात्कार नहीं होता, इत्यादि भ्रमज्ञान की संस्कार-परम्परा विद्यमान ही रहती है। एतादृश साक्षात्काररूप भ्रम-तत्त्व साक्षात्कार से ही निवृत्त होता है। परोक्षरूप से प्रतीति-जनक आप्तोपदेशों से या युक्तिसमूह से उसकी निवृत्ति नहीं होती। उदाहरणों से यह स्पष्ट किया जाता है।

जो पुरुष ग्रीष्म-ऋतु में दूर से मरुभूमि में जल को देख रहा है वह जानता है कि मरु में जल का लेश भी नहीं। वह यह भी जानता है कि भूतल से उठी हुई गर्मी से सम्बद्ध सूर्य की चञ्चल किरणमाला में ही जल की यह आरोपित प्रतीति है, वस्तुतः जल नहीं। रेत का जलरूप में परिणत होने का सामर्थ्य कैसा? इस पर भी वह यही कहता है कि मैं प्रत्यक्ष अनुभव करता हूँ कि यह जल ही है। परन्तु मरुस्थल के समीप जाकर रेत को ही देख कर पूर्व ज्ञान को वह भ्रान्त मानता है।

दूर से अन्धकार में किसी पुरुष द्वारा चक्राकार घुमाई हुई ज्वलित लकड़ी को देखने पर, आग ही चक्राकार घूमती है, इस प्रकार का विपरीत ज्ञान जिसे उदित हुआ है वह, अग्नि नहीं घूमती, इस आप्तोपदेश को या अग्नि में भ्रमण का सामर्थ्य नहीं, ज्वलित काष्ठ के वेगसहित चालन से यह भ्रम उत्पन्न होगया है, इत्यादि युक्तियों को सुन कर भी अपने ज्ञान को भ्रान्त नहीं मानता। परन्तु समीप जाकर ज्वलित काष्ठ को स्थिर कर के पुनः वेग से घुमाने के अनन्तर पहले के समान अग्नि को घूमते हुए देख कर पूर्व ज्ञान को भ्रान्तियुक्त स्वीकार करता है।

जिसकी जिह्वा पित्तदोष से युक्त है उसको गुड़ भी कटु प्रतीत होता है। गुड़ मधुर होता है इत्यादि आप्तोपदेश से, या आपकी जिह्वा पित्तदोषयुक्त है, अतएव गुड़ कटु प्रतीत होता है, वस्तुतः कटु नहीं इत्यादि युक्तियों

से, वह अपने अनुभव को भ्रान्त नहीं मानता। परन्तु पित्त-दोष के नष्ट होने पर उसी गुड़ को जिह्वा से मधुर अनुभव कर के पूर्व ज्ञान को अयथार्थ मान लेता है।

तो प्रकृत में साक्षात्कार के लिए निरन्तर आदर के साथ चिरकालपर्यन्त परमात्मध्यान करना चाहिए। अल्पकाल-पर्यन्त ध्यान से अभ्यास का ही लय हो जाता है। कभी कभी ध्यान से मन की चञ्चलता, आलस्य, संशय आदि दोष बने रहते हैं। श्रद्धा के अभाव में संस्कार दृढ़ नहीं होते। अतः संस्कार-सहित मिथ्या ज्ञान के उन्मूलन के लिए पूर्वोक्त शैली से ध्यान करना चाहिए। इस प्रकार ध्यान की चरम अवस्था में अर्थात् समाधि-अवस्था में संस्कार-सहकृत मनोहारी परमात्मतत्त्व का साक्षात्कार होता है। तत्त्व-साक्षात्कार से मिथ्या ज्ञान का और उसके संस्कारों का तत्त्व-साक्षात्कार के संस्कारों से उच्छेद हो जाता है।

ईश्वरचन्द्र शर्मा, ब्रह्मचारी

विश्वेशवन्दना।

१—हरे सर्वस्वामिन् अमर अविनाशिन् जगपते
विभो लीलाकारिन् सकल गुणधारिन् भवगते।
व्यथा-बाधाहारिन् अजर अघनाशिन् शुभगते!
अहो लक्ष्मीनाथ प्रभुवर सदा मङ्गलमते॥

२—दयासिन्धो कीजै सकरुण दया नाथ हम पै,
हरे कैसे भारी अब दुख पड़े हाय हम पै।
प्रभो लीजै जल्दी निज शरण में आप हमको।
नहीं तो होगा हा अतिशय कड़ा ताप मन को॥

३—पड़ी भारी पीड़ा जब जब कभी भक्त पर है,
सदा ही रक्षा की अनघ तुमने ईशवर दे।
बड़ा पाञ्चाली का वसन तुमने लाज उसकी
बचाई थी; कैसी विपति वह थी हाय उसकी॥

४—सभी खोया है हा बल-विभव लक्ष्मीश हमने,
कभी हा ध्याया है कमल-चरणों को न हमने।
पड़े ऐसी निद्रावश अलस हो नाथ हम हैं
नहीं थोड़ा सा भी हित समझते हाय अब हैं॥

५—दशा चिन्ता-पूर्णा अब हृदय को नित्य दहती,
दृगों से आँसू की निशिदिन नदी हाय बहती।
हरे दीनोद्धारिन्! दुख हरण कीजै अब सभी,
प्रभो ये ही मेरी नत विनय है केवल अभी॥

कुशहरीदयाल निगम

भङ्ग।

भारतवर्ष में भङ्ग का प्रचार बहुत बढ़ गया है। छोटे बड़े सभी इससे परिचित हैं। कुछ तो इसकी मादकता के कारण ही इसका प्रति दिन व्यवहार करते हैं। पर इसकी उपयोगिता में कोई सन्देह नहीं है। प्राचीन ग्रन्थों में तो इसका गुण वर्णित हुआ ही है। पाश्चात्य विद्वानों और चिकित्सकों ने भी अपने अनुभव द्वारा इसकी उपयोगिता स्वीकार की है। फिर भी भाँग से कुछ लोगों को ऐसी चिढ़ है कि यदि उनका बस चले तो वे इसका नाम भी धरा-धाम में न रहने दें।

भङ्ग का मादक गुण दक्षिणी अफ़्रीका, दक्षिणी अमरीका, तुर्किस्तान, मिस्र और हिन्दुस्तान में बहुत काल से प्रख्यात है। मलय-द्वीप, ब्रह्म-देश और स्याम के निवासी भी इसके गुणों से अभिज्ञ हैं। उपर्युक्त सब देशों में भङ्ग कई प्रकार से काम में लाई जाती है। इन सब देशों के वैद्यों ने इसके गुणों की प्रशंसा की है। योरप के पश्चिमी देशों में लोग न इसके मादक गुण ही को जानते हैं, न इसको ओषधि ही के रूप में व्यवहार करते हैं। होमियोपेथिक चिकित्सा-मत के आदि-जन्मदाता हनीमेन साहब इसका व्यवहार योरप में करते थे।

इस बात में बड़ा भारी मत-भेद है कि गर्म देशों में पैदा होनेवाली भङ्ग और विलायत आदि ठंडे देशों में पैदा होनेवाली भङ्ग दोनों एक हैं या नहीं। गर्म देशों में पैदा होनेवाली भङ्ग को Canabis Indica कहते हैं और विलायती भङ्ग को Canabis Sativa। ये दोनों एक ही क़िस्म के पौधे हैं। उनमें केवल यही अन्तर है कि भारतीय भङ्ग में

गोंदरूपी पदार्थ, जिसको चरस कहते हैं, अधिक होता है; पर पाश्चात्य भङ्ग में चरस बिलकुल नहीं होता। और यही कारण है कि हमारी भङ्ग में मादकता अधिक होती है।

मादा पौधे, जिनमें फूल लग चुके हैं और चरस नहीं निकाला गया है, सुखा दिये जाते हैं। उसे ही गाँजा कहते हैं। उसमें पञ्चमांश चरस होता है; पत्ते, डंठल आदि भङ्ग, सब्ज़ी, सिद्धी कहलाते हैं और इन्हीं पत्तियों से एक तरह की मादक मिठाई बनाई जाती है जिसको "माजूम" कहते हैं। जो गाँजा व्यवहार में लाया जाता है वह अधिकतर मिर्ज़ापुर, गाज़ीपुर, ग्वालियर और तिरहुत में पैदा होता है, पर ग्वालियर और भरतपुर की भङ्ग और गाँजा अच्छे होते हैं।

मध्य-प्रदेश, सागर और नेपाल में चरस, गर्मी के दिनों में, एक विचित्र ढँग से निकाला जाता है। कुली लोग चमड़े की पोशाक पहन कर भङ्ग के खेतों में घूमते हैं और उसके पौधों को अपने कपड़ों पर खूब रगड़ते हैं। इस तरह उसका चिपकनेवाला दूध उनके कपड़ों में लग जाता है। कपड़े सुखा लिये जाते हैं और उनसे गोंद खुरुच लिया जाता है। इसी को चरस कहते हैं। वह महँगा बिकता है। उसी के नशे में पड़ कर सैकड़ों मनुष्यों ने अपनी सम्पत्ति और अपना स्वास्थ्य फूँक तापा है। नेपाल में एक बढ़िया चरस होता है। वह मनुष्यों की हथेलियों पर इकट्ठा किया जाता है। उसका मूल्य साधारण चरस से दूना होता है। हिरात का चरस संसार भर के सब चरसों से अच्छा और तेज़ समझा जाता है।

भङ्ग का इतिहास—अरब और फ़ारस के विद्वानों का कथन है कि भारतवर्ष में भङ्ग का व्यवहार प्राचीन काल से है। पर भारतवर्ष में कब से इसका प्रचार है, यह निश्चित नहीं। पण्डित मधुसूदन गुप्त की राय है कि "राजनिघण्टु" में, जो ६०० वर्ष पहले लिखा गया था, भङ्ग और उसके गुण लिखे हुए हैं। उसमें भङ्ग के नाम भी दिये हैं—

'वीरपत्रा, गञ्जा, चपला, अजया, आनन्दा, हर्षिणी। अस्या गुणाः कटुत्वम्, कषायत्वम्, उष्णत्वम्, तिक्तत्वम्, वातकफापहत्वम्, संग्राहित्वम्, वाक्प्रदत्वम्, बलत्वम्, मेधाकारित्वम्, श्रेष्ठदीपनत्वञ्च।

भावप्रकाश में कहा गया है—

भङ्गा गञ्जा मातुलानी मादिनी विजया जया।
भङ्गा कफहरी तिक्ता ग्राहिणी पाचनी लघुः॥

संस्कृत की एक दूसरी पुस्तक, राजवल्लभ, में लिखा है—

शक्राशनन्तु तीक्ष्णोष्णं मोहकृत् कुष्ठनाशनम्।
बलमेधाग्निकृत् श्लेष्मदोषहारि रसायनम्।
जाता मन्दरमन्थनाज्जलनिधौ पीयूषरूपा पुरा
त्रैलोक्ये विजयप्रदेति विजया श्रीदेवराजप्रिया।
लोकानां हितकाम्यया क्षितितले प्राप्ता नरैः कामदा
सर्वातङ्कविनाशहर्षजननी यैः सेविता सर्वदा॥

हिन्दू-तन्त्रों में लिखा है कि सिद्धी (भङ्ग) शराब से अधिक नशा पैदा करती है।

आयुर्वेद की सबसे प्राचीन पुस्तक, सुश्रुत, में लिखा है कि नज़ले (Catarrh) में दूसरी ओषधियों के साथ विजया काम में लानी चाहिए। अरब और फ़ारस के बड़े पुराने ग्रन्थों में भङ्ग का हाल मिलता है। हाकिम-उद्दीन मकरीज़ी* ने इसके विषय में बहुत कुछ लिखा है। और मिर्ज़ा अबदुर्रज़्ज़ाक़ ने तो इसका पुराना इतिहास ही ढूँढ़ निकाला है। एक हकीम ने लिखा है कि ६५८ हिजरी में शेख़ जाफ़र शीराज़ी नामक एक फ़क़ीर ने इस बूटी को ढूँढ़ निकाला था। वह इसे पीकर खूब मस्त रहा करता था।

एक अरबी कवि ने भी इसकी प्रशंसा की है। ७२८ हिजरी में उरमुस और बेहरिन के बादशाह ने कालडिया, सीरिया, मिस्र और

* "Crestomathic Arabe, Vol I.

तुर्किस्तान में इसका प्रचार किया। सुनते हैं कि सिरका और अम्ल पदार्थ इसके नशे को उतार देते हैं। ७८० हिजरी में इसके व्यवहार करनेवाले को मिस्र में सज़ा दी जाती थी; पर ७६६ में यह हुक्म रद हो गया और विजया देवी का प्रभाव वहाँ बढ़ने लगा।

इसके गुण-दोषों का हाल सुनिए—

(१) चरस पीनेवाले को बड़ा तेज़ नशा होता है और कभी कभी मनुष्य मर भी जाता है।

इसके बीज को फ़ारसी में श्याहदाना कहते हैं। भङ्ग चित्त प्रसन्न करती है, चेहरे को लाल करती है, बुद्धि को तेज़ करती है, प्यास बढ़ाती है और कामोद्दीपक है।

(२) इसकी पत्ती का चूर्ण घाव में अङ्गूर भर लाता है और इसकी पुलटिस से दूषित व्रण भर आता है। भङ्ग की पत्ती का चूर्ण और अण्डी का तेल लगाने से अण्ड-वृद्धि और अन्त्र-वृद्धि रोग आराम हो जाता है।

(३) यह पित्त-वर्धक और अग्नि-दीपक है। इसकी पुलटिस दूध के साथ लगाने से बवासीर के मसों का नाश करती है। पर औषधि रूप में भङ्ग का व्यवहार न करने से और दिन प्रति दिन मात्रा बढ़ा देने से मन्दाग्नि, आदि रोग उत्पन्न होते हैं, फेफड़े भी बिगड़ जाते हैं और अन्त में मनुष्य मृत्यु के पञ्जे में पड़ जाते हैं।

(४) एक डाक्टर की राय है कि भङ्ग अतिसार और संग्रहणी में फ़ायदा करती है। भङ्ग, प्याज़, हलदी और तिल्ली का गरम तेल इन सब वस्तुओं का मरहम बादी की बवासीर को शीघ्र अच्छा करता है।

(५) नीचे लिखे रोगों पर डाक्टर डब्ल्यू० बी० ओ-शोगनेसाय, एम० डी० (Dr. W. B. O'Shaughnessy, M. D., Surgeon, Medical College, Calcutta.) ने भङ्ग का उपयोग किया था और उससे बहुत लाभ हुआ था।

गठिया पर—गठिया के तीन रोगियों को एक साथ एक एक ग्रेन चरस जल में मिला कर दे दिया गया था। देर घण्टे में १ रोगी के सिवा बाक़ी के दोनों रोगी बड़े प्रसन्न दिखलाई पड़े और गाने लगे। चार घण्टे बाद रोगी की तबीयत एक-दम ख़राब हो गई और उसे मूर्छा आगई, पर डाक्टर साहब को यह देख कर हर्ष और आश्चर्य हुआ कि रोगी का गठिया से पकड़ा हुआ पैर एक-दम ठीक होगया। नशा उतर जाने पर रोग हट गया।

(२) कुत्ते के विष पर—कुत्ते के काटने से एक रोगी की बड़ी बुरी हालत हो गई थी। वह जल से बहुत डरने लगा था। इसी से यद्यपि वह प्यास के मारे मर रहा था, पर पानी नहीं पी सकता था। रोगी का कष्ट देखा न जाता था। उसे २ ग्रेन चरस की गोली बना कर एक एक घण्टे बाद दी जाने लगी। ३ मात्राओं के बाद उसे नशा चढ़ने लगा; और वह नारंगी चूस कर खाने लगा। पानी पिलाने की चेष्टा की गई, पर वह व्यर्थ हुई। तोभी रोगी ने गीले चावल खाये और ईख भी चूसी। चार दिन तक यही हालत रही। एक बार वह जल भी पी सका। पर अन्त में पाँचवें रोज़ वह मर गया।

(३) हैज़े पर—एक रोगी को हैज़ा था। हैज़े को प्रारम्भ हुए ७ घण्टे हो चुके थे। उसकी नाड़ी छूट गई थी। ½ ग्रेन चरस उसे पिलाया गया। बीस ही मिनट में नाड़ी फिर चलने लगी और शरीर गरम होने लगा। दस्त कै बन्द होकर निद्रा आगई। १२ घंटे बाद रोगी एक-दम अच्छा हो गया।

ऐसे ही अनेक रोगों पर उक्त डाक्टर साहब ने भङ्ग का व्यवहार किया और एक ऐसी वस्तु की उपयोगिता दिखला दी जिसको मनुष्य केवल नशे के काम में लाते थे। इस बात का ध्यान रखना

चाहिए कि इसके जो गुण लिखे गये हैं वे केवल श्रोषधि-रूप में सम्भव हैं, प्रति दिन पीने से मनुष्य बिलकुल निकम्मा हो जाता है।

कृष्णाराम झा
(मेडिकल विद्यार्थी)

भारतवर्ष में पहला मुसलमान यात्री।

भारतवर्ष में जिस प्रकार अनेक चीनी, यूनानी, फ्रांसीसी, अँगरेज़ तथा अन्य योरप-निवासी यात्री आये हैं उसी प्रकार अनेक मुसलमान यात्री भी आये हैं। मसऊदी, अलबेरूनी और इब्न वतूता आदि यात्रियों का नाम और काम इस सम्बन्ध में विशेष गौरव रखता है। पर सबसे पहले जिसने यात्रा की वह बसरा अथवा फ़ारिस का एक सौदागर था। उसका नाम सुलैमान था। उसने केवल भारत की ही यात्रा नहीं की थी, बल्कि वह चीन को भी गया था। उसका चक्कर भारत तथा चीन में केवल एक ही बार नहीं लगा था। वह कई बार व्यापारार्थ इन देशों में आया था। उसकी यात्रायें सन् ८५१ ईसवी से कुछ पहले ही हुई हैं।

सुलैमान के यात्रा-विवरण का सम्पादन अबूज़ैद नाम के एक व्यक्ति द्वारा हुआ है। वह फ़ारिस देश के सीरफ़ नामी बन्दर का निवासी था। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि वह भी बसरा में ही रहा करता था। सुलैमान ने जो बातें भारतवर्ष के सम्बन्ध में स्वयं लिखी थीं अथवा लिखवाई थीं उन्हीं के साथ कुछ बातें अपनी जानकारी के सहारे अबूज़ैद ने भी पृथक् लिखी हैं। अबूज़ैद भारत अथवा चीन में स्वयं नहीं आया; परन्तु उसका कथन है कि जो कुछ मैं लिख रहा हूँ वह विश्वस्त मार्ग से जानी हुई बातों के आधार पर लिख रहा हूँ। इस प्रकार सारी लेखावली दो विभागों में विभक्त है और सारे ग्रन्थ का नाम अरबी में सिलसिलतुत्तवारीख़ (سلسلةالتواريخ) है।

जिस प्रकार संस्कृत की हस्त-लिखित पुस्तकें योरप के पुस्तकालयों में विराजमान हैं उसी प्रकार अरबी की भी अनेक हस्त-लिखित पुस्तकें वहाँ पहुँच चुकी हैं। अस्तु! इस तवारीख़ की एक हस्त-लिखित प्रति एक फ्रांसीसी सज्जन के पुस्तकालय में मिस्टर अबे रीनाड (Abbe Renodt) को मिली। उन्होंने आज से दो सौ वर्ष पहले, अर्थात् सन् १७१८ ईसवी में, उसका अनुवाद फ्रांसीसी भाषा में छपवाया। बाद को, सन् १८११ ईसवी में, एम० लैंगलेस (M. Langles) ने अरबी की मूल सामग्री को प्रकाशित किया। पर सबसे अच्छी आवृत्ति वह है जो एम० रीनाड (M. Reinaud) द्वारा, सन् १८४५ ईसवी में, पेरिस से दो भागों में प्रकाशित हुई है। उसका नाम है—"Relations des Voyages Faites par les Arabes et les Persans dans l'Inde et la Chine." उसमें मूल अरबी भी है, और फ्रांसीसी अनुवाद के साथ यथेष्ट टीका-टिप्पणियाँ भी हैं।

सुलैमान की यात्रा-पत्री, सारी की सारी, बड़ी मनोरञ्जक है। उससे भारत के इतिहास में कुछ वृद्धि हो सकती है।

नमूने के तौर पर इस यात्रा-विवरण की कुछ बातें हम नीचे प्रकाशित करते हैं—

राजे-महाराजे।

हिन्द के राजे अपने आपको किसी के अधीन नहीं समझते। प्रत्येक राजा अपने आपको स्वतन्त्र मानता है। पर बलहरा* को सम्राट् की पदवी प्राप्त है। वही हिन्द में सबसे अधिक प्रसिद्ध राजा है। उसका राज्य बहुत बड़ा है। इस राज-घराने के सारे राजाओं की पदवी 'बलहरा' होती है, और

* मालूम नहीं, बलहरा से मतलब किस राजा से है।

यह पदवी ऐसी ही है जैसी कि खुसरो (फ़ारिस के बादशाहों) की पदवी है। इसके राजदूत का सम्मान प्रत्येक राजा बड़े आदर के साथ करता है। समस्त राजे इसी को अपना महाराजा समझते हैं।

सेना और संग्राम।

राजाओं के यहाँ सेनायें बहुत हैं, पर उनको वेतन नहीं दिया जाता। केवल धर्म्म-युद्ध के अवसर पर ही राजा उन्हें जमा करता है। सेना किसी प्रकार के वेतन के बिना ही युद्ध में शामिल होती है। देश छीनने की ग़रज़ से बहुत कम संग्राम ठनते हैं। जब कोई राजा किसी अन्य का राज्य छीन लेता है तब वह स्वयमेव वहाँ का राजा नहीं बन बैठता। बल्कि परास्त राजा के कुटुम्बियों में से ही किसी को राजा बना देता है। वह विजयी राजा के नाम पर शासन करता है।

आचार-विचार।

हिन्द के निवासी नाच-राग-रङ्ग को वस्तुतः बुरा समझते हैं और उसमें शरीक नहीं होते। ये लोग मदिरा-पान भी नहीं करते और न सिरका ही खाते हैं। क्योंकि सिरका भी तो एक प्रकार का मद्य ही है। इनका ऐसा करना कुछ धार्म्मिक दृष्टि से नहीं, बल्कि यह बात ही उनके यहाँ निषिद्ध समझी गई है। इनका ख़याल है कि जो राजा मद्य पीता है वह राजा ही नहीं। आस पास के राजा बहुधा युद्ध के लिए उद्यत रहते हैं। अतएव जो राजा मद्यप होता है वह अपना राज्य नहीं सँभाल सकता।

मृतक।

सारे भारतवासी अपने मृतकों को जलाते हैं। कभी कभी जब कोई राज-शव जलाया जाता है तब उस राजा की रानियाँ चिता में कूद पड़ती हैं और जल भुन कर ख़ाक हो जाती हैं। पर ऐसा करना उनकी इच्छा पर है। वे ऐसा करने के लिए बाध्य नहीं।

दण्ड।

जब कोई मनुष्य किसी पर दोषारोपण करता है तब प्रतिवादी की परख लाल दहकते हुए लोहे से की जाती है अथवा गर्म खौलते हुए पानी से। पानी एक बड़े बरतन में खूब गर्म किया जाता है। फिर उसमें लोहे का एक छल्ला डाल दिया जाता है। प्रतिवादी उस छल्ले को हाथ डाल कर निकालता है। मैंने स्वयं देखा है कि एक मनुष्य ने ऐसा ही किया। परन्तु उसे कुछ हानि न पहुँची। जब प्रतिवादी को बिलकुल हानि नहीं पहुँचती तब वादी को एक मन सोना अदा करना पड़ता है।

अब चीन की कुछ बातें सुनिए—

चीन के फ़रियादी।

चीन के प्रत्येक नगर में अत्याचार से पीड़ित लोगों के निमित्त एक चीज़ होती है जिसको दरा कहते हैं। वह वास्तव में एक घण्टी है जो नगर के शासनाधिकारी के सिर पर बँधी रहती है। उस घण्टी में लगभग ३ मील की लम्बी एक डोरी लगी रहती है जो सर्वसाधारण के निमित्त एक खुली जगह से गुज़रती है। उस लम्बी डोरी को तनिक भी हिलाया तो घण्टी शासनाधिकारी के सिर पर बज उठती है। बजते ही फ़रियादी को अन्दर आने की आज्ञा दी जाती है। वह स्वयमेव अपनी गाथा सुनाता है। यह रीति सभी नगरों में प्रचलित है।

चीन के मृतक।

चीन में जब कोई मर जाता है तब जिस दिन उसका प्राणान्त होता है उसी दिन अगले वर्ष वह गाड़ा जाता है। शव को टिकटी पर रख कर उस पर चूना डाल देते हैं और उसे घर में ही रहने देते हैं। बादशाहों को मुसब्बर (एलुवा) और काफूर में बहुत सालों तक रखते हैं। जो आदमी इनके निमित्त रोता नहीं उसकी ख़बर डंडे से ली जाती है।

आवागमन की बाबत इनके तथा भारत-वासियों के विचारों में किसी क़दर मत-भेद अवश्य है, पर निर्विवादित रूप से चीनी भी भारतवासियों के समान आवागमन के क़ायल हैं। वे यह भी स्वीकार करते हैं कि धार्मिक मामलों में हिन्दवाले वास्तव में हमारे गुरु हैं।

सुलैमान ने जो सामग्री सङ्कलित की है वह उसके थोड़े काल की जानकारी के आधार पर नहीं है। सुलैमान का कथन है कि उसका सम्बन्ध भारतवर्ष के साथ बहुत समय तक था। उसने लिखा है कि एक बार मैंने एक मनुष्य देखा। वह केवल एक ही मृग-चर्म्म धारण किये हुए सूर्य्य की ओर मुख किये खड़ा था। सोलह वर्ष बाद जब मैं फिर उस स्थान पर आया तब क्या देखता हूँ कि वह मनुष्य उसी तरह खड़ा था। अतएव सिद्ध है कि सुलैमान ने जो बातें लिखी हैं वे सुनी सनाई नहीं लिखीं, अपनी आँखों देखी लिखी हैं। इसी से उसका यात्रा-विवरण बड़े महत्त्व का है।

महेशप्रसाद, मौलवी फाज़िल

वज्राघात।

पलासी के सङ्ग्राम का अभिनय समाप्त हो चुका। मीर जाफ़र नवाब जाफ़र-अली-ख़ाँ के नाम से बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा के शाही तख़्त पर बैठ कर नवाबी करने लगे। अन्यान्य मुसलमान नरपतियों की राजगद्दी हो चुकने पर जैसे पुराने दरबारी, मन्त्री और उमरा लोगों के सिर क़लम किये जाते थे, उसी प्रकार इनके शासन में भी पदभ्रष्ट नवाब सिराज का सिर उतार लिया गया। कितने ही सम्मानित राजकर्मचारी पदच्युत किये गये और कितने ही सूली पर चढ़ा दिये गये।

ये नृशंस घटनायें नवाब-पुत्र मीरन की आज्ञा से हुईं। जाफ़रअलीख़ाँ इन सब बातों को चुपचाप देखते रहे। क्योंकि वे सभी अधिकार मीरन को सौंप चुके थे। गद्दी पाकर, ख़ून-ख़राबी करवा कर, और ख़ूब सख़्ती करते रहने पर भी नये नवाब के दिल में रह रह कर यह आशङ्का होती थी कि "कहीं हमारी भी वही दशा न हो—जो सिराज की हुई है।" यह ऐसी वैसी आशङ्का न थी। इसके मारे कभी कभी नवाब को नींद तक न आती थी। भोजन भी न पचता था। इस दुश्चिन्ता के कारण सारा शाही ठाट-बाट उन्हें विषजाल जान पड़ता था।

एक दिन सुकोमल शय्या पर लेटे लेटे मीर जाफ़र ने स्वप्न देखा कि अँगरेज़ों से मिल कर दुर्लभराय आदि दरबारियों ने शाही तख़्त छीन लिया है। ख़ास शर्तों पर सिराज का भाई नवाब बनाया गया है और मेरी (जाफ़र की) वही गति करने का विचार हो रहा है जो पदच्युत नवाबों की, मुसलमानी राज्य में, होती आई है। नवाब ने देखा कि मैं दुर्गन्धि-पूर्ण कारागार में अवरुद्ध, भूख-प्यास से विकल, छटपटा रहा हूँ। सुख से सोये हुए नवाब का शरीर काँपने लगा। भय के मारे उनका शरीर पृथ्वी पर गिरने ही को था कि एक बाँदी ने सहारा देकर उन्हें सँभाला।

× × × ×

मीरन था तो कम उम्र; पर बड़ा चालाक था। क्लाइव की राजनैतिक चालों को बड़ी सूक्ष्म और सन्दिग्ध दृष्टि से देख कर वह असल बात को प्रायः ताड़ लेता था। उसने सोचा कि बूढ़े पिता के बाद यह नवाबी का सेहरा मेरे ही सिर बाँधा जायगा। इसलिए अभी से पूरी तैयारी कर लेने में ही मङ्गल है। उसने सेना को सज्जित करके अपनी आज्ञा में कर लिया। बड़ी कड़ाई से फ़ौजी क़वायद होने लगी। सारे अहलकार जाफ़र की अपेक्षा मीरन को ही अधिक दबते थे। और तो क्या, स्वयं नवाब तक शाहज़ादे के हुक्म का आदर करते थे। क्लाइव को और तत्कालीन मन्त्रियों को भी मीरन का यह दबदबा न सुहाता था। उन्हें आशङ्का हुई कि कहीं सिराजुद्दौला की भाँति हमारा अनिष्ट साधन करने पर मीरन उतारू न हो जाय। राजकाज में उसकी प्रवीणता देख कर उसके विपक्षी दिन-दिन असन्तुष्ट होने लगे।

यहाँ अँगरेज़ों को पूर्व-सङ्कल्पित द्रव्य न दे सकने पर, मीर जाफ़र ने लाचार होकर, कई परगने उन्हें बिला ख़िराज

दे दिये। अँगरेज़ों की धमकी, ख़ज़ाना ख़ाली और दो परगनों से हाथ धो बैठने का रंज नवाब को बहुत ज़ियादह था। इसी से कभी कभी अन्तःपुर में रूपवती अङ्गनाओं से परिवृत होकर वे सोचते थे कि अँगरेज़ों की शीतल छाया की अपेक्षा सिराज की मातहती में ही मौज थी। अगर नवाबी के बदले मुझे फिर वह सिराज का ज़माना मिले तो मुझे तहेदिल से मंज़ूर है। पर माँगी तो मौत भी नहीं मिलती; वह तो था साले का राज—जिसमें गुलछर्रे उड़ाये थे और ख़ुद नवाब न होने पर भी नवाबी के मज़े लूटे थे।

× × × ×

अन्त में स्वप्न की चर्चा जब मीरन के कानों में पहुँची तब उसने सिराज के भाई को तुरन्त ही यमपुर भेजने का प्रबन्ध कर दिया। अब रह गईं सिराज की माता और मौसी—अमीना और घसीटी बेगम। बहुत सोचा कि ये तो बेकस औरतें हैं; कर ही क्या सकेंगी। दूसरे, सिराज की दुर्दशा का स्मरण करके इनमें कुछ करने धरने का हौसिला हो ही न सकेगा। इससे निर्जीव खिलौनों की भाँति इन्हें बन्दीख़ाने में पड़ी पड़ी सड़ने दो। पर मीरन के पापी प्राण की पिपासा, राजकुल के अनेक स्त्री-पुरुषों का रक्त-पान करके अभी शान्त न हुई थी। उसकी जिह्वा अब भी रक्त-पान के लिए लालायित हो रही थी। उसने सोचा, राजपरिवार के जिन जीवधारियों पर कुछ भी सन्देह हो उनको जीवित रहने देना मङ्गलसूचक नहीं। इससे अमीना और घसीटी बेगम की ज़िन्दगी के दिन भी पूरे हो गये।

उन्होंने अपना मरणकाल निकट जान, पुण्य-पाप के द्रष्टा अशेष-करुणासागर से विनय कर कहा—"भगवन् हमारे परिवार में अब कोई ऐसा नहीं रहा, जो इन हत्यारों से बदला लेकर हमारी आत्मा को शान्ति दे। हम निरपराध मारी जा रही हैं। दयासागर, मरते समय आपके चरणों में एक ही प्रार्थना है। हमारे घातकों को उनके पाप का प्रायश्चित्त, इसी भूमण्डल पर, करना पड़े; ताकि संसार जान ले कि पाप का बदला भोगना ही पड़ता है। हमें तो जीवित रहने में दुःख ही दुःख है, मरना हमारे लिए सुख की सामग्री है। संसार में और जीवित रह कर हमें कौन सा सुख लूटना है। दोनों पुत्रों के प्राण गये; धन गया; राजपाट गया; सब कुछ तो छिन गया"।

कूटनीतिज्ञ मीरन इन अबलाओं के प्राण लेकर ही शान्त हुआ।

× × × ×

क्लाइव ने इँगलेंड के प्रधान मन्त्री मिस्टर पिट को एक चिट्ठी में मीरन की तीक्ष्ण दृष्टि, कूटनीति, साहसिकता और तत्परता के विषय में लिख कर कहा था कि इसका शासक होना सरकार के लिए मङ्गलजनक नहीं।

ऐसे चाणाक्ष पुत्र को पाकर वृद्ध मीर जाफ़र नवाबी करते हुए अपने दिन काट रहे थे। और, मीरन किसी की परवा न कर उस जाल को फैला रहा था जिसमें उसके सभी विपक्षी और प्रतिद्वन्द्वी फँस कर मर मिटें। उसकी इस कार्यपरता और विचारशीलता को देख कर और लोगों की अपेक्षा सबसे अधिक हतोत्साह हुए थे मीर क़ासिम, जो मीरन के बहनोई थे और चिरकाल से बङ्गाले के नवाबी तख़्त को सतृष्ण दृष्टि से देखते आ रहे थे। सिराज के बाद जब मीर जाफ़र को नवाबी मिली तब क़ासिम ने सोचा कि ख़ैर, इस बुड्ढे के बाद तो अपना ही दाँव है—आख़िर तख़्त जावेगा ही कहाँ? पर मीरन की करतूत से क़ासिम के छक्के छूट गये। उसका सारा हौसिला जाता रहा।

लेकिन क़ासिम इस ढर्रे का आदमी न था जो पैर पटक कर बैठ रहे। वह छिप कर क्लाइव से साज़िश करने लगा। कौन जानता है कि मीरन इसकी ओर से बिलकुल बेफ़िक्र था? बहुत सम्भव है, उसने इसे ताड़ लिया हो और नम्बरवार अपने विपक्षियों का सत्यानाश कर रहा हो तथा इसका नम्बर कुछ फ़ासिले पर रहा हो।

जब मीरन की ओर से क्लाइव और अन्य अँगरेज़ों का मन साफ़ न देखा तब, मौक़ा पाकर, क़ासिम ने अपने चुने हुए साथियों के सङ्ग षड्यन्त्र की नींव डाली। यहाँ मीरन भी सचेष्ट रह कर दाँव-पेच की खोज में लगा हुआ था कि क्लाइव ने छुट्टी लेकर विलायत-यात्रा की।

× × × ×

क्लाइव की चालों से अभी मीरन को विराम न मिला था कि एक आकस्मिक घटना ऐसी हुई जिसने उसकी सारी व्यवस्था पर चौका लगा दिया।

क्लाइव की अनुपस्थिति में अँगरेज़-वाहिनी के अधिपति हुए कर्नल फैलियर्ड। यद्यपि अँगरेज़ों का और बङ्गाले के नवाब का भीतर ही भीतर मनमुटाव था—परस्पर एक दूसरे को ध्वंस कर देना चाहते थे—तथापि अपने अपने स्वार्थ के लिए दोनों को एक बार फिर मिलना पड़ा।

सूबे बिहार पर शाहज़ादा अली गौहर ने, जो पीछे से बादशाह शाहआलम के नाम से प्रसिद्ध हुआ, चढ़ाई की। नवाब की और अँगरेज़ों की सेनाओं ने, शाहज़ादे का पराभव करने के लिए, सम्मिलित रहने में ही भलाई समझ, एकता-सूत्र में बँध, युद्ध-यात्रा कर दी, पर दोनों दल परस्पर एक दूसरे पर ख़ूब कड़ी नज़र जमाये हुए थे।

धीरे धीरे सेनाये कूच करती हुई सूबे बिहार में जा पहुँचीं। पटना और पूर्नियाँ आदि के विद्रोही शासकों का पराभव करके सम्मिलित सेना शाहज़ादे से भिड़ने के लिए आगे बढ़ी। पूर्नियां का विद्रोही शासक ख़ादिमहुसेनख़ाँ भाग कर, शाहज़ादे की सहायता के लिए, पटना के पास, गङ्गापार छावनी डाले प्रतीक्षा कर रहा था। कर्नल और मीरन दोनों ने, पहले इसी को जीतने का सङ्कल्प कर के, गङ्गा को पार किया। सम्मिलित सेना को जीतने की हिम्मत न रहने पर भी ख़ादिम ने, लाचार होकर, मुक़ाबिला किया और भाग कर एक जङ्गल में रात काटी। इधर पिछले खण्ड-युद्धों में घायल हो जाने के कारण मीरन ने कर्नल से कहला भेजा कि शत्रु को भाग जाने दो; अब और पीछा मत करो।

× × × × ×

मारकाट बन्द हुई। यथानियम शिविर स्थापित हुआ और भूखे-प्यासे सिपाही रोटी-पानी की चिन्ता में लगे। नीचे दल को देख, ऊपर बादलों ने ज़ोर बाँधा। दल और बादल का गँठजोड़ा हो गया। बड़ी छीना-झपटी हुई; पर बन्धन ढीला न हुआ। अन्त में धीरे धीरे वर्षा का सूत्रपात हुआ। बादलों की कड़क और बिजली की चमक दिल दहलाने लगी। जैसे तैसे दिन तो कटा; पर काली निशा का भयङ्कर रूप देख हृदय काँप गया। छोटी छोटी छोलदारियों में छिप कर सिपाही लोग वर्षा से बचने का उद्योग कर रहे थे और हवा-पानी उनको ढूँढ़ ढूँढ़ कर उनका आदर-सत्कार।

पानी का ज़ोर देख कर मीरन ने दिलावरख़ाँ नामक तम्बू में विश्राम करना स्थिर किया। रात के दस बजे से मूसलधार वर्षा होने लगी। मीरन के साथ जो दो-एक स्त्रियाँ थीं वे आज रात को विदा कर दी गईं। अब मीरन के पैर दाबने के लिए एक सेवक और कहानी* सुनाने के लिए एक और आदमी रह गया।

जिस निर्भीकता से तम्बू के भीतर क़िस्सा कहनेवाला कहानी सुना रहा था उसी प्रकार तम्बू के बाहर घोर वर्षा हो रही थी। इस समय बादल चुपचाप राजा कर्ण की भाँति अजस्र जलदान कर रहे थे। अब न बादल की कड़क थी, न बिजली की चमक! अब केवल नीचे-ऊपर, अगल-बग़ल, सर्वत्र जल ही जल था। इस घोर वर्षा के कारण और सभी काम बन्द से हो गये थे।

× × × ×

महात्मा का वाक्य है—"तुलसी आह ग़रीब की हरि तें सही न जाय।" फिर अमीर की माता और मौसी की आह कैसे विफल होगी? किसी ने बहुत ठीक कहा है कि—"नतीजा कारे बद का कारे बद है।" सिराज अपने किये का फल पा चुका था। भला उसकी माता से किस बात का बदला लिया गया? स्त्रियों पर अत्याचार करके, कभी कोई यशस्वी हुआ है! ख़बरदार! धन, दारा और सुत के मोह में फँस कर किसी पर ज़बर्दस्ती न करना।

आख़िर वर्षा का ज़ोर पिछले पहर घटा। कहानी कहनेवाले को और दूसरे सेवक को विराम देने के लिए अन्य सेवकों ने मीरन के तम्बू में प्रवेश किया। सिपाहियों को यह जान कर बड़ा विस्मय हुआ कि स्वामी का अङ्गरक्षक बिलकुल बेख़बर सोया हुआ है। हमारी आहट पाकर भी वह सावधान नहीं हुआ। एक आदमी ने उसे चुपचाप जगाने के लिए ज्योंही हिलाया त्योंही उसे वह निर्जीव जान पड़ा।

* पुराने ज़माने में कहानी कहनेवालों का बड़ा आदर था। कहानी सुनाना एक ऐसा हुनर था जिसकी बहुत इज़्ज़त होती थी। राजा लोग प्रायः अनेक चिन्ताओं से अन्यमनस्क रहते हैं; फलतः उन्हें अच्छी नींद नहीं आती। इसलिए, पहले ये कहानी सुनानेवाले उम्दा दिलचस्प कहानियाँ सुना सुना कर, ऐसे चिन्तित जनों का मनोरञ्जन कर, सुख की नींद उन्हें सुलभ कर देते थे।

उसने घबरा कर कहानी सुनानेवाले को सावधान किया तो वही हाल उसका पाया। यह देख सभी अवाक् रह गये! सशङ्कचित्त उन्होंने मीरन को टटोला, दबे पैरों तम्बू के बाहर आकर दम लिया।

बाहर आकर चुने हुए सिपहसालारों को उन लोगों ने इस दारुण घटना का संवाद सुनाया, जिसे सुन कर सभी व्याकुल और स्तम्भित हुए। प्रातःकाल तक शिविर भर में यह दुःसंवाद फैल गया। अँगरेज़ी-सेना के कर्नल और केप्टिन आदि की सम्मति से मीरन का मरण-संवाद छिपाने का उद्योग इस भाँति किया गया कि कहीं सेना में विद्रोह न फैल जाय; पर सफलता न हुई। हाथी की पीठ पर लाद कर मीरन की लाश, मुरशिदाबाद में दफ़नाई जाने के लिए भेजी गई; पर रास्ते में ही लाश से बदबू निकल आने के कारण राजमहल में ही अन्तिम क्रिया कर दी गई।

पुत्र की आकस्मिक मृत्यु का रहस्य जानने और शोक-ग्रस्त होने से जाफ़रअली का चित्त घबरा सा गया। चिन्ता के मारे राज-काज उनके सँभाले न सँभला और तुर्किस्तान के सुल्तान ख़लीफ़ा अब्दुल हमीद की भाँति शाही तख़्त उनसे छीन लिया गया।

जहाँ जहाँ मीरन की मृत्यु-चर्चा फैली वहाँ वहाँ लोगों ने उसे अनेक रूपों में समझने का उद्योग उसी प्रकार किया जैसा कि ग़दर का हाल सुना-सुनाया जाता था। किसी ने कहा—अमीना और घसीटी बेगम का शाप मूर्ति धारण कर उस रात मीरन के तम्बू में पहुँचा था। किसी ने कहा—चालाक मीर क़ासिम की करतूत से ही मीरन की हत्या की गई। किसी ने क़लाइव की नीति की ओर सङ्केत किया। बहुत दिनों तक इस घटना के सम्बन्ध में जितने मुँह उतनी बातें होती रहीं। विस्मृति के पेट में धीरे धीरे सभी बातें जीर्ण हो गईं। अब पुस्तकों में यही लिखा पाया जाता है कि—**उस रात विकट वर्षा हुई और वज्रपात से दो सेवकों-सहित शाहज़ादे मीरन की मृत्यु हो गई।**

उस समय इसी आख़िरी बात पर लोगों को विश्वास दिलाया भी गया था।

× × × × ×

अब भी मुरशिदाबाद के शरीफ़ा बाज़ार में मीरन की टूटी फूटी क़ब्र मौजूद है। मीरन को संसार से बिदा हुए मुद्दत गुज़र गई; परन्तु मुरशिदाबाद के नवाबी महलों में, अपने पिता की बग़ल में, हाथ में बाज़ पक्षी लिये मीरन की जो प्रतिमूर्ति खड़ी है वह उन्हीं पुरानी बातों का रहस्योद्घाटन सा कराया करती है।*

ललन

शरद।

[बाणासुर-पराभव काव्य से उद्धृत]

अनूप अब राज्य—श्री शरद की धरा पै जगी।
सुचारु अति होगई गगन की विशुद्ध प्रभा॥
रुई पहल-पुञ्ज के सदृश कान्ति को धार के।
पयोद अब हो गये धवल, नीर से हीन हो॥ १॥

मदान्ध अति हो रहे मुदित जो पपीहे शिखी।
निराश अब वे हुए नर समान सर्वस्व खो॥
घमण्ड रहता नहीं जगत में बना सर्वदा।
कभी न रहता सदा विटप पै खिला फूल ज्यों॥ २॥

मराल-गण कूज के प्रकट बात मानों कहें।
अहा शरद आ गई नव उमङ्ग की दायिनी॥
धरा विमल हो गई सघन पङ्क से मुक्त हो।
यथा मति विशुद्ध हो सब प्रकार माया तजे॥ ३॥

मनोज्ञ मृदु मालती कलित कुन्द फूले फबे।
प्रकाश सब ओर है शरद स्वच्छ फैला रही॥
उन्हें निरख मल्लिका लखित यूथिका सल्लला।
स्वतः शिर झुका झुका बहुत लज्जिता होगई॥ ४॥

सुस्वादु अति संतरा सुखद सेब जंबीर के।
फले द्रुम झुके, हिलें मृदुल डालियाँ वायु से॥
हमें सब बुला बुला यह सँदेश मानों कहें।
नवो इस प्रकार ही धन-समृद्धि पाके सदा॥ ५॥

समीर अति शीतला सुखद मन्द ऐसी चले।
मतङ्ग मद से भरे गमन झूमते ज्यों करें॥
सुवासित सरोज यों स्वमुख खोल थोड़े हिलें।
नये शिशु पढ़ें यथा तनिक घूमते झूमते॥ ६॥

विशुद्ध सर हो गये शरद-काल को प्राप्त हो।
रहे मन प्रसन्न ज्यों विशद-ज्ञान-माहात्म्य से॥

---

* सङ्कलित।

प्रशान्त नदियाँ बहैं प्रबल वेग को छोड़ के।
स्त्रियाँ स्थविर हो तजें चपलता, गहे शान्ति ज्यों॥७॥
बड़ी विमल कान्ति का जल सरोवरों में हुआ।
विशाल अति ही वहाँ मुकुर शुभ्र मानों धरा॥
महा रुचिर दीखता पुलिन-बिम्ब है नीर में।
स्वरूप तट देखता मुकुर बीच मानों स्वयम्॥८॥
बड़ी सुखद है छटा शरद के निशा-काल की।
मनोज्ञ छवि राजती विमल नील आकाश में॥
घिरा उडु-समूह से सकल ओर है चन्द्रमा।
यथा अमरनाथ को अमर नित्य घेरे रहें॥९॥
सुरम्य यह चाँदनी गगन और भू पै पड़ी।
दिखा जगत को रही विमल शील की नम्रता॥
सुचारु अति ही धरा धवल चन्द्रिका से दिखै।
वड़े रजत-पत्र से अवनि-पृष्ठ मानों पटा॥१०॥
अनेक शुभ बूटियाँ शिखर-शृङ्ग पै दीप्त हैं।
यथा तिमिर-पुञ्ज में अति प्रदीप्त खद्योत हों॥
विलोक कण ओस के हृदय में जगै भाव यों।
अहो सुभग वृष्टि क्या विमल मोतियों की हुई॥११॥
खिली नलिनियाँ सभी सुभग सोम को देखके।
अनन्त उडु-नीर में उदय शुभ्र मानों हुए॥
लखो सर-समूह में कुमुदबन्धु के बिम्ब को।
स्वबन्धुगण से शशी मिलन हेतु मानों गया॥१२॥
वियोग-दुख से दुखी परम कोक-कोकी हुए।
करें रुदन शोक से रजनि-काल को देख के॥
चकोर अति हर्ष से मधुर शब्द उच्चारते।
सुगान कर चन्द्र को अति प्रसन्न मानों करें॥१३॥

गोविन्ददास

विविध विषय।

१—प्लेग का वार्षिक विवरण।

इस देश में प्लेग का पदार्पण हुए एक युग बीत गया। इस मारक रोग ने करोड़ों आदमी खा लिये। मनुष्य-जीवन का मूल्य नहीं। मुर्दे को कोई ज़िन्दा नहीं कर सकता। हाँ लखनऊ के दूसरे विधाता श्रीयुत रघुवरदयाल गुप्त को, इस विषय में, ज़रूर मुस्तसना समझना होगा। इस दृष्टि से इस रोग का समूलोन्मूलन करना राजा का सबसे बड़ा कर्त्तव्य होना चाहिए; और वैद्यों, डाक्टरों, हकीमों का भी। पर अभी तक परमात्मा का कोई भी पुत्र इस रोग-राज का बाल तक बाँका नहीं कर सका। और और देशों में भी बड़े बड़े भयङ्कर रोगों का उद्भव अकस्मात् हो जाता है, पर वे बहुत काल तक नहीं टिकने पाते। राजा-प्रजा सभी उनके पीछे पड़ जाते हैं और उन्हें शीघ्र ही अपना डेरा-डण्डा उठाना पड़ता है। परन्तु प्लेगराज ने हिन्दुस्तान को अपनी राजधानी बना लिया है। अब वे किसी तरह यहाँ से नहीं हिलते। इसका यथार्थ कारण क्या है सो सरकार, सरकार के चीफ़ प्लेग-अफ़सर और सैनिटरी कमिश्नर साहब बता सकें तो बता सकें। चूहे मारने और पकड़ने से भी वह नहीं जाता; घर-द्वार छोड़ कर भाग जाने से भी उसका बीज बना ही रहता है; टीका लगवाने से भी उसका तिरोभाव नहीं होता।

जूलाई १९१९ से जून १९२० तक २४ हज़ार आदमियों को इसने, अकेले इस सूबे में, ठिकाने लगा दिया। १९०३-४ से अब तक तो इसने इस सूबे की आबादी में से प्रायः २५ लाख नर-नारी कम कर दिये। १९०४-०५ में ४ लाख, १९०६-०७ और १९१०-११ में साढ़े तीन तीन लाख और १९१७-१८ में २ लाख मनुष्य इसने खपा दिये। १९१८-१९ में इसका ज़ोर कम रहा; सिर्फ़ १७ हज़ार आदमी मरे। पर अगले ही साल, अर्थात् १९१९-२० में २४ हज़ार से कम आदमी कम करने में यह किसी तरह राज़ी न हुआ। टीके लग रहे हैं, चूहे साफ़ हो रहे हैं; पर प्लेग-दानव किसी की नहीं सुनता। दिसम्बर से मई तक ६ महीने इसकी बुभुक्षा और भी बढ़ जाती है।

सरकार भी क्या करे। उसने चीफ़ प्लेग अफ़सर मुक़र्रर कर रक्खा है; ख़ास हेल्थ आफ़िसर, सर्जन, डाक्टर, और कम्पौंडर भी रख छोड़े हैं। ११० चलते फिरते दवा-ख़ाने भी खोल रक्खे हैं। टीके का प्रबन्ध अलग कर दिया है; पर उसकी शिकायत है कि लोग बहुत कम टीका लगवाते हैं। सरकार सबसे अधिक ख़बर ग़रीबों की रखती है। प्लेग के डर से यदि वे अपने घर छोड़ कर बाहर बाग़ों और मैदानों में रहें तो झोंपड़े बनाने का ख़र्च कहाँ से लावें। उनकी इस दुरवस्था को दूर करने के लिए पिछले

साल सरकार ने २५ हज़ार से भी अधिक रुपया खर्च करना मंजूर किया। उसने ज़िले के प्रजापालक अधिकारियों से कहा—ये रुपये लो। झोंपड़े बनवाने और दीन-दुखियों की और तरह भी मदद करने में इन्हें खर्च करो। देखो, किसी को कष्ट न होने पावे। पर इस इतनी बड़ी रक़म में से मजिस्टर महाशयों ने कितना खर्च किया, आप जानते हैं? जनाबे मन, उन्होंने पन्द्रह सौ ग्यारह रुपये एक-दम ख़र्च कर डाले! पर जब उन्होंने देखा कि इतने से भी काम नहीं चलता तब दस आने चार पाई की रक़म और भी तहवील से निकाल दी। दुहाई सरकार की, इन लोगों से यदि और कुछ कहा सुना न जाय, तो ज़रा मधुर वचनों में इनसे इतनी तो कैफ़ियत माँग ही ली जाय कि ऐसे ज़रूरी काम में इन्होंने इतनी कंजूसी क्यों की।

२—पुलिस के कारनामे।

सन् १९१९ ईसवी में इस प्रान्त की पुलिस ने क्या क्या काम किये और कैसे किये, इसकी रिपोर्ट प्रकाशित हुई है। साथ ही गवर्नमेंट की समालोचना भी छपी है। रिपोर्ट की कुछ बातें सुनने लायक़ हैं—

ऐसे मामले जिनमें पुलिस को दस्तंदाज़ी करने का मजाज़ है, १,२६,७०६ तक पहुँच गये। १९१८ में इनकी संख्या सिर्फ़ १,१७,३९८ थी। इन जुर्मों ने खूब तरक़्क़ी की। पुलिस का कहना है कि इसमें उसका कुसूर नहीं। फ़सल अच्छी नहीं हुई। महँगी बहुत रही। और भी कई कारण आ पड़े। लोग भूखों मरने लगे। जुर्म न करें तो करें क्या! इसी से उनकी संख्या बढ़ गई। जितने जुर्म इस तरह के हुए उनमें से २६ हज़ार जुर्मों की तो तहक़ीक़ात ही पुलिस ने न की। वह बोली—भाग जाओ, तुम्हारी इस बात—इस मामले—में कुछ भी जान नहीं। हम क्यों तफ़तीश करें? कोई १ लाख की जांच की। उनमें से सिर्फ़ २७ हज़ार मुक़द्दमे फ़ौजदारी सिपुर्द हुए। मगर सज़ा हुई सिर्फ़ २३½ हज़ार मुक़द्दमों में। इस पर पुलिस के साहब ने ख़ुशी ज़ाहिर की है। इसलिए कि जिन सवा लाख मुक़द्दमों की ख़बर पुलिस को लगी उनमें से १८·६ फ़ी सदी मुजरिमों को सज़ा हो गई! ख़ूब! जो लोग पुलिस की कृपा से चालान होने से बच गये उनके धन्य भाग्य!

जिन जुर्मों में पुलिस दस्तंदाज़ी नहीं कर सकती उनकी संख्या में १५ हज़ार की वृद्धि हुई। अर्थात् १९१८ में उनकी संख्या १,२८,१३६ थी। सो वह बढ़ कर १९१९ में, १,४३,२२३ हो गई। कारण? अजी, बात यह हुई। सुनिए। पुलिस के साहब की राय है कि स्पेशल और आनररी मैजिस्ट्रेटों की संख्या जो बढ़ गई। बहुत करके न सही तो किसी हद तक इस वृद्धि का कारण यही मैजिस्ट्रेट हैं। लोगों ने मैजिस्ट्रेटी पास देखी; झट मुक़द्दमे दायर कर दिये। न यह सुभीता होता, न पुलिस को इतने जुर्मों की ख़बर होती। मानों उनका अस्तित्व ही जाता रहता।

रिपोर्ट के साल ८२४ क़त्ल हो गये। पहले साल से ६ ज़ियादह। ज़िले की पुलिस के साहब इस वृद्धि का कारण नहीं बता सके। इनमें से १०७ आदमियों की जान तो डाकुओं ही ने ले ली। १५ औरतों ने अपने ही बच्चे मार डाले। क्यों? सो रिपोर्ट में लिखा नहीं।

अब डकैतियों का हाल सुनिए। उनकी संख्या १५०२ तक पहुँच गई। सरकार इसको बहुत समझती है और पुलिस के बड़े साहब भी। डकैती के जो मुक़द्दमे अदालतों में पहुँचे उनमें से ८०⅔ फ़ी सदी में सज़ायें हुईं। लाट साहब कहते हैं—यह ख़ूब हुआ; नतीजा बहुत सुन्दर रहा। एक साल को छोड़ कर पिछले दस सालों में पुलिस ने इतनी अच्छी कारपरदाज़ी कभी नहीं दिखाई।

चोरी और सेंध की कुछ न पूछिए। वृद्धि पर वृद्धि। डाकेज़नी, लूट, सेंध और चोरी की बदौलत हम लोगों का ६४ लाख ३० हज़ार रुपये का माल जाता रहा। भाई, पुलिस ने कुछ माल बरामद भी तो किया होगा? जी हाँ, किया। सौ रुपये पीछे कोई १४ रुपये का!

और और जुर्मों का विवरण कौन सुनावे। इतना ही क्या कम है।

अफ़सरों को छोड़ कर पुलिस के और मुलाज़िमों की तफ़सील देखिए—

सब इन्स्पेक्टर	२,०१६
हेड कान्स्टेबल	३,६५९
कान्स्टेबल	३०,४६२

और इन सबके लिए ख़र्च हुआ है—९९ लाख २६ हज़ार रुपया। कोई एक करोड़! यह ख़र्च १९१८ की

अपेक्षा २ लाख से भी कुछ अधिक है। महँगी भी तो है। और यह भी सुनते हैं कि मुरादाबाद के पासशुदह अँगरेज़ी दाँ छोटे-बड़े इन्स्पेक्टर तनख़्वाह के सिवा और कुछ—फल-फूल तक—लेना बड़े से बड़ा पाप समझते हैं। उनके लिए सरकार को अधिक ख़र्च करना ही चाहिए।

पुलिस के छोटे बड़े इन्स्पेक्टरों में से बेचारे २४ तो बरख़ास्त ही कर दिये गये। ६६ को सज़ायें मिलीं। बाक़ी रहे, हेड कान्स्टेबल और कान्स्टेबल। सो उनमें से ३१४ तो निकाल दिये गये और ७८३ ने सज़ायें पाईं। १५६ मुलाज़िमत छोड़ कर कहीं भाग गये।

मार-पीट करने और जबरन रुपया छीनने के २० इलज़ाम पुलिस पर लगाये गये।

प्रजा की रक्षा का भार जिन लोगों पर है उनके इन कारनामों में आश्चर्य करने या तरस खाने की कोई बात नहीं—

करीरमारोप्य हि केन लभ्यते फलं रसालस्य वतैषमज्ञता

३—हिंस्र-जन्तुओं से प्राण-हानि।

इस देश का बहुत सा क्षेत्रफल पहाड़ों, पहाड़ियों, जङ्गलों, नदियों के कछारों और नालों में परिणत है। उनमें शेर, बाघ, भालू, भेड़िये आदि बेधड़क बिचरा करते हैं। साँपों की तो कुछ पूछिए ही नहीं। वे तो सभी कहीं व्याप्त हैं। इन जन्तुओं से हर साल हज़ारों मनुष्यों की जानें जाती हैं। प्लेग, इनफ्लुयंज़ा और हैज़ा आदि की तरह इन जन्तुओं की भी कृपा भारतवासियों पर है। अधिकतर ग़रीब ही आदमी, जो जङ्गलों और पहाड़ों पर लकड़ी लाने और गोंद, मोम, हर्रा आदि इकट्ठा करने जाते हैं, इनके शिकार होते हैं। भूखों मरने अथवा आधे पेट खाकर सो रहने और प्रायः अर्द्ध-दिगम्बर बने घूमने से इस तरह इनका मर जाना ही बेहतर समझ कर शायद सर्वशक्तिमान् भगवान् ने मारक रोगों की तरह इन जन्तुओं की सृष्टि इस देश में कर रक्खी है। चलो यह भी अच्छा। मर कर ये लोग फिर भी तो जीयेंगे। प्रार्थना इतनी ही है कि यदि इनका पुनर्जन्म हो तो इस देश में नहीं, जहाँ मनुष्यों का रङ्ग ख़ूब गोरा—दूध से धोया हुआ सा—होता है वहाँ हो। ऐसा होने से फिर ये लोग शायद बाघों और भेड़ियों की ख़ूराक बनने से बच जायँ। क्योंकि वहाँ हथियार सुलभ हैं। अतएव वहाँवालों को इन जन्तुओं से अपनी रक्षा करने के यथेष्ट साधन प्राप्त हैं।

सरकारी रिपोर्ट कहती है कि १९१९ ईसवी में २,६३७ आदमी हिंस्र-जन्तुओं ने मार खाये। मतलब यह कि १९१८ की अपेक्षा पिछले साल ४७३ जानें अधिक गईं। हथियारों के लाइसंस प्राप्त करने में, सुनते हैं, बड़े बड़े सुभीते कर दिये गये हैं। फिर भी ख़ूँख़्वार जानवरों की ख़ूराक का यह हाल! मारे गये इन इतने आदमियों में से १,१६२ को तो, सिर्फ़ बाघ महाराज ही खा गये। औरों में से मुख्य मुख्य जन्तुओं ने कितने खाये, यह भी सुन लीजिए—

तेंदुओं ने	४६६
भेड़ियों ने	२६४
भालुओं ने	११८
हाथियों ने	६०
जंगली सुअरों ने	२०१
मगरों ने	१८५

साँपों ने तो २२,६०० मनुष्यों को परलोक का पथिक बना दिया। सरकार ने साँप काटे की दवा और एक पिचकारी ईजाद की है। पर वह बहुधा सरकारी अस्पतालों की आलमारियों ही में रहती है। उस बेचारी की पहुँच देहात की झोंपड़ियों तक कहाँ। और शेष-नाग के वंशज उरग-नारायण का साम्राज्य वहीं है। फिर वह वहाँ कैसे काम आ सकती है?

क़िस्सा कोताह, सब मिला कर कुछ कम २३ हज़ार आदमियों ने जान से हाथ धोये।

उधर २८ हज़ार साँप और १६ हज़ार बाघ, भेड़िये आदि जानवरों को प्राण देकर मनुष्य मारने का प्रायश्चित्त भोगना पड़ा। इस काम में सरकार का कोई पौने दो लाख रुपया ख़र्च हुआ। वह बतौर इनाम के जङ्गली जानवरों और साँपों के मारनेवालों को बाँटा गया।

मनुष्यों को और फ़सल को भी हानि पहुँचानेवाले जानवरों से अपनी रक्षा करने तथा शिकार खेलने आदि के लिए बन्दूक़ और तमंचे रखनेवालों को, सरकार ने, १९१९ ईसवी में, १,६३,२३३ लाइसंस दे रक्खे थे। ख़ुशी की बात है, यह संख्या १९१८ ईसवी की अपेक्षा कुछ अधिक है।

४—टिकस पर टीका।

प्रजा से तरह तरह के कर वसूल करने से जो आमदनी होती है उसीसे गवर्नमेंट का खर्च चलता है। गवर्नमेंट अँगरेज़ी है। अँगरेज़ों का देश इँगलिस्तान है। पर इँगलिस्तान से यहां की गवर्नमेंट को एक फूटी कौड़ी भी नहीं मिलती। सारा रुपया हमीं लोगों को देना पड़ता है। उसका कुछ अंश यहीं खर्च होता है, कुछ इँगलिस्तान चला जाता है। गवर्नमेंट ने ज़मीन पर कर लगा दिया है, नमक पर कर लगा दिया है, शराब आदि मादक चीज़ों पर कर लगा दिया है; और भी न मालूम कितने कर उसने लगा रक्खे हैं। पर सरकार का खर्च ठहरा भारी। करोड़ों रुपये तो उसे उन अँगरेज़ों को हर महीने देने पड़ते हैं जो पेंशन लेकर विलायत चले गये हैं और वहीं अपने देश में बैठे मौज कर रहे हैं। जितने कर पहले थे उनसे काम न चलता देख गवर्नमेंट ने बहुत लाचार होकर हम लोगों की निज की आमदनी पर भी कर लगा दिया है। यह बात पहले पहल शायद लार्ड कर्ज़न के समुदार शासन में हुई थी। सरकार ने उस समय कहा—जिन लोगों की वार्षिक आमदनी एक हज़ार या उससे अधिक है वे इतना कर दें। देना पड़ा। बहुत वर्षों तक कर-ग्रहण की निश्चित सीमा यही रही। दो साल हुए तब सरकार को भारतवासियों की दरिद्रता पर दया आई। उसने फ़रमाया—खर्च तो किसी न किसी तरह चल ही जायगा। लाओ, थोड़ी आमदनीवालों को कर देने से रिहा कर दें। तब उसने एक हज़ार रुपये के बदले दो हज़ार और उससे अधिक आमदनीवालों से ही कर लेने का क़ानून बना दिया। बेचारे एक हज़ारवालों को राम राम करके नजात मिली।

आमदनी पर टिकस वसूल करने के लिए इस प्रान्त की गवर्नमेंट ने एक कमिश्नर नियत कर दिया है। इसके सिवा, कितने ही डिपटी कलेक्टर भी इस काम पर तैनात किये गये हैं। इन सब लोगों ने क्या काम किया, इसकी एक रिपोर्ट एक कनौजिया वाजपेयीजी ने लिखी है। आप बोर्ड आव् रेविन्यू के जूनियर सेक्रेटरी हैं। आपकी रिपोर्ट पिछले तीन सालों की है। उसमें कर के काम का खुलासा हाल है। रिपोर्ट में लिखा है कि—लोग पहले अपनी आमदनी कम बता दिया करते थे और कर देने से अकसर बच जाते थे। पर जब से टिकस के क़ानून में रद्दोबदल हुआ है तब से लोगों को ऐसा करने की कम हिम्मत होती है। उन्हें अपनी आमदनी का हाल अपने हाथ से लिख कर एक नक़शा पेश करना पड़ता है। न पेश करें तो क़ानून की रू से दण्डनीय हों। कम आमदनी बता दें तो भी उन्हें विपत्ति का सामना करना पड़े। अतएव बहुत अच्छा हुआ जो यह नया क़ानून बन गया। इसकी कृपा से थोड़ी आमदनीवाले तो कर देने से बच गये। पर सरकारी आमदनी कम होने के बदले उलटा बढ़ गई। इधर लड़ाई के कारण कुछ लोगों का कारोबार खूब चमका। उनकी आमदनी बेहद बढ़ गई। इससे कर भी उनसे अधिक वसूल हुआ। कपड़े और ग़ल्ले वग़ैरह के व्यापारियों ने भी, महँगी के कारण, खूब रुपया बटोरा। उनकी बदौलत भी सरकार के ख़ज़ाने में इज़ाफ़ा हो गया। इधर पिछले तीन साल में टिकस की आमदनी का हाल देखिए—

१९१६-१७ में	४२½ लाख रुपया
१९१७-१८ में	४६½ ,,
१९१८-१९ में	६७ ,,

१९१९-२० का ठीक ठीक हिसाब अभी बना नहीं। पर आशा होती है कि उस साल इस कर की आमदनी सत्तर अस्सी लाख तक ज़रूर पहुँच गई होगी। ईश्वर करे, १ करोड़ हो जाय। अन्यथा बड़े बड़े अफ़सरों की तनख्वाहों, भत्तों और पेन्शनों में जो इतना इज़ाफ़ा हुआ है वह कहाँ से आवेगा, और रेलों और फ़ौजों का खर्च कैसे चलेगा।

इस सूबे के क्षेत्रफल और आबादी को ध्यान में रख कर देखिए हम लोग कितने अमीर हैं। कितनी आमदनी के कितने आदमी यहां रहते हैं इसके दो चार दृष्टान्त नीचे दिये जाते हैं—

रुपये	टिकस देनेवाले
१,००० से १,४९९ तक के	१७,७५१
२,००० से २,४९९ तक के	५,९९१
५,००० से ७,४९९ तक के	३,२६०
१,००,००० से १,२४,९९९ तक के	७

सो, जनाबआली, इन ५२ ज़िलों में सिर्फ़ ७ लखपती हैं। करोड़पती एक भी नहीं। कम्पनियों में केवल २४ कम्पनियाँ

ऐसी हैं जिनकी सालाना आमदनी १ लाख के ऊपर है। रहे व्यापारी, सो उनमें सिर्फ़ १६ की आमदनी एक लाख या उससे अधिक है। यह हिसाब १६१८-१६ का है। उस साल कुल ४०,०५६ टिकस देनेवाले थे। इन्हीं लोगों ने अपनी गाढ़ी कमाई में से सरकार को कुछ कम ६७ लाख रुपया दे डाले।

५—मुसलमान और हिन्दी।

उर्दू कोई भिन्न भाषा नहीं। वह हिन्दी का ही बिगड़ा, बल्कि यों कहना चाहिए कि बिगाड़ा हुआ रूप है। पहले के मुसलमान-लेखक अपनी भाषा को भाखा या हिन्दी ही कहते थे। अनेक मुसलमान-कवियों ने हिन्दी में ही कविता की है; बड़ी बड़ी पुस्तकें तक लिखी हैं। कारणवश जब से मुसलमानों में भेद-भाव की नीति का प्रवेश हुआ तब से वे हिन्दी में अरबी, फ़ारसी और तुर्की के अनावश्यक शब्द भर भर कर उसका रूप विकृत करने लगे। यदि यह करके भी वे हिन्दी से सम्पर्क रखते—उसे सीखते और उसकी लिपि का अभ्यास करते—तो भी बात न बिगड़ती। ऐसा करने से उन्हें बड़े बड़े लाभ होते। हिन्दुओं से मेल-जोल बढ़ता, हिन्दुओं के हिन्दी-साहित्य का असर उनकी उर्दू पर पड़ कर उसका विस्तार बढ़ता, उसकी शब्द-सामग्री अधिक हो जाती; उसे नये नये भावों की प्राप्ति होती। पर यह सब करना तो दूर रहा, उन्होंने हिन्दी को घृणा की दृष्टि से देखा। यहाँ तक कि उन्होंने उसका अस्तित्व तक क़बूल करने से साफ़ इनकार कर दिया। हिन्दू तो उर्दू, फ़ारसी ही नहीं, किंतु अरबी तक पढ़ें और मुसलमान भाइयों की भाषा में पुस्तक-रचना तक करें, पर मुसलमान हिन्दी की छुवा-छूत से कोसों दूर रहें! कैसी अस्वाभाविक बात है! इससे उनकी और उनकी भाषा की जो हानि हुई है उसे वे हिन्दुओं के समझाने से भी नहीं समझ सके। पर अब ज़माना बदला है—समय ने अब कुछ थोड़ा सा पलटा खाया है। कुछ समझदार मुसलमानों के ध्यान में अपनी यह इतनी बड़ी भूल अब कहीं आने लगी है। उर्दू के मासिक पत्र "ज़माना" की सितम्बर १६२० वाली संख्या में "हिन्दी मज़ाक़" नाम देकर ख़ान-बहादुर मिर्ज़ा सुलतान-अहमद ने एक लेख लिखा है। उसमें आपने बताया है—बताया क्या, क़बूल किया है—कि हिन्दी को हौव्वा समझने से उर्दू के साहित्य को कितनी और क्या क्या हानियाँ हुई हैं। लेखान्त में आपने फ़रमाया है—

(१) "बिलख़ुसूस यह उर्दू शायरों या नाज़िमों का काम है कि वह हिन्दी ख़यालात या हिन्दी जज़्बात का ख़ाका उर्दू ज़बान में उतारें और हिन्दी हासिल करके हिन्दी में भी तबा आज़माई करें"।

(२) "सद नहीं तो बीसियों हिन्दू तो ज़रूर ऐसे क़ाबिल और लायक़ मिल सकेंगे कि जो फ़ारसी और उर्दू में अच्छी नस्र व नज़्म लिख व कह सकते हैं। बतलाइए, मुसलमानों में उँगलियों के पोरों पर भी ऐसे नहीं गिने जा सकते जो हिन्दी में इस वक़्त × × × × कुछ कह सुन सकें। क्या मुसलमानों के लिए यह कुछ थोड़ी कमी है"।

(४) "मेरी राय में तो अब वक़्त आ गया है कि मुसलमान हिन्दी क्या गुरमुखी और गुजराती वग़ैरह भी सीखें। मुख़्तलिफ़ ज़बानों का सीखना एक बढ़ती दौलत है, इस सरमाया से कौन इनकार कर सकता है"।

ख़ान-बहादुर के इन विशद विचारों को यदि दाद मिले तो मुसलमान भाइयों की उर्दू के अनेक भद्दे भद्दे दोष भी दूर हो जायँ और हिन्दी के ज्ञान की बदौलत उर्दू के व्याकरण का संस्कार भी हो जाय। तब ख़ान-बहादुर और उनके साथी

(१) उसको पेश किया गया

(२) ख़त को लाया गया

(३) मुल्क को बरबाद किया गया

इत्यादि अशुद्ध प्रयोग क़लम से निकालते ज़रूर हिचकें।

६—एक अद्भुत आविष्कार।

आज तक बिजली की बदौलत सैकड़ों हज़ारों असम्भव मानी गई बातें सम्भव कर दिखाई गई हैं। बिजली ने इस जड़ जगत् में एक प्रकार की सचेतनता सी उत्पन्न कर दी है। वैद्युतिक शक्ति के सिद्धान्तों की खोज कर करके विद्युच्छास्त्र के ज्ञाताओं ने मानव-समूह का बड़ा उपकार किया है। बिजली ही की शक्ति से तार द्वारा ख़बरें आती जाती हैं, रेलें चलती हैं, ट्रामें चलती हैं, रोशनी होती है, पंखे चलते हैं। और भी न मालूम क्या क्या कार्य्य उसकी कृपा से सम्पादित होते हैं! कुछ चीज़ें ऐसी हैं जो विद्युच्छक्ति की भावना से तुल्यगुणवाली हो जाती हैं, फिर चाहे उनके बीच में कितना ही व्यवधान क्यों न हो।

इस सिद्धान्त के आधार पर डेनमार्क के दो विज्ञानवेत्ताओं ने एक बड़ी ही अद्भुत बात कर दिखाई है। इनमें से एक का नाम जानसन और दूसरे का रायेक है। कुछ समय हुआ, इन लोगों ने कोपेनहेगन नगर में अनेक विज्ञानियों को अपने नूतन आविष्कार की क्रिया दिखा कर सबको चकित कर दिया। एक कमरे की दीवार पर उन्होंने एक बेला या सारङ्गी रख दी। फिर कुछ दूर पर एक और कमरे में जाकर उन्होंने एक विशेष प्रकार के यन्त्र में एक गीत भरा अथवा एक गति अलापी। उधर उन्होंने यह किया, इधर दीवार पर रक्खी हुई सारङ्गी ने वही गीत तद्वत् सुना दिया। इतना ही नहीं, उस सारङ्गी ने बातें भी कीं। ऊपर जिन दो विज्ञानियों का नाम दिया गया है उनमें से एक उस कमरे में गया जहाँ उनका यन्त्र रक्खा था। वहाँ उसने कुछ वाक्य उच्चारण किये। वे वाक्य भी सारङ्गी ने ज्यों के त्यों सुना दिये। बेतार के तार की उड़ती हुई ख़बरें, इनका नवाविष्कृत यन्त्र बीच ही में पकड़ लेता है और छाप कर दिखा सकता है। कैसी अद्भुत—कैसी अचम्भे में डालनेवाली—आविष्क्रिया है। कलकत्ते में गाना हो, बनारस में बैठे हुए श्रोता उसे सुन सुन कर आनन्द-मग्न हों!

७—वैदिक रचना करनेवाली स्त्रियाँ।

स्त्रियों और शूद्रों को वेद पढ़ने और सुनने का अधिकार या आज्ञा नहीं। सनातन धर्म्म के अनुयायी हिन्दुओं का यही विश्वास है। इस दशा में, यह कहना कि स्त्रियों ने भी वैदिक मन्त्रों की रचना की है, वन्ध्या के पुत्र-जन्म पर उत्सव मनाने के सदृश है। इसके सिवा, यह भी तो मानी हुई बात है कि वेद अपौरुषेय हैं। अतएव उनके किसी अंश की रचना मनुष्य के द्वारा हुई मानना—चाहे वह स्त्री हो चाहे पुरुष—नितान्त ही बे सिर पैर की बात है। यह पक्ष वेद-प्राण भावुक हिन्दुओं का है। पर एक और पक्ष भी है। उसके अनुयायी कहते हैं कि प्रेरणा चाहे ईश्वर ही की रही हो, पूर्व-कालीन वैदिक विद्वानों ने ही वेद-रचना की है। किसी ने किसी अंश का निर्म्माण किया है, किसी ने किसी का। इन रचनाकारों के नाम भी यथा-स्थान वेदों में पाये जाते हैं। इन लोगों का यह भी कहना है कि वेदों की रचना केवल ऋषि-मुनियों ही ने नहीं की, विदुषी स्त्रियाँ भी इस काम में शरीक थीं। इन स्त्रियों के भी नाम वैदिक सूक्तों में विद्यमान हैं। इससे इन विद्वानों का अनुमान है कि बहुत पुराने ज़माने में भी यहाँ स्त्रियाँ पढ़ती-लिखती थीं, पुस्तक-रचना करती थीं, और पुरुष-पण्डितों के साथ बैठ कर वैदिक बातों पर विचार करती थीं। उदाहरण के तौर पर ये लोग आठ दस ऐसी विदुषी स्त्रियों के हवाले देते हैं जिनके नाम वैदिक मन्त्रों के साथ सदा से संलग्न चले आ रहे हैं। इन स्त्रियों में से एक स्त्री थी—विश्ववरा आत्रेयी। ऋग्वेद के पाँचवें मण्डल में इस वैदिक विदुषी के नाम से एक सूक्त है। उसमें अग्नि की प्रशंसा और स्तुति है। दूसरी स्त्री है—अपाला आत्रेयी। इसकी रचना से जान पड़ता है कि इसे इसके पति ने छोड़ दिया था। इसने अपनी रचना में और और बातों के सिवा इन्द्र की भी स्तुति-प्रार्थना की है। तीसरी स्त्री का नाम है—घोषा। इसकी रचना ऋग्वेद के पहले और दसवें मण्डल में है। गोधा और लोपामुद्रा नाम की स्त्रियों की भी रचना ऋग्वेद में है। इसके सिवा इन्द्राणी और शची के नाम से भी कुछ सूक्त प्रसिद्ध हैं। इसी तरह और भी कुछ स्त्रियों की रचना के उदाहरण वेदों में पाये जाते हैं। चाहे ईश्वर ही की प्रेरणा से ये स्त्रियाँ उन उन मन्त्रों की द्रष्टा हो गई हों; दूसरे पक्ष के विद्वानों की सम्मति है कि वैदिक काल में स्त्रियों का शिक्षित होना अवश्य सिद्ध होता है। और भारत के लिए यह थोड़े गौरव की बात नहीं।

८—पृथ्वी का वज़न।

संयुक्त-राष्ट्र, अमेरिका, में एक रियासत है। उसका नाम है—मसाचुसेट। उसमें पदार्थ-विद्या से सम्बन्ध रखनेवाली एक प्रयोगशाला है। अध्यापक लुई ई० डार उसके प्रधानाध्यक्ष हैं। आप अपने विषय के उत्कृष्ट ज्ञाता और नामी गणितज्ञ हैं। आपसे, एक बार, आपके छात्रों ने पूछा कि, आचार्य्य, जिस पृथ्वी पर हम रहते हैं उसका वज़न भला कितना होगा। अध्यापक महाशय चुप रह गये। सोच कर आपने कहा, हिसाब लगा कर बताऊँगा। तब से आप पृथ्वी को तोल डालने पर तुल गये। बहुत सिरखपी करने पर आपको एक तरकीब सूझी। आपने पृथ्वी के आकार के छोटे छोटे दो गोले बनाये। इन्हें एक ऐसे तराज़ू पर तोला जो एक बाल बराबर वज़न की भी

कमी व बेशी बता सके। उनका वज़न आपने लिख लिया। फिर बाल के बारहवें हिस्से के बराबर पतले तारों से उनको उन्होंने बांधा। बांध कर लोहे की एक छड़ से उन्हें लटका दिया। इसके बाद पांच पांच सेर के वज़नी दो गोले आप और लाये। ये गोले सीसे के थे। उनको आपने पहले के दोनों छोटे गोलों के पास रक्खा। छोटे गोलों के पास ज्योंहीं बड़े गोले आये, बड़ों ने अपनी आकर्षणी शक्ति प्रकट कर दी। उस शक्ति के खिँचाव से छोटे गोले हिलने डुलने लगे। तब आपने उस आकर्षण-शक्ति को अपने एक सूक्ष्म यन्त्र से नाप या तोल डाला। मनुष्य के बाल के एक इञ्च लम्बे टुकड़े के यदि एक लाख टुकड़े कर डाले जायँ और उनमें से एक टुकड़े का जितना वज़न हो उतना ही वज़न उस शक्ति का ठहरा। आचार्य्य डार को सीसेवाले गेंदों का भी वज़न मालूम था और उनका भी जिनको उन्होंने छड़ से लटकाया था। सीसे के जिन गेंदों के प्रभाव से लटकते हुए गेंद हिलने लगे थे उनकी शक्ति की भी इयत्ता उन्हें मालूम हो गई थी। पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति की मात्रा—वह मात्रा जिसके प्रभाव से सीसेवाले गेंद प्रभावान्वित थे—उन्हें मालूम ही थी; और यह मात्रा उन गेंदों के वज़न के बराबर थी। अथवा यह कहना चाहिए कि गेंदों का वज़न ही उस शक्ति के बराबर था। बस फिर क्या था। ज़रा सा हिसाब करने की कसर थी। वह भी उन्होंने त्रैराशिक की रीति से कर दिखाया और पृथ्वी का ठीक ठीक वज़न बता दिया। वह ६ के ऊपर २१ सिफ़र रखने पर प्रकट किया जा सका। ये इतने टन हुए और एक टन २७ मन से भी कुछ अधिक ही होता है। यह संख्या परार्द्ध के भी पार चली गई। अर्थात् शंखों से भी उसकी गिनती नहीं हो सकती। बुद्धि और विज्ञान जो न कर दिखावे, थोड़ा है।

६—निःसत्त्व आहार।

हम जो चीज़ें खाते पीते हैं वे पहले विपुल परिमाण में मिलती थीं। गेहूँ, चावल, दाल, घी, दूध, शक्कर और फल-मूल सभी सुलभता से मिल जाते थे। ये चीज़ें उचित परिमाण में पेट में पहुँच कर हमारा परिपोषण करती थीं। इसके सिवा, उन दिनों हमें ऐसा जी-तोड़ परिश्रम भी न करना पड़ता था। चिन्ता भी निरन्तर गला दबाये न रहती थी।

अब ख़ालिस घी-दूध का मिलना शहरों में तो क्या देहात में भी दुर्लभ है। जो मिलता है वह भी बहुत महँगा। उसमें न जाने क्या क्या मिला रहता है। अतएव विकृत चीज़ों में वह गुण भी नहीं। हमारे भोज्य पदार्थों में पोषक द्रव्य कम रह गये हैं। खट्टी और चरपरी चीज़ें मिला कर बनाये गये शाक-पात से हमारा पेट तो भर जाता है, पर यथेष्ट पुष्टि प्राप्त नहीं होती।

उपर्युक्त आहार मिलने से पहले हमारे शरीरों में जीवनी शक्ति उचित परिमाण में थी। इससे कोई रोग हमें एकाएक न धर दबाता था। उस दशा में हमारी नीरोगता के साथ बीमारी का युद्ध होता था और प्रायः जीत हमारी ही होती थी। अब वह बात नहीं। पुष्टि के अभाव से शरीर निर्बल हो गया है। नाना प्रकार के रोग हमें धर दबाते हैं और प्रायः प्राण लेकर ही हटते हैं।

अब खाने-पीने की जो चीज़ें सुलभता से मिल सकती हैं उन्हें, विचार करके, पृथक् करना चाहिए। जो अप्रधान वस्तुयें हमारे प्रधान खाद्य के आसन पर दख़ल जमाये बैठी हैं उन्हें हटाना चाहिए। निस्सार चीज़ें खाने से शरीर दिन पर दिन क्षीण होता जाता है। अतएव, जिन वस्तुओं में पोषण-गुण अधिक हो उन्हीं को विपुलता से ग्रहण करना चाहिए। ऐसी नई चीज़ें पहले पहल खाने में अच्छी न लगेंगी, पर आदत डालने पर वे अच्छी लगने लगेंगी। अभी, युद्ध के समय, योरप में खाद्य पदार्थों का टोटा पड़ा तो अमेरिका से मक्का मँगाई गई। पर वहाँवाले मक्के का भोग लगाने को तैयार न हुए। तब, तीन पाव मक्के के मैदे के साथ पाव भर गेहूँ का मैदा मिला कर रोटी बनाई गई। इस प्रकार आहार-सङ्कट दूर किया गया।

ज़ायके ने हम पर भी ख़ासा प्रभाव जमा रक्खा है। जो चीज़ें हमें पसन्द हैं, वे दूषित भले ही हों; उनसे शरीर के पोषण में सहायता भले ही न मिले; परन्तु उनके पक्ष में यह युक्ति हम पेश कर देते हैं कि यहाँ के जल-वायु के लिए तो ये चीज़ें बहुत ही उपयुक्त हैं। हमारे प्रधान खाद्य में से जो चीज़ें घट गई हैं उनकी कमी को पूर्ण करने के लिए, और अपनी रुचि को भी बदलने के लिए, हमें उद्योग करना चाहिए। जो हम ऐसा न करेंगे तो निस्तार न होगा। उस मृत्यु का काम अभी गुप्त रूप से हो रहा है, इससे

और सबका ध्यान नहीं। वास्तव में हमारा यह उपवास ही अनेक रोगों को न्योता दे देकर हमारी धज्जियाँ उड़ा रहा है। देश की भलाई के लिए हमें स्वाद की सखी जीभ को लगाम लगानी चाहिए। कवि र रवीन्द्रनाथ ठाकुर की यही राय है।

१०—रेडियम का व्यवसाय।

अभी तक रेडियम का नाम विशेष करके वैज्ञानिकों ही का आश्रित था। पर अब इस धातु का प्रचार बढ़ने लगा है; इसका व्यवसाय भी होने लगा है। अब तक तीन चार कम्पनियां स्थापित हो गई हैं जो इसी का व्यवसाय कर रही हैं। आशा की जाती है कि भविष्य में इसकी खूब उन्नति होगी। जो कम्पनी सबसे बड़ी है वह साल भर में एक आउन्स अर्थात् आधी छटांक रेडियम तैयार कर सकती है। यह कम नहीं। संसार भर में अभी ५ आउन्स से अधिक रेडियम है ही नहीं। एक ग्रेम का दाम १,२०,००० डालर है और १ डालर कोई ३=) के बराबर।

रेडियम का उपयोग दवाओं में अधिक होता है। वह घड़ी आदि कई चीज़ों में चमक लाने के काम में भी लगाया जाता है। लोगों को आश्चर्य होता होगा कि ऐसी बहुमूल्य चीज़ दो दो डालरों में बिकनेवाली घड़ियों में कैसे लगाई जाती है। पर बात यह है कि रेडियम स्वयं प्रकाश नहीं देता। उसके छोटे छोटे कणों से दूसरे पदार्थ प्रकाशवान् हो जाते हैं। अभी तक ४०,००,००० घड़ियों में रेडियम लगाया जा चुका है। पर एक तिहाई आउन्स भी ख़र्च नहीं हुआ। कुछ रोगों की चिकित्सा में भी रेडियम की उपयोगिता सिद्ध हो चुकी है। इसलिए चिकित्सा-विभाग में भी इसकी मांग खूब बढ़ रही है। इस मांग की पूर्ति के लिए न्यूयार्क में एक नेशनल रेडियम बैङ्क (National Radium Bank) खोला गया है। उसमें जो रेडियम रक्खा गया है उसका मूल्य ३,७५,००० डालर है। यह दूसरों को उधार दिया जाता है। पर इसे लेने के लिए अमानत की ज़रूरत होती है और ब्याज भी देना पड़ता है।

रेडियम की सबसे बड़ी खानें संयुक्त-राज अमेरिका के कोलोरेडो प्रान्त में हैं। वह जगह रेलवे लाइन से २८ मील दूर है। वहां से कच्चा माल निकाल कर ६ घोड़े की गाड़ियों में लाद कर स्टेशन पर पहुँचाया जाता है। वहां से फिर रेलगाड़ी से आरेञ्ज नामक नगर को पहुँचाते हैं। वहीं उसे साफ़ करने का कारख़ाना है। जितना कच्चा माल होता है उतना ही रासायनिक द्रव्य उसकी शुद्धि में लगता है। रेडियम की शोधन-प्रणाली भी बड़ी टेढ़ी है। ८ गाड़ियों में भर कर जो कच्चा माल लाया जाता है उसे शुद्ध करने पर चुटकी भर रेडियम मिलता है। घड़ियों में चमक पैदा करने के लिए उनमें जस्ते के टुकड़े लगाये जाते हैं। उनमें रेडियम की शक्ति का प्रवेश करा दिया जाता है जिससे वे खूब चमकने लगते हैं। इस काम के लिए जस्ते को खूब शुद्ध करना पड़ता है। इसी लिए जस्ता भी वहीं तैयार किया जाता है।

११—पशुओं की क़बरें।

पेरिस के यात्री वहां घोड़ों की दुर्दशा देख कर यही समझते होंगे कि फ्रांसवासी पशुओं को प्यार नहीं करते। जीवित पशुओं से वे चाहे जैसा व्यवहार करते हों, पर इसमें सन्देह नहीं कि मृत पशुओं की स्मृति-रक्षा के लिए वे खूब प्रयत्न करते हैं। पेरिस में मृत पशुओं के लिए स्मृति-मन्दिर बनाये जाते हैं। उनके लिए एक अलग ही क़बरिस्तान है। वहां उन पशुओं के स्वामी आया करते हैं और उनकी क़ब्रों पर शोक-निश्वास छोड़ते हैं।

कुत्तों के लिए एक ऐसा ही क़बरिस्तान पेरिस से कुछ दूर, सीन नदी के किनारे, बना है। वहां कोई २०,००० पशुओं का अन्त्येष्टि-संस्कार हुआ है। उसके विषय में एक पत्र में एक छोटा सा लेख प्रकाशित हुआ है। नीचे उसका सारांश दिया जाता है—

१८६६ में कुछ लोगों ने एक समिति स्थापित करके ३,५०,००० फ्रांक (फ्रांस का सिक्का) जमा किया। उसी समिति ने यह क़बरिस्तान बनाया है। वहां कुत्ते, बिल्लियां और अन्य जानवर तथा पक्षी भी गाड़े जाते हैं। तीन साल तक क़ब्र की रक्षा के लिए १५ फ्रांक देना पड़ता है।

क़ब्रगाह में प्रवेश करते ही सबसे पहले सेंट बर्नार्ड (St. Bernord) नामक एक कुत्ते की क़ब्र मिलती है। इस कुत्ते ने ४० मनुष्यों की प्राण-रक्षा की थी। कई क़बरें तो बड़ी ही नेत्ररञ्जक हैं। कुछ पर अत्यन्त मनोरञ्जक पद्य खुदे हुए हैं। इस क़ब्रगाह में १५,००० क़बरें तो कुत्तों की हैं और चार हज़ार बिल्लियों की। इनके सिवा सात

घोड़े, छः बन्दर, दस तोते और ऐसे ही दो चार और पशु भी गाड़े गये हैं। सब क़बरें बड़ी सुन्दर हैं।

१२—अभागा हीरा*

भारतवर्ष की किसी खान से एक हीरा निकला था। वह इतिहास में खूब प्रसिद्ध हो गया है। उसका दाम तीन चार लाख रुपया है। योरप के लोगों की यह धारणा हो गई है कि जिस किसी के पास यह हीरा रहेगा उसका कुछ न कुछ अनिष्ट अवश्य होगा। प्रसिद्ध यात्री टेवर्नियर ने इसे भारत से ले जाकर फ़्रांस के बादशाह लुई चौदहवें को दिया। उसको अपने व्यवसाय में बड़ी हानि हुई और अन्त में वह जहाज़ पर ही मरा। फ़्रांस-नरेश से यह हीरा उनकी एक प्रेमिका को मिला। हीरा ग्रहण करते ही वह बेचारी राजा के प्रेम से वञ्चित हो गई। उसने उसे एक फरासीसी राजपुरुष—निकोलस फोक—को दे दिया। निकोलस फोक को प्राण-दण्ड हुआ। इसके बाद वह फ़्रांस-नरेश लुई सोलहवें के हाथ आया। वह अपनी विद्रोही प्रजा के द्वारा मारा गया। तब इस हीरे को फ़्रांस की राजमहिषी की एक सखी ने रख लिया। वह भी विद्रोहियों से मार डाली गई। जिन चोरों ने इस हीरे को चुराया उनको भी कठिन दण्ड भोगना पड़ा। इसके बाद यह हीरा जिसके पास गया वह इतना निर्धन हो गया कि अनाहार से उसका प्राणान्त हुआ। फिर इसके अधिकारी हुए लार्ड होप। उनकी स्त्री ने उनको त्याग कर समाज में उनका मस्तक नीचा कर दिया। तब यह हीरा एक नर्तकी को मिला। वह अपने एक हताश प्रेमी से मार डाली गई। जिसने उस स्त्री को यह हीरा दिया था वह भी गुप्त घातकों के हाथ से मरा। तब तुर्क-सुलतान अब्दुल हमीद ने इसे ख़रीदा। वह अपना राज-सिंहासन ही खो बैठे। तब इसे एडवर्ड मेकलीन नामक एक धनी ने ख़रीद लिया। उनका एक-मात्र लड़का मोटर से दब कर मर गया। तब से सभी लोगों को यह विश्वास हो गया है कि यह हीरा बड़ा अभागा है।

१३—ग्वालियर की सङ्गीत-कला।

अपनी सङ्गीत-कला के कारण ग्वालियर की बहुत दिनों से प्रसिद्धि है। प्राचीन काल में भी वह सङ्गीत-शिक्षा का बड़ा भारी केन्द्र था। अच्छे अच्छे गवैये वहाँ रहते थे। राजा मानसिंह ने वहाँ एक सङ्गीत-विद्यालय खोला था। प्रसिद्ध गायक तानसेन ने वहीं शिक्षा प्राप्त की थी। इसके बाद वह रीवाँ-नरेश राजा रामचन्द्र की राज-सभा में गया। वहाँ वह १५६२ तक रहा। इसके बाद जलालखाँ उसे अकबर के दरबार में ले आया। आइने-अकबरी में वह मियाँ तानसेन लिखा गया है। उसके पुत्र का नाम मियाँ तानतरंग ख़ाँ था। इससे जान पड़ता है कि उसने इसलाम धर्म स्वीकार कर लिया था। अभी तक उसकी क़ब्र के पास दशहरा, होली और वसन्त के दिन बड़ा भारी मेला होता है। कुछ समय से वहाँ सङ्गीत की अवस्था हीन हो रही थी। वर्तमान ग्वालियर-नरेश ने अब इधर ध्यान दिया है। उन्होंने एक अच्छा विद्यालय स्थापित किया है। उसमें निपुण गवैयों के द्वारा शिक्षा देने का प्रबन्ध किया गया है। आशा है कि ग्वालियर फिर सङ्गीत-शिक्षा का केन्द्र हो जायगा।

१४—भारतवर्ष के विज्ञान-विशारदों का कार्य्य।

भारतवर्ष के वैज्ञानिक विद्वानों में सर जगदीशचन्द्र वसु और सर पी० सी० राय अग्रगण्य हैं। इँगलेंड में वसु महोदय का अच्छा आदर हुआ है। वे रायल सोसाइटी के सदस्य चुने गये हैं। विलायत के प्रधान वैज्ञानिक पत्र "नेचर" के सम्पादक ग्रेगरी साहब ने तो एक सभा में यहाँ तक कहा है कि वसु महोदय का आविष्कार उतना ही महत्त्व-पूर्ण है जितना कि न्यूटन का माध्याकर्षण-विषयक आविष्कार। इन जगद्विख्यात वैज्ञानिकों के सिवा कुछ और भारतवासियों ने वैज्ञानिक खोज में अच्छा काम किया है। श्रीयुत रामानुज अच्छे गणितज्ञ थे। खेद है, अभी हाल में उनकी अकाल मृत्यु हो गई। सर प्रफुल्लचन्द्र राय के शिष्य श्रीयुत जे० सी० घोष भी विज्ञान में अच्छी गवेषणा कर रहे हैं। साइंस प्रोग्रेस नामक पत्र में कुछ भारतीय विद्वानों के भी विज्ञान-विषयक कार्यों का उल्लेख हुआ है। प्रयोगात्मक गणित (Applied Mathematics) में सी० वी० रमन का नाम है। उन्होंने शब्द-सिद्धान्त में खोज की है। एस० बनर्जी, ए० दे, एन० आर० सेन और जे० प्रसाद

* प्रवासी में प्रकाशित हीरार इतिहास नामक लेख से संगृहीत।

के भी कार्यों का उल्लेख है। विज्ञान की अन्य शाखाओं में किसी भी भारतीय का नाम उल्लिखित नहीं हुआ।

पुस्तक-परिचय।

१—रवीन्द्र-दर्शन—ख़ुशी की बात है, जबलपुर में भी एक ऐसी संस्था की संस्थापना हो गई जो गुजराती के सस्तुं-साहित्य-वर्धक कार्य्यालय की तरह हिन्दी की अच्छी अच्छी पुस्तकें थोड़े मूल्य में देने लगी। जहाँ तक हमने सुना है, इस संस्था का प्रबन्ध अच्छा है और पुस्तक-प्रकाशन के लिए इसके पास काफ़ी पूंजी भी है। प्रस्तुत पुस्तक इस संस्था की पहली पुस्तक है। अच्छी छपी है। काग़ज़ चिकना और मोटा है। मनोहर जिल्द बँधी हुई है। १४ फ़ार्म अर्थात् २२४ पृष्ठों की पुस्तक होने पर भी दाम केवल ॥।=) है। बिना जिल्द की लेने से ॥=) ही आने में मिल सकती है। इसे श्रीयुत सुख-सम्पत्तिराम भण्डारी ने लिखा है। इसमें बङ्ग-कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर का चरित है, जो अच्छे ढँग से लिखा गया है। कविवर के सामाजिक, धार्मिक, दार्शनिक, राजनैतिक और शिक्षा-विषयक विचारों के सिवा उनकी अन्यान्य भावनाओं का भी विशद वर्णन लेखक ने इस पुस्तक में किया है। पूर्वी और पश्चिमी सभ्यता, जाति-भेद, पुनर्जन्म, प्राकृतिक सौन्दर्य और भारतीय स्वराज्य पर व्यक्त किये गये रवि बाबू के विचार सुनने और मनन करने योग्य हैं। पुस्तक के महत्त्वपूर्ण होने में सन्देह नहीं। शारदा-पुस्तक-माला, राष्ट्रीय हिन्दी-मन्दिर, जबलपुर को लिखने से वह मिल सकती है।

❀

२—हिन्दी-निरुक्त—यह ५५० पृष्ठों की पुस्तक है। बड़े आकार की है। मूल्य ३) है। छपाई और काग़ज़ तो साधारण ही है। पर पुस्तक बड़े महत्त्व की है। इसके कई खण्ड निकल चुके हैं। इस खण्ड में दैवत-काण्ड समाप्त हो गया है। साथ ही निरुक्त का उत्तरार्द्ध भी समाप्त समझिए। इसमें पहले यास्क-मुनि-प्रणीत निघण्टु और निरुक्त अपने मूल-रूप संस्कृत में ज्यों का त्यों रख दिया गया है, फिर उसकी विशद व्याख्या हिन्दी में लिखी गई है। व्याख्या के पहले संस्कृत मूल का अर्थ भी किया गया है। इस पुस्तक का यथेष्ट अध्ययन कर लेने पर वेद और वैदिक साहित्य समझने में बड़ी सहायता मिल सकती है। अथवा यों कहना चाहिए कि बिना निघण्टु और निरुक्त के ज्ञान के ठीक ठीक वेदार्थ समझना असम्भव सा है। हरियाना-शेखावाटी-ब्रह्मचर्य्याश्रम के अध्यक्ष पण्डित सीताराम शास्त्री ने इस अत्यन्त उपयोगी ग्रन्थ का सम्पादन करके बड़ा उपकार किया है। आश्रम के मेनेजर को भिवानी के पते पर पत्र लिखने से यह पुस्तक मिल सकती है।

❀

३—ब्राह्मणवंशेतिवृत्तम्—इसका दूसरा नाम है—ब्राह्मण-वंश का प्राचीन और अर्वाचीन इतिहास। पर यह इतिहास की ठीक परिभाषा के भीतर नहीं आ सकता। क्योंकि इसमें "गोत्र, प्रवर और अवान्तर भेद तथा साहित्य-सेवी, जाति-भक्त और देश-भक्त प्रसिद्ध विद्वानों के चित्र और चरित्र" मात्र हैं। यह इस पुस्तक का दूसरा भाग है। इसकी रचना पण्डित परशुराम शास्त्री विद्यासागर ने की है। आपका पता है—बबियाल, अम्बाला। पुस्तक बड़े आकार के कोई २०० पृष्ठों की है। मूल्य २) है। पुस्तक में सभी ब्राह्मणों के विषय में थोड़ा बहुत लिखा गया है। यहाँ तक कि उत्कल, काश्मीरी, कूर्माञ्चलीय, दाधिमथ, द्राविड़ और नयपालीय तक नहीं छूटने पाये। इसमें ब्राह्मणों के भेदों और उपभेदों आदि का जो वर्णन है उसके विषय में तो कुछ कहने का अधिकार ही हमें नहीं। पर, हाँ, इसमें जो अनेक पण्डितों और प्रसिद्ध पुरुषों के सचित्र चरित हैं उन्होंने पुस्तक की उपयोगिता को ख़ूब बढ़ा दिया है। और, इस पुस्तक का अधिकांश कलेवर उन्हीं से व्याप्त भी है। कोई कोई चरित आवश्यकता से अधिक विस्तृत हो गया है। जैसे म० म० पण्डित दुर्गाप्रसाद का चरित। पर इससे कोई हानि नहीं। पुस्तक की छपाई और भाषा साधारण है।

❀

४—नागर-पुष्पाञ्जली, तृतीयाङ्क—इसके दो अङ्कों में क्या है, मालूम नहीं। यह तृतीयाङ्क ही समालोचना के लिए आया है। आकार बड़ा—ख़ूब लम्बा-चौड़ा,—पृष्ठ-संख्या १६० और मूल्य २) है। इस पर श्रीयुत केशवराम विष्णु-

लाल खारड़ पण्ड्या का नाम है। वही इसके संग्रहकर्ता हैं। आपका पता है—४४, गणेशगञ्ज, लखनऊ। आपही से यह पुस्तक मिल सकती है। भाषा इसकी गुजराती है। इसके दो भाग हैं। पहले भाग में तिथि, वार, नक्षत्र, योग, करण, मास, ऋतु, अयन, वर्ष, कल्प, राशि, लग्न, नवग्रह आदि ज्योतिष से सम्बन्ध रखनेवाले विषयों का विवेचन सरल भाषा में बहुत अच्छा है। अनेक चक्र और नक़्शे देकर प्रति दिन काम में आने वाली बातें योग्यतापूर्वक समझाई गई हैं। दूसरे भाग में कर्म्मकाण्ड है। पर उसका विशेष सम्बन्ध विसनगरा नागर-ब्राह्मणों से ही है। पहले गोत्र-प्रवर आदि का वर्णन है। फिर हवन, श्राद्ध, आशीर्वाद, प्रातःस्मरण, सन्ध्योपासन और जातकर्म्म से लेकर पुंसवन तक संस्कारों का विवेचन है। और भी कई बातें हैं। इसका पूर्वार्द्ध सर्व-साधारण के लिए बहुत उपयोगी है, उत्तरार्द्ध उससे क्रम।

❋

५—स्काउट-गीताञ्जली—इस छोटी सी पुस्तक का संग्रह शाहजहाँपुर के वकील, बाबू लक्ष्मीनारायण गुप्त, बी० ए०, एल-एल० बी० ने किया है। मूल्य ।) है। स्काउट डिपो, स्काउट काटेज, शाहजहाँपुर, को लिखने से मिलती है। इसमें स्काउटों अर्थात् बालचरों के गाने और पढ़ने लायक़ ४५ गीत हैं। उनमें से कुछ गीत अँगरेज़ी भाषा में भी हैं। विनय, प्रार्थना, स्वागत, मातृभूमि, हमारा देश, प्यारा वतन, वीर-प्रतिज्ञा आदि इसके गीतों के नाम हैं। कोई कोई गीत बहुत सुन्दर और भावपूर्ण है। गीत लड़कों के पढ़ने, याद करने और गाने लायक़ हैं।

❋

६—उन्नत विचार—इसका आकार छोटा, पृष्ठ-संख्या ४६ और मूल्य ३ आने है। पण्डित उदित मिश्र ने इसका प्रणयन किया है। प्रकाशक हैं—बाबू शिवचन्द्रजी गाड़ोदिया, मन्त्री, विद्याप्रचारिणी सभा, सुजानगढ़, बीकानेर। यह छोटी सी पुस्तिका विशेष शिक्षा-प्रद है। इसमें अन्यान्य बातों के सिवा भावग्राहिका-शक्ति, इच्छाशक्ति, संवेदन शक्ति, भावना-शक्ति, स्मरण-शक्ति, मनीषा-शक्ति, तर्क, निर्णय, अनुमान और परामर्श आदि का विवेचन और उपयोग-वर्णन है। प्रत्येक शक्ति के विचार में दृष्टान्त और उदाहरण के तौर पर और भी अनेक अच्छी बातें कही गई हैं। अन्त में विशुद्धता और आत्मपरीक्षा नाम के दो निबन्ध हैं। उनकी भी विचार-सरणि सुहावनी है।

❋

७—मङ्गल-मार्ग—इस ४० सफ़े की अच्छी छपी हुई पुस्तक का मूल्य ३ आने है। बीकानेर-राज्य के शिक्षा-विभाग के डिप्टी इन्स्पेक्टर, पण्डित उदित मिश्र, ने इसे लिखा है। इसमें पहले कुछ वेद-मन्त्र हैं, फिर उनका अर्थ और भावार्थ हिन्दी में है। ये मन्त्र स्तुति और प्रार्थना-परक हैं। लेखक का कहना है कि "इस जगत् के स्वामी का गुणानुवाद इन मन्त्रों द्वारा गाया गया है"। × × × × "भगवान् केवल मोक्षही का दाता न होकर अन्न, धन, ऐश्वर्य्य और अनेक मनोवाञ्छित फल को देता है।" पर एक प्रश्न है—यदि किसी मन्त्र में कहा गया हो कि—"हम आपकी इसलिए स्तुति करते हैं जिसमें आप बलिष्ठ हों और हमारी रक्षा करें"—तो क्या उससे यह अर्थ न निकलेगा कि बिना स्तुति के भगवान् निर्बल रहते हैं और भक्तों की रक्षा नहीं कर सकते? ख़ैर। जो मन्त्र दिये गये हैं उनमें अच्छी स्तुति और प्रार्थना है, इसमें सन्देह नहीं। पुस्तक के उत्तरार्ध में तीन लेख हैं—(१) सफलता में सुख है (२) झूठा बड़प्पन और (३) काम प्यारा है। इन तीनों लेखों में बड़ी अच्छी बातें कही गई हैं। उनमें निर्दिष्ट मार्ग सचमुच ही मङ्गल-मार्ग है। पुस्तक मिलने का पता—पण्डित देवराज मिश्र, गाँव कूँडी, डाकघर बड़ागाँव, ज़िला बनारस।

चित्र-परिचय।

वंशी-ध्वनि।

सरस्वती के इस अङ्क में वंशी-ध्वनि नाम का चित्र दिया जाता है। मुरलीधर की वंशी-ध्वनि सुनते ही गोपिकायें विह्वल हो गई हैं। उनकी सुधि-बुधि जाती रही है। यही भाव इस चित्र में प्रकट किया गया है। यह चित्र हमें टिहरी (गढ़वाल) के कुँवर विचित्रशाह के अनुग्रह से मिला है। यह एक प्राचीन चित्रकार के कला-कौशल का नमूना है।

Printed and published by Apurva Krishna Bose, at The Indian Press, Ltd., Allahaabd.
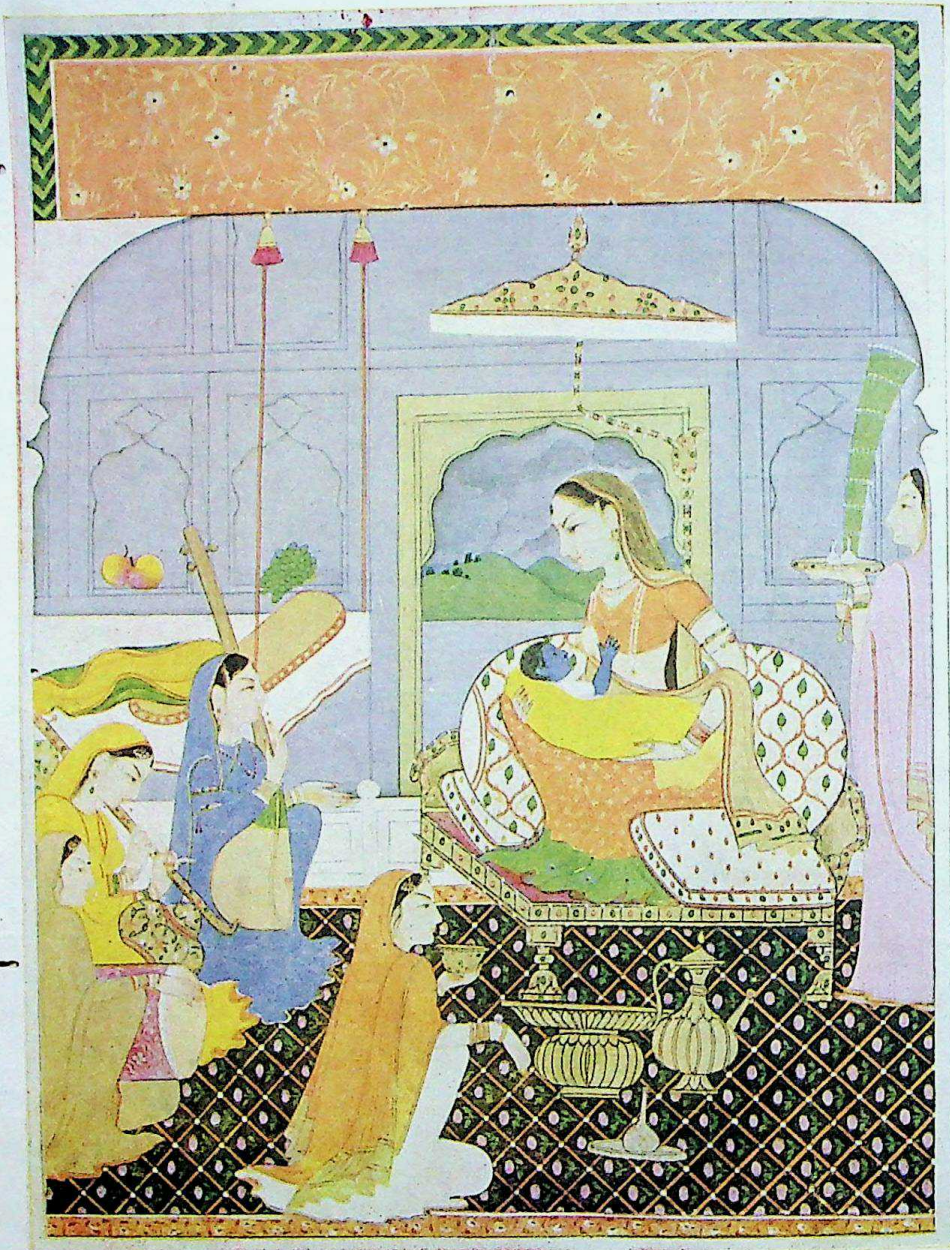
सङ्गीत।

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।
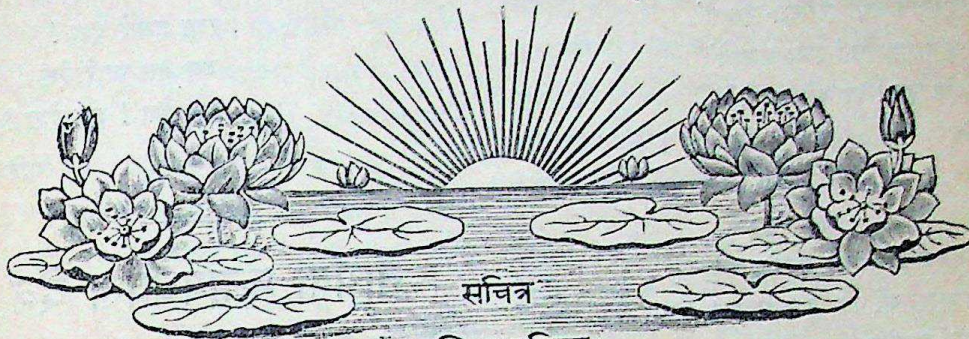
भाग २१, खण्ड २] दिसम्बर १९२०— मार्गशीर्ष १९७७ [संख्या ६, पूर्ण संख्या २५२

राष्ट्रीय गान।

जय जय प्यारे देश ! रम्य हमारे देश !
दृग के तारे,
जग उजियारे,
हिय के प्यारे, देश !
वेदोद्गाता,
भाग्यविधाता,
सब सुखदाता, देश !
जय देश ! जय देश !

जय जय भारत देश !
रम्य हमारे देश !
जय जय प्यारे देश !
जय देश ! जय देश !

है तेरी अति निर्मल काया
परम सत्य तूने अपनाया
प्रभु की तुझ पर ममता माया
लाखों मीलों पर है छाया
तेरा सुन्दर वेश !
जय देश ! जय देश !
जय जय०

हिमगिरि ऊँचे मस्तकवाला
है तेरा दृढ़ पहरेवाला
गर्जन जलनिधि करे निराला
रिपुओं के मद हरनेवाला
तू प्राकृत दुर्गेश !
जय देश ! जय देश !
जय जय०

शोभा सिन्धु नदी की भारी
ब्रह्मपुत्र नद की छवि न्यारी
गङ्गा जमना की बलिहारी
जिनने तेरी भूमि सुधारी
तारे लोक विशेष !
जय देश ! जय देश !
जय जय०

इन्द्र-धनुष की विविध दशायें
सूर्य-चन्द्र-नक्षत्र-विभायें

वन-उपवन की महा छटायें
नैसर्गिक श्री सुन्दरतायें
करतीं हिये प्रवेश !
जय देश ! जय देश !
जय जय०

परम मनोहर सर-सरितायें
दिव्यौषधियाँ ललित-लतायें
सुन्दर कृतियाँ रम्य कलायें
श्रेष्ठ पुरुष वर पतिव्रतायें
सोहें सभी प्रदेश !
जय देश ! जय देश !
जय जय०

मनुज-जाति का सत्त्वोद्धारक
असुरगणों का बल-संहारक
गो-ब्राह्मण-संकष्ट-निवारक
तेरा दिव्य मन्त्र है तारक
सुखकारक आदेश !
जय देश ! जय देश !
जय जय०

पञ्जाबी गुजरात-निवासी
बङ्गाली हों या व्रजवासी
राजस्थानी या मदरासी
सबके सब हैं भारतवासी
तेरे सुत प्रिय देश !
जय देश ! जय देश !
जय जय०

गीता को उर धारें हम सब
काम नीति से सारें हम सब
जय श्रीकृष्ण उचारें हम सब
तन मन धन सब वारें हम सब
कह कह जय जय देश !
जय देश ! जय देश !
जय जय प्यारे देश !
रम्य हमारे देश !
दृग के तारे
जग उजियारे
हिय के प्यारे देश !
वेदोद्गाता
भाग्य-विधाता
सब सुखदाता देश !
जय देश ! जय देश !
जय जय भारत देश !
रम्य हमारे देश !
जय जय प्यारे देश !
जय देश ! जय देश !

गिरिधर शर्म्मा

नायक प्रतापधवल देव।

वीर-प्रसविनी विहार-भूमि में बड़े बड़े वीर और समर-विजयी सम्राट् ही उत्पन्न नहीं हुए थे। वहाँ छोटे छोटे राजा या सरदार भी उपजे थे। जगत् में उनकी हृदयह्लादिनी कीर्ति-कौमुदी का यद्यपि विशेष प्रकाश नहीं है तथापि उनके अस्तित्व और प्रभुत्व का साक्ष्य प्राचीन दो-तीन शिला-लेख दे रहे हैं। इतिहास-वेत्ताओं ने इन शिला-लेखों को वैज्ञानिक रूप से प्रामाणिक माना है। आज ऐसे ही एक विहारी सरदार का मैं परिचय कराता हूँ। इसका नाम था नायक प्रतापधवल देव।

यह प्रतापी प्रतापधवल देव जापिल गाँव का रहनेवाला था। विहार के पलामू ज़िले में यह गाँव अब तक है। इसे अब जपला कहते हैं। यह आरा ज़िले के सुप्रसिद्ध रोहतासगढ़ के आमने-सामने है। बीच में सोनभद्र नद होने के कारण ज़िले का अन्तर हो गया है। रोहतासगढ़ में एक क्षुद्र शिला-लेख है जिससे प्रकट होता है कि यह सरदार खारबेल-वंश का था। अध्यापक कीलहार्न का विचार है कि

खारवेल शब्द खरवार (एक पार्वत्य जाति, जो अब तक पहाड़ी प्रान्तों में रहती है) का परिचायक है*। दो-एक पुरातत्त्व-वेत्ताओं ने इसे धवलवंशीय और महानायक लिखा है।

जापिलीय महानायक प्रतापधवल देव ईसा की बारहवीं शताब्दी के शेषार्द्ध में विद्यमान था। यह बात उसके तुत्राहि (तुतला) नामक स्थान के शिला-लेख से प्रकट होती है। उस समय, दक्षिणाञ्चल में इसका प्रताप खूब चमका था। मगध पर यद्यपि मुसल्मानों का अधिकार हो गया था तथापि उनकी पैठ दक्षिण-सीमान्त में न हुई थी। वहाँ, उस समय भी पार्वत्य जातियाँ अपनी स्वाधीनता को अक्षुण्ण रखने में समर्थ थीं। उनमें हमारा नायक ही प्रधान समझा जाता है†। "जापिलीय महानायक प्रसिद्ध धवलवंशीय प्रतापधवल" रोहिताश्व-दुर्ग (गढ़) का अधिपति था। रोहितासगढ़ में उसने जो शिला-लेख खुदवाया था वही इसका प्रमाण है। रोहितास ही क्यों, उसके बहुत दूर उत्तर ओर भी प्रतापधवल का प्रताप फैला हुआ था। भारत के विहारीसम्राट् शेरशाह की राजधानी सहस्राँव के निकट ताराचण्डीवाला प्रतापधवल देव का शिला-लेख इस बात को प्रमाणित करता है।

प्रतापधवल देव के तीन शिला-लेखों का उल्लेख ऊपर हुआ है। उनमें तुतला नामक स्थानवाला शिला-लेख सबसे प्राचीन है। तुतला का नाम पहले तुत्राही था। यह स्थान डिहरी-रोहतास रेलवे के तिलौथू स्टेशन से पाँच मील पश्चिम में है। यहाँ तुतला नामक एक देवी की मूर्त्ति और इसी नाम का जल-प्रपात है। जल-प्रपात जहाँ होता है वहाँ एक गहरा सा कुण्ड है। कुण्ड से जल हमेशा बहा करता है। बरसात के अतिरिक्त कुण्ड की जलधारा कुछ ही दूर बह कर भूगर्भ में विलीन हो जाती है। यहाँ जो लेख है वह जल-प्रपात से दक्षिण में तुतला भगवती की हस्तपरिमित मूर्त्ति के आस-पास, पर्वतगात्र में, खुदा हुआ है।

यह लेख ११५८ ईसवी का है। इसके पढ़ने से ज्ञात होता है कि स्थानीय राजा नायक प्रतापधवल ने तीर्थयात्रा में अपने परिवार-समेत तुत्राही का दर्शन किया। उसके साथ पाँच दासियाँ, कोषाध्यक्ष, राजपण्डित और द्वारपाल था। इस शिला-लेख में भगवती का नाम जगद्धात्री या महिषमर्दिनी लिखा है। प्रतापधवल की इस तीर्थ-यात्रा से यह भी अनुमान हो सकता है कि बारहवीं शताब्दी के कुछ वर्ष बीतने के बाद ही इसका जन्म हुआ था। क्योंकि, इस साज-बाज के साथ तीर्थ-यात्रा आधी अवस्था बीतने के पूर्व अनुमित नहीं; और वह भी अपने राज्य में और अपने निवासस्थान से दश-बारह कोस के ही अन्तर पर। जो हो, यह निश्चय ही है कि बारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में प्रतापधवल का जन्म हुआ था। इस प्रकार अब प्रतापधवल को हुए आठ सौ वर्ष बीत गये।

प्रतापधवल का दूसरा शिला-लेख रोहतासगढ़ पर है। यह ११६९ ईसवी का है। इस लेख से पता लगता है कि जापिला के नायक प्रतापधवल ने रोहतास पर्वत पर एक सड़क बनवाई थी। ऐसे ही अन्यान्य कीर्तिकर कार्य करने का भी उससे पता मिलता है। ये बातें रोहितास के दुर्गम दुर्ग पर उसका अधिकार होने के प्रबल प्रमाण हैं। प्रताप

---

*Epigaraphia Indica, Vol. IV, P. 311, Note 10

कलिङ्गाधिप भी खारबेल-वंश के ही थे। इस वंश के एक राजा ने हाथीगुफा में एक शिला-लेख खुदवाया था। यह अब तक विद्यमान है। यह लेख ईसा के भी पूर्व का है। इसका पाठोद्धार किया गया है और इतिहास भी लिखा गया है।

† श्रीराखालदास वन्द्योपाध्याय।

नामक इसके अन्य उत्तराधिकारी का भी, १२२३ ईसवी का खुदवाया हुआ, एक लेख है। यह लेख लाल दरवाज़े के पास है। इन लेखों के अतिरिक्त और कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं जिससे इस दुर्ग पर हिन्दूकाल के अधिकार की सूचना मिले।

प्रतापधवल का तीसरा शिला-लेख ताराचण्डी नामक स्थान में है। यह स्थान आरा ज़िले के सहस्रांव नगर के निकट है। इस शिला-लेख से विदित होता है कि कुछ ब्राह्मणों ने कान्यकुब्जराज विजयचन्द्र के देऊ नामक एक दास को घूस देकर अपनी ओर कर लिया और राजा से कलहण्डी और बड़पिला नामक दो गाँव प्राप्त किये। इस लिपि के द्वारा प्रतापधवल देव जन-साधारण को सूचित करता है कि इन दोनों गाँवों का राजस्व, पहले ही के समान, वसूल किया जायगा।

लेख की इस बात से यह सम्भावना की जा सकती है कि प्रतापधवल सर्वथा स्वाधीन नहीं था। यदि यह बात न होती तो विजयचन्द्र, दूसरे के अधीन रहनेवाले चाहे जिस गाँव को योंही न दे सकता -- पर यह सम्भावना-मात्र है। क्योंकि दुबारा राजस्व ग्रहण करने की बात से स्वभावतः परस्पर-विरोधिनी कई ऐसी बातें मन में उठती हैं कि वह सम्भावना ठहर नहीं सकती।

हाय! यदि हमारे यहाँ के इतिहास लिखे गये होते या इस समय वर्त्तमान होते तो कितने ही राजे-महाराजों की कीर्तिकथा हमें विदित होती। पर वे राजे केवल विहार ही के नहीं, बल्कि भारत भर के, आज विस्मृति के सागर में डूब गये हैं। यदि ये शिलालेख न होते तो आज प्रतापधवल के नाम को भी कौन जानता? अब तो ऐसे ही ऐसे पत्थर और धातु हमारे इतिहास के उपादान रह गये हैं। इन लेखों का वर्णन आदि यद्यपि कई प्रत्न-तत्त्व-सम्बन्धिनी पत्रिकाओं* में प्रकाशित हो चुका है, पर लेखक ने अपने परिभ्रमण में इन स्थानों और लेखों को प्रत्यक्ष देख कर ही यह क्षुद्र लेख लिखा है।

रामदहिन मिश्र (काव्यतीर्थ)

हे चन्द्र!

अहो चन्द्र! भो चन्द्र! हे चन्द्र! आओ,
सुधा शीघ्र ही प्रेमियों को पिलाओ।
खड़ी मार्ग दो दो यहाँ देखती हैं,
चकोरी तथा कैरवी, देख जाओ।
बड़ी चाह है दर्शनों की तुम्हारे,
मिलो और सानन्द खेलो-खिलाओ॥

मैथिलीशरण गुप्त

पृथ्वी की दैनिक गति और समय-सम्बन्धी चमत्कार।

ह प्रायः सभी लोग जानते हैं कि पृथ्वी गोल है। वह अपने चारों ओर चौबीस घण्टे में एक बार घूम जाती है। उसे सूर्य से प्रकाश मिलता है। इस कारण जो भाग सूर्य के सामने रहता है वहाँ दिन होता है और जो सूर्य के सामने नहीं रहता वहाँ रात होती है। यह भी बहुत लोग जानते हैं कि पृथ्वी भर में सब कहीं एक ही सा समय नहीं हो सकता, क्योंकि पृथ्वी की गति के अनुसार उसके भिन्न भिन्न भाग भिन्न भिन्न समय पर सूर्य के सामने

---

* (क) Epigraphia Indica, Vol. IV, P. 311.
(ख) Epigraphia Indica, Vol. V, App. P. 22, No. 152.
(ग) Epigraphia Indica, Vol. VI, P. 34.
(घ) Journal of the American Oriental Society, Vol. VI, P. 547.

आया करते हैं। पर यह बात थोड़े ही लोग जानते होंगे कि सर्व-मान्य समय की आवश्यकता क्यों है। यह तो अधिकांश मनुष्यों को ज्ञात ही न होगा कि पृथ्वी पर एक ही दिन अड़तालीस घण्टे से अधिक काल का माना जाता है और समीपवर्ती स्थानों में भी दो दो दिनों का भेद पड़ जाता है। यहाँ समय-सम्बन्धी ऐसे ही चमत्कारों का विवेचन किया जाता है।

पृथ्वी एक गोले के समान है। उत्तर और दक्षिण ध्रुवों के बीचोंबीच विषुवद्वृत्त-रेखा है। प्रत्येक वृत्त के ३६० अंश होते हैं। पृथ्वी को अपने चारों ओर घूमने के लिए चौबीस घण्टे लगते हैं, अर्थात् एक अंश घूमने के लिए उसे चार मिनट लगते हैं। मान लो कि 'ख' स्थान पर मध्याह्न का समय है—वहाँ दिन के ठीक बारह बजे हैं। मान लो कि 'ग' स्थान 'ख' के एक अंश पूर्व में है और 'क' स्थान 'ख' के एक अंश पश्चिम में। पृथ्वी पश्चिम से पूर्व

पश्चिम क ख ग पूर्व

की ओर घूमती है। इस कारण पूर्व के स्थान सूर्य्य के सामने पहले आते हैं, पश्चिम के स्थान उसके बाद। पहले 'ग' स्थान पर मध्याह्न होगा, फिर 'ख' पर और तब 'क' पर। इनमें एक एक अंश का अन्तर है। इसलिए 'ग' पर मध्याह्न होने के चार मिनट बाद 'ख' पर मध्याह्न होगा। अर्थात् जिस समय 'ख' पर मध्याह्न होगा उस समय 'ग' पर बारह बज कर चार मिनट हो जायँगे। 'क' पर मध्याह्न होने के लिए चार मिनट हैं। इसलिए यहाँ 'ग' के मध्याह्न के समय बारह बजने को चार मिनट रहेंगे। इस उदाहरण से स्पष्ट है कि एक ही अवसर पर भिन्न भिन्न स्थानों पर भिन्न भिन्न समय हुआ करते हैं। स्मरण रहे कि एक ही देशान्तर-रेखा पर* जितने स्थान हैं वे सूर्य के सामने एक ही बार आते हैं। इस कारण एक देशान्तर-रेखा पर मध्याह्न एक ही समय होता है।

समय सर्वत्र मध्याह्न से गिना जाता है। क्योंकि प्रातःकाल अथवा सायङ्काल का समय एक ही स्थान में भी, ऋतु-परिवर्तन के अनुसार, बदलता रहता है। केवल मध्याह्न का समय सभी जगह प्रायः निश्चित रहता है।

* उत्तर ध्रुव से दक्षिण ध्रुव तक जो अर्धवृत्त बनता है उसे देशान्तर-रेखा कहते हैं।

हम अब जान गये कि भिन्न भिन्न देशान्तर-रेखाओं पर समय का भेद होता है। यह तो ऊपर बतला ही दिया गया है कि एक अंश में चार मिनट का भेद होता है। पूर्व के स्थानों का समय आगे रहेगा और पश्चिम के स्थानों का समय पीछे। बम्बई और कलकत्ते में १५¾ अंश का अन्तर है। इस कारण इन दो स्थानों के समय में ६३ मिनट का अन्तर है। लन्दन और कलकत्ते में कोई ८८¾ अंश का अन्तर है। इस कारण इन दो स्थानों के समयों में लगभग ५ घण्टे ५४ मिनट का अन्तर है। अर्थात् कलकत्ते का समय बम्बई और लन्दन से क्रमशः ६३ मिनट और ५ घण्टे ५४ मिनट आगे रहेगा।

किसी स्थान पर अर्थात् देशान्तर-रेखा पर मध्याह्न होने से हम जिस समय को मानते हैं उसे सौर-समय अथवा स्थानीय* समय कहते हैं। परन्तु यदि प्रत्येक स्थान में उसका स्थानीय समय माना जाय तो बड़ा गड़बड़ हो। जबलपुर में तीन रेलगाड़ियाँ हैं। एक ई० आई० आर० इलाहाबाद से आती है, दूसरी बी० एन० आर० गोंदिया से आती है और तीसरी जी० आई० पी० आर० इटारसी से आती है। अगर प्रत्येक कम्पनी स्थानीय समय के अनुसार अपना कार्य चलावे तो जबलपुर स्टेशन पर तीन तरह की घड़ियाँ रखनी पड़ें। उनका अन्तर अच्छी तरह ध्यान में रख कर कार्य करना होगा। थोड़ी भी भूल से रेलगाड़ियों के लड़ जाने की सम्भावना बनी रहेगी और इससे सभी को जान-माल का भय बना रहेगा। इसके सिवा सभी लोगों को तीनों घड़ियों के समय पर ख़याल रखना होगा। यदि ऐसा होता तो न जाने कितने अशिक्षित और शिक्षित जनों को भी गाड़ी न मिलती। जहाँ कहीं समय का उल्लेख होता, वहाँ उस समय को स्पष्ट लिखना पड़ता—गोंदिया का समय, इलाहाबाद का समय, इटारसी का समय इत्यादि। ऐसी दशा में कितने ही झगड़े उपस्थित हो सकते हैं। रेलवे-नियमों में समय के स्थान का स्पष्ट उल्लेख करना भूले, कि मुक़द्दमे का कारण उपस्थित हुआ। अदालत को

* ऊपर यह स्पष्ट ही हो चुका है कि प्रत्येक देशान्तर-रेखा पर एक ही समय होगा और वह दूसरी देशान्तर-रेखाओं के समयों से भिन्न होगा। इसी कारण इसे 'स्थानीय' समय भी कहते हैं।

भी ठीक ठीक न्याय करना बड़ा कठिन हो जाता। इन सब झगड़ों को रोकने और असुविधाओं को दूर करने के लिए एक देश में अथवा एक देश के अधिकांश भाग में एक ही समय का पालन किया जाता है। वही सर्वमान्य समय होता है। भिन्न भिन्न स्थानों के समय का पालन करना मुश्किल ही नहीं, असम्भव है। देश के सर्वमान्य समय में और किसी नगर के स्थानीय समय में बड़ा भारी अन्तर हुआ तो वहीं केवल स्थानीय समय का पालन किया जाता है। ब्रिटिश साम्राज्य में देशान्तर-रेखायें ग्रीनविच से गिनी जाती हैं। ग्रीनविच और हिन्दुस्तान के सर्वमान्य समय में ५॥ घण्टे का अन्तर है। कलकत्ते का समय सर्वमान्य समय से २४ मिनट आगे है। कलकत्ता बड़ा भारी शहर है। और इन दो समयों में भारी अन्तर है। इसलिए वहाँ शहर के भीतर स्थानीय समय माना जाता है। बम्बई का समय सर्वमान्य समय से ३६ मिनट पीछे है। वहाँ भी स्थानीय समय प्रचलित है। अन्य सब शहरों और स्टेशनों में सर्वमान्य समय ही का पालन किया जाता है।

हिन्दुस्तान जैसे देश में एक सर्वमान्य समय से काम चल जाता है। पर अमरीका के संयुक्त-राज्य में यह सम्भव नहीं। उस देश की पूर्व से पश्चिम तक लम्बाई तीन हज़ार मील से ऊपर है। अर्थात् दोनों छोरों में क़रीब ४५ अंश का अन्तर है। इस कारण दोनों छोरों के समयों में क़रीब ३ घण्टे का अन्तर पड़ता है। जिस समय न्यूयार्क* में बारह बजेंगे उस समय सैनफ्रैन्सिस्को* में नौ का ही समय रहेगा। अगर उस देश में न्यूयार्क का समय सर्वत्र प्रचलित कर दिया जाय तो सैनफ्रैन्सिस्को में लोगों को नौ ही बजे बारह मानना होगा। यह लोगों की दृष्टि में अनुचित होगा। नौ ही बजे बारह मान लेना !!! लोग तो इसे सरकार की ज़बरदस्ती कहेंगे। अगर किसी बीच की रेखा का समय लिया जाय तो भी उन दो समयों में डेढ़ घण्टे का अन्तर होगा। डेढ़ घण्टे का यह अन्तर भी लोगों को अखरेगा। इसलिए अमरीका के संयुक्त-राज्य में एक सर्वमान्य समय के स्थान में चार सर्वमान्य समय माने जाते हैं। (१) पूर्वीय सर्वमान्य समय, (२) मध्य सर्वमान्य समय, (३) पर्वतीय सर्वमान्य समय और (४) पैसिफिक सर्वमान्य समय। इनमें एक एक घण्टे का अन्तर होता है। अगर पूर्वीय सर्वमान्य समय के अनुसार बारह बजे हैं तो दूसरे समय के अनुसार ग्यारह, तीसरे के अनुसार दस, चौथे के अनुसार नौ। एक एक घण्टे का भी अन्तर कुछ कम नहीं होता। इसलिए मुख्य मुख्य नगरों में, बम्बई अथवा कलकत्ते की तरह, स्थानीय समय भी माना जाता है। सर्वमान्य समय का निश्चय करने पर भी लोगों की सभी असुविधायें दूर नहीं होतीं। इन चार समयों के लिए सारे देश के चार भाग किये गये हैं। इनमें से अन्तिम तीन भागों की सीमायें दुर्दैव से मेक्सिको के पास टेक्सस नामक राज्य के ऐलपैसो नगर में मिलती हैं। इस कारण वहाँ इन तीनों समयों का विचार करना पड़ता है। फिर मैक्सिको के समय-विभाग की सीमा वहीं मिलती है। इस तरह वहाँ चार चार समय होते हैं। वहाँ के लोगों के लिए यह क्या ही कठिन और विचित्र समस्या है! वही जानें, वे कैसे इसे हल करते होंगे! अब पाठक विचार कर सकते हैं कि समय का प्रश्न कैसा विकट है।

एक एक अंश के लिए चार चार मिनट का अन्तर करते जायँ तो किसी स्थान से १८० अंश पर १२ घण्टे का अन्तर होगा। अर्थात् जब किसी स्थान पर मध्याह्न होगा तब उसी समय उससे १८० अंश के अन्तरवाले स्थान पर अर्ध रात्रि रहेगी। परन्तु यह बात इतने में ही नहीं समाप्त होती। मान लीजिए कि आज तारीख़ ५ सितम्बर को जबलपुर में बारह बजे हैं। अब हमें जानना है कि वहाँ से १८० अंश पूर्व* या १८० अंश पश्चिम* वाली देशान्तर-रेखा के स्थानों में क्या समय होगा और कौन सा दिन रहेगा। पूर्व की ओर गणना करने से चार चार मिनट के नियम के अनुसार ४ × १८० मिनट अर्थात् १२ घण्टे, बारह बजने में जोड़ने होंगे। इस तरह पाँचवीं तारीख़ की समाप्ति का और छठी तारीख़ के प्रारम्भ का समय निकलेगा। पश्चिम की ओर से गणना करने पर चौथी तारीख़ की समाप्ति और पाँचवीं के प्रारम्भ का समय निकलेगा। इस प्रकार दोनों रीतियों से समय तो मध्यरात्रि का निकलता

* न्यूयार्क पूर्वीय किनारे पर है और सैनफ्रैन्सिस्को पश्चिमी किनारे पर।

*दोनों तरफ़ से गिनने में वही रेखा होगी। क्योंकि वृत्त में केवल ३६० अंश माने जाते हैं।

हैं, पर तारीख़ का प्रश्न हल नहीं होता । किसी स्थान से प्रारम्भ करके पश्चिम की ओर काल-गणना की जाती है । पूर्व से पश्चिम की ओर गणना करने का कारण यह है कि पृथ्वी पश्चिम से पूर्व की ओर घूमती है । इस कारण प्रथम पूर्व के स्थान और तदनन्तर पश्चिम के स्थान सूर्य के सामने आते हैं । अब आप 'क' स्थान से काल की गणना आरम्भ कीजिए और पश्चिम की ओर से 'क' के बिलकुल समीप 'ख' स्थान पर आइए । प्रति अंश में चार चार मिनट
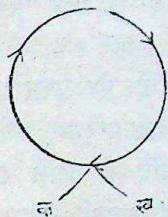
शरफल से समय गिनने की दिशा मालूम कीजिए ।

घटाते हुए जब आप 'ख' पर पहुँचेंगे तब आप ३६० अंश के लिए २४ घण्टे घटा चुकेंगे । अर्थात् 'क' और 'ख' में चौबीस घण्टे का अन्तर होगा ! कैसी विलक्षण बात है ! दो बिलकुल समीपवर्ती स्थानों में चौबीस घण्टे अन्तर ! यदि 'क' में पांच सितम्बर के बारह बजने का समय है तो 'ख' में चौथी तारीख़ के बारह बजने का समय होगा ।

पांच सितम्बर की तारीख़ सर्वत्र एक ही समय में नहीं हो सकती । यह तो ऊपर के विवेचन से पाठक जान ही गये होंगे । फिर, पहले पहल पांच सितम्बर का प्रारम्भ किस रेखा पर हुआ ? यदि पांचवीं तारीख़ का प्रारम्भ पहले पहल कानपुर में हुआ तो इलाहाबाद और कानपुर में लगभग चौबीस घण्टे का अर्थात् एक दिन का अन्तर रहेगा । क्योंकि इन दो स्थानों में डेढ़ अंश से अधिक अन्तर नहीं जान पड़ता । जब कानपुर में पांचवीं तारीख़ समाप्त होगी तब उस समय इलाहाबाद में चार तारीख़ की समाप्ति का काल समीप रहेगा । यदि पांचवीं तारीख़ को कानपुर में किसी को कुछ काम रहा और वह इलाहाबाद से चार तारीख़ की रात को निकला तो यहां आकर वह देखेगा कि पांचवीं तारीख़ समाप्त हो गई और छठी लग चुकी है । अजीब अन्धेर ! सौ मील के भीतर ही तारीख़ बदल जाय ! लोग इस गड़बड़ से ऊब जायँगे । इसलिए सबसे पहले तारीख़ का प्रारम्भ किसी देश की अन्तर्गत देशान्तर-रेखा पर नहीं किया जाता । उसका प्रारम्भ ग्रीनविच से १८०° अंश की रेखा पर करते हैं । इसका कारण यह है कि यह रेखा समुद्र के भीतर ही रहती है । ज़मीन पर वह बहुत थोड़ी आती है । अगले नक़्शे को देखने से स्पष्ट हो जायगा कि १८० देशान्तर-रेखा केवल सैबेरिया के थोड़े से हिस्से से

देशान्तर-रेखायें ग्रीनविच से गिनी गई हैं ।

जाती है । इस असुविधा को दूर करने के लिए रेखा को सीधी न ले कर यथेष्ट परिवर्तन कर डाला गया है । तिथियों का

प्रारम्भ इस रेखा के पश्चिम में होता है। सैबेरिया के पूर्वीय तट पर डेशनेफ़ अन्तरीप है। नक़शे में उसको सूचित करने के लिए बिन्दु है। तारीख़ की गणना इस रेखा से पश्चिम की ओर की जाती है। इसलिए सैबेरिया और अलास्का के बिलकुल समीपवर्ती स्थानों में एक तारीख़ का अन्तर होगा। अगर डेशनेफ़ में पाँचवीं तारीख़ समाप्त होगी तो अलास्का में पाँचवीं तारीख़ का प्रारम्भ होगा। पृथ्वी पर पाँचवीं तारीख़ के चौबीस घण्टे ख़तम हो जाने के बाद अलास्का के पश्चिमीय किनारे पर पाँचवीं तारीख़ का प्रारम्भ होगा। वहाँ भी वह चौबीस घण्टे तक रहेगा। इस प्रकार प्रत्येक तारीख़ की अवधि पृथ्वी पर ४८ घण्टे हो जाती है। परन्तु यह चमत्कार इतने में ही नहीं समाप्त होता। नक़शे में पाठक देखेंगे कि सैबेरिया के नीचे ऐट्यू द्वीप है। वह इस राष्ट्रीय तिथि-रेखा के पूर्व में है; परन्तु अलास्का के पश्चिमी किनारे से जो देशान्तर-रेखा जाती है उसके वहाँ कोई १८ अंश पश्चिम में है। अलास्का में पाँचवीं तारीख़ का प्रारम्भ होने पर भी ऐट्यू में कुछ समय तक चौथी ही तारीख़ बनी रहेगी। क्योंकि दोनों स्थानों के समयों में १८ × ४ मिनट अर्थात् एक घण्टा बारह मिनट का अन्तर है। अलास्का के पश्चिमी किनारे पर पाँचवीं तारीख़ का प्रारम्भ होने के एक घण्टा बारह मिनट बाद ऐट्यू में पाँचवीं तारीख़ होगी। अर्थात् पृथ्वी पर पचीस घण्टे बारह मिनट तक रहने के बाद ऐट्यू द्वीप में पाँचवीं तारीख़ प्रारम्भ होगी। सभी स्थानों की तरह वहाँ भी वह चौबीस घण्टे गिनी जायगी। इस प्रकार प्रत्येक दिन, पृथ्वी पर, सब स्थान मिला कर, ४९ घण्टे १२ मिनट तक रहता है। इतना समय बीतने पर ही एक तारीख़ पृथिवी पर पूर्णतया समाप्त होती है। अनेकों को यह जानकर आश्चर्य्य होगा। पर बात यह है कि हम दूसरों की तारीख़ों पर विचार ही नहीं करते।

इसी के अन्तर्हित एक और चमत्कार है। जब अलास्का में पाँचवीं तारीख़ आरम्भ हुई, तब तिथिरेखा के पश्चिम में छठी तारीख़ हुई, और अलास्का और ऐट्यू द्वीप के समयों में अन्तर होने के कारण ऐट्यू में चौथी तारीख़ की समाप्ति न हुई। सैबेरिया में छठी, अलास्का में पाँचवीं और ऐट्यू में चौथी! इस प्रकार पास ही पास तीन तारीख़ें! क्या ही विचित्र बात है! तीन तारीख़ों की स्थिति बहुत काल तक नहीं रहती, क्योंकि अलास्का और ऐट्यू के समयों में केवल एक घण्टे बारह मिनट का अन्तर है। पाठक जानते ही हैं कि लन्दन यहाँ से १८० अंश दूर है। अर्थात् इधर जब तिथियों के बदलने का समय आता है तब लन्दन में बारह बजने का समय रहता है। लन्दन के ११½ और १२½ बजे दिन को तीन तारीख़ों की यह स्थिति प्रति चौबीस घण्टे हुआ करती है।

तिथिरेखा की आवश्यकता का कारण हम ऊपर दिखला चुके हैं। एक कारण और भी है। वह भी नीचे दिया जाता है।

मान लीजिए कि कोई दो पुरुष 'ख' स्थान से छः बजे सबेरे रवाना हुए। एक पश्चिम की ओर गया और दूसरा पूर्व की ओर। यदि वे अपने ही स्थानों में बने रहते तो दूसरे दिन चौबीस घण्टे बाद फिर छः बजते। पर वे बराबर पूर्व और पश्चिम की ओर जा रहे हैं। इस कारण उनके दूसरे दिन के छः, चौबीस घण्टे बाद न आवेंगे। पृथ्वी पश्चिम से पूर्व की ओर जाती है। जो पूर्व की ओर जा रहा है, वह पृथ्वी की गति के साथ ही जा रहा है। प्रति अंश पर यदि चार मिनट का

ख
.......१५ ....·.......१५°....
ब भ

अन्तर है, तो एक अंश चल जाने पर घड़ी को चार मिनट आगे करना होगा। क्योंकि पूर्वीय स्थानों का समय आगे रहता है। इस प्रकार उसे अपनी यात्रा में हर अंश के चल जाने पर चार मिनट घड़ी को आगे करना पड़ेगा। यदि वह ३६० अंश चल कर अपने स्थान को लौट आया तो ३६० × ४ यानी चौबीस घण्टे घड़ी को आगे करना होगा। इस प्रकार उसने एक दिन बचा लिया। पूर्व की ओर जाने से उसका दिनमान सदा छोटा ही होता जायगा। दूसरे दिन का वही समय पाने के लिए उसके नये स्थान के अनुसार उसे चौबीस घण्टे से कुछ कम लगेंगे। उसका प्रत्येक दिन चौबीस घण्टे का न होकर कुछ कम काल का हुआ करेगा। इस प्रकार वह अपनी यात्रा में एक दिन पूरा बचा लेगा। यदि वास्तव में उसे ५० दिन लगे तो वह ५१ दिन गिनेगा। यदि वह पाँच तारीख़ को प्रातःकाल निकले तो जिस दिन वह वापस आवेगा

उस दिन (पचास दिन बाद) 'ख' स्थानवाले लोगों की पचीस आक्टोबर की तारीख़ रहेगी। पर वह पुरुष उसे २६ आक्टोबर कहेगा।

जो पश्चिम को जा रहा है, वह पृथ्वी की गति के विरुद्ध जा रहा है। पश्चिम का समय पीछे होता है। इस कारण एक अंश चल जाने के बाद उसे अपनी घड़ी चार मिनट पीछे करनी होगी। उसका दिन चौबीस घण्टे का न होकर कुछ अधिक का होगा। दूसरे दिन के छः बजने तक उसे २४ घण्टे से कुछ अधिक समय लगेगा। यात्रा भर में ३६० × ४ मिनट अर्थात् चौबीस घण्टे वह घड़ी को पीछे करेगा। यदि यात्रा में उसे वास्तव में पचास दिन लगे तो वह ४९ ही गिनेगा। यदि वह २५ आक्टोबर को वापस आवे तो वह उसे २४ आक्टोबर ही गिनेगा।

इस प्रकार पूर्व की ओर जाने से एक दिन बढ़ जाता है और पश्चिम की ओर जाने से एक दिन घट जाता है। तिथियों का मेल रखने के लिए पूर्व की ओर जानेवाले लोग किसी दिन को दो बार मान लेते हैं। इस प्रकार वे तारीख़ बराबर कर लेते हैं। पश्चिम की ओर जानेवाले लोग किसी एक दिन को कम कर देते हैं और इस प्रकार ४९ की जगह ५० दिन गिन कर तारीख़ मिला लेते हैं। किसी दिन को दो बार गिनने अथवा कम करने का कार्य भी उपर्युक्त राष्ट्रीय रेखा से ही नियमित होता है। पूर्वगामी लोग इस रेखा को पार करने पर शीघ्र ही, सुभीते के अनुसार, कोई एक दिन दो बार मान लेते हैं। उसी प्रकार पश्चिमगामी किसी एक दिन को कम कर देते हैं।

योरोपीय लोग बहुधा यात्रा किया करते हैं। वे ईसाई धर्म के अनुयायी होते हैं और ईसाइयों के लिए रविवार प्रार्थना का दिन है। इस कारण यदि पश्चिम से पूर्व की ओर जाते समय रविवार को इस रेखा के पास पहुँचें तो वे दो रविवार न मानेंगे। रविवार एक ही मान कर शायद दो सोमवार मान लेंगे। यदि वे पूर्व से पश्चिम की ओर गये और शनिवार को इस रेखा के पास पहुँचे तो वे रविवार को न हटा कर सोमवार अथवा मङ्गलवार को छोड़ देंगे। रविवार को मान कर ही तारीख़ बदलेंगे। योरप के देशों से यह रेखा कोई १५० से लगा कर १८० अंश के अन्तर पर है। यात्रा में यह क़रीब क़रीब बीच में पड़ती है। इस कारण उन्हें यह रेखा विशेष सुभीते की है। सारांश यह कि तिथि का प्रारम्भ करने और यात्रा के कारण एक दिन के अन्तर को दूर करने के लिए किसी देशान्तर-रेखा की आवश्यकता है। तब यह रेखा काम देती है।

यही पृथ्वी पर समय-सम्बन्धी चमत्कार है।

गोपाल दामोदर तामसकर, एम० ए०

मेघदूत में कालिदास का आत्मचरित।

काव्य ही कवि का जीवन है। उसी में उसकी आत्मा निवास करती है। यदि हम किसी कवि का वास्तविक रूप देखना चाहते हैं तो हमें उसके काव्यों का अवलोकन करना चाहिए। उनसे हम कवि के जीवन के विषय में कुछ बातें अवश्य जान सकते हैं। कवि का किस पर अनुराग था, किससे घृणा थी, कब कब उसे सुख-दुःख का अनुभव करना पड़ा, ये सब बातें उसके ग्रन्थों का अध्ययन ध्यानपूर्वक करने से प्रकट होजाती हैं। कालिदास के विषय में बड़ी खोज की गई, पर अभी तक निश्चित रूप से कुछ भी ज्ञात नहीं हुआ। उनके स्थिति-काल के विषय में भी अभी तक विद्वानों में बड़ा मतभेद है। कोई उन्हें ईसा के पहले विक्रमादित्य का समकालीन मानते हैं, तो कोई उन्हें राजा भोज का सभाकवि कहते हैं। उनकी जन्मभूमि का भी पता नहीं। कोई मालवा कहता है, तो कोई काश्मीर बतलाता है। अभी हाल में (प्रवासी) के एक लेखक ने उन्हें बङ्गाली प्रमाणित करने की चेष्टा की है। अस्तु, नीचे, मेघदूत के आधार पर उनके जीवन की कुछ बातें लिखी जाती हैं।

कालिदास ने और भी काव्य और नाटक लिखे हैं। पर उनका आत्मचरित जानने के लिए

मेघदूत ही का आकलन करना चाहिए। महाकाव्य और नाटक में कवि का कल्पनाक्षेत्र सङ्कुचित रहता है। वह अपने हृदय के उद्गारों को भली भाँति व्यक्त नहीं कर सकता। इसी लिए रघुवंश और अभिज्ञान-शाकुन्तल हमारे काम के नहीं। मेघदूत कवि की उपज है। उसमें उसकी कल्पना निर्बाध विचरण करती है। इसलिए उसमें उसके मनोविकार साफ़ साफ़ लक्षित होते हैं।

कालिदास के स्थितिकाल का निर्णय करने में कुछ विद्वानों ने उनके ग्रन्थों से गुप्तवंश के नरेशों के नाम उद्धृत कर के यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि कालिदास गुप्तवंशीय राजाओं के शासन-काल में विद्यमान थे। मेघदूत में भी एक श्लोक ऐसा ही है—

तत्र स्कन्दं नियतवसतिं पुष्पमेघीकृतात्मा
पुष्पासारैः स्नपयतु भवान् व्योमगङ्गाजलार्द्रैः।
रक्षाहेतोर्नवशशिभृता वासवीनां चमूना—
मत्यादित्यं हुतवहमुखे सम्भृतं तद्धि तेजः॥

अनुवाद

नित्त निवास कुमार करें वहाँ तू उनको अन्हवाइयो जाइ के।
पुष्पमई बदरा बनि के नभगङ्ग मिले फुलवा बरसाइ के।
जन्म दियो हर पावक में जिनको सुरराज-चमू हित लाइ के।
मन्द करें रवि को परतापहु आपने मात पिता गुन पाइ के॥

(राजा लक्ष्मणसिंह)

कहा जाता है कि इस श्लोक में कवि ने श्लेष से स्कन्दगुप्त की प्रशंसा की है। ऐतिहासिक तथ्य यह है कि कुमारगुप्त एक बार हूणों के कारण विपत्ति में पड़ गये थे। तब युवराज स्कन्दगुप्त ने ही उनके शत्रुओं का पराभव कर के वंश-गौरव का उद्धार किया था। उस समय वे मालवे में विद्रोह-दमन करने के लिए गये थे। कालिदास ने उक्त श्लोक में इसी का उल्लेख किया है।

कालिदास ने किस उद्देश से मेघदूत की रचना की है? हमें तो ऐसा जान पड़ता है जब कालिदास विपन्नावस्था में थे तब उन्होंने लिखा है। निम्नलिखित अवतरण देखिए—

तेनार्थित्वं त्वयि विधिवशाद् दूरबन्धुर्गतोऽहं
याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा।

अर्थात् दुर्भाग्य से बन्धु-बान्धवों को छो कर इतनी दूर तुझसे कुछ याचना करने के लि आया हूँ।

फिर आगे चल कर वे कहते हैं—

न क्षुद्रोऽपि प्रथमसुकृतापेक्षया संश्रयाय
प्राप्ते मित्रे भवति विमुखः किम्पुनर्यस्तथोच्चैः।

अर्थात् जिसने पहले कुछ उपकार किया है उसके आने पर नीच भी उसका आदर करते हैं, फिर ऊँचों का तो कहना ही क्या?

आसारेण त्वमपि शमयेस्तस्य नैदाघमग्निम्।
सद्भावार्द्रः फलति न चिरेणोपकारो महत्सु।

अर्थात् तू वारिधारा से उसकी जलन को मिटा देना, क्योंकि सज्जन के साथ जो भलाई की जा उसका फल तुरन्त ही मिलता है।

मेघदूत से इसी भाव के और भी अवतरण दि जा सकते हैं। क्या इससे यह प्रतीत नहीं होता कि कालिदास कभी विपत्ति में पड़ कर अपने परिचि किसी राजा के आश्रय में गये हों और वहीं रह कर उसकी तुष्टि के लिए इसकी रचना की हो?

ऊपर हम एक श्लोक उद्धृत कर आये हैं जिसमें स्कन्दगुप्त का इशारा किया गया है। स्कन्दगुप्त भी विक्रमादित्य के नाम से प्रसिद्ध था। यदि उपर्युक्त अनुमान ठीक हो तो हम कह सकते हैं कि कदाचित् स्कन्दगुप्त के ही लिए कालिदास ने मेघदूत की रचना की हो। सम्भव है, निम्नलिखित चरण में सु के द्वारा भी उन्हीं पर लक्ष्य किया गया हो—

दृष्टे सूर्ये पुनरपि भवान् वाहयेदध्वशेषं
मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्याः।

कालिदास के विषय में कई किंवदन्तियाँ प्रसिद्ध हैं। उनसे यह मालूम होता है कि कालिदास पहले बड़े मूर्ख थे; पीछे से देवी की आराधना करके उन्होंने अलौकिक कवित्वशक्ति प्राप्त की। मेघदूत से विदित होता है कि कालिदास बड़े भारी विद्वान् थे। भिन्न भिन्न शास्त्रों में तो उनकी गति थी ही, वे सङ्गीत और चित्रकला भी भली भाँति जानते थे। वे प्राकृतिक सौन्दर्य के बड़े प्रेमी थे। स्वर्णालङ्कारों की अपेक्षा वे स्त्रियों को पुष्पालङ्कारों से सज्जित करना अधिक पसन्द करते थे—

हस्ते लीलाकमलमलके बालकुन्दानुविद्धं
नीता लोध्रप्रसवरजसा पाण्डुतामाननश्रीः।
चूडापाशे नवकुरुवकं चारुकर्णे शिरीषं
सीमन्तेऽपि त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम्॥

अर्थात् यहाँ स्त्रियों के हाथों में खेलने के कमल हैं, अलकों में कुन्द की कलियाँ हैं, लोध्र की रज से मुख की कान्ति पीली देख पड़ती है, कानों पर सिरस के फूल रक्खे हैं, चोटियों में कुरवक गुँथे हैं और वर्षा ऋतु में फूलनेवाले कदम्ब के फूल माँगों में लगे हैं।

कालिदास का प्रकृति-निरीक्षण भी विलक्षण था। किन ऋतुओं में कौन कौन फूल खिलते हैं, कैसे कैसे पक्षी देख पड़ते हैं, कहाँ कहाँ घोंसले बनाते हैं, किस ऋतु में कौन पौधा कितना बढ़ जाता है, ये सभी बातें उन्होंने ठीक ठीक लिखी हैं। इससे प्रतीत होता है कि उनका बाल्यकाल गाँव में ही व्यतीत हुआ। उन्होंने ग्रामीण स्त्री-पुरुषों का बड़ा ही सरल चित्र खींचा है। इससे भी इस अनुमान की पुष्टि होती है। सम्भव है, उनकी जन्मभूमि मालवा अथवा उसके आस पास कहीं रही हो। अन्य प्रान्तों की अपेक्षा मालवे पर उनका प्रेम भी अधिक है।

कालिदास ने मेघदूत में कितने ही देशों, नगरों और पर्वतों का वर्णन किया है। इससे ज्ञात होता है कि उन्हें भारतवर्ष की भौगोलिक स्थिति का अच्छा ज्ञान था। उनका वर्णन इतना विशद है कि यही मालूम होता है कि उन्होंने अपनी आँखों से सब कुछ देख कर लिखा है। इसके लिए उन्हें देश भर घूमना पड़ा होगा। प्राचीन काल में विद्वानों की यह रीति थी कि विद्याभ्यास कर लेने पर वे कीर्त्ति-उपार्जन करने के लिए देश-पर्य्यटन किया करते थे। कुछ आश्चर्य नहीं जो कालिदास ने भी ऐसा ही किया हो। कालिदास ने अपने जीवन-काल में ही प्रतिष्ठा पा ली थी। उनको अपनी कवित्व-शक्ति का ज़रा भी अभिमान न था। वे विद्वानों की सम्मतियों का आदर करते थे। उनका तो यह कहना था कि "आपरितोषाद्विदुषां न साधु मन्ये प्रयोग-विज्ञानम्"। अपने जीवन के प्रारम्भ में उन्हें यह अवश्य शङ्का हुई थी कि लोग कदाचित् उनकी कृति को नवीन समझ कर उपेक्षा की दृष्टि से देखें। यह भाव उन्होंने अपने मालविकाग्निमित्र में व्यक्त किया है—

पुराणमित्येव न साधु सर्वं
न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्।
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद्भजन्ते
मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः॥

अर्थात् प्राचीनता से ही किसी का आदर नहीं होता, और न नवीनता से निन्दा। विद्वान् परीक्षा करके अच्छे को ग्रहण कर लेते हैं। तो भी मेघदूत के पाठ से ऐसा मालूम होता है कि कालिदास के कुछ प्रतिस्पर्धी भी थे। ऐसे लोगों की उन्होंने अच्छी ख़बर ली है—

ये संरम्भोत्पतनरभसाः स्वाङ्गभङ्गाय तस्मिन्
मुक्ताध्वानं सपदि शरभा लंघयेयुर्भवन्तम्।
तान्कुर्वीथास्तुमुलकरकावृष्टिपातावकीर्णान्
के वा न स्युः परिभवपदं निष्फलारम्भयत्नाः॥

अर्थात् तेरा गर्जन सुन कर शरभों को बड़ा कोप होगा। अपने बल का उन्हें बड़ा घमण्ड है। तुझे लाँघने के लिए ऊपर कूद कूद कर वे अपने

हाथ-पाँव तोड़ेंगे। तू ओलों की वर्षा कर के उन्हें भगा देना। निष्फल यत्न करने से जगत् में किसकी हँसी नहीं हुई? दिङ्नाग पर भी उन्होंने ऐसा ही वाक्-प्रहार किया है—

दिङ्नागानां पथि परिहरन्स्थूलहस्तावलेपान्।

कालिदास को अपने निन्दकों की ज़रा भी परवा न थी। उनको अपनी कवित्व-शक्ति पर पूरा विश्वास था। तभी तो उन्होंने लिखा है—

अन्तःसारं घन तुलयितुं नानिलः शक्ष्यति त्वाम्
रिक्तः सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय।

हे मेघ, तुझमें सार है। वायु तुझे न उड़ा सकेगा। निस्सार ही हीन होता है। पूर्णता से तो गौरव बढ़ता है।

कुछ लोगों की राय है कि कालिदास शैव थे। हम यह तो निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते कि वे शैव ही थे, पर मेघदूत से उनकी अगाध शिव-भक्ति अवश्य प्रकट हो जाती है। कालिदास के विषय में यह भी प्रसिद्ध है कि उनका चरित्र अच्छा न था। मेघदूत में तत्कालीन समाज का जैसा चित्र अङ्कित हुआ है उससे यह साफ़ मालूम होता है कि उस समय लोगों में विलासिता खूब फैली हुई थी। शराब और वेश्याओं के अतिरिक्त दुराचारिणी स्त्रियों का भी उस समय अभाव न था। पर मेघदूत में यक्ष और यक्षपत्नी का पवित्र प्रेम जिस तरह वर्णित हुआ है उससे यह विश्वास करने को जी नहीं चाहता कि कालिदास दुश्चरित्र थे—

सूर्यापाये न खलु कमलं पुष्यति स्वामभिख्याम्

यह किसी दुश्चरित्र कवि के हृदय से न निकलेगा।

कालिदास को आमोद-प्रमोद से रहना अधिक पसन्द था। वैसे तो सुख-दुख का चक्र सदा चलता ही रहता है—"नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण"—पर जान पड़ता है कि कालिदास का अधिकांश समय सुख में ही व्यतीत हुआ।

ये सब अनुमान की बातें हैं। सम्भव है, इनमें एक भी सच न हो। पर मेघदूत के पाठ से हमारे मन में ये भाव अवश्य उदित होते हैं। सच पूछा जाय तो कवि के जीवन में तो कुछ कवित्व रहता नहीं। एक साधारण गृहस्थ की तरह वह भी अपना काल-यापन करता है। अपने कौतूहल की निवृत्ति के लिए हमें उसकी छोटी छोटी बातें भी जाननी चाहिए। यह भी एक प्रकार से कवि के प्रति अपना पूज्य भाव प्रकट करना है।

पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी

हमारा पूर्व परिचय।

(१)

सत्यव्रत हो सदा सुपथ पर चलते थे हम;
कर यज्ञादि सुकृत्य फूलते-फलते थे हम।
जनता का उपकार अहर्निश करते थे हम;
सीख कपट-व्यवहार न पर-धन हरते थे हम॥

(२)

मनुज-मात्र को मित्र-दृष्टि से लखते थे हम;
त्याग असूया, दया-भाव उर रखते थे हम।
कर्मवीरता धार उच्च पद पाते थे हम;
त्याग सभी अस्थैर्य्य धैर्य्य दिखलाते थे हम॥

(३)

निगमागम नित प्रेमपूर्वक पढ़ते थे हम;
उन्नति ही के उच्च शिखर पर चढ़ते थे हम।
सच्चरित्रतायुक्त आर्य्य कहलाते थे हम;
पालन कर औचित्य सुकीर्त्ति कमाते थे हम॥

(४)

अनाचार के भाव न मन में लाते थे हम;
रख आचरण पवित्र ओज अधिकाते थे हम।
हित से हित का बीज विश्व में बोते थे हम;
शिक्षा के आदर्श प्रमाणित होते थे हम॥

(५)

जमा हुआ आतङ्क हमारा ही था जग में;
बाधक ही था कौन हमारे उन्नति-मग में।

स्वाभिमान में चूर हमीं रहनेवाले थे;
कब किसका अपमान भला सहनेवाले थे ?

(६)

वीर-व्रत को धार आन पर मरते थे हम;
बने सभी के मित्र कार्य्य शुभ करते थे हम।
अधिकारी थे हमीं राज्य-धन-धाम-कोष के;
भागी थे न कदापि कभी हम किसी दोष के॥

(७)

विद्या, बल, विज्ञान-कला में ख्यात हमीं थे;
बहुदर्शी, तत्त्वज्ञ, नीति-निष्णात हमीं थे।
अगणित आविष्कार हमीं ने यहाँ किये थे;
प्रश्न गूढ़ से गूढ़ कौन सुलझा न दिये थे॥

(८)

रच रच हमने ग्रन्थ पूर्ण साहित्य किया था;
पूर्णतया इस ओर हमीं ने ध्यान दिया था।
विविध विषय पर किया विवेचन हमने ही था;
पद पाया भारती-निकेतन हमने ही था॥

(९)

क्या विचार-गाम्भीर्य्य नाम ही का था हममें ?
खो हम ज्ञान-विकाश पड़े थे कब भ्रम-तम में ?
सब विषयों में ठीक हमीं ने ध्यान दिया था;
दिखला कर वैदुष्य नाम निज ख्यात किया था॥

(१०)

उड़ते थे नभ बीच अनेक विमान हमारे;
यन्त्रों द्वारा काम किये जाते थे सारे।
व्योमयान, जलयान, बनाये थे हमने भी;
खूब प्रकृति से नाच नचाये थे हमने भी॥

(११)

उन्नति पर था शिल्प और कृषि-कर्म्म हमारा;
स्वावलम्ब, पुरुषत्व, ऐक्य था हमको प्यारा।
नहीं किसी का किया आश्रय कभी यहाँ पर;
थे हममें स्वातन्त्र्य-विषय के भाव मुख्यतर॥

(१२)

व्यापारिक उद्योग हमारा स्वल्प नहीं था;
एतद्विषयक हमें सुशिक्षा-लाभ यहीं था।
रुका हुआ था मार्ग अनुद्यम से न हमारा;
उठा हुआ था देश हमारे पौरुष द्वारा॥

(१३)

चित्त दुखाया था न किसी निर्बल का हमने;
सीखा कभी प्रयोग न था छल-बल का हमने।
प्राप्त परम ऐश्वर्य्य, भोग-उपभोग हमें थे;
सब प्रकार सम्पन्न मानते लोग हमें थे॥

(१४)

हममें सारे सौम्य सुखद सद्गुण बसते थे;
क्या हम दुर्व्यसनादि दुर्गुणों में फँसते थे ?
मन-आत्मा के भाव हमारे अति पवित्र थे;
कर्मों से हम श्रेष्ठ, श्रेष्ठतर सच्चरित्र थे॥

(१५)

चारों आश्रम यथानियम पाले थे हमने,
जनता में कब भेदभाव डाले थे हमने ?
निजोद्देश पर ध्यान दिया करते थे हम सब;
जीवन-जन्म सुधार लिया करते थे हम सब॥

(१६)

ध्यान हमारा सदा ध्येय पर ही जाता था;
हमें हमारा सुकृत मोक्ष-पदवी-दाता था।
पारमार्थिक ज्ञान हमारा बढ़ा हुआ था;
रँग हम पर सद्भक्ति-भाव का चढ़ा हुआ था॥

(१७)

था जीवन स्वर्गीय हमारा ही जग भर में;
सब कुछ था अप्राप्य प्राप्त अपने ही कर में।
मर कर भी हम अमर बने जग में रहते थे;
हम अभीष्ट-फल क्या न जन्म पाकर लहते थे ?

(१८)

है यह कहना स्वप्न देखना ही न हमारा;
समझो इसको सिद्ध हुआ इतिहासों द्वारा।
अब हम कोई सही, इसे क्या बतलाना है ?
जिसे जानते स्वयं उसे क्या जतलाना है ?

कर्यी

गोशाले और गोवंश-वृद्धि।

मुसलमानों का मत है कि मूर्त्ति-पूजन से मनुष्य नरक जाता है। इसी लिए वे मूर्ति-खण्डन करना अपना परम धर्म मानते हैं। उनका यह भी विश्वास है कि किसी समय इस संसार से मूर्ति-पूजा बिलकुल उठ जायगी। हिन्दू इसके प्रतिकूल हैं। उनका कथन है कि पूजा से भगवद्भक्ति उत्पन्न होती है। तब मोक्ष सुलभ हो जाता है। उनका विश्वास है कि भविष्य में मूर्ति-पूजा का सर्वत्र प्रचार हो जायगा और मूर्ति-खण्डन करनेवालों की सद्गति न होगी। अपने अपने सिद्धान्तों में हिन्दू-मुसलमान दोनों की दृढ़ आस्था है और दोनों ही अपने मत को सच्चा समझते हैं। यदि हम किसी का पक्ष न लें तो भी हम यह नहीं कह सकते कि इनमें से कौन सत्य है, और कौन असत्य। अपने अपने धर्म-कर्म में हिन्दू-मुसलमान एक दूसरे की सहायता नहीं चाहते।

मुसलमान कहते हैं कि गोवध से सवाब होता है, हिन्दू कहते हैं कि इससे बढ़ कर दूसरा पाप नहीं। गोरक्षा को वे परम धर्म समझते हैं। हिन्दू मुसलमानों को न तो गोवध से रोक सकते हैं और न मूर्ति-खण्डन से। हाँ, मिन्नत-आरज़ू ज़रूर कर सकते हैं। मुसलमान कुछ भी कहें या करें, हिन्दुओं के हृदय से गाय के प्रति आदर और पूज्य-भाव कम न होगा। आज-कल हम पत्रों में पढ़ा करते हैं कि अमुक स्थान के मुसलमानों ने प्रतिज्ञा कर ली है कि गोवध न करेंगे और हिन्दुओं से मिल कर रहेंगे। पर इस कथन पर प्रतिज्ञा से ही काम न चलेगा। मेरा यह मतलब नहीं कि गोवध रोका न जाय। यथाशक्ति वह रोका जाय। पर साथ ही कुछ और भी काम किया जाय।

गाय की उपयोगिता हिन्दू और मुसलमान दोनों स्वीकार करते हैं। और यह बात भी दोनों मानते हैं कि गोवध से दूध, दही, घी का अकाल सा पड़ रहा है। इससे सभी को अत्यन्त कष्ट उठाना पड़ता है। पर भिन्न भिन्न धार्मिक विश्वास होने के कारण हिन्दुओं और मुसलमानों के हृदयों पर इस दुर्घटना का प्रभाव भी भिन्न भिन्न होता है। मुसलमानों के मतानुसार जो वस्तु जितनी उपयोगी हो उसकी कुर्बानी करना उतना ही अधिक सवाब है।

इस देश में अनेक स्थानों पर गोशालायें स्थापित हैं। इसका फल यह होता है कि दुर्बल और रोगी पशु तो गोशालाओं में सुरक्षित रहते हैं और बलिष्ठ, नीरोग, दुधार पशु बाज़ारों में बिकने के लिए रह जाते हैं। उन्हीं की शामत आती है। यही कारण है जो गो-वंश का क्षय प्रति दिन होता ही जा रहा है। हम यह नहीं कहते कि गोशालाओं में रोगी और दुर्बल पशु रखना बुरा है। यह तो उनका मुख्य कर्तव्य है, पर इसके साथ ही साथ हमको कुछ और भी करना चाहिए।

जब हिन्दू-राज्य था तब देश की कुछ और दशा थी। वह दशा अब भविष्य में होने की नहीं और न अब वैसे प्रबन्धों से काम ही चलेगा। अभी जहाँ जहाँ हिन्दू-राज्य है वहाँ भी प्राचीन रीति-नीति का अनुसरण नहीं किया जाता। आज-कल के राजे वैदिक युग के राजाओं के समान नहीं हैं। वे पहले के आदर्शों से हट गये हैं और दिन पर दिन हटते जा रहे हैं। अब नवीन सिद्धान्तों के आधार पर काम करना चाहिए और वर्तमान समय को देख कर नई नई रीतियों से प्रबन्ध करना चाहिए। हिन्दुओं को गोरक्षा के साथ साथ गोवृद्धि की भी चेष्टा करनी चाहिए। देखिए, अन्य देशों में पशुजनन संस्थायें (Cattle Breeding Stations) स्थापित की गई हैं। वहाँ, गोवंश की वृद्धि का हिसाब किताब रक्खा जाता है। कितना और कैसा दू

होता है, इसकी भी जाँच की जाती है। अच्छी तरह परीक्षा करके साँड़ रक्खे जाते हैं। पशुओं की वंशावली पर उचित रूप से ध्यान दिया जाता है और उनकी जाति का विचार करके उनकी अलग अलग टोलियाँ बनाई जाती हैं। पीढ़ी दर पीढ़ी के पशु के शरीर में अथवा उसके दूध में जो वृद्धि और उन्नति होती है उसका विवरण रजिस्टरों में बड़े परिश्रम से दर्ज किया जाता है। इस प्रकार बलिष्ठ पशु और खब दूध देनेवाली गायों की संख्या-वृद्धि की चेष्टा की जाती है। इस विद्या के जाननेवाले कुछ पदवीधर (L. Ag., B. Ag. या N. D. D.) इस देश में भी हैं। पर प्रायः सभी सरकारी कर्मचारी हैं। देश में इनकी अभी कोई क़द्र नहीं। न कोई इनकी विद्या की उपयोगिता को समझता है और न कोई इनसे काम लेना जानता है। इस देश में अनेक स्थानों पर बड़े बड़े गोशाले हैं, जो उनको नौकर रख सकते हैं और उनकी सहायता से बहुत कुछ सुधार कर सकते हैं। पर गोशालों के प्रबन्धकर्ता उनसे काम लेना ही नहीं जानते। दूसरी बात यह भी है कि कहीं कहीं गोशालों के प्रबन्धकर्ता दूर-दर्शी नहीं होते। कुछ तो खुदगर्ज़ भी होते हैं। इस कारण अधिक वेतन पर कर्मचारी नौकर रखना नहीं चाहते। मैंने स्वयं पाँच छः अवसरों पर गोशालों के प्रबन्धकर्ताओं से किसी पदवीधर को नौकर रख कर नवीन रीति से काम चलाने की सम्मति दी। पर किसी ने मेरी बात न सुनी।

मेरा प्रस्ताव यह है कि एक भारतीय गोशाला स्थापित की जाय जो गोरक्षा और गोवंश-वृद्धि का केन्द्र-स्थान हो। अन्य सब गोशाले उसके अधीन कर दिये जायँ। यही उनकी जाँच करे और पशु-जगत के नवीन सिद्धान्तों के आधार पर उनमें पशुओं की वंश-वृद्धि का प्रबन्ध करे। बड़े बड़े नगरों में, अथवा जहाँ जहाँ पशुओं की वृद्धि के लिए उपयुक्त स्थान हैं, केन्द्र की शाखायें स्थापित की जायँ। मतलब यह कि गोरक्षा के अतिरिक्त गोवृद्धि का भी प्रबन्ध अच्छी तरह किया जाना चाहिए। ऐसा न करने से वैसी ही दशा होगी जैसी उस मनुष्य की होती है जो डण्डा लेकर गेहूँ के पौधे को ताकना तो अपना धर्म समझता है, पर कृषि-कर्म नहीं करता; और जब वह आस पास के खेतों में जीव-जन्तुओं से गेहूँ को नष्ट होते देखता है तब गालियाँ देता है, अपने स्थान से चिल्लाता है, और विफल-प्रयास होने पर अपने भाग्य को दोष देता है। क्या बनारस की हमारी हिन्दू-यूनिवर्सिटी, जो विज्ञान-द्वारा विश्वामित्र ऋषि की भाँति आकाश-मार्ग में स्वर्ग बना देने का परामर्श कर रही है, इस ओर ध्यान देगी? हमारी सम्मति में तो ऐसे वैज्ञानिक कार्य, जिनका सम्बन्ध समस्त हिन्दूजनता से है और जो अल्पसंख्यक लोगों से निष्पन्न नहीं हो सकते, हिन्दू-विश्वविद्यालयों को करना चाहिए। अब कोरे राजनैतिक व्याख्यानों से ही काम न चलेगा। और न प्राचीन पद्धति का अवलम्बन करने से ही देश की दशा में सुधार होगा। जब तक नवीन रीति से गो-वर्धन की चेष्टा न की जायगी तब तक हमारी यही दशा बनी रहेगी। अनेक कारणों से गायों का नाश होने पर भी हम चाहें तो भारतवर्ष में हिन्दुओं के घरों में गोरस की धारा बहा सकते हैं। गो-रक्षा के साथ ही साथ यदि हम नवीन रीति से गोवृद्धि की चेष्टा करें तो हम अपने देश की दशा में यथेष्ट सुधार कर सकते हैं। इससे पुण्य-सञ्चय के साथ स्वार्थ की सिद्धि भी होगी। ऐसी गोशालाओं को चलाने के लिए हमें दानवीरों का मुँह भी ताकने की आवश्यकता नहीं। हम सिद्ध कर सकते हैं कि कुछ समय के पश्चात् ऐसे गोशाले स्वतन्त्र रूप से भली भाँति चल सकते हैं।

कोचक

(कृषि-महाविद्यालय, कानपुर)

मकड़ी।

आज हम पाठकों को मकड़ी का जीवन-वृत्तान्त सुनाते हैं। मकड़ी सब कीड़े-मकोड़ों से अधिक चतुर है। इसके विलक्षण व्यापार को ध्यानपूर्वक देखने से यही कहना पड़ता है कि मनुष्य की निपुणता इस निकृष्ट कीड़े के कौशल के सामने तुच्छ है। यह रेशम के सदृश महीन और चमकदार सूत बनाती है और बिना पंख या वायु-यान के गगन-मण्डल में अदृश्य हो जाती है। इसकी कला तो जादूगर की विद्या को भी लज्जित कर देती है। यह है तो थल-चर, पर गहरे पानी में भी जाल फैलाती और अण्डा देती है। इसका अलौकिक कार्य देख कर मनुष्य की बुद्धि चक्कर खा जाती है। इसका दिमाग़ राई के बराबर है, पर उसी के ज़ोर से यह नदी के एक छोर से दूसरे छोर तक झूलनेवाला पुल बना कर प्रवीण इञ्जिनियरों की बुद्धि को भी चक्कर में डाल देती है।

जिस कीड़े की बुद्धिमत्ता की प्रशंसा ऊपर लिखी गई है वह घर घर पाया जाता है। मकान के कोनों, उद्यान की लताओं, और जङ्गल के कँटीले वृक्षों पर हम उसका दर्शन नित्य किया करते हैं। परन्तु हम उसको तुच्छ समझ कर उसकी ओर ध्यान नहीं देते। यह हम लोगों का मिथ्याभिमान है।

परीक्षा करने से मालूम होता है कि मकड़ी की कार्य-शक्ति उसकी स्वाभाविक बुद्धि पर अवलम्बित नहीं है। बाज़ीगर तमाशा दिखाने के पूर्व जैसा खेल तैयार रखता है मकड़ी वैसा नहीं करती। जब वह कार्य आरम्भ कर देती है तभी उसकी बुद्धिमत्ता प्रकट होती है।

मकड़ी रेशम के सदृश जो सूत बनाती है वही उसकी जीवन-नौका है। इस सूत की उत्पत्ति उसके शरीर के पिछले भाग की थैली से होती है। थैली पर चलनी के समान अनेक रोम-छिद्र रहते हैं। ये रोम-छिद्र मकड़ी के शरीर के अन्तर्गत रेशम-कोष की नलियों के मुख हैं। जब 'रेशम-कोष नसों के ज़ोर से सिकुड़ता है तब उसमें से 'द्रव रेशम' नलियों से होकर प्रवाहित होता और नलिका-मुख से बाहर निकलता है। द्रव-रेशम का रङ्ग काला होता परन्तु वायु के सम्पर्क से शीघ्र सूख कर वह दृढ़ और [illegible] हो जाता है। मकड़ी के शरीर में कई रेशम-कोष होते [illegible] उनसे जो रेशम निकलता है वह एक दूसरे से भिन्न [illegible] है। महीन या मोटा सूत बनाने के लिए मकड़ी को [illegible] या एकाधिक कोष काम में लाने पड़ते हैं।

हम नित्य देखते हैं कि मकड़ी गुरुत्वाकर्षण के [illegible] के विरुद्ध अपना पैर ऊपर और पीठ नीचे की ओर [illegible] हुए छत पर चलती है। सब मिला कर उसके आठ पैर [illegible] और पञ्जे झुके रहते हैं। यही कारण है कि वह छत [illegible] खुरदरी सफेदी को अपने पञ्जों से भली भाँति पकड़ क[illegible] पर सावधानी से चलती है। यदि मकड़ी के चलते [illegible] छत की सफेदी की एक बड़ी पपड़ी एकाएक टूट प[illegible] भी मकड़ी भूमि पर न गिरेगी। वह तुरन्त अपने [illegible] की पिछली थैली से टूटती हुई पपड़ी के किनारे [illegible] को छू कर वहाँ सूत का एक छोर जोड़ देगी और भू[illegible] आते आते सूत निकालती [illegible] जावेगी। गिरने से बच[illegible] इससे बढ़ कर उत्तम उपाय भ[illegible]ा और क्या हो सकत[illegible] मकड़ी की एक विलक्षणता य[illegible]ह भी है कि व[illegible] उतरते समय धरती और छत के [illegible]ीच कहीं भी ठहर [illegible] है और यदि आवश्यकता हुई तो व[illegible] फिर से ऊ[illegible] सकती है। मकड़ी की यह कसरत सर[illegible]कस के सभी [illegible] खेलों से अधिक विस्मयजनक है।

सूत बनाना मकड़ी के लिए सहज [illegible]ाम है। [illegible] से वह कँटीले पत्तों को एक दूसरे से जोड़त[illegible]ी है। [illegible] बनाने और रहने की गुफा के भीतरी भाग [illegible]को [illegible] काम देता है। सूत से वह अपने बच्चों और अ[illegible]ण्डों [illegible] कुशियारी तैयार करती, शिकार पकड़ने के लिए प[illegible]न्दा [illegible] और अपने जाले को सँवारती है। इन सब[illegible] वह सूत के सहारे आकाश में उड़ती भी है, [illegible] डोर के आधार से पतङ्ग आसमान में उड़ता है।

शरद् के अन्त में बाग़ीचे में रहनेवाली एक [illegible] मकड़ी धनहीन बहुकुटुम्बी मनुष्य के समान [illegible] रहती है। जान पड़ता है, उस समय उसके भोजन[illegible] सामग्री चुक जाती है और उसके भक्ष्य कीड़ों [illegible] हो जाता है। इस मलिनता का मुख्य कारण कु[illegible]

परन्तु इतना तो हम अवश्य कहेंगे कि वह इस उद्यान को छोड़ कर बिना पंख अन्यत्र उड़ जाने की चेष्टा में च्युत-धैर्य है।

जब आकाश निर्मल रहता है, प्रातःकाल की ठण्डी ठण्डी वायु मन्द गति से बहती रहती है, तब वह मकड़ी किसी खम्भे या ऊँचे पौधे पर चढ़ जाती और पवन की गति की ओर मुख करके पौधे या खम्भे से दो-चार सूत के छोर जोड़ देती और हवा में निराधार लटक जाती है। फिर वह सूत को ढीला करने लगती है। सूत की लम्बाई यथेष्ट होते ही वह वायु-गति के कारण तनने लगता है और मकड़ी छलाँग मारती हुई वायु-प्रवाह के सङ्ग हवा में उड़ने लगती है। जिस प्रकार मल्लाह, वायु की गति मन्द होते ही, अपने जहाज़ के सब पालों को खोल देता है उसी प्रकार मकड़ी भी हवा का ज़ोर घटते ही सूत की कई लड़ें एक ही साथ बाहर निकालती है। यदि वायु की गति तीव्र हुई तो वह सूत की कुछ लड़ें लपेट लेती है, जैसा कि मल्लाह वायु-प्रवाह अधिक होते ही पालों को मस्तूल से लपेट देता है। कभी कभी उड़ते समय मकड़ी के दो-एक आधार-सूत्र टूट जाते हैं। इससे उसके उड़ने में कोई बाधा नहीं आती। वह शेष आधार-सूत्र के सहारे मज़े में उड़ती चली जाती है। ऐसी टूटी हुई सूत की लम्बी लम्बी लड़ियाँ खेतों और मैदानों में प्रायः देखी जाती हैं। अभी तक यह विदित नहीं हुआ कि मकड़ी अधिक से अधिक कितनी लम्बाई तक सूत बाहर निकाल सकती है। जिन्हें इस विषय से प्रेम हो, उन्हें चाहिए कि वे परीक्षा करके देखें। इससे वे मनोरञ्जन के साथ ही साथ एक नई बात ढूँढ़ निकालेंगे।

कुछ ही वर्षों से मनुष्य हवा में उड़ने लगा है। परन्तु मकड़ी न जाने कब से उड़ रही है। मकड़ी और मनुष्य की तुलना करने पर यही कहना पड़ता है कि मनुष्य की अपेक्षा मकड़ी में अधिक साहस और बुद्धि है।

मकड़ी केवल सूत बनाना ही नहीं जानती। वह सूत बुन भी लेती है। मकान के कोनों, बाग़ की लताओं और जङ्गल के कँटीले पेड़ों पर बने हुए जालों को देख कर यही कहना पड़ता है कि बुनने का काम मकड़ी बड़ी निपुणता से कर सकती है। इसमें सन्देह नहीं कि जाले बनाने में उसे स्वाभाविक बुद्धि से सहायता मिलती है। किसी स्थान पर जाला फैलाने के प्रथम वह उस स्थान की जाँच-पड़ताल कर लेती है। फिर जितनी जगह में उसे जाल फैलाना होता है उतनी जगह में नींव डाल कर हदबन्दी कर देती है। नींव मज़बूत होती है, क्योंकि वही जाल और जाले पर पड़नेवाले बोझ को सँभालती है। नींव से सूत इस प्रकार जोड़े जाते हैं कि वे सब बीचोंबीच एक दूसरे से मिले रहें। तब उसका आकार किरण के सदृश हो जाता है। उसे जाले का चौखटा कहना चाहिए। यह चौखटा बनाते समय नींव खिँच न जाय, इस भय से सूत प्रत्येक दिशा की ओर क्रम क्रम से बड़ी सावधानी से ताना जाता है। इसके अनन्तर मकड़ी चौखटे पर गोलाकार वृत्त बनाना आरम्भ करती है। यह वृत्त जाले के केन्द्र से कुछ हट कर आरम्भ होता है और नींव तक चला जाता है। वह किरण से मिला हुआ रहता है। पर वह जाले का अंश नहीं माना जाता। मकड़ी उसी पर बैठ कर जाले की पूर्ति करती है। इसलिए इसे मचान कहना चाहिए। मचान के लिए जो सूत फैलाया जाता है वह चिपचिपा नहीं होता। जाले की पूर्ति के लिए एक और सँकरा वृत्त बनाया जाता है। वह वृत्त ओस की बूँद के समान छोटी छोटी गुरियों से ढका रहता है और जाले की सीमा से आरम्भ होकर किरण से मिलता हुआ केन्द्र-स्थान में जाकर समाप्त होता है। बहुधा देखा गया है कि मकड़ी अपने जाले को सर्वाङ्ग-सुन्दर बनाने के अभिप्राय से मचान खा जाती है। जब जाला बन कर तैयार हो जाता है तब एक सूचना-सूत्र की सृष्टि होती है। इस सूत्र का एक छोर मकड़ी के विश्राम-गृह में लगा रहता है और दूसरा छोर जाले के केन्द्र में चिपका रहता है। यही मकड़ी का टेलीफ़ोन है।

जिस प्रकार प्रदीप की ज्योति पर मुग्ध होकर पतङ्ग उस पर गिर कर अपनी जान गँवाता है, उसी तरह छोटे छोटे कीड़े मकड़ी के माया-जाल के वशीभूत होकर उस पर नृत्य करने का साहस करते हैं और जाले के लसदार सूत पर पैर रखते ही फँस जाते हैं। बन्धन से छूटने के लिए जितना ही अधिक वे कोशिश करते हैं उतना ही वे जाल में फँसते जाते हैं। कभी कभी कोई बड़ा कीड़ा भी जाल में

फँस जाता है और मुक्त होने के लिए जाले को झटका देने लगता है। इससे जाला हिलने लगता है और अपने विश्राम-गृह में ही मकड़ी को शत्रु के आगमन की सूचना तार-सूत्र से मिल जाती है। तब वह तुरन्त बाहर निकल कर विषैले दंश से क़ैदी का सर्वनाश कर देती है। यदि विषैले दंश से शत्रुनाश न हुआ तो वह उसके हाथ-पांव बांध देती और उसे मृत्यु की गोद में छोड़ देती है। मकड़ी श्रवण-शक्ति से हीन होती है, पर उसकी स्पर्शेन्द्रिय और घ्राण-शक्ति बड़ी तीव्र होती है। तार-सूत्र के हिलते ही मकड़ी यह जान लेती है कि जाले के साथ द्वन्द्व-युद्ध करनेवाला किस जाति का कीड़ा है। इसी प्रकार चतुर मछुवा भी वंशी के काँपते ही जान लेता है कि कांटे में कैसी मछली फँसी है।

हम कह आये हैं कि यह सूचना-सूत्र मकड़ी का टेली-फ़ोन है। इन दोनों की उत्पत्ति एक ही आधार पर हुई है। अन्तर केवल इतना ही है कि ख़बर देते समय सूचना-सूत्र का सम्पूर्ण अङ्ग कम्पायमान होता है और टेलीफ़ोन का तार कम्पित नहीं होता—उसमें विद्युत्प्रवाह कम्पित होता है।

मकड़ी के कुछ रिश्तेदार पानी के भीतर भी निवास करते हैं वहाँ वे अपना घर बनाते, अण्डे देते और ऐसे अद्भुत काम करते हैं जो थलचर मकड़ी के लिए भी असाध्य हैं। जलचर मकड़ी अन्य जलचर जीवधारियों की भाँति सांस लेने के लिए अपना मुँह पानी के बाहर नहीं निकालती। सच तो यह है कि उसने थलचर जीवों की पानी के भीतर होनेवाली सम्पूर्ण असुविधाओं को दूर कर लिया है। उसके रोम कुटिल होते हैं और इसी कारण वह उसमें उलझी रहती है। इससे उसका शरीर भी पानी से नहीं भीगता। तालाब की सतह पर पत्थरों से जकड़ कर वह जो जाल फैलाती है वह भी सूखा ही रहता है। जाल का आकार चिपटा होता है; परन्तु पानी के धरातल पर वह अपने कुटिल रोम द्वारा वायु के जो बुलबुले लाती है उससे उसका घर घण्टा-कृति बन जाता है। उसका घर सूखा और हवादार रहता है। इसलिए उसके अण्डों और बच्चों को पानी के भीतर किसी प्रकार की अड़चन नहीं होती।

जलचर मकड़ी को खाद्य वस्तु पाने के लिए थलचर मकड़ी के समान चिन्तित नहीं रहना पड़ता। [वैज्ञा]निकों ने एक ऐसे मांसाहारी पौधे का पता लगा लिया है जो जल के भीतर उगता है और पानी में रहनेवाले पिस्सू की जाति के कीटाणुओं को पकड़ता है। पत्र-जाल में छोटे छोटे अनेक दरवाज़े होते हैं, जो बाहर थोड़े ही धक्के से खुल जाते हैं परन्तु भीतर से नहीं खुल सकते। इस पौधे के पत्र-जाल के भीतर रस रहता है। उसी के लोभ से कीटाणु जाल में आ फँसते हैं। तब मकड़ी जाल तोड़ कर उन्हें खा जाती है।

जलचर मकड़ी के विषय में अधिक न लिख कर हम अब एक ऐसे प्राणी का संक्षिप्त हाल लिखते हैं जो जलचर मकड़ी की सगी बहन है। वह उस स्थान में रहती है जहाँ जलचर मकड़ी को भोजन की तलाश में जाना पड़ता है। यह कहा जा चुका है कि मांसाहारी पौधे के पत्तों का आकार घण्टे के सदृश होता है और उसके नीचे पाचक रस रहता है, जिसमें फँस कर कीटाणु पौधे का उदर भरते हैं। जिस कीड़े के विषय में हम कह रहे हैं वह अत्यन्त सूक्ष्म होता है और रस से थोड़ा ऊपर अपना जाल फैलाता है। लोभी कीड़े पत्र-जाल के भीतर घुस आते और जाल का भीतरी भाग चिकना होने के कारण सबके सब फिसल कर कुछ तो रस में डूब जाते और कुछ सूक्ष्म जाल में फँस कर मकड़ी के उदर में प्रवेश करते हैं। ऐसे भयानक स्थान में शिकार पकड़ने का साहस करना दूसरे प्राणियों के लिए मृत्युमुख में प्रवेश करना है। परन्तु पत्र-जाल-निवासी मकड़ी के लिए यही कल्पवृक्ष है। एक प्राणिशास्त्र-वेत्ता का कथन है कि कीटभक्षक पक्षी इन जालों की तलाश में पानी के भीतर डुबकी लगाता है और जाल में संग्रहीत कीड़ों को खा जाता है। जब इन पक्षियों का आक्रमण होता है तब मकड़ी पाचक-रस में कूद पड़ती है और वहीं छिप कर अपनी प्राण-रक्षा करती है। जलचर मकड़ी का शरीर पानी से नहीं भीगता। इस कारण उस पर पाचक-रस का भी कुछ प्रभाव नहीं पड़ता।

मकड़ी पुल बनाना भी जानती है। उसके पुल की नींव नदी के दोनों किनारों की झाड़ियों पर रक्खी जाती है। नींव बनाने के पहले वह किसी वृक्ष की शाखा पर बैठ जाती और थोड़ा सा सूत बाहर निकालती है, जो वायु-गति से खिँचते खिँचते दूसरे किनारे के किसी वृक्ष के पत्तों

चिपकता है। इस काम में कई बार विफल चेष्टा करने के बाद मकड़ी का मनोरथ सिद्ध होता है। जब सूत का छोर दूसरे किनारे के वृक्षों पर चिपक जाता है तब वह इस अभिप्राय से उसको झटका देती है कि उस पर चलने में किसी प्रकार के भय की आशङ्का तो नहीं। अच्छी तरह परीक्षा कर लेने के बाद वह इस रेशमी पुल से होकर नदी को पार करती और साथ ही उस पर सूत की दूसरी लड़ी भी लगाती जाती है। इस प्रकार बार बार चलने और सूत लगाने से पुल मज़बूत बन जाता है।

लेख समाप्त करने के पूर्व मकड़ी के बच्चों के सम्बन्ध में भी कुछ लिख देना हम आवश्यक समझते हैं। मकड़ी—विशेष कर बाग़ीचे में रहनेवाली मकड़ी—अण्डे रखने के लिए केवल एक ही कुशियारी तैयार करती है। इस कुशियारी को वह जाले के पास किसी बिल अथवा पत्तों की आड़ में या पत्थरों के नीचे रखती है। अण्डे का आकार एक छोटी गोली के बराबर होता है। यदि कोई उसके अण्डों में से एक को भी हटा ले तो दृष्टि मन्द होने पर भी यह कीड़ा अपनी स्पर्शेन्द्रिय और घ्राणेन्द्रिय के ही सहारे उसकी खोज कर लेगा। उस समय उसे धोखे में डालने की एक युक्ति यह है कि वृक्ष का थोड़ा सा गूदा अण्डे से घिस दिया जाय जिससे उसमें से भी अण्डे के समान गन्ध निकलने लगे। फिर उसकी छोटी सी गोली बना कर मकड़ी के हवाले कर दी जाय। कृत्रिम अण्डा घ्राणेन्द्रिय की परीक्षा में तो पास हो जायगा, परन्तु विश्वास नहीं कि वह स्पर्शेन्द्रिय की परीक्षा में भी सफलता प्राप्त करे।

जब मकड़ी के बच्चे अण्डे से बाहर निकलते हैं तब वे बहुत छोटे होते हैं। परन्तु उनके सभी अङ्ग पूर्ण रहते हैं। अण्डे से निकलते ही वे जाल बना कर उस पर विहार करने लग जाते हैं। यदि हम पौधों को हिला कर बच्चों को आपत्ति की सूचना दें तो वे भयभीत होकर तुरन्त एक दूसरे से चिपक जावेंगे और उस समय यदि कोई उन्हें उँगली से छू दे तो वे सबके सब जाल से सूत्र जोड़ कर नीचे भूमि पर गिर पड़ेंगे और अदृश्य हो जायँगे। क्या यह शूरता नहीं?

बग़ीचे में एक और प्रकार की भी मकड़ी रहती है। उसका निवासस्थान तो कोई भी ढूँढ़ सकता है। परन्तु उसके जाल का पता लगाना कठिन है। इसका कारण यह है कि वह उषःकाल में जाल फैला कर कीड़े-मकोड़ों का शिकार करती है। प्रातःकाल होते ही वह चिड़ीमार की तरह सावधानी से अपना जाल समेट कर उसे अपने कन्धे पर रख घर का रास्ता लेती है। कहते हैं कि उषःकाल में उड़नेवाले कीड़े-मकोड़े फल देनेवाले वृक्ष का रस चूस कर उसकी शक्ति नष्ट कर डालते हैं, जिससे वृक्ष में फल छोटे होने लगते हैं।

मकड़ी के विषय में एक बात और बतला कर हम इस लेख को समाप्त करते हैं।

नर-मकड़ी अपनी प्रणयिनी का प्रेम-पात्र बनने के लिए तार-द्वारा कोशिश करता है। यह तार-सूत्र नर-मकड़ी के जाले से लेकर मादी-मकड़ी के जाले तक जुड़ा रहता है। मादी से नर छोटा होता है। इस कारण वह अपनी प्रणयिनी को अप्रसन्न नहीं करता। उसको वशीभूत करने के लिए कभी कभी वह उसके चारों ओर नृत्य करता है। यदि मादी-मकड़ी के प्रेम के इच्छुक दो-चार हो गये तो उनमें लड़ाई छिड़ जाती है और वे अपनी प्रणयिनी के सम्मुख युद्ध करते हैं। यह युद्ध घण्टों होता है। परन्तु तारीफ़ यह कि कोई किसी का रक्त-पात नहीं करता, न कोई घायल ही होता है। क्या यह वीरता नहीं?

ये तुच्छ कीड़े मनुष्यों की दया और सहानुभूति के पात्र हैं। इनके सभी कार्य विस्मय-जनक हैं। कुछ विद्याहीन निर्दय प्राणी इन बातों की परवा न कर उन्हें नष्ट कर डालते हैं। वे यह नहीं जानते कि इनके न रहने से संसार का एक आश्चर्य ही लुप्त हो जायगा।*

वनमालीप्रसाद शुक्ल

अलौकिक स्वामि-भक्ति।

(१)

भारत के राजाधिराज दिल्ली-नगरी-पति।
अजमेरी-चौहानवंश-अवतंस महामति॥
भुवन-विदित रणरङ्गभूमि-नटराजशिरोमणि।
जिनको वर वरि हुई भूप जयचन्द-सुता धनि॥

* ब्रूस साहब की पुस्तक—What Spider Can Do—के आधार पर।

ऐसे पृथ्वीराज से छिड़ा घोर घमसान रन।
कभी महोबा-भूप सँग, जहाँ सघन था विन्ध्यवन॥

(२)

घोर वीररस-सनी अनी दोनों समुहानी।
भिड़ी परस्पर चिढ़ी विजय-आशा जिय ठानी।
हुआ तुमुल संग्राम राम-रावण-रण-भीषन।
गये वीर पर-धाम विपुल रखि नाम नामधन॥
बहुतेरे घायल गिरे, रुण्ड-मुण्डमय खेत करि।
गिरे पिथौराराय भी, घने घाय तन खाय लरि॥

(३)

अति विहाल दिल्ली-भुआल कुछ काल पड़े थे।
सभी शूर सामन्त दूर अरि सङ्ग अड़े थे॥
मृतक समुझि हड़गिद्ध गीध थे चोंच चलावत।
आमिषभोजी बार बार थे तन ठुकरावत॥
संयमसिंह समीप था, पड़ा विकल घायल निपट।
दिल्लीपति-सामन्त यह, दृश्य देखता था विकट॥

(४)

लगा सोचने—क्या उपाय अब हाय! करूँ मैं।
कैसे स्वामि-शरीर-पीर गम्भीर हरूँ मैं॥
देता इन्हें भगाय तुरन्त निकट जाने से।
पर मैं हूँ लाचार पगों के कट जाने से॥
जब लगि तन में प्राण हैं, तब लगि मैं सेवक धरम—
कैसे तजूँ सचेत रहि, रखि यह तन नश्वर परम॥

(५)

ये लोभी हैं मांस-खण्ड के, जब पावेंगे—
इधर कहीं, तो उधर वृथा काहे जावेंगे॥
तो मैं निजतन-मांस काट दे इन्हें बझाऊँ।
ऐसे स्वामि-शरीर पालि निज धर्म बचाऊँ॥
काटि, काटि असि-खण्ड सें, लगा मांस निज फेंकने।
तजि कै राज-शरीर को, लगे उसे वे लोकने॥

(६)

कुछ पीछे कुछ हो सचेत भूपति ने देखा।
संयम की निज स्वामि-भक्ति की अनुपम लेखा॥
न्यौछावर हो गये विवश कुछ कह न सके, व्रत—
रुका हृदय, लखि सगबगात प्रभु-गात हर्षयुत॥
अन्तिम निज सेवा सफल, गुनि प्रमुदित मन त्यागि तन।
लहे वीर-गति, राखि जग, स्वामि-भक्ति-सदुदाहरन॥

(७)

ऐसे कितने स्वामि-भक्त भारत जननी के—
पूत गर्भ से जनमि हुए अनुपम करनी के॥
जिनके बल इस गिरी दशा हू में है भारत—
निज मुख उज्ज्वल किये भेष यद्यपि है आरत॥
मिला दण्ड इसको बहुत, ईश कृपा अब कीजिए।
सुख-समृद्धि पहली बहुरि, हरि! भारत को दीजिए॥

विजयानन्द त्रिपाठी 'श्रीकवि'

जयपुर के दर्शनीय स्थान।

राजपूताने की कहावत है कि जिसने जयपुर न देखा उसने कुछ न देखा। यद्यपि भारत में कई बड़े बड़े शहर हैं, जिनकी मनुष्य-संख्या अथवा क्षेत्रफल जयपुर से अधिक है, तथापि इस नगर में बहुत बड़ी विशेषता है। सवाई जयसिंह जी ने, सन् १७२८ में, नवीन रीति से इसे निर्म्माण कराया था। इसकी बनावट योरोपियन दर्शकों को भी मुग्ध कर देती है। जयसिंह जी के द्वारा बनाये जाने के कारण ही इस का नाम जयपुर हुआ। यह जयपुर राज्य की राजधानी और वहाँ के महाराज का निवास-स्थान है। राजपूताना-मालवा रेलवे की लाइन पर, बम्बई से यह ६९९ मील और देहली से १९१ मील है। [illegible] मनोहर तथा ऐतिहासिक घटना-स्थलोंवाला यह नगर राजपूताने में सबसे बड़ा है। इसके चारों तरफ़ २० फ़ुट ऊँची और ९ फ़ुट चौड़ी दीवार है। इसके सात दरवाज़ों में अजमेरी, साँगानेरी, [illegible] पोल, सूर्य्यपोल और घाट दरवाज़े मुख्य हैं। [illegible] की चौड़ाई १११ फ़ुट है। चाँदपोल से सूर्यपोल तक, नगर के बीचोंबीच जानेवाली, सड़क की लम्बाई सवा दो मील है। गणित-शास्त्र पर जयसिंह [illegible]

का बड़ा प्रेम था । उन्होंने पहले यहाँ वेधशाला (Astronomical Observatory) बनवाई । फिर उसी के अनुसार इसे बसाया । कुछ लोगों का कथन यह है कि ताल-कटोरा झील के निकट पहले शिकार-गाह और बाग़ीचा था । उस समय राजधानी आमेर में थी । महाराज शिकार खेलने के लिए यहाँ आया करते थे । यहाँ के बाग़ीचे की बनावट देख कर ही उन्होंने यह शहर बसाया । बहुतों का मत यह है कि कान्स्टैंटिनोपल (कुस्तुनतुनिया) और देहली

देख-भाल म्युनीसिपालिटी करती है । शहर का प्रबन्ध सिटी मैजिस्ट्रेट के सिपुर्द है । राय बहादुर पण्डित दीनदयालु जी तिवारी, जो महाराज की कौंसिल में पुलिस-विभाग के मेम्बर हैं, स्वयं बहुत देख-भाल किया करते हैं । सड़कों पर गैस की रोशनी होती है । जल के लिए अमानीशाह के नाले से नल लगा हुआ है । स्टेशन के निकट ही रुई के दो बड़े पेच (Cotton Press) हैं ।

वर्तमान महाराज सर सवाई माधोसिंहजी
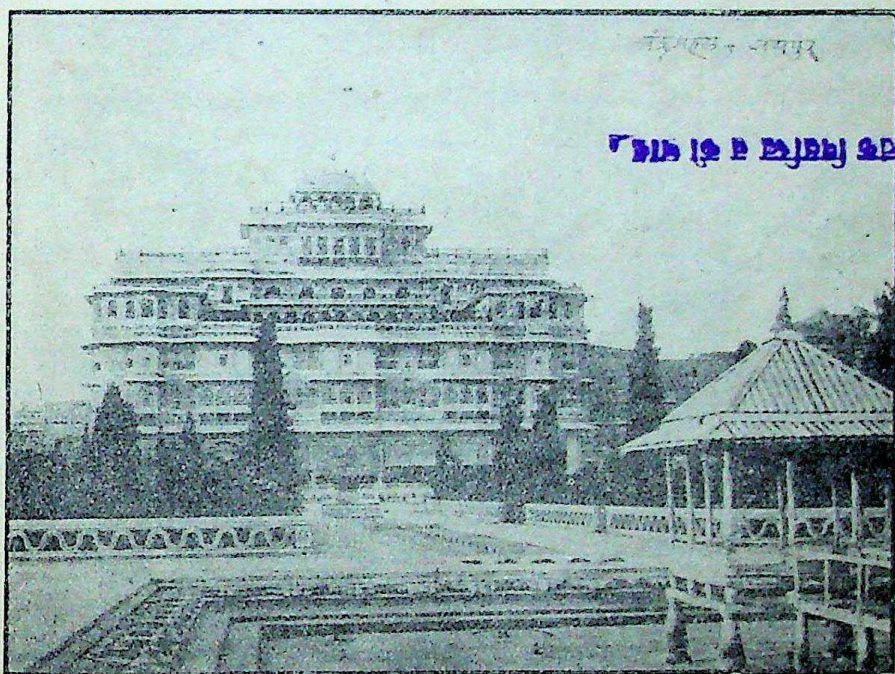
चन्द्रमहल, जयपुर

के चाँदनी-चौक ने महाराज के हृदय में ऐसा शहर बसाने की इच्छा उत्पन्न की । कारण चाहे कुछ हो, इसकी बनावट वास्तव में है बड़ी मनोहर । दीवार का रङ्ग सर्वत्र गुलाबी है । रामसिंह जी के समय में भिन्न भिन्न रङ्गों से, समय समय पर, रँगाई हुआ करती थी । अन्त में गुलाबी रङ्ग ही सदैव के लिए स्थिर हुआ । नगर चौकड़ियों में विभक्त है, और प्रत्येक चौकड़ी में कितने ही महल्ले हैं । सफ़ाई की

(द्वितीय) बड़े ही धर्मात्मा और हिन्दुस्तानी चाल के नरेश हैं । सन् १८८० में, रामसिंहजी के स्वर्गवासी होने पर, आप सिंहासन पर विराजे थे । उसके पूर्व आप ईसरदा के जागीरदार थे । रामसिंहजी के कोई पुत्र न था । अतएव, अन्त समय में, उन्होंने आपही को अपना अधिकारी स्वीकार किया । सन् १८९९-१९०० के अकाल में महाराज ने अपनी प्रजा की बड़ी रक्षा की और

२० लाख रुपये देकर सम्पूर्ण भारत के लिए इंडियन पीपुल्स फ़ेमीन ट्रस्ट (Indian Peoples' Famine Trust) की स्थापना की। आपकी इस उदारता से अकाल के समय सारे भारत को लाभ पहुँचता है। गवर्नमेंट ने श्रीमान् को, सन् १८८८ में, के० जी० सी० एस० आई०, सन् १९०१ में जी० सी० एस० आई० और सन् १९०३ में, जी० सी० वी० ओ० की उपाधियों से सम्मानित किया। श्रीमान् एडिनबरा-विश्वविद्यालय के आनरेरी एल-

हवा-महल, जयपुर।

एल० डी० हैं। सन् १९०२ में, श्रीमान् सप्तम एडवर्ड के राजतिलकोत्सव पर, इँगलैंड पधारे थे। धर्म पर आपका इतना प्रेम है कि मिट्टी और जल तक आप भारत से ले गये थे। रामसिंहजी के समय से जयपुर का राज-कार्य कौंसिल चलाती है। उसके मेम्बर महाराज स्वयं नियुक्त करते हैं। कौंसिल का मुख्य मेम्बर महाराज का प्रधान-मन्त्री होता है। आज-कल माननीय नवाब सर फ़ैय्याज़अलीख़ाँ साहब बहादुर ही इस स्थान पर हैं। आपके द्वार पर एक बक्स लटकाया जाता है। यदि किसी को किसी प्रकार का कष्ट हो तो वह लिख कर एक पत्र उसमें डाल दे। उसकी ताली वे अपने पास रखते हैं। चोमू के ठाकुर साहब देवीसिंहजी, ईशानचन्द्रजी मुकर्जी, ख़ाँ-बहादुर अहमदअलीजी, खण्डेला के राजाजी, रा० ब० पण्डित गोपीनाथजी पुरोहित, मुंशी नन्दकिशोरजी, ठाकुर इन्द्रकरणसिंहजी, सीवाड़ के ठाकुर साहब आदि कौंसिल के बड़े योग्य मेम्बर हैं। कलकृरी विभाग के मेम्बर सैय्यद मुहम्मद-तक़ीजी खेतड़ी के कोर्ट आफ़ वार्ड्स पर भी निगरानी रखते हैं। राय बहादुर ख़वास बालाबख़्शजी श्रीमान् के कृपापात्र व्यक्ति हैं। रायबहादुर बाबू अविनाशचन्द्रजी सेन महाराज के प्राइवेट सेक्रेटरी हैं।

नगर की मध्योत्तरी चोकड़ी में महाराज

महल, उनकी परिचर्या करनेवालों के स्थान तथा न्यायालय हैं। प्रधान द्वार का नाम सिरह ड्योढ़ी है, और जैसा कि सूर्यवंशी राजाओं के यहाँ होना चाहिए यह पूर्व की तरफ़ है। सर्व-साधारण जन विशेष कर त्रिपोलिया दरवाज़े से आया-जाया करते हैं। दूसरे द्वार से एक तरफ़ महलों का रास्ता, अस्तबल रसोईघर, ब्रजनन्दनजी के मन्दिर हैं; दूसरी तरफ़ आनन्दकृष्णजी का मन्दिर तथा वेधशाला हैं। तीसरे द्वार से आगे, जयपुर की प्रजा को पैदल जाना पड़ता है। चौक में सङ्गमरमर का मकान, सूरज की ड्योढ़ी पर सुसज्जित हैं। उसके उत्तर में श्रीगोविन्दजी का मन्दिर है। उसमें श्रीकृष्णचन्द्र और राधिका जी की प्रतिमायें इतनी मनोहर हैं कि दर्शनों से तृप्ति नहीं होती। निकट ही श्रीमान का निजी पुस्तकालय और शस्त्र-गृह है।

पुस्तकालय में अकबर के समय का लिखा हुआ महाभारत का फ़ारसी अनुवाद देखने योग्य है। उसकी लिपि के सामने आज-कल के टाइप कोई चीज़ नहीं। विचित्रता यह है कि इस अनुवाद में फ़ारसी के किसी ऐसे शब्द का प्रयोग
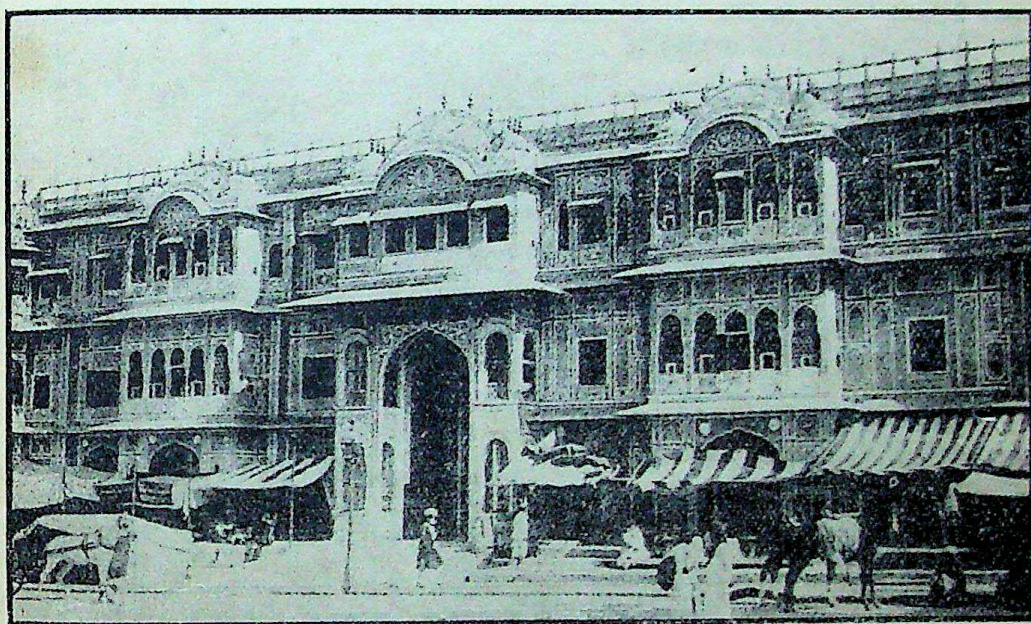
महाराजा-कालेज, जयपुर।

पीतल का विशाल द्वार और किवाड़े जयपुर की कारीगरी के अच्छे नमूने हैं। सरबता अथवा दीवान-ए-ख़ास में साधारण दरबार और राज-भोज हुआ करते हैं। उसके समीप ही, दूसरे चौक में, दीवान-ए-आम है। चन्द्रमहल, सतमंज़िला राजमन्दिर, महाराज के निवास करने का स्थान है। उसकी भिन्न भिन्न मंज़िलें भिन्न भिन्न रूपों से नहीं हुआ है जिसमें नुक़ते हों। मनोहर चित्रों ने उसकी सुन्दरता में और भी विशेषता उत्पन्न करदी है।

जिस समय मानसिंहजी काबुल विजय करने के लिए गये उस समय उनके लिए पञ्जाब का एक नक़शा तैयार किया गया था। वह तथा कई अन्य नक़शे भारत की प्राचीन भूमि-माप-विद्या (Survey Map Drawing) के आदर्श हैं। ये

भी पुस्तकालय में संरक्षित हैं। मुग़ल-सम्राटों के रङ्गीन चित्र, आमेर के महाराजाओं के चित्र, साँभर की लड़ाई, नादिरशाह का देहली में क़त्ले-आम की आज्ञा देने का चित्र—ये सब पुस्तकालय के रत्न हैं। यदि कोई व्यक्ति भारत की प्राचीन चित्रकला देखना चाहे तो उसका नमूना यहाँ देख सकता है।

ताल-कटोरा जयपुर की सबसे प्राचीन इमारत है। महलों के निकट ही बादल-महल,

gilded arches of which the Indian air blows cool over the flat roofs of the very highest houses. Alladin's magician could have called into existence no more marvellous abode, nor was the pearl and silver palace of the Peri Banow more delicately charming."

इन महलों में दरबार के मेहमान ठहराये जाते हैं। सामने ही महाराजा-कालेज का विशाल विद्या-मन्दिर आकाश से बातें करता है। संस्कृत
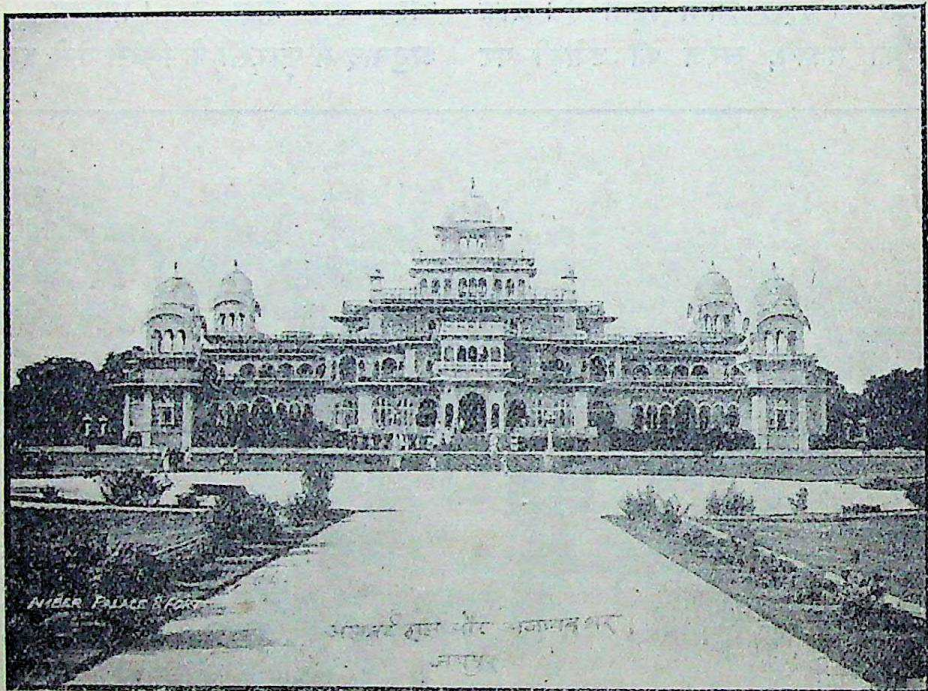
अलबर्ट-हॉल और अजायब-घर, जयपुर।

ईशरलाट तथा हवा-महल हैं। हवा-महल के विषय में सर एडविन आर्नल्ड ने यों लिखा है—

"A vision of daring and dainty loveliness, nine stories of rosy masonry and delicate overhanging balconies and latticed windows, soaring with tier after tier of fanciful architecture in a pyramidal form, a very mountain of airy and audacious beauty, through the thousand pierced screens and

तथा फ़ारसी की भी उच्च शिक्षा यहाँ दी जाती है। यहाँ का सार्वजनिक पुस्तकालय चौड़े रास्ते पर है।

रामबाग़ के महल, यादगार बादशाह एडवर्ड (King Edward Memorial), शेरों का पींजड़ा, खेतड़ी के राजाजी की कोठी, चोमू के ठाकुर साहब का बाग़ भी यहाँ देखने योग्य है।

माजी का बाग़, जहाँ आज-कल रेज़िडेन्ट साहब

निवास करते हैं, सवाई जयसिंहजी की धर्मपत्नी माजी श्रीराणावतजी साहबा ने बनवाया था। सन् १९१७ में, जब पिण्डारी डाकुओं को लेकर अमीरख़ाँ ने आक्रमण किया था, तब, उसकी फ़ौज का बायाँ पक्ष यहाँ तक फैला हुआ था। मोती डूँगरी का मध्य तथा पूर्वी पहाड़ियाँ उसका दाहिना सिरा थीं।

शीश-महल का भीतरी दृश्य, आमेर, जयपुर ।

वेधशाला में ज्योतिष-विषय के अनेक यन्त्र हैं। उनका वर्णन शायद सरस्वती में निकल चुका होगा। यह वेधशाला जयसिंहजी की बनवाई हुई है। यह बे-मरम्मत थी, पर अब यह फिर नई सी हो गई है। एक पुस्तक भी अब ऐसी छपा दी गई है जिसमें इसके यन्त्रादि का विवरण है। जयसिंहजी ही की बनवाई हुई वेधशालायें देहली, मथुरा, बनारस और उज्जैन में भी हैं।

यहाँ के आर्ट-स्कूल में शिक्षा द्वारा प्राचीन कला-कौशल की रक्षा की जाती है।

अजमेरी दरवाज़े के निकट ही रामनिवास-बाग़ है। सन् १८६८ में, रामसिंहजी ने इसे बनवाया था। इसमें एक ओर पशुशाला है, जहाँ जीवित जीव-जन्तु, पशु, पक्षी रक्खे गये हैं। कलकत्ते में अलीपुर के बाग़ में उनके लिए जैसा प्रबन्ध है यहाँ उससे कम नहीं। दर्शकों के विश्राम के लिए सर्वत्र बेंचें पड़ी हुई हैं। सप्ताह में एक दिन सायङ्काल बैंड भी बजता है। अलबर्ट-हॉल तथा अजायब-घर भी इसी में हैं। इनकी नींव तारीख़ ६ फ़ेब्रुअरी सन् १८७६ को श्रीमान् सप्तम एडवर्ड महोदय ने स्वयं रक्खी थी। उस समय युवराज की अवस्था में श्रीमान् यहाँ पधारे थे। इसमें सङ्गमरमर की सुन्दर जालियाँ और पत्थरों पर किया हुआ काम आगरे के ताजमहल का स्मरण करा देता है। दीवारों पर रङ्ग से अङ्कित जयपुर-नरेशों के चित्र तथा मिहराबों पर धर्म-शास्त्र और नीति-शास्त्र के आदर्श-वाक्य बड़े ही मनोहर मालूम होते हैं। अजायब-घर में हर प्रकार का सङ्ग्रह है। पीतल के प्राचीन यन्त्र वहाँ की ऐतिहासिक वस्तुयें हैं। उनके द्वारा ही जयसिंहजी ने ज्योतिष-विषय में बहुत कुछ खोज की थी और खगोल-शास्त्र का उद्धार किया था। इसी बाग़ में राजपूताने का नामी औषधालय मेयो-अस्पताल है।

नगर के उत्तर, ६ मील की दूरी पर, इस राज्य की पुरानी राजधानी आमेर है। कहते हैं, अयोध्या के राजा मान्धाता का पुत्र अम्बरीष यहाँ रहा करता था। इसी से इसका नाम आमेर या आम्बेर हुआ।

लगभग ६ शताब्दी तक यह नगर कछवाहा-वंश की राजधानी रहा। पर्वत की ऊँची श्रेणियों को उपयुक्त स्थान समझ कर, राजा मानसिंह ने यहाँ पर क़िला बनवाया था, जिसे जयगढ़ कहते हैं।

राजपूतों के अधिकार के पूर्व यहाँ मीना-जाति का आधिपत्य था। उनका बनाया हुआ कुन्तलगढ़ अद्यापि वर्तमान है। जगच्छिरोमणि तथा अम्बकेश्वर के मन्दिर, दीवान-ए-आम और ख़ास, एवं शीश-महल यहाँ के विख्यात स्थान हैं। नगर से ४½ मील पूर्व गलता नाम का एक स्थान है, जहाँ गालव-ऋषि ने तपस्या की थी। कदम्ब-कुण्ड, यज्ञ-कुण्ड और भक्तमाल के रचयिता नाभाजी के गुरु पयहारीजी की कन्दरा पवित्र स्थान हैं। पूर्वोत्तर में जयसिंहजी और रामसिंहजी की छतरियाँ दर्शनीय इमारतें हैं। जयसिंहजी की छतरी का नमूना लन्दन के दक्षिणी केनसिंगटन के अजायब-घर (South Kensington Museum) में रक्खा गया है। दोनों छतरियों की बनावट में विचित्रतायें भरी हुई हैं।

दक्षिण की तरफ़, सात मील की दूरी पर, साँगानेर में जैनियों का एक प्राचीन मन्दिर है। वह ग्यारहवीं शताब्दी में बना था। उसकी बनावट उसी तरह की है जिस तरह की कि अर्बुद-गिरि (Mount Abu) पर दीलवाड़ा के प्रसिद्ध जैन-मन्दिर की है। अठारह पीढ़ी पूर्व सङ्घवादजी राजा हुए थे। उनका मन्दिर भी वहाँ विद्यमान है। दादू-पन्थ चलानेवाले दादू जी का मठ भी वहीं है। दादूजी सन् १५४४ में अहमदाबाद से वहाँ आये थे और १६०४ तक वहाँ रहे। उनके ५२ शिष्य थे। प्रत्येक ने मठ बनाये, जो थम्भ कहलाते हैं। जो सुन्दरदासजी हिन्दी के नामी कवियों में गिने जाते हैं वे इन्हीं के शिष्य थे।

रन-थम्भौर का प्रसिद्ध ऐतिहासिक दुर्ग, सवाई-माधोपुर के निकट, जयपुर-राज्य में ही है। जिनके लाल पत्थर से देहली और आगरे के क़िले बने थे वे विन्ध्य की चट्टानें (Vindhyan Rocks) हिंडौन ज़िले में हैं।

जयपुर से राज्य की एक रेलवे लाइन सवाई-माधोपुर को और दूसरी शेखावाटी को जाती है। सवाई-माधोपुर की लाइन ७३ मील लम्बी है। उस पर बानास-नदी का पुल १६७४ फुट लम्बा और ६५ फुट ऊँचा है। दूसरी लाइन केवल रींगस तक अभी बनी है। शेष बन रही है। रींगस तक ३६ मील लाइन, श्रीमान् लार्ड चेम्सफ़ोर्ड महोदय ने खोली थी।

पुरुषोत्तम आचारी

नास्तिकों की विचार-परम्परा।

लोकायत-दर्शन के आधार पर नास्तिकों की विचार-परम्परा-विषयक थोड़ी सी बानगी नीचे दिखाई जाती है। हमें विश्वास है कि इससे नास्तिकों का समाधान होगा और परस्पर प्रेम की जागृति होगी।

ईश्वर अथवा परमेश्वर विभु (व्यापक, सर्वान्तर्यामी), सर्वज्ञ, गुरु, न्यायी, सर्वशक्तिमान्, नियामक (संसार के उद्भव, स्थिति और लय का कर्त्ता), करुणाकर (जीवों का रक्षक) और एकरस कहा जाता है। (लोकायत-दर्शन अध्याय २, पाद १, सूत्र १)। ईश्वर के गुण सापेक्ष माने गये हैं। (भाष्यकार)।

ईश्वर के गुण गणना में परिमित ही हैं। गणना कभी निःसीम नहीं होती। अतएव अनन्त ईश्वर के गुण भी गणना में साद्यन्त ही हो सकते हैं। (लो० २-१-३)। परिच्छिन्न अङ्कों का योग अनन्त नहीं हो सकता (भा०)।

"ईश्वर विभु है"—इस वाक्य से ईश्वर की व्यापकता बतलाई गई है। व्यापकता विस्तार को कहते हैं। लम्बाई, चौड़ाई इस (विस्तार) के अंश हैं। विस्तार (देश) जड़ की विभूति है। देश सीमारहित है। अतएव देश ही विभु (व्यापक, सर्वान्तर्यामी) है। (लो० २-१-१०)। संसार के समस्त पदार्थों के भीतर-बाहर देश ही है। देश निःसीम है। क्या निःसीम देश में परमेश्वर परिमित है? अथवा देश और ईश्वर एक ही द्रव्य के दो नाम हैं? (भा०)।

ईश्वर की सर्वज्ञता से यह समझा जाता है कि ईश्वर को समस्त पदार्थों का ज्ञान है। प्रकाश, ज्ञान और सुख यही प्रकृति के सत्त्व गुण कहे जाते हैं और अन्धकार अज्ञान, तथा दुःख को तमोगुण कहते हैं। अतएव सर्वज्ञता भी प्रकृति का गुण-मात्र है। (लो० २-१-१७)। ज्ञान ज्ञेयानुकूल होने के कारण वर्त्तमान काल से परिमित है। अतएव सर्वज्ञता में भविष्य ज्ञान का समावेश नहीं हो सकता। (लो० २-१-१८)।

ज्ञेय के परिवर्त्तन से ज्ञान में परिवर्तन होना अपरिहार्य है। इसलिए सर्वज्ञ का ज्ञान ज्ञेयानुकूल होने के कारण सदैव परिवर्त्तित होता रहता है। (लो० २-१-१९)।

प्रकृति के सत्त्व-गुण को जीव कहते हैं। प्रकृति के परिणाम महत् को बुद्धि, महत् के परिणाम अहङ्कार को मन, और अहङ्कार के परिणाम पञ्चतन्मात्राओं को इन्द्रियाँ कहते हैं। जीव, बुद्धि, मन और इन्द्रियाँ सब प्राकृतिक हैं। यदि जड़ चेतन के विरुद्ध माना जाय तो चेतन को जड़ का ज्ञान ही नहीं हो सकता। अतएव सर्वज्ञता भी प्रकृति का गुण है। ज्ञाता का ज्ञान ज्ञेय के अनुसार होता है। स्थाणु को सदैव स्थाणु ही मानना पड़ता है। यदि स्थाणु पुरुष कहा जाय तो स्थाणु पुरुषाकार नहीं बन जाता। अतएव ज्ञान को भिन्न रूप देने से ज्ञेय में भेद नहीं होता। वर्त्तमान ज्ञेय के अनुरूप ज्ञान वर्त्तमान काल से ही आबद्ध रहता है। भविष्यत, जिसके रूप को ज्ञेय ने धारण नहीं किया, सर्वज्ञता से सर्वथा गूढ़ रहता है। नाना ज्ञेयों की परिवृत्ति से सर्वज्ञ का ज्ञान एक-रस नहीं होता। (भा०)।

ईश्वर को गुरु कहने से यह आशय है कि ईश्वर सबका शिक्षक है। जो प्रत्येक देश में, प्रत्येक समय में, प्रत्येक प्राणी को उपदेश दे वही परम पुरोहित है। ये लक्षण संसार में ही घटते हैं। अतएव वही परम आचार्य है। (लो० २-१-३०)।

सर्वान्तर्यामी की शिक्षा प्रत्येक देश में, प्रत्येक अवसर पर, प्रत्येक प्राणी के योग्यतानुकूल ही हो सकती है। जो शिक्षण किसी विशेष देश, किसी विशेष काल और किसी विशेष प्राणी से ही सम्बन्ध रखता है वह व्यापकता-विगत होकर सृष्टि-नियम के विरुद्ध होने के कारण शीघ्र नष्ट हो जाता है। ज्ञान से कार्य-सम्पादन में क्षमता आती है। अतएव परम-आचार्य का शिक्षण आचारपरक होता है, केवल विचारपरक नहीं। ये लक्षण हम प्रकृति देवी की साक्षात् शिक्षा में ही देखते हैं। यदि ईश्वर प्रकृति से भिन्न माना जाय तो ऐसे व्यापक के निरन्तर सर्वाङ्ग-परिपूर्ण उपदेशों का किसी छात्र को अनुभव नहीं। संसार के समस्त विषयों का क्रमानुकूल, सर्वाङ्ग-परिपूर्ण और विश्वस्त वर्णन प्रकृति के अतिरिक्त किसी ग्रन्थ में नहीं। अतएव सर्वत्र, निरन्तर, साक्षात् शिक्षा देनेवाली प्रकृति देवी ही है। (भा०)।

ईश्वर को न्यायी कहने से यह अभिप्राय है कि परमात्मा प्राणियों को उनके शुभाशुभ कर्मों का सुख-दुःख-रूप फल देता है। अनुकूल अथवा प्रतिकूल स्थितियों के अनुभवों को सुख-दुःख कहते हैं। एक स्थिति से दूसरी स्थिति की प्राप्ति प्रत्येक प्राणी के प्रयत्नों का फल है। अतः प्रकृति ही साक्षात् न्याय-कर्त्री है। (लो० २-१-४५)।

प्रकृति से भिन्न ईश्वर और जीव मानने में यह जिज्ञासा होती है कि शरीररूपी बन्धन में आने के

पूर्व एक ही समान रूपवाले जीव परस्पर एक दूसरे को कैसे पहचानते हैं और क्या कुकर्म करते हैं? सर्वज्ञ गुरु के उपदेशों से इन जीवों की श्रद्धा किन कारणों से विचलित हो कर कुकर्म-परायण हो जाती है? क्या ईश्वर के नियमों का प्रत्येक प्राणी को ज्ञान है? दण्ड देते समय क्या ईश्वर इस लोक के राजादि द्वारा दत्त दण्डों का अथवा विद्वानों द्वारा निर्धारित प्रायश्चित्तादि का विचार करता है? क्या ईश्वर को दण्ड-विधान के लिए प्रकृति अथवा जीवों की सहायता की आवश्यकता है? सर्वज्ञ-दत्त दण्ड से पीड़ित प्राणियों को सहायता क्यों दी जाती है? एक प्राणी दूसरे का हनन करता है अथवा दूसरे को सहायता देता है। इस दशा में कर्त्ता एक और फल-भाक् दूसरा! क्या सर्वज्ञ परम गुरु के न्याय से प्राणियों में प्राणिहत्यादि की जागृति हुई? क्या प्राणियों ने दुष्टता से मुक्ति पाई? हितकर अथवा दुरित स्थितियों के अनुभवों के आकार सुख-दुःख हैं। ये अनुभव से अनायास प्राप्त होते हैं; जैसे प्राणी एक स्थान से चल कर दूसरे स्थान को प्राप्त होता है। अतएव क्रिया ऋजुता से फल देती है। यह प्रकृति का प्रसाद है। (भा०)

ईश्वर को सर्व-शक्तिमान् कहने का यही आशय है कि ईश्वर में सब शक्तियाँ हैं। अतएव वह बिना किसी की सहायता के प्रत्येक क्रिया कर सकता है। शक्ति जड़ की विभूति है। जलाने की शक्ति, बुझाने की शक्ति ये सब जड़-क्रियायें हैं। (लो० २-१-४६)।

ये समस्त शक्तियाँ परिमित हैं। क्रिया और समय के सम्बन्ध-रूपी मान-दण्ड से प्रत्येक शक्ति नापी जाती है। अतएव व्यापक ईश्वर की शक्ति परिमित है। (लो०२-१-५०)।

संसार में भिन्न भिन्न क्रियाओं के होने से शक्तियों की परिवृत्ति निरन्तर होती रहती हैं। (लो० २-१-५१)।

जलाने की शक्ति, बुझाने की शक्ति, भार उठाने की शक्ति आदि सभी शक्तियाँ जड़ हैं। एक शक्ति के विरुद्ध दूसरी शक्ति का प्रयोग यही सूचित करता है कि ये सब शक्तियाँ सान्त हैं। प्रकृति व्यतिरिक्त ईश्वर माननेवाले को परमेश्वर की शक्तियों को मर्यादित मानना पड़ेगा। पर ईश्वर व्याप्य, अज्ञ, अन्यायी, निःशक्त, नियम्य, शिक्षा-भिक्षुक आदि नहीं हो सकता। वह मुमुक्षुओं को दुःख और पापियों को सुख नहीं दे सकता। वह प्रत्येक प्राणी में सर्वाङ्ग-पूर्ण ज्ञान और शक्ति नहीं भर सकता। उसकी बनाई अथवा बनती हुई वस्तुओं को जीव नष्ट-भ्रष्ट कर डालते हैं। अतः निःसीम ईश्वर की शक्ति ससीम है। संसार में एक समय में भिन्न भिन्न क्रियाओं का होना भिन्न भिन्न शक्तियों को सूचित करता है। एक वृक्ष बन रहा है, दूसरा मिट रहा है। इस प्रकार शक्तियों के भिन्न भिन्न प्रयोगों से ईश्वर की एक-रसता भी नष्ट हो जाती है। (भा०)।

ईश्वर को नियामक कहने का यह आशय है कि परमेश्वर सबका नियमन-कर्त्ता है। संसार में संसरण की दिशा उद्भव और लय की ओर होती है। संसरण के वेग तथा मार्ग का आधार शक्ति है। उसका द्रव्य प्रकृति है। संसार का नियमन इसी प्राकृतिक शक्ति पर अवलम्बित है। (लो० २-१-५७)।

ईश्वर को जड़ से भिन्न मानने में व्यापक द्रव्य से क्रिया का होना ठीक न होगा। संसार की सृष्टि और संहार की परस्पर विरुद्ध शक्तियाँ एक ईश्वर में कैसे रह सकती हैं? संसार को बारम्बार बनाने और मिटाने के निमित्त ईश्वर को कौन विवश करता है? क्या यही नियन्ता है जिसकी बनी अथवा बनती हुई वस्तुओं को प्राणी नष्ट-भ्रष्ट कर डालते हैं? सर्वज्ञ गुरु की यह कैसी शिक्षा है जिसे प्राणियों की स्वतन्त्रता दूर फेंक देती है? क्या यही सर्व-शक्तिमान् नियामक है जिसकी नियति को

प्राणी कुचल डालते हैं? क्या इतने समय के नियमन ने प्राणियों में सुख-समृद्धि की जागृति की? संसार की समस्त क्रियाओं का आधार शक्ति है। वही नियमन-क्रिया करती है। (भा०)।

ईश्वर को करुणामय कहने का अभिप्राय यही है कि परब्रह्म आनन्दरूप होने से जगत् पर आनन्द-वृष्टि की कृपा करता है। देश तथा ऋतुओं के अनुसार प्रकाश, वायु, ताप, जल, फल आदि देनेवाली प्रकृति देवी ही है। (लो० २-१-६०)

प्रकृति से पृथक् ईश्वर और जीव मानने में ये प्रश्न उठ सकते हैं कि क्या क्षमापुञ्ज दुःख दे सकता है? क्या परम दयालु प्राणियों के दुःख दूर करके आनन्द दिये बिना विश्राम ले सकता है? क्या यह करुणा-निधान ही की करतूत है कि देहधारियों को इतना कष्ट, नाना देहों में, सहना पड़ता है? क्या यह उसी का अनुग्रह है कि प्राणियों को दुःख-कर मार्ग का या दुःख-निरोध के उपायों का ज्ञान नहीं? क्या यह उसी की कृपा है कि दुःखित प्राणियों की उससे भेट न हो? अतएव यही मानना अधिक युक्तिसङ्गत है कि प्रकाश, वायु, ताप, जल, फलादि से परिपूर्ण प्रकृति देवी ही अवस्था या अवसर के अनुकूल सब पर कृपा करती है। (भा०)।

ईश्वर की एक-रसता से यह समझा जाता है कि परब्रह्म का स्वरूप निरन्तर ज्यों का त्यों बना रहता है। चाहे परिणाम होता हो अथवा लय, परमाणुओं का स्वरूप ज्यों का त्यों बना रहता है। अतः प्रकृति देवी के ही रूप में स्थिरता है। (लो० २-१-६७)।

प्रकृति-व्यतिरिक्त परमात्मा की सर्वज्ञता ज्ञेय-परिवृत्ति-वशात् निरन्तर परिवर्त्तित होती रहती है। छात्रों की योग्यता के भेद से शिक्षा में भेद होना अपरिहार्य है। अभियोगों के भिन्नत्व से न्याय में भेद, क्रियाओं की विषमता से शक्तियों में विरसता, नियम्यों की पृथक् पृथक् स्थिति से नियन्तृत्व में अन्तर, दुःखों के अनेकत्व से करुणा में नानात्व-अभाव आदि कारणों से परमेश्वर की एक-रसता पर विश्वास करने को जी नहीं चाहता। किन्तु प्रकृति में ईश्वर के सभी गुण लक्षित हो जाते हैं। (भा०)।

(अनुवादक) शम्भू शर्म्मा

आकाङ्क्षा।

मोहन, पुनः आनन्दमय श्रुति-मधुर मुरली-तान हो;
जीवन-समर में शान्तिमय फिर पुण्य-गीता-गान हो।
म्रियमाण भारत को नवल स्वर्गीय जीवन-दान हो;
करुणा-सुधा के पान से जन का परम कल्याण हो ॥१॥
दारिद्र-दानव मनुज-शोणित से यहाँ है पल रहा;
सबको कुचलता चक्र दुखदुर्भाग्य का है चल रहा।
घर घर कलह के रूप में फल फूट का है फल रहा;
विद्वेष-दावानल मनोवन में भयङ्कर जल रहा ॥ २ ॥
ये दूर हों—इनका प्रभो! अब शीघ्र ही संहार हो;
सद्भाव से सुरभित सुखद यह स्वर्ग का संसार हो।
मानव-हृदय औदार्य्य-वर उत्साह का आगार हो;
निःस्वार्थ पावन प्रेम का सर्वत्र ही सञ्चार हो ॥ ३ ॥
गोपाल, अपनी प्रिय धरा पर सदय शीघ्र पसीजिए;
केशव, करुण क्रन्दन श्रवण कर कुछ कृपा अब कीजिए।
माधव, मलय-मारुत-समुन्नति का बहा फिर दीजिए;
हे राधिका-रञ्जन, स्वजन को शरण में रख लीजिए ॥४॥

ज्योतिषचन्द्र घोष

लुई पास्टुर।

फ्रांस के प्रसिद्ध रसायन-शास्त्रवेत्ता लुई पास्टुर की गणना उन वैज्ञानिकों में है जिनके आविष्कारों से संसार को अपरिमित लाभ पहुँचा है। संसार में न तो विद्वानों का अभाव है और न कीर्तिमान् पुरुषों का। परन्तु ऐसे थोड़े ही लोग होते हैं जो संसार में सुख और शान्ति फैलाने की चेष्टा में ही अपना जीवन लगा देते हैं। वे किसी

स्वार्थ-भाव से प्रेरित होकर उद्योग नहीं करते। सच तो यह है कि अपने उद्योग में वे ऐसे लीन हो जाते हैं कि उद्योग ही उनका जीवन हो जाता है। लुई पास्टुर ऐसे ही मनुष्य थे। उनके समान उद्योग-शील मनुष्य थोड़े ही होंगे।

लुई पास्टुर का जन्म २७ दिसम्बर सन् १८२२ ईसवी को हुआ था। उसके पिता साधारण स्थिति के गृहस्थ थे। वे चमड़े का रोज़गार करते थे। पास्टुर को अपने जन्म-स्थान से बड़ा प्रेम था। एक बार जब वह पेरिस में बीमार पड़ा तब उसने अपने साथी से कहा—"यदि मैं एक बार भी अपने पिता के चमड़े के कारख़ाने में जा सकूँ तो ज़रूर अच्छा हो जाऊँ"। जन्मस्थान के प्रति लुई का यह प्रेम सदैव बना रहा। कदाचित् यही कारण है कि लुई के स्वभाव में इतनी सरलता और स्नेह था।

बाल्यावस्था में लुई की कुछ भी प्रसिद्धि नहीं हुई। उसके जन्म के बाद उसका पिता सपरिवार अराबई (Arbois) नामक स्थान में चला आया। यहीं लुई को प्रारम्भिक शिक्षा मिली। साधारण शिक्षा पा लेने के बाद यहीं एक कालेज में वह भरती हुआ। उसकी गणना साधारण विद्यार्थियों में की जाती थी। पर लुई के सौभाग्य से यहीं एक अध्यापक से उसका परिचय हो गया। उस अध्यापक ने लुई में प्रतिभा के चिह्न देखे और उसी ने लुई को इस बात के लिए उत्साहित किया कि वह पेरिस जाकर इकोली नारमेली (Ecole Normale) नामक संस्था में भरती हो। १८३८ में लुई अपने एक मित्र के साथ पेरिस गया भी। वहाँ जाकर उसने एक स्कूल में नाम भी लिखाया। पर थोड़े ही दिनों के बाद उसका स्वास्थ्य बिगड़ गया और वह घर लौट आया। परन्तु नारमेली में भरती होने की आकाङ्क्षा घटी नहीं। कुछ समय के बाद वह बेसानकान (Besancon) के रॉयल कालेज में भरती हुआ। १८४० में वह पदवीधर हो गया और उसी कालेज में गणित का सरकारी अध्यापक भी नियुक्त हुआ। दो साल के बाद परीक्षा देकर उसने विज्ञान की भी पदवी प्राप्त करली और वह नारमेली के लिए उम्मेदवार हुआ। परन्तु कदाचित् परीक्षक की भूल से यहाँ उसे जो प्रशंसापत्र (डिप्लोमा) मिला था उसमें यह लिखा था कि उसका रसायनशास्त्र में बहुत साधारण ज्ञान है।

उस समय डूमा सबसे प्रसिद्ध रसायन-शास्त्र-वेत्ता थे। उन्हीं का एक व्याख्यान सुन कर पास्टुर को भी रसायन-शास्त्र में विशेष विज्ञता प्राप्त करने की इच्छा हुई। सौभाग्य से उसे एक अच्छा अवसर भी मिल गया। बलार्ड ने उसे रासायनिक प्रयोग-शाला में सहकारी के पद पर नियुक्त कर दिया। तब से वह अनुसन्धान करने लगा और शीघ्र ही उसकी कीर्ति फैल गई। जब उसने पहले पहल रसायन-शास्त्र में एक खोज की तब किसी ने उसके कथन को प्रामाणिक न माना। बिआट (Biot) साहब विज्ञान के धुरन्धर आचार्य समझे जाते थे। पास्टुर से उनका परिचय होगया था। उन्होंने भी पास्टुर की बातों पर विश्वास न किया। पर जब पास्टुर ने उनके सामने प्रयोग कर के अपने कथन को प्रमाणित कर दिया तब वे चकित हो गये।

उन्होंने पास्टुर की बड़ी प्रशंसा की। बस, उसी दिन से पास्टुर की गणना विज्ञान-विशारदों में होने लगी। स्टैस्बर्ग में फेकल्टी आव् साइन्स में तुरन्त ही उसे रसायन-शास्त्र के अध्यापक का पद मिल गया। यहीं उसने एक सुन्दरी का पाणि-ग्रहण किया। धीरे धीरे उसकी कीर्ति बढ़ने लगी। १८५४ में वह लिली में विज्ञान का अध्यापक नियुक्त हुआ। यहीं उसने वह खोज की जिसके कारण उसका नाम सर्वत्र फैल गया।

बीअर (Beer) आदि शराब प्रायः बिगड़ जाती थी। उनमें यह एक तरह का रोग था। इस रोग का प्रतीकार कोई भी वैज्ञानिक नहीं कर सका।

एक बार पास्टुर साहब शराब की किसी भट्टी में गये। वहाँ अच्छी और बुरी, दोनों तरह की, शराब मौजूद थी। उन्होंने खुर्दबीन से खमीर की जाँच की। अच्छी शराब में जो दाने (Globules) थे वे तो गोलाकार थे, पर खराब शराब के दाने टेढ़े मेढ़े थे। इसी से उन्होंने यह सिद्ध किया कि स्वयमेव उत्पत्ति की कल्पना भ्रमपूर्ण है। अभी तक खमीर का विषय बड़ा रहस्यमय था। पास्टुर ने ही सब से पहले उसे स्पष्ट कर दिया। उन्होंने बतलाया

लुई पास्टुर।

कि खमीर में जो विकार होते हैं उनका कारण फ़रमेंट (Ferments) नामक जीवाणुओं का अस्तित्व और उनकी वृद्धि है। यदि ये जीवाणु किसी प्रकार से निकाल दिये जायँ तो फिर कोई भी विकार न हो। जिस हवा से जीवाणु निकाल दिये गये हों वहाँ रक्खे रहने से दूध हमेशा मीठा बना रहेगा। तब यह प्रश्न होता है कि हवा में दूध को खुला छोड़ देने से वह खट्टा क्यों हो जाता है। क्या ये सूक्ष्म जीवाणु हमेशा ही हवा में बने रहते हैं? क्या ये खमीर होने योग्य रस के सम्पर्क से उत्पन्न नहीं होते? इसी बात पर बहुत दिनों तक वैज्ञानिकों में विवाद होता रहा। परन्तु अन्त में जीत पास्टुर साहब ही की हुई। उन्होंने प्रमाणित कर दिया कि हवा से जीवाणुओं के निकाल लेने पर किसी प्रकार का विकार नहीं हो सकता। पास्टुर साहब के इस आविष्कार से बड़ा लाभ हुआ। लिस्टर नामक एक साहब ने चीर-फाड़ की क्रिया में इसका उपयोग बड़ी सफलता से किया।

पास्टुर की बड़ी प्रतिष्ठा हुई। अन्य देशों ने भी उसका सम्मान किया। इकोलीं नारमेली (Ecole Normale) में उसको एक प्रतिष्ठित पद मिला। परन्तु यह सम्मान उसे योंही नहीं मिल गया। इसके लिए बड़े बड़े विरोधों का सामना करना

पड़ा। उसके कई मित्र तक उसके विरोधी हो गये थे। विश्राट (Biot) उसे पुत्रवत् मानता था। परन्तु उसने भी साफ़ साफ़ कह दिया कि पास्टुर का कार्य बिलकुल भ्रम-पूर्ण है; उसे सफलता मिलने की नहीं। डूमा ने भी उसे यह काम छोड़ देने की सलाह दी। परन्तु पास्टुर अपने सिद्धान्त पर निश्चल रहा। अन्त में अपने अपूर्व धैर्य और विलक्षण अध्यवसाय से उसने पूरी सफलता प्राप्त की।

इसके बाद पास्टुर के धैर्य और अध्यवसाय की कठोर परीक्षा हुई। फ्रांस में रेशम तैयार करनेवालों में एक भयानक रोग फैल गया था। डूमा ने उसका अनुसन्धान करने के लिए पास्टुर से अनुरोध किया। पास्टुर ने तब तक रेशम का कीड़ा भी नहीं देखा था। इसलिए पहले तो वह इस काम से हिचका, पर अपने एक मित्र के अनुरोध को वह टाल न सका। १८६५ के जून में वह गया और सेप्टेम्बर में उसने अपने अनुसन्धान का फल प्रकाशित किया। इसका परिणाम यह हुआ कि लोगों का डर बिलकुल ही दूर हो गया। पास्टुर साहब ने उस रोग का निदान और प्रतीकार दोनों ढूँढ़ निकाले। फ्रांस का रेशम का व्यवसाय इससे खूब बढ़ा। पास्टुर साहब ने एक बार कहा था—There is no greater charm for the investigator than to make new discoveries, but his pleasure is heightened when he sees that they have a direct application to practical life. अर्थात् वैज्ञानिक को तो आविष्कार करने में ही आनन्द आता है, परन्तु जब उसका आविष्कार मानव-जीवन के लिए हितकर प्रमाणित हो जाता है तब तो उसके आनन्द की सीमा ही नहीं रहती।

रोगों के प्रतीकार के लिए पास्टुर ने जो आविष्कार किया उसका मूल-सिद्धान्त डाक्टर जेनर द्वारा पहले ही प्रतिपादित हो चुका था। १७९६ में जेनर ने चेचक की टीका निकाली थी। परन्तु पास्टुर ने उस सिद्धान्त के कार्यक्षेत्र को खूब बढ़ा दिया। उनकी रीति के अनुसरण का आश्चर्यजनक परिणाम हुआ। जान पड़ता है, सभी संसर्गज रोगों के प्रतीकार के लिए पास्टुर साहब का आविष्कार उपयोगी सिद्ध होगा। जिस तरह ख़मीर में एक विशेष प्रकार के जीवाणु होते हैं उसी तरह रोगों की भी उत्पत्ति जीवाणुओं से होती है। यदि कोई चाहे तो वह इन जीवाणुओं को पैदा कर सकता है। कृत्रिम उपायों से इन जीवाणुओं का बीज क्षीण कर दिया जाता है और यदि वह बीज किसी प्राणी के शरीर में प्रवेश करा दिया जाय तो उस रोग का भयानक प्रकोप न होगा; बहुत साधारण बुख़ार आ जायगा। परन्तु उसको फिर उस रोग का डर न रहेगा। यही (Virus) बीज (Vaccine) दवा हो गई। फ्रांस में मुर्ग़ियों को एक रोग होता था। वह एक तरह का हैज़ा था। उससे हज़ारों मुर्ग़ियाँ मर जाती थीं। पास्टुर साहब ने अपने सिद्धान्त का प्रयोग किया और उन्हें आशातीत लाभ हुआ। मुर्ग़ियों की मृत्यु-संख्या एक-दम घट गई। फिर उन्होंने भेड़ों और बैलों के रोग में इसे प्रयुक्त किया। उनको टीका लगाया गया और उससे उन्हें भी बड़ा लाभ हुआ।

सबसे बड़ा काम पास्टुर साहब ने यह किया कि उन्होंने जलातङ्क-रोग (Hydrophobia) की चिकित्सा ढूँढ़ निकाली। पागल कुत्ते, सियार आदि जानवरों के काट खाने से यह रोग होता है। यह बड़ा ही भयानक और कष्टदायक रोग है। पास्टुर साहब ने पागल कुत्तों पर परीक्षा आरम्भ की। परीक्षा करने पर उन्हें मालूम हुआ कि जो पशु इस प्रकार के रोग से पीड़ित हैं उनकी मज्जा धातु में इस रोग का बीज होता है। उन्होंने यह सिद्ध किया कि यदि किसी पागल कुत्ते की पृष्ठ-मज्जा (Spinal Cord) से इसका कुछ अंश निकाल कर किसी नीरोग कुत्ते के शरीर में प्रविष्ट करा

दिया जाय तो वह कुत्ता भी पागल हो जायगा। तब पास्टुर ने इसमें टीका लगाने के सिद्धान्त का प्रयोग किया। उन्होंने देखा कि जिन कुत्तों के टीका लगाया गया है उन्हें पागल कुत्ते के काट खाने पर भी रोग नहीं होता। इस पर उन्होंने इस बात की परीक्षा आरम्भ की कि पागल कुत्ते के काट लेने के बाद टीका लगाने से लाभ होता है या नहीं। इसमें उन्हें सफलता हुई। तब उन्होंने इस रोग को दूर करने के लिए चिकित्सालय खोला। हज़ारों मनुष्यों की चिकित्सा करके उन्होंने बड़ा नाम कमाया। आजकल सभी देशों में पास्टुर साहब के चिकित्सालय खोले गये हैं। ये सब पास्टुर इन्स्टिट्यूट (Pasteur Institute) कहलाते हैं। भारतवर्ष में इस तरह के दो चिकित्सालय हैं। एक तो नीलगिरि पर कोनूर नामक स्थान में, और दूसरा कसौली में।

इस प्रकार अपने आविष्कारों से जगत् का असीम उपकार करके २८ सितम्बर १८९५ को पास्टुर साहब ने अपना यह नश्वर शरीर छोड़ दिया। परन्तु उनका यशःशरीर सदैव विद्यमान रहेगा—"कीर्तिर्यस्य स जीवति"।

मौलिक ग्रन्थ और अनुवाद।

देश में नये युग का आविर्भाव हो रहा है। हमारी सभी चीज़ों पर इसका प्रभाव परिलक्षित हो रहा है। साहित्य पर भी इसका असर पड़ा है। हिन्दी में कई प्रकाशकों ने अपना कार्य-क्षेत्र बढ़ाया है। कई लोग अपना पुराना व्यवसाय छोड़ कर इस काम में जुट गये हैं। दो एक के कार्य सफलता प्राप्त करने योग्य जँचते भी हैं। लेखक और कवि भी, बड़ी शीघ्रता से, साहित्य की वृद्धि करने पर उद्यत हैं। दिन पर दिन नये नये पत्रों का जन्म होता है और उनमें कुछ ऐसे भी हैं जिनके जीवित रहने की आशा के कारण हैं।

नवीनता साहित्य की जागृति का चिह्न है, क्योंकि उससे मौलिकता प्रकट होती है। हिन्दी-साहित्य का यह शुभ लक्षण है कि उसमें नवीन साहित्य का निर्माण हो रहा है। पर इन साहित्य-सेवियों में ऐसे ही लोग अधिक हैं जो और भाषाओं में प्रकाशित लेखों या पुस्तकों का अनुवाद कर देते हैं, या उनके आधार पर लिख-लिखा देते हैं। इधर जनता को ऐसे लेखों और क़िस्से-कहानियों से सन्तोष नहीं होता। वह चाहती है बिलकुल मौलिक लेख, कविता और आख्यायिका आदि। पर हिन्दी में इतने मौलिक लेखक मिलें कहाँ से। अतएव नाक-भौं सिकोड़ कर अनुवाद-ग्रन्थों से ही उसे सन्तोष करना पड़ता है। तथापि मौलिकता की प्रबल माँग जारी है।

मौलिक ग्रन्थ, लेख या कविता लिखना सबका काम नहीं। उसके लिए लेखन-पटुता चाहिए, अध्ययन चाहिए और सबसे अधिक चाहिए प्रतिभा। किन्तु सबमें ये गुण नहीं। किसी में कुछ कमी है, किसी में कुछ। और मौलिक लेखकों की कमी कुछ हिन्दी में ही नहीं है, सभी जगह है। अधिकता है, अनुवादकों और आधार पर लिखने-वालों ही की। फिर यह भी तो निश्चित नहीं कि जितने लेखक मौलिक लेख लिखते हैं वे सभी उत्तम ही लिखते हों। अतएव ऐसे मौलिक लेखों का आदर न होने से वे लेखक भी अनुवाद ही करने लग जाते हैं। मौलिक लेख तो संसार में हर साल बहुत ही थोड़े लिखे जाते हैं। और संसार में ऐसे हैं ही कितने मस्तिष्क जो मौलिक लेख लिख लिख कर संसार का उपकार किया करते हों। यह तो परमेश्वर का प्रसाद है, जिसे प्राप्त

हो गया हो गया। इन्हीं इने-गिने मस्तिष्कों की उपज से संसार के साधारण लेखक भाव ग्रहण करके, अपनी अपनी भाषाओं में, लेख आदि लिखते हैं; पर इस बात को बहुत थोड़े लोग जानते हैं कि अमुक लेख किस लेखक के सूत्र की व्याख्या है। जनता तो उसे अपने उसी प्रिय लेखक की समुद्भाविनी प्रतिभा का फल मानती है। माना करे, जो बात सच है सदा सच रहेगी। अन्तर इतना ही है कि एक के विचार पढ़ कर दूसरे के मन में उसी से मिलती जुलती बातों की स्फूर्ति होती है। तीसरा लेखक मूल लेखक की बातों में कुछ और नमक-मिर्च मिला कर लिख देता है और सबसे गया-बीता लेखक ज़रा सा अदल बदल कर ज्यों का त्यों रख देता है।

इसके बाद अनुवादकों का नम्बर है। दूसरे के विचारों को वे अपनी भाषा में व्यक्त कर देते हैं। बस, इससे ज़ियादह वे कुछ नहीं कर सकते। पर अनुवाद करना भी सबका काम नहीं। मूल लेखक के भाव को ठीक ठीक न समझ सकने के कारण कोई-कोई अनुवादक कुछ का कुछ लिख देते हैं। कुछ अनुवादक ऐसा अनुवाद करते हैं कि उसे समझने के लिए मूल लेख या ग्रन्थ पढ़ने की ज़रूरत होती है। इसका कारण यह है कि अनुवादक स्वयं नहीं जानता कि मूल लेखक का मतलब क्या है। भाव समझने में असमर्थ होकर वह प्रत्येक शब्द का अनुवाद-मात्र कर देता है। ऐसा करने से उसके लिखे वाक्य ऊल-ज़लूल और कभी कभी निरर्थक हो जाते हैं। अनुवाद में भाव प्रधान है। अनुवाद ऐसा होना चाहिए जिससे पढ़नेवाले की समझ में मूल लेखक का भाव आसानी से आजाय। यह आवश्यक नहीं कि मूल के प्रत्येक शब्द का अनुवाद अवश्य ही रहे। इसके लिए अनुवादक मनमाने शब्दों का प्रयोग कर सकता है। उसे और सब अधिकार है। वह सिर्फ़ भाव को बदल डालने का अधिकारी नहीं। जो अनुवादक इस काम में अभ्यस्त है वही यथार्थ अनुवादक है।

दूसरी भाषाओं के लेखों और पुस्तकों का अपनी भाषा में अनुवाद न किया जाय तो साहित्य की बहुत हानि हो। क्योंकि सभी लोग मौलिक लेख लिख नहीं सकते; और दूसरी भाषाओं में जो अच्छी अच्छी बातें मौजूद हैं वे अनुवाद या आधार के बिना हमारी भाषा में न आवें तो हमें उनका ज्ञान ही न हो। हमारी दशा कूप-मण्डूक की सी हो जाय। मौलिक ग्रन्थ यदि सूर्य हैं तो अनुवाद-ग्रन्थ दीपक हैं, जो अंशतः सूर्य का ही काम देते हैं। और अनुवाद होता किस भाषा में नहीं है? मराठी, उर्दू और बँगला की बात जाने दीजिए। अँगरेज़ी का साहित्य बहुत उच्च माना जाता है, पर यदि उसकी तलाशी ली जाय तो उसमें भी अनुवादित ग्रन्थों की ही संख्या अधिक निकलेगी। अँगरेज़ी में अनुवाद-ग्रन्थों की प्रचुरता होने पर भी मौलिक ग्रन्थ भी उसमें लिखे ही जाते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि जिन्हें आरम्भ से ही अनुवाद करने की लत पड़ जाती है वे प्रायः मौलिकता खो बैठते हैं। उनका मस्तिष्क रेल की पटरी की तरह एक आधार चाहता है। अपने लिए वह आप मार्ग प्रस्तुत नहीं करता। और यदि पटरी छोड़ कर चलता है तो पग पग पर झिझकता है। डरता है कि अब गिरे और बड़ी मुश्किल से अपने उद्देश के समीप तक पहुँच सकता है। किन्तु यह कोई निश्चित बात नहीं कि यदि वह अनुवादक न बन जाता तो मौलिकता उसमें ज़रूर ही होती। बहुत सम्भव है, अनुवादक की हैसियत से उसने जितनी साहित्य-सेवा की होगी उतनी भी मौलिकता के फेर में पड़ने पर उसके हाथ से न होती। उसका

कार्यक्षेत्र ही बदल जाता। ऐसी दशा में उसका काम उन लोगों को करना पड़ता जो मौलिकता के लिए विश्रुत हैं। दूसरे, मौलिकता का आदर होने लगे और अनुवाद का आदर एक सीमा के भीतर रहे तो जिनमें जैसी योग्यता है वे उसी ओर को उन्नीत हो जावें। परन्तु मौलिकता के नाम पर कोरा ढोल पीटने और कार्यतः कुछ न करने से उस ओर लोगों की प्रवृत्ति नहीं हो सकती। इसके सिवा चतुर मनुष्य के किये हुए अनुवाद में भी बहुत कुछ मौलिकता आजाती है। अनुवादक-अनुवादक में अन्तर है। ऐसे भी उदाहरण विद्यमान हैं कि कुछ लोग अनुवाद करते करते मौलिक लेख लिखने में भी पटु हो गये। अनुवाद का काम तो बड़ों बड़ों ने किया है। अँगरेज़ी-भाषा में डाक्टर जान्सन का बड़ा नाम है। उन्होंने भी कुछ पुस्तकों का अनुवाद किया है। फ्रांस के प्रसिद्ध कवि वालटेर ने भी अनुवाद का काम किया है। पोप ने तो होमर के काव्यों का अनुवाद करके धन और यश दोनों ही प्राप्त किये।

सभी देशों के साहित्य में एक बार परिवर्तन-काल आता है। यह उसी समय होता है जब किसी समाज पर किसी भिन्न जाति की सभ्यता का प्रभाव पड़ता है। जातियों के पारस्परिक मेल जोल से नये नये भावों की सृष्टि होती है। उन भावों को एक जाति दूसरी जाति से ग्रहण कर के अपना-लेती है। इसी समय अनुवाद-ग्रन्थों की आवश्यकता पड़ती है। जब ग्रीस और भारत का सम्मिलन हुआ, जब मुसलमानों के साथ हिन्दुओं का मेल हुआ अथवा जब मुग़लों ने भारत के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित किया तब अनुवादकों के द्वारा ही एक ने दूसरे से ज्ञान ग्रहण किया। साहित्य में अनुवादों का स्थान स्थायी नहीं है, पर इसमें सन्देह नहीं कि उनसे साहित्य में कुछ नवीन विषय चिरकाल के लिए आजाते हैं। हिन्दू-ज्योतिषशास्त्र पर यूनान के सिद्धान्तों का जो प्रभाव आज लक्षित हो रहा है उसके लिए कितने अनुवाद हुए होंगे, यह कौन कह सकता है।

लक्ष्मीप्रसाद पाण्डेय

प्रार्थना।

दयामय, मूँद लिये क्यों कान ?
हाय ! कहाँ तक तुम्हें पुकारें, हुए बहुत हैरान !
ढूँढ़ा तुमको वन-उपवन में, किया करुण-आह्वान।
किन्तु प्रभो ! तुम मिले नहीं, हो चला दिवस-अवसान !
यों ही है इन आँखों में तो छाया तम-अज्ञान।
ढूँढ़ेंगे फिर तुम्हें निशा में कैसे हे भगवान् !
जब तक श्वास बना है तन में, जब तक हैं ये प्राण—
तब तक तो प्रभु ! किसी भाँति तुम देना दर्शन-दान॥
हे सर्वज्ञ, सुनावें क्या हम अपना दुःख महान।
सहते हैं हम दुःख विविध विधि, नहीं स्वीय कल्याण॥
यद्यपि मनुज कहाते हैं हम, हमें आत्म-अभिमान—
मिलता प्रभो ! न क्यों है जग में हमें उचित सम्मान ?

मनोहरप्रसाद मिश्र

मुग़लों का सामाजिक जीवन।

अदीब के भूत-पूर्व सम्पादक श्रीयुत प्यारेलाल (शाकिर) ने लखनऊ से उर्दू का एक नया मासिक पत्र निकाला था। उसके मार्च १९१३ के अङ्क में, बाबू डिप्टीलाल साहब निगम, बी० ए० का लिखा हुआ, मुग़लों के सामाजिक जीवन पर एक बहुत अच्छा लेख प्रकाशित हो चुका है। उसी का आशय इस लेख में दिया जाता है।

मुग़लों के पुराने समय के इतिहास पर ऐसा परदा पड़ा हुआ है कि आज-कल उसका पता लगाना बहुत कठिन है। हमें यह भी नहीं मालूम कि पहले-पहल संसार में वे कहाँ पैदा हुए और कहाँ बसे।

हिन्दुस्तान के सम्बन्ध में हमें तीन श्रेणियों के

मुग़ल मिलते हैं:—(१) चंगेज़ख़ाँ और उसके साथी, (२) तिमिरलंग और उसके अनुयायी, (३) बाबर और उसकी फ़ौज के लोग। पुराने ज़माने में जो ख़ासियतें मुग़लों में थीं और बाद को भी जो कुछ कुछ बनी रहीं उन्हीं का वर्णन नीचे किया जाता है—

मुग़ल बड़े लड़नेवाले, तगड़े, बहादुर और बली थे।

पहले वे मज़हब के बहुत पक्के न थे। ऊपरी तड़क भड़क को वे बहुत पसन्द करते थे। बहुत से लोगों की राय है कि मुसलमान-धर्म के कट्टर विद्वान् उन्हें मुसलमान कहने से इनकार करते थे। और, वास्तव में यह बड़े तअज्जुब की बात है कि औरंगज़ेब के राज्याधिकार के समय तक कोई भी मुग़ल बादशाह कट्टर मुसलमान न था। यह भी सच है कि मुग़ल लोग ख़तने की रस्म को तुच्छ दृष्टि से देखते थे। सर टामस रो ने, ३० आक्टोबर सन् १८१६ ईसवी को, आर्क-बिशप आव् कैंटरबरी को एक पत्र लिखा था। उसमें उन्होंने और बातों का ज़िक्र करते हुए यह भी लिखा था कि जहाँगीर का ख़तना नहीं हुआ था। ग़दर से कुछ पहले, सन् १८५७ ईसवी में, देहली के बादशाह बहादुरशाह ने अपने छोटे बेटे शाहज़ादे जवाँबख़्त को युवराज बनाने के लिए कोशिश की थी। इसका कारण यह बताया जाता है कि बड़े बेटे फ़ख़रुद्दीन का ख़तना हो चुका था। इसलिए वह युवराज-पद के अयोग्य समझा गया और जवाँबख़्त को उत्तराधिकारी बनाने के लिए प्रयत्न किया गया। मुग़ल-बादशाहों में सबसे अच्छी बात यह थी कि वे मुसलमान, ईसाई और हिन्दू इत्यादि सभी मतों के लोगों को सम-दृष्टि से देखा करते थे। सभी से वे बराबरी का बर्ताव करते थे और बड़े मेल-जोल से चलते थे। भिन्नमताव-लम्बियों से जज़िया लेना बन्द कर दिया गया था। और यदि औरंगज़ेब अपने पूर्वज बादशाहों का अनुसरण करता तो सिक्खों और मरहटों की शक्तियाँ कभी भी जड़ न जमा सकतीं।

इस जगह यह सवाल किया जा सकता है कि मुग़ल किस दशा में भारतवर्ष आये? उनमें कौन कौन सी बातें अच्छी थीं जो पीढ़ी दर पीढ़ी चली आई थीं और कौन कौन बातें उन्होंने यहाँ के बादशाहों और राजाओं को देख कर सीखी थीं? शुरू में वे बड़े लड़ाकू थे; बड़े बहादुर भी थे। लेकिन पढ़ने-लिखने की ओर उनका बहुत कम ध्यान था। उस समय के मुग़लों का बयान मीर ख़ुसरो ने क़ुरानुस्सदी में किया है। उससे उनकी आदत, शारीरिक रूप-रङ्ग और रहन-सहन का अच्छा पता लगता है। उसकी एक शेर से यह ज़ाहिर होता है कि जब मुग़ल हिन्दुस्तान में आये तब उनको इतनी भी तमीज़ न थी कि ऊँट पर क्योंकर सवार हुआ जाता है। एक शेर में उनकी बहादुरी, उनके पराक्रम, उनके शरीर के गँठीलेपन और उनके पहनावे का वर्णन है। एक और शेर से हमें यह मालूम होता है कि उनके चेहरे का रङ्ग सुर्ख़ अङ्गारे के समान था और वे लोग अधिकतर ऊन की टोपियाँ पहनते थे। ऊन या तो भैंस की पूँछ की होती थी या भेड़ या बकरी की। वे अपना सर मुँड़ाते थे। उनकी आँखें छोटी थीं। वे शारीरिक स्वच्छता की कुछ भी परवा न करते थे। इस कारण उनके बदन से बू आया करती थी। उनका चेहरा भरा हुआ था, पर कहीं कहीं उस पर बल पड़े हुए थे। उनकी नाक चौड़ी और मुँह बहुत चिपटा था। नाक के नथुने बड़े बड़े थे। वे बाल बनाने या सँवारने की ओर भी ध्यान न देते थे। नाक के बाल बढ़ कर होठों तक आ जाते थे। मुच्छें बढ़ कर बेढंगी हो जाती थीं।

ये उस समय की बातें हैं जब मुग़ल लोग अव्वल ही अव्वल हिन्दुस्तान में आये थे। यहाँ आने और सभ्य जातियों से मिलने-जुलने पर उन्होंने अपने पहनावे और रहन-सहन में बहुत कुछ उन्नति करली। पराक्रमी होते और युद्ध में विजय पाने से लोग बड़ी बड़ी डींगें हाँकने लगे थे। निस्सन्देह उनकी डींगें बिलकुल निःसार भी न थीं।

अब हमें यह देखना है कि जब पहले-पहल मुग़ल हिन्दुस्तान में आये तब यहाँ की क्या दशा थी। उस समय यहाँ प्राचीन सभ्यता का अखण्ड साम्राज्य था और पुरानी ही शिक्षा-प्रणाली का सर्वत्र अनुसरण होता था। इन्तिज़ाम भी पुराने ढङ्ग का था। सफ़र के तरीक़े भी पुराने ही थे। ग़ज़नवी, ग़ुलाम और तुग़लक़ ख़ानदान के बादशाहों में इतनी समझ

न थी कि वे कोई नई बात निकाल सकें। उन्होंने राज्य-शासन की वही पद्धति क़ायम रक्खी जो कि पहले से चली आ रही थी। जन-साधारण इन बातों से बिलकुल ही उदासीन थे। जो बादशाह हुआ या जिसने हिन्दुस्तान फ़तह किया उसने वही पुरानी शासन-प्रणाली क़ायम रक्खी। हाँ ऊपरी बातों में कुछ फेर-फार ज़रूर हो जाता था; पर शासन का ढङ्ग जैसे का तैसा ही बना रहता था। तुज़के-बाबरी के पढ़ने से यह मालूम होता है कि उस ज़माने में बन्दोबस्त-मालगुज़ारी का भी सिलसिला था।

प्राचीन सभ्यता के साथ साथ फ़ारिस और अरब की सभ्यता की झलक भी उस समय मौजूद थी। उसे मुसलमानी बादशाहों ने ही फैलाया था। मुग़लों ने उसे और भी तरक्क़ी दी। सोलहवीं शताब्दी से लेकर अँगरेज़ों के शासन-काल तक भारतवर्ष में फ़ारसी का बड़ा मान था। अदालत की भाषा भी फ़ारसी ही थी। मुग़लों के शासन-काल में विद्वान्, पुस्तक-लेखक और ग्रन्थकार अधिकांश में फ़ारस ही के निवासी थे। वैद्य-हकीम भी फ़ारस ही से बहुधा आते थे। शाहजहाँ और औरङ्गज़ेब के ज़माने में वीनिस का रहनेवाला मिनिक्सी नाम का एक यात्री भारतवर्ष-पर्य्यटन के लिए यहाँ आया था। वह लिखता है कि उस वक्त देहली में पचीस हकीम थे। वे सबके सब फ़ारस के ही निवासी थे। मिनिक्सी का आदर दरबार में इसी लिए हुआ था कि वह फ़ारसी ख़ूब बोल सकता था।

इन बातों से यह सिद्ध होता है कि (१) मुग़लों की गवर्नमेंट प्राचीन हिन्दू-शासन-प्रणाली के ढाँचे पर बनी थी। (२) मुग़लों की सभ्यता फ़ारिस और अरब की सभ्यता से मिलती-जुलती थी। (३) मुग़ल बड़े बहादुर और वीर थे। इसी कारण वे जर्जरित और मृतप्राय मुसलमानी राज्य को पूर्ववर्ती ख़ानदान से छीन कर अपने अधीन कर सके थे।

यहाँ पर यह ज़रूरी मालूम होता है कि हम जिस ज़माने का ज़िक्र आगे करेंगे उस ज़माने के बादशाहों के नाम, शासन और मृत्यु के समय का उल्लेख भी कर दें।

(१) बाबर—सन् १५२४ ईसवी से १५३० ईसवी तक—मुग़लों के भारत-विजय का समय।

(२) हुमायूँ—१५३० से १५५६ तक—मुग़लों की बढ़ती हुई ताक़त में रुकावट।

(३) अकबर—१५५६ से १६०५ तक—मुग़ल-राज्य का अभ्युदय, दृढ़ता और शान्ति का समय।

(४) जहाँगीर—१६०५ से १६२७ तक—शिक्षा और सुधार का समय।

(५) शाहजहाँ—१६२७ से १६५८ तक—शिक्षा और सुधार में उन्नति।

(६) औरङ्गज़ेब—१६५८ से १७०७ तक। हिन्दू शासकों की शक्ति की उत्पत्ति और अभ्युदय।

आगरा, देहली और लाहौर के इतिहासों को ध्यानपूर्वक पढ़ने से मुग़लों की शासन-प्रणाली और सामाजिक जीवन का अच्छा पता लगता है। क्योंकि ये तीन शहर उनके प्रभुत्व और प्रभाव के केन्द्र थे।

परदेशी की आँख, सबसे पहले, नये देश में वहाँ के पहनावे पर पड़ती है। इसलिए प्रथम हम पहनावे ही का वर्णन करते हैं। अकबर के ज़माने में कपड़ा हिन्दुस्तान ही में बुना जाता था और वही छोटे बड़े सब इस्तेमाल करते थे। पर अबुलफ़ज़ल लिखता है कि कपड़ा फ़ारिस, योरप और चीन से भी हिन्दुस्तान में आता था। उसने फ़्रांस के बानात का ख़ास तौर से ज़िक्र किया है। उन दिनों जितनी तरह के कपड़े बाज़ार में बिकते थे उन सबकी फ़ेहरिस्त और निर्ख़ आईने-अकबरी में दर्ज हैं। देखिए—

(१) सुनहरी ज़रबफ़्त और कारचोबी के कपड़े २८ क़िस्म के बिकते थे।

(२) रेशमी कपड़े ३८ तरह के।

(३) सूती कपड़े ३० तरह के।

(४) ऊनी कपड़े २६ तरह के।

लाहौर में मख़मल और रेशमी कपड़े बुने जाते थे। मुलतान छींटों और दरेसों के लिए मशहूर था। छींटें और दरेसें हिन्दुस्तान से दूसरे मुल्कों को भी भेजी जाती थीं। एक तरह की मख़मल, कुछ रेशमी कपड़े, मलमल और बानात की क़िस्म के कुछ कपड़े योरप से हिन्दुस्तान में आते थे। उस ज़माने में पगड़ियाँ, दुपट्टे और काश्मीरी टोपियाँ मामूली पहनावे में शामिल थीं। अमीर लोग

दुशाले ओढ़ा करते थे। अकबर को शाल-दुशालों का बहुत शौक़ था। अबुलफ़ज़ल लिखता है कि "जहाँपनाह को अदना (?) कपड़ों का बड़ा शौक़ है, विशेषकर शाल का।" शाल-काश्मीर में बनाये जाते थे। पर लाहौर में भी शाल बनाने के हज़ार से ज़ियादह कारख़ाने थे। शाल पगड़ियों के तौर पर सर में भी बाँधे जाते थे।

पहनावा।

प्रायः लोग चोग़े और कमरियां पहनते थे। शाही तोशेख़ाने में जितने क़िस्म के कपड़े थे उनका ज़िक्र आईने-अकबरी में है। हिन्दुस्तान के पहनावे पर उस समय योरप का प्रभाव पड़ चुका था। क्योंकि उस समय एक क़िस्म का रुई का कोट योरप से मँगा कर यहाँ के निवासी पहना करते थे। कहते हैं कि जहाँगीर बादशाह के हृदय पर जेसुइट (ईसाइयों का एक सम्प्रदाय-विशेष) सम्प्रदाय के पादरियों ने बहुत प्रभाव जमा लिया था। जहाँगीर ने एक बार यहाँ तक इरादा किया था कि स्वयं वह और दरबार के तमाम सरदार योरोपीय ढङ्ग से सिले हुए कपड़े पहना करें। कपड़े तैयार भी किये गये और बादशाह ने ख़ुद उन्हें पहना भी। पर पहन कर उसने अपने प्रधान मन्त्री से पूछा कि इन कपड़ों में मैं कैसा मालूम होता हूँ। डाक्टर बर्नियर ने लिखा है कि इस सवाल का जवाब कुछ ऐसा दिलतोड़ था कि बादशाह ने फ़ौरन कपड़े उतार डाले और बात हँसी में आई गई हो गई।

उस समय के दर्ज़ियों की मज़दूरी से इस समय के दर्ज़ियों की मज़दूरी का मुक़ाबला करने पर यह पता लगता है कि उस समय सिलाई का निर्ख़ बहुत कम था। शाही कपड़ों की सिलाई भी बहुत ज़ियादह न थी। अच्छे से अच्छे कपड़े की सिलाई चार आने से दो रुपये तक ली जाती थी। यह मज़दूरी असाधारण ख़याल की जाती थी। मनिक्सी कोई अच्छा दर्ज़ी न था। पर बेगमों के तमाम कपड़े वही सीता था। उसने उन कपड़ों का ज़िक्र भी किया है जो अच्छे घरों में पहने जाते थे—विशेष कर के इनका जो शाही महलों की बेगमात पहना करती थीं। वह लिखता है —

"हिन्दुस्तान की स्त्रियां हाथ-पाँव में एक क़िस्म की मिट्टी लगाती हैं। उसको वे अपनी भाषा में मेंहदी या हिना कहती हैं। इससे उनके हाथ ऐसे सुर्ख़ हो जाते हैं जैसे उन्होंने लाल दस्ताने पहने हों। वे मेंहदी इसलिए लगाती हैं कि गर्मी की वजह से वे दस्ताने या मोज़े नहीं पहन सकतीं। ग्रीष्म-ऋतु में गर्मी की अधिकता के कारण वे इतना बारीक कपड़ा पहनती हैं कि उसमें से छन छन कर उनके अवयव दिखाई पड़ते हैं। कपड़े मलमल इत्यादि महीन कपड़ों के बनाये जाते हैं। वे बहुधा दो या तीन कपड़े पहनती हैं। कपड़े तौल में आधी छटांक से अधिक नहीं होते। हर एक की क़ीमत चालीस-पचास रुपये होती है। इस क़ीमत में सुनहरी लेस या गोटे-किनारी के दाम शामिल नहीं। ये चीज़ें स्त्रियां अक्सर अपने कपड़ों को सुन्दर बनाने के लिए लगाती हैं। वे यही कपड़े पहने सो जाती हैं और चौबीस घंटे बाद बदलती हैं। एक दफ़े पहन कर वही कपड़ा वे फिर नहीं पहनतीं। उन्हें वे अपनी ख़वासों और लौंडियों को दे डालती हैं। वे अपने बालों को ख़ूब सँवारती हैं। पटियां जमाती हैं और बालों में सुगन्धित तेल लगाती हैं। ज़रबफ़्त के दुपट्टे सर पर ओढ़ती हैं। उनमें नाना प्रकार के रंग-बिरंगे बेल-बूटे बने होते हैं। गुलाबी जाड़ा पड़ने तक वे ऐसे ही कपड़े पहने रहती हैं। सिर्फ़ ऊपर से बहुत उम्दा काश्मीरी क़बा पहन लेती हैं। वे इन कपड़ों के ऊपर ऐसा बारीक शाल ओढ़ती हैं कि वह छोटी उँगली के छल्ले में बड़ी सुगमता से निकल जा सकता है"।

'अमीर घरों की औरतें गहना बहुत पहनती हैं। वे हाथ की कलाइयों में कड़े और सच्चे मोतियों की पहुँचियाँ पहनती हैं। एक ख़ास तरह का छल्ला वे दाहने हाथ के अँगूठे में पहनती हैं। उसमें एक शीशा जड़ा होता है और उसके चारों ओर बड़ी सुन्दरता से मोती जड़े रहते हैं। इसे पहननेवाली बार बार अपना मुँह शीशे में देखा करती है। रत्न-जटित सोने की तागड़ी भी पहनी जाती है। पाँवों में मोतियों की पाज़ेब पहनी जाती है। कभी कभी इज़ारबन्द के सिरों से भी मोतियों की पन्द्रह पन्द्रह लड़ियों के गुच्छे लटकते रहते हैं।"

इत्र और अन्य सुगन्धित पदार्थों का बहुत इस्तेमाल होता था। आँखों में सुरमा भी लगाया जाता था। मिनिक्सी (जिसके लेख महलसरा की स्त्रियों के सम्बन्ध में प्रमाण समझने चाहिए) लिखता है कि गुलाब का इत्र पहले ही पहले एक अजीब ढङ्ग से मालूम किया गया था। वह कहता है—

एक दिन की बात है कि नूरजहाँ और जहाँगीर में कुछ अनबन हो गई। अन्त को जब दोनों में मिलाप हुआ तब मेल होने के उपलक्ष्य में दावत दी गई। शाही बाग़ के तमाम हौज़ गुलाब-जल से भर दिये गये। दूसरे दिन उठ कर नूरजहाँ ने देखा कि गुलाब-जल की सतह पर तेल की जैसी एक झिल्ली पड़ी हुई है। इससे उसने यह समझा कि ज़रूर हौज़ में किसी ने स्नान किया है। उसे बड़ा ग़ुस्सा आया। उसने एक ख़वास को हुक्म दिया कि उँगली से झिल्ली को छू। फिर बेगम ने उसकी उस उँगली को सूँघा और यह नतीजा निकाला कि वह तेल गुलाब ही से निकला है।

सौ रुपये का इत्र तौल में एक रुपया भर आता था। पर पीछे घटकर उसका दाम पन्द्रह रुपये तोले ही रह गया था। इसका कारण यह हुआ कि इस देश में भी गुलाब पैदा होने लगा था।

ख़ूराक।

मुग़लों के समय में खाने-पीने की चीज़ें बहुत सस्ती थीं। आईने-अकबरी में उन चीज़ों का भाव इस तरह लिखा है—

गेहूँ—पौने पाँच या पाँच आने मन।
चावल—साढ़े तीन ,, ,,
घी—दो रुपये दस ,, ,,
सफ़ेद खाँड़—तीन रुपये चार ,, ,,
शकर—एक रुपया नौ ,, ,,
भेड़ का गोश्त—एक रुपया दस ,, ,,
बकरी का गोश्त इससे भी अधिक सस्ता था।

चपाती, चावल और कई तरह की कढ़ी आम तौर पर खाई जाती थी। मसूर की दाल और हरी तरकारियां भी खाने की चीज़ों में थीं। अचारों का इस्तेमाल भी शुरू हो गया था। ये अचार साधारण लोगों में प्रचलित थे;—आम का अचार, तेल या सिरके में नींबू का अचार, तेल या सिरके में बाँस का अचार, अदरक का अचार, शलग़म और गाजर का अचार।

दूध की बहुतायत थी। ग़रीब आदमी भी खूब दूध पीते थे। सूजी के लडडू बहुत स्वादिष्ट पदार्थ समझा जाता था और कभी ही कभी खाने को नसीब होता था। उस समय के प्रसिद्ध यात्री सर टामस रो और उनके साथी पादरी एडवर्ड टेरी को नूरजहाँ के भाई आसफ़ख़ाँ ने निमन्त्रित किया। वे लोग एक विशाल और सुन्दर शामियाने के नीचे बिठाये गये। फ़र्श पर रूमी क़ालीन और ग़ालीचे बिछे हुए थे। उनके ऊपर दस्तरख़्वान बिछाया गया था। दस्तरख़्वान बिलकुल सफ़ेद था। चाँदी की तश्तरियों और रकाबियों में खाना सजा हुआ था। इन रकाबियों के किनारे सुनहरे थे। टामस रो आसफ़ख़ाँ के दाहिनी ओर बैठा था और टेरी साहब आसफ़ख़ाँ और टामस रो के सामने। इन तीनों के सामने अलग अलग भोज्य पदार्थ रक्खे गये थे। टेरी साहब लिखते हैं "—यात्री (रो) के सामने आसफ़ख़ाँ की अपेक्षा दस रकाबियाँ अधिक और मेरे सामने आसफ़ख़ाँ की बनिस्बत दस कम थीं। मेरे सामने की रकाबियाँ गिनती में पचास थीं। हमारी रकाबियों और तश्तरियों के बीच में इतनी जगह थी कि खाना पहुँचानेवाले आसानी से उनके बीच से आ जा सकते थे। खाना मुसलमानी ढङ्ग का था। पुलाव, कढ़ी, मुतंजन, ज़ाफ़रानी चावल, सब्ज़ चावल और आग़वानी चावल, कई प्रकार की खीर, बहुत तरह के फलों के मुरब्बे, मुक़श्शर, बादाम और किशमिश वग़ैरह चीज़ें परोसी गई थीं। हमको इन खानों के तैयार करने का तरीक़ा न मालूम हो सका। मैंने अपने सामने के रक्खे हुए सभी खाने खा लिये। वे सबके सब बड़े ज़ायक़ेदार थे।

बाज़ारों में नानबाइयों की दूकानें थीं। वहाँ से लोग रोटी मोल लिया करते थे। डाक्टर बर्नियर ने लाहौर से काश्मीर जाते समय रास्ते से एक चिट्ठी लिखी थी। उसमें वह इस बात पर निहायत अफ़सोस करता है कि उसके स्वामी दानिशमन्दख़ाँ का एक ऊँट खो गया था, जिस पर लोहे की अँगीठियाँ लदी हुई थीं। वह लिखता है कि मुझे अन्देशा है कि कदाचित् मुझे अब बाज़ार की रोटी खानी पड़े। बाज़ारी रोटी प्रायः बहुत ख़राब बना करती थी। इस बात का सबूत डाक्टर बर्नियर के एक दूसरे पत्र से मिलता है। वह लिखता है कि मुझे देहली के बाज़ारों की रोटी खाने की विशेष आवश्यकता न पड़ी। वह आधी कच्ची होती है; उसमें मिट्टी मिली हुई होती है।

खाने की चीज़ों के सम्बन्ध में एक बात और लिखने लायक़ है। यहाँ उस ज़माने में भी दही बहुत खाया जाता था। बर्नियर लिखता है कि इस देश में नींबू के शरबत और दही से बढ़कर और कोई चीज़ तबीयत को ख़ुश करनेवाली नहीं ख़याल की जाती।

पीने की चीज़ें।

पानी जैसा मैला और गँदला उस ज़माने में था वैसा ही आज-कल भी गाँवों और क़सबों में पाया जाता है। जहाँ आदमियों के पीने के लिए पानी भरा जाता था वहीं जानवरों को भी नहलाया और पानी पिलाया जाता था। उससे पानी बहुत ख़राब हो जाता था। पीने का पानी सुराहियों में रक्खा जाता था। यात्रा में टीन या

किसी और धात की सुराहियों में पानी रख लिया जाता था। गङ्गा-जल विशेष गुणकारी होने के कारण बादशाह के पीने के लिए महल में हर वक़्त मौजूद रहता था। सफ़र में गङ्गा-जल की सुराहियाँ ऊँटों पर लादी जाती थीं। पानी ठण्ढा रखने के लिए सुराहियों पर कपड़ा लपेट दिया जाता था। या तो पङ्खा झल कर या सुराही को हवा में हिला कर पानी ठण्ढा किया जाता था। शोरे से भी पानी ठण्ढा किया जाता था। पानी भरी हुई सुराही शोरे के पानी में डाल दी जाती थी। इस तरकीब से पानी ठण्ढा हो जाता था। अबुलफ़ज़ल लिखता है कि शोरा बारूद में मिल कर ऐसी गर्मी पैदा करता है कि हर चीज़ को भक से उड़ा देता है। वही शोरा जहाँपनाह पानी ठण्ढा करने के काम में लाते हैं। बरफ़ उन दिनों लाहौर में मिलती थी और रुपये की दो या तीन सेर के हिसाब से बिकती थी।

बल-वर्धक और चित्त को प्रसन्न करनेवाली पीने की वस्तुओं में गुलाब और बेदमुश्क सर्वश्रेष्ठ था। ये दोनों चीज़ें बहुत कम मिलती थीं। इनका दाम और दरजा भी बहुत अधिक था।

क़हवा भी पिया जाता था। पर उसके पीने का रिवाज आम लोगों में नहीं था। हिन्दुस्तान में क़हवा बसरा और हरमज़ के बाज़ारों से हिन्दुस्तानी जहाज़ों पर आता था। टेरी लिखता है कि लोग शराब के बदले क़हवा पीते थे। यही एक ऐसी चीज़ थी कि हर पीने की चीज़ की जगह इस्तेमाल हो सकती थी। वह कहता है—

"बहुतेरे लोग, जो अपने मज़हब के बड़े पक्के हैं, शराब को हाथ तक लगाना पाप समझते हैं। लेकिन वे एक क़िस्म का अर्क़ पीते हैं जो स्वास्थ्यवर्धक तो बहुत होता है; परन्तु स्वाद में अच्छा नहीं होता। इस अर्क़ का नाम क़हवा है। इसके बनाने की तरकीब यह है—इसके स्याह दाने पानी में उबाल लिये जाते हैं। इससे पानी में कालापन आजाता है और कुछ ज़ायक़ा भी बदल जाता है। क़हवा पाचक होता है, दिल को ताक़त देता है और ख़ून साफ़ करता है।"

शराब अमीर-ग़रीब सभी पीते थे और बहुत पीते थे। मुग़लों के राज्य-काल में शराबनोशी की तरक़्क़ी ही होती गई और उनके शासन के अन्त में तो उसने बड़ा ही भयानक रूप धारण कर लिया। बाबर बेहद शराबी था। पर वह बलवान् ख़ूब था। उसने तुज़के-बाबरी में लिखा है—

"हमने इस जगह बैठ कर दिन-ढले शराब पी। इसके बाद हम आगे बढ़े। हम लोगों में से कोई भी ऐसा न था जो नशे में चूर न हो। सय्यद करीम तो नशे से इतना ग़ाफ़िल होगया कि उसको दो सेवकों ने घोड़े पर सवार कराया और पकड़ कर बड़ी कठिनता से पड़ाव पर लाये। फिर सुबह होते ही हमने उसी ख़ेमे में शराब पीना शुरू किया और रात भर बराबर पीते गये। सुबह होने पर भी हमने प्याला चढ़ाया और नशे में मस्त हो कर सो गये।"

अकबर ने शराब खींचने की इजाज़त ईसाइयों को दे दी थी। इससे शराब की नाजायज़ तिजारत और बिक्री शुरू हो गई। धीरे धीरे यहाँ तक नौबत पहुँची कि जब कोई योरोपियन फ़ौज या महलसरा की नौकरी से अलग कर दिया जाता था तब वह शराब खींचने का पेशा करने लगता था। जहाँगीर बहुधा शराबख़ानों में जाकर छोटे छोटे लोगों के साथ बैठ कर शराब पिया करता था। एक दिन वह इसी तरह कलाली में जाकर शराब पीने लगा। जब नशे ने रङ्ग जमाया तब उससे और एक जुलाहे से झगड़ा हो गया। वह जुलाहा भी शराब के नशे में मस्त था। जुलाहा जहाँगीर से कह रहा था कि तुम मुझे सिकन्दर आज़म कहो। पर जहाँगीर को यह बात मंज़ूर न थी। औरंगज़ेब के समय में तो मदिरा-पान की बुरी आदत ने जन-साधारण में घोर रूप धारण कर लिया था। उसने इस आदत को छुड़ाना चाहा, पर न छुड़ा सका। योरप की शराबें गोवा की योरोपियन कोठियों की मार्फ़त हिन्दुस्तान में आती थीं। सच तो यह है कि यदि कोई आदमी योरोपीय शराब का बक्स राज्य के किसी उच्च-पदाधिकारी को भेट देता था तो वह प्रसन्नतापूर्वक उसे ले लेता था। इस तरह की रिश्वत आम तौर पर प्रचलित थी। इस रिश्वतख़ोरी को रोकने के लिए बड़े सख़्त क़ानून बने हुए थे। उनके तोड़नेवालों को प्रायः कठिन दण्ड भी दिया जाता था। परन्तु फिर भी शराब पीना बन्द न हो सका। जहाँगीर के वक़्त में पान और तम्बाकू भी ख़ातिरदारी में शामिल हो चुके थे।

इमारतें ।

मुग़लों के रहने के ढँग से यह मालूम होता है कि आदि में ये लोग ख़ानाबदोश थे । यद्यपि बड़े बड़े शहरों में शाही महल और इमारतें खड़ी थीं, लेकिन फिर भी धनवान् और अमीर-उमरा तम्बुओं में रहना बहुत पसन्द करते थे । अथवा वे ऐसे घरों में रहना पसन्द करते थे जो, टेरी साहब के कथनानुसार, झोपड़ों से भी बदतर थे । मुग़लों के आगमन के बहुत दिन बाद बड़ी बड़ी इमारतें बनीं । उस समय की यादगार और वर्णनीय इमारत लाहौर का रङ्गमहल है, जिसमें अब मिशन-स्कूल है । उसे शाहजहां के प्रधान मन्त्री नवाब सादुल्लाखां ने बनवाया था ।

मुग़ल अपना जीवन सुख से व्यतीत करने के लिए ऐशबाग़ लगाते थे । इस क़िस्म का एक बाग़ अब तक लाहौर में है । इसका नाम शालामार बाग़ है । इस शहर में और भी कई बाग़ीचे हैं जिनका मालिक कोई न कोई धनी आदमी है । इन बाग़ों को देखने से यह बात साफ़ मालूम पड़ती है कि मुग़लों के दिल में हमेशा फ़ारिस की याद बनी रहती थी और वे पञ्जाब के गरम मैदानों में भी बाग़ लगा कर फ़ारिस के नमूने यहाँ बनाना चाहते थे । नहर, फ़ौवारे, पेड़, फूल, फल आदि सब इस बात की साची देते हैं ।

घरों का भीतरी भाग बहुत क़ीमती, मगर सादे, सामान से सुसज्जित किया जाता था । क़ालीन, पलँग, मेज़, कुर्सी वग़ैरह सजावट की आम चीज़ें थीं । क़ालीनों और चित्रित परदों के लिए रुपया पानी की तरह बहाया जाता था । खाना खाने के बर्तन बहुत क़ीमती होते थे । आसफ़ख़ां जैसे अमीर के घर में तो ऐसे बरतनों की खान सी थी । चीनी के बरतन और फूलदान चीन से आते थे ।

सैर, दिल-बहलाव, और खेल-तमाशे ।

मुग़लों को शिकार खेलने का बहुत शौक़ था । तीरन्दाज़ी का अभ्यास भी वे बहुत रखते थे । तोप, तुपक, बन्दूक़ और तमञ्चा चलाना भी वे जानते थे । जहांगीर के पास एक शिकारी बन्दूक़ थी । उसका नाम दुरुस्तअन्दाज़ था । वह अपनी तुज़ुके-जहांगीरी में लिखता है—"यह बन्दूक़ निहायत ही उम्दा है । मेरे बाप ने इस बन्दूक़ से बीस हज़ार जानवरों और चिड़ियों का शिकार किया । मुझे भी इस बन्दूक़ के चलाने में ख़ास महारत है । क्योंकि मैं भी हर क़िस्म के शिकार का दिलो-जान से शौक़ीन हूँ" ।

कबूतरबाज़ी का भी उस ज़माने में बड़ा शौक़ था । नाच और नज़रबन्दी के खेल भी वे लोग बहुत खेलते थे । जहांगीर ने बङ्गाली बाज़ीगरी के खेलों का हाल इस प्रकार लिखा है —

"बाज़ीगरों ने मिल कर एक आदमी के अङ्ग अङ्ग अलग कर दिये; उसका सर भी काट डाला । इन अङ्गों को उन्होंने ज़मीन पर फेंक दिया, जो देर तक उसी तरह पड़े रहे । फिर उन्होंने एक चादर उन अङ्गों पर डाल दी और एक बाज़ीगर चादर के नीचे गया । कुछ ही मिनटों में वह बाहर निकल आया । इसके बाद वह कटा हुआ आदमी, जिसके अङ्ग काट काट कर अलग कर दिये गये थे, जैसे का तैसा निकल आया । उसका शरीर देखने से यह भी न जान पड़ता था कि उसको कभी चोट भी लगी हो" ।

स्वांग भी उस ज़माने में बड़े बेढब होते थे । शाहजहां के सम्बन्ध में एक अद्भुत घटना का उल्लेख किया जाता है । लिखा है कि एक दफ़े बादशाह को ख़बर लगी कि कुछ लोग अजीब स्वांग करनेवाले आये हैं और वे अपना खेल बादशाह को दिखाना चाहते हैं । शाहजहां को ऐसी बातें बहुत पसन्द थीं । इसलिए उन्हें हाज़िर होने के लिए आज्ञा दी गई । इन खेल दिखानेवालों ने रियासत गुजरात की बदइन्तिज़ामी का खेल दिखाया । वहां के अत्याचारों की नक़ल देख कर बादशाह को बड़ा विस्मय हुआ । उसने पूछा कि "क्या संसार में कोई ऐसा भी अत्याचारी हो सकता है जो ऐसे भयङ्कर काम करे" ? इस पर उन तमाम सौदागरों ने, जो भेष बदले हुए थे, ज़मीन को चूमा और कहने लगे — "जहांपनाह से यह बात छिपी न रहे कि जो कुछ हमने खेल के तौर पर हुज़ूर का दिल बहलाने के लिए दिखाया है वह वास्तव में गुजरात की सच्ची घटना है और वहां का अधिकारी ही इन अत्याचारों का कर्ता है । इससे पहले हमारी फ़रयाद हुज़ूर तक नहीं पहुँच सकी । इसलिए हमने इस तरह अपना दुख हुज़ूर तक पहुँचाने का उपाय किया ।" इसका परिणाम यह हुआ कि उस दुष्ट अत्याचारी को उचित दण्ड दिया गया ।

अकबर एक क़िस्म की 'हाकी' का खेल खेलता था ।

इसको हम पोलो नहीं कह सकते यह खेल उसे बहुत पसन्द था।

आईने-अकबरी में शतरञ्ज और चौपड़ के खेलों की बिसात का नक़शा दिया हुआ है। इससे सूचित है कि ये खेल उस समय खेले जाते थे।

ताश का खेल हिन्दुस्तान में बहुत पुराने ज़माने से प्रचलित है।

नाचनेवालियाँ शहरों के बड़े बड़े विशाल चौकों में नाच गाकर लोगों के दिलों को प्रफुल्लित किया करती थीं। नाच ६ बजे शाम से रात के ९ बजे तक, मशाल की रोशनी में, होता था। ये औरतें नाच गाकर ही अपना निर्वाह करती थीं।

पेशेदार औरतों के अतिरिक्त साधारण लोग भी गान-विद्या में प्रवीण होते थे। दाराशिकोह पर लोगों का बड़ा प्रेम था। जब औरङ्गज़ेब ने उसे मरवा डाला तब लोगों ने उसके स्मरणार्थ एक गीत बनाया और घर-घर, गली-गली, कूचे-कूचे, उसे गाते फिरे। उसका सारांश यह था कि धन, दौलत और जागीर सब निस्सार हैं। भगवान् ने औरङ्गज़ेब को बादशाह बना कर सिंहासनारूढ़ किया। शाहजहाँ को ज़ंजीरों में जकड़ कर आजन्म बन्दी किया और दारा को मृत्यु का ग्रास बनाया। औरङ्गज़ेब ने यह सुना तो उसने मनाही करवा दी कि यह गीत कोई न गावे। अगर कोई आदमी यह गीत गाता हुआ सुना जायगा तो उसकी ज़बान काट ली जायगी। लेकिन यह गीत लोगों को इतना प्रिय था कि छुप छुपा कर वे इसे गाते ही रहे।

खेती करनेवाले लोगों को, जो साल भर मिहनत करने में जुटे रहते थे, मेले और त्योहार ही ख़ुशी मनाने के मौके थे। आईने-अकबरी में उन तीर्थों का ज़िक्र है जहाँ लोग अक्सर जाया करते थे। खुलासा-उल-तवारीख़ में एक मेले का बड़ा ही मनोरञ्जक चित्र खींचा गया है। उसे पढ़ने में बड़ा आनन्द आता है। इस मेले का नाम 'अचल' था। यह गोरखपुर ज़िले में होता था। ऐसे मेलों में केवल प्रजा-जनों ही के दिल-बहलाव का सामान रहता था।

मुग़ल बादशाहों के भी गुरु होते थे। उदाहरणार्थ ख़्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती। ख़्वाजा साहब सीस्तान में पैदा हुए थे और अजमेर में गाड़े गये। आप की समाधि पर अगणित लोग जमा होते थे और अब भी होते हैं। अकबर स्वयं भी बड़ी आव-भगत से वहाँ ज़ियारत करने जाता था।

सवारियाँ और शाहराहें।

लाहौर के बाज़ार पहले ही से ऐसे तङ्ग चले आते हैं जैसे कि आज-कल हैं। दिल्ली और आगरे की अपेक्षा वहाँ के मकान भी अधिक ऊँचे थे। इसी कारण पालकी और घोड़े की सवारी अधिक प्रचलित थी। मनिक्सी को जब कभी अपने रोगियों को देखने जाना होता था तब वह घोड़े पर ही जाता था। धनिक और उच्च पदाधिकारी लोग हाथियों पर सवार होते थे। फ़ारस, बलख़ और काबुल से हिन्दुस्तान में घोड़े आते थे। माल-असबाब वग़ैरह ऊँट-गाड़ी, बैलगाड़ी और छकड़ों में आता जाता था। सरकारी सड़कें और रास्ते विशाल और विस्तृत थे। शेरशाह ने तो और भी अच्छी अच्छी सड़कें बनवाई थीं। तवारीख़-हिन्दुस्तान में लिखा है —

"ग़रीब मुसाफ़िरों के आराम के लिए शेरशाह ने हर सड़क पर, दो दो कोस के फ़ासिले पर, एक एक सराय बनवा दी है। एक सड़क रोहतास (पञ्जाब) से समुद्र-तट-वर्ती, सुनारगाँव (बङ्गाल) तक उसने निकाली है। एक सड़क आगरे से बुढ़ानपुर तक जाती है। एक लाहौर से मुलतान को जाती है। इन पर भी सरायें हैं। एक सड़क आगरे से जोधपुर और चित्तौर तक चली गई है। सड़क पर इसने १७०० सरायें बनवाई थीं, जिनमें हिन्दुओं और मुसलमानों के लिए अलग अलग कमरे थे। ठंढे और गरम दोनों क़िस्म के पानी का इन्तिज़ाम था। बिछौना और खाना भी दिया जाता था। हर सराय में जानवरों के आराम और चारे का भी प्रबन्ध था। सराय में पक्की ईंटों की एक एक मसजिद थी। हर सराय में एक एक कुआँ था—सड़क के दोनों ओर दरख़्तों की क़तारें थीं। डाक का भी इन्तिज़ाम था। सराय में दो घोड़े इसी लिए बँधे रहते थे।"

जहाँगीर ने पुरानी सड़कों की मरम्मत करवा कर उन्हें और भी अच्छा कर दिया। आगरे से लाहौर जानेवाली सड़क को तो उसने और भी आरामदेह कर दिया। उसने शहतूत और अन्य घने पत्तोंवाले पेड़ लगवाये। आठ आठ कोस

के फ़ासिले पर सरायें बनवाईं। इन सरायों में हम्माम का भी इन्तिज़ाम किया। तालाब खुदवाये। मुसाफ़िरों के आराम के लिए आदमी भी नियत किये। छोटी बड़ी हर नदी पर पत्थर के कटवाँ पुल बनवाये। सन् १६४१ ईसवी में भारत-यात्रा करनेवाला टेवरनियर नामक यात्री लिखता है कि लाहौर से दिल्ली तक की, और दिल्ली से आगरे तक की, सड़क दोनों तरफ़ के ख़ूबसूरत दरख़्तों से ऐसी छाई हुई है कि वह बाग़ की रविश सी मालूम होती है। टेरी और बर्नियर ने इन सड़कों के नक़शे में दरख़्त ख़ास तौर पर दिखाये हैं। टेरी ने इस सड़क का नाम लम्बी रविश रक्खा है। जब बर्नियर ने इसको देखा तब उसे बहुत ही अच्छी हालत में पाया।

मनिक्सी ने लिखा है कि मुलतान से प्रयाग तक ४१३ फ़रसंग का फ़ासिला है। यह फ़ासिला तै करने के लिए एक सड़क जाती है, जिस पर एक एक फ़रसङ्ग के फ़ासिले पर चौपहलू मीनार बने हुए हैं। इनसे मालूम होता है कि मुसाफ़िरों ने कितना सफ़र तै किया। मुसाफ़िरों के आराम के लिए हर मीनार के पास एक एक गाँव भी बसा है। इन सड़कों के किनारे उम्दा उम्दा सराय, बाग़ और गाँव हैं।

सरायें ईंट और पत्थर की बनी थीं। उनमें से कई एक अब तक मौजूद हैं; जैसे सराय अमानतख़ाँ, मुग़ल-सराय इत्यादि। आठ आठ कोस के फ़ासिले पर एक एक सराय थी। बर्नियर को लाहौर से वज़ीराबाद जाने में छः रोज़ लगे थे। वज़ीराबाद लाहौर से, आज-कल की राह से, ७२ मील है। सरायों में एक एक सरकारी गुमाश्ता रहता था। उसका काम था कि वह सूर्य्यास्त होने पर सराय का फाटक बन्द करदे। फाटक बन्द करने के बाद वह हर आदमी से चिल्ला चिल्ला कर यह कहता था कि भाई, अपनी अपनी चीज़ें सँभाल लो और अपने अपने घोड़े बाँध दो। जब सुबह के छः बजते थे तब चौकीदार फाटक खोलने के पहले मुसाफ़िरों से फिर ताकीद करता था कि सब लोग अपनी अपनी चीज़ों की देख-भाल कर लो। अगर किसी को शक होता था कि उसकी कोई चीज़ जाती रही है तो जब तक वह न मिल जाती, सराय का फाटक न खोला जाता था। सिपाहियों को सरायों में जगह न दी जाती थी। हर सराय में इतनी गुंजाइश होती थी कि आठ सौ से लेकर एक हज़ार तक मुसाफ़िर मय अपने ऊँटों, घोड़ों और गाड़ियों के रह सकें। बाज़ सरायें तो इससे भी अधिक बड़ी थीं। आँगन में सायेदार वृक्ष लगे थे। परचून की दूकानें भी थीं। ज़नाने कमरे अलाहदा बने हुए थे। जो नौकर मुसाफ़िरों के लिए कमरे सजाते और बिछौने वग़ैरह बिछाते थे उनके रहने के मकानात जुदा थे।

यहाँ पर नावों के किराये का ज़िक्र करना भी ज़रूरी मालूम होता है। आईने-अकबरी में किराये की एक फ़िहरिस्त है। नदी में हिल कर उसे पार करने की इजाज़त न थी। किराये का निर्ख़ यह था—

हाथी	।)
लदा हुआ छकड़ा	=)
ख़ाली छकड़ा	-)
लदा हुआ ऊँट	)॥
ख़ाली ऊँट	)।
लदा हुआ घोड़ा या बैल	)।
ख़ाली बैल	एक धेला
लदा हुआ गधा	एक दमड़ी
बीस आदमी	डेढ़ पैसा

बहुत सी नावें ऐसी भी थीं जो मुसाफ़िरों को मुफ़्त नदी पार उतारती थीं। नाव से एक हज़ार मन बोझ एक कोस तक ले जाने के लिए एक रुपया देना पड़ता था।

औरङ्गज़ेब के ज़माने में निम्न लिखित सड़कें शाही सड़कें कहलाती थीं—

(१) आगरे से दिल्ली तक
(२) दिल्ली से लाहौर तक
(३) लाहौर से गुजरात और अटक तक
(४) अटक से काबुल तक
(५) काबुल से ग़ज़नी और कन्धार तक
(६) गुजरात से श्रीनगर तक
(७) लाहौर से मुल्तान तक

इन सड़कों पर बराबर बराबर दूरी पर चौकियाँ और सरायें बनी हुई थीं।

शिक्षा और पाठशालायें।

अबुल-फ़ज़ल लिखता है कि सभी धनवान् जातियों के बच्चों और नौजवानों के लिए पाठशालायें हैं। पाठशालाओं के लिए हिन्दुस्तान बहुत मशहूर है। अकबर के समय की

एक पाठशाला के विषय में लिखा है कि उसके विद्यार्थी और पाठशालाओं के विद्यार्थियों की अपेक्षा अधिक चतुर होते हैं। पहले सप्ताह के दिन केवल स्वर और व्यञ्जन याद कराने में ख़र्च होते हैं। दूसरे सप्ताह में अक्षरों की बनावट, मिलावट और शब्द लिखना सिखा दिया जाता है। इसके अनन्तर गद्य या पद्य के ऐसे जुमले पढ़ाये जाते हैं जिनमें धार्मिक और सामाजिक उपदेश होते हैं। अध्यापक लड़के को कभी कभी कुछ बताता जाता है। प्रति दिन किताब की एक न एक नई सतर ज़रूर पढ़ाई जाती है। इस नये ढङ्ग से विद्यार्थी बहुत ही थोड़े समय में इस योग्य हो जाता है कि इबारत बहुत सफ़ाई के साथ पढ़ सके। लेकिन पुराने तरीक़े पर पढ़नेवालों को इतनी योग्यता प्राप्त करने में बरसें लग जाती हैं। ऊँचे दरजों में ये विद्यायें पढ़ाई जाती हैं;—सामाजिक विद्या, गणित, कृषि-विद्या, रेखा-गणित, माप-विद्या, ज्योतिष, गृह-प्रबन्ध-शास्त्र, पर्य्यटन-शास्त्र, वैद्यक, न्याय, ब्रह्म-विद्या और इतिहास।

शिक्षा के लिए स्यालकोट बहुत प्रसिद्ध था। सन् १२६४ ईसवी में मौलवी कमाल कश्मीर से स्यालकोट आकर अध्यापन-कार्य्य करने लगा। शाहजहाँ के शासन-काल में एक और मदरसा स्यालकोट में क़ायम हुआ, जिसमें सिर्फ़ सांसारिक शिक्षा दी जाती थी। यहाँ पर यह बताना अनुचित न होगा कि स्यालकोट लिपि-विद्या (लिखाई के काम) में मशहूर चला आता है। उस समय साधारण शिक्षा और सदाचार-शास्त्र का कितना भाव था, इस बात का अन्दाज़ा इस समय ठीक ठीक नहीं लगाया जा सकता। पर अबुल-फ़ज़ल उस ज़माने का सुप्रसिद्ध विद्वान् था। औरङ्गज़ेब के समय की पुस्तकें भी मुग़लों के इतिहास में अमर-पद पा चुकी हैं। डाक्टर बर्नियर का स्वामी दानिशमन्दख़ाँ भी बड़ा विद्वान् और योग्य पुरुष था। बर्नियर लिखता है कि दानिशमन्दख़ाँ तीसरे पहर दर्शनशास्त्र पढ़ा करता था। सुबह वज़ीरे-दौलत-ख़ार्जिया और दारोग़ा-अस्तबल की हैसियत से अपने आवश्यकीय काम किया करता था। भूगोल और गणित का भी उसको बेहद शौक़ था। दरबार की उसकी दूसरी हाज़िरी इसलिए माफ़ थी जिसमें उसके अध्ययन में विघ्न न पड़े।

लेखकों की संख्या उस समय अगणित थी। उनकी पुस्तकें उनकी योग्यता, शिक्षा और बहुदर्शिता का सुबूत देती हैं। आम तौर पर प्रत्येक शिक्षित पुरुष के पास एक नोटबुक रहती थी। उसमें वह अच्छे अच्छे विचार और कवितायें नोट कर लिया करता था।

स्त्री-पुरुष।

पर्दे के रिवाज के कारण मुग़लों के घर के भीतर के जीवन का हाल बताना बहुत कठिन है। इस विषय में सारे लेखक बिलकुल ही चुप हैं; और यात्री लोग भी कुछ नहीं लिखते। इतिहास पढ़ने से सिर्फ़ हमको इतना पता लग सका है कि आसफ़ख़ाँ अपने मित्रों की दावत में बड़ी उदारता दिखाता था। उमरा लोगों के घर और महल बहुत सुसज्जित होते थे। यदि महल-सरा का पर्दा उठा कर देखा जाय तो एक जगह जहाँगीर अपने पिता अकबर की मृत्यु-शय्या पर बैठा हुआ दृष्टि-गोचर होता है। दूसरी जगह वह अनारकली नामी रमणी के प्रेम में मग्न दिखाई पड़ता है। इसके अतिरिक्त कहीं कहीं मुग़ल बेगमात का क़ाफ़िला किसी पीर फ़क़ीर की पूजा के लिए जाता हुआ सड़क पर दिखाई देता है। इससे अधिक हमको बेगमात के सुख-दुख, चित्त-विनोद, स्वतन्त्रता आदि के हालात की कुछ भी ख़बर नहीं। हमें मुग़ल बच्चों की किलकारें और तोतली बातें नहीं सुनाई पड़तीं। अन्तःपुर की लौंडियों और बाँदियों के क़हक़हे और चहचहे हमारे उत्सुक कानों के परे हैं।

व्रजविहारी शुक्ल

मन-मोर।

पूँछता हूँ सबसे कर जोर।
किसी ने देखा मेरा मोर?
नवल नयनयुत नील-कण्ठ शुभ हंसगामिनी चाल।
अति विचित्र हैं पङ्ख मनोहर लख लोचन बेहाल॥
अरे वह मन-मोहन चित-चोर।
किसी ने देखा मेरा मोर?
सन्ध्या-काल अमावास्या का घिर आये घन घोर।
श्याम श्याम घनश्याम घटा में देख साँवली कोर॥

नाचता गया वाट की ओर ।
किसी ने देखा मेरा मोर ?
तब से बैठा देख रहा हूँ फिर आने की राह ।
प्राण हो रहे व्याकुल मेरे क्षण क्षण बढ़ती चाह ॥
भटक जावेगा दक्षिण ओर ।
किसी ने देखा मेरा मोर ?
हिंसक जीव उधर रहते हैं दुष्ट वधिक बेपीर ।
कभी न लक्ष्य चूकता उनका तान मारते तीर ॥
खींचते पङ्ख मरोर मरोर ।
किसी ने देखा मेरा मोर ?

नयन

विविध विषय ।

१—विलेज पञ्चायत ऐक्ट ।

कुछ समय पूर्व सरस्वती में एक लेख इस विषय पर प्रकाशित हो चुका है । इस क़ानून का जो मसविदा सरकार ने बनाया था उसकी समालोचना उस लेख में थी । उसमें इस तजवीज़शुदह क़ानून के मोटे मोटे गुण-दोषों का विवेचन था । अब यह मसविदा, बहुत कुछ काट-छाँट के बाद, क़ानून के रूप में प्रवर्तित हो गया है । इस पर विचार करने का काम जिस कमिटी को सिपुर्द किया गया था उसमें श्रीमान् चिन्तामणि भी थे । उन्होंने और अन्य मेम्बरों ने भी इसकी त्रुटियों को दूर करने की यथाशक्ति ख़ूब चेष्टा की । वे चाहते थे कि पञ्च और सरपञ्च मुक़र्रर करने का अधिकार प्रजा ही के हाथ में रहे । पर उनकी यह बात न मानी गई । इन लोगों को मुक़र्रर करने का काम, तथा इस बात का निश्चय भी कि कहाँ कहाँ पञ्चायतें खोली जायँ और कहाँ कहाँ न खोली जायँ, ज़िले के प्रधान अफ़सर ही पर छोड़ा गया । बाक़ी की अनेक अन्य त्रुटियां दूर कर दी गईं । ख़ैर यही क्या कम है । कमिटी के संशोधनों की बदौलत इस क़ानून में अब विशेष जान आ गई है और प्रजा के अनुकूल अनेक विधि-विधानों का समावेश इसमें हो गया है।

इस समय जो देहाती कचहरियां खुली हुई हैं वे अब बन्द न समझी जायँगी । हां, यदि उस हलक़े के मुखिया वहां देहाती पञ्चायत खुलाना चाहेंगे और ज़िले के अफ़सर खोलना मञ्ज़ूर करेंगे तो उसके खुल जाने पर देहाती मुंसफ़ी टूट जायगी, अन्यथा नहीं ।

किसी बड़े गांव के कुछ लोग, या कई गांवों के कुछ लोग, मिल कर यदि ज़िले के अफ़सरों को लिखेंगे कि हमारे यहां पञ्चायत खोली जाय तो अफ़सर तहक़ीक़ात करेंगे । अगर वे पञ्चायत की ज़रूरत समझेंगे और क़ाबिल पञ्च मिल जायँगे तो लाट साहब पञ्चायती क़ानून को उस हलक़े, क़सबे, तहसील, परगने या ज़िले में ज़ारी करने की घोषणा कर देंगे । यह हो जाने तथा पञ्च इत्यादि मिल जाने पर पञ्चायत का काम शुरू हो जायगा ।

हर पञ्चायत में पांच से कम और सात से अधिक पञ्च न हो सकेंगे । उन्हीं में से एक आदमी सरपञ्च मुक़र्रर किया जायगा । समन और हुकुमनामे इत्यादि ले जाने का काम चौकीदारों को करना पड़ेगा । लिखने-पढ़ने के काम का प्रबन्ध पञ्चायत ही को करना पड़ेगा । बहुत सम्भव है, एक मुहर्रिर रखने की भी इजाज़त मिल जाय ।

पञ्चायतों के फ़ैसलों की अपील न हो सकेगी । मामले मुक़द्दमे की कारवाई सरसरी तौर पर होगी । लिखने-पढ़ने का अधिक झञ्झट न रहेगा । दीवानी और फ़ौजदारी दोनों के अधिकार पञ्चायतों को मिलेंगे । सफ़ाई और तन्दुरुस्ती के मुतअल्लिक़ अख़तियारात भी उसे दिये जायँगे । तालीम की निगरानी का भी कुछ काम उसके सिपुर्द रहेगा । इसके सिवा और भी कुछ काम उसे करने पड़ेंगे ।

ये पञ्चायतें २५) तक की मालियत की दीवानी नालिशें सुन सकेंगी । फ़ौजदारी के मुक़द्दमों में साधारण मार-पीट, १०) तक की चोरी या हरजाने के मामले, फाटक को ले जाते समय छीने गये मवेशियों के मुतअल्लिक़ नालिशें—ये सब सुनने का मजाज़ पञ्चायत को होगा । जहां विशेष अच्छे पञ्च और सरपञ्च मिल जायँगे वहां की पञ्चायतों के अख़तियारात, ज़िले के अफ़सरों की सिफ़ारिश से, इसके दूने कर दिये जा सकेंगे ।

इससे पाठक समझ जायँगे कि देहातियों को स्वराज्य का सबक़ सीखने के लिए सरकार ने काफ़ी प्रबन्ध कर

दिया है। अब इस प्रबन्ध से लाभ उठाना, न उठाना, हमारा काम है। पढ़े-लिखे देहातियों को चाहिए कि इस क़ानून को मँगा कर पढ़ें। इसके मुतअल्लिक़ जो नियम सरकार ने बनाये हैं उनको भी समझ लें। फिर मिल कर ज़िले के अफ़सर को लिखें कि हमारे यहाँ पञ्चायत क़ायम कर दी जाय। पर एक बात याद रक्खें। पञ्चायत के पञ्च या सरपञ्च बन कर अपने पड़ोसियों के काल-यवन न बन जायँ। पञ्चायत को पुराना वैर-भाव निकालने का साधन न बना डालें। धर्म्म और ईमान की रू से अपना काम करें। अन्यथा उनके अधिकार छिन जायँगे और चार दिन की चाँदनी के बाद उन्हें फिर अँधेरी रात का सुख प्राप्त हो जायगा।

२—हिन्दी में कविताओं का सङ्ग्रह।

आज-कल हिन्दी में कविताओं का सङ्ग्रह ख़ूब प्रकाशित किया जा रहा है। 'माला' और 'अञ्जलि' से हिन्दी-साहित्य-प्रेमियों की बड़ी से बड़ी आलमारी भर जायगी। इन सङ्ग्रह-ग्रन्थों के प्रकाशन का क्या कारण है? हमारी समझ में इसका कारण यह है कि हिन्दी में जैसे कवियों की संख्या बेतरह बढ़ रही है वैसे ही समालोचकों की भी ख़ूब वृद्धि हो रही है। कवियों को भय है कि कहीं उन की कवितायें मासिक पत्रिकाओं की पुरानी फ़ाइलों में ही पड़े पड़े न सड़ जायँ। इसलिए वे स्वयं चाहते हैं कि उनकी रचनायें किसी 'अञ्जलि' अथवा 'माला' में गुम्फित रहें। उनका यह भय निर्मूल नहीं। उनके सङ्ग्रह-ग्रन्थों को पढ़ कर हमारी भी यही धारणा होगई है। यह तो कवियों की बात हुई। समालोचक भी सङ्ग्रह प्रकाशित करने के लिए व्यग्र रहते हैं। वे चाहते हैं कि इधर उधर से कुछ कवितायें उठा कर रख दें। इसमें कुछ परिश्रम तो है नहीं; पलग्रेव नामक समालोचक की तरह हमारा भी नाम हो जायगा और हम भी कविता के क़द्रदाँ समझे जायँगे। प्रकाशक भी किसी टेक्स्ट-बुक-कमिटी की सिफ़ारिश की आशा से इन संग्रहों को धड़ल्ले से प्रकाशित कर रहे हैं।

कविताओं का सङ्ग्रह करना सहज नहीं। काव्य-सागर का मन्थन करके अमृत निकाल लेने के लिए बड़ा परिश्रम चाहिए। यह भी समझ रखना चाहिए कि सागर से अमृत ही नहीं निकलता, विष भी निकलता है। सङ्ग्रहका चाहिए कि वह विष-पान करके संसार को अमृत का करे। परन्तु हमारे हिन्दी के सङ्ग्रहकार सुधा-पान कर कि नहीं, यह तो हम नहीं जानते। पर विष-दान कर डालते हैं। 'सरस्वती' में तुलसीदास जी की कविता पर कई लेख निकल चुके हैं। उसमें कविताओं के उदाहरण भी दिये गये हैं। यदि हम उदाहरणों को संग्रहीत करके प्रकाशित करदें और तुलसीदासजी की कवित्व-शक्ति इससे अच्छी तरह होती है तो इससे हमारी अज्ञानता सिद्ध होगी। उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा। सबसे अच्छी तोते की कही जाती है। सुन्दर आँख की तुलना मृग की जाती है। जङ्घाओं के लिए केले अथवा करि उपमा दी जाती है। इसी तरह एक एक सुन्दर अङ्ग के एक एक उदाहरण दिये जाते हैं। यदि सुन्दरी नारी देख इच्छा करनेवाला इन्हीं सब वस्तुओं को एकत्र करे तो उसका अभीष्ट सिद्ध होगा? सुन्दरी के स्थान में तो ऐसी भयावनी मूर्ति तैयार हो जायगी कि लोग देख डर जायँगे। यही हाल कविताओं के सङ्ग्रह का है। के सामयिक पत्रों में जितनी कवितायें निकलती हैं अधिकांश की शोभा तभी तक है जब तक वे उ में हैं। प्राचीन कवियों की भी कविताओं का यही है। तुलसीदास की कविता कैसी है, यह कहने की रत नहीं। परन्तु यदि हम उनकी कुछ रचनाओं को यण से अलग करके प्रकाशित करदें तो उनका नष्ट हो जाय। हमारे सङ्ग्रह को पढ़ कर तुलसीदास से भिज्ञ पुरुष यह कदापि कहने के लिए तैयार न कि तुलसीदास संसार के सर्वश्रेष्ठ कवियों में हैं। में एक ग्रन्थ है। उसका नाम है Beauties of Sha peare। उसमें शेक्सपियर के नाटकों से अच्छे अच्छे सङ्ग्रहीत हैं। पर सिर्फ़ उसी को पढ़ कर कोई शेक्स को मान न देगा। Beauties of Shakespeare सङ्ग्रहकार स्वयं इस बात को स्वीकार करते हैं। बात है कि सिर्फ़ भावों की समष्टि का नाम कविता नहीं है न अलङ्कारयुक्त रचना को ही कविता कहते हैं। वह है जिसे पढ़ कर मनुष्य पशुत्व से देवत्व

के। यदि किसी की रचना में यह शक्ति नहीं है तो वह
वल शब्द-जाल है। उससे क्षण भर मनोविनोद भले ही
ाय। और कुछ नहीं। कविता में एक बात और होती
। उसे अँगरेज़ी में Suggestiveness कहते हैं। इसका
तलब यह है कि शब्दों से कुछ विशेष अर्थ नहीं निक-
ता। परन्तु उनसे हमारे हृदय में विशेष भाव उदित
ते हैं। निम्न लिखित पद्यों पर ध्यान दीजिए—

> आगे चले बहुरि रघुराई। ऋष्यमूक पर्वत नियराई॥
> तहँ रह सचिव सहित सुग्रीवा। आवत देखि अतुल-बल-सींवा॥

इसमें कौन सा अलङ्कार है, कौन सा रस है, कौन सी
शेषता है। फिर भी कौन हिन्दी-प्रेमी चाहेगा कि ये
ामायण से निकाल दिये जायँ। इनमें 'रघुराई', 'ऋष्यमूक',
सुग्रीव' से हमें रामचन्द्रजी के जीवन-चरित का स्मरण
ता है। उनकी वनवास-कथा—उनकी पितृ-भक्ति—उनकी
त्री, इन सबका चित्र खिँच जाता है। इसी लिए हम
न पद्यों की गणना कविता में करते हैं। यदि इन पद्यों
ा सम्बन्ध रामायण से न रहे तो इनका महत्त्व जाता रहे
र ये कविता के आसन से नीचे उतर जायँ। अँगरेज़ी में
yrical Poetry (गीत-काव्यों) ही का सङ्ग्रह होता है।
टक और महाकाव्यों के जिन जिन अंशों में इनके तत्त्व
हित होते हैं वे भी सङ्ग्रह में आ सकते हैं। उदाहरण के
ए मिल्टन के पैराडाइज़-लास्ट का प्रभात-वर्णन अथवा
न का व्याख्यान। हिन्दी में ऐसी कवितायें कम हैं।
ीन कवि महाकाव्य, नाटक अथवा गाथा ही लिखना
क पसन्द करते थे। इसलिए उनके काव्यों से पद्य-
ग्रह करते समय सङ्ग्रहकार में बड़ी विवेचना चाहिए।
ऐसा न हो कि उसके सङ्ग्रह में उनके ऐसे पद्य आ
जो वहाँ उनकी कवित्व-शक्ति को घटानेवाले हों। हमें
है कि हिन्दी के सङ्ग्रहकार इसका बिलकुल ख़याल
करते। यदि हिन्दी के पाठक सूरदास और तुलसी-
की रचनाओं से पहले ही से परिचित न हों तो
अवतरणों को पढ़ कर उनकी श्रद्धा ही नष्ट हो जाय।
ग्रन्थ बहुधा बालकों की पाठ्य पुस्तकों में रक्खे जाते
इससे बड़ी हानि की सम्भावना है। हम चाहते हैं
अच्छी योग्यता के समालोचक ही सङ्ग्रह का काम लें—
हृदय हों, कविता के मर्मज्ञ हों और अनुभवशील
हों। जिनमें इन गुणों का अभाव है वे अनधिकार-चेष्टा
न करें।

३—जनता में शिक्षा-प्रचार।

आज-कल शिक्षा का उद्देश जीवन-निर्वाह है। हमें
अपने मस्तिष्क की उतनी चिन्ता नहीं, जितनी चिन्ता पेट
की है। हमें ज्ञान-वृद्धि की चाह नहीं, मतलब उदर-पूरण
से है। आप हमें गणित और दर्शन-शास्त्र की शिक्षा न
दें तो हमें परवा नहीं। पर आप हमें इतना तो सिखला
दीजिए कि हम अपनी जीविका का उपाय ढूँढ़ निकालें।
आज-कल सभी देशों में साधारण लोगों को ऐसी ही शिक्षा
देना आवश्यक समझा जाता है। जो दरिद्र हैं, मिहनत
मज़दूरी करके अपने दिन काटते हैं, जिनके पास उच्च
शिक्षा की प्राप्ति का कोई साधन नहीं है, उनकी भी शिक्षा
का प्रबन्ध किया जाता है। योरप में कुछ पाठशालायें
ऐसी हैं जहाँ उन्हीं लोगों को शिक्षा दी जाती है जिन्हें अपने
बाल्यकाल में विशेष शिक्षा प्राप्त करने का अवसर नहीं
मिला। ऐसे स्कूलों में मज़दूर भी, अवकाश के समय, पढ़-
लिख कर ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। ज्ञान हो जाने से वे
अधिक सुगमता से अपनी जीविका का प्रबन्ध कर लेते हैं।
डेनमार्क में सरकार अपने प्रत्येक किसान के बच्चे के लिए
कोई तीन सौ रुपया ख़र्च करती है। वहाँ प्रारम्भिक शिक्षा
तो अनिवार्य है ही। यह शिक्षा पा लेने के बाद अठारह
साल की उम्र में प्रत्येक लड़के को तीन सौ रुपये इसलिए दिये
जाते हैं कि वह पाँच महीने तक इतिहास, अर्थ-शास्त्र,
नीति-शास्त्र आदि विषयों का अध्ययन करके अच्छा नागरिक
बने। जिन स्कूलों में ऐसी शिक्षा दी जाती है वे सरकार
के अधीन नहीं हैं। उनकी देख-भाल प्रजा ही करती है।
वहाँ ऐसे ७० स्कूल हैं। उनमें शिक्षा पानेवाले लड़कों
की संख्या क़रीब दस हज़ार है। यह प्रणाली वहाँ सन्
१८६४ से जारी है। डेनमार्क बड़ा देश नहीं। वह इतना
ही होगा जितना हमारे देश का एक बड़ा ज़िला। पर
वहाँ भी इतना अधिक शिक्षा-प्रचार है। सुनते हैं, अब
वहाँ एक अन्तर्जातीय महाविद्यालय स्थापित करने का
प्रयत्न किया जा रहा है। उस विद्यालय में भिन्न भिन्न
देशों के मज़दूरों को शिक्षा देने का प्रबन्ध रहेगा।
अध्यापकों में कुछ अँगरेज़ रहेंगे, कुछ डेनमार्कवाले और

कुछ जर्मन । सम्भव है, इससे मज़दूरों में शिक्षा के साथ साथ भ्रातृभाव का भी प्रचार हो । यह बड़ी बात है ।

४—जापान में कृषि-शिक्षा ।

जापान ने थोड़े ही समय में आश्चर्यजनक उन्नति करके संसार को बतला दिया है कि यदि मनुष्य सचमुच अपनी उन्नति का इच्छुक है तो उसके लिए कुछ भी कर डालना असम्भव नहीं । जापान का व्यवसाय ख़ूब बढ़ा हुआ है । इसका मतलब यह नहीं कि वह कृषि की उन्नति से उदासीन है । उसने कृषि-विभाग में भी पूर्ण उन्नति की है । जापानियों का आदर्श ही पूर्णता है । जो सुधार वे करते हैं उसमें फिर अपूर्णता नहीं रहती । कृषि-शिक्षा और अनुसन्धान के लिए जापान की गवर्नमेंट ने जिन जिन उपायों का अवलम्बन किया उन सभी में उसे सफलता हुई, क्योंकि प्रजा से उसे पूरी सहायता मिली । राजा और प्रजा के एकमत होने से बड़े लाभ हैं । वहाँ कृषि-शिक्षा के लिए प्रति वर्ष कोई एक करोड़ रुपये ख़र्च किये जाते हैं । प्रारम्भिक पाठशालाओं के ऊँचे दर्जों में कृषि-शिक्षा का आरम्भ होता है । अधिकांश स्कूलों में कृषि-शास्त्र और प्राकृतिक विज्ञान की शिक्षा दी जाती है । जापान के सभी अध्यापकों को नार्मल स्कूलों में ये विषय पढ़ने पड़ते हैं । इन्हीं प्रारम्भिक पाठशालाओं से लगे हुए कुछ और स्कूल हैं जहाँ कृषि की विशेष शिक्षा दी जाती है । ऐसे स्कूलों की संख्या लगभग सात हज़ार है । ये स्कूल संध्या-समय खुलते हैं । कुछ स्कूल जाड़े के दिनों में कुछ समय के लिए शिक्षा देते हैं । सभी स्कूलों में लड़कों की अच्छी हाज़िरी रहती है । इनके सिवा ११८ कृषि-विद्यालय हैं । ये दो श्रेणियों में विभक्त हैं । निम्न श्रेणी के स्कूलों में १२ साल तक के लड़के लिये जाते हैं । पढ़ाई तीन साल की होती है । उच्च श्रेणी में १४ साल के लड़के भरती होते हैं । वहाँ तीन चार साल तक पढ़ाई होती है । इसके बाद यदि लड़का किसी एक विषय में विशेष दक्षता प्राप्त करना चाहे तो उसे दो साल तक और पढ़ना पड़ता है । सभी स्कूलों के साथ सरकारी खेत रहते हैं, जहाँ लड़के अपने ज्ञान को प्रत्यक्ष कर सकते हैं । इन खेतों से सर्वसाधारण को भी कृषि-विषय का ज्ञान प्राप्त करने का सुभीता रहता है । इन स्कूलों के अध्यापक जगह जगह जाकर किसानों को कृषि-सम्बन्धिनी बातें समझाया करते हैं । जो लड़के वहाँ से शिक्षा पाकर निकलते हैं वे अपने खेतों पर काम करते हैं या किसी स्कूल में शिक्षक हो जाते हैं । इन स्कूलों के सिवा टोकियो, सप्पोरो (Sapporo) और मोरिओका (Morioka) में कृषि-महाविद्यालय हैं । वहाँ बड़ी बड़ी प्रयोगशालायें हैं । उनमें कृषि-विज्ञान-विषयक अनुसन्धान होते रहते हैं । लगभग तीन सौ आदमी तो इसी लिए नियुक्त हैं कि वे जगह जगह जाकर कृषि-शास्त्र पर व्याख्यान दिया करें ।

५—बौद्ध-काल में स्त्रियों की स्थिति ।

प्राचीन काल में हिन्दू-समाज में स्त्रियों का स्थान उच्च था । धार्मिक तथा अन्य सामाजिक कृत्यों में उनका अधिकार पुरुषों ही के समान था । परन्तु जब पुरुष चतुर्थ आश्रम में प्रविष्ट होकर संन्यास ग्रहण करता था तब स्त्रियाँ पुरुषों का साथ न दे सकती थीं । सच तो यह है कि स्त्रियाँ उस समय विघ्न-स्वरूप मानी जाती थीं । जब बौद्ध-धर्म का पहले-पहल प्रचार हुआ तब उसमें स्त्रियों को दीक्षा लेने का अधिकार न था । बौद्ध-धर्म का प्रारम्भिक रूप निवृत्तिमूलक था । जो उसमें दीक्षित होते थे उन्हें सांसारिक विषयों से अपना सम्बन्ध तोड़ देना पड़ता था । बौद्ध भिक्षु स्त्रियों पर दृष्टि-पात तक न करते थे । परन्तु पीछे से अपने शिष्य (आनन्द) के आग्रह से बुद्धदेव ने स्त्रियों को दीक्षा देना स्वीकार कर लिया । गौतमी तथा अन्य भी कई स्त्रियाँ भिक्षुणी होकर बौद्ध-धर्म में सम्मिलित हुईं ।

बौद्ध-साहित्य में जगह जगह स्त्रियों का बड़ा अच्छा चित्र अङ्कित हुआ है । छः वर्ष तक घोर तपस्या करने के बाद जब बुद्ध देव अशक्त हो गये थे तब सुजाता ने आकर उन्हें भोजन दिया था । विशाखा ने भगवान् बुद्ध और उनके शिष्यों की बड़ी सेवा की थी । बौद्ध-साहित्य में उसका चरित्र बहुत उज्ज्वल वर्णित हुआ है ।

इसमें सन्देह नहीं कि भिक्षुओं की अपेक्षा भिक्षुणियों की संख्या बहुत कम थी । तो भी समाज में उनका बड़ा प्रभाव था । उनकी विद्वत्ता और धार्मिकता की अनेक कथायें प्रचलित हैं । थेरीगाथा के अधिकांश भागों की रचना स्थविराओं ने की है । उन थेरियों में से कुछ आचार्य

पद पर प्रतिष्ठित थीं। उनके पास कितने ही भिक्षु बौद्ध-धर्म के तत्त्व समझने के लिए आया करते थे। थेरी-भाष्य में सोमा नाम की एक स्त्री का उल्लेख है। वह राजा बिम्बसार के सभा-पण्डित की कन्या थी। वह अपने स्वाध्याय और योग के बल से अर्हत् के पद पर पहुँच गई थी। सुमेधा नाम की भी एक राजकन्या उल्लिखित हुई है। उसकी प्रतिभा विलक्षण थी। उसने सांसारिक सुखों का त्याग करके विश्व-सेवा स्वीकार की थी। शिक्षा और पवित्रता किसी एक ही जाति की स्त्रियों में नहीं पाई जाती। सभी जातियों और सभी समाजों में विदुषी और सदाचारिणी स्त्रियाँ हुई हैं। उनके प्रयत्नों से बौद्ध-धर्म की बड़ी उन्नति हुई और उसका खूब प्रचार हुआ।

६—ज़ार की हत्या।

रूस के भूतपूर्व ज़ार की हत्या का वर्णन कई लोगों ने किया है। परन्तु सबसे विश्वसनीय विवरण कप्तान मेक्कलो (Captain Francis Mccullagh) नामक आयरलेंड के एक सैनिक का है। उसी के विवरण का संक्षेप नीचे दिया जाता है।

जिस दिन ज़ार की हत्या हुई उसी दिन एक बजे रात को यूरोव्स्की (Yurovsky) नामक एक मनुष्य ने आकर ज़ार को सोते से जगाया और कहा "जल्दी से कपड़े पहन लो और चलो। सड़क पर शायद लड़ाई हो और सम्भव है इन खिड़कियों से गोलियाँ यहाँ तक आ जायँ। इसलिए बेहतर होगा कि सब के सब तहखाने में जा रहें। मैं जाकर दूसरों को जगाता हूँ।" थोड़ी देर में ज़ार अपनी स्त्री और लड़कों के साथ नीचे आये। उस समय का दृश्य बड़ा करुणाजनक था। उनके साथ उनका १४ वर्ष का एक लड़का भी था। वह बीमार और शक्तिहीन था। चार लड़कियाँ भी थीं। यदि उनका जन्म किसी दूसरे घर में होता तो उनके सौन्दर्य की सर्वत्र ख्याति होती। एक की उम्र २१ वर्ष की थी। नाम था कुमारी टाटाइना (Tatiana)। किंवदन्ती थी कि वह इँगलेंड की राजरानी होगी। कुमारी ओलगो १६ वर्ष की थी। मेरिया १८ वर्ष की और अनास्टासिया सिर्फ़ १६ वर्ष की। उन्हें देख कर किसकी इच्छा सहायता देने की न होती। जब वे लोग तङ्ग और अँधेरी सीढ़ियों से नीचे उतर रहे थे तब एक सैनिक ने आकर उन्हें लालटेन दिखाई। पर किसी ने उनको बचाने की चेष्टा न की। ज़ार ने अपनी पत्नी को अपने हाथ का सहारा दिया। उन्हें क्या मालूम कि अन्तिम बार वे ऐसा कर रहे हैं। तहखाने में जाकर ज़ार और उनके बाल-बच्चे एक कोने में खड़े हो गये। कुमारी टाटाइना गोद में शिशु पेकिंगीज़ को लिये हुए थी। जो सैनिक वहाँ आये थे वे एक दूसरे के मुँह की ओर ताकने लगे। म्रचकोव्स्की (Mrachkovsky) और यूरोव्स्की ने अपने अपने पिस्तौल निकाले। तब, जान पड़ता है, ज़ार को विपद की आशङ्का हुई। तहखाना २६ फुट लम्बा और २० फुट चौड़ा था। उसमें एक छोटी सी खिड़की थी। दीवारों पर सम्राज्ञी और रासपुटिन के अश्लील चित्र खिंचे हुए थे। पिस्तौल खींच कर यूरोव्स्की ने एक कागज़ निकाला और उसे पढ़ कर सुनाया। उसमें सोवियट रिपब्लिक अर्थात् रूस के प्रजातन्त्र राज्य ने ज़ार और उनके परिवार को प्राण-दण्ड की आज्ञा दी थी। सम्राज्ञी और सब बच्चे घुटने टेक कर खड़े हो गये। ज़ार खड़े ही रहे। जब यूरोव्स्की ज़ोर ज़ोर से आज्ञा पढ़ रहा था तब वे अपनी स्त्री और बच्चों के सामने जाकर खड़े हो गये। मानों वे अपने शरीर से उनको बचाना चाहते हों। उन्होंने कुछ कहा भी। पर यूरोव्स्की की आवाज़ के कारण वह कोठरी गूँज रही थी। किसी ने कुछ समझा नहीं। इसके बाद उसने पिस्तौल छोड़ दिया। सम्राट् गिर पड़े। फिर तो पाँच मिनिट तक बराबर पिस्तौल दगते रहे। एक सैनिक का कहना है कि हत्या का वह दृश्य इतना भीषण था कि वह मुझसे भी नहीं देखा जाता था। पहले घायल होकर टाटाइना मूर्च्छित हो गई। उसका एक छोटा कुत्ता भी साथ ही आया था। वह सैनिकों की ओर देख कर खूब भोंकने लगा। एक ने उसे भी मार डाला। थोड़ी देर में टाटाइना की मूर्च्छा भङ्ग हो गई। वह उठ कर 'मा, मा' चिल्लाने लगी। सिपाहियों ने तुरन्त उसके शरीर में सङ्गीन घुसेड़ दी। कुछ ने सिर पर भी चोट की। सभी हत्याकारी उन्मत्त से थे। मृत शरीरों पर भी वे सङ्गीन चलाते थे। इस तरह एक निरपराध राज-परिवार का नाश कर दिया गया।

७—एक नया यन्त्र।

विज्ञान की आश्चर्यजनक उन्नति हो रही है। उसके

द्वारा ऐसे ऐसे यन्त्रों का आविष्कार हो रहा है जिससे लोगों का अनन्त उपकार हो सकता है। अभी हाल में एक ऐसा ही यन्त्र निकला है जिससे लूले मनुष्यों को हाथों का अभाव अधिक कष्टकारी न होगा। इसका आविष्कार किया है एडिनबरा के जी० टामसन साहब ने। आप वहीं गैस के मिस्त्री का काम करते हैं। इससे आपका अच्छा नाम हो गया है। यन्त्र की बनावट साधारण है। उसे कुर्सी पर बैठ कर कोई भी मनुष्य अपने घुटनों और टख़नों के बल से चला सकता है। इसके द्वारा जिनके हाथ नहीं हैं वे भी अब उन कामों को अच्छी तरह कर सकेंगे जो हाथों के द्वारा सम्पन्न होते हैं। इसकी बदौलत मनुष्य अच्छी तरह लिख सकता है; लिख कर लिफ़ाफ़ा बन्द कर सकता है। खाने-पीने में काँटे-छुरी का भी व्यवहार कर सकता है। कहाँ तक कहें, वह सिगरेट भी मज़े से जला कर पी सकता है। उसे पैरों में गरम ऊन के मोज़े पहनने होंगे और पैरों को ऊनी क़ालीन पर रखना होगा, जिससे वह आराम से इस यन्त्र को काम में ला सके। टामसन साहब कोशिश कर रहे हैं कि यह यन्त्र इतना सस्ता हो जाय कि सभी लूले, ग़रीब और अमीर, इसे ख़रीद सकें।

इस यन्त्र का हाल इलस्ट्रेटेड लन्दन न्यूज़ नामक पत्र में निकला है।

८—केनेडी साहब का शरीर-पात।

केनेडी साहब का, ७८ वर्ष की उम्र में, शरीरान्त होगया। यह घटना गत २० जून को हुई। केनेडी साहब भारतीय पुरातत्त्व के बड़े प्रेमी थे। उसमें आप अच्छा दख़ल रखते थे। आपके पिता जेम्स केनेडी थे। उत्तर-भारत में जो लन्दन मिशनरी सोसाइटी है उसीमें वे काम करते थे। आपने एडिनबरो के विश्वविद्यालय में शिक्षा पाई थी। सन् १८६२ में आप सिविल सर्विस की परीक्षा में सम्मिलित हुए। दूसरे साल परीक्षा पास कर के आप भारत आये। आप पहले संयुक्त-प्रान्त में नियुक्त हुए। सन् १८८४ में आप कलेक्टर होगये। सन् १८९० में आपने पेंशन ले ली। आपको ऐतिहासिक विषयों से बड़ा प्रेम था। इसलिए सन् १८९१ में आप रायल एशियाटिक सोसाइटी के सदस्य हुए। १९०४ से १९१७ तक आप उक्त सोसाइटी में ट्रेज़रर (ख़ज़ानची) रहे। इसके बाद भी आप सोसाइटी के कामों को बड़े उत्साह से करते रहे।

आपका पहला लेख सन् १८९१ में निकला। उसका विषय था सर्पपूजा (Serpent worship)। उस लेख से आपकी गवेषणा-शक्ति प्रकट होती है। वैसे तो आपने कई अच्छे अच्छे लेख लिखे, पर आपके दो लेखों की बड़ी प्रसिद्धि हुई। १८९८ में आपने "प्राचीन भारत के साथ बाबुल का व्यवसाय" शीर्षक लेख लिखा। यह लेख बड़ा महत्त्वपूर्ण है। सन् १९१२ में आपने "कनिष्क का रहस्य" शीर्षक लेख लिख कर प्रकाशित किया। १९१३ में आपने इसी विषय पर एक और लेख लिखा। आपकी राय थी कि कनिष्क ईसा के पूर्व ५७ वर्ष गद्दी पर बैठा और उसीने विक्रम-संवत् चलाया। इस पर बड़ा विवाद हुआ। कुछ विद्वानों ने आपके इस सिद्धान्त को भ्रम-पूर्ण प्रमाणित किया है।

९—गृह-शिक्षा की उपाधि।

भारतवर्ष में स्त्री-शिक्षा के विरोधियों की संख्या अवश्य घट रही है। तो भी अभी ऐसे ही लोग अधिक हैं जो स्त्रियों को उच्च शिक्षा देना पसन्द नहीं करते। उनकी सम्मति में स्त्रियों का प्रधान कार्य-क्षेत्र गृह है। अतएव उन्हें उतनी ही शिक्षा मिलनी चाहिए जितनी से वे गृह-कार्य में निपुण हो सकें। परन्तु गृह-प्रबन्ध के लिए भी उच्च शिक्षा की आवश्यकता है। इँगलेंड में लन्दन-विश्वविद्यालय ने गृह-प्रबन्ध-शिक्षा की महत्ता स्वीकार कर ली है। उसके लिए वहाँ अलग प्रबन्ध किया गया है। जो स्त्रियाँ गृह-कार्य में निपुण होना चाहती हैं उन्हें तीन साल तक विश्वविद्यालय में शिक्षा ग्रहण करनी पड़ेगी। शिक्षा की समाप्ति पर उनकी परीक्षा ली जायगी और यदि वे उत्तीर्ण होंगी तो उन्हें बी० एस-सी० (B. Sc.) की उपाधि दी जायगी। आशा है कि ये बी० एस-सी० उपाधिधारिणी स्त्रियाँ सुगृहिणी भी बनेंगी।

१०—कुनैन की उपज।

देशी वनस्पतियों से ओषधि-निर्माण करने के विषय में डेविड हूपर साहब और श्रीयुत पूर्णसिंह ने दो लेख लिखे हैं। हूपर साहब का कथन है कि अँगरेज़ी दवाइयों की अधिकांश रसात्मक ओषधियाँ यहीं पैदा होती हैं।

जो नहीं होतीं वे यहाँ पैदा की जा सकती हैं। कुछ ओषधियों की उपज तो ऐसी है कि लोग उन्हें पैदा करके अच्छा लाभ उठा सकते हैं। बेलाडोना (Belladonna) पश्चिमी हिमालय पर, शिमला से काश्मीर तक, होता है। नीलगिरि में डिजिटैलिस (Digitalis) नामक ओषधि ख़ूब होती है। मदरास के स्टोर-विभाग में वह उटकमण्ड से भेजी जाती है। हिमालय पर ८००० फ़ुट से ११,००० फ़ुट की ऊँचाई तक हेनबेन (Henbane) पैदा होती है। सहारनपुर के बोटेनिकल गार्डन में यह १८४० में पहले पहल लगाई गई। वहाँ अब इसकी बड़ी अच्छी उपज है। जलपरूट (Jalop-root) नीलगिरि में अच्छा होता है। यह सन्तोष की बात है कि अब सरकार का ध्यान इधर आकृष्ट हुआ है। सम्भव है कि कुनैन की तरह अब और भी ओषधियाँ यहीं सुलभ हो जायँ। कुनैन मलेरिया की एक-मात्र दवा है। १८६२ में सर क्लेमेंटस मार्कहैम ने अमरीका से इसका बीज मँगवा कर यहाँ बुवाया। आज-कल दार्जिलिङ्ग और नीलगिरि इसके प्रधान क्षेत्र हैं। वहाँ कई तरह की कुनैन पैदा होती है। गवर्नमेंट सिनकोना प्लैन्टेशन और फ़ेक्टरी की सन् १९१७-१८ की रिपोर्ट से मालूम होता है कि १९००-१ से १९१८ तक सब मिला कर इस काम में कुल ४७,००,००० रुपये ख़र्च हुए और ७७,७३,७०० रुपये की आमदनी हुई। इस तरह ३०,७३,७०० रुपये की बचत हुई। १९१५ से १९१८ तक तीन साल में लगभग १,९२,००० पौण्ड कुनैन बाँटी गई। १८९६-७ में सर जार्ज किंग ने कुनैन के एक प्रचार की अच्छी रीति निकाली। ९ ग्रेन कुनैन की एक पुड़िया बनाई गई और उसका दाम एक पैसा रक्खा गया। वह सब डाकघरों में बिकने लगी। इससे बड़ा लाभ हुआ। १९१३-१४ में डाकघरों से १०,६९४ पौण्ड कुनैन बिकी थी। अब सरकार ने इस पुड़िया का दाम १ आना कर दिया है।

११—भारतवर्ष के नये कमांडर-इन-चीफ़।

सरस्वती के इस अङ्क में भारतवर्ष के नये कमांडर-इन-चीफ़, लार्ड रालिनसन, का चित्र दिया जाता है। गत योरोपीय महासमर में आपने अच्छा नाम कमाया। अगस्त १९१८ में अमीन्स (Amiens) का युद्ध हुआ था। इस युद्ध में आपने जर्मनों के दाँत खट्टे कर दिये। जर्मन सेना अपने को अजेय समझती थी। उसको आपने ही नीचा दिखाया। इससे आपकी बड़ी ख्याति हुई। अब आप भारतवर्ष के प्रधान सेना-नायक होकर आ रहे हैं। आप एक बार पहले

भारत के नये प्रधान सेनापति जनरल रालिनसन।

भी भारतवर्ष में पदार्पण कर चुके हैं। १८८६-८७ में बर्मा के युद्ध में आप सम्मिलित हुए थे। उस समय आप तत्कालीन कमांडर-इन-चीफ़, सर एस० राबर्ट्स, के एडीकांग नियुक्त होकर आये थे। अभी आपकी उम्र ५६ वर्ष की है।

१२—अमेरिका के नये प्रेसीडेंट।

सिनेटर वारन जी० हार्डिङ्ग संयुक्त-राज्य, अमेरिका, के

प्रेसीडेंट चुने गये हैं। अभी तक इस पद पर डाक्टर उड्रो विलसन अधिष्ठित थे। अब उनका आसन सिनेटर हार्डिंग ने ग्रहण किया है।

डाक्टर विलसन ४ मार्च १९१३ को प्रेसीडेंट के आसन पर आरूढ़ हुए थे। कोई छः साल उन्होंने इस पद पर रह कर काम किया। इन छः वर्षों में उन्होंने बड़ा नाम कमाया। उन्हीं के शासन-काल में योरोपीय महासमर का आरम्भ हुआ और उन्हीं के समय में उसका अन्त भी।
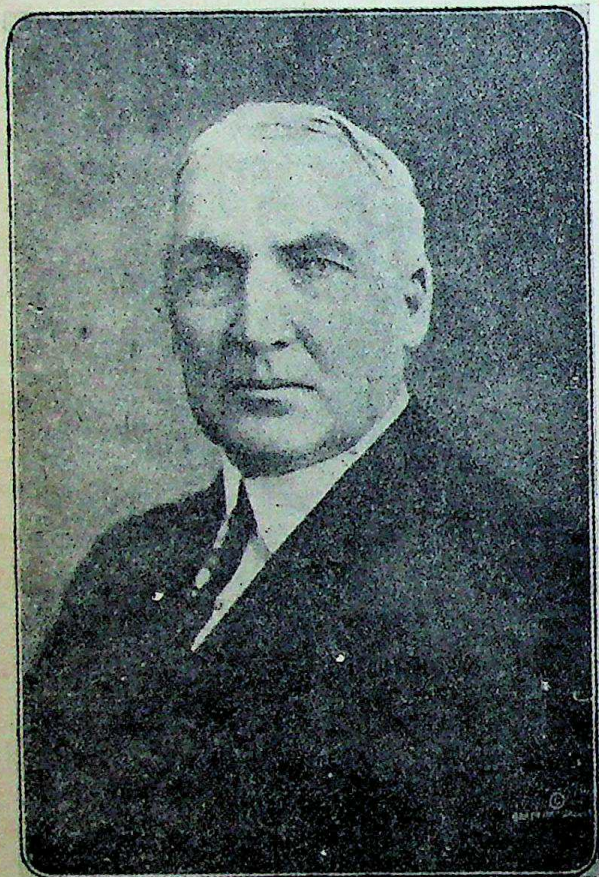
संयुक्त-राज्य (अमेरिका) के प्रेसीडेंट, सिनेटर डब्लू० जी० हार्डिंग।

यद्यपि योरप में अभी शान्ति नहीं स्थापित हुई है तथापि इसमें सन्देह नहीं कि डाक्टर विलसन ने शान्ति स्थापित करने की बहुत चेष्टा की।

डाक्टर विलसन पहले अध्यापक थे। सिनेटर हार्डिंग सम्पादक थे। पत्र-सम्पादन में ही सबसे पहले आपने नाम कमाया। और अब उसी की बदौलत आपने अमेरिका में सर्वोच्च पद प्राप्त कर लिया। इसी से मालूम हो सकता है कि अमेरिका में पत्र-सम्पादक की क्या हैसियत है। नीचे हम आपका संक्षिप्त चरित देते हैं।

हार्डिंग साहब का जन्म ओहियो, मोरो काउंटी, के ब्लूमिंग ग्रोस नामक स्थान में, गाँव के बाहर, अपने पितामह के खेत में, २ नवम्बर सन् १८६५ को हुआ था। उन्होंने ऐसे घर में जन्म लिया था जहाँ सम्पत्ति की प्रचुरता न रहने पर भी सुख और समृद्धि थी। उनके माता-पिता में मनुष्योचित सभी गुण वर्तमान थे। अच्छा स्वास्थ्य, सरल स्वभाव, उदार हृदय, ये सब बातें उनमें थीं। ऐसे माता-पिता के संरक्षण में रह कर हार्डिंग ने अपने बाल्यकाल में ही सदाचार की शिक्षा प्राप्त कर ली।

चौदह वर्ष की उम्र तक हार्डिंग ने अपने गाँव के ही स्कूल में शिक्षा प्राप्त की। इसके बाद वे उच्च शिक्षा पाने के लिए ओहियो सेन्ट्रल कालेज में भेजे गये। वहीं उन्होंने अपनी शिक्षा समाप्त कर पदवी पाई। उक्त कालेज में पढ़ते समय उन्हें कालेज की पत्रिका का सम्पादन करना पड़ा था। यहीं उन्होंने सम्पादन-कला का पहला पाठ पढ़ा। कभी कभी उन्हें कालेज की पढ़ाई छोड़ कर अपना निर्वाह करने के लिए तरह तरह के काम करके द्रव्य-सङ्ग्रह करना पड़ता था। कभी वे खेतों में जाकर कटाई का काम करते, कभी अपने पड़ोसी के कोठे को रँगते, कभी रेल की पटरी तैयार करते और कभी किसी स्कूल में जाकर पढ़ाते।

हार्डिंग साहब को छापेख़ानों में काम करने का बड़ा शौक़ था। मौक़े मौक़े पर वे अपने गाँव के छापेख़ाने में जाकर काम करते थे। छापेख़ाने के छोटे बड़े सभी कामों को वे बड़े प्रेम से करते। टाइप जोड़ने में वे बड़े होशियार हो गये। जब पहले-पहल लीनो टाइप का प्रचार हुआ तब उन्होंने मशीन चलाना भी सीख लिया।

हार्डिंग साहब के जीवन का लक्ष्य स्टार नामक दैनिक पत्र है। जब हार्डिंग का सम्बन्ध उससे हुआ तब उसकी अच्छी स्थिति न थी। उसका आकार भी बहुत छोटा था और उसकी ग्राहक-संख्या भी बहुत कम थी।

हार्डिंग साहब ने बड़े उत्साह से उसका सम्पादन-भार

ग्रहण किया। उनकी यह बड़ी इच्छा थी कि स्टार ख़ूब चमक जाय। इसके लिए उन्होंने बड़ी कोशिश की। आधी रात तक जाग कर उन्होंने स्टार का काम किया। उन्हें अपने उद्योग में पूरी सफलता हुई। आज स्टार की गणना सर्वश्रेष्ठ समाचार-पत्रों में होती है। उससे आय भी ख़ासी होती है।

स्टार मोरियन नामक गाँव से प्रकाशित होता है। पहले इस गाँव की जन-संख्या सिर्फ़ चार हज़ार थी। स्टार का प्रचार बढ़ जाने से अब उसमें ३० हज़ार से अधिक लोग रहते हैं। अब वह व्यापार का एक अच्छा स्थान हो गया है। उसकी इस समृद्धि के एक-मात्र कारण हार्डिंग साहब ही हैं। उनमें व्यापारिक कुशलता ख़ूब है। आज-कल भी वे एक बेङ्क के डाइरेक्टर हैं। और भी कई व्यवसायों से उनका कुछ न कुछ सम्बन्ध है।

हार्डिंग साहब ने अपनी ही विद्या और बुद्धि के बल से यह उच्च पद प्राप्त किया है। सन् १८८९ में वे स्टेट-सिनेटर चुने गये। इसके बाद १९०४ में उन्हें लेफ़्टिनेंट गवर्नर का पद मिला। १९१४ में वे संयुक्त-राज्य के सिनेटर हुए और अब प्रेसीडेंट चुने गये हैं।

हार्डिंग साहब रिपब्लिकन, प्रजातन्त्रवादी, हैं। वे अन्तर्जातीय राष्ट्रीयता के विरोधी हैं। उनके चुनाव से सूचित होता है कि अब अमेरिका डाक्टर विलसन की नीति के पक्ष में नहीं।

पुस्तक-परिचय।

१—आख्यायिका-सप्तक—परलोकवासी पण्डित माधवप्रसाद-मिश्र-लिखित सात आख्यायिकाओं का सङ्ग्रह। सम्पादक पण्डित राधाकृष्ण मिश्र। प्रकाशक, पण्डित देवीराम विशारद, मिश्र-निकेतन, भिवानी (पञ्जाब)। पृष्ठ-संख्या ११२। मूल्य ॥=)—पुस्तक अच्छे टाइप में अच्छे काग़ज़ पर छपी है।

पुस्तक के नाम से ही प्रकट होता है कि इसमें सात कहानियाँ हैं। उनमें तीन सामाजिक हैं और चार पौराणिक। आरम्भ में आठ पृष्ठों की एक भूमिका है। उसमें सम्पादक ने इनकी समालोचना की है। उसको पढ़ने से मालूम होता है कि इन कहानियों की दो विशेषतायें हैं, एक तो 'मौलिकता' और दूसरी 'यथार्थ दर्शन'। दूसरी विशेषता बतलाते समय सम्पादक महोदय ने आज-कल के अधिकांश आख्यायिका-लेखकों को आड़े हाथों लिया है। आपका कथन है कि महाकवि द्विजेन्द्रलाल राय ने "पाषाणी" में अहल्या का जो चित्र खींचा है वह पेरिस की किसी बाज़ारू व्यभिचारिन से भी अधिक भयानक हो गया है। प्रातःस्मरणीया अहल्या का ऐसा चित्र खींचना आप अनुचित समझते हैं। हमारा यह कहना है कि नाटक इतिहास नहीं है। पाषाणी की अहल्या कवि की सृष्टि है, वह प्रातःस्मरणीया अहल्या नहीं है। अतएव आपका यह आक्षेप व्यर्थ है। आगे चल कर आप कहते हैं कि "रवीन्द्र बाबू ने अपने गल्पों में रूपवान् नवयुवक के सामने मकान की छत पर बैठा कर किसी हिन्दू-विधवा के ब्रह्मचर्य्य का दुष्परिणाम दिखाया है। क्या स्वर्णमयी महारानी की जन्म-भूमि में कवि को सती विधवा का कोई लोक-पावन चित्र दिखाई नहीं देता?" इसके उत्तर में हम आपका कथन ही उद्धृत कर देते हैं—"तुम मनोराज्य के पीछे पड़ कर वर्तमान काल के सच्चे चित्रों पर अपने विचारों की स्याही की पिचकारी क्यों मारते हो?" द्विजेन्द्रलाल राय और रवीन्द्र बाबू पर आक्षेप किये बिना भी सम्पादक महोदय अपने भाई की आख्यायिकाओं की तारीफ़ कर सकते थे। "वाग्मी धर्म्मप्रचारक" को अपनी भूमिका के मैदान में घसीट लाने और आख्यायिका-प्रकाशक प्रेसों को "सूकरी" की उपमा देनेवालों की सच्ची बात पर भी बहुतों को सन्देह हो सकता है। हम एक बात नहीं समझ सके। यदि स्त्रियों का अनाचार अवर्णनीय है तो क्या पुरुषों का व्यभिचार वर्णनीय है? प्रार्थना यह है कि भीष्म पितामह, रामचन्द्र और अर्जुन की जन्मभूमि में क्या आख्यायिका-सप्तक के लेखक को कोई लोक-पावन पुरुष-चरित्र नहीं दिखाई दिया, जिससे उन्होंने ऐसे व्यभिचारी पुरुषों के चित्र अङ्कित किये "जिनकी गन्दी करतूत से बड़े बाज़ार के अनेक गृहस्थ हैरान और परेशान" हो गये थे। जिस समय ये कहानियाँ लिखी गई थीं उस समय को देखते बुरी नहीं।

मनोहर मिश्र

※

२—स्वर्ण-प्रतिमा—यह एक बँगला-उपन्यास का अनुवाद है। अनुवादक हैं, बाबू रामचन्द्र वर्म्मा और

प्रकाशक, बाबू महादेवप्रसाद झुँझनूवाला, भारत-पुस्तक-भण्डार, नं० ३१, बड़तल्ला स्ट्रीट, कलकत्ता। पुस्तक अच्छे काग़ज़ और बढ़िया टाइप में छपी है। जिल्द भी सुन्दर है। मूल्य २॥) ।

आज-कल हिन्दी में बँगला-उपन्यासों की ख़ूब धूम है। स्वर्ण-प्रतिमा के लेखक पण्डित सुरेन्द्रमोहन भट्टाचार्य्य बङ्गाल में बड़े प्रसिद्ध हैं। उनके एक उपन्यास मिलन-मन्दिर का अनुवाद कुछ दिन पहले निकल चुका है। हिन्दी-पाठकों ने उसकी क़द्र की है। इसलिए उनके दूसरे उपन्यास कनक-प्रतिमा का भी यह अनुवाद वर्मा जी की कृपा से हिन्दी-प्रेमियों के लिए सुलभ हो गया है। उपन्यास शिक्षाप्रद ज़रूर है। इसके कोई कोई सामाजिक चित्र भी सजीव हैं। मनोरञ्जक भी हैं। पढ़ने में जी लगता है। भाषा भी बड़ी सुन्दर है। पर मूल-लेखक की कोई कोई बातें खटकनेवाली हैं। यह उपन्यास तो हमें बङ्किम बाबू के "कृष्णकान्तेर विल" नामक उपन्यास का अनुकरण मालूम होता है। भेद इतना ही है कि न तो कुसुम में 'भ्रमर' के गुण आने पाये और न वसुमती में 'रोहिणी' की विशेषता। बङ्किम बाबू ने रोहिणी की हत्या ही तक पाप का दृश्य दिखलाया है। परन्तु वसुमती के पापों का अन्त वहाँ नहीं हुआ। देवेन्द्र बाबू उसकी हत्या करके भाग गये, परन्तु वह मरी नहीं। उसकी बड़ी दुर्गति हुई। लेखक को पापों का भयङ्कर परिणाम दिखलाना ही अभीष्ट था। परन्तु वसुमती को पाप-पथ पर ले जानेवाले देवेन्द्र बाबू साफ़ बच गये। उसी तरह कुञ्जलाल, जो वसुमती की अन्तिम दुर्गति का कारण था, उसे दण्ड मिलना तो दूर रहा—उलटा उसे शिक्षा मिली।

मनोहर मिश्र

*

३—सदाचार और नीति—लेखक, श्रीयुक्त लक्ष्मीधर वाजपेयी। पृष्ठ-संख्या १५२। काग़ज़ और छपाई साधारण है। मूल्य एक रुपया। प्रकाशक, तरुण-भारत-ग्रन्थावली-कार्यालय, दारागञ्ज, प्रयाग। यह एक मराठी पुस्तक के आधार पर लिखी गई है। इसमें सदाचार और नीति का विवेचन है। भाषा मज़े की है। ऐसी पुस्तकों का जितना ही अधिक प्रचार हो उतना ही अच्छा।

४—लोकमान्य तिलक—लेखक, पण्डित मातासेवक पाठक। प्रकाशक, बाबू महादेवप्रसाद झुँझनूवाला, भारत-पुस्तक-भण्डार, ३१ बड़तल्ला स्ट्रीट, कलकत्ता। पृष्ठ-संख्या १७४। सुन्दर ज़िल्द बँधी हुई। मूल्य १॥), छपाई और काग़ज़ अच्छा। लोकमान्य के एक दो जीवनचरित और भी निकले हैं। उनसे यह कुछ बड़ा है। इसमें लोकमान्य के जीवन की मुख्य मुख्य घटनाओं का विशद रूप से वर्णन किया गया है। यही इसकी विशेषता है। लोकमान्य ने राजनीति के क्षेत्र में जितना काम किया है उससे कम काम समाज और साहित्य में के क्षेत्र में नहीं। पर इस पुस्तक में राजनैतिक विषयों ही की चर्चा अधिक है। तथापि इस पुस्तक से तिलक महाराज के राजनैतिक कामों और मुक़द्दमों आदि का बहुत कुछ ज्ञान थोड़े में हो सकता है। यह इस पुस्तक का दूसरा संस्करण है। पहले संस्करण की अपेक्षा इसमें कुछ नई बातें भी बढ़ाई गई हैं। पुस्तक में तिलक महाराज के दो चित्र भी हैं। पुस्तकारम्भ में एक विषय-सूची दे दी गई होती तो बहुत अच्छा होता।

❀

५—भावना-भवन—यह ३२ पृष्ठों की एक छोटी सी पुस्तक है। इसमें ब्रह्मचारी ज्ञानानन्द जी की पद्य-रचनाओं का सङ्ग्रह है। मूल्य =)॥ है। प्रकाशक हैं श्रीयुत राजकुमार, उपमन्त्री अकलङ्क सरस्वतीभवन, काशी। इसमें हिन्दी के बहुत साधारण पद्यों में जैनधर्मानुमोदित भावनाओं आदि का वर्णन है। अन्त में सामयिक पाठ और प्रश्नोत्तररत्नमालिका नाम के छोटे छोटे दो काव्य संस्कृत में हैं। ये दोनों बड़े मनोहर हैं।

❀

६—कृषिशासनम्—श्रीजाह्नवीतीरश्रीसूकरक्षेत्रवासिदशरथशास्त्रिसम्पादितम्। यह ग्रन्थ संस्कृत भाषा में है। इसमें एक संस्कृत-टीका है और एक हिन्दी-टीका। कृषि के उपयोगी यन्त्रों के चित्र भी दिये गये हैं। बड़ी सांची के कोई २०० पृष्ठों में यह ग्रन्थ समाप्त हुआ है। इसका प्रकाशन ज़िला आगरा, मौज़ा पलीया, के निवासी श्रीशुकदेव वासुदेव ने किया है। मूल्य नहीं लिखा।

आज-कल कृषि, विज्ञान, दर्शन आदि सभी विषयों के ग्रन्थ गद्य में लिखे जाते हैं, क्योंकि इससे अल्पज्ञ

पाठक पुस्तक को अच्छी तरह समझ लेते हैं। परन्तु कृषि-शासन विद्वान् पण्डितों के लिए लिखा गया है, क्योंकि उसकी रचना पद्यात्मक है और दोनों टीकायें विद्वत्ता-पूर्ण भाषा में लिखी गई हैं। कृषि-विज्ञान की अब बड़ी उन्नति हो गई है। उसके सिद्धान्तों के विवेचन करने की अपेक्षा अब उन्हें कार्यरूप में परिणत करने की आवश्यकता है। अतएव इस दीन हीन देश में अब ऐसे ही ग्रन्थों की ज़रूरत है जो कृषकों को खेती का काम समझायें, चाहे उनमें श्रुति-स्मृति की बातें हों चाहे न हों। तथापि हम इस पुस्तक के कर्ता के परिश्रम की प्रशंसा करते हैं। उन्होंने प्राचीन ग्रन्थों को देख कर बड़े खोज से इसकी रचना की है। इसमें भूमि, वृष, बीज, कर्षण के प्रकार, हल, फाल, वृष्टि-ज्ञान, तेज़ी-मन्दी आदि का बड़ा विशद वर्णन है। साधारण रोगों की चिकित्सा भी है। कृषि के विषय में हमारी पुरानी पोथियों में जो कुछ इधर उधर बिखरा पड़ा है उस सबको इस पुस्तक में संगृहीत करके शास्त्री जी ने बड़ा काम किया है। कृषि-विषयक हमारे प्राचीन ज्ञान को उन्होंने नाश होने से बचा लिया। आपको शतशः साधुवाद। आपकी इस पुस्तक में लीथो के छपे हुए कितने ही चित्र भी हैं।

❁

७—**जोशी जी की पुस्तकें**—बम्बई (कालबादेवी रोड) में एक मारवाड़ी औषधालय है। उसके सञ्चालक पण्डित हनुमत्प्रसाद जोशी वैद्य ने अपनी बनाई हुई तीन पुस्तकें भेजने की कृपा की है। ये पुस्तकें आपको लिखने पे मोल मिल सकती हैं। पुस्तकों का आकार मँझोला है। अच्छे काग़ज़ पर अच्छे टाइप में छपी हैं। पहली पुस्तक है—**मलावरोध-चिकित्सा**—इसकी पृष्ठ-संख्या ४४, पर मूल्य ७ आने है। इसमें कब्ज़ के कारण, उससे होनेवाली हानियाँ और उसे दूर करने के उपाय बतलाये गये हैं। पुस्तक में २ चित्र भी हैं। बड़े काम की पुस्तक है। जिन्हें कब्ज़ की शिकायत हो उनको तो ज़रूर ही इसे पढ़ लेना चाहिए। दूसरी पुस्तक है—**तमाखू से हानि**—इसकी पृष्ठ-संख्या ८४ और मूल्य वही ।≤) है। इसमें तम्बाकू के प्रचार और उसके सेवन से उत्पन्न हानियों का विशद वर्णन है। और भी कितनी ही बातें हैं। नवसिखुओं को चाहिए कि तम्बाकू खाना और सिगरेट पीना शुरू करने के पहले यह पुस्तक पढ़ लें। तीसरी पुस्तक का नाम है—**हृदय-वीणा**—इसकी पृष्ठ-संख्या ८४ और मूल्य ॥-) है। इसका टाइप कुछ बड़ा है। इसमें जोशी जी की फुटकर कविताओं का सङ्ग्रह है। कवितायें अनेक विषयों की हैं। विषय सब अच्छे हैं। किसी किसी कविता के भाव भी हृदयग्राही हैं। भाषा तीनों पुस्तकों की जोशी जी की निज की है।

चित्र-परिचय।

(१)

सङ्गीत (रङ्गीन)।

प्राचीन भारत में सङ्गीत की उन्नितावस्था थी। उच्च कुल की ललनायें भी गाने-बजाने का अभ्यास किया करती थीं। राजाओं के अन्तःपुर में गान-विद्या का विशेष आदर था। फ़ुरसत के समय रानियाँ गाना सुना करती थीं। सरस्वती के इस अङ्क में जो रङ्गीन चित्र दिया गया है उसमें यही बात प्रकट की गई है। यह चित्र हमें टिहरी (गढ़वाल) के कुँवर विचित्रशाह के अनुग्रह से मिला है।

(२)

सामाजिक चित्र।

इस संख्या में सरस्वती के चित्रकार बाबू रामेश्वर-प्रसाद वर्म्मा के दो सामाजिक चित्र प्रकाशित हैं। पहला चित्र है—**बहू का भाग्य**। यह उस समाज का दृश्य है जिसमें बहू बन कर ससुराल आने पर सुशील और गृह-कार्य-कुशल लड़की का भी भाग्य, कर्कशा सास के पेच में पड़ कर, फूट जाता है। चित्र का दृश्य है—

सास अपने पति से—देखा, पीढ़े पर बैठ कर रसोई बना रही है! कुलच्छनी कहीं की!

ससुरजी (अपनी पत्नी से)—नीच घर की लड़की से और क्या आशा की जा सकती है? बहुत धोखा खाया। मैं घण्टों बाहर घूम भी आया, पर अब तक रसोई तैयार नहीं! सिर्फ़ पन्द्रह-बीस आदमियों के लिए रसोई बनाने में इतनी देरी!

दूसरा चित्र है—**प्रातःकाल की उपासना**। वर्त-मान काल की दूषित शिक्षा और दीक्षा के प्रभाव में पड़ कर जिन्होंने धर्म्म-कर्म्म को तिलाञ्जलि दे दी है, जिन्होंने अपने आचार-विचार और ईश्वरोपासना से सर्वथा

ही मुँह मोड़ लिया है, और जिन्होंने विदेशी समाज के दोषों की नक़ल करना ही अपनी उन्नति का सर्वश्रेष्ठ साधन समझ रक्खा है वे प्रातःकाल उठते ही अपने मुँह को रेल के यंजिन की "चिमनी" बनाने में ही अपनी कृतार्थता मानते हैं। क्योंकि उनके उपास्य देवताओं में सिगरेट का आसन बहुत ऊँचा है।

प्रातःकाल की उपासना ।

बहू का भाग्य ।

Printed and published by Apurva Krishna Bose, at The Indian Press, Ltd., Allahabad